

મળવાનું ઠેકાણું :  
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી  
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
ઠે ગરેડિયા કૂવારોડ, ત્રીન લોજ  
પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર)



ખીણ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦  
વીર સંવત : ૨૪૮૪  
વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૪  
ઈ સ્વી સ ન : ૧૯૫૮



: સુદ્રક :  
મણિલાલ છગનલાલ શાહ  
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ  
ધીકાંટા રોડ : : અમદાવાદ.

રૂ. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય સુરબ્ધી સમિતિના પ્રમુખ;  
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ  
અમદાવાદ.





---

---

श्री-वर्धमान-श्रमण-संघना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामजी महाराजश्रीं

आपेक्ष

सम्भतिपत्र —

\*

उपरान्त

पूज्य श्री वासीदासजी महाराज-रचित

थीन सत्रोनी टीका भाटे तेजोश्रीना भंतव्ये

\*

तेमज

अन्य महात्मांयो, महासतींयो, अद्यतन-पद्धतिवाणा केलेनना प्रोद्देशे

तेमज

शास्त्रज्ञ आवडोना अलिआये

---

---

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-  
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-  
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लवधसपर्य्याचार्यवर्य्यासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-  
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुह-  
रीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च  
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव,  
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण  
प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-  
रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-  
सिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन  
चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया  
एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानानि श्वेताम्बराणां स्थानक-  
वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति-लुधियानामण्डल-स्थानकवांस्तव्यो जैनमुनि-  
रूपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પણ્ડિત-  
મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ ( પંજાબ ) ના એ  
આચારાંગસૂત્રની આચારચિંતામણિ ટીકાપર આપેલ

## સંમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

મેં પૂજ્ય આચાર્યવર્ય ઘાસીલાલજી (મહારાજ) ની બનાવેલ શ્રીમદ્ આચારાંગ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનની આચારચિંતામણિ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગ-પૂર્વક સાંભળી.

આ ટીકા ન્યાય સિદ્ધાંતથી યુક્ત, વ્યાકરણના નિયમથી નિબદ્ધ છે. તથા એમાં પ્રસંગે પ્રસંગે ક્રમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંબંધ પણ ઉચિતરૂપથી જણાઈ આવે છે.

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે. તેમજ પ્રૌઠ વિષયોનો વિશેષરૂપથી સંસ્કૃત-ભાષામાં સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ મનોરંજક છે. એ માટે આચાર્ય મહોદય ખરેખર ધન્યવાદને પાત્ર છે.

હું આશા રાખું છું કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો એના સારી રીતે પઠન પાઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૃત પીય પીયને મનને આનંદિત કરે. અને તેના મનનથી દક્ષજનો ચાર અનુયોગોત્તુ સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર્ય આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્રવેતાંબર સ્થાનકવાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને યશસ્વી બને.

વિ. સં. ૨૦૦૨  
માગસર સુદી ૧

જૈનમુનિ-ઉપાધ્યાય આત્મારામ  
લુધિયાના ( પંજાબ )  
શુભમસ્તુ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी  
 महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ  
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई  
 ( पुण्णमासी ) १५ सुक्कारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-वासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
 सगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं  
 सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तथा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा  
 जीवण ( संजमजीवण ) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-  
 सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामणविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ,  
 कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ  
 वणिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि  
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विमुय-  
 प्पयारेण चित्तं चित्तियं, पुणो सक्कयपाठीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए  
 भासीगं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं  
 परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
 लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु ( उ ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
 अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजगतोवरि असीमो-  
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
 जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तथा भवियव्वयावाओ  
 पुरिसकारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किं वहुणा इमोए वित्तीए पत्तेय-  
 विसयस्स फुडसदेहिं वण्णगं कयं, जइअन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं  
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तथा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ-

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

## सम्मतिपत्र

( भाषान्तर )

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ल १५ ( पूर्णिमा ) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमणि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमणिश्री घासीलाल-  
जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका  
पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम  
तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-  
संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भावको  
सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ?  
और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे  
बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप, कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकोंको  
धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण  
इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती  
है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म  
किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस  
स्थितिमें पहुंचा इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया  
है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको  
भी पूरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी  
कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि  
वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका  
यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढ़ने  
वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें ! श्रावकों ( गृहस्थों ) का  
तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया  
जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम  
उपकार किया है। इसमें श्रावक के बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने  
योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा  
भोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



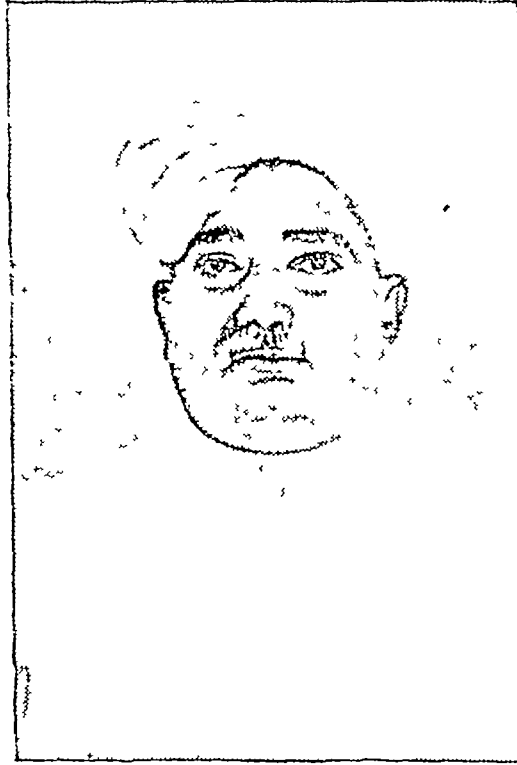
इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज—कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन  
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



રૂ. ૬૦૦૦) આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



શેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વારીયા  
ભાણુવડ.





श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर  
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय  
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

## सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी'  
टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त  
श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी  
म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन  
स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को  
सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी  
संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम  
को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित  
करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की  
जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं।  
पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर  
सुखशाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी  
देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस  
भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिज-  
वाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल ३

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज ( पंजाब ) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

### सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी ( महाराज )की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि. सं. २००२

मृगसर सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम

लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु ॥

\*

थीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेटियाका अभिप्राय-

\*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है । इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुंचेगा ।

( ता. २८-३-५६ के पत्रमेंसे )

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-  
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाब) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-

मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं  
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं  
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा वेयं वृत्तिः  
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु-  
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयत्नानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-  
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय  
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः  
सुस्पष्टाश्च वृत्तिर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां  
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः ”  
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }  
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा }  
लुधियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

(श्री दशकैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

### सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-यासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भाषाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाणं अइसयजुत्तो अत्थो वणिणओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सख्वं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडख्वेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दडुव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सबभावो समाजस्स अहोभगं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ ? जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ। अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन  
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले  
(अलवरस्टेट)

इइ-

उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो  
(पंचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी  
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-  
गत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-  
सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

૩. પરપણુ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



કો ઠા રી હ ર ગો વિં દ ભા ઈ જે ચં દ  
રા જ કો ટ.



निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र  
 आगमवाराधि-सर्वत्रन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री  
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुवा  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें । !

भवदीय.

गूजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

( लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज )

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर-भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वान् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संकृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर - पूज्यश्री - घासीलालजी - महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो, धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्रीकन्हैलालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलधिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।



श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण  
महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी  
छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के मंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री १००८ श्री भागचन्द्रजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-बल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके' ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है,  
वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत  
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा  
सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र-  
काशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव  
करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति  
में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला ( पंजाब )

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई  
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।  
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।  
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों  
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ  
सराहनीय है ।

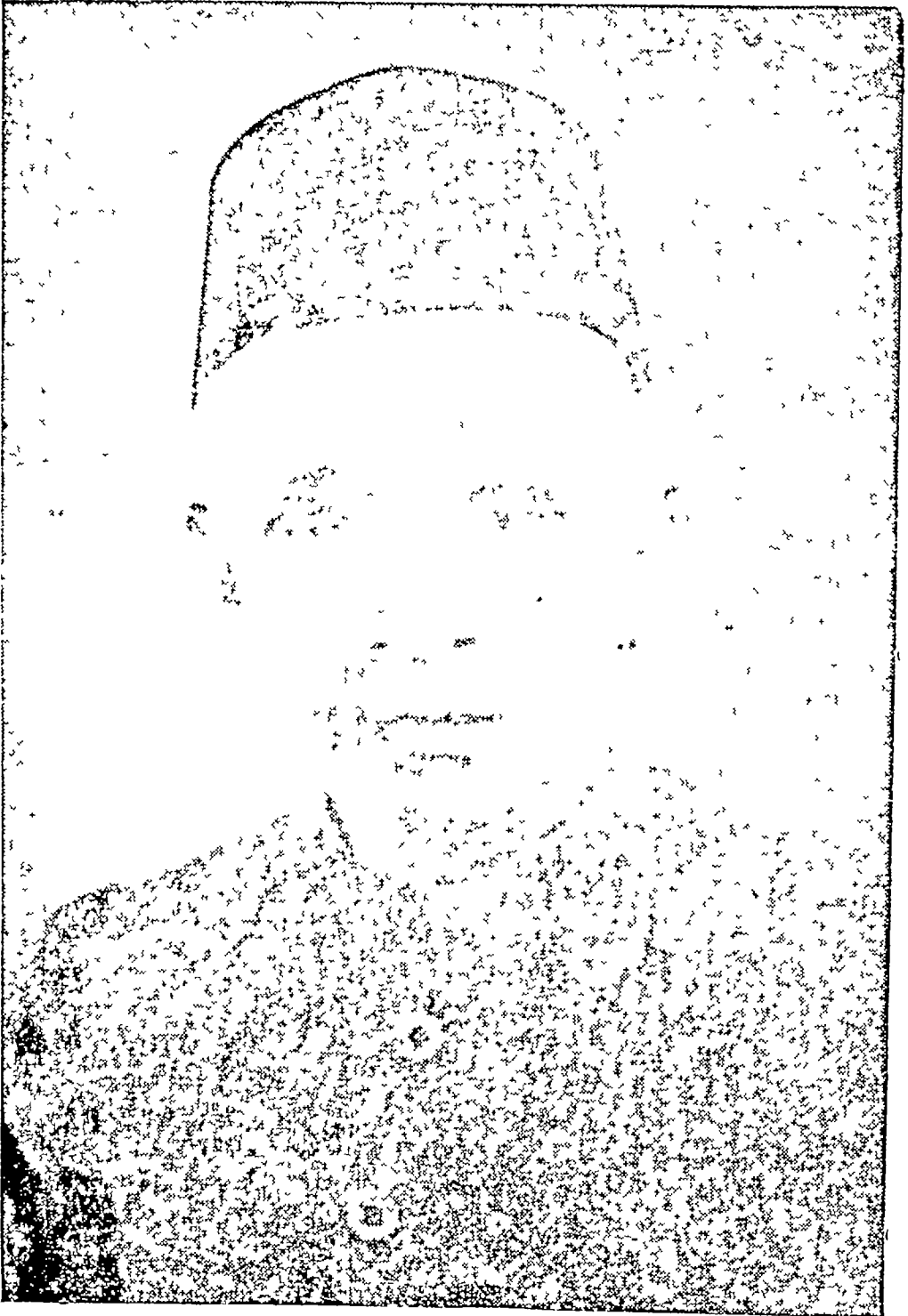
आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

૩૧. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય સુરજીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ  
સોલાપુર.



शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा । आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासक-दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमें बडा ही परिश्रम किया है । इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिल सकता है ।

\* -

बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूलसूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरुरी लेवा जेवुं छे, वळी करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

\*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है ।

\*

खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित-रत्न मुनि श्री समर्थमलजी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न साराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुंदरता से लिखी है।

\*

## श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जै-  
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर  
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा  
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने  
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह  
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना  
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान  
करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और  
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन  
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

इतवारी बाजार

नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान् मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आनन्द्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन





# શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રાનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

\*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (નામૌર મારઘાઢવાલા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે ‘અહિંસા શું વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક ખીણ વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદઅંશેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બંનેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમે વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ કાલ્પુન શુકલ  
તેરસ મંગળવાર  
(અલ્પવર સ્ટેટ)

ઈતિ  
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ  
(પંજાબી)

શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંબળકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર  
મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને  
માટે મળેલો અભિપ્રાય.

\*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી  
ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ  
તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની  
જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માઠે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં  
યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી  
જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી  
મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશે. નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મરા-  
ધનામાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા  
આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે, ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકા-  
શન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને  
આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાડું છે એજ.

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઈચ્છતો,  
દયામુનિના પ્રણિપાત.

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો મેં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્રપ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી  
પૂં શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની  
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના  
પાયવંદન સ્વીકારશે.

\*

તા. ૧૧-૫-૫૬  
વિરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે ખડું જ સારું અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળું જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.  
મુ. ખીચન.

\*

## લીંબડી સંપ્રદાયના સુનિશ્રી છોટાલાલજી

### મહારાજને અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે:—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સારું સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા જે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જે કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજેઘપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

કરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે એ અસ્તુ.

આતુર્ભાસ સ્થળ લીંબડી } લી.  
સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ધણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય. તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ

તા. ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર

મહાવીર જ્યાંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

\*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ.

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્રવેન્ સ્થાન્ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ મુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈઠીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરૂષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના લેદથી નિખાલસ ભાવનાઓ અવલોક કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ દેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતા-પોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તકને ચૂકસો નહિ. કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યમાં આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણુ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ.

લી. શારદાબાઈ સ્વામી  
ખંભાત સંપ્રદાય.

\*

## બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ  
પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
મું રાજકોટ

અત્રે ખીરાજતા ગું ગુંના લંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતમાં ખીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી લેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આઘોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ દેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાદીને વિક્ષિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લબ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિક્ષાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરું કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી  
મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી  
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધંધુકા  
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

\*

અઘતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિક્ષાન  
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદાન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિક્ષતા; ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક પ્રવેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂં મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમનરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

## મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,  
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાય થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રીના આ મહાન કર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેન્ટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ.

પ્રો. તારા રમણુલાલ શાહ

સોફીયા, કલોજ, મુંબઈ

\*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

બગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.



આ સૂત્રો જોતાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂઠ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણું અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવનાં ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ. સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસીકલાલ કરતુરચંદ ગાંધી

એમ. એ. એલ. એલ. ખી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ લિનાસર કોન્ફેરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાંબર સ્વામીજીની સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે પ્રાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે. તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કેન્ફેરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પંડિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને બહાર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે, ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કેન્ફેરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(રથા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

\*

### સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ બેવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે.”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઈ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. ખીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાંચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ લગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવા તેમજ સમજવામાં ઘણું સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સૂત્રો લખાયા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી ખાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

## શ્રુત-ભક્તિ

( પૂં આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મં સાંની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર )

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહુપુર, અમદાવાદ

આજે લગલગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર પંં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મં ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે, અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ, સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભં મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણુધર મહારાજેએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપરં-પરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઠ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સહભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરખ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભં મહાવીરને ગણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષની ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગલગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ

લાષાઓમાં લાષાંતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક લાષાઓમાં લાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી લગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૫૫ લરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-લગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

\*

શ્રી. અ. ભા. ૨વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર ન્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણુસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણુસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જે સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજ-કાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન.....

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નવ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. ખીલ કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સાઈ. મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા કરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશો. લી. સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

## “જૈનસિદ્ધાંતના” તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે—તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાંકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પદ્મં ગાણં તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મં યથાર્થં સમજવેાં હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

“જૈનસિદ્ધાંત” ડીસેમ્બર-૫૬

## શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. પ્રવે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુકું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતસું અંગ સૂત્ર છે. એમાં લગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા ( પ્રત્યાખ્યાન ) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં અરિહંતચેડ્યાઈ શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજ સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહંતચેડ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ. નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

“ જૈનસિદ્ધાંત ” બાનુચારી-૫૭

સેંકડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલ  
કેટલાક તાબ અભિપ્રાયો

## શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી ( જૈનજ્યોતિ ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ સુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગ-લગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ અનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાંગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ હીઠાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે .

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના ડૉ. ૨૫૧૭ ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. ડૉ. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ-લાભ પણ મળે છે.



આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મિનશ્રી કનૈયા-  
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ ખિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના  
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે. અને  
અત્યાર સુધીમાં મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ  
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે  
દૃષ્ટિવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ  
મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા  
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે.  
અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયખેરી બની જશે. જેનું વાંચન  
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાણ પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્યંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “ સ્થાનકવાસી જૈન ” તા. ૫-૯-૫૭ ના અંકમાં છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ધિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈતે સમાજને જાણ કરાવા સાડ લખું છું.

‘ શાસ્ત્રોત્તુ’ કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોત્તુ’ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં ધિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્રલેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જ્યંતિ મુનિ-અમદાવાદ

\*

# શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કેન્દ્ર-સ જેમ ખોટાં બણાં કુંકનારી સંસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન્ ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રીને મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈ એ કયું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાલયું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર” એક્ટોમ્બર ૧૯૫૭

\*

## શ્રી દશવૈકલિક તથા ઉગાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ યાગતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બળવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈચાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતું ‘કલ્પ શું’ અને ‘અકલ્પ શું’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાલનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં ૩૫૧ રીતે કરી રહ્યા છે અને ૩૫૧૫૫૫ ભરી મેમ્બર થનારતે રૂ. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગલગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ક્રી મળી શકે છે તો તે રૂ. ૨૫૧૫૫૫ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગલગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મદત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. તંત્રી—

“રત્નજ્યોત” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં  
બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર.....થી ....કન્યાકુમારી

તેમજ કરાંચી.....થી.....કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય

હજી સુધી કોઈ કરી શક્યું નથી

\*

\*

\*

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેશવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી

તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસલા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે.

\*

\*

\*

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો

લાલ લઈ રહ્યા છે.

હમણાંજ લંડનની ઈન્ડિયા ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યાં છે.

\*

\*

\*

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતનાં શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો.

વધુ વિગત માટે લખો :

ઠે. ગ્રીન લોન્ડ પાસે,

ગરેડીઆકુવા રોડ

રાજકોટ.

મંત્રી

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે. સ્થા. જૈન

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

श्री आचाराङ्गसूत्र प्रथमश्रुतस्कन्ध प्रथम अध्ययनका

विषयानुक्रम

	विषय-	पृष्ठाङ्क-
१	मङ्गलाचरण	१- ३
२	अवतरणा	३-१५९
(१)	भगवान् के वचनों में कल्पवृक्ष के फूलों के पच्चीस (२५) गुणोंकी उपमा	४-१३
(२)	भगवान् की वाणी के ३५ अतिशय	१४-१९
(३)	अनुयोग (४)	२०-१५८
	(१) चरणकरणानुयोग	२०-२३
	(२) धर्मकथानुयोग	२३-२४
	(१) आक्षेपाण्यादिधर्मकथा (४)	२५-३१
	(२) धर्ममहिमा	३२-३४
(३)	गणितानुयोग	३५-५३
	प्रव्रज्यादानसमयनिर्णय	३६-५३
	(१) मासविचार	३७
	(२) पक्षविचार	३८
	(३) तिथिविचार	३८
	(४) वारविचार	३९
	(५) नक्षत्रविचार	३९
	(६) योगविचार	४१
	(७) करणविचार	४१
	(८) लग्नविचार	४६
	(९) ग्रहविचार	४६
(१०)	शीघ्रप्रव्रज्यासमयनिरूपण	४७

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(११) केशलुञ्चन	५१
(१२) प्रथमगोचरीविचार	५२
(१३) नूतनपात्रव्यापारण	५३
(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमय	५३
(४) द्रव्यानुयोग	५३-१५९
द्रव्यलक्षण	५४
पर्यायलक्षण	५८
द्रव्यविभाग ( भेद-६ )	६१
[१] धर्मास्तिकायस्वरूप	६३
[२] अधर्मास्तिकायस्वरूप	६७
[३] आकाशास्तिकायस्वरूप	७२
[४] कालनिरूपण	८२
कालशब्दव्युत्पत्ति	८२
कालसिद्धि	८३
काललक्षण	८४
कालस्वरूप	८८
[५] पुद्गलास्तिकाय	९६
पुद्गलशब्दार्थ	९६
पुद्गललक्षण	९७
पुद्गलप्रदेशसंख्या	९८
पुद्गलक्षेत्रस्थिति	९८
पुद्गलभेद	१०४
परमाणुस्वरूप	१०५
स्कन्धस्वरूप और उसके भेद	१०८
परमाणुबन्धकारण	११२
परमाणुबन्धव्यवस्था-कोष्ठक	१२१

विषय-	पृष्ठाङ्क-
[६] जीवास्तिकाय	१२२
जीवशब्दार्थ	१२२
जीव स्वरूप भाव और उसके भेद-५	१२४
(१) औपशमिक भाव	१२५
(२) क्षायिक भाव	१२६
(३) क्षायोपशमिक भाव	१२७
(४) औदयिक भाव	१२७
(५) पारिणामिक भाव	१२८
जीव का स्थितिक्षेत्र	१३०
जीव की हास-वृद्धि	१३२
जीव की ऊर्ध्वगति	१३४
जीवलक्षण	१३५
इति जीवास्तिकाय	१४०
षड्द्रव्य विचार	१४१
जीवस्कन्ध विचार	१४३
षड्द्रव्यों का सक्रिय- निष्क्रिय विचार—	१४५
व्यवहारनय को लेकर षड्द्रव्य विचार—	१४७
षड्द्रव्यों के विषय में— कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपण	१४७
व्यवहार नय-(६)	१४८
(१) शुद्धव्यवहार नय	१४८
(२) अशुद्धव्यवहार नय	१५०
(३) शुभव्यवहार नय	१५१
(४) अशुभव्यवहार नय	१५२



विषय-	पृष्ठाङ्क
(५) उपचरितव्यवहार नय	१५२
(६) अनुपचरितव्यवहार नय	१५४
जीव के स्वरूप में सदृश- विसदृश विचार	१५६
इति अवतरण सम्पूर्ण	१५९
सूत्र का उपक्रम	१५९
सूत्र प्रथम	१६०
'भग' शब्दार्थ	१६१
सूत्र द्वितीय (संज्ञा)	१६४-१९६
संज्ञा के भेद (१६)	१६६
(१) आहारसंज्ञा	१६७
(२) भयसंज्ञा	१६९
(३) मैथुनसंज्ञा	१६९-१७०
(४) परिग्रहसंज्ञा	१७०
(५) क्रोधसंज्ञा	१७१
(६) मानसंज्ञा	१७१
(७) मायासंज्ञा	१७२
(८) लोभसंज्ञा	१७२
(९) लोकसंज्ञा	१७२-१७३
(१०) ओघसंज्ञा	१७३
(११) सुखसंज्ञा	१७३
(१२) दुःखसंज्ञा	१७४
(१३) मोहसंज्ञा	१७४
(१४) विचिकित्सासंज्ञा	१७४-१७५
(१५) शोकसंज्ञा	१७६
(१६) धर्मसंज्ञा	१७५-१७६
ज्ञानसंज्ञा के भेद-(५)	१७६

विषय—	पृष्ठाङ्क—
(१) मतिज्ञान	१७६
(२) श्रुतज्ञान	१७७
(३) अवधिज्ञान	१७९
(४) मनःपर्ययज्ञान	१८१
(५) केवलज्ञान	१८४
मतिज्ञान के भेद (५)	१८५-१९०
ईहा	१८५-१८६
अपोह	१८६-१८७
मीमांसा	१८७
मार्गणा	१८७
गवेषणा	१८८
संज्ञा	१८८
स्मृति	१८८-१८९
मति	१९०
प्रज्ञा	१९०
सूत्र तृतीय (संज्ञा)	१९५-२०२
तीन प्रकार का जन्म	१९८
(१) संमूर्च्छनजन्म	१९८-१९९
(२) गर्भजन्म	१९९-२००
(३) उपपातजन्म	२०१
सूत्र चतुर्थ (संज्ञा)	२०२-२०८
सूत्र पञ्चम	२०९-३९७
आत्मवादिप्रकरण	२१०-२६८
आत्मशब्दार्थ	२११
आत्मास्तित्वसिद्धि	२१३
आत्म का द्रव्यत्व	२२८
आत्माका स्वरूप (१३)	२३३

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(१) जीवत्वनिरूपण	२३३
(२) नित्यत्वनिरूपण	२३७
(३) चेतनावत्त्वनिरूपण	२४३
(४) उपयोगवत्त्वनिरूपण	२४४
(५) परिणामित्वनिरूपण	२४७
(६) प्रभुत्वनिरूपण	२४८
(७) कर्तृत्वनिरूपण	२५०
(८) भोक्तृत्वसिद्धि	२५३
(९) शरीरपरिणामत्वसिद्धि	२५५
(१०) अमूर्त्तत्वनिरूपण	२५९
(११) प्रतिशरीरभिन्नत्वसिद्धि	२६३
(१२) पौद्गलिककर्मसयुक्तत्वसिद्धि	२६३
(१३) ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वसिद्धि	२६८
इति आत्मवादि प्रकरण	२६८
लोकवादिप्रकरण	२६९-२९९
षड्जीवनिकाय	२७०-२७१
(१) पृथिवीकायभेद	२७१
(२) अण्कायभेद	२७३
(३) तेजस्कायभेद	२७४
(४) वायुकायभेद	२७४-२७५
(५) वनस्पतिकायभेद	२७५-२७६
(६) त्रसकायभेद	२७६
(१-४) द्वित्रिचतुरिन्द्रियभेद	२७७-२७८
(६) पञ्चेन्द्रियभेद (४)	२७९
मनुष्यभेद	२८०
अकर्मभूमि	२८२
देवनिकाय (४)	२८३

विषय	पृष्ठाङ्क
(१) भवनपतिदेवभेद	२८४
(२) व्यन्तरदेवभेद	२८६
(३) ज्योतिष्कदेवभेद	२८७
(४) वैमानिकदेवभेद	२८८
कल्पातीत	२९४
षड्जीवनिकायभेदसंकलन	२९५
जीवसंख्या	२९८
कर्मवादिप्रकरण	२९९
(१) कर्मस्वरूप	३००
(२) कर्मसिद्धि	३०१
(३) कर्म का मूर्त्तत्व	३१२
(४) जीव और कर्म का संबन्ध	३१३
(५) कर्म का अनादित्व	३१७
(६) अकर्मवादिमतनिराकरण	३१८
(७) बन्धस्वरूपनिरूपण	३२०
(८) बन्धकारणनिरूपण	३२५
(१) प्रकृतिबन्ध	३३२
आठ कर्मों के लक्षण	३३३
(२) स्थितिबन्ध	३३४
स्थितिबन्धकोष्ठक	३३६-३३७
(३) अनुभावबन्ध	३३८
पुण्यपापकर्मनिरूपण	३४४
सर्वघाति प्रकृतियाँ (२०)	३४७
देशघाति प्रकृतियाँ (२५)	३५२
अघाति प्रकृतियाँ (७५)	३५६
उत्तरप्रकृतिसंख्या (१४८)	३५८-३७४

विषय—	पृष्ठाङ्क
कर्मक्षयविचार	३७४
इति कर्मवादिप्रकरण	३८३
क्रियावादिप्रकरण	३८३-३९७
प्राणातिपातक्रिया	३८६
मृगवध में उद्यत की क्रिया	३८८
कुसूल में लोह डालने वाले की क्रिया	३८९
धनुष से वींधने वाले की क्रिया	३९०
वृष्टिज्ञान के लिये हस्तादि—	
फैलाने वाले की क्रिया	३९१
ताड पर चढ़ कर उसके फल तोड़नेवाले की क्रिया	३९२
अठारह पापस्थान	३९२-३९७
(१) प्राणातिपात	३९२
(२) मृषावाद	३९४
(३) अदत्तादान	३९४
(४) मैथुन	३९४-३९५
(५) परिग्रह	३९५
(६-१८) क्रोध से मिथ्यादर्शनशल्यतक	३९५-३९७
इति क्रियावादि प्रकरण	३९७
छठा सूत्र ( कर्मसमारम्भ )	३९७-४०१
सूत्र सप्तम ( अपरिज्ञात कर्मजीव )	४०२-४०३
सूत्र अष्टम ( जीव का योनिसंधान )	४०३-४०९
योनिभेद (९)	४०४
चोरासी लाख योनियाँ	४०७
सूत्र नवम ( परिज्ञा )	४०९
सूत्र दशम ( कर्मसमारम्भ )	४११
सूत्र एकादश ( उपसंहार )	४१५
सूत्रद्वादश ( उपसंहार )	४१६

विषय—	पृष्ठाङ्क—
प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशकी समाप्ति	४१७
दूसरे उद्देशका उपक्रम	४१८
जीव के विशिष्ट ज्ञानके अभावका कारण	४२०
पृथिवीकाय की हिंसा में तदाश्रित- जीवों की हिंसा	४२३
पृथिवीकायलक्षण	४२५
पृथिवीकायप्ररूपणा	४३३
पृथिवीकायजीवपरिणाम	४३७
पृथिवीकायवधद्वार—शस्त्रद्वार	४४०
पृथिवीकाय का उपभोग	४४१
पृथिवीकायसमारम्भप्रयोजन	४४२
पृथिवीकायसमारम्भफल	४४९
दृष्टान्तद्वारा पृथिवीजीवसिद्धि	४५५
पृथिवीकायसमारम्भनिवृत्ति	४६१
उपसंहार—उद्देशसमाप्ति— तृतीय उद्देश	४६३
उपक्रम और दृष्टान्त	४६४—४६८
अनगारलक्षण	४६९
अनगारकर्तव्य	४७३
श्रद्धास्वरूप	४७४—४९८
(१) यथाप्रवृत्तिकरण	४८५
(२) अपूर्वकरण	४८९
(३) अनिवृत्तिकरण	४९२
(४) अधिगमश्रद्धा	४९४
अप्कायश्रद्धोपदेश	४९९—५०३
अप्काय की हिंसा में तदाश्रित अन्य जीवों की हिंसा	५०४
अप्कायशस्त्र	५०५
अप्कायरक्षोपदेश	५०९
अप्कायभोग—	५१२

विषय-	पृष्ठाङ्क-
अप्कायसचित्ता	५१४
अप्कायजीवलक्षण	५१९
अप्कायप्ररूपणा	५२०
अप्कायजीवपरिमाण	५२२
अप्कायशस्त्र	५२४
धावनजल-धावनपानी-(२१)	५२८
अप्कायविराधनादोष	५३०
अप्काय के विषय में अन्य- मत समीक्षा	५३२
अन्यमतागमविरोध	५३४
उपसंहार	४३७
चतुर्थोद्देशक	५३८
उपक्रम	५३८
अग्निकाय के अभ्याख्यान में आत्मा का अभ्याख्यान	५३९
अग्निकायलक्षण	५४१
अग्निकायसचित्ता	५४२
अग्निकायप्ररूपणा	५४३
अग्निकायजीवपरिणाम	५४६
अग्निकायापलाप	५४८
दीर्घलोकशस्त्र ( अग्निकाय ) का- खेदज्ञ	५५०
दीर्घलोकशब्दार्थ	५५३
अग्निकायशस्त्र	५५५
अग्निकायसमारम्भनिवृत्तिप्रतिज्ञा	५६०
अग्निविराधनादोष	५६२
अग्निकायोपभोग	५६७
अग्निसमारम्भदोष	५७०
अग्निसमारम्भ में उसके आश्रित अन्य जीवों की हिंसा उपसंहार	५७३ ५७९

विषय-	पृष्ठाङ्क-
उद्देशकसमाप्ति	५८१
पञ्चमोद्देशक ( वनस्पति )	५८२
उपक्रम	५८२
अनगारलक्षण	५८४
वनस्पतिकायसचित्तता ( लक्षणद्वार )	५८६
वनस्पतिप्ररूपणा ( भेद )	५९१
वनस्पतिपरिमाण	६०९
वनस्पतिकायोपमर्दन संसार का हेतु है-	६१२
रूपादि गुण में मूर्च्छा संसार का कारण है-	६१७
रूपादिगुणमूर्च्छादोष	६२१
वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ में तदाश्रित अनेक जीवहिंसा-	६२२
वनस्पतिविराधक साध्वाभास	६२६
उपभोगद्वार	६३०
वनस्पतिविराधनाफल	६३२
मनुष्यशरीर के साथ वनस्पति- की सचित्तता की सिद्धि-	६३६
उपसंहार	६४१
उद्देशसमाप्ति	६४३
षष्ठोद्देश ( त्रसकाय )	६४४
उपक्रम	६४४
त्रसों के भेद	६४५
त्रसकायलक्षण	६५०
त्रसकायप्ररूपणा	६५१
त्रसकायपरिणाम	६५२
प्रत्येक त्रस जीवों के सुख दुःख अलग अलग हैं-	६५४



विषय-	पृष्ठाङ्क-
प्रत्येक दिशा विदिशा में	
पृथिवी आदि आश्रित	
त्रसजीवों को परिताप	
देने से संसार भ्रमण-	६५७
त्रसकाय के समारम्भ में	
अन्य प्राणियों की हिंसा	६५९
त्रसकाय की हिंसा में	
परिज्ञा ( त्रसकायसमारंभदोष )	६६३
उपभोगद्वार	६६४
वेदनाद्वार	६६६
त्रसजीवविराधनाफल	६६७
त्रसजीवहिंसाप्रयोजन	६७०
उपसंहार	६७३
उद्देशसमाप्ति	६७५
सप्तम उद्देश ( वायुकाय )	६७६
वायुकायविराधनविवेक	६७७
वायुकायलक्षण	६८३
वायुकायप्ररूपणा	६८४
वायुकायपरिमाण	६८५
वायुकायशस्त्र	६८६
वायुकाय की हिंसा में षड्जीव-	
निकायरूप लोक की हिंसा	६८९
द्रव्यलिङ्गिकृत वायुकायविराधना	६९०
वायुकायोपभोग	६९३
वायुविराधनादोष	६९६
वायुविराधनापरिहार	७००
मुखवस्त्रिकाविचार	७०४
षड्जनिकायारम्भदोष	७१२
षड्जीवविराधनापरिहार	७१७
प्रथम अध्ययन समाप्ति	७२०

श्रीवीतरागाय नमः



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजीमहाराजविरचिता-  
ऽऽचारचिन्तामणिटीकासमलङ्कृतम्

## आचाराङ्गसूत्रम् ।

[ प्रथमः श्रुतस्कन्धः ]

मङ्गलाचरणम्.

अर्थप्रदं वीरजिनं प्रणम्य,  
लब्धेर्धरं गौतम-माप्तशक्तिम् ।  
गणीश्वरं पूर्वधरं च चित्ते,  
सन्धाय जैनीं गिरमुज्ज्वलन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी

आचारचिन्तामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण

( १ )

भव्य जीवोंके मनोरथ पूर्ण करते जो जुदा,

उन् वीताराग जिनेन्द्र के चरणाम्बुजों से नति सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,  
 प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धयै ।  
 आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,  
 भव्याः सदैनं-हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिग्राहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,  
 अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते है जिन यथा ॥

( २ )

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,  
 मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।  
 निर्दोषतत्त्वनिरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,  
 धरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

( ३ )

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,  
 भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुंफित किये ।  
 मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित है अभी,  
 आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

( ४ )

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपै बाहिरे जाते धरे,  
 'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें धारिता तमको हरे ॥  
 सब भव्यजन संसार वन में घूमते इसको गहे,  
 जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्द्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे पञ्चदशक्षेत्रात्मकनन्दनकानने सम्यक्त्वालवालमध्ये  
आत्मरूपाः कलम्बा विंशतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसलिलेन संवर्द्धिताः सन्त-  
स्तीर्थङ्कस्वरूपा अभिनवकल्पपादपाः प्रादुर्भवन्ति ।

भव्यजीवो के समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री वीर भगवान् को प्रणाम करके,  
तथा विविध प्रकार की लब्धियों के धारक चौदह १४ पूर्वों के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न  
श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण, तथा वास्तविक  
वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उज्ज्वल जिनवाणीको हृदय में धारण करके—

मैं 'घासीलाल' मुनि प्रयत्न करके भव्य पुरुषों की तथा मुनिजनों की इष्टसिद्धि के लिये  
आचाराङ्ग रूप सूत्र (दोरे) में भगवद्भाषित विविध आचाररूप मणियां मालारूपमें पिरोता  
हूँ । भव्यजन इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करें । जडद्रव्यरूप चिन्तामणि हृदय पर  
अर्थात् वक्षःस्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारचिन्तामणि (टीका) हृदय में  
धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

इस अढाई द्वीप के भीतर पन्द्रह कर्मभूमि रूप नन्दनवन में सम्यक्त्वरूप क्यारीमें  
आत्मारूपी कलम्ब, तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के कारणभूत बीस स्थानों की वारंवार आराधना रूपी  
जलसे वृद्धिको प्राप्त होकर तीर्थङ्कररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

आचारांग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकानो गुजराती अनुवाद.  
भंगलाचरण.

भव्य ज्योना तमाम मनोरथ पूर्ण करवावाणा श्री वीर भगवानने प्रणाम करीने,  
तथा विविध प्रकारनी लब्धियोंना धारक, चौद पूर्वोंना ज्ञाता, आध्यात्मिक शक्तिथी सम्पन्न  
श्री गौतम गणधरने नमस्कार करीने सकल दोषोथी रहित होवाना कारणे तथा वास्तविक  
वस्तुस्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणे उज्ज्वल जिनवाणीने हृदयमां धारण करीने—

हूँ घासीलाल मुनि प्रयत्न करीने, भव्य पुरुषो—ज्योनी तथा मुनिजनोंनी इष्ट  
सिद्धि माटे, श्री आचारांगरूप सूत्र (दोरा)मां भगवद्भाषित—विविध आचार रूप  
मणियोने मालारूपमां पिरोवुं हूँ. भव्य मनुष्य तेने उमेशां हृदयमां धारण करे. जडद्रव्य  
रूप चिन्तामणि हृदय पर अर्थात् वक्षस्थल उपर धारण कराय छे. किन्तु आ  
आचारचिन्तामणि (टीका) हृदयमां धारण करवा योग्य छे. २.

आ अढी द्वीपनी अंदर, पंदर कर्मभूमिथी नन्दन-वनमां सम्यक्त्वरूप  
क्यारीमां आत्मरूपी कलम्ब—कलम (उणी), तीर्थंकरगोत्र बांधवामां कारणभूत बीस  
स्थानोंनी वारंवार आराधनाथी जलथी वृद्धि पासीने तीर्थंकररूप नूतन-नवीन  
कल्पवृक्ष उत्पन्न थाय छे.

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा—

(१)—सौन्दर्यम्, (२)—सुगन्धः, (३)—त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)—सप्तधातु-  
पौष्टिकत्वम्, (५)—त्वग्रोमबलकरत्वम्, (६)—हृदयाह्लादकत्वम्, (७)—तापशमनत्वम्,  
(८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्तिकारकत्वम्, (११) वीर्य-  
वर्द्धकत्वम्, (१२)—श्रमहारित्वम्, (१३)—मधुरत्वम्, (१४)—स्निग्धत्वम्, (१५)—  
बहुदलत्वम्, (१६)—विषविनाशकत्वम्, (१७)—मकरन्दधारित्वम्, (१८)—  
व्याधिनाशकत्वम्, (१९)—विकसनशीलत्वम्, (२०)—तृष्णानिवारकत्वम्,

जैसे कल्प वृक्षों के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोमें भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं । दोनोमे समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार हैं—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगन्ध, (३)—त्रिदोषनाशकता, (४)—सप्तधातुपुष्टिकरता,  
(५)—त्वक्—रोम—बलकारित्व, (६) हृदयाह्लादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व,  
(९)—उत्साहकता, (१०)—स्फूर्तिजनकता, (११)—वीर्यवर्धकता, (१२)—श्रमहारित्व, (१३)—  
मधुरता, (१४)—स्निग्धता, (१५)—बहुदलता, (१६)—विषविनाशकता, (१७)—मकरन्द-  
(पुष्परस) धारित्व, (१८)—व्याधिविनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णा-

नेवी रीते कल्पवृक्षोना कूलोभां सौन्दर्यं आदि शुणो हेभाय छे, ते प्रभाणु  
तीर्थङ्करोना वचनोभां पणु सौन्दर्यं आदि तभाम शुणो हेभाय छे. अन्नेभां समान  
रूपथी हेभाता शुणो आ प्रकारना छे—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगंध, (३)—त्रिदोषनाशकपाणुं, (४)—सात धातुनी युष्टि  
करनार, (५)—आमडी, वाण—अणकारीपाणुं, (६)—हृदयने आनंदकारक, (७)—तापनुं शमन  
करवापाणुं, (८)—शोभाकारीपाणुं, (९)—उत्साहकपाणुं, (१०)—स्फूर्तिजनकपाणुं, (११)—  
वीर्यवर्धकपाणुं, (१२)—श्रमनिवारणुपाणुं, (१३)—मधुरता (१४)—स्निग्धता—चिकणु-  
पाणुं, (१५)—अहुदलता, (१६)—विषविनाशकपाणुं, (१७)—मकरंद—पुष्परस—धारकता,  
(१८)—व्याधिविनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णानिवारकता,

(२१) मूर्च्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्ट-  
भावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुकुसुमेषु भगवद्वचनेषु च विद्यते, तथा  
प्रदर्शयामः—

सं. गुणाः	कल्पतरुकुसुमपक्षे	भगवद्वचनपक्षे
१ सौन्दर्यम्	मनोहराकृतिमत्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवत्त्वम्,
२ सुगन्धः	घ्राणेन्द्रियतृप्तिजनकत्वम् ।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्वचन- स्वार्यान्ार्यद्विपदचतुष्पदादीनां

निवारकता, (२१)—मूर्च्छाहारित्वं, (२२)—पथ्यता, (२३) मेध्यता (२४)—उत्कृष्टभावो-  
त्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों मे तथा भगवान् के वचनो में किस प्रकार समानरूप  
से पाये जाते हैं यह बतलाते हैं.

सं. गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवानके वचनोंके पक्षमें ।
(१) सौन्दर्य,	मनोहर आकृति वाला,	माधुर्य और प्रसाद गुण वाला
(२) सुगन्ध,	घ्राणेन्द्रियको तृप्तकरने वाला,	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्य, अनार्य, द्विपद, तथा

(२१)—मूर्च्छानिवारकता, (२२)—पथ्यता, (२३)—मेध्यता, (२४)—उत्कृष्ट भावोत्प-  
त्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

आ पचीस गुणो कल्पवृक्षना कुलोमां तथा भगवानना वचनोमां डेवी रीते  
समानपणुं देखाय छे ते अतावे छे—

सं. गुण	कल्पवृक्षना कुलोना पक्षमां	भगवानना वचनोनापक्षमां
(१) सौन्दर्य,	मनोहर आकृतिवाणा,	मधुर अने मोडक शब्द सौन्दर्य.
(२) सुगन्ध,	नासिकाने तृप्त करनार,	दिव्यध्वनिरूप होवाथी आर्य, अनार्य, जे पगवाणां तथा आर पगवाणां

		स्वस्वभाषापणिगतत्वेन तृप्ति- जनकत्वम् ।
३ त्रिदोषनाशकत्वम् ,	वात-पित्त-कफ नाश- कत्वम् ,	मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीय दोषनाशकत्वम् ।
४ सप्तधातुपौष्टिक- त्वम् ,	रसासृङ्-मांसमेदोऽस्थिम- ज्जाशुक्र-वर्द्धकत्वम् ,	द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नया- भ्यां स्यादस्त्यादिसप्तभङ्गानां पुष्टिकरत्वम् ।

चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा  
में परिणत होजानेके कारण  
तृप्तिकारक ।

(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात पित्त और कफ इन तीन दोषों को दूर करने वाला ।	मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट करने वाला ।
(४) सप्तधातुपौष्टि- कत्व,	रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी और वीर्य, इन सात धातुओं को बढ़ाने वाला ।	द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथंचित् अनित्यता आदि सात भंगों का पोषक ।

लुपेने पोत पोतानी लापामां  
परिणत होवाना क्षरणे  
तृप्तिकारक.

(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात, पित्त अने कफ, आ त्रय दोषोने दूर करवा पाणा	मिथ्यात्व, मिश्र अने सम्य- क्त्व-मोहनीय, आ त्रयुक्तभेदो- नाश करनार
(४) सातधातुने पुष्ट, करवापाणुं	रस, रक्त मांस, मेद, हड्डिकां मज्जा अने वीर्य, आ सात धातुने णववान करनार.	द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक- नयनी अपेक्षाके कथंचित् नित्यता कथंचित् अनित्यता आदि सात भंगोना पोषक

५ त्वग्रोमबलकरत्वम्,	शारीरिकविकारहारक- त्वम्	आत्मवर्तिन आर्त्तरौद्रध्याना- त्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाह्लादकत्वम्,	दर्शनमात्रेण हृदयसुखजन- कत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां प्राणिना- ममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	शैत्यगुणवत्त्वेन तापहारक- त्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कषायानलताप- हारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण द्युतिवर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपू- र्वकमात्मतेजःप्रकाशकत्वम्।

(५) त्वग् रोमबलकरत्व,	शरीरसंबंधी विकार दूर करने वाला।	आत्मा के आर्तध्यान और रौद्रध्यानरूप विकारोका नाशक।
(६) हृदयाह्लादकत्व,	दृष्टि पडते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।	कानमे पडतेही प्राणिमात्र को अत्यन्त आनन्द देने वाला।
(७) तापशमनत्व,	शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।	शान्तरसमय होने के कारण कषायजनित सन्तापको नष्ट करने वाला।
(८) शोभाकारित्व,	आभूषणरूप होने के कारण शोभा बढ़ाने वाला।	मिथ्यात्व आदि की मलीनता दूर करके आत्माका तेज चमकाने वाला।

(५) ग्रामडी अने वाणने अणकारक.	शरीरसंबंधी विकार दूर करनार.	आत्माना आर्त्तध्यान अने रौद्र ध्यानरूप विकारोको नाश करनार
(६) हृदयने आनंदकारी,	दृष्टि पडतां अ हृदयने आनंद आपनार	कानमां पडतां अ प्राणी मात्रने अत्यन्त आनंद आपनार
(७) तापनिवारणु करनार,	शीतल होवाथी सन्ताप हरनार,	शान्तरसमय होवाथी कषाय- जनित सन्तापको नाश करनार.
(८) शोभाकारीपणु,	धरेणुंअप होवाथी शोभा वधारनार	मिथ्यात्व आदिनी मलीनता दूर करीने आत्माना तेजने प्रकाशित करनार.



९ उत्साहकत्वम्,	उत्साहजनकत्वम्,	प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्मा- राधने योगत्रयोत्तेजकत्वम् ।
१० स्फूर्तिकारकत्वम्,	हर्षोत्पादकत्वेन स्वेष्टला- भाय प्रवृत्तिजनकत्वम्,	मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम् ।
११ वीर्यवर्द्धकत्वम्,	सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम्,	तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्ष- कत्वम् ।

(९) उत्साहकत्व,	उत्साह उत्पन्न करने वाला ।	पांच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित करने वाला ।
(१०) स्फूर्तिकारकत्व,	हर्षजनक होने के कारण अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति कराने वाला ।	मोक्ष के लिये पराक्रम फोड़ने की प्रेरणा करने वाला ।
(११) वीर्यवर्धकत्व	सब इन्द्रियो को शक्ति देने वाला ।	तप, और संयम द्वारा आध्या- त्मिक बल बढ़ाने वाला ।

(८) उत्साहकत्वम्.	उत्साह उत्पन्न करनेवाला	पांच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित करानेवाला.
(१०) स्फूर्ति उत्पन्न करवायकत्वम्.	हर्ष उत्पन्न करनेवाला जो प्रेरणा के कारण प्रवृत्ति करानेवाला	मोक्ष के लिये पराक्रम फोड़ने की प्रेरणा करनेवाला.
(११) वीर्यवर्धकत्वम्.	सब इन्द्रियो को शक्ति देनेवाला	तप और संयम द्वारा आध्या- त्मिक बल बढ़ानेवाला.

१२ श्रमहारित्वम् ,	सौगन्ध्यादिविविधगुणोत्कर्षेण तत्तदिन्द्रियाणां शैथिल्यनिवारकत्वम् ,	चतुर्गतिपरिभ्रमणेन श्रान्तानां भवभ्रमणोपरमेण खेदात्यन्तिकविध्वंसकत्वम् ।
१३ मधुरत्वम् ,	मधुररसवत्त्वम् ,	अपूर्वाक्षयशिवसुखानुभवात्मकरसत्वम् ।
१४ स्निग्धत्वम् ,	सुखदस्पर्शकत्वम् ,	श्रवणमात्रेणाऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशं धर्मानुरागजनकत्वम् ।

(१२) श्रमहारित्व,	सुगन्ध आदि अनेक गुणो की अधिकता होनेसे उससे इन्द्रियों की शिथिलता दूर करने वाला ।	चार गतियों में भ्रमण करके थके हुए प्राणियों का भव-भ्रमण मिटाकर उनके खेदको सर्वथा नाश करने वाला ।
(१३) मधुरत्व,	मधुर रस वाला ।	अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी-अनुभूति रस वाला ।
(१४) स्निग्धत्व	चिकनापन ।	कान में पडते ही आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग जगाने वाला ।

(१२) श्रमनिवारणु करवापणुं .	सुगंध आदि अनेक गुणोनी विशेषता होवाथी ते ते ध द्रियोनी शिथिलता दूर करनार	चार गतियोमां भ्रमणु करीने थाकी गथेला श्रवोना लव भ्रमणुने निवारणु करीने तेना जेहनो सर्वथा नाश करनार
(१३) मधुरपणुं .	मधुर रसवाणा .	अपूर्व , अविनाशी मोक्ष सुखना अनुभव रूप रसवाणा
(१४) स्निग्धता .	चिकणुपणुं .	कानमां पडतां ज आत्माना दरेके-दरेके प्रदेशमां धर्मानु-राग जगाउनार

- १५ बहुदलत्वम्, शतपत्रसहस्रपत्रादिरूपेणा-  
ऽधिकपत्रवत्त्वम्, स्वपरसमयस्वरूपप्रदर्शकबहुवि-  
धप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम् ।
- १६ विषविनाशकत्वम्, स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्, विषयवासनाऽपहारकत्वम् ।
- १७ मकरन्दधारित्वम्, परागवत्त्वम्, अनित्यादिभावनाजनितवैरा-  
ग्यवत्त्वम् । (१)

(१५) बहुदलत्व, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे स्वसमय और परसमय के बहुत पत्तोंवाला । स्वरूपका प्रकाशक होने के कारण भांति-भांति के प्रमाण, नय, निक्षेप, आदि से युक्त ।

(१६) विषविनाशकत्व, स्थावर और जङ्गम विष का नाश करने वाला । विषय वासनारूप विषका नाश करने वाला ।

(१७) मकरन्दधारित्व, पुष्परसवाला । अनित्य आदि बारह भावनाओं से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्तरस वाला ।

(१५) बहुदलता. सौ पत्र, छत्तर पत्र आदि रूपकी धनुं पत्रों ( पांढडा ) वाणा स्वरूपना प्रकाशक होवाना कारणे नूही नूही नतना प्रमाण, नय, निक्षेप आदिथी युक्त.

(१६) विषनाशकत्व. स्थावर अने जंगम विषनो नाश करनार विषयवासनाइय विषनो-अरेनो नाश करनार.

(१७) मकरन्द-धारित्व. कुदोना रस वाणा. अनित्य आदि बार लावना-ओथी उत्पन्न वैराग्यजनित शान्तरस प्रगटावनार.

१....वैराग्यवत्त्वम्-प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन ।

- १८ व्याधिनाशकत्वम्, क्षतक्षयादिसकलातङ्कनिवारकत्वम्, सर्वघातिप्रभृतिसकलकर्मनाशकत्वम् ।
- १९ विकसनशीलत्वम्, मुकुलितपत्रस्फुटन स्वभावत्वम्, अनन्तकालप्रसुप्तात्मगुणविकासित्वम् ।
- २० तृष्णानिवारकत्वम्, अभिलाषापहारकत्वम्, विषयाभिलाषनिवर्तकत्वम् ।
- २१ मूर्च्छाहारकत्वम्, नष्टचेष्टानिवारकत्वम्, मोहविनाशकत्वम् ।

(१८) व्याधिनाशकत्व, भय आदि समस्त व्याधियोंको सर्वघाति आदि समस्त कर्मोंका हटानेवाला । नाश करने वाला ।

(१९) विकसनशीलत्व, क्रमशः विकसित होता जानेवाला । अनादिकालसे सोये पडे आत्मा के गुणोंका विकास करनेवाला ।

(२०) तृष्णानिवारकत्व, लालसा हटानेवाला । विषयों की अभिलाषा दूर करने वाला ।

(२१) मूर्च्छाहारकत्व, मूर्च्छा (बेहोशी) मिटाने वाला । मोह का नाशक ।

(१८) व्याधि विनाशक- लय आदि तमाम व्याधियोंने सर्वघाति प्रकृति आदि पाण्डुं. निवारणुं करनार. तमाम कर्मोंने नाश करनार.

(१९) विकासवापाण्डुं क्रमशः विकास पाववावाणा. अनादि कालथी सुता पडेला आत्माना गुणोंने विकास करनार.

(२०) तृष्णानिवारकपाण्डुं. लालस्य हर करनार. विषयोंनी अभिलाषा हर करनार.

(२१) मूर्च्छानिवारकपाण्डुं. बेहोशी मटाडनार मोह नाश करनार

२२ पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	ऐहिकपारत्रिकसुखोत्पादकत्वे- नात्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३ मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४ उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्त- नापनयेन विशुद्धविचारा- ऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनाप- नयनेन तीर्थङ्करगोत्रोपार्जन- योग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२) पथ्यत्व,	हितकर ।	इहलोक और परलोक सम्बन्धी सुखजनक होनेसे आत्मा का अत्यन्त उपकारी ।
(२३) मेध्यत्व,	पवित्रता वाला ।	मिथ्यात्वादि पांच आश्रव रूपी मल से रहित होने के कारण निर्मल ।
(२४) उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्व,	दैन्यशोक आदि से उत्पन्न हुई चिन्ता को दूर करके विशुद्ध विचार उत्पन्न करने वाला ।	विभाव परिणति द्वारा जनित दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के योग्य विशिष्ट भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(२२) पथ्यता.	हितकर.	आ लोक अने परलोक संभंधी सुख उत्पन्न करनेवाली आत्मामें अत्यन्त उपकारी.
(२३) मेध्यता.	पवित्रता करनेवाली.	मिथ्यात्व आदि पांच आश्रव रूपी मल से रहित होवानी कारण निर्मल.
(२४) उत्कृष्टभावो उत्पन्न- करवापछुं.	दैन्यशोक आदिसे उत्पन्न चिन्ता को दूर करके विशुद्ध विचार उत्पन्न करनेवाली.	विभाव परिणति द्वारा उत्पन्न दुर्वासना को दूर करके तीर्थ- ङ्कर गोत्र बांधना योग्य विशिष्ट भावना उत्पन्न करनेवाली.

२५ अवयवसंनिवेश- सकलावयवपूर्णत्वम् , सकलाङ्गोपाङ्गपूर्णत्वम् ।  
विशेषवत्त्वम्

तीर्थङ्करकल्पपादपानां वचनप्रमूनानि गणधराः श्रद्धामूत्रे संग्रन्ध्य गद्य-  
पद्यात्यक्विविधाङ्गोपाङ्गरूपा माला व्यरीरचन् । अथ ता माला हृदये निधाय तत्त-  
द्गतमहत्त्वं स्वात्मनि भावयन्तो भावितात्मानः सन्तो ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मरजोऽप-  
नीय बाधापीडाऽपवर्जितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतिनामधेयं शिवपदं समाश्रयन्ति,  
भवभीरून् भव्यानपि तत्पदं प्रापयन्ति ।

(२५) अवयवसंनिवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण । सब अङ्गों और उपाङ्गोंसे युक्त ।  
विशेषवत्त्व,

तीर्थङ्कररूपी कल्पवृक्षां के वचनरूपी पुष्पों को गणधरोंने श्रद्धारूपी सूतमें गूँथकर गद्य-  
पद्यरूप विविध अङ्गोपाङ्गमय मालाएँ रचीं, उन मालाओं को धारण करके उनकी महत्ता  
का अन्तःकरण में विचार करते हुए भावितात्मा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजको  
हटाते हैं । तथा सब प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिहे पाकर फिर कभी आना नहीं  
पडता, ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं, साथ ही भवभीरु अन्य भव्य जीवों को  
भी उसी पद की प्राप्ति कराते है ।

(२५) अवयवसंनिवेशनुं सर्व अवयवोथी परिपूर्णुं सर्व अंगो अने उपांगोथीयुक्त  
विशेषपणुं

तीर्थं करुपी कल्पवृक्षोना वचनरूप पुष्पोने, गणधरोअे श्रद्धारुपी सूतर-दोराभां  
गुंथी करी गद्य-पद्यरूप विविध अंग-उपांगमय मालाओ रची ते मालाओने हृदयभां  
धारणु करीने, तेनी महत्ताने अंतःकरणुभां विचार करनार भावितात्मा पुरुषज्ञान अने  
क्रिया द्वारा कर्मरजकणुने हर करे छे. तथा सर्व प्रकारनी उपाधि अने पीडाथी रहित,  
नेने प्राप्त करीने करीथी कोठ वमत आववुं पडतुं नथी. अेवी सिद्धिगतिरूप शिवपदने  
प्राप्त करे छे, तेमज लवलीरु अन्य लव्य लुवोने पणु ते पद ( शिवपद )नी प्राप्ति  
करावे छे.

कल्पपादपा हि ऐहिकमेवाध्रुव क्षणभङ्गुरं सुखं प्रदातुमीशते, इमे तु लोकोत्तर-  
मक्षयं शाश्वतं सुखं वितरन्ति । लौकिकसुखं तु सुतरां सिद्धमेव, न पुनस्तत्र  
प्रदानापेक्षेति भावः ।

भगवद्वचनेषु पञ्चत्रिंशद् अतिशया लोकोत्तराः सर्वैरनुभूयन्ते, पञ्चत्रिंशतो-  
ऽतिशयानां समवायाङ्गसूत्रे निर्देशात् । तथा च सूत्रम्—“पणतीसं सच्चवयणाइसेसा  
पणत्ता” इति । पञ्चत्रिंशत् सत्यवचनातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, इति च्छाया । सत्य-  
वचनं — भगवद्वचनं सकलहितकरत्वात्, तस्य अतिशेषाः = अतिशयाः पञ्च-  
त्रिंशत् प्रज्ञप्ताः कथिताः, इत्यर्थः । तत्रैते पञ्चत्रिंशदतिशयाः—परंपरयाऽवगम्यन्ते—

कल्पवृक्ष तो इसी लोकसम्बन्धी सुख दे सकते हैं और वह सुख भी अध्रुव और  
क्षणभङ्गुर होता है, किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् लोकोत्तर अक्षय और शाश्वत सुख प्रदान करते हैं ।  
लौकिक सुख तो किसान के लिये भूसे के समान स्वतः सिद्ध है ही—वह आनुषङ्गिक है ।

भगवान् के वचनों में पैंतीस लोकोत्तर अतिशयों का सभी प्राणियों को अनुभव होता  
है । श्री समवायाङ्गसूत्र में पैंतीस अतिशयों का उल्लेख पाया जाता है । मूल पाठ इस प्रकार  
है—“पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पणत्ता ।”

अर्थात् सत्य वचन के पैंतीस अतिशय—गुण कहे गये हैं ।

कल्पवृक्ष तो आ लोक सम्बन्धी सुख आपी शके छे अने ते सुख पण अध्रुव  
अने क्षणभङ्गुर होय छे, परन्तु तीर्थंकर लगवान लोकोत्तर अक्षय अने शाश्वत—नित्य  
सुख आपेछे, लौकिक सुख तो जेडुत भाटे लुशका ( अनाज विनानां श्रेतरां ) समान  
आलाविड सिद्ध छे.

लगवानना वचनोभां पांत्रीश लोकोत्तर अतिशयोना सर्व प्राणीओने अनुभव  
थाय छे, श्री समवायांग सूत्रमा अे पांत्रीश अतिशयोना उल्लेख जेवामां आवे छे.  
मूल पाठ आ प्रकारे छे— “ पणतीस सच्चवयणाइसेसा पणत्ता ”

अर्थात्—सत्य वचनना पांत्रीश अतिशय गुण कहेवामां आव्या छे. अहि सत्य-  
वचनो अर्थ छे—लगवानना वचन, केमके ते सर्व हित करनार छे. ते वचनोना अतिशय  
अर्थात् सुख पांत्रीश छे. परंपराना नियम प्रमाणे पांत्रीश अतिशय आ प्रमाणे  
मानवामां आव्या छे—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्त-  
त्वम् = श्रोतृसुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राज्ञजनभाषावदश्लीलादि  
दोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवत्त्वम् । (५)  
अनुनादित्वम् = प्रतिशब्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् ।  
(७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोशरागः  
प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचनं  
द्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग-

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन, क्योंकि वे सबके हित करने वाले  
हैं । उन वचनों के—वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैतीस हैं । परम्परा के अनुसार वाणीके  
पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन आदि से युक्त होना (२)  
उदात्तता—श्रोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता—गँवारो की भाषा में पाये  
जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित । (४) गंभीरध्वनित्व—मेघकी समान गम्भीर नाद  
होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिसे युक्त होना । (६) दक्षिणता—सरलता । (७)  
उपनीतरागवत्त्व—मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे— मालकोश राग पाषाण  
को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला  
देते हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बड़े ही हृदयद्रावक होते हैं ।  
(८) महार्थता—भगवान् के वचन मोक्ष—मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, वचन आदिथी युक्त भनवु . (२) उदात्तता—  
श्रोताओं भाटे सुगम. (३) उपचारोपेतता—भूर्ध—गंली माणुसोनी भाषामां नेवामां  
आवता अश्लील—भराभ, शरभ आवे तेवा भाषाना दोषो रहित. (४) गंभीरध्वनित्व—मेघना  
नेवो गंभीर शब्द. (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनि युक्त होवुं (पउधाइप थवुं). (६) दक्षिणता—  
सरलता (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग नेवो गुणु होवु . अर्थात्—नेवी रीते  
मालकोश राग पश्चरने पणु पिगणावी हे छे. ते प्रमाणे भगवानना वचनो कठोर हृदय-  
वाणा भाणुसने पणु पिगलावी हे छे, तात्पर्य अे छे के—भगवानना वचन महान हृदय  
द्रावक होय छे. (८) महार्थता—भगवानना वचन मोक्षमार्गनुं प्रतिपादन करनारा छे  
तेथी महत्वपूर्ण अने अर्थथी युक्त होय छे. (९) अव्याहतपौर्वापर्य—पूर्वापर



प्रतिपादकत्वेन महत्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहृतपौर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-  
 विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्वम् । (११) असं-  
 दिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२)  
 अपहतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३)  
 हृदयग्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकाला-  
 व्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षित-  
 वस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्गं विना-  
 न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थानां वा

सं युक्त होते हैं । (९) अव्याहृतपौर्वापर्य-पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०)  
 शिष्टता-शिष्ट पुरुषो द्वारा स्वीकृत तत्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता-अभिधेय  
 अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहता-  
 न्योत्तरत्व-समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल  
 सकते । (१३) हृदयग्राहित्व-समस्त श्रोतागणों के हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशका-  
 लाव्यतीतत्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित  
 वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व-

विशेषार्थी उद्धृत होय छे. (१०) शिष्ट पुरुषो द्वारा स्वीकारेला तत्त्वने बोध करावे छे  
 (११) असंदिग्धता-अभिधेय-वाक्यार्थानु स्पष्ट रूपती प्रतिपादन करवाना कारणे संशय  
 उत्पन्न थतो नथी (१२) अपहृतान्योत्तरत्व-समस्त गुणोथी युक्त होवाथी भीज पक्षना  
 वादीनेमा कोरि पक्ष प्रकरने होय कठी शकता नथी. (१३) हृदयग्राहित्व-समाप्त श्रोता-  
 वर्गना हृदयने उल्लु उन्वावाणा (१४) देशकालाव्यतीत्व-द्रव्य, क्षेत्र काल अने  
 भावने अनुकूल. (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित-वस्तु ओटवे होलवा माटे मनमां नक्षी  
 करेले, तेना द्रव्य अने पर्यायना स्वरूपने प्रकाशित करवावाणा. (१६) अप्रकीर्ण-प्रसृतत्व  
 प्रसंग विना विस्तार उद्धृत नहिं करेले, तथा संक्षेपमां नहिं करेले (१७) अन्योन्य  
 प्रगृहीतत्व-पूर्वापर पदोनी अने अर्थोनी अपेक्षा शकवा वाणा, अर्थात् प्रकरणे संगत.

पूर्वापरसापेक्षत्वम् । (१८)-अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि जीवादिस्वरूपस्य चाक्षुष-  
प्रत्यक्षीकरणवत्प्रतिपादकत्वम् । (१९)-अतिस्निग्धमधुरत्वम्=अमृतवत्तृप्तिजनकत्वम् ।  
(२०)-अपरमर्मवेधित्वम् = परमर्मोद्धाटनरहितत्वम् । (२१)-अर्थधर्माभ्यासान-  
पेतत्वम्=पारमार्थिकार्थधर्मबोधकत्वम् (२२)-उदारत्वम्=सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं,  
तुच्छार्थानभिधायकत्वं वा । (२३)-परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्वम् = परोत्क्षेपात्म-  
प्रशंसाहीनत्वम् (२४)-उपगतश्लाघत्वम् = सकलहितकरत्वेन समादृतत्वम् (२५)-

प्रसङ्ग के बिना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना, (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व  
पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले, अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभि-  
जातता - जीव आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले  
जैसे कि आंखों से देख रहे हों, (१९) अतिस्निग्धमधुरता - अमृत के समान  
तृप्तिकारक, (२०) अपरमर्मवेधित्व - दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा  
प्रतिपक्षियों के मर्म ( हेतुओं एवं युक्तियों ) का निराकरण करने वाले, (२१) अर्थ-  
धर्माभ्यासानपेतता - परमार्थ अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध  
कराने वाले, (२२) उदारता - प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का  
प्रतिपादन न करने वाले, (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता - परनिन्दा और  
आत्मप्रशंसा रहित, (२४) उपगतश्लाघत्व - सर्वहितकारी होने के कारण सभी

(१८) अलिङ्गता—शुभ आदि तत्त्वोना अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपनुं पणु अेटलुं स्पष्ट  
निर्णयु करवावाणा नेभके नेत्रथी नेध रहा डोय. (१९) अतिस्निग्धमधुरता—अमृत  
समान तृप्ति करवा वाणा. (२०) अपरमर्मवेधित्व—धीनना मर्मने प्रगट नहि  
करवा वाणा, अथवा प्रतिपक्षीयोना मर्म ( हेतुयो-युक्तियो ) नुं निराकरण—करवा  
वाणा. (२१) अर्थधर्माभ्यासानपेतता—परमार्थ—अर्थात् मोक्ष तथा मोक्षना साधनरूप  
धर्मनेो बोध करवावाणा. (२२) उदारता—प्राणीमात्रनुं कल्याणु करवा करवावाणा, अथवा  
तुच्छ अर्थोनुं प्रतिपादन नहि करवा वाणा (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता—पर  
निन्दा अने आत्मप्रशंसाथी रहित (२४) उपगतश्लाघत्व—सर्वहितकारी डोवाने

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकटुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)—उत्पादिताच्छिन्नकौतू-  
हलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलाषजनकत्वम् । (२७)—  
अद्भुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम् । (२८)—अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यापरिसमाप्तौ  
विश्रामरहितत्वम् । (२९)—विभ्रमविक्षेपरोषावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः,  
विक्षेपः=विवक्षितार्थं प्रत्यनासक्तता, रोषावेशः=क्रोधावेगस्तैर्विमुक्तत्वम् । (३०)—  
विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम् । (३१)—आहितविशेषत्वम्  
=द्रव्य-पर्याय-विशेषप्रतिपादकत्वम् । (३२)—साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व — कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित,  
(२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व — नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण वार  
वार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्—भगवानके वचनको वार वार सुनने की  
इच्छा होती है । (२७) अद्भुतत्व—शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व—बहुत विलम्ब  
से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए बिना ही  
बोले जाने वाले । (२९) विभ्रम—विक्षेप—रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप  
अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०)  
विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर,  
(३१) आहितविशेषता — द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

कारणें सर्वत्र भाटे उपादेय—अद्भुत करवा योग्य. (२५) अनपनीतत्व—ज्ञानने अग्रिय  
लागे अथवा दोषाधी रहित. (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व—नवा-नवा अर्थनुं निरूपणं  
करवाना कारणें वारंवार सांलणवानी अलिदाषा उत्पन्न करवावाणा, अर्थात् भगवानना  
वचनने वारंवार सांलणवा अलिदाषा—अद्भुत थाय छे, (२७) अद्भुतत्व—शीघ्रताधी रहित  
(२८) अनतिविलम्बितत्व—अद्भुत विलम्बिणी उच्चारण नहि करवावाणा, अर्थात्—वाक्य  
समाप्त तथा पडेलां विश्राम दीधा विना अलिदाषावाणा. (२९) विभ्रम—विक्षेप—रोषा-  
वेशादिरहितत्व—विभ्रम अर्थात्—भ्रान्ति, विक्षेप—अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु तरङ्ग गद्गलत,  
रोष—अर्थात् क्रोधना आवेशधी रहित (३०) विचित्रता—वर्णन करवा योग्य वस्तुना  
स्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणें लोकोत्तर (३१) आहितविशेषता—द्रव्य अने पर्यायनी

प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम् । (३३)—सत्त्वपरिगृहीतत्वम्=उत्पादव्ययघ्नौव्य-  
युक्तसत्तयाऽर्थप्रकाशकत्वम् । (३४)—अपरिखेदितत्वम् = स्वपरखेदानुत्पादकत्वम् ।  
(३५)—अव्युच्छेदित्वम् = वर्णनीयपदार्थनिर्णयं यावदविच्छिन्नत्वम् ।

वृद्धसंप्रदायविद्धिरप्युक्तम्—

(१)—सकारवत्तं, (२)—उदत्तं, (३)—उवयारोवेयत्तं (४)—गंभीरञ्जुणितं,  
(५)—अणुणादितं, (६)—दक्खिणत्तं, (७)—उवणीयरगतं, (८)—महत्थत्तं, (९)—  
अव्वाहयपुव्वावज्जत्तं, (१०)—सिद्धत्तं, (११)—असंदिद्धत्तं, (१२)—अवहरियअनुत्तरत्तं,  
(१३)—हिययग्गाहितं, (१४)—देसकालअव्वईयत्तं, (१५)—तत्ताणुरूवत्तं, (१६)—  
अण्णपइण्णसरियत्तं, (१७)—अन्नुन्नप्पगहीयत्तं, (१८)—अहिजायत्तं, (१९)—अइणिद्ध-  
महुरत्तं, (२०)—अवरमम्मवेहितं, (२१)—अत्थधम्मव्भासाणवेयत्तं, (२२)—उयारत्तं,  
(२३)—परनिंदाअप्पुक्करिसविप्पजुत्तत्तं, (२४)—उवगयसिलाघत्तं, (२५)—अणवणीयत्तं,  
(२६)—उप्पाइयच्छिन्नकोउहलत्तं, (२७)—अदुयत्तं, (२८)—अणइविलंविद्यत्तं, (२९)—  
विब्भमविक्खेवरोसावेसाइराहिच्चं, (३०)—विचित्तं, (३१)—आहियविसेसत्तं, (३२)—  
सागारत्तं, (३३)—सत्तपरिगृहीयत्तं, (३४)—अपरिखेइयत्तं, (३५)—अव्वुच्छेइत्तं ।

(३२) साकारता—हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का साक्षात्कार कराने वाले, (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—उत्पाद व्यय और घ्नौव्यमय सत्ता के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व—स्व को और पर को खेद न पहुँचाने वाले, (३५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए विना न रुकने वाले, अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले ।

विशेषतानुं प्रतिपादन करवा वाणा (३२) साकारता—हेतु, कारण आदि वडे स्पष्ट रूपथी प्रकाशित करीने पदार्थानो साक्षात्कार करवावा वाणा. (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—उत्पाद, व्यय, अने घ्नौव्य-मय सत्ताना रूपमां अर्थाना प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व योताने अने पारकाने खेद नडि पडोयाउनार (३५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषयनो निर्णय थया, विना नडि अटकनारा, अर्थात् विवक्षित वस्तुनो पूर्ण निर्णय करवा वाणा.

भगवद्वचनानि चतुर्विधेऽनुयोगे प्रविभक्तानि, स चेत्यम्—

(१)—चरणकरणानुयोगः, (२)—धर्मकथानुयोगः, (३)—गणितानुयोगः, (४)—द्रव्यानुयोगश्च ।

युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः = गणधरकथनरूपः, अनु = अनुकूलो योगोऽनुयोगः । भगवद्वचनानुरूपा गणधरोक्तिरित्यर्थः । (१)

(१) अथ चरणकरणानुयोगः—

(१) चर्यते = गम्यते = प्राप्यते भवोदधेः परं कूलं चतुर्दशगुणस्थाना-

भगवान् के वचनों में ये पैंतीस अतिशय अर्थात् गुण होते हैं । प्राचीन आचार्यों ने भी कहा है —‘सक्कारवत्तं’ इत्यादि ३५ ।

(वाणी के पैंतीस गुण पहले कह चुके हैं अतः यहाँ इनका अर्थ कहने की आवश्यकता नहीं ।

भगवान् के वचन चार अनुयोगों में विभक्त हैं । चार अनुयोग ये हैं :—

१ चरणकरणानुयोग, २ धर्मकथानुयोग, ३ गणितानुयोग, और ४ द्रव्यानुयोग ।

भगवानके वचनों के अनुकूल गणधरों का व्याख्यान अनुयोग कहलाता है ।

(१) चरणकरणानुयोग—

जिसके द्वारा भव-सागर का किनारा अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया जाय

भगवानना वचनोभां आ प्रभाणु पांत्रीश अतिशय अर्थात्-गुणु डोय छे. प्राचीन आचार्योंके पणु कहुं छे:- “सक्कारवत्तं” इत्यादि उप. (पांत्रीश वाणीना गुणु पडेला कही गया छीअे नेथी अडिं अेना अर्थ कडेवानी आवश्यकता नथी.)

भगवानना वचन आर अनुयोगोभां वडेअयेला छे. आर अनुयोग आ छे- (१) अरणुकरणानुयोग. (२) धर्मकथानुयोग, (३) गणितानुयोग अने (४) द्रव्यानुयोग.

भगवान-द्वारा प्ररूपित अर्थनी साथे गणधरोना वचनो योग डोय ते अनुयोग कडेवाय छे, तात्पर्य अे छे के:-भगवानना वचनोने अनुकूल गणधरोअे करेखुं व्याख्यान ते अनुयोग कडेवाय छे.

(१) अरणुकरणानुयोग—

नेनाथी भवसागरना किनारो अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त करी सकाय, तेने अर्थात् भूखणुने ‘अरणु’ कडे छे, अथवा व्रत आदि अरणु कडेवाय छे. ते सिक्तेर (७०) छे. कहुं पणु छे—

वस्थास्वरूपमनेनेति चरणं = मूलगुणरूपम् । यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्तति-संख्यकम्, उक्तञ्च—

“ वयं समणधम्म१० संजम१७, वेयावच्चं१० च बंभगुत्तीओ ९ ।  
णाणाइतियं३ तव१२ कोहनिग्गहाई४ चरणमेयं ॥ १ ॥ ” इति ।

क्रियते चरणस्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम् । यद्वा करणं=पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्ततिसंख्यकम्, उक्तञ्च—

उसे अर्थात् मूलगुणको 'चरण' कहते हैं । अथवा व्रत आदि 'चरण' कहलाते हैं । वे ७० सत्तर हैं । कहा भी है —

पांच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, सत्रह संयम, दश वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियां, रत्नत्रय—(सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र), बारह प्रकारका तप, चार क्रोधादि-विजय—(क्रोधविजय, मायाविजय, मानविजय, लोभविजय), यह ७० सत्तर प्रकारका 'चरण' कहलाता है ।

चरण को पुष्टि करने वाला 'करण' कहलाता है । करण का अभिप्राय है—उत्तर गुण । अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं । इसके भी सत्तर ७० भेद हैं । कहा भी है :—

पांच महाव्रत, दस श्रमणधर्म, सत्तर संयम, दश वैयावृत्य, नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तियां, रत्नत्रय—(सम्यग्ज्ञान, दर्शन अने चारित्र) बार प्रकारको तप, चार क्रोधादिविजय,—(क्रोधविजय, मानविजय, मायाविजय, लोभविजय) आ प्रमाणे सित्तेर (७०) प्रकारना अरणु कडेवाय छे. ॥ १ ॥

अरणुनी पुष्टि करवा वाणा करणु कडेवाय छे. करणुनो अलिप्राय छे—उत्तर गुण, अथवा पिण्डविशुद्धि आदिने करणु कडे छे, तेना पणु सित्तेर भेद छे. कहुं पणु छे —

“પિંડવિસોઠી૪-સમિર્દ૫, ભાવણ૧૨ પડિમા૧૨ ચ ઇન્દ્રિયનિરોહો૫ ।  
પડિલેહણ૨૫ ગુત્તીઓ૩, અભિગ્રહા૪ ચેવ કરણં તુ ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

તયોરનુયોગશ્ચરણકરણાનુયોગઃ (૧) ।

ધર્મકથાનુયોગાદયશ્ચરણકરણયોર્ભવ્યજીવાન્ પ્રવર્તયન્તીતિ તેષાં ચરણ-  
કરણાન્નતયા પ્રાધાન્યમેતસ્યાનુયોગસ્ય, અત એવાસ્ય પ્રાથમ્યમ્ । ઉક્તશ્ચ—  
આત્મન્ । જાનીહિ પૂર્વ ચરણકરણયોરાશ્રયે યન્મહત્ત્વં,  
મોહં દૂરીકરોતિ પ્રકટયતિ પરં નિશ્ચયાત્મસ્વરૂપમ્ ।

“ ચાર પિંડવિશુદ્ધિ, પાંચ સમિતિયાં, વારહ ભાવના, વારહ પડિમા, પાંચ  
ઇન્દ્રિયનિરોધ, પચીસ પ્રતિલેખના, ત્રીસ ગુપ્તિયાં, ચાર અભિગ્રહ, યહ સત્તર ૭૦ પ્રકારકા કરણ  
કહલાતા હૈ ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल  
व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र  
सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

ધર્મકથાનુયોગ આદિ શેષ ત્રીસ અનુયોગ ભવ્યજીવોં કો ચરણ ઓર કરણ મેં  
પ્રવૃત્ત કરતે હૈ, અતઃ વે ઇસી અનુયોગ કે અન્ન હૈ । ઇસ પ્રકાર ચારોં અનુયોગો મેં  
ચરણકરણાનુયોગ હી પ્રધાન હૈ । પ્રધાન હોને કે કારણ હી ઇસ કી ગણના સર્વપ્રથમ કી ગઈ  
હૈ । કહા મી હૈ—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को  
निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

“ચાર પિંડવિશુદ્ધિ, પાંચ સમિતિઓ, બાર ભાવના, બાર પડિમા, પાંચ ઇન્દ્રિય  
નિરોધ, પચીસ પ્રતિલેખના, ત્રણ ગુપ્તિઓ, ચાર અભિગ્રહ, આ સર્વ કરણ  
કહેવાય છે.” ॥ ૧ ॥

આ પ્રમાણે ચરણ અને કરણના અનુયોગને અર્થાત ભગવાનની વાણીને અનુકૂલ  
વ્યાખ્યાનને ચરણકરણાનુયોગ કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જે શાસ્ત્રમાં ચારિત્રસમ્બન્ધી  
નિરૂપણ છે તે ચરણકરણાનુયોગ સમજવું જોઈએ.

ધર્મકથાનુયોગ આદિ બાકીના ત્રણ અનુયોગ ભવ્ય જીવોને ચરણ અને કરણમાં  
પ્રવૃત્ત કરે છે; તેટલા માટે તે પણ એ અનુયોગનું અંગ છે. આ પ્રકારે ચારેય અનુયો-  
ગોમાં ચરણકરણાનુયોગ પ્રધાન-મુખ્ય છે.

મુખ્ય હોવાના કારણે જ તેની ગણના સૌથી પ્રથમ કરી છે. કહ્યું પણ છે:—

“હે આત્મન્ ! ચરણ અને કરણમાં જે મહત્ત્વ છે, તેને પ્રથમ સમજ લે, તે

आधारोऽयं गुणानामपनयति सदाऽनादिमिथ्यात्वदोषं,

हेतुर्योऽयं विशुद्धेर्दमयति नितरामिन्द्रियाणि द्रुतं यः ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानस्य दाता शिवसुखजनकः कर्मधूलेश्च हर्ता,

कर्ता विद्योतनस्याऽऽत्मनि सकलगुणस्याऽद्वितीयः प्रकाशः ।

आत्मन्नेवात्मनीनश्रवणकरणयोरश्रयः काऽत्र शङ्का ?

शङ्कारो नैष लोकः परिणतिविरसः किं सुखाशां करोषि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकथानुयोगः—

भवजलनिधौ निपतन्तं भव्यजातं धारयति=तरिखि तारयति शुभस्थानं प्रापयतीति धर्मः, तस्य कथा भगवद्देशनालक्षणो वाक्यप्रबन्धः धर्मकथा । -अहिंसा-दिप्ररूपणा वा धर्मकथा । अथवा श्रुतचारित्रलक्षणधर्मप्रधानकथा-धर्मकथा । -यद्वा

गुणों का आधार है, और अनादिकालीन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विशुद्धि का कारण है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान का दाता है, मोक्षसुख उत्पन्न करने वाला है, कर्मरूपी धूलको दूर करने वाला है, आत्मामें उद्योत-प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय प्रकाशक है, हे आत्मन् ! चरण और करण का आश्रय लाभकारी है, इस विषयमें शंका को स्थान ही कहां है ? अर्थात् निश्चितरूपसे ही वह कल्याण करने वाला है, यह लोक (संसार) तो परिणाम में एकदम नीरस है, तू इस से सुख की अभिलाषा क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए भव्य जीवों को धारण करनेवाला—नौका के समान

मोड़नुं निवारणुं करे छे, आत्माना निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वयंने प्रगट करे छे, ते सर्व गुणोने आधार अने अनादि कालना मिथ्यात्व दोषने हर करे छे, विशुद्धिनुं करणुं अने इन्द्रियोना शीघ्र दमन भाटे ते सहायक छे ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान हेनार छे अने मोक्षसुख उत्पन्न करवावाणुं छे. कर्मरूपी धूलने हर करवावाणुं छे. आत्मां उद्योत-प्रकाश करवा वाणुं छे. अने समस्त गुणोने अद्वितीय प्रकाशक छे. हे आत्मन् ! चरण अने करणो आश्रय कल्याणकारी छे, आ विषयमां शंकाने स्थान न कथां छे ? अर्थात् निश्चित रूपी न ते कल्याणुं करवा-वाणुं छे, आ लोक (संसार) तो परिणामे एकदम नीरस-रसरहित छे, तुं तेमां सुभनी अलिहाषा शा भाटे करे छे ? ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमां डुबता भव्य जीवोने धारणुं करवावाणी, वहाणुं प्रभाणुं



શુભાશુભકર્મવિપાકોપદર્શનં ધર્મકથા । કિञ્ચ - તિર્થઙ્કરચક્રવર્ત્યાદિચારિત્રવર્ણનં ધર્મકથા । તસ્યા અનુયોગઃ ધર્મકથાનુયોગઃ ।

ધર્મકથા ચતુર્વિધા—(૧)-આક્ષેપણી-(૨)-વિક્ષેપણી- (૩)-સંવેદની-(૪)-નિર્વેદનીભેદાત્ ।

આક્ષેપણ્યાદિધર્મકથાભિરાક્ષિપ્તાઃ વિક્ષિપ્તાઃ સંવેદિતા નિર્વેદિતાઃ સન્તો ભવ્યપ્રાણિનશ્ચારિત્રં પ્રાપ્નુવન્તિ ।

કિનારે લગાદેને વાલા, અર્થાત્ શુભસ્થાનમેં પહુંચા દેનેવાલા ધર્મ કહલાતા હૈ ।

ઉસ ધર્મ કી કથા અર્થાત્ ભગવાન કી દેશના જિસમેં પાઈ જાય ઉસે ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા અહિંસા આદિ કી પ્રરૂપણા ધર્મકથા કહલાતી હૈ । અથવા શ્રુત ઓર ચારિત્ર કી પ્રધાનતા વાલી કથા કો ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા શુભ ઓર અશુભ કર્મફલ કો પ્રકાશ કરના ધર્મકથા હૈ । યા તીર્થઙ્કર ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરુષોં કા ચરિત્ર વર્ણન કરના ધર્મકથા હૈ । ઉસકે અનુયોગ-વ્યાખ્યાન કો ધર્મકથાનુયોગ કહતે હૈં ।

ધર્મકથા ચાર પ્રકાર કી હૈ:—(૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની ઓર (૪) નિર્વેદની ।

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓં સે આક્ષિપ્ત સંવેદિત ઓર નિર્વેદિત (વિરક્ત) હુએ ભવ્ય જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરતે હૈં ।

કિનારે લઈ જનારી, અર્થાત્ શુભ સ્થાનમાં પહોંચાડી દેવા વાળી વસ્તુને ધર્મ કહેવામાં આવે છે. તે ધર્મની કથા અર્થાત્ ભગવાનનો ઉપદેશ જેમાં જેવામાં આવે છે. તેને ધર્મકથા કહે છે. અથવા અહિંસા આદિની પ્રરૂપણા તે ધર્મકથા કહેવાય છે. અથવા તે શ્રુત અને ચારિત્રની પ્રધાનતાવાળી કથાને ધર્મકથા કહે છે, અથવા શુભ અને અશુભ કર્મ-ફલને પ્રગટ કરવું તે ધર્મકથા છે. અથવા તીર્થંકર, ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરુષોના ચરિત્રનું વર્ણન કરવું તે ધર્મકથા છે. તેનાં અનુયોગ-વ્યાખ્યાનને ધર્મકથાનુયોગ કહે છે.

ધર્મકથા ચાર પ્રકારની છે. (૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની અને (૪) નિર્વેદની.

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓથી આક્ષિપ્ત, વિક્ષિપ્ત, સંવેદિત અને નિર્વેદિત (વિરક્ત) થયેલા ભવ્ય જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે.

(१) आक्षेपणी—

आक्षिप्यते=मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति-आक्षेपणी,  
उक्तञ्च—

“स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, यया साऽऽक्षेपणी कथा ।  
यथेषुकारं कमला,—वती धर्मे व्यतिष्ठिपत् ॥ १ ॥”

बाल्यावस्थतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको भृगुपुरोहितः सर्वस्वं परिहाय दीक्षार्थं  
सदनान्घ्निर्ययौ । तदीयं सकलं वसु परिगृहीतं पत्येति विदित्वा कमलावती राज्ञी  
वैराग्यमुपगता स्वपतिमिषुकारं नृपतिं प्रत्यबोधयत् । ‘राजन् ! किं वान्ताशिवद्

(१) आक्षेपणी

जिस कथा के द्वारा श्रोता मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, वह  
आक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है, कहा भी है —

“जिस के द्वारा श्रोता सन्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते  
हैं । जैसे कमलावतीने इषुकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥”

छोटी उम्र वाले अपने दो बालकों के साथ पत्नीसहित भृगु पुरोहित सर्वस्व त्याग  
कर दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला । उस पुरोहित का समस्त धन मेरे  
पति (राजा) ने ले लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और  
उसने अपने पति राजा इषुकार को समझाया—“महाराज ! जिस धनका भृगु पुरोहित ने

(१) आक्षेपणी—

जो कथाद्वारा श्रोता मोहथी डुकी बंधने चारित्र तरङ्ग आकर्षित थाय छे ते  
आक्षेपणी धर्मकथा कहेवाय छे. कहुं पणु छे:—

“जेनाथी श्रोताने सन्मार्गमां स्थापित करी शकय छे तेने आक्षेपणी कथा  
कहे छे, जेवी रीते कमलावतीजे इषुकारने धर्ममां स्थिर कर्यो. ॥ १ ॥

नानी उमरवाणा पोताना जे भाण्डोनी साथे तथा पत्नी सहित लृगु पुरोहित  
सर्वस्व त्याग करीने दीक्षा ग्रहण करवा भाटे पोताना घेरथी नीकल्या, ते पुरोहितनुं  
तमाभ धन भारा पति (राज) जे लछ लीधुं छे. जेवुं जणुने राणी कमलावतीने  
वैराग्य उत्पन्न थछ गयो जने तेजे पोताना पति राज इषुकारने समज्जव्या—

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातप्रतिबोध इषुकारः कमलावती च दीक्षार्थं सहैव निष्क्रान्तौ ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी । उक्तञ्च—

“सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।  
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम्” ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते है ?” इत्यादि । इषुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद से हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती हैं । कहा भी है —

“भडाराज ! ते धनने लुशु युरेडिते वमन करी नाभ्युं छे ते धनने आप लोगवशे ? आप वमननुं सेवन करवावाणानी चेठे लोगनी लालसा शा भाटे करे छे ?” इत्यादि

राज इषुकार पोते कमलावतीना वचन सांलणतां न वैराग्य पास्या अने राज तथा सखी अन्ने साथे-साथे दीक्षा ग्रहण करी. ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद, अथवा सत्यसिद्धांतना शुश्रुतुं दिग्दर्शन करानीने श्रोताओंने मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवादथी हर करवनारी कथा ते विक्षेपणी कथा छेवाय छे. कथुं पणु छे:—

केशिश्रमणतः करुणारसपरिपूर्णमास्तिकतावादमाकर्ण्य प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकतावादं परित्यज्य द्वादशव्रतधारी श्रावको भूत्वा मृत्वा च प्रथमकल्पे सूर्याभ-  
नामा देवो बभूव ।

### (३) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलाष उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी ।

उक्तञ्च—

“ यस्याः श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते ।

संवेदनी यथा मल्ली, षड् वृषान् प्रत्यवोधयत् ॥३॥ ”

“ सम्यग्वाद का उत्कर्ष दिखला कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामान्यता का खण्डन करने वाली विक्षेपणी कथा है। जैसे—केशी श्रमणने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाया था ” ॥ २ ॥

श्री केशी श्रमण के श्रीमुखसे करुणा—रस से परिपूर्ण आस्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बारह व्रतधारी श्रावक हो कर मरकर प्रथम सौधर्म कल्पमें सूर्याभ नामक देव हुआ ।

### (३) संवेदनी

जो धर्मकथा संसार की असारता प्रदर्शित करके मध्य जीवों में मोक्षकी अभिलाषा जागृत करती है, वह संवेदनी धर्मकथा है। कहा भी है—

“ सम्यग्वादनो उत्कर्षं अतावीने मिथ्यावाद् अर्थात् मिथ्या मान्यतानुं अंडन करवावाणी विक्षेपणी कथा छे. जेवी रीते केशी श्रमणुे प्रदेशी राजने मिथ्यावाद्दी मुक्त कर्या हुता. ॥ २ ॥ ”

श्री केशी श्रमणना श्रीमुखथी कश्णारसथी परिपूर्ण आस्तिकवाद् सांलणीने प्रदेशी नामना राजने नास्तिकवाद् त्याग कर्यो, बार व्रतधारी श्रावक थधने भूरीने प्रथम सौधर्मकल्पमां सूर्याभ नामना देव थया.

### (३) संवेदनी

जे कथा संसारनी असारता अतावीने लव्यलुवोमां मोक्षनी अलिदाषा अत्रत करे छे, ते संवेदनी धर्मकथा छे. कहुं पणु छे:—

मल्लीकुमारी षड् भूमिपालान् स्वस्मिन्ननुरक्तान् विज्ञाय, तेभ्यः संसारा-  
सारतां प्रदर्श्य मोक्षाभिलाषं जनयामास ।

### (४) निर्वेदनी—

निर्वेद्यते=विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—

“ यदाऽऽकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते ।

निर्वेदनी यथा शालि,—भद्रो वीरेण बोधितः ” ॥ ४ ॥

“ जिस कथा को श्रवण करने मात्र से ही मोक्ष की आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है, वह संवेदनी धर्मकथा है । जैसे—मल्ली नामक राजकन्याने छह राजाओं को बोध दिया ” ॥३॥

छह राजा मेरे उपर अनुरक्त है, यह जानकर मल्लीकुमारीने उन्हें संसारकी निःसारता समझाई और उन में मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न कर दी । मल्ली कुमारी का वह उपदेश संवेदनी धर्मकथा है ॥ ३ ॥

### (४) निर्वेदनी

जो कथा श्रोताओं को विषयभोगसे विरक्त बनाती है, वह निर्वेदनी धर्मकथा कहलाती है । कहा भी है :—

“ जिसका श्रवण करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वह निर्वेदनी धर्मकथा है । जैसे भगवान् महावीरने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया ” ॥ ४ ॥

“ जे कथा सांलणवामात्रथी न मोक्षनी धर्येण उत्पन्न थाय छे ते संवेदनी धर्मकथा छे. जेवी रीते मल्ली नामनी राजकन्याये छ राजाओंने बोध आये. ॥३॥”

छ राजा मारा उपर आसक्त-प्रेमवाणा छे. जेवुं नालीने मल्ली कुमारीये तेओने संसारनी निःसारता समजवी अने तेओमां मुक्तिनी अभिलाषा उत्पन्न करी, मल्लीकुमारीने ते उपदेश संवेदनी धर्मकथा छे.

### (४) निर्वेदनी

जे कथा श्रोताओने विषय लोगथी विरक्त बनावे छे ते निर्वेदनी कहेवाय छे. कथुं यथुं छे:—

“ जेनुं श्रवणु करतां न वैराग्य उत्पन्न थाय छे, ते निर्वेदनी धर्मकथा छे जेवी रीते भगवान् महावीरे शालिभद्रने प्रतिबोध आये. ॥ ४ ॥”

कमलकोमलकान्ताकारः शालिभद्रकुमारः श्रीमहावीरतीर्थङ्करकथितधर्मदेशना-  
श्रवणसमनन्तरं त्वरया वैराग्यमुपगतचारित्रं प्राप । उक्तञ्च—

“भवस्य सर्वे क्षणभङ्गुरं सुखं,  
विदन्ति ये धर्मकथानुरागिणः ।  
विहाय ते भोगमनन्तदुःखदं,  
चरन्ति चारित्रवने विरागिणः” ॥ ४ ॥

उत्तराध्ययनसूत्रस्यैकोनत्रिंशोऽध्ययने धर्मकथाफलमाह—

“ धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? । धम्मकहाए णं जीवे निज्जरं  
जणयइ । धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ । पवयणपभावणेणं जीवे आगमेसस्स  
भदत्ताए कम्मं निबंधइ । ”

कमल के समान कोमल और कान्तिमान आकृति वाला शालिभद्र कुमार श्री महावीर  
भगवान् को धर्मदेशना सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हुआ, और उसने चारित्र धारण कर लिया ।  
कहा भी है :—

“ धर्मकथा में अनुराग रखने वाले जो पुरुष संसार के सुख क्षणभङ्गुर समझ लेते  
हैं, वे अनन्त दुःख देने वाले भोगका त्याग करके, विरागी हो कर चारित्ररूपी बगीचे में  
विहार करते हैं ” ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में धर्मकथा का फल बतलाया गया है । वह  
इस भाँति है —

કમલના જેવા કોમલ અને કાન્તિમાન આકૃતિવાળા શાલિભદ્રકુમાર શ્રી મહાવીર  
ભગવાનની ધર્મદેશના સાંભળતાં જ વૈરાગ્યને પ્રાપ્ત થયા અને ચારિત્ર ધારણ કર્યું.  
કહ્યું પણ છે:—

“ ધર્મકથામાં પ્રીતિ રાખવાવાળા જે પુરૂષ સંસારના સુખને ક્ષણભંગુર સમજ  
લે છે તે અનન્ત દુઃખ આપવાવાળા ભોગનો ત્યાગ કરીને વૈરાગ્ય ધારણ કરી  
ચારિત્રરૂપી બગીચામાં વિહાર કરે છે. ॥ ૧ ॥”

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ઓગણત્રીસમાં અધ્યયનમાં ધર્મકથાનું ફલ બતાવ્યું છે, તે  
આ પ્રમાણે છે:—

આક્ષેપણ્યાદિચતુર્વિધધર્મકથાસંચારોદ્ભાવિતાનન્દધારાતરજ્ઞસમુલ્લસિતસ્વાન્તપ્ર-  
ભૂતભવ્યભાવિતાત્મા ધર્મકથી જન્મજરામરણાદિભીષણપીનપાઠીનમીનમકર-  
ગણસંક્રમણપ્રિયવિયોગાપ્રિયસંયોગવડવાનલાકુલિતાપારસંસારસાગરાત્ સ્વયં , તરતિ,  
પરાનપિ તારયતિ ।

સ ચ પ્રભૂતભવ્યાન્ પ્રત્રાજયન્ ભવકૂપપતત્પ્રાણત્રાણસમાશ્વાસનજિનશાસન-  
મહિમાનમુપવૃંહયન્ સમસ્તમેવ જગત્ જિનશાસનરસિકં કુર્વન્ , મિથ્યાત્વમુત્થાપયન્ ,

“ ભગવન્ ! ધર્મકથા સે જીવ કો કયા લાભ હોતા હૈ ? ઉત્તર—ધર્મકથા સે જીવ કો  
નિર્વાણ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ધર્મકથા સે જીવ પ્રવચન કી પ્રભાવના કરતા હૈ । પ્રવચન કી  
પ્રભાવના સે આગે કે લિયે ભદ્ર (શુભ) કર્મો કા વન્ધ કરતા હૈ ” ॥ ૪ ॥

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકાર કી ધર્મકથા સે ઉત્પન્ન હોને વાલી આનન્દ કી ધારાઓ  
કી તરફો સે જિન કા અન્તઃકરણ ઉલ્લાસ કો પ્રાપ્ત હુઆ હૈ, એસે અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય  
ધર્મકથા કરને વાલે પુરુષ જન્મ જરા ઓર મરણ રૂપી ભયાનક ઓર વિશાલ મગરમચ્છોસે  
વ્યાપ્ત, એવં ઇષ્ટ—વિયોગ ઓર અનિષ્ટ—સંયોગ રૂપી વડવાનલ સે આકુલ—વ્યાપ્ત અપાર  
સંસાર સાગર સે સ્વયં મી પાર હોતે હૈ ઓર દૂસરો કો મી પાર કરતે હૈ ।

વહ ધર્મકથાકાર અનેકાનેક ભવ્ય જીવો કો દીક્ષિત કરતા હુઆ, સંસારરૂપી કૂપ મેં  
પડનેવાલે પ્રાણિયો કો ત્રાણ કરને કા આશ્વાસન દેને વાલે જિનશાસન કી મહિમા વઢાતા  
હુઆ સમસ્ત જગત્ કો જિનશાસન કા રસિક—અનુરાગી વનાતા હુઆ મિથ્યાત્વ કી ઉત્થાપના

“ ભગવન્ ! ધર્મકથાથી ભવને શું લાભ થાય છે ?

ઉત્તર—ધર્મકથાથી ભવને નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થાય છે, ધર્મકથાથી ભવ  
પ્રવચનની પ્રભાવના કરે છે, પ્રવચનની પ્રભાવનાથી આગળ શુભ કર્મોનો બંધ કરે છે.”

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકારની ધર્મકથાથી ઉત્પન્ન થનારા આનન્દની ધારાઓના  
તરંગોથી જેનું અન્તઃકરણ ઉલ્લાસને પ્રાપ્ત થયું છે, એવા અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય-  
ધર્મકથા કરવાવાળા પુરુષ જન્મ, જરા અને મરણરૂપી ભયાનક અને વિશાલ મગર-  
મચ્છોથી વ્યાપ્ત એ પ્રમાણે ઇષ્ટ—વિયોગ અને અનિષ્ટ—સંયોગરૂપી વડવાનલથી  
સંહિત અપાર સંસારસાગરથી ઘેરાયેલા પશુ પાર ઉતરે છે, અને ધીલને પશુ પાર  
ઉતારે છે.

सम्यक्त्वमुपस्थापयन्, कर्मकोटिं क्षपयति । उत्कृष्टरसायनपरिणाममसौ लभेत चेत्, त्रैलोक्यपवित्रं तीर्थङ्करनामगोत्रं समुपार्जयति ।

अपि चासौ स्वतःप्रकाशस्वभावस्यापि जिनशासनस्य मिथ्यात्वादि-  
तिमिरावृतदेशकालादिषु यथोचितप्रचारलक्षणाराधनतः प्रभावकपदं विभर्ति ।  
उक्तञ्च—

“ पावयणी धम्मकही, वाई लद्धीसरो तवस्सी य ।

विज्जासिद्धो य कवी, अट्टेव पभावगा भणिया ॥ १ ”

और सम्यक्त्व की उपस्थापना करता हुआ कर्मकोटि को खपाता है । कदाचित् परिणाम में उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह त्रिलोक में पवित्र तीर्थङ्कर गोत्र का भी उपार्जन करता है ।

जिन भगवान का शासन स्वतः उज्ज्वल है, तथापि जिस देशविशेष और काल विशेष में मिथ्यात्व का अन्धकार फैल जाता है, वहां भगवान के शासन का प्रचाररूप आराधन करके धर्मकथाकार प्रभावक पद प्राप्त करता है । कहा भी है :—

“प्रभावक आठ प्रकार के हैं :— (१) प्रावचनिक, (२) धर्मकथी, (३) वादी, (४) लब्धियों का स्वामी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्—रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या के धारक, (७) सिद्ध—वचनसिद्धि आदि सिद्धियों वाला, (८) कवि” ।

ते धर्मकथा कहेनार अनेक—अनेक लव्य जेवने दीक्षित करे छे अने संसार इपी कुवामां पडवावाणा प्राणीओने रक्षण करवानुं आश्वसन देवावाणा जिनशासनने भडिमा वधारता थका समस्त जगतने जिनशासनमां प्रीतिवाणा अनावी मिथ्यात्व निवारणु अने सम्यक्त्वनी स्थापना करी कर्मकोटीने अंपावे छे. कदाचित् परिणाममां उत्कृष्ट रसायन आवां जय तो त्रिलोकमां पवित्र तीर्थंकर गोत्रनी पणु प्राप्ति करे छे.

जिन भगवाननुं शासन पोते उज्ज्वल छे तो पणु जे देशविशेष अने काल-विशेषमां मिथ्यात्वने अंधकार इलाध जय छे, त्यां भगवानना शासनप्रचाररूप आराधन करीने धर्मकथाकार “प्रभावक”नुं पद प्राप्त करे छे. कहुं पणु छे:—

“प्रभावक आठ प्रकारना छे. (१) प्रावचनिक, (२) धर्मकथाकार (३) वादी, (४) लब्धियोंने धणी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्—रोहिणी—प्रज्ञप्ति आदि विद्याना धारक, (७) सिद्ध—वचनसिद्धिआदिसिद्धियोंवाणा, (८) कवि” ॥ १ ॥



अथ धर्ममहिमोच्यते—

“जन्मन्तरेऽपि सुलहा, पिउभाउसुयाइया ।  
परंतु सुयचारित्त, - धम्मो णो सुलहो भुवि ॥ १ ॥  
वासंगावणे धम्मं, णिच्छयव्वहारिणो ।  
लहंते संजया भव्वा, भत्तिपण्णेण नन्नहा ॥ २ ॥

संस्कृतच्छाया—

जन्मान्तरेऽपि सुलभा, - पितृ-भ्रातृ-सुतादयः ।  
परन्तु श्रुतचारित्र, - धर्मो न सुलभो भुवि ॥ १ ॥  
द्वादशाङ्गापणे धर्मं, निश्चयव्यवहारिणः ।  
लभन्ते संयता भव्या, - भक्तिपण्येन नान्यथा ॥ २ ॥  
तथा-विना सिद्धाञ्जनं भूमि, - निधानं नैव लभ्यते

धर्म-महिमा —

“पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर में-आगामी भव में-भी सुलभ हैं किन्तु संसार में श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नहीं है” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकान में निश्चयनय और ० व्यवहारनय को जानने वाले संयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे किये विना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती” ॥ २ ॥

धर्ममहिमा—

“पिता भाई अने पुत्र वगैरे तो आगला लवमां-हवे पछीना लवमां यधु सुलल छे, परन्तु संसारमां श्रुत-चारित्र धर्म सुलल नथी” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकानमां निश्चयनय अने व्यवहारनयने लणुवावाणा संयमी पुरुष लक्ष्मिरूपी मूल्य आपीने धर्म प्राप्त करी शके छे. अम कर्या विना धर्मनी प्राप्ति थती नथी.” ॥ २ ॥

विणा सिद्धंजणं भूमि, - णिहाणं णेव लब्भइ ।  
 सुयचारित्तधम्मणेण, विणा णो णाणमप्पणो ॥ ३ ॥  
 अप्पणाणं विणा णेव, तत्तातत्तविणिच्छओ ।  
 तं विणा णेव भव्वाणं, जायएऽमियभावणा ॥ ४ ॥  
 विसुद्धज्ज्ञाणसंपत्ती, णंतराऽमियभावणं ।  
 विणा विसुद्धज्ञाणं णो, खवगस्सेणिरप्पई ॥ ५ ॥  
 अन्नोवाएण केणावि, - खवगस्सेणिणा विणा ।  
 वित्तीयपाओ सुक्कस्स, ज्ञाणस्स नहि लब्भई ॥ ६ ॥

छाया—

श्रुतचारित्रधर्मेण, विना नो ज्ञानमात्मन ॥ ३ ॥  
 आत्मज्ञानं विना नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिश्चयः ।  
 तं विना नैव भव्यानां, जायतेऽमृतभावना ॥ ४ ॥  
 विशुद्धध्यानसंप्राप्ति, - नान्तराऽमृतभावनाम् ।  
 विना विशुद्धध्यानं नो, क्षपकश्रेणिराप्यते ॥ ५ ॥  
 अन्योपायेन केनापि, क्षपकश्रेणिना विना ।  
 द्वितीयपादः शुक्लस्य, ध्यानस्य नहि लभ्यते ॥ ६ ॥

सिद्धअज्ञान के अभाव में पृथ्वी के भीतर का खजाना नहीं प्राप्त किया जा सकता, इसी प्रकार श्रुत चारित्र के विना आत्मा को सम्यज्ञान नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व-अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता, और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए विना भव्य जीवों को अमृतभावना नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अमृतभावना के अभाव में विशुद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं होती, और विशुद्ध ध्यान के विना क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

क्षपक श्रेणी के सिवाय किसी अन्य उपाय से शुक्ल-ध्यान का एकत्ववितर्क अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

सिद्धांजन विना पृथ्वीनी अंदरने अन्नने प्राप्त करी शकते नथी. अथेवी जरीते श्रुत-चारित्र विना आत्मज्ञान थतुं नथी. ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानना अलावथी तत्त्व-अतत्त्वने निश्चय थर्ध शकते नथी, अने तत्त्व-अतत्त्वने निश्चय कर्था विना लव्य लुवने अमृतलावना थती नथी ॥ ४ ॥

अमृतलावनाना अलावथी विशुद्ध ध्याननी प्राप्ति थती नथी; अने विशुद्ध

સુકજ્ઞાણસ્ત પાયં ચ, વિતીયં પપ્પ સંજમી ।  
 કેવલજ્ઞાણલાહેણ, કેવલિત્તિ ણિગજ્જઈ ॥ ૭ ॥  
 અવત્થા ણહિ સેલેસી, કેવલજ્ઞાણમંતરા ।  
 ભવઈ સમણિદસ્સ, સવ્વકમ્મકવઓ તઓ ॥ ૮ ॥  
 સવ્વકમ્મકવણ સિદ્ધી, -તઓ સિદ્ધો હિ સાસઓ ।  
 મોક્કવઠ્ઠી સુચચારિત્ત, - ધમ્મં તમ્હા સમાચરે ॥ ૯ ॥

છાયા—

શુદ્ધધ્યાનસ્ય પાર્દ ચ, દ્વિતીયં પ્રાપ્ય સંયમી ।  
 કેવલજ્ઞાણલાભેન, કેવલીતિ નિગદ્યતે ॥ ૭ ॥  
 અવસ્થા નહિ શૈલેશી, કેવલજ્ઞાણમન્તરા ।  
 ભવતિ શ્રમણેન્દ્રસ્ય, સર્વકર્મક્ષયસ્તતઃ ॥ ૮ ॥  
 સર્વકર્મક્ષયે સિદ્ધિ, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ।  
 મોક્ષાર્થી શ્રુતચારિત્ર, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ॥ ૯ ॥

સંયમી પુરુષ શુદ્ધ ધ્યાન કા દૂસરા પાયા પ્રાપ્ત કરકે, કેવલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરતા હૈ ઔર કેવલી કહલાતા હૈ । ॥ ૭ ॥

કેવલ જ્ઞાન કે વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત નહીં હોતી । શૈલેશી અવસ્થા જુબ પ્રાપ્તિ હો જાતી હૈ તો મુનિરાજ સમસ્ત કર્મો કા ક્ષય કર ઢાલતા હૈ ॥ ૮ ॥

સમસ્ત કર્મો કા ક્ષય હોને પર સિદ્ધિ પ્રાપ્ત હોતી હૈ । સિદ્ધિ લાભ હોને પર શાશ્વત સિદ્ધ હોજાતા હૈ, અતઃ મોક્ષાર્થી પુરુષ કો શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ કા આચરણ કરના ચાહિયે ॥ ૯ ॥

ધ્યાન વિના ક્ષયકરેણી ઉપર આરોહણ થઈ શકતું નથી. ॥ ૫ ॥

ક્ષયકરેણી વિના બીજા કોઈ ઉપાયથી શુદ્ધ ધ્યાનનો એકત્વ-વિતર્ક-અવિચાર નામક બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી. ॥ ૬ ॥

સંયમી પુરુષ શુદ્ધ ધ્યાનનો બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેવલી કહેવાય છે. ॥ ૭ ॥

કેવલજ્ઞાન વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત થતી નથી, શૈલેશી અવસ્થા ન્યારે પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, ત્યારે મુનિરાજ સકલ કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે. ॥ ૮ ॥

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, સિદ્ધિ લાભ થયા પછી શાશ્વત સિદ્ધ થાય છે, એ માટે મુક્ષાર્થી પુરુષોએ શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મનું આચરણ કરવું જોઈએ. ॥ ૯ ॥

अथ गणितानुयोगः—

गणितं = संख्यानं तस्यानुयोगो-गणितानुयोगः—

जीवाऽजीवादिषड्द्रव्यतत्पर्यायपरिगणनं गणितानुयोगसाध्यम् ।

तेन जिनोक्तपदार्थानां यथावस्थितं परिगणनात् सम्यक्त्वशुद्धिस्ततश्चारित्रशुद्धिः ।

पूर्वानुपूर्व्यादीनां भङ्गजालादीनां च परिगणनया चित्तस्थैर्यम्, ततश्च कषायानलप्रशमनम्, तेन चारित्रनैर्मल्यम् ।

अपि च गणितानुयोगेन भगवतः केवलज्ञानादिगुणपर्यायाणामानन्त्यमावेदयति । संख्यानमतिक्रान्तानां तेषां संख्यातुमशक्यता संख्याज्ञानं विना नैव

(३) गणितानुयोग—

गणित अर्थात् संख्याका अनुयोग गणितानुयोग कहलाता है ।

जीव, पुद्गल आदि छह द्रव्यों की गणना करने के लिए, तथा द्रव्यों की पर्यायों की गिन्ती करने के लिए गणितानुयोग की आवश्यकता होती है । गणितानुयोगसे जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट पदार्थों की ठीक-ठीक गणना होने से सम्यक्त्व की शुद्धि होती है, और सम्यक्त्व की शुद्धि से चारित्र की शुद्धि होती है ।

पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी आदि से, तथा भङ्ग-जालों की गणना करनेसे चित्तमें स्थिरता आती है, और चित्तकी स्थिरता से कषायरूपी अग्नि शान्त होती है और उससे चारित्र निर्मल होता है ।

गणितानुयोग ही भगवान के केवलज्ञान आदि गुण एवं पर्यायोंकी अनन्तता को प्रगट करता है, 'संख्यातीत गुणों एवं पर्यायों की संख्या का ज्ञान मुश्किल है' यह बात

(३) गणितानुयोग—

गणित अर्थात् संख्याका अनुयोग ते गणितानुयोग कडेवाय छे. एव पुद्गल आदि छ द्रव्येनी गणना करवा भाटे, तथा द्रव्येना पर्यायेनी गणतरी करवा भाटे गणितानुयोगनी आवश्यकता होय छे, गणितानुयोगथी जिन भगवान द्वारा कडेवा पदार्थेनी ठीक ठीक गणना थई शकती होवाथी सम्यक्त्वनी शुद्धि थाय छे, अने सम्यक्त्वनी शुद्धिथी चारित्रनी शुद्धि थाय छे.

पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी आदिथी, अने भंगजालेनी गणना करवाथी चित्तमां स्थिरता आवे छे, अने चित्तनी स्थिरताथी कषायरूपी अग्नि शांत थाय छे. अने तेथी चारित्र निर्मल थाय छे.

વિજ્ઞાતું શક્યતે, તદ્વિ ગણિતાનુયોગગમ્યમ્ । ભગવદ્ગુણાનુસ્મરણેન ભગવતઃ  
સ્તુતિઃ સંપદ્યતે, તયા ચ દર્શનશુદ્ધિસ્તતશ્ચારિત્રશુદ્ધિઃ ।

પ્રવ્રજ્યાપ્રદાનાદયોઽપિ શોભનંતિથિનક્ષત્રાદિયુક્તસમય એવ વિધેયા ઇતિ  
તાદૃશસમયાવબોધકતયા ગણિતાનુયોગસ્યાપિ ચરણપ્રાપ્તિં પ્રતિ સાધનતા સિદ્ધયંતિ ।  
તયા ચાસ્યાપિ ફલં ચારિત્રરક્ષણમેવ ।

અથ પ્રસન્નાજ્જ્યોતિષ્કવિષયઃ કિશ્ચિત્પ્રદર્શ્યતે—  
તત્ર પૂર્વ પ્રવ્રજ્યાપ્રદાનસમયો નિર્ણયતે—

મી સંખ્યા કા જ્ઞાન ક્રિયે વિના જાની નહીં જા સકતી હૈ । ભગવાન કૈ ગુણો કા વારંવાર  
સ્મરણ કરને સે ભગવાન કી સ્તુતિ હોતી હૈ, ઉસસે દર્શન-શુદ્ધિ હોતી હૈ, દર્શન-શુદ્ધિ કૈ  
હોને સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ॥

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્ર સે યુક્ત સમય મેં હી દીક્ષા આદિ દેના ચાહિય, ઇસ  
પ્રકાર કૈ સમય કા બોધ કરાને વાલ્ય હોને સે ગણિતાનુયોગ મી ચારિત્રકી પ્રાપ્તિ કા કારણ  
હૈ, ઈસા સિદ્ધ હોતા હૈ, ઉસસે ગણિતાનુયોગ કા ફલ મી ચારિત્ર કી રક્ષા કરના હી હૈ ।

યહાં પ્રસન્ન હોનેસે કુલ્લ જ્યોતિષ કા વિષય દિસલાયા જાતા હૈ—

દીક્ષાદાનસમયકા નિર્ણય—

ગણિતાનુયોગ જ ભગવાનના કેવલજ્ઞાન આદિ એ ગુણો એ પ્રમાણે પર્યાયોની  
અનંતતા પ્રગટ કરે છે. 'સંખ્યાતીત ગુણો અને પર્યાયોની સંખ્યા જાણવી અશક્ય  
છે' તે વાત પણ સંખ્યાનુ જ્ઞાન કર્યા વિના જાણી શકાતી નથી, તે ગણિતાનુયોગ  
દ્વારા જાણી શકાય છે. ભગવાનના ગુણોનું વારંવાર સ્મરણ કરવાથી ભગવાનની સ્તુતિ  
થાય છે, અને તેથી દર્શન-શુદ્ધિ થઈ શકે છે, અને દર્શન વિશુદ્ધ થવાથી ચારિત્રની  
શુદ્ધિ થાય છે.

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્રથી યુક્ત સમયમાં જ દીક્ષા આદિ આપવી જોઈએ,  
આ પ્રકારના સમયનું જ્ઞાન કરાવવાવાળો હોવાથી ગણિતાનુયોગ પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું  
કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. તેથી ગણિતાનુયોગનું ફલ પણ ચારિત્રની રક્ષા કરવી એજ છે.  
આહીં પ્રસંગથી થોડા જ્યોતિષનો વિષય બતાવવામાં આવે છે—

દીક્ષા આપવાના સમયનો નિર્ણય—

( १ ) तत्र मासविचारः

पौष-चैत्र-ज्येष्ठा-षाढ-मासान् विहाय शेषा मासाः प्रशस्ताः ।

विशेषतो मासफलमाह-

- |                              |  |
|------------------------------|--|
| (१) श्रावणे-शुभम् ।          | (७) माघे-ज्ञानवृद्धिः ।                            |
| (२) भाद्रपदे-शिष्याल्पता ।   | (८) फाल्गुने-सुख-सौभाग्य-यशोवृद्धिः ।              |
| (३) आश्विने-सुखम् ।          | (९) चैत्रे-अल्पसुखम् ।                             |
| (४) कार्तिके-विद्यावृद्धिः । | (१०) वैशाखे-रत्नत्रयलाभः ।                         |
| (५) मार्गशीर्षे-शुभम् ।      | (११) ज्येष्ठे-सामान्यम्, तत्रान्यबलसत्त्वे शुभम् । |
| (६) पौषे-विद्यावृद्धयभावः ।  | (१२) आषाढे-गुरुबन्धुना सह प्रेमाल्पता ।            |

( १ ) मास-विचार

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आषाढ मास को छोड़कर शेष महीनों में दीक्षा देना प्रशस्त है ।

विशेष मास-विचार

- |                                |  |
|--------------------------------|--|
| (१) श्रावण - शुभ ।             | (७) माघ - ज्ञान की वृद्धि  |
| (२) भाद्रपद - शिष्यों कमी ।    | (८) फाल्गुन-सुख-सौभाग्य और यश की वृद्धि                              |
| (३) आश्विन - सुख ।             | (९) चैत्र - अल्प सुख   |
| (४) कार्तिक - विद्यावृद्धि ।   | (१०) वैशाख - रत्नत्रय का लाभ   |
| (५) मार्गशीर्ष - शुभ ।         | (११) ज्येष्ठ - साधारण, यह मास दूसरे नक्षत्र आदि का बल हो तो शुभ है । |
| (६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव । | (१२) आषाढ-गुरुभाइयों के साथ प्रेम की कमी ।                           |

(१) मास-विचार-

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ અને આષાઢ માસને ત્યજીને બાકીના બીજા મહિનાઓ દીક્ષા આપવા માટે ઉત્તમ છે.

વિશેષ માસ-વિચાર-

- |                              |  |
|------------------------------|--|
| (૧) શ્રાવણુ-શુભ.             | (૭) માઘ-જ્ઞાનની વૃદ્ધિ.  |
| (૨) ભાદ્રપદ-શિષ્યોની કમી.    | (૮) ફાલ્ગુન-સુખ સૌભાગ્ય અને યશની વૃદ્ધિ.                             |
| (૩) આસો-સુખ.                 | (૯) ચૈત્ર-અલ્પ સુખ.  |
| (૪) કાર્તિક-વિદ્યાવૃદ્ધિ.    | (૧૦) વૈશાખ-રત્નત્રયનો લાભ.   |
| (૫) માર્ગશીર્ષ-શુભ.          | (૧૧) જ્યેષ્ઠ-સાધારણ, આમાસમાં બીજા નક્ષત્ર વગેરેનું બલ હોય તો શુભ છે. |
| (૬) પૌષ-વિદ્યાવૃદ્ધિનો અભાવ. | (૧૨) અષાઢ-ગુરુભાઈઓની સાથે પ્રેમની કમી.                               |

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपदा आरभ्य पञ्चमी यावत्तिथयः शुभाः । षष्ठीतः समारभ्य दशमी यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । षष्ठीतो दशमीं यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

## (४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । षष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथियाँ मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथियाँ हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ हैं, षष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथियाँ शुभ हैं ।

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्षमां पडवेथी पांचम सुधीनी तिथियो अशुभ छे. छठ्ठी लठने दशम सुधीनी तिथियो मध्यम छे, अने एकादशी-अगीयारसथी लठने अमावास्या सुधीनी तिथियो अशुभ छे.

शुक्ल पक्षमां-पडवेथी लठने पांचम सुधीनी तिथियो अशुभ छे. छठ्ठी दशमी सुधी मध्यम छे, अने एकादशीथी पुनम सुधीनी तिथियो शुभ छे.

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षाना विषयमां पडवे, त्रीन, पांचम, सातम, एकादशी अने तेरस, आ तिथियो उत्तम छे.

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ला चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा ।  
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि - चन्द्र - बुध - गुरु - वाराः प्रशस्ताः

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी,  
(३) मृगशिरः, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्तः (७) अनुराधा,  
(८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) श्रवणम्, (१२) उत्तरभाद्र-  
पदा, (१३) रेवती ।

नौ तिथियां त्याज्यं हैं—

(१)—शुक्ला चतुर्दशी, (२)—अमावास्या, (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह,  
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—षष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) वार-विचार—

रवि, सोम, बुध, गुरु, और शनिवार प्रशस्त है ।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—  
मृगशीर्ष, (४)—पुष्य, (५)—उत्तराफाल्गुनी (६)—हस्त, (७)—अनुराधा, (८)—ज्येष्ठा, (९)—  
उत्तराषाढा, (१०)—अभिजित्, (११)—श्रवण, (१२)—उत्तराभाद्रपद, (१३)—रेवती ।

नव तिथियो त्याज्य छे—

(१) शुक्ल चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) जे तिथिमां सूर्य-संक्रमण थाय  
ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी

(४) वार विचार—

रवि, सोम, बुध, गुरु अने शनिवार उत्तम छे.

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षाना विषयमां तेर नक्षत्र उत्तम छेः— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी,  
(३) मृगशीर्ष, (४) पुष्य, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) हस्त, (७) अनुराधा (८)  
ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित (११) श्रवण (१२) उत्तरभाद्रपद, (१३) रेवती.



### નક્ષત્રેષુ સપ્ત દોષાઃ સન્તિ, યથા-

- (૧) સંધ્યાગતમ્-યત્ર નક્ષત્રે સૂર્યોઽનન્તરં સ્થાસ્યતિ તાદૃશં નક્ષત્રમ્ । યથા હસ્તે રવિર્વર્ત્તે ચેત્ તદા દૈનિકં ચિત્રાનક્ષત્રં સંધ્યાગતં બોધ્યમ્ ।
- (૨) રવિગતમ્- યત્ર રવિસ્તિષ્ઠતિ તાદૃશં દૈનિકં નક્ષત્રં રવિગતં બોધ્યમ્ ।
- (૩) દુર્ગતમ્-યત્રોન્માર્ગગામી-વક્રી ગ્રહો ભવતિ, તાદૃશં નક્ષત્રમ્ ।
- (૪) સગ્રહમ્-યત્ર ક્રૂરો ગ્રહસ્તિષ્ઠતિ, તાદૃશં નક્ષત્રમ્ ।
- (૫) વિલમ્બિતમ્-સૂર્યેણ પરિભ્રુજ્ય મુક્તં નક્ષત્રમ્ ।
- (૬) રાહુગતમ્-યત્ર ચન્દ્ર-સૂર્યોપરાગઃ સંજાતસ્તાદૃશં નક્ષત્રમ્ । ઈદૃશે નક્ષત્રે ષપ્માસાન્ યાવત્ પ્રવ્રજ્યા ન દેયા ।

### નક્ષત્રોં મેં સાત દોષ

- (૧) સંધ્યાગત-જિસ નક્ષત્ર મેં સૂર્ય આગે જાને વાલા હૈ વહ નક્ષત્ર ।  
જેસે-અગર હસ્ત નક્ષત્ર મેં સૂર્ય હો તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સંધ્યાગત કહલાતા હૈ ।
- (૨) રવિગત-જિસ નક્ષત્ર મેં રવિ હો, વહ દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત જાનના ચાહિય ।
- (૩) દુર્ગત-જિસ મેં ઉન્માર્ગગામી-વક્ર ગ્રહ હો વહ નક્ષત્ર દુર્ગત કહલાતા હૈ ।
- (૪) સગ્રહ-જિસ નક્ષત્ર મેં ક્રૂર ગ્રહ હો ।
- (૫) વિલમ્બિત-સૂર્ય-દ્વારા ભોગ કર છોડા હુઆ નક્ષત્ર ।
- (૬) રાહુગત-જિસ નક્ષત્ર મે ચન્દ્ર-ગ્રહણ યા સૂર્ય-ગ્રહણ હુઆ હો । એસે નક્ષત્ર મેં છહ માસ તક દીક્ષા દેના વર્જનીય હૈ ।

### નક્ષત્રમાં સાત દોષ-

- (૧) સંધ્યાગત-જે નક્ષત્રમાં સૂર્ય આગળ આવવાવાળો છે તે નક્ષત્ર, જેવી રીતે કે હસ્ત નક્ષત્રમાં સૂર્ય હોય તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સંધ્યાગત કહેવાય છે.
- (૨) રવિગત-જે નક્ષત્રમાં રવિ હોય તે દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત જાણવું જોઈએ.
- (૩) દુર્ગત-જેમાં ઉન્માર્ગગામી-વક્ર-ગ્રહ હોય તે નક્ષત્ર દુર્ગત કહેવાય છે.
- (૪) સગ્રહ-જે નક્ષત્રમાં ક્રૂર ગ્રહ હોય.
- (૫) વિલમ્બિત-સૂર્ય-દ્વારા ભોગવાને છુટું કરાયેલું નક્ષત્ર.
- (૬) રાહુગત-જે નક્ષત્રમાં ચન્દ્રગ્રહણ અથવા સૂર્યગ્રહણ થયું હોય. એવા નક્ષત્રમાં છ માસ સુધી દીક્ષા આપવી વર્જનીય છે.

(७) ग्रहभिन्नम्-यत्र त्रयो ग्रहास्तिष्ठन्ति तादृशं नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नैव शुभाशुभफलाः, यथा-विष्कम्भादिषु दैनिकयोगेषु प्रीत्यादयः शुभफलाः, विष्कम्भादयोऽशुभफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषु वारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभाः, कालदण्डादयोऽशुभाः ।

(७) अथ करण-विचारः—

करणानि एकादश सन्ति; यथा-(१) बवम्, (२) बालवम्, (३) कौलवम्,

(७) ग्रह-भिन्नजिस में तीन ग्रह हों ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो जाता है । जैसे-विष्कम्भ, आदि दैनिक योगों में से प्रीति आदि योग शुभफल वाले, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल वाले हैं । आनन्द आदि सांयोगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगों में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता है, और कालदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं, जैसे—(१) बव, (२) बालव, (३) कौलव,

(७) ग्रहभिन्न-जिसमें त्रयो ग्रहो ह्येव, तेषु नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचार—

योगोना नाम्नी न शुभ-अशुभ फलानी प्रतीति यथ ज्ञायते । जेभकेः-विष्कंभ आदि दैनिक योगोमांथी प्रीति आदि शुभ फलवाणां छे, अने विष्कंभ आदि योग ते अशुभ फल आपनारा छे । आनन्द आदि सांयोगिक (वार-नक्षत्रना संयोगथी अनवावाणा) योगोमां आनन्द आदि योग शुभ फल देनेनारा छे, अने कालदण्ड आदि अशुभ फल आपनारा छे ।

(७) करण-विचार—

करण अगिआर ह्येव छे । (१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) अविद्वेष्यन

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैतिलमिति, केचिदाहुः, (५) गरादि, इदं गरमित्या-  
हुरन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्,  
(११) किंस्तुन्नम्, इति ।

अत्र ववादिविष्टयन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि  
वेदितव्यानि ।

ववादिविष्टयन्तानां सप्तानां कस्यांश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि  
सप्त चराणि, शकुन्यादीनां कृष्णपक्षीयचतुर्दश्यमावस्याशुक्लप्रतिपत्तिथिषु नियत-  
स्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते । स्पष्टं चेदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ती सप्तमवक्ष-  
स्कारे । उक्तञ्च तत्र—“एणसिणं भंते ! एकारसण्डं करणाणं कइ करणा-चरा ?

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैतिल' भी नहते हैं), (५) गरादि ('गर' नाम भी है),  
(६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुन्न ।

इन ग्यारह करणों में वव से लेकर विष्टि तक सात करण चर हैं, और अन्त के  
शकुनि आदि चार स्थिर हैं ।

वव से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस  
कारण ये चर कहलाते हैं, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी,  
अमावास्या तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अत एव ये स्थिर कहलाते  
हैं । इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

( डैध डैध अने ' तैतिल ' पणु डडे छे ) ( ५ ) गरादि ( तेनुं ' गर ' नाम पणु छे )  
( ६ ) वणिज ( ७ ) विष्टि ( ८ ) शकुनि ( ९ ) चतुष्पद ( १० ) नाग ( ११ ) किंस्तुन्न .

आ अगियार करणोमां अवथी लधने विष्टि सुधी सात करणु अर छे; अने  
छेदला शकुनि आदि अर स्थिर छे .

अवथी लधने विष्टि सुधीना सात करणु डैध अेक तिथिमा नियमित रहेता  
नथी ते करणुथी तेने अर डडे छे; शकुनि आदि छेदलां अर, कृष्ण पक्षनी त्रौदस,  
अमावास्या तथा शुक्ल पक्षनी प्रतिपदा-पडवे तिथिमां नियमित रहे छे अेटवे ते  
स्थिर डडेवाय छे . आ विषयनुं विवेचन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिना सातमा वक्षस्कारमां स्पष्ट

कइ करणा स्थिरा पणत्ता?, गोयमा सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पणत्ता ।” इत्यादि ।

तत्र दिवाशब्देन तिथेः पूर्वार्द्धभागः, रात्रिशब्देन तिथेरुत्तरार्द्धभागो गम्यते ।

एकादशसु करणेषु बवम्, बालवम्, कौलवम्, वणिजम्, एतानि चत्वारि शुभफलानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं भद्रा । इयं दीक्षादौ वर्जनीया । उक्तञ्च—  
“यदि भद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्ध्यति ।

गया है । वहां कहा है —

“हे भदन्त ! इन ग्यारह करणों में कितने करण चर और कितने करण स्थिर कहे गये हैं ?, हे गौतम ! सात करण चर और चार करण स्थिर कहे गये हैं ।” इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वार्ध भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है—  
तिथि का उत्तरार्ध भाग ।

इन ग्यारह करणों में से बव, बालव, कौलव, और वणिज, ये चार करण शुभ फल दायक है ।

विष्टि करण का दूसरा नाम भद्रा, है । दीक्षा आदि कार्यों में यह वर्जनीय है ।  
कहा भी है —

पथी करेणुं छे, त्यां क्खुं छे:—

“हे भदन्त ! आ अग्यार करेणुमां केटला करणु अर अने केटला करणु स्थिर कडेवामां आव्या छे ?, हे गौतम ! सात करणु अर अने चार करणु स्थिर कडेवामां आव्या छे” इत्यादि.

आ स्थणे दिन शब्दने अर्थ छे के—तिथिने पूर्वार्ध लाग, अने रात्री शब्दने अर्थ छे के—तिथिने उत्तरार्ध लाग.

अे अग्यार करेणुमांथी अव, बालव, कौलव अने वणिज, आ चार करणु शुभफलदायक छे.

विष्टिकरणनुं भीणुं नाम भद्रा छे. दीक्षा आदि कार्योंमां ते भद्रा त्यज्जवा ग्य छे. क्खुं पथु छे—

પ્રાપ્તે તુ પોહશે માસે, સમૂલં તદ્વિનશ્યતિ ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

શુક્લપક્ષે મદ્રા ચતુર્થ્યામેકાદશ્યાં ચ તિથિપરાર્દ્ધભાગસ્થાયિની, અષ્ટમ્યાં પૂર્ણિમાયાં ચ તિથિપૂર્વાર્દ્ધભાગસ્થાયિની ભવતિ, કૃષ્ણપક્ષે તુ સા તૃતીયાયાં દશમ્યાં ચ તિથિપરાર્દ્ધભાગસ્થાયિની, સપ્તમ્યાં ચતુર્દશ્યાં ચ તિથિપૂર્વાર્દ્ધભાગસ્થાયિની ભવતિ ।

તત્ર તિથિપશ્ચાર્દ્ધભાગસ્થાયિની મદ્રા દિવસં વ્યાપ્નોતિ, તથા તિથિપૂર્વાર્દ્ધભાગસ્થાયિની રાત્રિં વ્યાપ્નોતિ ચેત્તદા ન દોષાવહા ।

મદ્રાયાત્ત્રિંશદ્વેટિકામાનેન પશ્ચિમં ઘટિકાત્રયં પુચ્છમિત્યભિધીયતે । તદ્ મદ્રાપુચ્છં શુભમ્ ।

“મદ્રા કરણ મેં ક્રિયા હુઆ કાર્ય પ્રથમ તો સિદ્ધ હી નહીં હોતા, કદાચિત્ સિદ્ધ મી હોજાય તો સોલહવાં મહીના આને પર ઉસકા સમૂલ વિનાશ હો જાતા હૈ” ॥૧॥

મદ્રા શુક્લપક્ષ મેં ચૌથ તથા એકાદશી તિથિ કે ઉત્તરાર્ધ મેં રહતી હૈ, ઓર અષ્ટમી તથા પૂર્ણિમા કે દિન તિથિ કે પૂર્વાર્ધ મેં રહતી હૈ ।

કૃષ્ણપક્ષ મેં તૃતીયા ઓર દશમી કે દિન તિથિ કે ઉત્તરાર્ધ મેં ઓર સપ્તમી એવં ચતુર્દશી કો તિથિ કે પૂર્વાર્ધ મેં રહતી હૈ ।

તિથિ કે ઉત્તરાર્ધ મેં રહને વાલી મદ્રા દિનકો વ્યાપ્ત કરતી હો ઓર પૂર્વાર્ધભાગ મેં રહને વાલી રાત્રિકો વ્યાપ્ત કરતી હો તો કોઈ દોષ નહીં હૈ ।

તોસ ઘડીકી મદ્રા કી અન્તિમ ત્રીન ઘડિયાં પૂંછ કહલાતી હૈ । મદ્રાકી યહ પૂંછ શુભ હૈ ।

“લદ્રા કરણુમા કરેણુ કામ પ્રથમ તો સિદ્ધ થતુ નથી, કદાચિત્ સિદ્ધ પણુ થાય તો સોણમો મહિનો આવતાં તેનો સમૂળ વિનાશ થાય છે.” ॥ ૧ ॥

લદ્રા શુકલ પક્ષમાં ચૌથ તથા એકાદશી તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં રહે છે, અને આઠમ તથા પૂનમના દિવસે તિથિના પૂર્વાર્ધમાં રહે છે.

કૃષ્ણપક્ષમાં ત્રીજ અને દશમીના દિન તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં અને સાતમ તથા ચૌદશના દિન તિથિના પૂર્વાર્ધમાં રહે છે.

તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં રહેવાવાળી લદ્રા દિવસને વ્યાપ્ત કરતી હોય, અને પૂર્વાર્ધ ભાગમાં રહેવાવાળી રાત્રીને વ્યાપ્ત કરતી હોય તો કોઈ દોષ નથી.

ત્રીશ ઘડીની લદ્રાની છેલ્લી ત્રણ ઘડીઓ પૂંછ કહેવાય છે; અને લદ્રાની તે પૂંછ શુભ છે.

शकुनि-चतुष्पद-नाग-किंस्तुघ्ननामानि करणानि तु कृष्णचतुर्दशमावास्या-  
शुक्लप्रतिपद्योगभावित्वात्त्याज्यानि । अवशिष्टे द्वे करणे स्त्रीविलोचनगरादिसञ्ज्ञके  
सामान्ये, इति साम्प्रदायिकाः ।

यत्तु गणिविद्याप्रकीर्णककृतश्चतुष्पदं नागं चेति द्वे करणे निष्क्रमणे प्रशंसन्ति,  
यथा—“ नागे चउप्पए यावि, सेहनिकखमणं करे ” इति ।

तत्र समीचीनम्, निष्क्रमणेऽमावास्यायाः प्रतिषिद्धत्वेन नियमतस्तद्योग-  
भाविनोस्तयोः प्राशस्त्याऽसंभवात् ।

शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न नामक करण कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी, अमावास्या,  
शुक्लपक्षकी प्रतिपदा के योगसे भावित होने के कारण त्याज्य हो जाते हैं । शेष दो करण  
स्त्रीविलोचन और गरादि नामक साधारण हैं । परम्परा को जानने वालों का यह मत है ।

गणिविद्याप्रकीर्णककारने दीक्षा के विषय में चतुष्पद और नाग नामक दो करण  
प्रशस्त माने हैं, उन्होंने ने कहा है कि—“नागे चउप्पए यावि सेहनिकखमणं करे” अर्थात्  
नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्क्रमण करना चाहिये, अर्थात् शिष्यको दीक्षा देना चाहिए,  
उनका यह कथन समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्क्रमण में अमावास्या निषिद्ध  
मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से भावित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना  
असम्भव है ।

शकुनि, चतुष्पद, नाग अने किंस्तुघ्न नामना करण कृष्ण पक्षनी चौदश,  
अमावास्या, शुक्ल पक्षना पडवाना योगथी भावित होवाथी त्याज्य अनी न्य छे.  
आकी ये करण स्त्रीविद्येयन अने गरादि नामना साधारण छे. परम्परा न्यवा-  
वाणाने आ प्रभाणे मत छे.

गणिविद्याप्रकीर्णककारने दीक्षाना विषयमां चतुष्पद अने नाग नामना ये  
करणेने उत्तम मान्या छे. तेणे कहुं छे के—“नागे चउप्पए यावि सेहनिकखमणं करे”  
नाग अने चतुष्पद नक्षत्रमां निष्क्रमण करवुं जेधये, अर्थात् शिष्यने दीक्षा आपवी  
जेधये. तेमनुं आ कथन अराअर नथी, कारण ये छे के—निष्क्रमणमां—दीक्षामां—  
अमावास्या निषिद्ध मानी छे, अटला भाटे अमावास्याना योगथी भावित उपर  
कडेला अने करणेने उत्तम होय ते वात असंभव छे.

अथ लग्नविचारः—

निष्क्रमणे मिथुन-सिंह-कन्या-वृश्चिक-धनु-मकर-कुम्भ-मीनानि लग्नानि शुभानि । अन्यानि चत्वारि वर्जनीयानि ।

(९) ग्रहविचारः—

दीक्षालग्ने शनैश्चरं मध्यमबलं, गुरुं बलीयांसं, शुक्रं बलहीनं विधाय दीक्षा देया । द्वितीये, पञ्चमे, षष्ठे, सप्तमे, एकादशे स्थाने शनिर्मध्यमबली भवति । त्रिकोणे केन्द्रे एकादशे च स्थानेऽवस्थितो गुरुर्वलीयान् भवति । तृतीये, षष्ठे, नवमे, द्वादशे च स्थाने स्थितः शुक्रो बलहीनो भवति, अत एव शुक्रास्तेऽपि दीक्षा ग्राह्येति संप्रदायविदः ।

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करने में—मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन, लग्न शुभ है । शेष चार वर्जनीय है ।

(९) ग्रह-विचार—

दीक्षालग्न में शनैश्चर मध्यम बल वाला, गुरु बलशाली और शुक्र बलहीन हो तो दीक्षा देनी चाहिए । दूसरे पांचवे, छठे, सातवे और ग्यारहवें स्थान में शनि मध्यम बल वाला होता है । त्रिकोण में केन्द्र में और ग्यारवे स्थान में रहा हुआ गुरु ( बृहस्पति ) बलशाली समझा जाता है । तीसरे, छठे, नौवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित शुक्र निर्बल होता है । अत एव शुक्र का अस्त होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना प्रशस्त माना गया है, ऐसा कई आचार्यों का कथन है ।

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करवाना मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ अने मीन-लग्न शुभ छे. भाङ्गीना चार त्याज्य छे.

(९) ग्रह-विचार—

दीक्षालग्नमां शनैश्चर मध्यम बलवाणो गुरु बलशाली अने शुक्र बलहीन होय तो दीक्षा आपवी लेछ्ये, शील, पांचमा, छठा, सातमा अने अगिआरमा स्थानमां शनि मध्यम बलवाणो होय छे, त्रिकोणमां केन्द्रमां अने अगिआरमा स्थानमां रहेलो गुरु ( बृहस्पति ) बलशाली समझवामां आवे छे.

चन्द्रतो लग्नतश्च सप्तमे स्थाने रविकुजभार्गवास्त्याज्याः, तत्र त्रयाणां संगमे दीक्षणीयः प्रतिपाती भवति । एषु त्रिषु द्वावन्यतमो वा तत्र तिष्ठति चेत्तदा कुशीलः क्रोधादिवशगश्च भवति । यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्जितस्तदा दीक्षा शुभा । यदि चन्द्रस्य गुरु-बुधयोरन्यतरेण संगमस्तर्हि शुभम् ।

(१०) अथ त्वरितकर्त्तव्यदीक्षासमयनिरूपणम् ।

(क) सिद्धच्छायालग्नम् ।

चन्द्रमासे तथा लग्न से सातवें स्थान पर सूर्य, कुज (मङ्गल) भार्गव, (शुक्र) हों तो त्याज्य है । अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीक्षा लेने वाला प्रतिपाती (पडिवाई) हो जाता है । अगर इन तीनों में से दो अथवा कोई भी एक वहां हो तो दीक्षा लेने वाला कुशील और क्रोध आदि दुर्गुणों का धारक होता है । अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्जित हो तो दीक्षा शुभ समझनी चाहिए । अगर गुरु और बुध में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है ।

(१०) तुरन्त दीक्षा देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया-लग्न—

त्रीण, छठा, नवमा अने अग्निआरमा स्थानमां स्थित शुक्र निर्णाल डोय छे, तेथी करी शुक्र अस्त डोय तो पशु दीक्षा अडणु करवी ते उत्तम मानवामां आण्युं छे. जेवो केरि आचार्यनो मत छे.

चंद्रमाथी तथा लग्नथी सातमा स्थानमां सूर्य, मंगल शुक्र डोय तो त्याज्य छे. अथवा जे त्रिण्येनो संगम डोय तो दीक्षा लेनार प्रतिपाती (पडिवाई) थई न्य छे, अथवा जे त्रिण्येनो जे अथवा केरि पशु जेक त्यां डोय तो दीक्षा लेवावाणो कुशील अने क्रोध आदि दुर्गुणोना धारणु करनार अने छे, अथवा चन्द्र तथा लग्नथी सातमुं स्थान आदी डोय अथवा चंद्रमा त्रीण अडोथी वर्जित डोय तो दीक्षा शुभ समझवी नैछे, अथवा गुरु अने बुधमांथी केरि पशु जेकनी साथे चंद्रनो संगम डोय तो शुभ छे.

(१०) तुरत दीक्षा आपवानो समय—

(क) सिद्धछायालग्न—



शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-  
मुपादेयम् । यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र-शुक्र-शनि-वासरेषु सार्द्धाऽष्टपद-  
प्रमाणा, भौमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-  
पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायारूपं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादिशुभकार्यं  
विधेयम् । अस्मिन् सिद्धच्छायालग्नैः संप्राप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालगनादिचिन्तनमनाव-  
श्यकम् । उक्तञ्च—

शुभ तिथि, वार; नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में  
सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है ।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन  
साठे आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो,  
रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया  
लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते हैं । यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त  
हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।  
कहा भी है —

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र अने लग्न आदिना अभावमां तुरत करवा योग्य  
कार्योमां सिद्धछायालग्न न् अहणु करवा योग्य छे.

समतल भूमि उपर पोताना शरीरनी छाया, सोमवार शुक्रवार अने शनिवारना  
दिवसे साठ आठ पग प्रमाणु होय, मङ्गलवारना दिवसे नव पग प्रमाणु होय,  
बुधवारु आठ पग प्रमाणु, रविवारु अगिआर पग, शुक्रवारु सात पगलां छाया  
होय तो तेने सिद्ध छायालग्न कहे छे. आ लग्नमां दीक्षा आदि शुभ कार्य  
करी शक्य छे. आ सिद्धछायालग्न प्राप्त होय तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा अने  
लग्न आदिना विचार करवानी आवश्यकता नथी. कहुं पणु छे—

नक्षत्राणि तिथिर्वारा-स्ताराश्चन्द्रबलं ग्रहाः ।

दुष्टान्यपि शुभं भावं, भजन्ते सिद्धछायया ॥ १ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारा न च चन्द्रमाः ।

ग्रहा नोपग्रहाश्चैव, छायालग्नं प्रशस्यते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिश्च, न शूलं न च चन्द्रमाः ।

एषा वज्रमयी सिद्धिः, -रमेद्या त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

“सिद्धच्छाया लग्न हो तो दूषित तिथि नक्षत्र, वार, तारा, चन्द्र तथा दूषित ग्रह भी शुभफलदायक हो जाते हैं, अर्थात् सिद्धच्छायालग्न की विद्यमानता में नक्षत्र आदि का दोष नहीं माना जाता है ॥ १ ॥

एक मात्र छाया लग्न ही उत्तम है, उसकी समानता न तिथि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न वार कर सकता है, न चन्द्रमा, न ग्रह कर सकते हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (भद्रा) कोई चीज नहीं है, शूल और चन्द्रमा भी उस की विद्यमानता में कुछ भी नहीं बिगाड सकता । सिद्धच्छाया लग्न एक ऐसी वज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ३ ॥

“सिद्धछायालग्न होय तो दूषित नक्षत्र, तिथि, वार, तारा, चंद्र तथा दूषित ग्रह पण शुभ थण न्य छे, अर्थात् सिद्धछायालग्ननी डाञ्जरीमां नक्षत्र आदिनो दोष मानवामां आवतो नथी. ॥ १ ॥”

એક માત્ર છાયાલગ્ન જ ઉત્તમ છે. તેનો મુકાબલો તિથિ, નક્ષત્ર, વાર, ચંદ્રમા ગ્રહ અને ઉપગ્રહ કોઈ પણ કરી શકતા નથી. ॥ २ ॥

યોગિનીનું તેના સામે બળ નથી. વિષ્ટિનું પણ બળ નથી, શૂળ અને ચંદ્ર પણ છાયાલગ્નની ડાઙ્જરીમાં કોઈ પ્રકારે કાંઈ પણ બગાડી શકતા નથી. સિદ્ધ-છાયાલગ્ન એક એવી વજ્રમયી સિદ્ધિ છે જેને દેવતા પણ ભેદી શકતા નથી. ॥૩॥”

## (ख) शङ्कुच्छायालग्नम्—

द्वादशाङ्गुलपरिमितशङ्कोच्छाया रवि-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-वासरेषु क्रमेण विंशति-षोडश-पञ्चदश-चतुर्दश-त्रयोदश-द्वादश-द्वादशाङ्गुलपरिमिता, तथा शनिवासरे द्वादशाङ्गुलप्रमाणा चेत्तर्हि सा शङ्कुच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादि कार्यं शुभम् ।

## (ग) अत्युत्कण्ठितयोग्यशिष्यार्थं दीक्षासमयः—

विषयाटवीदावदहनज्वालामालाकलितस्वान्तोऽनन्तजन्मजरामरणादिभयोद्विग्निः समन्ततः प्रज्वलिते सन्ननि सुप्तमिवादीप्तप्रदीप्तसंसारान्तः सरन्तमात्मनं रक्षितुमुपायान्तरमनवलोक्य प्रत्रज्यामात्रशरणदर्शी तीव्रवैराग्यप्रभाभासमानः प्रतिरोमोज्ज्वलिता-

## (ख) शङ्कुच्छायालग्नम्—

बारह अङ्गुल लम्बी कीली की परछाई अगर रविवार को बीस अंगुल, सोमवार को सोलह अंगुल, मंगलवार को पन्द्रह अंगुल, बुधवार को चौदह अंगुल, गुरुवार को तेरह अंगुल, शुक्रवार को बारह अंगुल, तथा शनिवार को भी बारह अंगुल हो उसे शङ्कुच्छाया लग्न कहते हैं । इस लग्न में दीक्षा आदि कार्य शुभ हैं ।

## (ग) तीव्र उत्कण्ठा वाले दीक्षार्थी का दीक्षासमय—

विषयवासना की विषय अटवी में व्याप्त दावानल की विकट ज्वालाओं से जिसका अन्तःकरण झुलस गया है, और जो अनन्त जन्म जरा मरण आदि के भय से उद्विग्न है, चारों ओर से मकान में आग लग जाने पर जिस का सर्वस्व भस्म हो गया है ऐसे पुरुष की भाँति

## (ख) शङ्कुछायालग्नम्—

बार आंगुल लम्बी कीलीने पडछाये रविवारे वीश आंगुल, सोमवारे सोण आंगुल, मंगलवारे पंढर आंगुल, बुधवारे चौद आंगुल, गुरुवारे तेर आंगुल, शुक्रवारे बार आंगुल, तथा शनिवारे पण्णु बार आंगुल होय तो तेने शङ्कुछायालग्न छडे छे. ते लग्नमां दीक्षा आदि कार्य शुभ छे.

## (ग) तीव्र उत्कण्ठावाला दीक्षार्थीना समय—

विषयवासनानी विषय अटवी (वन)मां व्याप्त दावानलानी विकट ज्वालाओंसे भयेनुं अन्तःकरण भणी गयु छे, अने ते अनन्त जन्म, जरा, मरण वगैरेना लयथी श्रितातुर छे, आरे भानुथी मकानमां आग लागवाथी भेनुं सर्वस्व भस्म

नलवन्नितान्तमातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तरसार्णवं द्रव्यक्षेत्रकालभावविदं निर्ग्रन्थप्रवचनमर्मज्ञं गुरुं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रव्रज्याप्रदानं शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापेक्षा ।

### (११) अथ केशलुञ्चनम्—

दीक्षाग्रहणानन्तरं यदा कदापि केशलुञ्चनं कर्तुमिच्छेत्तदा शनिमङ्गल दिवसौ त्याज्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, भरणी, एतानि चत्वारि नक्षत्राणि च वर्जनीयानि ।

आत्मरक्षा का अन्य उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही शरण समझने वाला तीव्र वैराग्य की प्रभा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य, रोम-रोम में जिस के आग लगी हो ऐसे पुरुष की भाँति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान, शान्त रस के सागर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचन के मर्मज्ञ गुरुसे दीक्षा देने के लिये प्रार्थना करे तो उसको उसी समय दीक्षा दे देना शुभ है, ऐसे प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है ।

### (११) केशलोच—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केशलोच करने में शनिवार और मंगल वार त्यज्य है, तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, और भरणी, ये चार नक्षत्र वर्जनीय है ।

यद्य गयुं छे जेवा पुष्पनी जेम, आत्मरक्षानो अन्य कोछ उपाय नहि हेभवाथी जेक मात्र दीक्षाने ज शरणु-आश्रय समजवावाणा, तीव्र वैराग्यनी प्रभा-तेजथी चमकतो मोक्षाभिलाषी शिष्य रोम-रोममां जेने अग्नि लागी छे, जेवा पुष्पनी जेम अत्यन्त आतुर जनीने तरंगरहित समुद्र प्रभाजे शान्त रसना सागर, द्रव्य, क्षेत्र, काल अने लावना जणुनार अने निर्ग्रन्थ प्रवचनना मर्मज्ञ गुरुथी दीक्षा हेवा माटे प्रार्थना करे, तो तेने तेज वधते दीक्षा आपवी शुभ छे जेवा प्रसंगे तिथि, वार, नक्षत्र आदिने विचार करवानी जर नथी.

### (११) केशलोच

दीक्षा धारण कर्या पछी केशलोच करवामां शनिवार अने मंगलवार त्याज्य छे तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, अने भरणी, आ चार नक्षत्र त्यजवा योग्य छे.

(१२) अथ नवदीक्षितस्य प्रथमगोचरीविचारः—

प्रथमगोचरीविषये तीक्ष्णोग्रमिश्रनक्षत्राणि शनिमङ्गलदिवसौ च वर्जयेत् ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूलम्, एतानि चत्वारि तीक्ष्णनक्षत्राणि । भरणी, पूर्वात्रयं, मघा, एतानि पञ्चोग्रनक्षत्राणि । कृत्तिका, विशाखा, इमे द्वे मिश्रनक्षत्रे ।

रिक्ताऽमावास्याक्षयतिथयस्त्याज्याः । शनिमङ्गलवारयोगे रिक्ताऽपि प्रशस्ता विज्ञेया ।

(१२) नव दीक्षित की प्रथम गोचरी—

पहली वार गोचरी के विषय में तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्र एवं शनि तथा मङ्गल वार त्याज्य है ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल, ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण हैं । भरणी, पूर्वात्रय— (पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी) और मघा, ये पाँच उग्र नक्षत्र हैं । कृत्तिका और विशाखा, ये दो नक्षत्र मिश्र कहलाते हैं ।

रिक्ता तिथि, अमावास्या और क्षय तिथि त्याज्य है, हों यदि शनि और मंगल वार का योग हो तो रिक्ता तिथि भी प्रशस्त है ।

(१२) नवदीक्षितनी प्रथम गोचरी—

पडेदीवार गोचरीना विषयमां तीक्ष्ण, उग्र अने मिश्र नक्षत्र तथा शनि अने मंगलवार त्याज्य छे.

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, अने मूल, आ चार नक्षत्र तीक्ष्ण छे, भरणी, त्रय पूर्वा (पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, अने पूर्वाफाल्गुनी) अने मघा अने पांच उग्र नक्षत्र उग्र नक्षत्र छे. कृत्तिका अने विशाखा, आ अने नक्षत्र मिश्र छेवाय छे.

रिक्ता तिथि, अमावास्या अने क्षय तिथि त्याज्य छे, परन्तु जे शनि अने मंगलवारने योग होय तो रिक्ता तिथि पण उत्तम छे.

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोचर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिश्च, मृगशिरःपुष्याश्विनीइस्तानुराधा-  
चित्रारेवतीषु, सोमगुरुवासरयोश्च शुभदा ।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने—श्रवणं, ज्येष्ठा, पुष्यम्, अभिजित्, हस्तः, अश्विनी,  
रोहिणी, उत्तरात्रयं, मृगशिरः, अनुराधा, रेवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि  
शोभनतिथिवारादयोऽपि द्रष्टव्याः ।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति=गच्छति प्राप्नोति मुञ्चति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । अथवा—

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोचरी आदि के लिए नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य, अश्विनी, हस्त,  
अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और गुरुवार के दिन करना शुभ है ।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी, रोहिणी,  
उत्तरात्रय, ( उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी ) मृगशिर, अनुराधा और रेवती, ये  
नक्षत्र शुभ हैं । इस प्रसङ्ग पर शुभ तिथि और शुभ वार आदि भी देखना चाहिए ।

(४) द्रव्यानुयोग—

आगे की पर्याय प्राप्त करने वाला और पूर्व पर्यायों का त्याग करने वाला द्रव्य

(१३) नवा पात्रनो उपयोग

गोचरी आदि भाटे नवा पात्रनो उपयोग मृगशीर्ष, पुष्य, अश्विनी, हस्त,  
अनुराधा, चित्रा, अने रेवती नक्षत्रोभां, तथा सोमवार अने गुरुवारना द्विसे करवो  
ते शुभ छे.

(१४) आचार्य आदि पदवीदाननो समय—

आचार्य आदि पदवी आपवामां श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजित्, हस्त,  
अश्विनी रोहिणी, उत्तरात्रय ( उत्तरा-षाढा, उत्तरा-भाद्रपद. उत्तरा-फाल्गुनी )  
मृगशिर, अनुराधा अने रेवती, आ नक्षत्रो शुभ छे. आ प्रसङ्ग उपर शुभ तिथि  
अने शुभ वार वगेरे पण जेवुं जेधअ.

(४) द्रव्यानुयोग—

आगणनी पर्याय प्राप्त करनारा अने प्रथमनी पर्यायनो त्याग करवावाणाने

द्रूयते = पाप्यते मुच्यते वा तैस्तैः पर्यायैरिति द्रव्यम्। द्रव्यस्य - अनुयोगः  
द्रव्यानुयोगः।

द्रव्यानुयोगो हि द्रव्याणां यथावस्थितस्वरूपावबोधने समीचीनयुक्तिं प्रदर्शयति। तथा दर्शनस्य नैर्मल्यम्। ततश्च सम्यक् चारित्रं संपद्यते। तथा चायमपि चरणकरणानुयोगं पोषयतीति बोध्यम्।

### द्रव्यलक्षणम्—

अथ किं तावद् द्रव्यम्? उच्यते- “गुणाश्रयो द्रव्यम्”। यथा जीवे ज्ञानदर्शनचारित्रसुखोपयोगादयो विशेषगुणाः, अस्तित्व-द्रव्यत्व-ज्ञेयत्वा

कहलाता है। अथवा जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त हो, अथवा पर्यायों से मुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य के अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं।

द्रव्यानुयोग द्रव्यो का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए समीचीन मार्ग प्रदर्शित करता है। उस से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, और सम्यग्दर्शन की निर्मलता से सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह अनुयोग भी चरणकरणानुयोग का पोषक है।

### द्रव्य का लक्षण—

द्रव्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—जो गुणों का आधार हो वह द्रव्य है, जैसे जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और उपयोग आदि विशेष गुण हैं।

द्रव्य कहे छे, अथवा ते पर्याये द्वारा प्राप्त होय अथवा पर्यायेथी युक्त होय तेने द्रव्य कहे छे. अथवा द्रव्यना अनुयोगने द्रव्यानुयोग कहे छे.

द्रव्यानुयोग द्रव्येना यथार्थ स्वरूपने समझववा भाटे अशबर साथे मार्ग प्रदर्शित करे छे, तेथी सम्यग्दर्शन निर्मल थाय छे, अने सम्यग्दर्शनी निर्मलताथी सम्यक् चारित्रनी प्राप्ति थाय छे. अे प्रभावे आ अनुयोग पण अरण्य अणानुयोगने पोषक छे.

### द्रव्यनुं लक्षणम्—

द्रव्य केने कहे छे? अे प्रश्नने उत्तर आ प्रभावे छे—ते गुणने आधार होय ते द्रव्य छे, ते प्रभावे एवमा ज्ञान, दर्शन, चारित्र सुख अने उपयोग आदि विशेष गुण छे.

दयः सामान्यगुणाः सन्ति । एवं गतिहेतुत्वं धर्मे, स्थितिहेतुत्वमधर्मे, अवकाश-दानहेतुत्वमाकाशे, वर्तनहेतुत्वं काले, रूपादिमत्त्वं पुद्गले विशेषगुणाः सन्तीति द्रव्यलक्षणसमन्वयः ।

कश्चित्तु 'सद् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' इति सूत्रेण सच्छब्दविवरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुक्त्वा विशेष-विज्ञानजननाय विशेषलक्षणमवोचत्-'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' इति । तदपि प्रकृत-

अस्तित्व ( जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी विनाश न हो ) वस्तुत्व-द्रव्यत्व (जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय सदैव बदलती रहे) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो) आदि सामान्य गुण है । इसीप्रकार धर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता) आकाश में अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायिता) काल में वर्तनाहेतुत्व, ( नवपुराण-कारणता) आदि, और पुद्गल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण है ? अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण की संगति होजाती है ।

किसी आचार्यने 'सद् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद विनाश और ध्रौव्य युगपत् पाये जायँ, वह सत् है, इस सूत्र के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्रव्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

अस्तित्व ( जे शक्तिना निमित्तथी द्रव्यनो क्यारैय पणु नाश न होय. ) वस्तुत्व-द्रव्यत्व ( जे शक्तिना निमित्तथी पर्याय हुंभेशां बदलती रहे ) अने प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व ( जे शक्तिना निमित्तथी द्रव्य कोठ न कोठ ज्ञाननो विषय होय ) आदि सामान्य गुणु छे. जे प्रमाणे धर्मास्तिकायमां गतिहेतुत्व ( गतिकारणता ) अधर्मास्तिकायमां स्थितिहेतुत्व ( स्थितिकारणता ) आकाशमां अवकाशदानहेतुत्व ( अवकाशदायित्व ) कालमां वर्तनाहेतुत्व ( नवपुराणकारणता ) आदि, अने पुद्गलमां रूपादिमत्त्व विशेष गुणु छे. तेथी जे सर्वमां द्रव्यना लक्षणुनी संगति थछ ज्ञय छे.

कोई आचार्ये "सद् द्रव्यलक्षणम्" जेवुं सूत्र रचीने 'उत्पाद व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात् जेमां उत्पाद, विनाश अने ध्रौव्य जेक ठाणे जेवामां आवे ते "सत्" छे. आ सूत्र द्वारा सत्नी व्याख्या करता थका सामान्य द्रव्यनुं स्वरूप बतावीने



लक्षणे समाविष्टमेवेति गुस्तरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेभ्य इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दप्रवेशो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

### गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

कराने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है—‘गुणपर्यायवद् द्रव्यम्’ यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण ‘गुणाश्रयो द्रव्यम्’ में समाविष्ट है, इस लिये उनका बड़ा लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे—कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अतः गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

### गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे, अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे नित्य सहवर्ती धर्म, ‘गुण’ कहलाते हैं । ‘गुण’ द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

विशेष बोध कराववा भाटे विशेष लक्षणु अये अताञ्चुं छे के:—“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” आ लक्षणु पणु प्रकृत (यादू) लक्षणु (गुणाश्रयो द्रव्यम्) मां समाविष्ट छे तेथी विशेष लक्षणु करवानी आवश्यकता नथी.

वास्तवमां तो पर्याय, गुणुथी भिन्न नथी, कारणु के कार्य अने कारणुमां लेह नथी, जेवी रीते डडां अने कुंडल आदि पर्याय सुवर्णुथी भिन्न नथी घट अने शंकर आदि पर्याय मृत्तिका—भाटीथी भिन्न नथी, कारणु के गुणुथी उत्पन्न थवा वाणा पर्याय, गुणुथी भिन्न नथी, जेवी अवस्थामां द्रव्यना लक्षणुमां पर्याय शब्द नाभवो ते नइरी नथी.

### गुणना लक्षणु—

द्रव्यना आश्रय—आश्रयी—इपथी अथवा कथञ्चित् तादात्म्यइपथी नित्य सहवर्ती धर्म गुणु छेवाय छे. गुणु अये द्रव्यनी शक्तिविशेष छे. मात्र द्रव्याश्रित

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः । 'मात्र'-शब्दोपादनं पर्यायेऽतिप्रसङ्गवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य' - मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशाखाप्रशाखादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशवत्त्वादिसामान्यगुणानां चैतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - अवकाशदानहेतुत्व - वर्तनाहेतुत्व - वर्ण - गन्ध - रस - स्पर्श-

लक्षणं है, जैसे-जीव के गुण-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि है, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं । उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है; वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे मूल, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

रहेषुं ते शुष्णुं लक्षणुं छे. जेवी रीते शुष्णुना शुष्णु-ज्ञान, दर्शन, सुख अने वीर्य आदि छे. तथा पुद्गलना शुष्णु-वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श आदि छे. उपर जे 'मात्र' शब्दने प्रयोग कयो छे ते पर्यायमां अतिप्रसंग निवारणु करवा भाटे छे, अर्थात् शुष्णु केवल द्रव्यमां छेय छे, पर्यायमां छेय नहि.

द्रव्यना स्वरूप पर विचार करवाथी जणाय छे के शुष्णुना समुदाय ज द्रव्य छे. जे रीते-मूल, स्कंध, शाखा अने प्रशाखा आदिना समूह ते वृक्ष छे. जे प्रमाणे अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य शुष्णुना, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण, रस, गंध. स्पर्शवत्त्व आदि विशेष शुष्णुना समूह ते द्रव्य छे. अहिं जे यदि

वत्त्वादिविशेषगुणानां च समुदायो द्रव्यम् । एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-त्यनुपदमेव वक्ष्यते ।

### पर्यायलक्षणम्—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः । यद्वा-परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः ।

द्रव्यस्योत्पादविनाशशालिनो धर्माः पर्यायाः । पर्याया हि द्रव्यं गुणं चाश्रित्य वर्तन्ते । कालभेदादेकमेव ज्ञानं जीवस्यान्यदन्यद्रूपं दधत् पर्यायशब्द-वाच्यं भवति, यथा कश्चिदष्टवर्षीयो विनयी प्रमादविकथावर्जितो बालमुनि-गुरुचरणसरोजं सेवमानः पूर्वमावश्यकमात्रमधीत्य समितिगुप्तिज्ञानं संपादयति,

विशेष गुणों का समूह नहीं बन सकता है । ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए, वह अभी आगे बतायेंगे ।

### पर्याय का लक्षण—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हें पर्याय कहते हैं । अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं ।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश—शील धर्म पर्याय कहलाते हैं । पर्याय, द्रव्य में भी रहते हैं और गुण में भी रहते हैं । जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है । जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ

राખવું બેઠઝ્યે કે વિભિન્ન દ્રવ્યોના વિશેષ ગુણોનો સમૂહ બની શકતો નથી. એવી રીતે દ્રવ્ય અને પર્યાયના વિષયમાં પણ સમજવું બેઠઝ્યે. વિશેષ આગળ બતાવીશું.

### पर्यायनुं लक्षणम्—

જેની અંદર હુમેશાં ઉત્પાદ અને વ્યય થયા કરે છે. અને જે હુમેશાં—સદાકાળ સ્થિર રહેતું નથી તેને પર્યાય કહે છે, અથવા દ્રવ્ય અને ગુણનો આશ્રય લેનાર તેને પર્યાય કહેવામાં આવે છે.

દ્રવ્યનો ઉત્પાદ અને વિનાશ—શીલ ધર્મ તે પર્યાય કહેવાય છે. પર્યાય, દ્રવ્યમાં પણ રહે છે અને ગુણમાં પણ રહે છે. જીવનો એક જ જ્ઞાનગુણ કાલના ભેદથી ભિન્ન ભિન્ન રૂપ ધારણ કરીને પર્યાય કહેવાય છે. જેવી રીતે કે એક આઠ વર્ષના વિનયવંત, પ્રમાદ અને વિકથાથી દૂર રહેવાવાળા બાલમુનિ પોતાના ગુરૂના ચરણ

क्रमेण द्वादशाङ्गतत्त्वं विज्ञाय ज्ञानधारां प्रवर्द्धयति । तत्र तस्य बालसंयमिनो ज्ञानं प्रतिक्षणं विलक्षणतामापद्यमानमपूर्वमपूर्वं जायमानं ज्ञानं पर्यायशब्दवाच्यतां भजति । एवं दर्शनचारित्रादीनामपि पर्याया ज्ञातव्या । जीवस्य मानुषत्वबाल्यादयोऽपि पर्यायाः । पुद्गलस्य तु एकगुणकालत्वादयो पर्याया ज्ञेयाः । एवं च द्रव्यगुणाश्रितत्वं पर्यायस्य लक्षणमिति निश्चीयते । तथा चोक्तमुत्तराध्ययने—(अ. २८)

पहले—पहल आवश्यक मात्र का अध्ययन करता है, फिर समिति और गुप्ति का ज्ञान सम्पादन करता है । तदनन्तर क्रम से द्वादशाङ्ग का तत्त्व जान कर ज्ञान की धारा में वृद्धि करता है, उस बाल मुनि का ज्ञान क्षण—क्षण में विलक्षण होकर नवीन—नवीन रूपों में उत्पन्न होता हुआ 'पर्याय' शब्द द्वारा कहा जाता है । इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आदि गुणों के पर्याय भी समझ लेना चाहिए । मनुष्यता, बालकपन आदि जीव के पर्याय हैं और एक—गुण—कालपन आदि पुद्गल के, वर्ण—गुण के पर्याय है । इस प्रकार यह निश्चित होता है कि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में ही रहता है । उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

“गुणों का जो आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं, गुण एक मात्र द्रव्य में ही रहते हैं । पर्यायों का लक्षण उभयाश्रित होना है, अर्थात् पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में ही पाये जाते हैं” ।

કમળોની સેવા કરતા થકા પ્રથમ આવશ્યક માત્રનું અધ્યયન કરે છે, પછી સમિતિ અને ગુપ્તિનું જ્ઞાન સંપાદન કરે છે; ત્યાર પછી કમથી દ્વાદશાંગનું તત્ત્વ બાણી જ્ઞાનની ધારામાં વૃદ્ધિ કરે છે; તે બાલમુનિનું જ્ઞાન ક્ષણ—ક્ષણમાં વિલક્ષણ—તરેહવાર બની નવીન રૂપોમાં ઉત્પન્ન થાય છે તેને ‘પર્યાય’ શબ્દથી ઓળખવામાં આવે છે, એ પ્રમાણે દર્શન અને ચારિત્ર આદિ ગુણોના પર્યાય પણ સમજી લેવા જોઈએ. મનુષ્યતા, બાલકપણ આદિ જીવના પર્યાય છે, અને એકગુણકાળપણ આદિ પુદ્ગલના વર્ણગુણોના પર્યાય છે. આ પ્રમાણે આ નિશ્ચિત થાય છે કે—પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ એ બંનેમાં રહે છે. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે—

“ગુણોનો જે આશ્રય હોય, તેને દ્રવ્ય કહે છે; ગુણ એક માત્ર દ્રવ્યમાં જ રહે છે, અને પર્યાયોનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અર્થાત્ પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ બંનેમાં જોવામાં આવે છે”.

“ગુણાણમાસઓ દ્વં, ઇગદ્વસ્સિયા ગુણા ।

લક્ષણં પજ્જવાણં તુ, દુહઓ અસ્સિયા ભવે ॥ ૬ ॥” ઇતિ ।

છાયા—

“ગુણાનામાશ્રયો દ્રવ્યમ્, એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણા :

લક્ષણં પર્યવાણાં તુ, ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ” ॥ ૬ ॥ ઇતિ ।

દ્રવ્યલક્ષણે પર્યાયાનુક્ત્યા કાર્યકારણયોરભેદવિવક્ષયા પર્યાયાણાં ગુણેષુ સમાવેશ ઇતિ ભગવદભિપ્રાયો ગમ્યતે । “એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણાઃ” ઇતિ, એકં=કેવલં દ્રવ્યમાશ્રિત્ય ગુણા વર્તન્ત ઇત્યર્થઃ । અનેન ગુણલક્ષણમુક્તમ્ । ‘પર્યવાણાં લક્ષણં તુ ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ’ ઇત્યન્વયઃ । પર્યવઃ, પર્યયઃ, પર્યાયઃ, ઇતિ સમાનાર્થકાઃ । ઉભયોઃ=દ્રવ્યગુણયોરાશ્રિતાઃ પર્યાયાઃ, ઇતિ પર્યાયલક્ષણં વોધ્યમિત્યર્થઃ । પર્યાયાસ્તુ દ્રવ્યં ગુણં ચોભયમાશ્રિત્ય વર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

દ્રવ્ય કે લક્ષણ મેં ‘પર્યાય’ પદ કા સમાવેશ ન કરને કે કારણ ભગવાન્ કા અભિપ્રાય યહ હૈ કિ—કાર્ય કારણ કે અભેદસે ગુણ મેં હી પર્યાય કા સમાવેશ હો જાતા હૈ । ‘ઇગદ્વસ્સિયા ગુણા’ ઇસ વાક્ય કા અર્થ યહ હૈ કિ—ગુણ કેવલ દ્રવ્ય મેં હી હોતે હૈ । ઇસ કથનદ્વારા ગુણ કા લક્ષણ ભી કહ દિયા ગયા હૈ ।

પર્યાય કા લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોના હૈ, દોનો મેં અર્થાત્ દ્રવ્ય મેં ભી ઓર ગુણ મેં ભી પર્યાય રહતે હૈ । પર્યવ, પર્યય ઓર પર્યાય યે સમી સમાનાર્થક હૈ ।

દ્રવ્યના લક્ષણમાં ‘પર્યાય’ પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે—કાર્ય કારણના અભેદથી ગુણમાં જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ જાય છે. ‘ઇગદ્વસ્સિયા ગુણા’ આ વાક્યનો અર્થ એ છે કે—ગુણ કેવલ દ્રવ્યમાં જ હોય છે, આ કથનદ્વારા ગુણનું લક્ષણ પણ કહી આપ્યું છે.

પર્યાયનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અનેમાં અર્થાત્ દ્રવ્યમાં અને ગુણમાં પણ પર્યાય રહે છે. પર્યવ, પર્યય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं षड्विधम्—धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवभेदात् । उक्तञ्च श्रीभगवतीसूत्रे—

“कहं णं भंते ! द्वा पणत्ता ? , गोयमा ! छ द्वा पणत्ता, तं जहा-  
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,  
अद्दासमये” ॥

उत्तराध्ययनसूत्रेऽपि—(अ. २८)

“धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।  
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य के भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल  
(५) पुद्गल और (६) जीव । श्री भगवतीसूत्र में कहा है—

“भगवान् ! द्रव्य कितने कहे गये हैं ? , गौतम ! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस  
प्रकार—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और  
अद्दा—समय” ।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा है—

“धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान्  
ने लोकसंज्ञा दी है ॥ ७ ॥

द्रव्यना भेद—

द्रव्यना छ प्रकार छे—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५)  
पुद्गल अने (६) जीव. श्री भगवती सूत्रमां पणुं कहुं छे—

“ भगवान् ! द्रव्य केटलां कहुं छे ? गौतम ! छ द्रव्य कहेला छे. ते आ  
प्रमाणे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय  
अने अद्दा—समय,”

उत्तराध्ययन सूत्रमां पणुं कहुं छे—

“धर्म अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अने जीवने सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन  
भगवाने लोकसंज्ञा आपी छे” ॥ ७ ॥

धम्मो अहम्मो आगासं, द्रव्यं इक्किक्काहियं ।  
अणंताणि य दब्बाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥ ८ ॥”

अत्र कालमात्रं विहाय धर्मादयोऽस्तिकाया उच्यन्ते । ‘अस्ती’ ति तिङन्त-  
प्रतिरूपक्रमव्ययं प्रदेशवाचकम् । प्रदेशः स्वस्थानादनपायि निर्विभागं खण्डम् ।  
इदं निर्विभागं खण्डं यदा पुद्गलस्य गलनस्वभावात्तदीयस्कन्धदेशाभ्यामवयुत्य-  
पृथग्भूत्वा वर्त्तते तदा परमाणुनाम्ना व्यवह्रियते । यावदपृथग्भूत्वा वर्त्तते  
तावत्तदेव निर्विभागं खण्डं प्रदेश इत्युच्यते । अनेनैवाशयेन पुद्गलास्तिकायस्य  
चत्वारो भेदा भगवता कथिताः—स्कन्धः, देशः, प्रदेशः, परमाणुश्चेति । कायः=

धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीन द्रव्य एक एक है, काल, पुद्गल, जीव, अनन्त  
अनन्त द्रव्य हैं” ॥ ८ ॥

काल को छोड़ कर शेष पांच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं । ‘अस्ति’ यह तिङन्तरूप  
प्रतीत होने वाला एक अव्यय है और प्रदेश का वाचक है । जो अपने स्थान से च्युत न  
होने वाला, अर्थात् जो द्रव्य के साथ ही जुड़ा हुआ निर्विभाग—जिस का फिर विभाग न हो  
सके वह खण्ड, प्रदेश कहलाता है । पुद्गल गलनस्वभाव वाला है अत एव जब यह  
निर्विभाग खण्ड पुद्गल के स्कन्ध या देश से विलुप्त कर अलग हो जाता है तब वही खण्ड  
परमाणु कहलाता है । जब वही परमाणु पुद्गल के स्कन्ध या देश में फिर मिलजाता है तब

धर्म अधर्म અને આકાશ આ ત્રણ દ્રવ્ય એક-એક છે, કાલ, પુદ્ગલ અને  
જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે.” ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહેવાય છે. ‘અસ્તિ’ એ  
તિંગન્ત રૂપ જણાતું એક અવ્યય છે, અને પ્રદેશનું વાચક છે. જે પોતાના સ્થાનથી  
ચ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ જોડાઈ રહેલા નિર્વિભાગ—જેનો ફરી  
ભાગ ન થઈ શકે તે ખંડ, પ્રદેશ કહેવાય છે. પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે,  
તે કારણે ન્યારે તે નિર્વિભાગ ખંડ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા દેશથી છુટા થઈ જાય  
છે; ત્યારે તે ખંડ પરમાણુ કહેવાય છે. ન્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા  
દેશમાં ફરીને મળી જાય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.

समूहः । अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायः, प्रदेशसमूहवान्, धर्मश्चासावस्तिकायश्चेति धर्मास्तिकायः । एवं च धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, इति नामानि सन्ति तेषाम् । कालस्तु प्रदेशाभावादस्तिकायो न भवतीत्यतः कालः कालास्तिकाय-शब्देन न व्यवह्रियते ।

### धर्मास्तिकायलक्षणम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहकारि कारणं धर्मास्तिकायः । जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते

वह परमाणु के बदले फिर प्रदेश कहलाने लगता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद बतलाये हैं (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु ।

काय का अर्थ है समूह । जिसमें या जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है । अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला । धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं । कालद्रव्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः काल 'कालास्तिकाय' नहीं कहलाता है ।

### धर्मास्तिकायका लक्षण—

स्वभाव से या प्रयोग से गतिक्रियामें परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं । जीवों और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है ।

आ अलिप्राये लगवाने पुद्गलास्तिकायना चार भेद बताव्या छे. (१) स्कंध, (२) देश, (३) प्रदेश अने (४) परमाणु.

कायना अर्थ छे—समूह, जेमां अथवा जेनां प्रदेशोना समूह होय ते अस्तिकाय कहेवाय छे, अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशोना समूह वाणा, धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समजवे जेधर्म अने अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय अने जीवास्तिकाय, जे अस्तिकायानां नाम छे.

कालद्रव्य—प्रदेशोना समूहरूप नहि होवाथी अस्तिकाय नथी तेथी काल जे 'कालास्तिकाय' कहेवाय नहि.

### धर्मास्तिकायनुं लक्षणम्—

स्वभावथी अथवा प्रयोगथी गतिक्रियामां परिणत थयेला जेवो अने पुद्गलोनी गतिमां जे सहकारी कारण होय, तेने धर्मास्तिकाय कहे छे. जेवो अने



गतिं प्रति, पुनस्तस्यामेव गति—क्रियायां धर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा सरित्समुद्राद्यवगाहनशीलानां मत्स्यानां स्वत एव जिगमिषा गतिश्च जायते, तत्र तेषां गमनं प्रति सहायरूपं निमित्तकारणं वारि । स्वयं तिष्ठतां तु मत्स्यानां न तत् प्रेरकं गमनाय ।

(२) यथा वा मृत्परिणामभूतस्य घटस्य दण्डो निमित्तकारणम् ।

(३) यथा वा स्वत एवावगाहमानस्य द्रव्यस्यावगाहनं प्रति गमनम्, न पुनरवगाहमानं द्रव्यं बलादवगाहयति तत् ।

इस गमनक्रिया में उपादान कारण वह स्वयं ही होते हैं, धर्मास्तिकाय सहायकमात्र होने से निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—नदी अथवा समुद्रमें अवगाहन करनेवाले मच्छो में गमन करने की इच्छा स्वयं ही उत्पन्न होती है और स्वयं ही वे गति करते हैं, जल उन की गति में सहायक रूप निमित्त कारण होता है । हाँ, मच्छ अगर ठहरे तो जल उन्हें गमन करने के लिये प्रेरित नहीं करता ।

(२) अथवा जैसे—मृत्तिका से बनने वाले घड़े में डंडा निमित्त कारण होता है ।

(३) अथवा जैसे—स्वयं ही अवगाहन करने वाले द्रव्य की अवगाहना में आकाश निमित्त कारण होता है ।

पुद्गलो नो गमनं कर्तुं ते स्वभाव एव छे, अथ गमन—क्रियायां उपादान कारणं ते चोते एव छे; धर्मास्तिकाय सहायकमात्रं चोवाथी ते निमित्त कारणं छे ।

(१) जेवी रीते नदी अथवा समुद्रमां अवगाहन करवावाणा मच्छोमां गमन करवाणी चोतानी एव इच्छा उत्पन्न थाय छे, अने चोते एव ते गति करे छे, परन्तु जल तेनी गतिमां सहायक रूप निमित्त कारण थाय छे परन्तु मच्छ जे स्थिर रहेवानी इच्छा करे तो जल तेने गमन करवा भाटे प्रेरण करतुं नथी ।

(२) अथवा जेवी रीते—भाटीथी तैयार थता घडांमां डंडा अने आक निमित्त कारण छे ।

(३) अथवा जेवी रीते—चोते एव अवगाहन करनारा द्रव्यना अवगाहनमां आकाश निमित्त कारण छे ।

(४) यथा वा-जलवृष्टौ सत्यां स्वयमेव कृषिकर्मारम्भं कुर्वतां कृषीवलानां कृषिकर्मारम्भं प्रति वृष्टिः सहकारि कारणं भवति ।

(५) अपरोऽपि शास्त्रीयो दृष्टान्तो दृष्टिपथमवतरति, यथा-‘सिद्धस्वरूपोऽहम्, अनन्तसुखभाजनोऽहम्’ इत्यादिभावनया व्यवहारनयेन शुद्धसिद्धस्वरूप-ध्यानकर्तृणां, निश्चयनयेन निर्विकल्पध्यानपरिणामिनां स्वयं तदुपादानकारणस्वरूपाणां भव्यानां स्वयमेव जायमानां सिद्धगतिं प्रति प्रेरणारहितो निष्क्रियो मूर्तिरहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायकः सन् सहकारि कारणं भवति, तद्वदमूर्तो निष्क्रियः प्रेरणारहितश्च धर्मास्तिकायो जीवानां पुद्गलानां च गतिरूपे परिणामे सहायकः सन्निमित्तकारणं भवति ।

(४) अथवा जैसे—जल की वर्षा होने पर स्वयं ही कृषिकार्य आरम्भ करने वाले किसानों के कृषिकार्य के आरम्भमें वृष्टि सहकारी कारण होती है ।

(५) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है—‘मै सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अनन्त सुख का भाजन हूँ’ । इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वालों को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला भव्यात्मा है, और प्रेरणारहित, निष्क्रिय, तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध भगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं । इसी प्रकार अमूर्तिक, निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गलों के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है ।

(४) अथवा जेवी रीते पाणी वरसवाथी जेडुत पोते ज जेतीना कामने आरंभ करे छे, जेतीने आरंभ करवावाणा जेडुतेना जेती कार्यना आरम्भमां वृष्टि ( वरसाद ) सहकारी कारण डोय छे

(५) ओक शास्त्रीय दृष्टान्त भीणुं पणु दृष्टिगोचर थाय छे:—

“ हुं सिद्ध स्वरूप छुं. हुं अनन्त सुखनुं लावन-पात्र छुं.” आ प्रकारनी लावनापूर्वक, व्यवहार नयथी शुद्ध सिद्ध भगवान-परमात्मानुं ध्यान करवावाणा अने निश्चयनयथी निर्विकल्प ध्यानमां परिणत थवा वाणाने जे सिद्ध-गति प्राप्त थाय छे तेमां उपादान कारण ध्यान करवावाणा पोते लव्यात्मा छे; अने प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक डोवा छतां पणु सिद्ध भगवान तेमां सहायक डोवाथी निमित्त कारण थर्ष नय छे.

जे प्रमाणे अमूर्तिक, निष्क्रिय अने प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय पणु जव अने पुद्गलानां गतिरूप परिणाममां सहायक डोवाथी निमित्त कारण छे.

ननु धर्मास्तिकायस्य दण्डादिवन्निमित्तकारणता नोपपद्यते, सव्यापारं हि कारणं भवति, निर्व्यापारस्य कारणत्वे युक्त्यभावादिति चेन्न,

धर्मास्तिकायस्य हि स्वाभाविकव्यापारसत्त्वात् कारणत्वं सूत्रपादम् । उक्तं च धर्मास्तिकायलक्षणं भगवता—

“ गङ्गलक्खणो उ धम्मो ” इति,

‘ गतिलक्षणस्तु धर्मः ’ इति ज्ञाया । ( उत्तराध्ययनसूत्रे २८ अ. ) गतिकार्यानुमेयो धर्मास्तिकाय इति भावः ।

शङ्का—धर्मास्तिकाय डडा आदि के समान निमित्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यापार नहीं करता, कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करने वाला ही कारण होता है । कार्य की उत्पत्ति में व्यापार न करने पर भी अगर किसी को कारण मान लिया जाय तो चाहे जो वस्तु चाहे जिस कार्य में कारण हो जायगी । ऐसी दशा में नियत कार्य-कारण भाव का अभाव हो जायगा ।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है; क्योंकि यहाँ हेतु असिद्ध है । गतिरूप कार्य में धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकायका स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होने के कारण उसे कारण मानना युक्तिसङ्गत है । भगवान् ने धर्मास्तिकायका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

“ गङ्गलक्खणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है । ( उत्तराध्ययनसूत्र अ० २८ ) अर्थात् गतिरूप कार्य से धर्मास्तिकायका अनुमान होता है ।

शंका—धर्मास्तिकाय डंड आदि प्रमाणों निमित्त कारण थर्म शक्तुं नथी, केभडे ते व्यापार करतुं नथी, कार्यनी उत्पत्तिमां व्यापार करनारज्जु कारणु होय छे. कार्यनी उत्पत्तिमां व्यापार नहि करवा छतां य जे केअने कारणु मानवामां आवशे ते गमे ते वस्तु गमे ते कार्यमां कारणु थर्म ज्जेशे. जेवी दशां नित्त कार्य कारणु भावने अभाव थर्म ज्जेशे.

समाधान—आ शंका ठीक नहीं; कारण के अर्हि हेतु असिद्ध छे. गतिश्च कार्यमां धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नथी, धर्मास्तिकायने स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होवार्थी नेने कारणु मानवुं ते युक्तिमंगत छे. भगवाने धर्मास्तिकायनुं लक्षणु आ प्रमाणु प्पताव्यु छे—

“ गङ्गलक्खणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गतिलक्षणुवाणु छे ( उत्तराध्ययन सूत्र अ० २८ ) अर्थात् गतिरूप कार्यथी धर्मास्तिकायनुं अनुमान थाय छे.

अस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) गति-सहायकत्वं चेति गुणाः । (१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः । अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एको धर्मास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति । गुणतश्चलनगुणः ।

### अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावतः स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वम-धर्मास्तिकायस्य लक्षणम् ।

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व, ये धर्मास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुरुलघुत्व, ये उसके पर्याय हैं । धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण, इस तरह पांच भेदों से जाना जाता है । जैसे-द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे आदि-अन्तरहित है, भावसे रूपादिरहित है-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से चलन-गुण वाला है ।

### अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभाव से स्थितिरूप परिणत हुए जीव और पुद्गलोकी स्थिति में सहकारी होना अधर्मास्तिकायका लक्षण है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व. ये सर्व धर्मास्तिकायना गुणो छे, (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश अने (४) अगुरुलघुत्व, ये तेना पर्याय छे. धर्मास्तिकाय-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुण, ये पांच भेदोथी ज्ञायी शक्य छे जेवी रीते-द्रव्यथी धर्मास्तिकाय अक छे, क्षेत्रथी लोकप्रमाण छे, कालथी आदि-अन्तरहित छे, भावथी रूपादिरहित छे-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श तेमां नथी, अने गुणथी चलन-गुणवाण छे.

### अधर्मास्तिकायनुं स्वरूप—

स्वभावथी स्थितिरूप परिणत थयेला जेवो अने पुद्गलोकी स्थितिमां सहकारी थयुं ते अधर्मास्तिकायनुं लक्षण छे.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा—स्वयं तिष्ठतां पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठतस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति ।

(२) यथा वा स्वयं तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठन्तं तु देवदत्तं न पृथिवी स्थापयति ।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दाः समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूपं चिन्तयन्तः क्षपकश्रणिं समारूह्य समुत्पन्न-

जीव और पुद्गल जब स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति में उपादान कारण तो स्वयं वही है, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अतः वह निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—स्वयं ठरने वाले पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी कारण होती है । अगर कोई न ठहरे तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती ।

(२) अथवा जैसे—स्वयं ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है । मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी जबर्दस्ती नहीं ठहराती ।

(३) अथवा जैसे—समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस में निमग्न समाधियुक्त मति वाले महात्मा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

जब अने पुद्गल न्यारे स्वभावથી જ स्थित થાય છે તો પોતાની स्थितिમાં उपादान कारण तो पोते જ છે, परन्तु अधर्मास्तिकाय तेमां सहायक थाय છે, તેથી ते निमित्त कारण છે

(१) જેવી રીતે—પોતે ઉભા રહેવા વાળા મુસાફરોની સ્થિતિમાં છાયા સહકારી કારણ હોય છે. અગર કોઈ ઉભા ન રહે તો તે ઉભા રહેવાની પ્રેરણા નથી કરતી.

(૨) અથવા—જેવી રીતે પોતે જ ઉભા ન રહેવા વાળા દેવદત્તની સ્થિતિમાં પૃથ્વી સહકારી કારણ છે, પરન્તુ જો દેવદત્તને ઉભા ન રહેવું હોય તો પૃથ્વી દેવદત્તને ખળખળરીથી ઉભો રાખી શકતી નથી.

(૩) અથવા—જેવી રીતે સમિતિ-ગુપ્તિના ધારક, રત્નત્રયની આરાધના કરવા-વાળા, સમભાવના રસમાં નિમગ્ન, સમાધિયુક્ત મતિવાળા મહાત્મા નિશ્ચયનયથી

केवलज्ञान-केवलदर्शनभृतः सन्तः सकलकर्मक्षयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परित्यज्य, सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं गतास्तिष्ठन्ति, तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्थितिपरिणतानां तत्र साद्यपर्यवसितां स्थितिं प्रति तत्स्थानं सहकारि कारणं भवति । न तु तत् स्थानं तानवस्थातुं प्रेरयति ।

(४) यथा व्यवहारनयेन सिद्धभक्त्या स्वयं समुत्पन्नसविकल्पध्यानावस्थितानां महात्मनां सविकल्पध्याने स्थितिं प्रति, निष्क्रियो मूर्तिरहितः प्रेरणारहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति । न त्वसौ तान् तद्दधाने स्थातुं प्रेरयति ।

हुए क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो कर उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को यहीं त्याग कर सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जाते हैं । निश्चयनय से स्वयं स्थिति में परिणत हुए उन सिद्ध जीवों की सादि-अनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है, किन्तु वह स्थान उन्हें ठहरने के लिए प्रेरित नहीं करता ।

(४) अथवा जैसे-व्यवहारनय से सिद्ध भगवान् की भक्तिसे स्वयं उत्पन्न हुए सविकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सविकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं, किन्तु वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते ।

आत्मस्वरूपनुं चिंतन करता थका क्षपकश्रेणी पर आरूढ थधने उत्पन्न केवलज्ञान अने केवलदर्शनने धारण करवा वाणा थधने समस्त कर्मोंने क्षय करीने औदारिक शरीरने अछिं न त्याग करीने सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त थध स्थिर थध जाय छे. निश्चयनयथी स्वयं स्थितिमां परिणत थथेला ते सिद्ध जीवानी सादि अनंत स्थितिमां ते स्थान सहकारी कारण डोय छे, परंतु ते स्थान तेने थोलवा भाटे प्रेरणा नथी करतुं.

(४) अथवा-जेवी रीते व्यवहारनयथी सिद्ध भगवान्नी लक्षितथी स्वयं उत्पन्न थथेला सविकल्प ध्यानमां अवस्थित महात्मा पुरुषोंनी सविकल्प ध्यानमां जे स्थिति छे, तेमां निष्क्रिय, अमूर्तिक अने प्रेरणारहित सिद्ध भगवान् सहायक डोवाथी निमित्त कारण डोय छे; पणु सिद्ध भगवान् तेने ध्यानमां स्थित थवानी प्रेरणा करता नथी.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

“अहम्मो ठाणलक्खणो” इति ( उत्तरा. अ. २८ )

‘अधर्मः स्थानलक्षणः’ इति च्छाया । लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षणं=परिचायकं ज्ञापकम् । स्थानं=स्थितिरेव लक्षणं=ज्ञापकं यस्याऽसाविति स्थानलक्षणः । स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः ।

अधर्मास्तिकायस्य—(१) अरूपित्वम् , (२) अचेतनत्वम् , (३) अक्रियत्वम् , (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः ।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—“अहम्मो ठाणलक्खणो” अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है । (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखी जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है । स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात् स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं ।

अधर्मास्तिकाय के गुण—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व है । (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं ।

એ અભિપ્રાયથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“અહમ્મો ઠાણલક્ખણો” અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિ લક્ષણ વાળા છે. (ઉત્તરાધ્યયન. અ. ૨૮)

જેના દ્વારા કોઈ વસ્તુ લખી શકાય (દેખી શકાય) અથવા જે વસ્તુને પરિચય કરાવનાર હોય તે લક્ષણ કહેવાય છે. સ્થાન અર્થાત્ સ્થિતિ જ જેનું લક્ષણ છે અર્થાત્ સ્થિતિરૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે, તેને અધર્માસ્તિકાય કહે છે.

અધર્માસ્તિકાયના ગુણ—(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ અને (૪) સ્થિતિસહાયકત્વ છે.

(૧) સ્કન્ધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, અને (૪) અગુરુલઘુત્વ, એ અધર્માસ્તિકાયના પર્યાય છે.

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यत एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणतः स्थितिगुणः ।

ननु धर्माधर्मशब्दाभ्यां पुण्यपापरूपौ शुभाशुभफलदौ धर्माधर्मौ कथं नात्र गृह्येते ? इति चेत्, उच्यते—तयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासंभवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमतौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूतौ, ततस्तयोर्न धर्माधर्मास्तिकायमध्ये समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि अन्त रहित है, भावसे अरूपी अर्थात् रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वाला है ।

शङ्का—धर्म शब्द से शुभ फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अशुभ फल देने वाले पाप का ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पुण्य और पाप, द्रव्य नहीं, गुण है, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । अथवा पुण्य—पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल है, अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें गर्भित नहीं किया जा सकता ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अने गुणना लक्ष्मी प्रांच प्रकारे जाणी शक्य छे जेभडे—अधर्मास्तिकाय द्रव्यथी अेक छे, क्षेत्रथी लोकप्रमाण छे, कालथी आदि—अन्त रहित छे, भावथी अरूपी अर्थात् रूप, रस गंध अने स्पर्शथी रहित छे, अने गुणथी स्थितिगुणवाणा छे.

शंका—धर्म शब्दथी शुभ इल आपवा वाणा पुण्य अने अधर्म शब्दथी अशुभ इल आपवा वाणा पापनु ग्रहणु शा भाटे करवामां आवतु नथी ?

समाधान—पुण्य अने पाप, द्रव्य नहीं, गुण छे अटला भाटे द्रव्यनां प्रकरणमां तेना समावेश थर्न शकतो नथी अथवा पुण्य—पापरूप धर्म अने अधर्म पुद्गलरूप छे, तेथी तेना समावेश पुद्गलमां न थर्न जाय छे धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकायमां तेने गर्भित नथी करी शकता,



## अथाकाशस्वरूपम्—

आ—समन्तात् काशते=अवगाहदानेन प्रतिभासते इत्याकाशम्, यद्वा-आकाशन्ते=दीप्यन्ते धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाः स्वस्वरूपेण यत्र तत् ।

धर्माधर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारतयाऽवकाशं ददातीत्यवकाशदायित्वं लक्षणमाकाशास्तिकायस्य । अत्रावकाशदायित्वं व्यवहारनयेनौपचारिकम् । अस्तिकायशब्दः प्राग् व्याख्यातः । उक्तं चोत्तराध्ययनसूत्रे ( २८ अध्ययने )—

“ भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणम् । ” इति ।

## आकाशका स्वरूप—

‘आकाश’ शब्द में ‘आ’ और ‘काश’ दो हिस्से हैं । ‘आ’ का अर्थ है—सभी ओर से—सर्वत्र, और ‘काश’ का अर्थ है—प्रकाशित होने वाला । तात्पर्य यह है कि अपने अवगाहदाननामक गुणसे सर्वत्र प्रभासित होता है, वह आकाश है । अथवा जहाँ धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव अपने-अपने स्वरूप से प्रकाशित होते हैं, उसे आकाश कहते हैं ।

धर्म, अधर्म, आदि समस्त द्रव्यों का आधार होकर जो उन्हें आश्रय देता है, वही आकाश है । अवकाश देने वाला ही आकाश कहलाता है । यहाँ ‘अवकाश देना’ आकाश का जो लक्षण बतलाया गया है, वह व्यवहारनयसे उपचरित कथन है । ‘अस्तिकाय’ शब्द की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है । उत्तराध्ययन सूत्र (अ० २८) में कहा है :—  
“भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं” इति ।

## आकाशानु स्वरूप—

‘आकाश’ शब्दमां ‘आ’ अने ‘काश’ जे लाग छे. ‘आ’नो अर्थ छे—आर्येय डैरथी—सर्वत्र, अने ‘काश’नो अर्थ छे प्रकाशित थवा वाणा, तात्पर्य जे छे डे-पोताना अवगाहदान ( अवकाश आपवो ) नामना गुणुथी जे सर्वत्र प्रतिभासित होय छे ते आकाश छे, अथवा ज्यां धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल अने जव पोतपोताना स्वरूपथी प्रकाशित होय छे—प्रतीत थाय छे तेने आकाश कडे छे.

धर्म, अधर्म आदि तमाम द्रव्येनो आधार जनी जे तेने आश्रय आपे छे ते आकाश छे. अवकाश आपनार ज आकाश कडेवाय छे. अवकाश आपवो ते आकाशनुं लक्षण जताववामां आव्युं छे, ते व्यवहारनयथी उपचाररूप कथन छे. ‘अस्तिकाय’ शब्दनी व्याख्या प्रथम ज कडी नीधी छे, उत्तराध्ययन सूत्र ( अ० २८ )मां कहुं छे डे— “ भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं ” इति.

‘भाजनं सर्वद्रव्याणां, नभोऽवगाहलक्षणम्’ । इति च्छाया ।

सर्वद्रव्याणां भाजनम् = आधारः, इति हेतुगर्भविशेषणम् । यतः सर्व-  
द्रव्याणां भाजनम्, अतः अवगाहलक्षणं नभ इति भावः ।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन जीवपुद्गलानामौपचारिकसंयोगविभागाभ्यां  
चावगाहः । अवगाह तत्तद्देशरूपोपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागा  
उपपद्यन्ते ।

अवगाहोऽवकाशः, स एव लक्षणं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहलक्षणं नभः=  
आकाशं कथ्यते, इत्यर्थः । अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः ।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाधारान्यथाऽनुपपत्तेराकाशमस्तीति निःशङ्कं विश्व-

‘आकाश’ सब द्रव्यों का आधार है । सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का  
आधार होनेसे अवगाह-लक्षण वाला है ।

‘धर्मास्तिकाय’ ‘आधर्मास्तिकाय’ और काल का आकाश में ही समावेश होने से जीव  
और पुद्गलों के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है । अवगाह होने पर  
देश के भेद से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं ।

तात्पर्य यह है कि—अवगाह या अवकाश ही जिस का लक्षण है, अर्थात् अवगाह  
से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है ।

आकाश न होता तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहां होती ? अर्थात् उनका  
कोई आधार ही नहीं रहता, अत एव आकाश का अस्तित्व, किसी प्रकार की शङ्का किये

आकाश सर्वद्रव्येभ्यो आधारः । सारांश ये छे के आकाश सर्व द्रव्येभ्यो  
आधार होवाथी अवगाहन लक्षणवाणुं छे ।

धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय अने कालेनो आकाशमां समावेश होवाथी एव  
अने पुद्गलेभ्यो औपचारिक संयोग अने विभाग द्वारा अवगाह थाय छे, अवगाह  
थवाथी देशना लेशथी अवगाह पणु भिन्न थय जय छे. अने संयोग तथा विभाग  
उत्पन्न थाय छे.

तात्पर्य ये छे के—अवगाह अथवा अवकाश न जेतुं लक्षण छे, अर्थात्  
अवगाहथी जेतुं अनुमान थाय छे ते द्रव्य आकाश छे. अथवा आकाश न होय  
तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्येभ्यो स्थिति कयां होय ? अर्थात् तेनो केध आधार न

सनीयम्, इत्यपि भगवता बोधितम् । आकाशसिद्धयर्थं ' भायणं सव्वद्व्वाणं'-  
इति, ' ओगाहलक्खणं ' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम् ।

आकाशं द्विविधम्-लोकालोकभेदात्, उक्तं च स्थानाङ्गसूत्रे—

“ दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव ” इति ।  
द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति च्छाया ।  
धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मकमाकाशखण्डं लोकाकाशम् । तद्भि-  
न्नमनन्तप्रदेशात्मकमलोकाकाशम् ।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पश्यामः, जीव-पुद्गलानां  
गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात् ? ।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान् ने उक्त कथन से ध्वनित कर दिया है ।  
आकाश की सिद्धि के लिये ' भायणं सव्वद्व्वाणं ' और 'ओगाहलक्खणं' ये दो विशेषण  
लगाये गये है ।

आकाश दो प्रकार का है-लोकाकाश, और अलोकाकाश । स्थानाङ्गसूत्र में कहा है—  
“दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि सब द्रव्यो का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश  
कहलाना है । लोकाकाश से भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है ।

शङ्का—जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलो की गति एव स्थिति में सहायक कारण  
हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यो को स्वीकार करने का कोई

न रहै, अटला भाटे आकाशना अस्तित्व, केअ नतनी पणु शंका कया वगर  
विश्राम करवा योग्य छे; अ पणु लगवाने उक्त कथनथी ध्वनित कथुं छे.  
आकाशनी सिद्धि भाटे 'भायणं सव्वद्व्वाणं' अने 'ओगाहलक्खणं' आ अे विशेषण  
लगावेला छे.

आकाश अे प्रकारना छे. (१) लोकाकाश अने (२) अलोकाकाश. स्थानांग  
सूत्रमां कथु छे —“दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा-लोगागासे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि तमाम द्रव्येनो आधार अने असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड  
ते लोकाकाश कडेवाय छे. लोकाकाशथी भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश छे.

शंका—अे के आकाश न एव अने पुद्गलोनी गति अने स्थितिमां सहायक  
कारण थर शके छे तो पछी धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकाय द्रव्येनो स्वीकार

अत्रोच्यते-धर्मश्चाधर्मश्चेति द्रव्यद्वयमवश्यमङ्गीकरणीयम्, अन्यथा दोषबाहुल्यप्रसङ्गात् ।

(१) आकाशस्य गतिहेतुत्वस्वीकारे जीवपुद्गलानामलोकाकाशगमनापत्तिः ।

(२) अलोकाकाशस्यापि जीवपुद्गलपूर्णत्वे लोकत्वप्रसंगः, तथा चालोकाकाशस्य नामाऽपि बन्ध्यापुत्रवदेव स्यात् ।

(३) भगवत्प्ररूपिताऽऽकाशद्वैविध्यव्यवस्थाऽपि न सिद्धयेत् ।

प्रयोजन दिखाई नहीं देता ।

**समाधान**—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य अवश्य स्वीकार करना चाहिये । उन्हे स्वीकार न करने से बहुतसे दोष आते हैं । वे इस प्रकार—

(१) आकाश को ही गति का कारण मान लिया जाय तो जीवों और पुद्गलों का अलोकाकाश में भी गमन मानना पडेगा, क्योंकि अलोकाकाश भी तो आखिर आकाश ही है ।

(२) अलोकाकाश अगर जीवों और पुद्गलों से व्याप्त मान लिया जाय तो वह अलोकाकाश न रहकर लोकाकाश ही हो जायगा । ऐसी स्थिति में अलोकाकाश तो बन्ध्यापुत्र के समान हो जायगा, अर्थात् अलोकाकाश का अस्तित्व नहीं रहेगा ।

(३) भगवान् ने दो प्रकार का आकाश बतलाया है, वह व्यवस्था भङ्ग हो जायगी ।

करवानुं कोઈ પણ प्रयोजन लेवामां आवतु नथी.

**समाधान**—धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यनो अवश्य स्वीकार करवो लेछंअ, तेनो स्वीकार नहिं करवाथी थंडुं न दोष आवे छे, ते आ प्रमाणे—

(१) आकाशने न गतिनु कारण मानी लेवामां आवे तो लवे अने पुद्गलोनुं अलोकाकाशमां पणु गमन मानवुं पडशे, केमके अलोकाकाश पणु छेवटे तो आकाश न छे.

(२) अथवा अलोकाकाश लवे अने पुद्गललोथी व्याप्त मानी लेशो तो ते अलोकाकाश नहिं रहेटां लोकाकाशन थं नशे, अथी स्थितिमां अलोकाकाश तो बन्ध्या पुत्रना समान थं नशे, अर्थात् अलोकाकाशनुं अस्तित्व न रहेशे नहिं.

(३) भगवाने छे प्रकारना आकाश बताव्यां छे, ते व्यवस्था लंग थं नशे.

(४) अपिच—सिद्धभगवान् ऊर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेऽवस्थित इति मर्यादाऽपि खपुष्पायमानैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशे विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरवरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोराकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत उर्ध्वमलोकाकाशस्य सत्त्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्तित्वेन लोकमध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एवं च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जछे

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाते हैं, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह ऊर्ध्व देश में लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यमान है, अतः सिद्धों की गति में रुकावट नहीं होगी ।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश में गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अतः लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अतः धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहीं अर्थात् लोकाकाशके

(४) सिद्ध भगवान् उपर वर्धने लोकना अग्रभागमां स्थित थाय छे, ते आगमर्ना मर्यादा पणु आकाश-पुष्पना समान धर्म नशे.

(५) आपना मत प्रमाणे गतिनुं कारण आकाश छे अने ते ऊर्ध्व-उपरना देशमां लोकाकाशना अग्रभागथी पणु आगण विद्यमान-हैयात छे, तेथी सिद्धोनी गतिमां रुकावट-रोकाणु नहि थाय.

धर्म द्रव्य अने अधर्मद्रव्यने आकाशथी भिन्न मानी देवार्थी लोकाकाशथी उपर अलोकाकाशमां गतिनुं कारण धर्मद्रव्य नथी, तेथी लोकाकाशथी आगण गति पणु यती नथी, तथा स्थितिनुं कारण अधर्मद्रव्य लोकना अन्तर्गतन (अंदरन) छे, तेथी धर्मद्रव्यनी सहायताथी सिद्ध लोकना अंत सुधी पडोंगीने अधर्मद्रव्यनी

તુમ્બીવદિતિ મર્યાદા સુતરામુપપદ્યતે । ઉક્તં ચૌપપાતિકમૂત્રે-

“કહિં પડિહયા સિદ્ધા, કહિ સિદ્ધા પડિહયા ।  
કહિં બોંદિં ચઇત્તા ણં, કત્થ ગંતૂણ સિજ્ઝઇ ॥ ૧ ॥  
અલોગે પડિહયા સિદ્ધા, લોયગ્ગે ય પડિહયા ।  
ઇહ બોંદિં ચઇત્તા ણં, તત્થ ગંતૂણ સિજ્ઝઇ ॥૨॥” ઇતિ ।

છાયા—

“કુત્ર પ્રતિહતાઃ સિદ્ધાઃ, કુત્ર સિદ્ધાઃ પ્રતિષ્ઠિતાઃ ।  
કુત્ર બોન્દિં (શરીરં) ત્યક્ત્વા, કુત્ર ગત્વા સિદ્ધચતિ ॥૧॥  
અલોકે પ્રતિહતાઃ સિદ્ધાઃ, લોકાગ્રે ચ પ્રતિષ્ઠિતાઃ ।  
ઇહ બોંદિં (શરીરં) ત્યક્ત્વા, તત્ર ગત્વા સિદ્ધચતિ ॥ ૨ ॥ ઇતિ

અન્તર્ગત હી ઠહર જાતા હૈ । ઇસ પ્રકાર જલકે અગ્રભાગ પર ઠહરે હુણ તુંબે કે સમાન સિદ્ધ ભગવાન્ લોકાકાશ કે અગ્રભાગ પર સ્થિત હૈ, યહ મર્યાદો સ્વતઃ સિદ્ધ હો જાતી હૈ ।

ઔપપાતિકસૂત્ર મેં કહા હૈ—

“સિદ્ધ ભગવાન્ કહાં રુકજાતે હૈ / કહાં સ્થિત હોતે હૈ ? । કહાં શરીર કા ત્યાગ કરકે કહાં જાકર સિદ્ધ હોતે હૈ / ॥૧॥

સિદ્ધ ભગવાન્ અલોક મેં રુક જાતે હૈ, લોકકે અગ્રભાગ મેં સ્થિત હોતે હૈ । યહાં શરીર કા ત્યાગ કરકે વહાં જાકર સિદ્ધ હો જાતે હૈ ॥૨॥”

સહાયતાથી ત્યાં જ અર્થાત્ લોકાકાશના અંદરજ થાલી જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જલના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત રહેલા તુંબડાની પેઠે સિદ્ધ ભગવાન્ લોકાકાશના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત છે. આ મર્યાદા સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે—

“સિદ્ધ ભગવાન્ ક્યાં રોકાઈ જાય છે ? ક્યાં સ્થિત થાય છે ? ક્યાં શરીરનો ત્યાગ કરીને, ક્યાં જઈને સિદ્ધ થાય છે ? ॥ ૧ ॥

સિદ્ધ ભગવાન્ અલોકમાં રોકાઈ જાય છે, લોકના અગ્રભાગમાં સ્થિત થાય છે, અહિં શરીરનો ત્યાગ કરીને ત્યાં જઈને સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥ ૨ ॥ ”

नन्वेवं धर्माधर्मद्रव्ये एव समाद्रियेताम्, किमाकाशद्रव्यावलम्बनेन, आकाश-कार्यावगाहसाहाय्यं धर्माधर्मद्रव्याभ्यामेव संपद्येत?, इति चेत्, उच्यते—सिद्धान्ते तयोर्जीवादिगतिस्थितिसाधकत्वेन सिद्धान्तितत्वादवकाशं दातुं तौ न प्रभवतः। अन्यसाध्यं कार्यमन्यो न साधयति, अन्यथाऽतिप्रसंगात्। लोकेऽपि चक्षुस्साध्यं दर्शनकार्यं न श्रोत्रं साधयति।

ननु केवलज्ञानस्य योऽनन्ततमो भागस्तत्प्रमाणमेव नभोद्रव्यम्, तस्य चानन्ततमभागपरिमितं लोकाकाशम्, एतादृशेऽल्पतमरूपे लोकाकाशे लोकाकाश-

शङ्का—यदि ऐसा हो तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही स्वीकार करलेने चाहिये, फिर आकाश की क्या आवश्यकता है? आकाश का कार्य अवगाह देना है सो वह कार्य धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य से ही सम्पन्न हो जायगा।

समाधान—आगम में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को गति और स्थिति में ही सहायक बतलाया है, इस लिए वह अवकाश देने में समर्थ नहीं है, और का कार्य कोई और नहीं कर सकता। अगर ऐसा होने लगे तो सर्वत्र गड़बड़ हो जायगा। लोक में चक्षुका देखना कार्य कान नहीं कर सकता।

शङ्का—केवल ज्ञान का जो अनन्तवाँ भाग है उसी के बगव आकाशद्रव्य है, और आकाश-द्रव्य का भी अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है तो इतने छोटे से लोकाकाश में समस्त लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशवाले धर्मद्रव्य का, अधर्मद्रव्य का, अनन्तानन्त जीवां का

शङ्का—जे जे प्रमाणे छे तो धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यनो स्वीकार करी लेवे जेधजे, करीने आकाशनी शु आवश्यकता छे? आकाशतुं कार्य अवगाह-अवकाश आपवे ते छे, ते कार्य धर्मद्रव्य अने अधर्म द्रव्यथी ज स पन्न थध जशे.

समाधान—आगममां धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यने गति अने स्थितिमां सहायक बताव्या छे, ओटला भाटे ते अवकाश आपवामां समर्थ नथी भीजतुं कार्य होध भीजे नहि करी शके, जे जेम थवा लागशे तो सर्वत्र गड़गड़ थध जशे. जगतमा नेत्रधी जेवानुं कार्य जान करी शकता नथी.

शङ्का—केवलज्ञाननो जे अनन्तमे लाग छे तेना अराणर आकाशद्रव्य छे, अने आकाशद्रव्यनो पणु अनन्तमे लाग लोकाकाश छे, तो जेवज नाना सरणा लोकाकाशमां समस्त लोकव्यापी अने असंख्यात प्रदेशवाणा धर्मद्रव्यनो, अधर्म-

व्यापिनोः प्रत्येकप्रसंख्यातप्रदेशात्मकयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोरनन्तजीवानां तेभ्योऽ-  
प्यनन्तगुणपुद्गलानां च कथं समावेशः, एकस्य लोकाकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशदाना-  
संभवात्?, इति चेदुच्यते—

लोकाकाशस्यावकाशशक्तिर्हि महीयसी विलक्षणा चिन्तयितुमशक्या च,  
अत एव भगवता—“भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं” इत्युक्तम् ।

नभसोऽवकाशशक्तिं केवललोकेनावलोक्य सर्वद्रव्याणामाधारत्वं भगवता  
प्रतिबोधितम् । महीयसी नभसोऽवकाशशक्तिः, सुकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश  
इति तदाशयः ।

यथा—वतासानामधेयं मधुरद्रव्यं दुग्धपरिपूरितेऽपि भाजने निहितं सत्

और उन से भी अनन्तगुने पुद्गलोंका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोकाकाश  
समस्त द्रव्यों को अवगाह दे सके, यह असम्भव है ।

समाधान—लोकाकाश की अवकाश देने की शक्ति महान् है, विलक्षण है, और अचिन्त्य  
है, इसीलिये तो भगवान् ने कहा है—“भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं”  
अवगाहलक्षण वाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है ।

भगवान् ने अपने केवलज्ञान में आकाश की अवगाहदानशक्ति को देखकर उसे सब  
द्रव्यों का आधार निरूपण किया है । भगवान् के कथन का अभिप्राय यही है कि आकाश  
की अवगाहनाशक्ति बहुत बड़ी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है ।

जैसे—दूध से परिपूर्ण पात्र में बतासे डाल दिये जायँ तो वे उसी में समाविष्ट हो

द्रव्येनो, अनन्तानन्त एवेनो अने तेनाथी पण् अनन्तगण्ण पुद्गलेनो समावेश  
केवी रीते थर्ध शके? अेक लोकाकाश समस्त द्रव्येनो अवगाह-अवकाश आपी  
शके, अे असंभव छे.

समाधान—लोकाकाशनी अवकाश आपवानी शक्ति मडान छे, विलक्षण्ण छे  
अने अचिन्त्य छे अेटला भाटे लगवाने उह्युं छे—“भायणं सव्वदव्वाणं नहं  
ओगाहलक्खणं” अवगाहलक्षण्णवाणा आकाश सर्व द्रव्येनो आधार छे. लगवाने  
पोताना केवल ज्ञानमां आकाशनी अवगाहदान-अवकाश आपनारी-शक्ति जेधने  
तेने ‘सर्व द्रव्येनो आधार छे’ अेम निरूपण्ण उर्युं छे. लगवानना वचननो  
अभिप्राय अे छे के-आकाशनी अवगाहनशक्ति अहुं अ मोटी छे. अने तेमां  
सर्व द्रव्येनो समावेश सरलताथी थर्ध जय छे

जेवी रीते दूधना परिपूर्ण पात्रमां बतासा नाणवामा आवे तो ते तेमां



तस्मिन् समाविशति । यथा वा भित्तौ शङ्कोः समावेशस्तथैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम् ।

नन्वलोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य?, इति चेत्, उच्यते—गतिस्थितिकारणयोर्धर्माधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति । तदस्वीकारे तु जीवद्गलानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धानां चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामलोकाकाशं सिद्धम् ।

जाते है, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है ।

शङ्का—अलोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है ? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस में घटित होता है ?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अलोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है । अगर अलोकाकाश न माना जाय तो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी वेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त ही न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अलोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी । इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अलोकाकाश की सिद्धि होती है ।

(इधमां) समाविष्ट—अतोतप्रोत थर्ध न्य छे, अथवा जेवी रीते दीवालमां कील—भीदीने। समावेश थर्ध न्य छे, ते प्रमाणे लोकाकाशमां अनन्त द्रव्येने। समावेश थर्ध न्य छे.

शंका—अलोकाकाशनी सिद्धि केवी रीते होई शके ? ते द्रव्येने। आधार नथी अने अवकाशदानरूप लक्षण तेनामां घटी शकतुं नथी.

समाधान—गति अने स्थितिना कारण धर्म अने अधर्म द्रव्येने। अभाव होवना कारणे न अलोकाकाशनी द्रव्याधारतानी शक्ति अने अवकाशदान—शक्ति प्रकट थती नथी. अथवा अलोकाकाश मानवामां नहि आवे तो जेवो अने पुद्गलेनी, तथा धर्मरूपी वेडीथी मुक्त थयेला सिद्ध जेवोनी गतिने। कथांय अन्त—छेडा न नहि आवे. अने भगवाने कहेली लोक—अलोकनी व्यवस्था पणु कायम नहि रहे. अे प्रमाणे आगम अने युक्ति प्रमाणेथी अलोकाकाशनी सिद्धि थाय छे,

अन्यसकलद्रव्यापेक्षया महत्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तप्रदेशित्वात् ।  
तेनाकाशं महास्कन्धरूपम् ।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्,  
(४)-अवगाहदायित्वं चेति गुणाः । (१)-स्कन्धः, (२)-देशः, (३)-प्रदेशः,  
(४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एक  
आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो  
रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति । गुणतोऽवकाशदायी ।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बड़ा है, क्योंकि वह अनन्तप्रदेशी  
है, अतः आकाश महास्कन्धरूप है ।

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व, (४) अवगाहदायित्व, ये  
आकाशास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व,  
उसके पर्याय है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुणके भेदसे आकाश द्रव्य पाँच प्रकार से जाना जाता  
है । जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-  
अन्त रहित है-भावसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते ।  
गुणसे अवकाश देने वाला है ।

आकाशानुं परिमाणं भीतं सर्वं द्रव्योनी अपेक्षाये मोटु छे, केमके ते  
अनन्तप्रदेशी छे. ओटले के आकाश महास्कंधरूप छे.

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) अवगाहदायित्व, ये  
आकाशास्तिकायना गुण छे, अने (१) स्कंध, (२) देश, (३) प्रदेश, तथा अगुरु-  
लघुत्व, तेना पर्याय छे.

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना लेदथी आकाश द्रव्य पांच प्रकारथी  
जानी सकाय छे. केमके—द्रव्यथी आकाशास्तिकाय ओक छे, क्षेत्रथी लोकालोकप्रमाण  
छे, कालथी आदि-अन्तरहित छे, भावथी अरूपी छे-तेमां वर्ण, गंध, रस अने  
स्पर्श नथी, गुणथी अवकाश आपवावाणुं छे.

### कालनिरूपणम्—

तत्र कालशब्दस्य व्युत्पत्तिः—

कलयते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति कालः । करणे घञ् । 'मासिकोऽयं बालः, वार्षिकोऽयं बालः, वासन्तिकमिदं पुष्पम्' इत्यादिरूपेण वस्तूनां परिच्छेदो=निर्णयः कालमाश्रित्य भवति ।

अथवा स्वभावतः परिणमद्भिः पदार्थजातैः, कलयते=गम्यते=प्राप्यते निमित्तत्वेनाऽसौ, इति कालः । सकलवस्तुपरिणतिहेतुः काल इत्यग्रे वक्ष्यते ।

### कालनिरूपणम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जिस के द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है । यहाँ करणमें 'घञ्' प्रत्यय हुआ है । यह बालक मासिक (एक मासका) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भरका) है, यह फूल वासतिक (वसन्तऋतुसम्बन्धी है, इस रूपमें वस्तुओं का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है ।

अथवा स्वभावसे परिणत होने वाले पदार्थ समूहों द्वारा निमित्त रूपमें जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है । 'काल, समस्त वस्तुओं के परिणमन का हेतु है यह बात आगे बतलाई जायगी ।

### कालनिर्णयम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

नेना द्वारा वस्तु ज्ञानी शक्य ते काल छे. अङ्गि' करणुमां 'घञ्' प्रत्यय थयो छे "आ बालक मासिक-एक मासने छे, आ बालक वार्षिक-एक वर्षने छे, आ फूल वासतिक-वसन्तऋतुसम्बन्धी छे" अे इपमां वस्तुओनुं ज्ञान काल द्वारा ज्ञाय छे.

अथवा स्वभावथी परिणत थवावाणा पदार्थसमूहो द्वारा निमित्तइपमां जे प्राप्त करी शक्य ते काल छेवाय छे. "काल समस्त वस्तुओना परिणमननुं कारण छे" अे आगण जताववामां आवणे.

### कालस्य सिद्धिः—

‘पदार्थाः सन्ति, अथवा पदार्था वर्तन्ते’ इति व्यवहारो वर्तनामूलः । “अनुदात्तेतश्च हलादेः”—रिति पाणिनिस्त्रेण वृत्धातोर्युच्प्रत्ययः । वर्तनशीला वर्तना । उत्पत्तिः, अप्रच्युतिः, विद्यमानताख्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना । इयं वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते । वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः । पदार्थानां वर्तनारूपं कार्यं नोपपद्यते विना केनचिन्निमित्तकारणेन, तस्माद् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ यन्निमित्तं धर्मद्रव्यमिव गतौ, स एव काल इत्युच्यते ।

### काल की सिद्धि—

‘पदार्थ है, या पदार्थ वर्त रहे हैं’ इस प्रकार के व्यवहार का कारण वर्तना है । ‘अनुदात्तेतश्च हलादेः’ पाणिनि के इस सूत्र से ‘वृत्’ धातु से ‘युच्’ प्रत्यय हुआ है । वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं । उत्पत्ति, अप्रच्युति, और विद्यमानतारूप वृत्ति अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है । यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है । वह पदार्थों का विशेष परिणाम है । पदार्थों का वर्तनारूप कार्य किसी निमित्त कारण विना नहीं हो सकता अतः वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही काल-द्रव्य है, जैसे गति का निमित्त कारण धर्म द्रव्य है ।

### कालनी सिद्धि—

‘पदार्थं छे अथवा पदार्थं वर्त्तं रहैल छे’ अे प्रकारना व्यवहारनुं कारण वर्त्तना छे ‘अनुदात्तेतश्च हलादेः’ पाणिनिना आ सूत्रथी ‘वृत्’ धातुथी ‘युच्’ प्रत्यय थयो छे. जे वर्तनशील होय तेने वर्त्तना कहे छे. उत्पत्ति, अप्रच्युति, अने विद्यमानतारूप वृत्ति, अर्थात् क्रिया वर्तना कहेवाय छे. वर्तना सर्व पदार्थोमां विद्यमान छे. ते, पदार्थोनु विशेष परिणाम छे. पदार्थोनुं वर्तनारूप कार्य कौन निमित्त कारण विना थर् शकतुं नथी. तेथी वर्तनारूप कार्यनी उत्पत्तिमां जे निमित्त कारण छे ते काल द्रव्य छे. जेवी रीते गतिनुं निमित्त कारण धर्म-द्रव्य छे.

## કાલસ્ય લક્ષણમ્—

સ્વભાવતો વિદ્યમાનાનાં પદાર્થાનાં યા વિદ્યમાનતાસ્થ્યા વર્તના, તાં પ્રતિ સહકારિકારણત્વં કાલસ્ય લક્ષણમ્ ।

અનેનૈવાશયેન ભગવતાઽપ્યુક્તમ્—“વટ્ટણાલક્ષણો કાલો” ઇતિ, વર્તનાલક્ષણઃ કાલઃ, ઇતિ ચ્છાયા । વર્તના, લક્ષણં=કાર્યત્વેન પ્રત્યાયકં, યસ્ય સ વર્તનાલક્ષણઃ, વર્તનાકાર્યાનુમેયઃ કાલ ઇત્યર્થઃ । અત્ર વર્તનેત્યુપલક્ષણં પરિણામક્રિયા-પરત્વાપરત્વાદીનામ્ ।

પરિણામો હિ વસ્તૂનાં નોપપદ્યતે કારણં નિયામકમન્તરેણ, અન્યથા નિયામકહેત્વભાવે સર્વે ભાવા યુગપદુત્પદ્યેરન્ । કિન્ચ—કારણમન્તરેણાપિ કાર્યોત્પત્તિઃ

## કાલ કા લક્ષણ—

સ્વભાવ સે વિદ્યમાન પદાર્થોં કી વિદ્યમાનતારૂપ જો વર્તના હૈ ઉસ મે સહકારી કારણ હોના કાલ કા લક્ષણ હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ભગવાન્ને મો કહા હૈ—“વટ્ટણાલક્ષણો કાલો” “કાલ વર્તનાલક્ષણ વાલ્યા હૈ ।” વર્તના હૈ લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જિસ કા, અર્થાત્ વર્તનારૂપ કાર્ય સે જિસકા અનુમાન હોતા હૈ ઉસે કાલ કહતે હૈ । વહોં વર્તના ઉપલક્ષણ હૈ ઉસસે પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ, (પહલાપન), ઓર અપરત્વ (પીછાપન) કા મો ગ્રહણ હો જાતા હૈ ।

નિયામક કારણકે અભાવ મેં પદાર્થોં કા પરિણમન નહોં હો સકતા, અગર ઈસા ન માના જાય તો સમી પદાર્થોં કો ઈક સાથ હી ઉત્પત્તિ હોને લગેમી । તથા કારણ કે વિના મી

## કાલનું લક્ષણ—

સ્વભાવથી વિદ્યમાન પદાર્થોની વિદ્યમાનતારૂપ જે વર્તના છે, તેમાં સહકારી કારણ થવું તે કાલનું લક્ષણ છે. આ અભિપ્રાયથી ભગવાને પણ કહ્યું છે—

“વટ્ટણાલક્ષણો કાલો” કાલ વર્તનાલક્ષણ વાળો છે વર્તના છે લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જેનું, અર્થાત્ વર્તનારૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે. તેને કાલ કહે છે. વર્તના ઉપલક્ષણ છે તેથી પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ (પહેલાપણું) અને અપરત્વ (પાછાપણું)નું ગ્રહણ થઈ જાય છે.

નિયામક કારણના અભાવમાં પદાર્થનું પરિણમન થતું નથી. જે એવું માનવામાં ન આવે તો સર્વ પદાર્થોની એક સાથે જ ઉત્પત્તિ થઈ જશે, તથા કારણ વિના પણ

प्रसज्येत, अपराधीनत्वात् परिणामानाम्, अतः परिणामाः प्रतिनियतकालभाविनः, तेषामनेकशक्तियुक्तमेकं कारणं कालाख्यमित्यवश्यमङ्गीकरणीयम् ।

तास्ताश्च शक्तयः स्वस्वकार्यकरणाय कालविशेष एव प्रवर्तन्ते, न सर्वदा, तादृशस्वभाववत्त्वात् । यथा-अङ्कुररूपेण परिणतस्य वनस्पतेर्मूल-काण्ड-त्वक्-पत्र-स्कन्ध-शाखा-विटप-पुष्प-फलरूपाः परिणामा न युगपद् भवन्ति । आसीदङ्कुरः, संप्रति स्कन्धवान्, ऐषमः पुष्पिष्यति' इति व्यवहारात् । यथा वा पुरुषस्य बाल-कुमार-युव-मध्यमाद्यवस्थारूपाः, नव-पुराण प्रनष्टरूपाश्च परिणामा न युगपद् भवन्ति,

कार्य की उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, क्योंकि परिणाम किसी कारण पर निर्भर तो होंगे नहीं, विना कारण ही होंगे, लेकिन ऐसा नहीं होता, परिणाम नियत समय पर ही होते हैं, अतः अनेक शक्तियों से युक्त एक काल नामक कारण अङ्गीकार करना चाहिए ।

वह अनेक शक्तियाँ अपना अपना कार्य करने के लिये किसी विशेष काल में ही उद्यत होती है, सर्वदा नहीं, क्योंकि उन का स्वभाव ही ऐसा है, जैसे कि-अङ्कुररूप से परिणत वनस्पति का मूल, काण्ड, त्वचा, पत्र, स्कन्ध, शाखा, विटप, पुष्प और फल रूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं । पहले अंकुर था, अब स्कन्धवाला हो गया, कुछ दिनों के बाद वह फूलेगा, इस प्रकार का लोकव्यवहार प्रसिद्ध ही है । अथवा-जैसे पुरुष के बाल, कुमार, युवा, मध्यम आदि अवस्था, तथा

कार्यनी उत्पत्तिना प्रसंग उपस्थित थसे. केमके परिणाम केध पर निर्भर रहेसे नडि, विना कारणे न थसे, परन्तु अेवी रीते डोय नडि परिणाम नियत समय पर न डोय छे, अेटला भाटे अनेक शक्तिअेथी युक्त अेक काल नामनु कारण अंगीकार करवुं न्नेधअे.

ते अनेक शक्तिअे पोत-पोतानुं कार्य करवा भाटे केध विशेष कालमां न उद्यत-प्रकाशित थाय छे. सर्वदा थती नथी. केमके तेना स्वभाव न अेवो छे, न्नेमके-अंकुररूपथी परिणत वनस्पतिनुं मूल, कांड-कातणी, छाल, पत्र, स्कंध, शाखा, विटप-काणी, पुष्प, फल-रूप परिणमन अेक साथे थतां नथी. प्रथम अंकुर डतुं, पछी स्कंधवाणुं थयुं, अने डेटलाक द्विवसे पछी ते डूलसे, अे प्रमाणे लोकव्यवहार पणु प्रसिद्ध न छे. अथवा न्नेवी रीते पुरुषने आद्य, कुमार, युवा, मध्यम आदि अवस्था, तथा नवापाणुं अने जुनापाणुं अने प्रनष्ट-नाशरूप परिणमन अेक साथे थतुं नथी, अेटला भाटे समस्त परिणामानुं नियामक निमित्त

तस्मात्सर्वेषां परिणामानां नियामकं निमित्तकारणं काल इति सिद्धम् । यथा कर्त्तरी वस्त्रकृन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणां पर्याये निमित्तकारणं कालः ।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः । तस्या अपि नियामकं निमित्तकारणं कालः । यथा—‘आकाशदेशे—अङ्गुलिरस्ति, आसीत्, भविष्यति च’ इत्ययं व्यवहारः काल-मवलम्ब्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रिया-नियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् “अस्ति कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति” इति, मन्तव्यम् ।

नयापन, पुरानापन, और प्रणष्टरूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं, अत एव समस्त परिणामो का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है । जैसे कैंची वस्त्र काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणमन में काल निमित्त कारण होता है ।

क्रिया द्रव्य का परिणामविशेष है । उसका निमित्त कारण भी काल ही है । जैसे ‘आकाश में अंगुली है, थी और होगी’ इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है । काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत ( भविष्य ) हो जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है । इस प्रकार अतीत आदि कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अतः “काल अवश्य है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते हैं” ऐसा मानना ही समुचित है ।

कारण काल न सिद्ध थाय छे जेभके काल, वस्त्रने कापवामां निमित्त कारण थाय छे, ते प्रमाणे द्रव्येना परिणमनमां काल निमित्त कारण थाय छे.

क्रिया अे द्रव्यनुं परिणाम विशेष छे. तेनुं निमित्त कारण पण काल नं छे. जेभ ‘आकाशमां आगणी छे, उती अने हुशे’ आ प्रकारने व्यवहार कालने आश्रित छे. कालनी सत्ता न मानवामां आवे तो अतीत-भूतकाल न वर्तमान अने भविष्य काल थर्ष नशे, जेभके क्रियाने नियामक केर्ष नथी, आ प्रमाणे अतीत भूतकाल आदि कालेने विभाग नहि रहवार्थी व्यवहारने लोप थर्ष नशे. अटला भाटे “काल अवश्य छे, जेनी सहायताथी भूतकाल आदिने व्यवहार स्पष्टरूपथी सिद्ध थाय छे” जेभ मानवुं ते न योग्य छे.

प्रतिदिवसमुभयकालिकसकलवस्त्रपात्रादिप्रतिलेखनं, प्रत्यहोरात्रमुभयकालिक-  
मावश्यकं, चतुष्कालिकं स्वाध्यायकरणं मुनीनां कर्तव्यतया भगवतोपदिष्टं, तच्च  
कालस्यासत्त्वे तद्विभागज्ञानाभावेन यथाकालमनुष्ठातुमशक्यं मुनिभिरिति  
शास्त्रानर्थक्यमापद्येत ।

भिक्षार्थमकालवर्जनपूर्वककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकर्तव्यता भगवत्प्ररूपिता  
गृहीतप्रव्रज्यानां भिक्षूणां नष्टप्राया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनों वक्त समस्त वस्त्र पात्र आदि का प्रतिलेखन करना, प्रत्येक  
दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना, चौकालीन स्वाध्याय करना भगवान् ने  
मुनियों का कर्तव्य बतलाया है । अगर कालद्रव्य की सत्ता न मानी जाय तो दिन रात  
आदि के भेद का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब कार्य नहीं किये जा सकेंगे ।  
ऐसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा ।

“अकाल का त्याग कर के समुचित समय पर मुनियों को भिक्षा के लिए जाना  
और आना चाहिए ” भगवान् ने मुनियों का यह कर्तव्य बतलाया है, कालद्रव्य न  
मानने पर यह सब कर्तव्य, और उनका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा ।

प्रतिदिन अन्ने वप्यत समस्त-तमाम वस्त्र, पात्र आदिषुं प्रतिदोषनं करवुं,  
प्रत्येक दिवस अने रात्रिना अन्तमां आवश्यक करवुं, चौकालीन-आर्येय काल स्वाध्याय  
करवो. ते भगवाने मुनिओनुं कर्तव्य अताव्युं छे. अगर कालद्रव्यनी सत्ता नहि  
मानो तो दिवस रात वगेरे लेहनेो पत्तो भणशे नहि, अने समय पर आगण  
कडेलां सर्वं कार्योकरि शकशे नहि, येवी अवस्थांमां शास्त्रोनेो ये उपदेश निरर्थक  
थरुं नशे.

“अकालनेो त्याग करीने योग्य समय पर मुनिओये भिक्षाने भाटे नवुं-आववुं  
लेधये” भगवाने मुनिओनुं ये कर्तव्य कहुं छे. कालद्रव्यने नहि मानवामां आवे  
तो आ सर्वं कर्तव्य अने तेमनेो उपदेश पणु नष्टप्राय थरुं नशे.



किञ्च—ग्रीष्मादिषु संयतानामतापनादयो धर्माः भगवदुक्ताः कालसत्त्व एवोपपद्यन्ते । अन्यथा ग्रीष्मादिऋतुज्ञानाभावाद् भगवदुपदिष्टक्रियाहानिः प्रसज्येत ।

एवं च वर्तना, परिणामः, क्रियाश्च द्रव्यस्वभावाः कालमाश्रित्य भवन्तीति निरूपितम् ।

परापरव्यतिकरज्ञानमपि कालेनैव संपद्यते । विप्रकृष्टः कनिष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेण परोऽपि कालेनापरः, संनिकृष्टो ज्येष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेणापरोऽपि

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं में साधुओं के लिये भगवान् ने आतापना आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है । काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान् द्वारा उपदिष्ट क्रिया की हानि हो जायगी ।

यहां तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं ।

परत्व और अपरत्व का मिला-जुला सा ज्ञान भी काल द्वारा ही होता है । दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने पर भी ( दीक्षा में छोटा होने के कारण ) काल से अपर कहलाता है । समीपवर्ती है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर कहलाता है । यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है ।

ते सिवाय ग्रीष्म आदि ऋतुयोर्मां साधुयो भाटे लगवाने आतापना आदि धर्मोर्ना उपदेश आये छे, काल द्रव्यने मानवामां आवे तो न, अथवा काल द्रव्य डोय तो न ये उपदेश घटी शक्ये छे. कालना अभावमां ग्रीष्म ऋतुनुं ज्ञान थशे नहि, अने लगवाने कडेवा क्रियानी हानि थछ नशे.

अहिं सुधी अतापी यूक्या के वर्तना, परिणाम अने क्रिया, जे के द्रव्यने स्वभाव छे, कालनी सहायताथी न थाय छे.

परत्व अने अपरत्वनुं मिला-जुला जेपुं ज्ञान पणु कालद्वारा न थाय छे. दूरवर्ती, नानी दीक्षा-पर्यायवाणा मुनि दूर होवाना कारणे क्षेत्रथी पर होवा छतांय पणु (दीक्षामां नाना होवाना कारणे) कालथी अपर कडेवाय छे, समीपवर्ती छे पणु ज्येष्ठ-मोटीदीक्षापर्यायवाणा मुनि क्षेत्रथी अपर होवा छतांय कालथी पर कडेवाय छे. अहिं 'पर' पणु 'अपर' थछ गये छे. अने 'अपर' पणु 'पर' अनी गये छे.

कालेन पर इत्युच्यते । अत्र परस्यापरत्वम् ; अपरस्य परत्वमिति परापरव्यतिकरः X कारणं विना न संभवति, यदत्र कारणं स एव कालः ।

यौगपद्यायौगपद्यप्रत्ययेनापि कालद्रव्यस्यास्तित्वं सिध्यति । ‘आभ्यां युगपदधीतो दृष्टिवादः’ ‘एभिस्तु मुनिभिरयुगपत् पठिता द्वादशाङ्गी’ इति वाक्यतोऽध्ययनगतयौगपद्यायौगपद्यप्रतीतौ कालमन्तरेणान्यन्निमित्तं नोपलभ्यते, यच्च निमित्तं स कालः ।

X ‘परस्परविषयगमनं व्यतिकरः’ ।

पर और अपरका यह व्यतिकर+ कारण के विना संभव नहीं है, अत एव इस व्यतिकर में जो कारण है, वस वही काल है ।

यौगपद्य (एक साथ) और अयौगपद्य (आगे-पीछे) का जो ज्ञान होता है उस से भी कालद्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है । “इन दोनों मुनियोंने एक साथ दृष्टिवाद का अध्ययन किया” और “इन मुनियोंने बारह अङ्ग एक साथ नहीं पढ़े-आगे पीछे पढ़े हैं,”-इस वाक्य से यौगपद्य और अयौगपद्य का-एक साथ का और आगे पीछे का-जो ज्ञान होता है उसमें काल के अस्तित्व के सिवाय और कोई कारण नहीं पाया जाता । जो कारण है वही काल है ।

+ ‘परस्परविषयगमनं व्यतिकरः’, अर्थात् एक का विषय दूसरे में चला जाना व्यतिकर कहलाता है, जैसे-पर का अपर हो जाना और अपर का पर हो जाना ।

पर अने अपरनां अे व्यतिकरः कारणं विना संभव नथी, तेथी अे व्यतिकरमां अे कारणं अे, अस तेज काण अे.

यौगपद्य-अेक साथे अने अयौगपद्य-आगण-पाछणनु अे ज्ञान थाय अे, तेमां पणु कालद्रव्यनुं अस्तित्व सिद्ध थाय अे. “अे अने मुनियोअे अेक साथे दृष्टिवादनुं अध्ययन कथुं” अने “अे मुनियोअे बार अंगोनुं अेक साथे अध्ययन कथुं नथी-आगण-पाछण अध्ययन कथुं अे” आ वाक्यथी यौगपद्य अने अयौगपद्यनुं-अेक साथेनुं अने आगण-पाछणनु अे ज्ञान थाय अे. तेमा काल विना भीणुं कोरि कारणं हेभातुं नथी. अे कारणं अे ते ज काण अे.

+परस्परविषयगमनं व्यतिकरः” अर्थात्-अेकनो विषय भीलमां आदयो नथ ते व्यतिकर कहेवाय अे. अेवी रीते-परनु अपर थंरि नुं अने अपरनु पर थंरि नुं.

चिरक्षिप्रप्रत्ययोऽपि कालमासाद्यैव जागर्ति । यथा—‘अनेन महात्मना चिरं तपश्चरितम्, गजसुकुमालेन क्षिप्रमात्मकल्याणं कृतम्’ इत्यादिवाक्यैस्तपश्चरणकल्याणसाधनादीनां विलम्बाविलम्बप्रतीतिः कालाभावे सति नोपपद्येत ।

‘ह्यः श्वोऽद्य परश्वः’—इत्यादयः कालाभिधायिनः शब्दाः कालाख्यमर्थं गमयन्ति । सर्वज्ञेन भगवतोच्चारितत्वादिमे शब्दा यथार्थवस्तुबोधकाः रूपशब्दवद् असमस्तपदत्वात्, शुद्धैकपदत्वाच्च प्रसिद्धं सद्भूतमर्थमावेदयन्ति कालशब्दादयः ।

वर्तनाहेतुत्वा-ऽस्तित्व-ज्ञेयत्वादिगुणाश्रयतया, अतीतानागतवर्तमानादिपर्या-

जल्दी और देर का ज्ञान भी काल के कारण ही होता है, जैसे—“ इस महात्मा ने चिरकाल तक तप किया, गजसुकुमाल मुनिने शीघ्र ही आत्मकल्याण कर लिया । ” इत्यादि वाक्यों से तपश्चरण और कल्याण—साधन आदि में विलम्ब और अविलम्ब का ज्ञान काल के अभाव में नहीं हो सकता ।

‘कल, आज, परसों’ इत्यादि कालवाचक शब्द भी कालनामक द्रव्य को प्रकट करते हैं । सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा उच्चारण किये हुए ये काल आदि शब्द वास्तविक वस्तु के बोधक हैं, क्योंकि यह समासरहित पद हैं और शुद्ध एक पद हैं । जो पद समासरहित और शुद्ध एक पद होते हैं वे वास्तविक पदार्थ के ही बोधक होते हैं, जैसे रूप आदि ।

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व, आदि गुणों का आधार होने से, तथा अतीत, अनागत ( भविष्यत् ) और वर्तमान आदि पर्यायों का आश्रय होने से काल का

जल्दी—तुरत अने ढीलनुं ज्ञान पणुं कालना कारणुथी न थाय छे. जेम—“आ महात्माये लांभा समय सुधी तप कथुं, गजसुकुमाल मुनिये तुरतमां आत्मकल्याणुं करी लीधुं.” इत्यादि वाक्योथी तपश्चरणुं अने कल्याणसाधन वगेरेमां विलम्ब अने अविलम्बनुं ज्ञान कालना अभावमा थर्ध शक्ये नहि.

‘गर्ध काल, आवती काल, आज, परम दिवसे,’ इत्यादि कालवाचक शब्द पणुं काल नामना द्रव्यने प्रकट करे छे, सर्वज्ञ भगवान् द्वारा कहेवामां आवेला अये काल आदि शब्द वास्तविक वस्तुना बोधक छे, केमके अये समासरहित पद छे अने शुद्ध अयेक पद छे. जे पद समासरहित अने शुद्ध अयेक पद होय छे, ते वास्तविक पदार्थना न बोधक होय छे. जेम रूप आदि

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व आदि गुणानो आधार होवाथी, तथा भूतकाल, भविष्यकाल अने वर्तमानकाल आदि पर्यायानो आश्रय होवाथी कालनुं द्रव्यपणुं

याश्रयतया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्धयति, तस्मात् 'षष्ठं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योप-  
पत्त्या च सिद्धम् ।

आगमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुद्घाटय पश्य—

“कइ णं भंते ! दव्वा पणत्ता ?, गोयमा छ दव्वा पणत्ता, तं जहा-  
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,  
अद्दासमए, ” इति ।

कति खलु भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! षड् द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि,  
तानि यथा—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः,  
जीवास्तिकायः, अद्वासमयः । इति च्छाया ।

‘कइविहा णं भंते ! सव्वदव्वा पणत्ता ?, गोयमा ! छव्विहा सव्वदव्वा  
पणत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए’ इति । (भगवती श० २५, उ० ४)

द्रव्यपन सिद्ध होता है, अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छठा द्रव्य  
सिद्ध हुआ ।

आंख खोल कर देखो, इस विषय में आगम—प्रमाण भी विद्यमान है—

“कइ णं भंते ! दव्वा पणत्ता ! गोयमा ! छ दव्वा पणत्ता, तंजहा-  
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,  
अद्दासमए । ”

सिद्ध थाय छे. अटला डारणुथी युक्ति तथा उपपत्ति (पुरावा—अभाणु)थी डाल  
नामनुं छहुं द्रव्य सिद्ध थाय छे

आण उधाडीने णुओ, आ विषयमां आगम—अभाणु पणु विद्यमान छे—

“कइ णं भंते ! दव्वा पणत्ता ?, गोयमा ! छ दव्वा पणत्ता, तंजहा-  
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए ” ।

अर्थात्—‘लगवन्’ द्रव्य डेटलां छे ? गौतम ! द्रव्य छ छे—धर्मास्तिकाय,  
अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने अद्वासमय  
अर्थात् डाल.

तथा—“कइविहा णं भंते ! सव्वदव्वा पणत्ता ?, गोयमा ! छव्विहा सव्वदव्वा  
पणत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए । ”

कतिविधानि खलु भदन्त ! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम !  
षड्विधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः,  
यावत्-अद्वासमयः, इति च्छाया ।

“ धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।  
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ” ॥८॥ ( उक्त० अ० २८ )  
धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्  
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः । इति च्छाया ।

### कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,  
एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः । एकत्वादेवास्तिकायो नायम् ।

अर्थात्—‘ भगवन् ! सब द्रव्य कितने है ? ’ ‘ गौतम ! सब द्रव्य छह है—  
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्वा-समय ’ ( भगवतीसूत्र श. २५ उ. ४ )

उत्तराध्ययन सूत्र ( अ. २८ ) में भी कहा है— ‘ धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य  
एक एक कहे गये हैं । काल, पुद्गल और जीव अनन्त-अनन्त है ’ इति ।

### काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समय को  
‘ काल ’ कहते हैं । यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है ।

अर्थात्—‘ भगवन् ! सर्व द्रव्य डेटलां छे ? गौतम ! सर्व द्रव्य छ छे—धर्मास्तिकाय  
अधर्मास्तिकाय यावत् अद्वासमय ’ ( भगवती. श. .२५. उ. ४ ). उत्तराध्ययनसूत्र  
( अ. २८ ) मां पणु कहुं छे—धर्म, अधर्म, अने आकाश द्रव्य अेक अेक कहुं छे,  
काल, पुद्गल अने एव अनन्त-अनन्त छे.

### कालस्य स्वरूपम्—

समयक्षेत्र (अर्धद्वीप) व्यापी, निर्विभाग (नेने भाग न पडे तेषुं), आद्यन्त-  
रहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समयने काल कहे छे, आ अेक होवाना कारणुथी  
‘ अस्तिकाय ’ नथी.

सूर्यचन्द्रादिज्योतिष्काणां गतिमाश्रित्य कालविभागो भवति, गतिश्च मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम् । दिवसरात्रिमुहूर्तपक्षमासऋत्वयनवर्षयुगादीनां विभागः सूर्यादिगत्यैव लोके भवति । एवमतीतवर्तमानादयो विभागाः । यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्रावगम्यः कालः सोऽसंख्येयः, यथा—पल्योपमः, सागरोपम इत्यादि । असंख्येयादिकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकप्रसिद्धोपमानप्रदर्शनेन प्ररूपितम् ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति का आश्रयण कर काल का विभाग होता है । सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है । दिन, रात, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है । इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये । जिसकी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पल्योपम, सागरोपम, इत्यादि । असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमान का प्रदर्शन करके भगवान ने प्ररूपित किया है, समय आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिज्योतिष्कों की गति से नहीं जाना जाता है, क्यों कि वह अति सूक्ष्म है । इस लिये कालका व्यवहार समयक्षेत्र के भीतर ही होता है । समयक्षेत्र के बाहर जीवों के आयुष्य आदि की गणना मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाण से ही होती है ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केनी गतिना आश्रयथी कालनो विलाग थाय छे, सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केनी गति मनुष्य लोकमां ज छाय छे. दिन, रात, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदिना विलाग सूर्य आदिनी गतिथी ज लोकमां थाय छे. आ प्रकारे अतीत (भूतकाल) वर्तमान आदिना विलाग पणु समज्वा जेधजे. जेनी गणुतरी न थध शके, जे उपमान मात्रथी गम्य (समञ्ज शक्य तेवुं) छे, ते काल असंख्येय छे, जेभके—पल्योपम, सागरोपम, इत्यादि. असंख्येय आदि कणनु ज्ञान पणु लगवाने मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमाननुं प्रदर्शन करी प्ररूपित कथुं छे. समय, आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादि ज्योतिष्केनी गतिथी पणु न्णणी शक्य नथी, जेभके ते अति सूक्ष्म छे. आथी कालनो व्यवहार समयक्षेत्र—अही द्वीपनी अंदर ज थाय छे, समयक्षेत्रथी पडार जेवोनी आयुष्य आदिनी गणुना थाय छे ते मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाणथी ज थाय छे, जेभ समञ्ज देवुं.

સમયાવલિકાદિસૂક્ષ્મકાલસ્તુ મૂર્યાદિજ્યોતિષ્કાણાં ગત્યા નાવગમ્યઃ, અતિસૂક્ષ્મત્વાત્ । તસ્માત્ કાલવ્યવહારોઽર્ધતૃતીયદ્વીપ એવ । અર્ધતૃતીયદ્વીપાદ્વદ્વિ-જીવાનામાયુષ્કાદિગણના તુ મનુષ્યક્ષેત્રપ્રસિદ્ધપ્રમાણેનૈવ ભવતીતિ જ્ઞેયમ્ ।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता—“अणंताणि य द्रव्याणि कालो पुग्गल जंतवो” इत्युपदिष्टम् । वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात् ।

निश्चयनयेन तु “लोकव्यापी कालः” इत्यवसीयते, अत एव भगवता—“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो । एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं” । इत्यभिहितम् । धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः । एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनर्वरदर्शिभिः । इति च्छाया ।

કાલ યદ્યપિ એક હી છે, તો મી વહ મૂત—ભવિષ્યત્પર્યાય મેદ સે અનન્ત છે, ઇસીલિયે મગવાને કહા છે—‘અણંતાણિ ય દ્રવ્યાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’ ઇતિ ।—કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ, યે સમી અનન્ત છે । વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોતે હુએ મી અનન્ત નહીં છે, ક્યોંકિ વહ એક હી છે ।

નિશ્ચયનય સે તો કાલ લોકવ્યાપી માના જાતા છે, અતએવ મગવાને કહા છે—

“ધમ્મો અધમ્મો આગાસં, કાલો પુગ્ગલ જંતવો ।

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિં વરદંસિહિં” ॥ ૧ ॥

જે કે કાલ એક જ છે તો પણ ભૂત ભવિષ્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી ભગવાને કહ્યું છે—‘અણંતાણિ ય દ્રવ્યાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’ ઇતિ, કાલ પુદ્ગલ અને જીવ એ દ્રવ્યો અનન્ત છે. વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતાં પણ અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે.

નિશ્ચયનયથી તો કાલ લોકવ્યાપી માનવામાં આવે છે આથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“ધમ્મો અધમ્મો આગાસં કાલો પુગ્ગલ જંતવો ।

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિં વરદંસિહિં” ॥

વરદર્શી—લોકલોકને જોવાવાળા જિન ભગવાને ‘ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આઠાશાસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એજ લોક છે’ એમ કહ્યું છે.

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः—अनन्तरोक्तद्रव्यषट्कसमुदायरूप इति भाव ।

कालस्य—(१)—अरूपित्वम्, (२)—अचेतनत्वम्, (३)—अक्रियत्वम्, (४)—वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः । (१)—अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)—वर्तमानत्वं, (३)—अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते । यथा—द्रव्यत एकः कालः क्षेत्रतः—अर्द्धतृतीयद्वीपप्रमाणः, कालतः—आद्यन्तरहितः, भावतः—अरूपी—वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति, गुणतः—वर्तनालक्षणः, इति ।

वरदर्शां—लोकालोक को देखनेवाले जिन भगवानने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को लोक कहा है ।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है ।

काल के—अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व, वर्तनाहेतुत्व, ये चार गुण हैं । अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, अगुरुलघुत्व, ये चार पर्याय हैं ।

यह काल—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला, काल से आद्यन्तरहित, भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित, और गुण से वर्तनालक्षणवाला है ।

उपरि दर्शावेला छ द्रव्योना समुदायने लगवाने सामान्य रीते लोक कहेल छे.

काणना—अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व अने वर्तनाहेतुत्व, ओ आर गुणु छे. अने अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, तथा अगुरुलघुत्व ओ आर पर्याय छे.

आ काण—द्रव्य, क्षेत्र, काण, भाव अने गुणुना लेहथी पांच प्रकारे ज्ञाय छे, नेमके—द्रव्यथी काण ओके, क्षेत्रथी अर्द्धद्वीप प्रमाणु, कालथी आद्यन्तरहित, भावथी अरूपी—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित छे, अने गुणुथी वर्तनालक्षणुवाणे छे.



अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र-पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते-परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति,  
गलति च=विच्छिन्नमुक्तावलीमणिवद् विकीर्णो भवति-इति पुद्गलः । पूरण-गलन-  
धर्म इत्यर्थः । पुद्गलश्चासावस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः ।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्वथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता  
सिद्धैव ।

पुद्गलास्तिकाय—

‘पुद्गल’ शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते हैं, और जो गल जाते हैं अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भांति बिखर जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय ‘पुद्गलास्तिकाय’ कहलाता है ।

अगर ‘पुद्गलास्तिकाय’ न होता तो घट आदि कार्य नहीं बन सकते थे । इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभांति सिद्ध है ।

पुद्गलास्तिकाय—

पुद्गल शब्दना अर्थ—

परस्पर भण्डने अेकत्र थर्धने नवीन घन-घटादिना रूपमां ने अेक-अेक थर्ध नय छे, अने ने गणी नय छे अर्थात् टुटी गअेदी मोतीअेनी भाणा प्रमाणे विभाध नय छे, ते पुद्गल कडेवाय छे. तात्पर्य अे छे के-नेमां पूरण अने गलन धर्म डोय ते पुद्गल छे, पुद्गलरूप अस्तिकाय ते पुद्गलास्तिकाय कडेवाय छे.

अगर पुद्गलास्तिकाय न डोत तो घट आदि कार्य अनी शकत नडि. आ कारणथी, तथा प्रत्यक्ष देणी शकय छे ते कारणथी पण पुद्गलास्तिकायनी सत्ता डी रीते सिद्ध छे.

पुद्गललक्षणम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तत्ववर्णादिकम् । यद्यपि परमाणुप्रभृतयः सूक्ष्माः पुद्गलास्तेषां गुणाश्चातीन्द्रियतया नेन्द्रियैर्गृह्यन्ते तथापि बादरस्कंधरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियग्राह्यतया रूपवत्त्वं प्रतीयते ।

अतीन्द्रिये परमाणुप्रभृतिपुद्गलेऽतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादौ चैतावान् विशेषः— धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वाभावादतीन्द्रियत्वमरूपित्वं च, परमाणुप्रभृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति ।

पुद्गल का लक्षण—

पुद्गललोका लक्षण 'रूपवत्त्व' है । जिस में रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिक हो, वह पुद्गल है । यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल बहुत सूक्ष्म है, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलों का बादर स्कन्ध के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य हो जाते हैं और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है ।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलों में और धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि—धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते, अतः वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं, किन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी है ।

पुद्गलानुं लक्षणम्—

पुद्गलानुं लक्षण रूपवत्त्व छे; जेमां रूप, रस, गंध अने स्पर्श जेवामां आवे, अर्थात् जे मूर्तिमान डोय ते पुद्गल छे. जे के परमाणु आदि पुद्गल भडु जे सूक्ष्म छे अने अतीन्द्रिय डोवाना कारणे तेना शुष्ण इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करी शकता नथी; ते पणु न्यारे ते पुद्गलानु बादर स्कंधना रूपमां परिणमन थाय छे, त्यारे ते इन्द्रियो द्वारा ग्रहण थछ जय छे, अने तेनुं रूपवत्त्व प्रतीत थवा लागे छे.

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलानुं अने धर्मास्तिकाय वगेरे अतीन्द्रिय द्रव्योमां अटलुं अंतर-द्वेक्षार छे के—धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य क्यारेय पणु इन्द्रियोना विषय थता नथी, तेथी ते अतीन्द्रिय अने अरूपी छे, परन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय डोवा छतांय रूपी छे.

### पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याचित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गला विविधपरिणामा भवन्ति । तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति । तत्र—संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्धः संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणुघटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसमुद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्तप्रदेशी भवति । परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति ।

### पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः—

परमाणौ विभागाभावादेकस्मिन्नेव प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरव-

### पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन वाले होते हैं । उनके प्रदेश यथासंभव संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त होते हैं । संख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध संख्यातप्रदेशी कहलाता है । असंख्यात परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध असंख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है । परमाणु निरंश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है ।

### पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

### पुद्गलोनी प्रदेशसंख्या—

परमाणुथी लधने अचित्त महास्कंध सुधी सर्व पुद्गल विविध परिणमनवाणा डोय छे. तेना प्रदेश यथासंभव संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त डोय छे. संख्यात परमाणुओना संयोगथी अनेला स्कंध संख्यातप्रदेशी कडेवाय छे, असंख्यात परमाणुओथी अनेला स्कंध असंख्यातप्रदेशी अने अनन्त परमाणुओथी निष्पन्न स्कंध अनन्त-प्रदेशी कडेवाय छे. परमाणु निरंश डोय छे, तेना अनेक लाग थर् शकता नथी तेथी ते अप्रदेशी छे.

### पुद्गलोनी क्षेत्रस्थिति—

परमाणुमां विलाग नडि डोवाना डारणे लोकाकाशना ओक व प्रदेशमां तेनी

गाहते । द्व्यणुकस्कन्धश्च तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोश्च प्रदेशयोरवगाहते । तथा त्र्यणुकस्कन्धो लोकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोः प्रदेशयोस्त्रिषु प्रदेशेषु चावगाहते । एवं चतुरणुकादीनां संख्यातप्रदेशाऽसंख्यातप्रदेशानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारभ्य संख्याताऽसंख्यातप्रदेशपर्यन्तेषु भवति ।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽल्पीयसि कथमनन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः स्थानं लभन्ते, न हि कलशे सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है । द्व्यणुक अर्थात् दो परमाणु वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी प्रकार तीन परमाणुओं वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी भांति चतुरणुक ( चार अणुओं वाले ) आदि स्कन्धों की अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी तक के स्कन्धों की अवगाहना लोकाकाश के एक प्रदेश से लेकर संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशों में होती है ।

शंका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखाई नहीं देता ।

अवगाहना होय छे द्व्यणुक अर्थात् ये परमाणुवाणा स्कंध लोकाकाशना अेक प्रदेशमां अथवा ये प्रदेशोमां अवगाहन करे छे. अे प्रमाणे त्रणु अणुओवाणा स्कंध लोकाकाशना अेक प्रदेशमां, ये प्रदेशोमां अथवा त्रणु प्रदेशोमां अवगाहन करे छे. अे प्रमाणे ४ चार अणुओवाणा आदि स्कंधोनी अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी अने अनन्तप्रदेशी सुधीना स्कंधोनी अवगाहना लोकाकाशना अेक प्रदेशथी लधने संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशोमां होय छे.

शंका—आकाशना अेक नाना प्रदेशमां अनन्त प्रदेशी स्कंधनो समावेश केवी रीते थई शके, गागरमां सागरनो समावेश थयेतो कोई ठेकाओ देखातो नथी ?

अत्र ब्रूमः—पुद्गलस्य परिणमनशक्तिरेव तादृशी यतः परमसूक्ष्मस्तादृशः परिणामो जायते, येनानन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः प्रदेशमेकं नभसः प्रविशन्ति । अथवा गगनस्य तादृशी विचित्राऽवगाहदानशक्तिर्यतोऽनन्तप्रदेशिनां स्कंधानां तस्यैकस्मिन् प्रदेशे समावेशः सिध्यति । यथा अतिघनीभूतलोहगोलकावगाह-  
नान्निरवकाशे किलाकाशदेशे भस्त्रानिलसमुद्भूताः पावकावयवाः समाविशन्ति । यदि रन्ध्ररहिताऽयोगोलकं शीतलीकर्तुं वारि निक्षिप्पते, तदा तदयोगोलक-  
परिपूरितनिरन्तराकाशदेशे तस्मिन्नेव वारिक्रणा अव्याहृतं प्रविशन्ति ।

समाधान—पुद्गल में परिणमनशक्ति ही ऐसी है, जिससे उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होता है । इसी कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी आकाश के एक प्रदेश में समा जाते हैं । अथवा आकाश में ऐसी कुछ विचित्र अवकाशदान करने की शक्ति है कि उसके कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का भी आकाश के एक ही प्रदेश में समावेश हो जाता है । जैसे—अत्यन्त सघन लोहे के गोले के अवगाहन से निरवकाश आकाश-  
प्रदेश में धौकनी की वायु से वृद्धि पाये हुए अग्नि के अवयव प्रवेश कर जाते हैं । तात्पर्य यह है कि—लोहे का गोला बहुत ठोस होता है, वह आकाश के जिन प्रदेशों में मौजूद है, वहां जगह दिखाई नहीं देती, फिर भी धौकनी की वायु की प्रेरणासे उन्हीं आकाश प्रदेशों में अग्नि का प्रवेश हो जाता है, तत्पश्चात् छिद्ररहित उस लोहे के गोले को ठंडा करने के लिये उस पर पानी डाला जाय तो जिन आकाश प्रदेशों में लोहे का गोला और पावक-अग्नि है, उन्हीं में जल के कण भी बेरोकटोक प्रवेश कर जाते हैं ।

समाधान—पुद्गलौमां परिणमनशक्तिं च अथैवै छे जेथी तेनुं अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होय छे. जे कारणे अनन्तप्रदेशी स्कंध पाणु आकाशना जेक प्रदेशमां समाधि जय छे. अथवा आकाशमां अथैवै केछि विचित्र अवकाशदान करवानी शक्ति छे जे—ते कारणेथी अनन्तप्रदेशी स्कंधानो पाणु आकाशना जेक च प्रदेशमां समावेश थि जय छे. जेभके—अत्यन्त सघन लोहाना गोणाना अवगाहनथी निरवकाश आकाश प्रदेशमां धमणुना वायुथी वृद्धि पायेला अग्निना अवयवो प्रवेश करी जय छे. तात्पर्य जे छे जे—लोहानो गोणो अहुं च ठोस (पोलाणु विनानो) होय छे, ते आकाशना जे प्रदेशोमां मौजूद छे, त्यां च ग्या हेभाती नथी. तो पाणु धमणुना वायुनी प्रेरणार्थी ते आकाश प्रदेशोमां अग्निना प्रवेश करी जय छे. ते पछी छिद्ररहित ते लोहाना गोणाने ठंडा करवा भाटे तेना उपर पाणु नाभवामां आवे तो जे आकाश-प्रदेशोमां लोहानो गोणो अने अग्नि छे, तेमां पाणुनां टीपां पाणु शक-टोक (अटकाव्या) विना प्रवेश करी जय छे.

यथा वा एकप्रदीपप्रभायामनेकप्रदीपप्रभासमावेशः । यथा वा एककर्षपरि-  
मितपारदे शतकर्षपरिमितसुवर्णसमावेशो भवति ।

अनन्तप्रदेशिरूपोऽचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्घातवत् सकललोकव्यापी  
भवति । स च विस्रसागत्यां प्रथमसमयेऽसंख्यातयोजनविस्तरेण दण्डाकारेण  
परिणमति । द्वितीयसमये कपाटरूपेण, तृतीयसमये मन्थानरूपेण, चतुर्थसमये  
प्रतरमापूर्य सकललोकं व्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतरं संहरति, षष्ठसमये मन्थानं  
भनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दण्डाकारं संहृत्य खंडशः प्रविकीर्णो  
भवति ।

अथवा—एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है ।

अथवा एक कर्ष—मासा ( मापविशेष ) परिमित पारे में सौ कर्ष परिमित सोने का  
समावेश हो जाता है ।

अनन्तप्रदेशी अचित महास्कन्ध केवलिसमुद्घात के समान समस्तलोक-  
व्यापी होता है । वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोजनविस्तृत  
दण्ड के आकार में परिणत होता है । दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है,  
और तीसरे समय में मन्थान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण  
लोक में व्याप्त हो जाता है । फिर पांचवे समय में प्रतर को सिकोडता है, छठे  
समय में मन्थान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डाकार को यह  
सिकोडता है । उसके अनन्तर वह खण्ड खण्ड होकर बिखर जाता है ।

अथवा—एक दीपकना प्रकाशमां अनेक दीपकना प्रकाश समाधि नय छे.  
अथवा एक कर्ष ( मापविशेष ) परिमित पारामां एकसो कर्ष परिमित सोनानो  
समावेश थधि नय छे.

अनन्तप्रदेशी अचित महास्कन्ध, केवलिसमुद्घातनी समान समस्तलोक  
व्यापी होय छे, ते स्वाभाविक गतिथी, प्रथम समयमां असंख्यातयोजनविस्तृत  
दण्डना आकारमां परिणत थाय छे. भीन समयमां ते कपाटना रूपमां परिणत  
थाय छे, अने त्रीन समयमां मन्थान ( दृष्टीं वदोववानो रवैयो )ना रूपमां थाय  
छे, योथा समयमां प्रतर पूर्ण करीने लोकमां व्याप्त थधि नय छे. इरी पांचमा  
समयमां प्रतरने सकोये छे, छठ्ठा समयमां मन्थानने, सातमा समयमां कपाटने  
अने आठमा समयमां दण्डाकारने से सिकोडे छे, त्यार पछी ते अंड-अंड थधिने  
विभेराधि नय छे.

### પુદ્ગલાનામુપકારઃ—

શરીરવાઙ્મનઃપ્રાણાદયઃ પુદ્ગલપરિણામા ગમનાઽઽદાન-વચન-ચિન્તન-પ્રાણનાદિભાષેન જીવાનુપકુર્વન્તિ, અતઃ શરીરાઘાકારેણ પુદ્ગલા જીવાનામુપકારં કુર્વન્તિ । તત્ર શરીરં પશ્ચવિધમ્, ઔદારિકં, વૈક્રિયમ્, આહારકં, તૈજસં, કાર્મણં ચેતિ ।

અથ જીવાનાં યે સુઃખદુઃસ્વજીવિતમરણરૂપાઃ પરિણામા ભવન્તિ તત્ર સુઃવાદિરૂપેણ જીવપરિણામે નિમિત્તં પુદ્ગલા ઇતિ સિદ્ધં જીવોપકારિત્વં પુદ્ગલાનામ્ ।

### પુદ્ગલોં કા ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન ઓર પ્રાણ આદિ પુદ્ગલોં કે પરિણામવિશેષ—ગમન, આદાન, વચન, ચિન્તન ઓર પ્રાણન ( સાંસ લેના ) આદિરૂપ સે જીવોં કા ઉપકાર કરતે હૈ અતઃ શરીર આદિ કે રૂપ મેં પુદ્ગલ હી જીવોં કા ઉપકાર કરતે હૈ । ઇનમેં શરીર પાંચ પ્રકાર કા હૈ— (૧) ઔદારિક (૨) વૈક્રિય (૩) આહારક (૪) તૈજસ ઓર (૫) કાર્મણ ।

પ્રાણિયોં મેં સુઃખ દુઃખ જીવન ઓર મરણ રૂપ જો પરિણામ હીતે હૈ, ડન સબ પરિણામોં મેં પુદ્ગલ કારણ હૈ, અતઃ યહ સિદ્ધ હુઆ કિ પુદ્ગલ જીવોં કા ઉપકાર કરતે હૈ ।

### પુદ્ગલોના ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન અને પ્રાણુ આદિ પુદ્ગલોના પરિણામવિશેષ—ગમન, આદાન, વચન, ચિન્તન અને પ્રાણુન ( શ્વાસ લેવો ) આદિ રૂપથી જીવોના ઉપકાર કરે છે, એટલે શરીર આદિના રૂપમાં પુદ્ગલ જ જીવોના ઉપકાર કરે છે, તેમાં શરીર પાંચ પ્રકારના છે—(૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણુ.

પ્રાણીઓમાં સુખ, દુઃખ, જીવન અને મરણરૂપ જે પરિણામન થાય છે, તે સર્વ પરિણામોમાં પુદ્ગલ કારણરૂપ છે. તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પુદ્ગલ જીવોના ઉપકાર કરે છે.

पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविनः परिणामाः ।  
शब्द - बन्ध - सौक्ष्म्य - स्थूल्य - संस्थान - भेद - तम - छाया -ऽऽतपो-द्योतादिभिः  
पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञायन्ते, इत्याशयेन भगवता पुद्गलानां लक्षणतया  
शब्दादयः प्रोक्ताः । तथाहि—

“सहंधयार उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवुत्ति वा

वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१॥” (उत्त० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष ( असाधारण ) गुण हैं—सहभावी परिणाम हैं । शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान ( आकार ), भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल लखा जाता है—जाना जाता है । इस आशय से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार—  
“सहंधयार उज्जोओ, पभा-छाया-ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं” शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्श, ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं । गाथा में ‘छायाऽऽतवुत्ति’ यहाँ ‘इति’ शब्द आदि के अर्थ में है । इस आदि शब्द से वर्ण आदि का ग्रहण हो सकता था फिर भी उन्हें अलग कहने का कारण यह है कि—वे नित्य सहभावी गुण हैं ।

पुद्गलाना विशेष गुणु—

वर्णु, गंध, रस अने स्पर्श पुद्गलाना विशेष ( असाधारण ) गुणु छे—  
सहभावी परिणाम छे शब्द, अंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार) भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि पर्यायेथी लभी शक्य छे—लखी शक्य छे ते आशयथी भगवाने शब्द आदि पुद्गलानु लक्षणु कहुं छे, ते आ प्रमाणु छे—  
“सहंधयार उज्जोओ, पभा-छाया-ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा; पुग्गलाणं तु लक्खणं” शब्द, अंधकार, उद्योत प्रभा, छाया, आतप, वर्णु, रस, गंध अने स्पर्श, ये पुद्गलानु लक्षणु छे. गाथां—‘छायाऽऽतवुत्ति’ अहिं ‘इति’ शब्द आदिना अर्थमां छे, ये प्रमाणु ‘आदि’ शब्दथी वर्णु वगेरेनुं अडणु थर् शके छे तो पणु तेने अलग कडेवानुं कारणु अे छे के ते नित्य सहभावी गुणु छे.



शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा । वर्णरसगन्धस्पर्शाः  
पुद्गलानां तु लक्षणम् । इति च्छाया ।

“छायाऽऽतवृत्ति” इत्यत्र ‘इति’ शब्द आद्यर्थकः । तेनैव वर्णादीनां ग्रहणेऽपि  
पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम् ।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो  
द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् ।  
स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं  
पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

### पुद्गलविभागः-

पुद्गलः संक्षेपतो द्विविधः-परमाणु-स्कंधभेदात् ।

वर्ण पांच प्रकार का है-काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद । ‘सुगन्ध दुर्गन्ध  
के भेद से गन्ध दो प्रकार का है । रस के पांच भेद हैं--तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा,  
और मीठा । स्पर्श के आठ भेद हैं--कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना,  
और रूखा । संस्थान पांच प्रकार का है--वृत्त ( गोल ), त्र्यस्र ( तिकोना ), चतुरस्र  
( चौकोर ), आयत ( लम्बा ) और परिमण्डल-( गोल-मटोल ) .

### पुद्गल के भेद—

संक्षेप से पुद्गल के दो भेद है-परमाणु और स्कन्ध ।

वर्ण पांच प्रकारना छे-काणो, लीलो, लाल, पीणो अने घोणो. सुगंध अने  
दुर्गंधना लेदथी गंध छे प्रकारना छे. रसना पांच लेद छे-तीणो, कडवो, कषायेलो,  
आटो अने भीठो, स्पर्शना आठ लेद छे-कठणु, कोमल, भारी, हलको, शीत, उष्ण,  
चिकणो अने रूक्ष. संस्थान पांच प्रकारनां छे-वृत्त-गोण, त्रिकोण, चतुकोण,  
लांणु अने गोणमटोण.

### पुद्गलानां भेद

संक्षेपथी पुद्गलानां भेद छे-(१) परमाणु अने (२) स्कंध.

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तवर्ती निरंशः परस्परासंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-  
न्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्व्यणुकस्कन्धाद्यचित्तमहा-  
स्कन्धपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्धकार्याणां कारणरूपो नित्यश्चेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे—( श. २० उ० ५ )—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है । वह निरंश है । परस्पर असंयुक्त है । सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती । एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शोंसे युक्त है । द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अन्तिम महास्कन्ध पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्कन्धरूप कार्य का कारण है और नित्य है । भगवानने भगवतीसूत्र ( श. २०, उ० ५ ) में कहा है—

प्रश्न-भगवन् ! परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाला, कितने गंध वाला, कितने रसवाला, और कितने स्पर्शवाला कहा गया है ? ।

उत्तर-गौतम ! एक वर्णवाला, एक गंध वाला, एक रसवाला और दो स्पर्शवाला कहा गया है ।

एक वर्णवाला होता है तो कदाचित् काला, कदाचित् नीला, कदाचित् लाल,

परमाणुनुं स्वरूप—

परमाणु, ये पुद्गलने अन्तिम विभाग छे. ते निरंश (अंशरहित) छे. परस्पर असंयुक्त छे. सूक्ष्म होवना कारणे इन्द्रियोनी प्रवृत्ति तेमां थर्ध शकती नथी. ओक वर्णुं, ओक गंध, ओक रस अने ये स्पर्शथी युक्त छे. द्व्यणुक स्कंधथी लधने अचित्त महास्कंध पर्यन्त स्थूल अने सूक्ष्मस्कंधरूप कार्यानुं कारण छे, अने नित्य छे. भगवाने भगवती सूत्र ( श. २० उ. ५. )मां कल्युं छे:—

प्रश्न-“ भगवन् ! परमाणु पुद्गल केटला वर्णवाणुं, केटला गंधवाणुं, केटला रसवाणुं, अने केटला स्पर्शवाणुं कल्युं छे ?

उत्तर-गौतम ! ओक वर्णवाणुं, ओक गंधवाणुं, ओक रसवाणुं, अने ये स्पर्शवाणुं कल्युं छे.”

“ ओक वर्णवाणुं होय छे तो कदाचित् कालुं, कदाचित् लीलुं, कदाचित् लाल, कदाचित् पीणुं अने कदाचित् श्वेत होय छे. ओक गंधवाणुं होय छे तो कदाचित्

“परमाणुपोग्गले णं भंते ! कतिवन्ने, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पन्नत्ते ?, गोयमा ! एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुप्फासे पन्नत्ते, तंजहा-जइ एगवन्ने-सिय कालए, सिय नीलए, सिय लोहिए, सिय हालिद्धे, सिय सुक्किल्ले । जइ एगगंधे-सिय सुब्भिगंधे, सिय दुब्भिगंधे । जइ एगरसे-सिय तित्ते सिय कडुए सिय कसाए, सिय अंबिले, सिय महुरे । जइ दुप्फासे-सिय सीए य निद्धे य १, सिय सीए य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्धे य ३, सिय उसिणे य लुक्खे य ४ ” इति ।

परमाणुपुद्गलः भदन्त ! कतिवर्णः, कतिगन्धः, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! एकवर्णः, एकगन्धः, एकरसः, द्विस्पर्शः प्रज्ञप्तः । तद्यथा-यदि एकवर्णः-स्यात् कालकः, स्यात् नीलकः, स्यात् लोहितः, स्यात् हारिद्रिः, स्यात् शुक्लः । यदि एकगन्धः-स्यात् सुरभिगन्धः, स्यात् दुरभिगन्धः, यदि एकरसः स्यात् तिक्तः स्यात् कटुकः, स्यात् कषायः, स्यात् अम्लः, स्यात् मधुरः । यदि द्विस्पर्शः-स्यात् शीतश्च स्निग्धश्च १, स्यात् शीतश्च रूक्षश्च २, स्यात् उष्णश्च स्निग्धश्च ३, स्यात् उष्णश्च रूक्षश्च ४, । इति च्छाया,

कदाचित् पीला, और कदाचित् शुक्ल होता है । एक गन्धवाला होता है तो कदाचित् सुरभिगंधवाला, कदाचित् दुरभिगंधवाला होता है । यदि एक रसवाला होता है तो कदाचित् तिक्त, कदाचित् कटुक, कदाचित् कषायला, कदाचित् खट्टा, और कदाचित् मीठा होता है । यदि दो स्पर्शवाला होता है तो कदाचित् शीत और स्निग्ध (चिकना) १, कदाचित् शीत और रूक्ष २, कदाचित् उष्ण और स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है ४ ।

सुरभिगंध (सारी गंध) वाणुं अने कदाचित् दुरभिगंधवाणुं डोय छे. जे अेक रसवाणुं डोय छे तो कदाचित् तीक्ष्णं, कदाचित् कटुं, कदाचित् कषायं, कदाचित् आर्द्रं अने कदाचित् मधुर-मीडुं-डोय छे. जे जे स्पर्शवाणुं डोय छे तो कदाचित् शीत अने स्निग्ध-(चिकना) १, कदाचित् शीत अने रूक्ष २, कदाचित् उष्ण अने स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण अने रूक्ष डोय छे. ४”

असौ शस्त्रादिना लतादिवदच्छेद्यः, सूच्यादिना चर्मवदभेद्यः, अग्निना काष्ठवददाह्यः, हस्तादिना वस्त्रपात्रवदग्राह्यश्च । उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे ( श०-२० उ० ५ )—

“द्रव्यपरमाणुं णं भंते । कइविहे पणत्ते ?, गोयमा ! चउव्विहे पणत्ते, तंजहा-अच्छेज्जे, अभेज्जे, अडज्जे, अगेज्जे ।” इति । द्रव्यपरमाणुः खलु भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अच्छेद्यः, अभेद्यः, अदाह्यः, अग्राह्यः । इति च्छाया ।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्मूर्त्तस्तथाऽप्यसौ खण्डशः कर्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणोः पुद्गलपरमजघन्यांशरूपत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्टं परिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽखण्ड एव ।

परमाणु, शस्त्र के द्वारा लता आदि की भाँति छेदा नहीं जा सकता, चमड़े की तरह सुई आदि से भेदा नहीं जा सकता, काष्ठ के समान अग्नि आदि से जल नहीं सकता और वस्त्र पात्र आदि पदार्थों की तरह हाथ आदिसे पकड़ा नहीं जा सकता । भगवान्ने भगवतीसूत्र ( श. २०, उ० ५ ) में कहा है—

प्रश्न-भगवन् ! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारका कहा गया है-अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य ।

परमाणु, पुद्गल होने के कारण मूर्त्तिक है, फिर भी उस के खण्ड नहीं किये जा सकते । जैसे आकाश का एक प्रदेश जघन्य अंशरूप है और उसका परिमाण सभी

परमाणु, शस्त्र द्वारा लता आदिना प्रमाणे छेदी शक्यतुं नथी, आभडाणी जेम सोय वगेरेथी वींधी शक्यतुं नथी, काष्ठनी जेम अग्नि आदिथी भाणी शक्यतुं नथी, अने वस्त्र पात्र आदि पदार्थोनी जेम हाथ वगेरेथी पकडी शक्यतुं नथी.

भगवाने भगवतीसूत्र-( श. २०-उ. ५ ) मां कहुं छे:—

प्रश्न-“भगवन् ! द्रव्य परमाणु केटला प्रकारनुं कहुं छे ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारनुं कहुं छे-“अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य अने अग्राह्य.” ( छेदी शक्य नडि, लेदी शक्य नडि, भाणी शके नडि, अने अहणु थर्ध शके नडि ).

परमाणु, पुद्गल होवाना कारणे मूर्त्तिक छे तो पणु तेना अंड-भाग थर्ध शक्यता नथी जेमके:-आकाशने अक प्रदेश जघन्य अंशरूप छे, अने तेनुं परिमाणु

स च प्रत्यक्षदृश्यैरनेकविधैर्वादरपरिणामरूपैः स्कन्धैरनुमीयते । उक्तञ्च—

“कारणमेव तदंतं, सुहुमो णिञ्चो य होइ परमाणु ।

एगरसगंधवण्णो, दुष्कासो कज्जलिङ्गो य ॥१॥ इति

छाया—कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥” इति ।

स्कन्धस्वरूपं तद्भेदाश्च—

परस्परसंमिलितवद्धपरमाणुसमुदायः स्कन्धः । स्कन्धान्तवर्ती निरंशोऽवयवः प्रदेश इत्युच्यते ।

परिमाणोंसे हीनतम है, इसी प्रकार परमाणु भी जघन्य अंशरूप है—उसके अंश नहीं हो सकते, वह अखण्ड है ।

प्रत्यक्ष से दिखाई देनेवाले अनेक प्रकार के वादररूप परिणत स्कन्धों से परमाणु का अनुमान होता है । कहा भी है—

“ परमाणु कारणरूप है, अन्तिम अंशरूप है, सूक्ष्म है और नित्य है । एक रसवाला, एक गंधवाला, एक वर्णवाला और दो स्पर्शवाला होता है । स्कंधरूप कार्य देखने से उसका अनुमान होता है । ”

स्कन्ध का स्वरूप और भेद—

परस्पर मिले हुए—आपसमें बद्ध—परमाणु का समूह स्कंध कहलाता है । स्कंधमें रहा हुआ निरंश अवयव प्रदेश कहलाता है ।

सर्व परिमाणोत्थी हीनतम छे, ओ प्रमाणे परमाणु पणु जघन्य अंशरूप छे, तेनां अंश—विलाग थर् शकता नथी, ते अण्ड छे.

प्रत्यक्षथी जेवामां आवता अनेक प्रकारना वादररूप परिणत स्कंधोत्थी परमाणुनु अनुमान थाय छे. कहुं पणु छे—

“ परमाणु कारणरूप छे, अन्तिम अंशरूप छे, सूक्ष्म छे अने नित्य छे, ओक रसवाणुं छे, ओक गंधवाणुं, ओक वर्णवाणुं अने ओ स्पर्शवाणुं होय छे. स्कंधरूप कार्यना देभावथी तेनुं अनुमान थाय छे.

स्कंधतुं स्वरूप अने भेद—

परस्पर भणोला—अंदर अंदर बद्ध—परमाणुओना समूह ते स्कंध कहेवाय छे. स्कंधमां रहेला निरंश अवयव ते प्रदेश कहेवाय छे.

यद्यपि धर्माधर्माकाशजीवा अपि पुद्गलवत्स्कन्धरूपास्तथापि स्कन्ध-  
रूपपुद्गलादयं विशेषः-तेषाम्-धर्मादीनां चतुर्णां प्रदेशाः स्वस्वस्कन्धान्न खण्डशः  
पृथग् भवितुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात् । पुद्गलप्रदेशास्तु खण्डशः पृथग् भवन्ति,  
तेषां मूर्त्तत्वात्, आश्लेषविश्लेषाभ्यां मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पृथग्भाव-शक्तेः  
सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्कन्धपुद्गलानां स्थूलः सूक्ष्मो वा भागोऽवयव-  
उच्यते । अवयौति=पृथग्भवतीत्यवयवशब्दव्युत्पत्त्या विभाज्य एवांशोऽवयवशब्दार्थ-  
स्तस्मात्पुद्गलप्रदेश एवावयव इत्युच्यते ।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अधर्म-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्कन्धरूप है,  
फिर भी स्कन्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्योंके प्रदेश अपने २  
स्कन्धसे कभी अलग नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त है । पुद्गल  
द्रव्य के प्रदेश खण्डर होकर अलग हो जाते हैं, क्योंकि पुद्गल मूर्त है । आश्लेष और  
विश्लेष के द्वारा मूर्त वस्तु में मिलने और बिलुडने की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव  
से सिद्ध है, अतः स्कन्ध-पुद्गलों का स्थूल या सूक्ष्म भाग अवयव कहलाता है,  
'अवयौति' इति-अवयवः अर्थात् जो पृथक् हो सके उसे अवयव कहते हैं, इस व्युत्पत्ति  
के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अंश को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल  
का प्रदेश ही अवयव कहलाता है ।

जे के धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश अने जीव पण पुद्गलना समान  
स्कंधरूप छे, ते पण स्कंधरूप पुद्गलथी तेमां जे भिन्नता छे-धर्म आदि  
चार द्रव्येना प्रदेश पोत-पोताना स्कंधथी क्यारेय पण अलग थछ शकता  
नथी. केमके धर्म आदि चार द्रव्ये अमूर्त छे. पुद्गल द्रव्येना प्रदेश ञंड  
ञंड थछने अलग थछ जय छे, केमके पुद्गल मूर्त छे. आश्लेष (भणवुं) अने  
विश्लेष (जुटा थवुं) द्वारा मूर्त वस्तुमां भणवुं अने छूटा थवुं ते शक्ति छे, आ  
वात सर्वने अनुभवथी सिद्ध छे. ओटला कारणथी स्कंध पुद्गलानुं स्थूल अथवा  
सूक्ष्म अवयव कडेवाय छे 'अवयौति' इति-अवयवः अर्थात् पृथक् थछ शके तेने  
अवयव कडे छे, जे व्युत्पत्ति प्रमाणे विभक्त थवा योग्य अंशने ज अवयव कडे  
छे. आ कारणथी पुद्गल द्रव्येना प्रदेश ज अवयव कडेवाय छे.

संघाताद्, भेदात्, संघातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिपभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते । उक्तञ्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

“दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तंजहा-सयं वा पोग्गला साहन्नंति, परेण वा पोग्गला साहन्नंति । सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति” इति ।

छाया—“द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते । तद्यथा—स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते । स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते । इति ।

‘स्वयंवे’-ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बन्ध्यन्ते । (क्रमणः कर्तृत्वविवक्षायां प्रयोगोऽयम् ) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते=संहताः क्रियन्ते । (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्) । एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते ।

द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति । द्विप्रदेशिनः

संघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा संघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

“दो स्थानों से पुद्गल आपस में मिलते हैं, वह इस प्रकार—या तो पुद्गल स्वयं वादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्गल स्वयं अलग हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते हैं ।

दो परमाणुओं के संघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

संघात (मेलाप)थी लेह (जुदा पडवा)थी तथा संघात-लेहथी द्विप्रदेशी विगेरे स्कंध उत्पन्न थाय छे. भगवाने स्थानाङ्गसूत्रंभां उल्लुं छे—

“ये स्थानोथी पुद्गल परस्पर भणे छे. ते आ प्रमाणे-पुद्गल पोते न वाहण आदि प्रमाणे भणी नय छे, अथवा भीन पुरुष आदिना द्वारा भणवाय छे. ये प्रमाणे पुद्गल पोते न अगल थर्ध नय छे, अथवा तो भीनना द्वारा अलग करी शकय छे.

ये परमाणुओंना संघातथी (भणवाथी) द्विप्रदेशी स्कंध भने छे. द्विप्रदेशी स्कंध

स्कन्धस्य परमाणोश्च संयोगे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति । संख्यात-  
परमाणूनां संघातात् संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, असंख्यातपरमाणूनां संयोगाद्  
असंख्यातप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तपरमाणूनां संघाताज्जातोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धः,  
अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो जायते । संख्यात-  
प्रदेश्यादिषु स्कंधेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः ।

द्व्यणुकादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धाः संयोगपरिणाम-  
जास्तेभ्यः परमाणुः पृथग् भवति चेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो जायते । एवं  
द्वित्रिचतुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्यूनो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते ।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संख्यात परमाणुओं के  
संघात से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असंख्यात परमाणुओं के संयोग  
से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है । अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध  
बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का संयोग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता  
है । संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणमन पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए ।

द्व्यणुक आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से  
बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अलग हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कंध रह  
जाता है । इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अलग होने पर अन्त में  
द्विप्रदेशी स्कंध ही बचता है ।

अने अेक परमाणुने संयोग थवाथी त्रिप्रदेशी स्कंध अने छे, संख्यात परमाणुअेना  
संघातथी ( भणवाथी ) संख्यातप्रदेशी स्कंध अने छे. अने असंख्यात परमाणुअेना  
संयोगथी असंख्यातप्रदेशी स्कंध अने छे. अनन्त परमाणुअेना संयोगथी अनन्त  
प्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. अनन्तप्रदेशी स्कंधेनो संयोग थाय तो अनन्तानन्त-  
प्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. संख्यातप्रदेशी आदि स्कंधेमां संयोगरूप परिणमन  
पूर्वना प्रकारथी समल्लेखे वेलुं लेधअे.

इच्छाएक आदिना कुमथी अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त ने स्कंध छे, ते संयोग  
परिणमनथी अन्या छे. तेमांथी ने अेक परमाणु अलग थध नय तो ते अेक  
परमाणुहीन स्कंध रही नय छे. अे प्रमाणे अे, त्रणु, चार, पांच आदि परमाणुअे  
अलग थध नय तो अन्तमां द्विप्रदेशी स्कंध न अये छे.



स्कन्धाद् वहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना संयोगे द्व्यणुकस्कन्ध उत्पद्यते । एवं संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

परमाणूनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्पराणुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं संयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्परं बन्धो भवति । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

स्कंध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्व्यणुक उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार संयोग और विभाग के द्वारा भ्रंति-भ्रंति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं ।

परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है । एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते हैं । बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

स्कंधर्था अलग थयेला परमाणु न्यारे भील परमाणुनी साथे भणे छे, तो भंनेना भणवाथी नवीन द्व्यणुक उत्पन्न थाय छे. ये प्रमाणु संयोग अने विभाग द्वारा तरेहु-तरेहुना स्कंध उत्पन्न थया करे छे.

परमाणुओंना भंधनुं कारण—

ये अथवा अधिक परमाणु एक भीलमां प्रवेश करी शकता नथी, केभडे परमाणुओंमां छिद्र नथी. अलवत्त स्वाभाविक गतिथी ये अथवा ऐथी अधिक परमाणुओंना परस्पर संयोग थवाथी तेमां विद्यमान स्निग्धता अने रूक्षताना गुणना कारणे तेना आपसमां भंध थई जाय छे. ऐक्यरूप परिणमनने भंध करे छे. भंधना संभंधमां अटलुं विशेष समज्जुं जेधये के:—

जघन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयोः, जघन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । तथा जघन्यगुणरूक्षयोः, जघन्यगुणरूक्षाणां वा परस्परं बन्धो न भवति । जघन्योऽपकृष्टतमः, गुणशब्दोऽत्र संख्यार्थकः । यथा एक-गुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्-एकसंख्यकद्विसंख्यकाद्यर्थबोधकम् । स्नेहादिगुणानां प्रकर्षापकर्षौ लोकप्रसिद्धौ । यथा-पानीयादजादुग्धं स्निग्धम्, अजादुग्धाद् गव्यं दुग्धम्, ततश्च महिषोदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहप्रकर्षः ।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहापकर्षः । तथा चैकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

जघन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओं का, अथवा बहुत परमाणुओं का परस्परमें बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार जघन्यगुण रूक्ष दो या बहुत परमाणुओं का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता । जघन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए । गुणशब्द यहाँ संख्या ( डिगरी ) का वाचक है, जैसे-एकगुना, दोगुना आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक है । स्निग्धता ( चिकनाई ) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है । जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का दूध चिकना होता है । बकरी के दूधसे गौ का दूध अधिक चिकना होता है, और गौ के दूध की अपेक्षा भैंस का दूध अधिक चिकना होता है । इस प्रकार पानी आदिमें उत्तरोत्तर चिकनेपन की अधिकता है । इन्ही पानी आदि में पहलेर वालो में चिकनेपनकी न्यूनता है । इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का, एक गुण स्निग्ध के साथ, दो या अधिक परमाणुओं का

जघन्य गुणु स्निग्ध ये परमाणुयोः अथवा बहु परमाणुयोः परस्पर  
बंधं यतो नथी, जघन्यनो अर्थ अर्द्धि हीनतम समञ्जो जेधये. गुणु शब्द अर्द्धि  
संख्या ( डिग्री ) नो वाचक छे. जेवी रीते अेक गणु ये गणु आदि पद अेक संख्यक,  
द्विसंख्यक आदि अर्थनुं वाचक छे स्निग्धता ( चिकणापणु ) आदि गुणुनी अधिकता  
अने न्यूनता लोकमां प्रसिद्ध छे. जेम पाणीनी अपेक्षाये अकरीनुं दूध चिकणुं  
डाय छे. अकरीना दूधथी गायनुं दूध अने गायना दूधनी अपेक्षाये लेसनुं दूध  
वधारे स्निग्ध ( चिकणुं ) डाय छे. अे प्रमाणु पाणी आदिमां उत्तरोत्तर चिकणा-  
पणुनी अधिकता छे.

अे पाणी आदिमां पडेला-पडेलानामां चिकणापणुनी न्यूनता छे अे प्रमाणु  
अेक गुणु स्निग्धनो, अेक गुणु स्निग्धनी साथे, तथा जे अथवा अधिक परमाणुयोः

द्वयोर्बहूनां वा परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणूनां सत्यपि संयोगे बन्धकारणीभूतस्निग्धत्वरूक्षत्वयोश्च सद्भावे कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणोस्तादृशपरिणमनशक्तेरभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणां विचित्र-  
रूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविस्रसापेक्षाः प्रभवन्ति । जघन्यगुणत्वेन  
दौर्बल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कश्चिद् पुद्गलं परिणामयितुं न समर्थः । यथा-  
तुल्यदुर्बलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति, तस्माज्ज-  
घन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूक्षका एक गुण रूक्ष के साथ दो या अधिक परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का संयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणभूत स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध—एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है । द्रव्यों की परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रखती हुई नाना प्रकार की होती है । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने में समर्थ नहीं होता; जैसे समान दुर्बलतावाले दो मलों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

परस्पर बंध थतो नथी, अने अेकगुणु इक्षनेो अेकगुणु इक्षनी साथे अे अथवा अधिक परमाणुओनेो परस्पर बंध थतो नथी.

शंका—परमाणुओनेो संयोगे मौजूद होवा छतांय पणु, अने बंधना कारणभूत स्निग्धत्व (अिकषुपणुं) तथा इक्षत्व (दूष्णपणुं) विद्यमान होवा छतांय बंध-  
अेकताइप परिणमन कैम थतु नथी ?

समाधान—परमाणुमां अे प्रकारनी परिणमननी शक्तिनेो अभाव छे, द्रव्यनी परिणमन शक्तिओ क्षेत्र अने कालना अनुरोधथी, प्रयत्न तथा स्वभावनी अपेक्षा राखती थकी नाना प्रकारनी थाय छे. जघन्य गुणवाणा होवाना कारणे, निर्बल होवाथी स्नेह अथवा इक्ष परमाणु कोई पुद्गलने परिणत करवामां समर्थ थतुं नथी. जेवी रीते समान दुर्बलतावाणा अे मल्लोमांथी कोई कोछने पराजित करी शकता नथी. अेटला कारणथी सिद्ध थयुं के—जघन्य गुणवाणाओनेो परस्पर बंध थतो नथी.

एवं द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेण समगुणेन पुद्गलेन परस्परं बन्धो न भवति । तथा द्विगुणादिरूक्षस्य द्विगुणादिरूक्षेण सर्वेण समगुणेन यावदनन्तगुणरूक्षेण 'पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति । यथा तुल्यबलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति ।

इत्थं च तुल्यसंख्यके स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूक्षत्वे सति रूक्षस्य रूक्षेण सह बन्धो न भवतीति सारांशः ।

अथ जघन्यस्निग्धस्य कीदृशेन स्निग्धेन सह परस्परं बन्धो भवति ?

इसी प्रकार द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलका द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुद्गल के साथ आपस में बन्ध नहीं होता । तथा द्विगुण आदि रूक्ष समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है । जैसे—समान बलवाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता ।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुद्गलका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है, और समान रूक्षता होने पर रूक्षका रूक्षके साथ भी बन्ध नहीं होता है ।

शंका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुद्गल के साथ परस्पर बन्ध होता है ? ।

ये प्रमाणे द्विगुण्णी लधने संख्यात, असंख्यात अने अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलनो द्विगुण्णी लधने संख्यात, असंख्यात, अने अनन्तगुण स्निग्धतावाणा समगुण पुद्गलनी साथे आपसमां बंध थतो नथी. तथा द्विगुण्णी आदि रूक्ष पुद्गलनो द्विगुण्णी आदि रूक्ष समगुणवाणा कोर्ध यणु पुद्गलनी साथे बंध थतो नथी. जेम समान गुणवाणा जे मद्वीमांथी कोर्ध कोर्धने पराजित करी शकता नथी.

ये प्रमाणे समान स्निग्धता होवा छतांय, स्निग्ध पुद्गलनो स्निग्ध पुद्गलनी साथे बंध थतो नथी, अने समान रूक्ष होवा छतांय रूक्षनो रूक्षनी साथे यणु बंध थतो नथी.

शंका—जघन्य स्निग्ध पुद्गलनो क्या प्रकारना स्निग्ध पुद्गलनी साथे परस्पर बंध थाय छे ?

अत्रोच्यते—जघन्यस्निग्धस्य द्व्यधिकत्र्यधिकादिना स्निग्धेन बन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धः । परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति बन्धो भवति । एवं एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सह बन्धः ।

एकगुणस्निग्धस्यकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न बन्धः, द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य बन्धविधानात् । एकाधिकगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात् । एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः ।

**समाधान—**जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण ( डिगरी ) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ बन्ध होता है । जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ संयोग होने पर बन्ध हो जाता है । इसी प्रकार एक गुण ( एक अंश ) स्निग्धका चार, पांच, यहाँ तक कि संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है ।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध बतलाया गया है । एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल में विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है । एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये ।

**समाधान—**जघन्य स्निग्ध पुद्गलना जे गुणु ( डिग्री ) अथवा त्रणु गुणु अधिक स्निग्धतावाणा पुद्गलनी साथे अंध थाय छे जेभके—जेक गुणु ( डिग्री ) स्निग्धतावाणा परमाणुनो त्रणु गुणु ( डिग्री ) स्निग्धतावाणा परमाणुनी साथे संयोग थछे नय तो अंध थछे नय छे. तेवी रीते जेक गुणु ( डिग्री ) ( अंश ) स्निग्धताना चार, पांच, त्यां सुधी के संख्यात असंख्यात जे परमाणु अनंत गुणु स्निग्धनी साथे अंध थाय छे.

जेक गुणु स्निग्धतानो जेक अधिक गुणु स्निग्ध अर्थात् द्विगुणु स्निग्धनी साथे अंध थतो नथी, जेभके जे गुणु अधिक स्निग्धना स्निग्ध पुद्गलनी साथे अंध थताव्यो छे, जेक गुणु अधिक स्निग्ध पुद्गलमा विशेष प्रकारनां परिणमननी शक्ति नथी. जेक गुणु ( डिग्री ) स्निग्धतावाणानी अपेक्षा जेक गुणु ( डिग्री ) अधिक स्निग्ध न्यां कडेवाय त्यां जे गुणु ( डिग्री ) स्निग्धतावाणा पुद्गल समझ देवा जेधजे.

एवमुक्तयुक्त्या द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकस्त्रिगुणस्निग्धः त्रिगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतोर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह बन्धो न भवतीति सारः ।

द्विगुणादिस्निग्धस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन बन्धो भवति । यथा द्विगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकश्चतुर्गुणस्निग्धः । त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का अर्थ है—त्रिगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध सनज्ञना चाहिये । इस रीति से अनन्त गुण स्निग्ध भी अपने से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है । अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता ।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक अर्थात् चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, जैसे दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

पूर्वोक्त युक्ति प्रमाणे द्विगुण आदि स्निग्धने पोत-पोतानी अपेक्षाथी ओक गुण अधिक स्निग्ध साथे अंध थतो नथी. द्विगुण स्निग्धथी ओक अधिकनो अर्थ छे—त्रिगुण स्निग्ध, अने त्रिगुण स्निग्धथी ओक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समजवे ओधये. ये प्रमाणे अनन्त गुण स्निग्ध पाणु, पोतानाथी ओक गुण हीन स्निग्धनी अपेक्षाथी ओक गुण अधिक स्निग्ध छे. तेथी द्विगुण स्निग्धने त्रिगुण स्निग्धनी साथे अंध थतो नथी. सारांश ये छे केः—स्निग्ध पुद्गलने ओक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गलनी साथे अंध थतो नथी.

द्विगुण स्निग्ध आदिने ये गुण अधिक अर्थात् चार गुण स्निग्धनी साथे अंध थध जय छे. जेम-ये गुण स्निग्धथी ये गुण अधिक स्निग्धने अर्थ चार

षड्गुणस्निग्धः, इत्यादि । त्रिगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्धः, इत्यादि । चतुर्गुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः— अष्टगुणस्निग्धः । एवं पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन सह बन्धो भावनीयः ।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था बोध्या ।

### विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था ?

उच्यते—जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति ।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पांच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए । चतुर्गुण स्निग्ध से द्व्यधिक— षड्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक—सप्तगुण स्निग्ध, चतुरधिक—अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए । इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से संख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध का दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है । इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए ।

### विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

गुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध अधिकतम अर्थ पांच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिकतम अर्थ छ गुण स्निग्ध, ये प्रमाणे समञ्जसु नेधये. चतुर्गुण स्निग्धर्था द्व्यधिक षड्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक सप्तगुण स्निग्ध चतुरधिक अष्टगुण स्निग्ध समञ्जसु नेधये, ये प्रमाणे पांच गुण स्निग्ध आदिर्था संख्यात, असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धना ये गुण अधिक स्निग्धनी साथे बंध थाय छे ये प्रमाणे जघन्य गुण रूक्षनी अजघन्य गुण रूक्षनी साथे बंधनी व्यवस्था ज्ञानुवी नेधये

### विसदृश पुद्गलानां बंध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्परविरोधी पुद्गलानां बंधनी शुं व्यवस्था छे ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्धना जघन्य गुणवाणा पुद्गलानी साथे बंध थती

जघन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजघन्यगुण (द्विगुणाद्यनन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धस्य वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूक्षेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्व्यधिक-त्र्यधिक-चतुरधिकादि-गुणरूक्षेणापि बन्धो भवति । उक्तञ्च भगवता प्रज्ञापनासूत्रे-(१३)-त्रयोदशे परिणामपदे-“बन्धणपरिणामे णं भन्ते ! कइविहे पण्णत्ते ?, गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-णिद्धबन्धणपरिणामे य लुक्खबन्धणपरिणामे य ।”

समणिद्धयाए बन्धो, न होइ समलुक्खयाएवि ण होइ ।

वेमायणिद्धलुक्ख-त्तणेण बन्धो उ खंधाणं ॥१॥

छाया—बन्धनपरिणामो भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम !

द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—स्निग्धबन्धनपरिणामश्च, रूक्षबन्धनपरिणामश्च ।

समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरूक्षतायामपि न भवति ।

विमात्रस्निग्धरूक्षत्वेन, बन्धस्तु स्कन्धानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता । जघन्य गुण ( एकगुण ) स्निग्ध का अथवा अजघन्य गुण ( दो से लगाकर अनन्त गुण तक ) स्निग्ध का, अपने से एक गुण अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है । और अपने अपने से दो अधिक, तीन अधिक, चार अधिक आदि रूक्ष पुद्गल के साथ भी बन्ध होता है । भगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा है—

प्रश्न—“भगवान् ! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर—गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम और (२) रूक्षबन्धनपरिणाम ।

समान स्निग्धता या समान रूक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विमात्र—अर्थात् अधिक का हीनके साथ, और हीनका अधिक के साथ, चाहे वे स्निग्ध हो या रूक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

नथी. जघन्य गुण (एक गुण) स्निग्धने अथवा अजघन्य, ( जेथी लधने अनन्त गुण सुधी ) स्निग्धने पोतानाथी एक गुण अधिक इक्षनी साथे अंध थाय छे. अने पोतपोताथी जे अधिक, त्रणु अधिक, चार अधिक आदि इक्ष पुद्गलनी साथे पणु अंध थाय छे, भगवाने प्रज्ञापना सूत्रना १३मा परिणाम पदमां कडेलुं छे—

प्रश्न—“भगवान् ! बन्धन-परिणाम केटला प्रकारनां कइयां छे ?

उत्तर—गौतम ! जे प्रकारनां कडेलां छे—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम अने (१) इक्षबन्धनपरिणाम. ”

समान स्निग्धता अथवा समान इक्षता होय तो अंध थतो नथी. परंतु विमात्र अर्थात् अधिकने हीननी साथे अने हीनने अधिकनी साथे, लदे ते स्निग्ध होय के रूक्ष होय, अंध थछ जय छे ॥ १ ॥



णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिण्ण,  
 लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिण्ण ।  
 णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,  
 जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥  
 (प्रज्ञा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,  
 रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन ।  
 स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धो,  
 जघन्यवर्जो विषमः समो वा ॥२॥” इति,  
 विसदृशस्य बन्धमाह—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि ।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः ।  
 यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विषमो समो वा भवेत् । ॥२॥  
 परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम् ।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है । और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है । अब विसदृश बन्धको कहते हैं—“ णिद्धस्स लुक्खेण ” इत्यादि । जघन्य गुणवाले परमाणु को छोड़कर फिर चाहे वह विषम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है ।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ठ १२१ देख लें ।

ये शुष्ण अधिक स्निग्ध साथे स्निग्धनो बंध थाय छे. अने ये शुष्ण अधिक रूक्षनी साथे रूक्षनो बन्ध थाय छे. हवे विसदृश बन्ध छडे छे—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि. जघन्य शुष्णवाणा परमाणुने छोडीने भीन्त गमे ते विषम होय अथवा सम होय ते स्निग्धनो रूक्षनी साथे बंध थाय छे.

परमाणुयोनो बन्धव्यवस्थानुं कोष्ठक पेज १२१मां लेख देवुं.

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्ठकम् ॥

जघन्यगुण-( एकगुण )-स्निग्ध-  
रूक्षयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरूक्षसंख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
जघन्यस्य (एकगुणस्य) जघन्येन (एकगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धाभावः
जघन्यस्य (एकगुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धो भवति	बन्धो भवति
जघन्यस्य (एकगुणस्य) + द्रव्यधिकादिगुणेन-(त्रिगुण- चतुर्गुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

अजघन्यगुण-( द्विगुणादि )-स्निग्धरूक्षयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरूक्ष ÷ संख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्रव्यधिकादिगुणेन (चतुर्गुणपञ्चगुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

एवम् अजघन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्यानन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धरूक्षयोः  
समगुणेन, एकाधिकगुणेन, द्रव्यधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था भावनीया ॥

अथ जीवास्तिकायः—

जीवशब्दार्थः—

जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः । न च सिद्धानां प्राणसम्बन्धा-  
भावादजीवत्वापत्तिरिति वाच्यम्, 'प्राणान् धारयती'—त्यत्र प्राणसामान्यविवक्षया  
पञ्चेन्द्रियप्रभृतिदशविधद्रव्यप्राणानामसत्त्वेऽपि सिद्धानां भावप्राणसद्भावेन जीवत्व-  
सिद्धेरव्याहतत्वात् । प्रतिविशिष्टप्राणसम्बन्धे सति जीवनाज्जीवशब्दः प्रवर्तते ।

प्राणा द्विविधाः—द्रव्यप्राणाः, भावप्राणाश्च । तत्र द्रव्यप्राणा दशविधाः

जीवास्तिकाय—

जीवशब्दका अर्थ—

जो जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है । 'सिद्धों  
में प्राणों का अभाव होने से वे अजीव हो जायेंगे' यह कहना ठीक नहीं है । 'जो  
प्राणों को धारण करता है' इस कथन में प्राण-सामान्य की विवक्षा की गई है । सिद्धों  
में यद्यपि पांच-इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्यप्राण नहीं हैं, तथापि भाव-प्राण  
पाये जाते हैं, और इन भाव-प्राणों के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो  
जाता है । विशिष्ट प्रकार के प्राणों का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को  
जीव कहते हैं ।

प्राण दो प्रकार के हैं—(१) द्रव्यप्राण और (२) भावप्राण । द्रव्यप्राणों के

ज्वास्तिकाय—

ज्वा शब्दको अर्थ—

जे ज्वे जे अर्थात् प्राणोंने धारण करे जे, ते ज्वे कडेवाय जे. 'सिद्धोंमां  
प्राणोंने अभाव होवार्थी ते अज्वे थध ज्जे,' ज्जेम कडेवुं ते हीक नथी. 'जे  
प्राणोंने धारण करे जे' ज्जेम कडेवामां प्राण-सामान्यनी विवक्षा कही जे. सिद्धोंमां  
जे जे पांच इन्द्रियो आदि दस प्रकारना द्रव्य-प्राण नथी, ते पण भाव-प्राण  
होय जे, अने ते भाव-प्राणोना कारणे सिद्ध लगवाननुं ज्वेपणुं सिद्ध थाय जे.  
विशिष्ट प्रकारना प्राणोंने संबंध होवार्थी कारणे ज्वेवा वाणोने ज्वे कडे जे.

प्राण जे प्रकारना जे—(१) द्रव्य-प्राण अने (२) भाव-प्राण, द्रव्य प्राणोनी

इन्द्रियपंचकम् ५, मनोवाक्कायबलत्रयम् ३, श्वासोच्छ्वासरूपः १, आयुश्चेति १ । एते दश प्राणाः संसारिणां यथासंभवं भवन्ति । नारकतिर्यगादयः संसारिणो द्रव्यप्राणैरपि प्राणिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धाः सिद्धास्तु केवलभावप्राणैरेव प्राणिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधाः—अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाद्यनन्तस्थितिश्च ४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षयोपशमिकपञ्चेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपभावप्राणस्यानन्तांशेन मनोवाक्कायबलत्रयम्, अनन्तसुखाच्च—श्वासोच्छ्वासरूपः प्राणः समुद्भवति, तथा अनाद्यनन्तस्थितिरूप-भावप्राणतः सादिसान्तरूप आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यवधेयम् ।

दशभेद है—पांच इन्द्रियाँ ५, तीन बल—मनोबल, वचनबल और कायबल ३, श्वासोच्छ्वास १ तथा आयु १, ये दश द्रव्यप्राण यथासम्भव संसारी जीवों के होते हैं । नारकी, तिर्यच आदि संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं, किन्तु सब प्रकार के कर्म—संबंध से रहित सिद्धो में सिर्फ भावप्राण ही होते हैं । सिद्ध जीव भावप्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भाव प्राणके चार भेद है—अनन्तज्ञान १, अनन्तवीर्य २, अनन्तसुख ३, और अनादिअनन्तस्थिति ४ । क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली पांच इन्द्रियाँ अनन्त ज्ञान का विकार ( वैभाविक परिणमन ) है, मन, वचन और काय—बल, अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, श्वासोच्छ्वास अनन्तसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिसान्त आयुरूप द्रव्यप्राण अनादि—अनन्तस्थितिरूप भावप्राणका विकार है । इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणों के कारण है ।

दस भेद छे—पांच इन्द्रियोप, त्रयु षण् अर्थात् मनोबल, वचनबल अने कायबल ३, श्वासोच्छ्वास १, तथा आयु १, आ दस द्रव्यप्राणु साधारणु रीते संसारी जिवोने होय छे. नारकी तिर्यच आदि संसारी जिवोमां पणु द्रव्यप्राणु देषाय छे, परन्तु सर्व प्रकारना कर्म—संबंधथी रहित सिद्धोमां मात्र भावप्राणु न होय छे, सिद्ध जिव भावप्राणोना कारणथी न प्राणी कहेवाय छे.

भावप्राणुना चार भेद छे—अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख अने अनादि-अनन्त स्थिति, क्षयोपशमथी उत्पन्न थवा वाणी पांच इन्द्रियो अनन्त ज्ञाननो विकार ( वैभाविक परिणमन ) छे, मन, वचन अने कायबल, अनन्त वीर्यरूप भाव प्राणुनो विकार छे, श्वासोच्छ्वास ते अनन्तसुखरूप भावप्राणुनो विकार छे; अने सादि-सान्त आयुरूप द्रव्यप्राणु, अनादि अनन्त स्थितिरूप भावप्राणुनो विकार छे. ये प्रमाणु भावप्राणु, द्रव्यप्राणुना-कारणु छे.

अथ जीवस्य स्वरूपम्—

औपशमिकादिभाववान् , असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, लोकाकाशव्यापी प्रदीपवत् संकोचविकासशीलः, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽखण्डः, क्रियाशीलः, प्रदेश-समुदायरूपो, नित्यो, रूपरहितोऽवस्थितोऽमूर्तः सन्नपि संसारावस्थायां मूर्त इव प्रतीयमानः, ऊर्ध्वगतिशील आत्मा जीवः ।

अथ भावस्तद्भेदाश्च—

‘अथौपशमिकादिभाववान् जीवः’ इत्युक्तम्, तत्र कस्तावद्भावाः ? श्रूयताम्—  
आत्मपर्यायाणामवस्थैव भावाः । आत्मपर्यायाश्चावस्थामेदेन विविधरूपा

जीव का स्वरूप—

औपशमिक आदि भावोंवाला, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाव वाला, व्यक्तिरूप से अनंतसंख्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होने पर भी संसारी अवस्था में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमनस्वभाववाला आत्मा जीव कहलाता है ।

भाव और भाव के भेद—

प्रश्न—जीव का स्वरूप बतलाते हुए उसे औपशमिक आदि भावों वाला कहा है तो भाव क्या वस्तु है ?

उत्तर—सुनिये, आत्मा के पर्यायों की अवस्था ही भाव कहलाती है । आत्मा के पर्याय, अवस्थाओं के भेद से नाना प्रकार के होते हैं, अतः आत्मपर्यायवर्ती भाव

एवमुं स्वरूप

औपशमिक आदि भावोंवाला, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाववाला, व्यक्तिरूपी अनंतसंख्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होना छटांय संसारी अवस्थाओं में मूर्त जैसा दृष्टाववाला, ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला आत्मा एव उद्देवाय है।

भाव अने भावना लेह—

प्रश्न—एवमुं स्वरूप बतावता थका तेने औपशमिक आदि भावोंवाला उद्देव है; ते भाव शुं वस्तु है ?

उत्तर—सालेणो, आत्माना पर्यायैनी अवस्था न भाव उद्देवाय है। आत्माना पर्याय, अवस्थाओंना लेहथी नाना प्रकारना होय है, तेथी आत्मपर्यायवर्ती भाव पांय

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ती भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्मावच्छन्नवह्निवदनुद्रेकावस्था, प्रदेशतोऽप्यु-  
दयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति  
निरोधः । इत्थम्भूतश्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्वृत औपशमिकः—  
क्रोधादिकषायोदयाभावरूपोपशमस्य फलरूपो जीवस्य परमशान्तावस्थालक्षण-  
परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि-

पांच प्रकारका है—(१)—औपशमिक, (२)—क्षायिक, (३)—क्षायोपशमिक, (४)—औदयिक  
और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भाव—

राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था, एवं  
प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा  
प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रुकना उपशम है । इस प्रकार का  
उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं ।  
अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयाभावरूप उपशम का फलरूप जीव, उसका परमशान्त  
अवस्थारूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है ।  
जैसे कि—कतकचूर्ण ( निर्मलीफल का चूरा ) तथा फिटकडी आदि का चूरा डालने से जलका

प्रकारना छे (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने  
(५) पारिणामिक.

(१) औपशमिक भाव—

राखथी ढाँकेला अग्नि समान मोहनीय कर्मनी अनुद्रेक अवस्था, एवं  
प्रदेशनी अपेक्षा यद्यु उदय न होय ते उपशम कहेवाय छे. अर्थात् उद्रेकरूपथी  
तथा प्रदेशरूपथी—अने प्रकारना उदयनुं यथाशक्ति रोकावुं ते उपशम छे. आ  
प्रकारना उपशम सर्वोपशम कहेवाय छे. जे उपशमथी होय तेने औपशमिक कहे  
छे. अर्थात् क्रोध आदि कषायोना उदयाभावरूप उपशमना इलरूप अणु, तेना  
परम शान्त अवस्थाइय परिणाम औपशमिक कहेवाय छे.

जे आत्मानी जेक प्रकारनी शुद्धि छे; जेभके कतकचूर्ण ( निर्मलीफलनुं चूर्ण ) तथा

मलनिचयस्याधोदेशे निपाते सति जलस्य स्वच्छता । मोहनीयकर्मण उपशमाद्  
यद् दर्शनं श्रद्धानरूपं, चरणं वा विरतिरूपं जायते तदप्यौपशमिकशब्देनोच्यते ।

(२) क्षायिकभावः—

(२) सकलकर्मणामत्यन्तोच्छेदः क्षयः, क्षयेण निर्वृत्तः क्षायिकः—  
अप्रतिपात्रि-ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेषः । स चात्मनः  
परमविशुद्धिः । यथा-सर्वथा निःशेषपङ्कादिमलव्यपगमे जलस्य परमस्वच्छता ।

कीचड आदि मैल नीचे बंट जाता है, और जल स्वच्छ हो जाता है । मोहनीय कर्म के  
उपशम से श्रद्धानरूप जो दर्शन उत्पन्न होता है, या विरतिरूप जो चारित्र उत्पन्न होता है,  
वह औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र कहलाता है ।

(२) क्षायिक भाव—

कर्म का अत्यन्त उच्छेद हो जाना क्षय कहलाता है । क्षय से होने वाला भाव  
क्षायिक भाव है । अर्थात् एक वार उत्पन्न हो कर फिर नष्ट न होने वाले ज्ञान, दर्शन  
और चारित्र रूप जीव के परिणाम को क्षायिक भाव कहते हैं । क्षायिक अवस्था जीव की  
परम विशुद्धि है, जैसे-पूर्ण रूप से समस्त कीचड आदि मैल के हट जाने पर जल की  
परम स्वच्छता होती है ।

दूटकडी आदिनुं शूर्णुं नाभवाथी क्षयरो अने मेल नीचे ऐसी जाय छे, अने जल स्वच्छ  
थाय छे. मोहनीय कर्मना उपशमथी श्रद्धारूप जे दर्शन उत्पन्न थाय छे. अथवा  
विरतिरूप जे चारित्र उत्पन्न थाय छे, ते औपशमिक सम्यग्दर्शन अने औपशमिक  
चारित्र कहेवाय छे.

(२) क्षायिक भाव—

कर्मना अत्यन्त उच्छेद थय जवो ते क्षय कहेवाय छे. क्षयथी थवावाणो भाव  
क्षायिक भाव छे. अर्थात् अेकवार उत्पन्न थयने इरी नाश नहि थवावाणा ज्ञान,  
दर्शन अने चारित्ररूप जवना परिणामने क्षायिक भाव कहे छे. क्षायिक अवस्था  
जवनी परम विशुद्धि छे. जेम-पूर्णरूपथी समस्त कीचड-कादव आदि मेलना हर  
थवाथी जलनी परम स्वच्छता थाय छे.

(३) क्षयोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणामुदीर्णस्यांशस्य नाशः-क्षयः, अनुदीर्ण-स्यांशस्य विपाकोन्मुखत्वाभावः-उपशमः, यत्र एतद्वयं स क्षयोपशमः, स एव क्षयोपशमिकः । अस्य भावस्य 'मिश्रः' इति नामान्तरम् । ईषद्विध्यातावच्छन्न-वह्निवद् । यद् उदयावलिकाप्रविष्टं कर्म, तत् क्षीणम्, ततोऽवशिष्टं कर्म, उद्रेक-क्षयोभयरहितावस्थम्, इमामुभयीमवस्थामवलम्ब्य क्षयोपशमिको भावः प्रजायते ।

(४) औदयिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविर्भाव उदयः । तेन निर्वृत्तो भाव औदयिकः । स

(३) क्षयोपशमिक भाव—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों के उदीर्ण (उदय में आये हुए) अंश का नाश होना क्षय है । और अनुदीर्ण अंश का फल देने में उन्मुख न होना उपशम है । इन्हीं दोनों अवस्थाओं को क्षयोपशमिक भाव कहते हैं । इस भाव का दूसरा नाम 'मिश्रभाव' भी है । थोड़ीर बुझी हुई और ढंकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उदयावलिका में आचुके हैं उनका क्षय होना, तथा शेष कर्मों का उद्रेक और क्षय—दोनों अवस्थाओं से रहित होना, इन दोनों के आधार पर क्षयोपशमिक भाव उत्पन्न होता है ।

(४) औदयिक भाव—

कर्म का विपाक (फल) देना उदय कहलाता है । उदय से होनेवाला

(३) क्षयोपशमिक भाव—

मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मोंना उदीर्ण (उदयमां आवेला) अंशना नाश थयो ते क्षय छे, अने अनुदीर्ण अंशनु इल देवामां उन्मुख-ते तरश् नहि थवुं ते उपशम छे, अने अन्ने अवस्थाअने क्षयोपशमिक भाव उडे छे. आ भावतुं भीणुं नाम 'मिश्रभाव' पणु छे. थोडी थोडी ठंडी थयेली अने ठांडेली अग्नि प्रमाणे ने कर्म उदयावलिकामां आवी चूक्यां छे तेना क्षय थयो, तथा शेष कर्मोंना उद्रेक अने क्षय, अने अवस्थाअथी रहित थवुं, आ अन्नेनां आधार उपर क्षयोपशमिक भाव उत्पन्न थाय छे.

(४) औदयिक भाव—

कर्मना विपाक (इल) भणवुं ते उदय उडेवाय छे. उदयथी उत्पन्न थवावाणो भाव ते औदयिक छे. औदयिक भाव आत्मानी मतिनता इप छे. नेमडे डीचड-



चात्मनो मालिन्यम्, यथा पङ्कसंगाज्जलस्य मालिन्यं । तथा-नरकगत्यादिनाम-  
कर्मणो विपाकाविर्भावान्नरकगत्याद्याख्य औदयिको भावः । कषायमोहनीयकर्मणो  
विपाकाविर्भावाच्च 'क्रोधी, -मानी' -त्यादिरौदयिको भावः । एवं सर्वत्रौदयिको  
भावः समालोचनीयः ।

### (५) परिणामिक-भावः—

(५) परिणमनं-सर्वथा-अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य रूपान्तरेण भवनं-परिणामः,  
स एव पारिमाणिकः । अत्र स्वार्थे ठक् प्रत्ययः, न तु निर्वृत्त्यर्थे, जीवस्यादिमत्त्वापत्तेः ।  
यदि 'परिणामेन निर्वृत्तः' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था-

भाव औदयिक है । भाव आत्मा का मालिन्यरूप है, जैसे कि कीचड के संसर्ग से जल में  
मलिनता आ जाती है । नरकगतिनामकर्म आदि के उदय से नरक गति आदि औदयिक  
भाव कहलाते हैं । कषायमोहनीय कर्म के उदय से क्रोध, मान आदि औदयिक भाव  
होते हैं । इसी प्रकार सभी जगह औदयिक भाव का विचार कर लेना चाहिये ।

### (५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्था का सर्वथा त्याग न कर के रूपांतर में होना परिणाम है, और वही  
पारिणामिक कहलाता है । यहां स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हुआ है, न कि निर्वृत्ति अर्थ में, निर्वृत्ति अर्थ  
में प्रत्यय होनेसे जीवका आदिमान् होनेका प्रसङ्ग आजाता है । यदि—“परिणामेन निर्वृत्तिः  
पारिणामिकः-जीवः” अर्थात् परिणामसे होनेवाला पारिणामिक-जीव कहलाता है, ऐसी  
व्युत्पत्ति मानली जाय तो 'किसी पूर्व कालमें जीव नहीं था वह अब हुआ है' इस

उद्भवना संसर्गधी नलभां मलिनता आवी नय छे. नरकगति नाम-कर्म आदिना  
उद्भवथी नरकगति आदि औदयिक भाव उडेवाय छे. कषाय-मोहनीय कर्मना उद्भवथी  
क्रोध, मान आदि ते औदयिक भाव छे. आ प्रमाणे तमाम स्थणे औदयिक भावने  
विचार करी देवे.

### (५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्थानो सर्वथा त्याग नहि करतां रूपांतर यवुं ते परिणाम छे, अने  
परिणाम तेन पारिणामिक उडेवाय छे. अही स्वार्थभां ठक् प्रत्यय थयो छे परन्तु  
निर्वृत्ति अर्थभां नथी थयो. निर्वृत्ति अर्थभां प्रत्यय थवाथी लवने आदिमान्  
(आदिवाणो) थवानो प्रसंग आवी नय छे. जे—“परिणामेन निर्वृत्तः परिणामिकः-  
जीवः” अर्थात् 'पारिणामथी थवावाणो पारिणामिक लव उडेवाय छे' आवी व्युत्पत्ति

यामनिर्वृत्तो जीवो निर्वृत्तः स्यात् । एवं चादिमत्त्वप्रसंगः । कथमसन् आकाश-  
कुसुमकल्प आत्माऽऽयत्यां संभवे ?-दिति युक्तिविरोधश्च ।

न हि परिणामेन विना कश्चिद्भावो भवतीति भावानां मध्ये परिणामस्यैव  
प्राधान्यम् । आत्मनः स्वाभाविकं स्वरूपपरिणमनमेव पारिणामिको भाव उच्यते ।  
यश्चात्मनः सत्तया स्वयमेव परिणामो भवति, स एव पारिणामिको भावः । उक्तञ्च-

“यः कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च ।

संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥”

अष्टविधकर्मणां कर्ता, कर्मफलभोक्ता, चतुर्गतिभ्रमणकर्ता, कर्मक्षयकरणेन  
मोक्षगन्ता यः, स एवात्मा, अन्यरूपो नेत्यर्थः ।

प्रकार जीवको सादि (आदिवाला) मानना पडेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि—  
जो आत्मा भूतकालमें नहीं था तो आकाशपुष्पके समान भविष्यत् कालमें उसका होना  
कैसे संभव हो सकता है ? । इस प्रकार युक्तिसे भी विरोध आता है ।

विना परिणाम के कोई भाव नहीं हो सकता अतः भावोंमें परिणामकी  
प्रधानता है । आत्मा का स्वाभाविक परिणमन ही ‘पारिणामिक’ भाव कहलाता है, अर्थात्  
आत्मा का जो अनादिपरिणमनसत्ता का कारण है उसे पारिणामिक भाव समझना  
चाहिए । कहा भी है —

“जो कर्म के भेदों का कर्ता है, जो कर्मफल का भोक्ता है । संसारभ्रमण  
करने वाला है, निर्वृत्ति (मोक्ष) प्राप्त करने वाला है वही आत्मा है, आत्मा का अन्य  
लक्षण नहीं है ॥१॥

मानवामां आवे तो ‘पूर्वकाणमां लुप नडि हुतो ते हुवे थयो छे.’ आ प्रकारे  
लुपने सादि (आदिवाणो) मानवो पडशे, परंतु એમ થઈ શકે નહિ, કારણ કે—  
જે ભૂતકાળમાં નહીં હતો ત્યારે તેનું આકાશપુષ્પની સમાન ભવિષ્યત્ કાળમાં  
થવું કેમ સંભવે ? એમ યુક્તિથી પણ વિરોધ આવે છે.

વગર પરિણામે કેઈ પણ ભાવ નથી થઈ શકતો, એટલા માટે ભાવોમાં  
પરિણામની પ્રધાનતા છે. આત્માનું સ્વાભાવિક પરિણમન જ પારિણામિક ભાવ કહેવાય  
છે. અર્થાત્ આત્માની અનાદિપરિણમનસત્તાનું જે કારણ છે, તેને પારિણામિક ભાવ  
સમજવું જોઈએ કહ્યું પણ છે—

“જે કર્મના ભેદોનો કર્તા છે, જે કર્મના ફળનો ભોક્તા છે; સંસારભ્રમણ  
કરવાવાળો છે, નિર્વૃત્તિ (મોક્ષ) પ્રાપ્ત કરવા વાળો છે તે આત્મા છે. આત્માનું  
બીજું લક્ષણ નથી.” ॥૧॥

### जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोकाकाशे जीवोऽवगाहते । जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात् । आत्मनः परिमाणं न गगन-  
वन्महत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम् ।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विस्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव । अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम-

### जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है । कारण यह है कि—जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले है, अर्थात् कभी सिकुड जाते है और कभी फैल जाते है । आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है ।

प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेश वाले है किन्तु प्राप्त शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पडजाता है, अतः प्रत्येक

### जिवनुं स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाशना असंख्यातमा लागथी लधने संपूर्ण लोकाकाशमां जिवनुं अवगाहनं थर्धं शके छे. कारणं जे छे डे—जिवना प्रदेश दीपकनी प्रभानी समान संकोच-विस्तार स्वभाववाणा छे, अर्थात् कोर्ध वषत् संकुचार्ध जय छे अने कोर्ध वषत् द्वैलार्ध जय छे. आत्मानुं परिमाणु आकाशप्रमाणे मडान नथी. अने परमाणुना परापर पणु नथी परन्तु आत्मा मध्यम परिमाणु वाणो छे.

प्रदेशोनी संख्यानी अपेक्षाजे समस्त आत्मानुं परिमाणु परापर छे. अर्थात् सर्व आत्मा लोकाकाशना परापर असंख्यात प्रदेशवाणा छे, परन्तु प्राप्त शरीरना अनुसार तेना विस्तारमां (परिमाणुमा) अंतर पडी जय छे. तेदवा कारणथी प्रत्येक जिवनो आधार-क्षेत्र लोकाकाशना असंख्यातमा लागथी लधने संपूर्ण लोक सुधी थर्धं शके छे.

र्हति । यदा जीवः केवलिसमुद्घातावस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-  
जीवस्याधारक्षेत्रं भवति । सकलजीवराश्यपेक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमेव  
लोकाकाशम् ।

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागे जीवस्य स्थितिरित्यत्राऽऽगमवचनं यथा—

“सदृाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ”

स्वस्थानेन लोकस्यासंख्येयभागे । ( प्रज्ञा० २ पदे जीवस्थानाधिकारे )

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम् ? उच्यते—जीवस्यानादिकालतो-  
ऽनन्तानन्ताणुप्रचयरूपेण कर्मण-शरीरेण सम्बन्धादेकस्यैव जीवस्य परिमाणं

जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवे भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकतक  
हो सकता है । जब जीव केवलिसमुद्घात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण  
लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है । समस्त जीवराशि की अपेक्षासे सम्पूर्ण लोकाकाश  
जीवों का आधारक्षेत्र है ।

जीव का अवगाह - लोकाकाश के असंख्यातवे भाग में होता है; इस  
विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

“सदृाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे” (प्रज्ञापना २ पद जीवस्थानाधिकार)  
स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवे भाग में (जीव की स्थिति है) ।

शङ्का—जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है ?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कर्मण शरीर के साथ

ज्यादे अव केवलिसमुद्घात करे छे, ते समय ते अेक अव संपूर्ण लोकाकाशमां  
व्याप्त थई जय छे. समस्त अवराशिनी अपेक्षाथी संपूर्ण लोकाकाश अवोनुं  
आधारक्षेत्र छे.

अवने अवगाह लोकाकाशना असंख्यातमा भागमां डोय छे. आ विषयमां  
आगमनुं प्रमाणु आ प्रमाणु छे—

“सदृाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे ” स्वस्थाननी अपेक्षा लोकाकाशना असंख्यातमा  
भागमां (अवनी स्थिति छे) प्रज्ञापना, २ पद जीवस्थानाधिकार.)

शङ्का—अवोना परिणामनी न्यूनाधिकतानुं कारणु छे.

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओना प्रचयरूप (समूह) रूप कर्मणु शरीर

बहूनां वा जीवानां परिमाणं विविधं जायते । कर्मण-शरीरं हि सर्वदाऽनेक-  
रूपेणावतिष्ठते । तत्सम्बन्धादौदारिकाद्यपि शरीरं तदनुसारि न्यूनाधिक-  
परिमाणभाग् भवति ।

जीवस्य मूर्तवद् हासवृद्धिः—

वस्तुतो रूपरहितोऽपि जीवः शरीरसम्बन्धान्न्यूनाधिकपरिमाणं  
दधन्मूर्तं इवापचयोपचयौ प्राप्नोति । स हि स्वभावतः प्रदीपवन्निमित्तमासाद्य  
संकोचविकाशशीलः स्वाश्रयमात्रेऽवभासते । यथा-कलशे प्रासादप्रदेशे निरा-

अनादि काल से जीव का सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध के कारण एक ही जीव का  
अनेक कालों में, और अनेक जीवों का एक ही काल में भिन्न-प्रकार का परिमाण  
होता है । कर्मण शरीर सदा विभिन्न रूपों में परिणमन करता रहता है । उसके संयोग से  
औदारिक आदि शरीर भी कर्मण शरीर के अनुसार न्यूनाधिकपरिमाणवाले होते हैं ।

जीव की हास-वृद्धि—

जीव वास्तव में अरूपी है, फिर भी शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण  
वह छोटे-मोटे परिमाण को धारण करता है, अतः उस में मूर्त पदार्थ की भाँति अपचय  
( हास ) और उपचय ( वृद्धि ) होता है । स्वभाव से संकोच विकाशवाला जीव निमित्त  
पाकर दीपक की तरह अपने आश्रय (शरीर) में प्रतिभासित होता है । जैसे घट में,

साथे अनादि काली लवना संभंध छे; ये संभंधना कारणे अेकल लवना अनेक  
कालोमां, अने अनेक लवोना अेकल कालमां लिन्न लिन्न प्रकारनुं परिमाणु थाय छे,  
कार्मणु शरीर सदाय विभिन्न रूपोमां परिणुमन करी रहे छे, तेना संयोगथी  
औदारिक आदि शरीर पणु कार्मणु शरीर प्रमाणे न्यूनाधिक परिमाणुवाणा होय छे.

लवनी हास वृद्धि—

लव वास्तवमां अरूपी छे, तो पणु शरीरनी साथे संभंध होवाना कारणे ते  
नाना-मोटा परिमाणुने धारणु करे छे, ते कारणुथी तेमां मूर्त पदार्थनी नेम अपचय  
(हास) अने उपचय (वृद्धि) थाय छे. स्वभावथी संकोच-विकाशवाणो लव निमित्त  
प्राप्त करी दीपकनी प्रमाणे चोताना आश्रय (शरीर)मां प्रतिभासित थाय छे—(हेभाय छे).

वृत्ताकाशे चावस्थितः प्रकाशपुञ्जरूपः प्रदीपः स्वाश्रयमात्रावभासी क्वचित् संकुचितः क्वचित् विततश्च भवति । अतः शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान आत्मा मूर्त इव विज्ञायते । उक्तञ्च राजप्रश्नीयसूत्रे—

“पएसी ! जहाणामए—कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केई पुरिसे जोइं व दीवं व” इत्यारभ्य “एवामेव पएसी ! जीवेवि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोदिं णिव्वत्तेह तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ—खुड्डियं वा महालियं वा” इति पर्यन्तम् । सू० ८४ ॥ इति ॥

प्रदेशिन् तद् यथानामकम्—कूटागारशाला स्यात् यावद् गम्भीरा, अथ खलु कोऽपि पुरुषः ज्योतिर्वा दीपं वा (इत्यारभ्य) एवमेव प्रदेशिन् ! जीवोऽपि यां यादृशिकां पूर्वकर्मनिबद्धां बोदिं निर्वर्त्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तां करोति क्षुद्रिकां वा महालयां वा ।” इति च्छाया ।

महल में और खुले आकाश में रक्खा हुआ प्रकाश का पुञ्जरूप दीपक अपनी जगह पर मादम होता हुआ कहीं सकुचित होता है और कहीं विस्तृत होता है । इसी प्रकार शरीर के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा मादम होता है । राजप्रश्नीय सूत्र में कहा है :—

“हे प्रदेशी राजा ! जैसे कोई कूटागार शाला हो और वह ( यावत् ) गंभीर हो और कोई पुरुष जोत या दीपक उस में रक्खे तो वह उसे पूर्णरूप से प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! आत्मा अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार जैसा शरीर पाता है; उसे असंख्यात आत्मप्रदेशों से सजीव बना देता है, चाहे वह शरीर बड़ा हो चाहे क्षुल्ल (छोटा) हो” ।

जेवी रीते घरमां, भडेलमां अने खुल्ला आकाशमां राणेदो प्रकाश-पुंजरूप दीपक, पोतानी जग्याये देभातो थकेो केाई जग्याये संकुचित होय छे अने केाई जग्याये विस्तृत होय छे. जे प्रमाणे शरीरना परिमाणे अनुसार परिमाणे वाणो आत्मा मूर्त जेवो देभाय छे. राजप्रश्नीय सूत्रमां कहुं छे —

“हे परदेशी राजा ! जेभ केाई कूटागार शाला होय ते ( यावत् ) गंभीर होय अने केाई पुरुष जेयत अथवा दीपक तेमां राणे तो ते जेने पूर्णरूपथी प्रकाशित करे छे, जे प्रमाणे हे परदेशी ! आत्मा पोताना पूर्वोपार्जित कर्मो प्रमाणे जेवुं शरीर प्राप्त करे छे, तेने असंख्यात आत्मप्रदेशोथी सज्जव बनावी दे छे, ते शरीर गमे तो मोटुं होय अथवा नानुं होय.”

## जीवस्य—ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्नूर्ध्वं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यवद् जीवस्य गतिशीलत्वात् ।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः—पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावा-  
दूर्ध्वगतिशीलाः । प्रतिबन्धकद्रव्यसङ्गाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अधस्तिर्यग् वा  
गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति । तच्च तद्गतिप्रतिबन्धकं कर्मैव । यदा सकल—

## जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर  
गमन करता है । 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा  
कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है ।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है—पुद्गल अधोगतिशील हैं  
और जीव ऊर्ध्वगतिशील है, अर्थात् पुद्गलो का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का  
स्वभाव उपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से  
ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है । या कभी गमन  
करने में असमर्थ हो जाता है । जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिबन्धक (रुकावट  
डालने वाला) कर्म ही है । जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

## ज्वनी उर्ध्व गति—

सकल कर्मोंने क्षय तथा पछी तत्काल मुक्त थयेले ज्व उपर तरङ्ग गमन  
करे छे. 'ज्व अमूर्त छे, अने अे कारण्थी ते गति करी शकते नथी'—अेम  
कडेपुं ते डीक नथी; केमके पुद्गलनी प्रमाणे ज्व स्वभावथी न गतिशील छे.

गतिना विषयमां ज्व अने पुद्गलमां अेटले लेद छेः—पुद्गल अधोगतिशील  
छे, अने ज्व उर्ध्वगतिशील छे. अर्थात् पुद्गलेनो स्वभाव नीचे नवानो छे, अने  
ज्वनो स्वभाव उपर तरङ्ग नवानो छे. परंतु तेमां अंतराय नांभवावाणा द्रव्येना  
निमित्तथी उर्ध्वगतिशील ज्व पण नीचे तरङ्ग अथवा तिरछा गमन करे छे अथवा  
कोई वधत गमन करवामां असमर्थ थई नथ छे. ज्वनी स्वाभाविक गतिने  
प्रतिबन्ध (अटकायत) करनार कर्म न छे. न्यारे सकल कर्मोंने अत्यन्त क्षय थई

कर्मणामत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्गाभावात् कर्मवन्धनोच्छेदाच्च नास्त्येवोर्ध्वगति-  
प्रतिबन्धकं तदा स्वस्वभावानुसारेणोर्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते ।

### जीवस्य लक्षणम्—

उपयोगवत्त्वं जीवस्य लक्षणम् । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते  
जीवोऽनेनेत्युपयोगः करणे चञ् । बोधरूपो व्यापार उपयोगः । ज्ञानं, संवेदनं,  
प्रत्ययः, इति नामान्तराणि ।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयदर्शनान्निश्चयो भवति-विद्यते खलु जीवः,  
यस्यैवौ सामान्यविशेषावबोधौ, न च तादृशः कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साका-

कर्मों का संसर्ग नहीं रहता, कर्मवन्धन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई  
प्रतिबन्धक नहीं रहता, तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है ।

### जीव का लक्षण—

जीव का लक्षण उपयोग है । जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है  
उपयुक्त बनाता है उसे उपयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—बोधरूप व्यापार उपयोग  
कहलाता है । ज्ञान संवेदन, प्रत्यय, ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं ।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है । इन  
दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव अवश्य है, जिस में यह सामान्य और  
विशेष बोध पाया जाता है । ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य—बोध (निराकार  
बोध) है, अने कर्मोंको संसर्ग रहते तो नहीं, त्वारे कर्मवन्धनको क्षय भवती उर्ध्वगति  
भवामां केरि प्रतिबन्धक (अंतराय करनार) रहते नथी; त्वारे सिद्ध भवेने उर्ध्व-  
गमन करवाने अवसर प्राप्त थाय छे.

### अवनुं लक्षणम्—

अवनुं लक्षणम् उपयोग छे, ते अवनुं वस्तुना बोधमां व्यापृत—व्यापारयुक्त  
करे छे. तात्पर्य अे छे के—बोधरूप व्यापार उपयोग उडेवाय छे. ज्ञान, संवेदन,  
प्रत्यय, आ सर्व उपयोगना पर्यायवाची शब्दो छे,

सामान्य बोध (दर्शन) अने विशेष बोध (ज्ञान) अनुभव सिद्ध छे. अे अने  
बोधोधी अेभ निश्चय थाय छे के:—अव अवश्य छे, जेमां आ सामान्य तथा  
विशेष बोध जेवामां आवे, छे अेवो केरि अव नथी के जेमां सामान्य बोध



રાનાકારોપયોગો ન સ્તઃ । અત એવોક્તં ભગવતા—“ જીવો ઉવઓગલક્ષણો ” ઇતિ ।

લક્ષ્યતે—જ્ઞાયતેઽનેનેતિ લક્ષણમ્ । ઉપયોગો લક્ષણં યસ્ય સ ઉપયોગલક્ષણઃ । જ્ઞાનાવગમ્યો જીવ ઇત્યર્થઃ ।

પૃથિવીકાયાદિસર્વસંસારિજીવાનાં બોધસ્યાનન્તતમો ભાગઃ સર્વદા પ્રકાશમાનોઽનાવૃતસ્તિષ્ઠત્યેવ । નહિ સકલલોકાન્તવર્તિનઃ પુદ્ગલાઃ કર્મરૂપતયા પરિણતા અપિ કસ્યાપિ જીવસ્ય સર્વતોભાવેન જ્ઞાનમાવરીતું પ્રભવન્તિ । યથા—

અતિનિવિઢઘનઘટાઽઽચ્છાદિતસ્યાપિ સૂર્યસ્ય પ્રકાશલેશઃ પ્રકાશત એવ, નચ સર્વથા ઉપયોગ) ઓર વિશેષ બોધ ( સાકાર ઉપયોગ ) વિઢમાન ન હો, ઇસી કારણ ભગવાન્ને કહા હૈ—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” જીવ ઉપયોગ લક્ષણ વાલા હૈ ।

જિસ કે દ્વારા વસ્તુ લક્ષી જાય—જાની જાય વહ લક્ષણ કહલાતા હૈ । ઉપયોગ જિસ કા લક્ષણ હો ઉસે ઉપયોગલક્ષણ કહતે હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જ્ઞાન લક્ષણ કે દ્વારા જીવ માલ્દમ હોતા હૈ ।

પૃથિવીકાય આદિ સમસ્ત સંસારી જીવોં કે જ્ઞાન કા અનન્તવાં ભાગ સદૈવ પ્રકાશમાન ઓર આવરણરહિત બના રહતા હૈ । સમ્પૂર્ણ લોકાકાશ કે પુદ્ગલ કદાચિત્ કર્મરૂપ મેં પરિણત હો જાઈં તો મી વહ કિસી ઁક જીવ કે જ્ઞાન કો પૂર્ણરૂપ સે આવૃત નહી કર સકતે । સૂર્ય ચાહે કિતની હી સઘન ઘનઘટા સે આચ્છાદિત ક્યોં ન હો જાઁ, ઉસકા થોઢા વહુત પ્રકાશ બના હી રહતા હૈ, પ્રકાશ કમી પરી તરહ

(નિરાકાર ઉપયોગ) અને વિશેષ બોધ (સાકાર ઉપયોગ) વિઢમાન ન હોય, એ કારણથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” એવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.

જેના દ્વારા વસ્તુ લખી શકાય—જાણી શકાય—તે લક્ષણ કહેવાય છે. ઉપયોગ જેનું લક્ષણ હોય, તેને “ઉપયોગલક્ષણ” કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જ્ઞાનલક્ષણ દ્વારા એવ માલ્દમ પડે છે

પૃથિવીકાય આદિ તમામ સંસારી જીવોના જ્ઞાનને અનંતમો ભાગ હમેશાં પ્રકાશમાન અને આવરણરહિત બની રહે છે. સંપૂર્ણ લોકાકાશના પુદ્ગલો કદાચ કર્મરૂપમાં પરિણત થઈ જાય તો પણ તે કોઈ એક જીવના જ્ઞાનને પૂર્ણરૂપથી આવૃત કરી ( ઢાકી ) શકે નહિ સૂર્ય ગમે તેટલી ઘનઘટા—( મેઘાડંબર )માં આચ્છાદિત થઈ જાય તો પણ સૂર્યનો થોડો—ઝાઝો પ્રકાશ તો બની જ રહે છે,

तिरोहितो भवति । तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगांशः स्फुरत्येव सर्वदा । यदि लोकव्यापिनः पुद्गलाः संघीभूयापि कर्मवर्गणारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं तिरोदध्युस्तर्हि निर्जीवतापत्तिरात्मनो दुर्वारा स्यात् । तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु बोधांशः स्वभावतोऽनावृतस्तिष्ठत्येवेति सिद्धम् । उक्तं चागमे—

“सर्वजीवाणं पि य णं अक्षरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा ”

“सुट्टुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंद-सूराणं ” इति ।

छाया—सर्वजीवानामपि च खलु अक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः । यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत तर्हि खलु जीवः अजीवत्वं प्राप्नुयात् । “सुष्टुपि मेघसमुदये, भवति प्रभा चन्द्रसूरयोः” इति ।

तिरोहित नहीं हो सकता, इसी प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का अंश सदा स्फुरायमान रहता ही है । अगर लोकव्यापी पुद्गल इकट्ठे हो कर्मवर्गणारूप परिणत हो कर ज्ञान को पूरी तरह आच्छादित कर डाले तो जीव अजीव बन जाय, मगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले जीवों में भी ज्ञान का किंचित् अंश स्वभाव से अनावृत (आवरण रहित) रहता है । आगम में भी कहा है—“सर्वजीवाणं पि य णं अक्षरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा” “सुट्टुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं”

प्रकाश क्यारेय पूर्णपणे तिरोहित-आच्छादित थतो नथी. जे प्रमाणे पृथिवीकाय आदि जेकेन्द्रिय जिवेना “उपयोग” अंश पणु सदा स्फुरायमान रहे छे. अगर लोकव्यापी पुद्गल जेकठा थधने कर्मवर्गणारूप परिणत थधने ज्ञानने पूरी तरेकथी आच्छादित करी नांजे (ढांकी हे) तो जेव अजेव जनी जय, पणु जेम अनवुं असंलवित छे. जेटला कारणथी जे सिद्ध छे जे—पृथिवीकाय आदि जेक धन्द्रियवाणा जिवेमां पणु ज्ञानने किंचित् अंश स्वभावथी अनावृत-आवरणरहित रहे छे. आगममां पणु कह्यु छे—“सर्वजीवाण पि य णं अक्षरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा ” “सुट्टुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं ”

तस्माद् यत्र यावानुपयोगांगः सर्वसंमार्गिजीवेषु यथामंभवं स्वभावतोऽनावृत्तो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगांगः प्रमथसमये खल्वपर्याप्तानां सूक्ष्मनिर्गोदानामेव भवति। ततः परं स एवोपयोगांगः अवशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकृष्णशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षयोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीनां भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलवातिकर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिकां परां विशृष्टिं

“सर्व जीवों के अक्षर का अन्तर्वां भाग ज्ञान सदैव उवाटा (निगवग्ग) बना रहता है, अगर वह भी टूट जाय तो जीव अर्जाव हो जाय।”

“मैंको ज्ञा खल्व समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य को प्रभा तो वनी ही रहती है।”

उपयोग का जो सर्व जघन्य अंश समस्त संमार्गी जीवोंमें सर्वदा अनावृत्त बना रहता है, वह जघन्य अंश उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निर्गोदिया जीवों में भी होता है। तत्पश्चात् वही उपयोग का अंश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि. निमित्त, कृष्ण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढ़ता जाता है। यहां तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विविधता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढ़कर समस्त वार्ता कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

“सर्व एवोने अक्षरतो अन्तमेो लाग ज्ञान सदैव उवाटुं ( निरावर्णु ) रहे छे. अगर ते पणु जे टंडाई जाय तो एव अएव थई जाय”

“भेधनेो शुभ समुदाय होय तो पणु चंद्र अने सूर्यनी प्रभा वनी रहे छे.”

उपयोगनेो जे सर्व जघन्य अंश तमाम संसारी एवोमां सर्वदा अनावृत्त (उवाडे) वनी रहे छे ते सर्व जघन्य अंश उत्पत्तिना प्रथम समयमां वर्त्तमान, अपर्याप्त सूक्ष्म निर्गोदना एवोमां पणु होय छे. ते पथी ते उपयोगनेो अंश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रियना भेदथी सिन्न थईने, संलिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धिओना समूहथी, लब्धि, निमित्त, कृष्ण, शरीर, इन्द्रिय, वचन अने मननेो आश्रय वईने वधतेो जाय छे, अही सुधी डे विविध प्रकारना क्षयोपशमनी विचित्रतावाणा एवोने अवग्रह आदि भेदथी अने तेनाथी पणु अधिक वर्धने समस्त धावी कर्मनेो

प्राप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधाः—सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्दूताशेषकर्माणः सिद्धाः, असिद्धाः संसारिणः । द्रव्यभावबन्धः संसारः । कर्माष्टकसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिपरिणामसंबन्धो भावबन्धः । द्विविधबन्धरूपः संसारोऽस्ति येषां ते संसारिणः । संसारिणो द्विविधाः त्रसस्थावरभेदात् । तत्र पृथिव्यवृवनस्पतयः स्थावराः । तेजोवायूदारास्त्रसाः । तेजोवायू गत्यैव त्रसौ, न तु लब्ध्या । तत्रोदाराश्च-तुर्विधाः—द्वि—त्रि—चतुः—पञ्चेन्द्रियभेदात् । तत्र पञ्चेन्द्रियाः पुनर्द्विविधाः समनस्का अमनस्काश्च ।

को जानने योग्य विशुद्धता प्राप्त करके केवल ज्ञान संज्ञा को पाता है ।

जीव दो प्रकार के हैं—सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से रहित जीव सिद्ध कहलाते हैं, और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध और भावबन्ध को संसार कहते हैं । आठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष आदि परिणामो का सम्बन्ध होना भावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धरूप संसार जिन के हो वे संसारी जीव कहलाते हैं । संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेदसे दो प्रकार के हैं । पृथ्वी जल और वनस्पति, ये स्थावर हैं, तेज वायु और उदार जीव त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस हैं, लब्धि से स्थावर हैं ।

उदार के चार भेद हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । पञ्चेन्द्रिय जीवो के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद हैं ।

क्षय तथापी समस्त ज्ञेय पदार्थोंने ज्ञाणुवा योग्य विशुद्धता प्राप्त करीने केवलज्ञान संज्ञा पाये छे ।

जुव जे प्रकारना छेः—सिद्ध जुव अने असिद्ध जुव, सकल कर्मोथी रहित जुव सिद्ध कहेवाय छे, अने संसारी जुव असिद्ध कहेवाय छे. द्रव्यबन्ध अने भावबन्धने संसार कहे छे. आठ कर्मोना संबन्ध ते द्रव्यबन्ध छे, अने राग—द्वेष आदि परिणामोना संबन्ध थाय ते भावबन्ध छे. जे जे प्रकारना बन्धरूप संसार जेने होय छे ते संसारी जुव कहेवाय छे. संसारी जुव त्रस अने स्थावरना भेदथी जे प्रकारना छे. पृथ्वी, पाण्णी, अने वनस्पति आ त्रणु स्थावर छे, तेज, वायु, उदार जुव त्रस छे. तेमां तेज अने वायु गतित्रस छे, लब्धिथी स्थावर छे. उदारना चार भेद छे. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. पञ्चेन्द्रिय जुवोना संज्ञी असंज्ञी, जे जे भेद छे.

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं-(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुव, ये जीव की पर्याय हैं।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण है (३) काल से-आदि-अन्त रहित है (४) भाव से-अरूपी है-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से-चेतनालक्षण है।

। इति जीवास्तिकायः ।

जीवास्तिकायना गुण आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्यं.

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे.

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना भेदथी पांच प्रकारे जीवास्तिकायतुं ज्ञान धाय छे. (१) द्रव्यथी-जीव अनन्त छे. (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण. (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे. (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) गुणथी-चेतनालक्षण छे.

इति जीवास्तिकाय-

अथ षड्द्रव्यविचारः—

षट्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादयः पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः । देवकुरुत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेशस्य खण्डशः करणे पर्यन्ततो यस्य खण्डस्य पुनः खण्डो न भवितुमर्हति, तादृशखण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति ।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदखण्डेऽप्यसंख्याताः श्रेणयः सन्ति । तत्र प्रत्येकश्रेण्यामसंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

षड्द्रव्यविचार—

छह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है, और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री है । देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियाके एक केश के ऐसे टुकड़े किये जाँँ कि फिर उनका दूसरा टुकड़ा न हो सके । इन में से एक टुकड़ा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं । उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश है, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश है, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान हैं ।

सुई की नोक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान हैं । एक २ श्रेणी में असंख्यात—असंख्यात प्रतर है, एक २ प्रतर में असंख्यातर गोलक हैं,

षड्द्रव्य विचार—

छ द्रव्योंमां आकाश द्रव्य क्षेत्र छे, अने आकीना धर्म आदि पांचद्रव्यो क्षेत्रवर्ती होवाथी क्षेत्र छे; देवकुरु अने उत्तरकुरु क्षेत्रोना जुगलियाना अेक केश—वाणना अेवा टुकडा करवामां आवे के इरीने तेना भीजे टुकडा थछ शके नडि, तेमांथी अेक टुकडा नेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेटला भागमां आकाशना असंख्यात प्रदेश कडेवाय छे. तेमां धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान छे.

सोयनी अण्णी अरोअर निगोदना अंडमा पणु असंख्यात श्रेणीओ विद्यमान छे. अेक अेक श्रेणीमां असंख्यात—असंख्यात—प्रतर छे. अेक अेक प्रतरमां

घ प्रत्येकमसंख्यातानि निगोदशरीराणि सन्ति । तत्र च प्रत्येकशरीरेऽनन्ता निगोदजीवाः सन्ति ।

अथ कियन्तोऽनन्ता जीवास्तत्र सन्ती ?—त्युच्यते—अतीतकालोऽनन्तः, तथा भविष्यत्कालोऽप्यनन्तः, वर्तमानकाल कसमयमात्रः, कालत्रयस्यापि यावन्तः समयाः सन्ति, ते पुनरनन्तेन गुणिता यावन्तो भवेयुस्ततोऽप्यनन्त-गुणाधिका एकस्मिन् निगोदे निगोदिका जीवाः सन्ति ।

तत्रैकजीवस्यासंख्याताः प्रदेशाः सन्ति । एकैकप्रदेशेऽनन्ताः कर्मवर्गणाः संख्याताः । तत्रैकस्यां वर्णायामनन्ताः परमाणुपुद्गलाः सन्ति ।

एक २ गोलक में असंख्यात २ निगोदशरीर हैं, और एक २ निगोदशरीर में अनन्त २ निगोदजीव हैं ।

शङ्का—अनन्त के अनन्त भेद होते हैं, ऐसी स्थिति में एक निगोदशरीर में कितने अनन्त जीव होते हैं ?

समाधान—अतीत काल के अनन्त समय हैं, भविष्य कालके भी अनन्त समय हैं, और वर्तमान काल एक समय मात्र है । इन तीनों कालों के जितने समय हैं उनका अनन्त से गुणाकार कर देने पर जितने समय हों उन से भी अनन्त गुणा अधिक निगोदजीव एक निगोदशरीर में होते हैं ।

एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं । एक २ प्रदेश में अनन्त २ कर्म-वर्गणाएँ लगी हुई हैं, और एक २ वर्गणा में अनन्त २ पुद्गलपरमाणु हैं

असंख्यात गोलक छे. ओक ओक गोलकमां असंख्यात निगोद शरीर छे, अने ओक ओक निगोद शरीरमां अनन्त अनन्त निगोद छे.

शङ्का—अनन्तना अनन्त लेह डोय छे, ओवी स्थितिमां ओक निगोद शरीरमां केटला अनन्त छे डोय छे ?

समाधान—अतीतकाल (भूतकाल)ना अनन्त समय छे, भविष्यकालना पण अनन्त समय छे, अने वर्तमान काल ओकसमयमात्र छे, ओ त्रणे कालोमां ओ समय छे, तेनो अनन्तधी गुणाकार करवाथी ओ गुणाकार (राशि) थाय तेटला समयधी पण अनन्त गुणा अधिक निगोद छे ओक निगोद-शरीरमा डोय छे.

ओक छेवना असंख्यात प्रदेश थाय छे. ओक-ओक प्रदेशमा अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणाओ लागी छे, अने ओक-ओक वर्गणामां अनन्त अनन्त पुद्गलपरमाणु छे.

परमाणूनां द्वौ भेदौ स्तः—वद्धा अवद्धाश्च । तत्र वद्धाः स्कन्धरूपाः ।  
अवद्धाः परस्परासंयुक्ताः । स्कन्धानां पुनर्द्वौ भेदौ—जीवसहिताः, जीवरहिताश्च ।  
तत्र घट-पटादिरूपा अजीवस्कन्धाः ।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूयते—

द्वयोः परमाण्वोः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः । त्रयाणां परमाणूनां संयोगे  
त्रिप्रदेशी स्कन्धः । एवमसंख्यातानां परमाणूनां संयोगादसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो  
जायते । एतावत्पर्यन्ताः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति ।

परमाणु दो प्रकार के हैं— वद्ध और अवद्ध । स्कन्धरूप परमाणु वद्ध कहलाते हैं,  
और आपस में असंयुक्त परमाणु अवद्ध कहलाते हैं ।

स्कन्ध के भी दो भेद हैं—जीवसहित और जीवरहित, इन में घट पट  
आदि स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलाते हैं ।

अब जीवस्कन्ध का विचार करते हैं—

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन  
परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध । इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग  
से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है । यहाँ तक के स्कन्ध जीवों द्वारा  
ग्रहण नहीं किये जा सकते ।

परमाणु के प्रकारना छे—(१) वद्ध अने (२) अवद्ध. स्कंधरूप परमाणु वद्ध  
कहेवाय छे, अने आपसमां असंयुक्त परमाणु अवद्ध कहेवाय छे.

स्कंधना पणु के लेह छे—ज्वसहित अने ज्वरहित. तेमां घट पट आदि  
स्कंध अवज्वस्कंध कहेवाय छे.

हुवे ज्वस्कंधनो विचार करवामां आवे छे—

जे परमाणुओनो संयोग थवाथी द्विप्रदेशी स्कंध अने छे, अने त्रणु परमाणु-  
ओना संयोगथी त्रिप्रदेशी स्कंध अने छे, अने प्रमाणु असंख्यात परमाणुओना  
संयोगथी असंख्यातप्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. अहिं सुधीना स्कंध, ज्वो  
द्वारा ग्रहण करी शकतां नथी.



अथ कीदृशाः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ती?—त्युच्यते—अभव्य-  
राशिश्चतुःसप्ततितमः, तद्गतजीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः परमाणवो यदि  
संधीभवन्ति तदादारिकशरीरग्राह्यवर्गणा भवति । औदारिकवर्गणापेक्षया-  
ऽनन्तगुणाधिका वैक्रियशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिकाऽऽहारकवर्गणा ।  
आहारकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका तैजसशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका  
एकभाषाग्राह्यवर्गणा । एकभाषाग्राह्यवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका एकश्वासोच्छ्वास-  
वर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका एकमनसो वर्गणा । तदपेक्षयाऽनन्तगुणाधिका कर्मण-  
वर्गणा भवति । ततोऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गलपरमाणुस्कन्धा ज्ञेयाः । कर्मण

किस प्रकार के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्राह्य होते हैं ? यह बतलाते हैं :—अभव्य  
राशि चोहतरवी है । इस अभव्य राशि के जीवों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक  
परमाणु यदि इकट्ठे हो तो औदारिकशरीरग्राह्य वर्गणा होती है । औदारिकवर्गणाकी  
अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और इस से भी  
अनन्त गुणी अधिक आहारकवर्गणा होती है । आहारकवर्गणा से अनन्तगुणी अधिक  
तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और उस से भी अनन्तगुणी अधिक एकभाषाग्राह्य  
वर्गणा होती है । एकभाषावर्गण से भी अनन्तगुणी अधिक एक श्वासोच्छ्वासवर्गणा  
होती है, और उस से अनन्तगुणी अधिक एकमनोवर्गणा होती है, मनोवर्गणा से  
भी अनन्तगुणी अधिक कर्मणवर्गणा होती है । उस से भी अनन्त गुणा अधिक  
पुद्गल परमाणु के स्कन्ध समझने चाहिए । इस प्रकार कर्मणवर्गणा के अनन्त पुद्गल

क्या प्रकारना स्कंध जीवोंद्वारा ग्रहण करी शक्य है ? ते बतावे छे—अभव्य-  
राशि चतुसोत्तर (७४) वीं छे. ओ अव्य राशिना जीवोनी अपेक्षा अनन्त गुण  
अधिक परमाणु जे एकठा थाय तो औदारिक शरीर ग्रहण करी शके तेवी वर्गणा  
डोय छे, औदारिक वर्गणानी अपेक्षा अनन्त गुण अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा  
डोय छे, अने तेनाथी पण अनन्त गुणी अधिक ओक आहारकवर्गणा डोय छे  
आहारकवर्गणाथी अनन्त गुणी अधिक तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा डोय, तेनाथी पण  
अनन्त गुणी अधिक ओक भाषाग्राह्य वर्गणा डोय छे, अने तेनाथी अनन्तगुणी अधिक  
ओक श्वासोच्छ्वासवर्गणा डोय छे, अने तेनाथी अनन्तगुणी अधिक ओक मनोवर्गणा डोय  
छे. मनोवर्गणाथी पण अनन्तगुणी अधिक कर्मणवर्गणा डोय छे. तेनाथी पण अनन्त  
गुणी अधिक पुद्गलपरमाणुना स्कंध समझवां जेथअ. ओ प्रमाणु कर्मणवर्गणानी

वर्गणागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ति ।

रागद्वेषरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशमनन्तानन्तकर्मवर्गणा अयोगो-  
लकवद्विवल्लोलीभूताः सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिरोहिता  
भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गला  
रूपिणोऽचेतनाः सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

### षड्द्रव्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

षड्द्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो  
धर्माधर्माकाशकालाख्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ  
परमाणुओं से बने हुए स्कन्ध जीवो द्वारा ग्रहण करने योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त  
कर्मवर्गणाएँ इस प्रकार एकमेक हो रही हैं, जैसे लोहे का गोला और अग्नि एकमेक  
हो जाते हैं, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण ढँक जाते हैं । इस प्रकार  
जीवों की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानने चाहिए । ये पुद्गल-रूपी, अचेतन,  
सक्रिय, और पूरणगलनस्वभाववाले हैं ।

### छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहों द्रव्य सक्रिय हैं, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिकाय अधर्मा-  
स्तिकाय आकाश और काल नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं, जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

अनन्त पुद्गल परमाणुओंकी बनेला स्कन्ध जीवो द्वारा ग्रहण करवा योग्य होय छे.

राग बने द्वेष रूप अशुद्ध प्रवृत्तिना कारणे आत्माना ओक-ओक प्रदेशमां  
अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओ ओ प्रमाणे ओकमेक थई रही छे के-बेम दोढानो गोणो  
अने अग्नि ओकमेक थई नय छे, ओ कारणुथी जवना अनन्त ज्ञान आदि शुणु  
ढंकाई नय छे. ओ प्रमाणे जीवोनी अपेक्षा पुद्गल अनन्तगुणा अधिक नानुवा  
नोई ओ. ते पुद्गल, रूपी, अचेतन सक्रिय अने पूरणगलनस्वभाववाणा छे.

### छ द्रव्यों में सक्रिय निष्क्रियका विचार—

निश्चयनय प्रमाणे छ द्रव्यो सक्रिय छे, परंतु व्यवहारनयथी धर्मास्तिकाय  
अधर्मास्तिकाय आकाश अने काल नामना चार द्रव्यो क्रियारहित छे, जव अने

स्तः । निश्चयनयाद् धर्मास्तिकायो गतिपरितानां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहायदानरूपां क्रियाम्, अधर्मास्तिकायः स्थितिपरिणतजीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहायदानरूपां क्रियां करोति । तथैवाकाशोऽवकाशदानरूपां क्रियां, कालश्च वर्तनारूपक्रियां जीवाजीवेषु विधत्ते । तथैव निश्चयेन जीवः स्वस्वरूपरमणरूपां क्रियां करोति । यदि निश्चयनयेन शुभाशुभरूपविभावदशारमणात्मिकां क्रियां कुर्यात्तदाऽऽत्मा कदाप्यविचलपदं नाप्नुयात्, अतः स्वस्वरूपपरिणतिरूपामेव क्रियां करोति । निश्चयनयेन पुद्गलोऽप्यनादिकालतः स्वपूरणगलनरूपां क्रियां समाचरति । तस्माद् निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणीति ज्ञातव्यम् ।

है । निश्चयनय से धर्मास्तिकाय, गतिपरिणत जीवो और पुद्गलो की गति में सहायकता देने की क्रिया करता है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिपरिणत जीवों एवं पुद्गलोकी स्थिति में सहायता देनेकी क्रिया करता है । इसी प्रकार आकाश—अवगाहदानरूप क्रिया करता है, और काल वर्तना आदि में सहायता पहुँचाता है । जीव निश्चयनय से निजस्वरूप—रमणरूप क्रिया करता है । अगर निश्चय नय से जीव शुभ और अशुभ रूप विभावदशा में रमण करने की क्रिया करे तो उसे अविचल पद की कदापि प्राप्ति नहीं हो सकती, अत एव जीव अपने स्वभाव में परिणतिरूप क्रिया ही करता है । निश्चय नय की अपेक्षा पुद्गल भी अनादि काल से पूरण गलन रूप क्रिया कर रहा है । इस प्रकार निश्चय नय से सभी द्रव्य सक्रिय है ।

पुद्गल द्रव्य सक्रिय छे. निश्चयनयथी धर्मास्तिकाय, गतिमां परिणत लुवो अने पुद्गलोनी गतिमां सहायता करवानी क्रिया करे छे, अने अधर्मास्तिकाय, स्थितिमां परिणत लुवो अने पुद्गलोनी स्थितिमां सहायता देवानी क्रिया करे छे. ओ प्रमाणे आकाश, अवगाहदानरूप क्रिया करे छे, अने काल वर्तना आदिमां सहायता पहुँचाउे छे, लुव निश्चयनयथी निजस्वरूप—रमणरूप क्रिया करे छे. अगर निश्चयनयथी लुव शुभ अने अशुभरूप विभावदशां रमण करवानी क्रिया करे तो तेने अविचल पदनी प्राप्ति कदापि पणु थर्ध शडे नहि, ओटला कारणथी लुव पोताना स्वभावमां परिणतिरूप क्रिया न करे छे, निश्चयनयनी अपेक्षा ओ पुद्गल पणु अनादि कालथी पूरण—गलनरूप क्रिया करे छे, ओ प्रमाणे निश्चयनयथी सर्व द्रव्यो सक्रिय छे.

अधुना व्यवहारनयमाश्रित्योच्यते—

व्यवहारतो धर्माधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः । व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाशुद्धपरिणत्या प्रतिसमयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्कन्धाऽऽदानक्रियां करोति । परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गणारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रदेशे संलग्ना भवन्ति, अतस्ते संश्लेषक्रियां पूरणगलनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलावेव सक्रियौ ।

षड्द्रव्यविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयेन षड् द्रव्याणि स्वस्वरूपकर्तृणि, तस्मात्तेषां कर्तृत्वमुपपद्यते ।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कथन किया जाता है—व्यवहारनय से धर्म अधर्म आकाश और काल क्रियारहित है, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय है । व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धों को ग्रहण करने की क्रिया करता है । परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गणारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बद्ध होते हैं, अतः वह बन्धनरूप क्रिया करते हैं, और पूरण गलन आदि क्रिया भी करते हैं, इस प्रकार व्यवहार नय से जीव और पुद्गल ही सक्रिय हैं ।

छह द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय से छहों द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं, अतः सभी द्रव्यों में

डूवे व्यवहारनयनी अपेक्षाये कडेवाय छे—व्यवहारनयथी धर्म अधर्म आकाश अने काल क्रियारहित छे, तथा जीव अने पुद्गल सक्रिय छे. व्यवहारनयथी जीव राग-द्वेषरूप अशुभपरिणतिद्वारा प्रतिसमय अनन्त पुद्गल परमाणुओंना स्कन्धाने ग्रहण करवानी क्रिया करे छे. परमाणु पुद्गल यशु कर्मवर्गणारूपमां परिणत थधने जीवना समस्त प्रदेशोमा बद्ध थध नय छे (सर्व प्रदेशोने चोटी नय छे) तेदला कारणथी ते बन्धनरूप क्रिया करे छे, अने पूरण-गलन आदि क्रिया यशु करे छे. अने प्रमाणे व्यवहारनयथी जीव अने पुद्गल ४ सक्रिय छे.

द्रव्योनु कर्तापणुं अने अकर्तापणुं—

निश्चयनयथी छ द्रव्यो, चोतचोताना स्वरूपमां कर्ता छे. तेथी सर्व द्रव्योमां

व्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं, धर्मादिद्रव्यपञ्चकस्याकर्तृत्वमिति ।

व्यवहारनयः—

व्यवहारनयः पङ्क्तिः—शुद्धाशुद्धशुभाशुभोपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र—

(१) शुद्धव्यवहारनयः ।

यदि जीवः कर्ममलरूपाशुद्धतां व्यपनीयाऽनन्तज्ञानादिगुण पशुद्धता मुपार्जयति तर्हि प्रथमशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं भवति । तथाहि—शुद्धव्यवहारनयेन जीवो यदा शुद्धस्वरूपार्जनाय प्रयतते, तदा प्रथमगुणस्थाने कर्तापन सिद्ध होता है । व्यवहारनयसे जीव कर्ता है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य अकर्ता है ।

व्यवहारनय—

व्यवहार नय छह प्रकार का है—(१) शुद्ध व्यवहारनय, (२) अशुद्ध व्यवहारनय, (३) शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभ व्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय और (६) अनुपचरित व्यवहारनय ।

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

अगर जीव कर्ममलरूप अशुद्धता को हटाकर अनन्तज्ञानादिगुणरूप शुद्धता का उपार्जन करता है तो शुद्ध व्यवहारनय से जीव में कर्तृत्व होता है । वह इस प्रकार शुद्ध व्यवहार नय से जीव जब अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए

कर्तापणुं सिद्ध थाय छे. व्यवहारनयथी एव कर्ता छे अने आकीना धर्मादि पांच द्रव्यो अकर्ता छे.

व्यवहारनय—

व्यवहारनय छ प्रकार छे. (१) शुद्ध व्यवहारनय (२) अशुद्ध व्यवहारनय, शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभव्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय, (६) अनुपचरित व्यवहारनय.

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

एव कर्ममलरूप अशुद्धताने उठावीने अनन्तज्ञानादिगुणरूप शुद्धताने उपार्जन करे छे तो शुद्ध व्यवहारनय प्रमाणे एवमां कर्तृत्व-कर्तापणुं होय छे. ते आ प्रमाणे-शुद्ध व्यवहारनयथी एव पोताना शुद्ध स्वरूपने प्राप्त करवा भाटे प्रयत्न

अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं क्षपयित्वा चतुर्थं गुणस्थानं समासाद्य सम्यक्त्वगुणं लभते । अप्रत्याख्येयकषायचतुष्टयक्षयेण देशविरतिरूपं पञ्चमं गुणस्थानं प्राप्नोति । प्रत्याख्येयकषायचतुष्टयक्षयेण जीवस्य षष्ठसप्तमगुणस्थानयोः सर्वविरतिरूपयोरुपलब्धिर्भवति । यद्यष्टमगुणस्थानं लभ्यते तदा तत्र श्रेणिद्वयं समाख्यते, उपशमश्रेणिः क्षपकश्रेणिश्च । तत्रोपशमश्रेण्याऽष्टमगुणस्थानादेकादशगुणस्थानं यावदध्यारोहति । क्षपकश्रेण्या त्वष्टमादारभ्य दशमं यावत् समारूढैकादशं विहाय द्वादशं गुणस्थानं समारोहति । जीवस्तत्र रागद्वेषरूपमोहनीय

प्रयत्न करता है तब प्रथम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कषायोंका क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है और सम्यक्त्व गुण पा लेता है । चार अप्रत्याख्यानावरण कषायों का क्षय करके देशविरतिरूप पांचवां गुणस्थान प्राप्त करता है, और प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्टय के क्षय से जीव को सर्वविरतिरूप छठे और सातवे गुणस्थान की प्राप्ति होती है । जीव को यदि आठवां गुणस्थान प्राप्त होता है तो वहाँ से दो श्रेणियाँ आरम्भ होती है और जीव उन में से किसी एक श्रेणी पर आरूढ होता है । दो श्रेणियाँ हैं-उपशमश्रेणी, और क्षपकश्रेणी । उपशमश्रेणीवाला जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ़ सकता है । क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें से दशवें गुणस्थान तक पहुँचकर ग्यारहवे को छोड़ कर सीधा बारहवे गुणस्थान पर आरूढ हो जाता है । जीव दशवे गुणस्थान के अन्त में रागद्वेषरूप मोहनीय कर्म का समूल नाश करके,

करे छे, त्पारे प्रथम गुणस्थानमां अनन्तानुबन्धी चार कषायोनो क्षय करीने चतुर्थ (चोथु) गुणस्थान प्राप्त करे छे, अने सम्यक्त्व गुण पाभी नय छे. चार अप्रत्याख्यानावरण कषायोनो क्षय करीने देशविरतिरूप पांचमुं गुणस्थान प्राप्त करे छे, अने प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्टयना क्षयथी जवने सर्वविरतिरूप छठ्ठा अने सातमा गुणस्थाननी प्राप्ति थाय छे. जवने जे आठमुं गुणस्थान प्राप्त थाय छे तो त्यांथी जे श्रेणीओनो आरंभ थाय छे, अने जव जे जेमांथी डोछ ओक श्रेणी पर आरूढ थाय छे. जे श्रेणी आ प्रमाणे छे-(१) उपशमश्रेणी (२) क्षपकश्रेणी. उपशमश्रेणी वाणो जव अगिआरमां गुणस्थान सुधी चढी शके छे, क्षपकश्रेणीवाणो जव आठमाथी दसमा गुणस्थान सुधी पहुँचीने अगिआरमा गुणस्थाकने छोडीने सीधा आरमां गुणस्थान पर आरूढ थई नय छे. जव दसमा गुणस्थानना अंतमा

कर्म समूलमुन्मूल्य घातिकर्माणि क्षपयित्वा त्रयोदशं गुणस्थानमारोहति । त्रयोदशे गुणस्थाने निर्मलकेवलज्ञानं प्राप्नोति । तदनन्तरं पञ्चलघ्वक्षरोच्चारणकालस्थितिकं चतुर्दशगुणस्थानं संप्राप्य निःशेषकर्मनिचयं क्षपयित्वाऽसौ शिवपदं संप्राप्नोति ।  
। इति जीवस्य शुद्धस्वरूपनिरूपकः शुद्धव्यवहारनयः ।

### (२) अशुद्धव्यवहारनयः—

अशुद्धव्यवहारनयेन रागद्वेषमिथ्यात्वादयोऽनादिकालतः शत्रुरूपेण जीवे संलग्नाः सन्ति, तस्माज्जीवस्याशुद्धत्वं ज्ञेयम् । अशुद्धत्वेन च प्रतिसमय-  
और बारहवे गुणस्थान में शेष तीन घाति कर्मों का क्षय करके तेरहवे गुणस्थान में पहुंचता है । इस गुणस्थान में ( बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में ) जीव को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है । तेरहवें गुणस्थान के बाद पांच ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर समस्त कर्मों का क्षयकर के मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

जीवके शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाला यह शुद्ध व्यवहारनय है ।

### (२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनय से राग-द्वेष और मिथ्यात्व आदि अनादि काल से शत्रुकी तरह जीव के साथ लगे हुए हैं, इसी कारण जीव में अशुद्धता है । इस अशुद्धता के राग-द्वेषरूप मोहनीय कर्मोंको समूहणको नाश करीने अने बारमा गुणस्थानमां शेष त्रय घातीकर्मोंको क्षय करीने तेरमा गुणस्थानमां पहुँचि छे ओ गुणस्थानमां ( बारमा गुणस्थानना अन्तिम समयमां ) लवने निर्मल केवलज्ञान प्राप्त थाय छे । तेरमा गुणस्थान पछी पात्र ह्रस्व स्वर—(अ-इ-उ-ऋ-लृ) उच्चारण करतां नेटवो समय लागे छे, तेटवो समय चौदमा गुणस्थानमां थोलीने समस्त कर्मोंको क्षय करीने मोक्ष प्राप्त करी ले छे ।

लवना शुद्ध स्वरूपने ग्रहण करवा वाणो आ शुद्ध व्यवहार नय छे ।

### (२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनयथी राग-द्वेष अने मिथ्यात्व आदि अनादि-कालथी शत्रुनी भाइके लवनी साथे लाग्यां छे, ओ कारणथी लवमां अशुद्धता छे । ओ अशुद्धताना

मनन्तानन्तकर्मवर्गणाः सत्तारूपेणावगुण्ठिता भवन्ति । एवं चाशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

### (३) शुभव्यवहारनयः—

शुभव्यवहारनयेनात्मा शुभपरिणामतो दानशीलतपोभावविनयभक्तिवैयावृत्यं, श्रमणनिर्ग्रन्थानां प्रासुकमेषणीयमशनपानखाद्यस्वाद्यवस्त्रकम्बलप्रतिग्रहपादप्रोच्छन-प्रातिहार्यपीठफलकशय्यासंस्तारकौषधभैषज्यप्रतिलाभरूपं सुपात्रदानं, म्रियमाण-जीवरक्षणरूपमभयदानं, हीनदीननिःसत्त्वजीवानां साहाय्यं, साधर्मिकवात्सल्यं, परहित-चिन्तारूपां मैत्रीं, परदुःखनिवारणेच्छारूपां करुणां, निःस्वार्थपरोपकारादिकां च

कारण प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मवर्गणैः सत्तारूप से बद्ध होती रहती है । इस प्रकार अशुद्ध व्यवहारनय से जीव को कर्ता समझना जाहिए ।

### (३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनय से आत्मा शुभपरिणामद्वारा दान, शील, तप, भाव, विनय, भक्ति, वैयावृत्य रूप शुभक्रिया करता है, श्रमण निर्ग्रन्थो को प्रासुक एषणीय—अशन पान खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, कम्बल, पात्र, पादप्रोच्छन, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध, भेषज का सुपात्रदान देता है । मरते हुए जीव की रक्षारूप अभयदान देता है, हीन दीन और निर्बल जीवों की सहायता करता है । साधर्मों के प्रति वात्सल्य प्रकट करता है, परहितचिन्तनरूप मैत्री भावना, दूसरो का दुःखनिवारणरूप करुणा

कारण प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्म वर्गणां सत्तारूपथी बद्ध होती रही छे. आ प्रमाणे अशुद्ध व्यवहारनयथी भवने कर्ता समझवे लोछे.

### (३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनयथी आत्मा दान, शील, तप, भाव, विनय, भक्ति वैयावृत्य रूप शुभ क्रिया करे छे. श्रमणनिर्ग्रन्थाने प्रासुक मेषणीय—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, कम्बल, पात्र, पादप्रोच्छन, पडिहारी—पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध, भेषज सुपात्र दान आपे छे, मरता भवनी रक्षारूप अभयदान आपे छे, हीन हीन अने निर्बल भवोनी सहायता करे छे; साधर्मोना उपर वात्सल्य प्रकट करे छे, परहितचिन्तनरूप मैत्रीभावना, भीलना दुःखनिवारणरूप करुणा तथा निःस्वार्थ



शुभक्रियां करोति, तेन शुभव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं जायते ।

(४) अशुभव्यवहारनयः—

अशुभव्यवहारनयेन जीवो हास्य-भय-शोक-रत्य-रति-निद्रा-प्राणातिपात-मृषावादा-ऽदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेषादिषु प्रवर्तते । विषयसुखारम्भादिरूपामशुभक्रियां च करोति तेनाऽशुभव्यवहारनयतो जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(५) उपचरितव्यवहारनयः—

उपचरितव्यवहारनयेन जीवो निजर्मजरामरत्वमनन्तज्ञानदर्शनमव्यावाध-

तथा निःस्वार्थ परोपकार आदिरूप शुभक्रिया करता है, अतः शुभ व्यवहारनय से जीव का कर्तापन सिद्ध होता है ।

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनय से जीव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, आदि अशुभ कार्यों एवं भावों में प्रवृत्त होता है, तथा विषयसुख एवं आरम्भ आदि रूप अशुभ क्रिया करता है, अतः अशुभव्यवहारनय से जीव कर्ता सिद्ध होता है ।

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहार नय से जीव अपने अजरता अमरता तथा अनन्त ज्ञान

परोपकार आदिरूप शुभ क्रिया करे छे, ते कारण्थी शुभ व्यवहारनयथी एवमुं कर्तापणुं सिद्ध थाय छे.

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनयथी एव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि अशुभ कार्यों एवं भावों में प्रवृत्त थाय छे, विषयसुख एवं आरम्भ आदि रूप अशुभ क्रिया करे छे, तेथी अशुभ व्यवहारनयथी एव कर्ता सिद्ध थाय छे.

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहारनयथी एव पौताना अजर अमर तथा अनन्तज्ञान, दर्शन

सुखादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्मृत्य पौद्गलिकविभावपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्तानन्दमनुभवति, मोहवशेन बाह्यवस्तुषु ममत्वभावं कुरुते । यथा-“इदं मम गृहम्, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवाराः, इदं मम सर्वं धनजनादिकम्” । इत्थं विषरूपं विषयं पीयूषं मन्यमानो विषयकृतानो क्षणमात्रसुखजनकान् बहुकालदुःखदान् कामभोगान् भुञ्जानो विषयमृगतृष्णां पुनः पुनर्धावमानो दीर्घाध्वसंसारे क्षणमपि विश्रान्तिं न लभते । ममेति कुर्वन्नयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राणनाशमपि कर्तुं समुद्यतो भवति । अनात्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

दर्शक तथा अव्यावाधसुखरूप शुद्ध स्वरूप को भूल कर पौद्गलिक विभाव परिणाम में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है । मोह के वशीभूत हो कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है, जैसे- “यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं, ये सब धन-जन आदि मेरे हैं” । इस प्रकार के विषरूप विषयों को अमृत मानता हुआ, विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-भोगों को भोगता हुआ, विषयों की मृगतृष्णा की तरफ वारंवार दौड़ता हुआ, इस दीर्घमार्गवाले संसार में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाता है । मेरे मेरे करता हुआ यह जीव, पुत्र और पत्नी वगैरह के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उन के लिये शोक करता है, यहाँ तक की उन के लिए प्राणों का नाश तक करने को उद्यत हो जाता है । यह

तथा अव्यावाध सुखरूप शुद्ध स्वरूपने लुद्धी जघने पौद्गलिक विभाव परिणाममां के जे अनन्त दुःखोनेो जनक (उत्पन्न करनार) छे. तेमां अनन्त आनन्द माने छे, मोहने वश थधने षडारणी वस्तुओमां ममत्व धारण करे छे, जेभके-“आ घर माइं छे; आ मारा पुत्र छे, आ मारी स्त्री छे, आ माइं कुटुंभ छे, आ सर्व धन-जन वगेरे माइं छे” जे प्रमाणे विषरूप-विषयोने अमृतत्प मानीने, विषयोमां तन्मय थधने क्षणमात्र सुख आपवावाणा अने लांआ डाल सुधी दुःख आपवावाणा लोगोने भोगवतो थके, विषयोनी मृगतृष्णा तरक् वारंवार होडतो थके आ लांआ मार्गवाणा संसारमा क्षण मात्र पण विश्राम पावतो नथी. मारा-मारा करतो आ जव, पुत्र अने पत्नी वगेरेना सुभमा सुख अने दुःखमां-दुःख मानतो थके तेना माटे नशमे शोक करे छे-त्यां सुधी के तेना माटे प्राणोना नाश करवा तैयार थध जय छे. आ जव परने पोतानुं समजने नाना प्रकारनां

स्वात्मानं मलिनीकरोति । एवमुक्तरीत्या कर्मवशेन ममत्वपाशबद्धस्य जीवस्योप-  
चरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वमिति ।

### (६) अनुपचरितव्यवहारनयः—

अनुपचरितव्यवहारनयेन स्वात्मनः प्रत्यक्षरूपेणात्यन्तभिन्नं शरीरमज्ञान-  
वशात् पारिणामिकभावेनात्मप्रदेशैरैक्यभावमापद्यमानमिव स्वात्मनः स्वरूपं  
मन्यमानस्तत्पुष्टिरक्षणादिहेतोरेकेन्द्रियादिसकलप्राण्युपमर्दनजनकमहारम्भमृषावादा -  
दत्तादान-मैथुन-परिग्रहादिकानि नानाविधपापकर्माणि जीवः समाचरति ।  
आत्मनः स्वरूपे शरीरे च नितान्तं भिन्नता वर्तते । तथाहि—आत्मा

जीव पर को स्वकीय समझ कर नाना प्रकार के पाप कार्य कर के अपने को मलीन  
बनाता है । इस प्रकार कर्मवश हो कर ममता के पाशमें जकडा हुआ यह जीव उप-  
चरित व्यवहारनय से कर्ता सिद्ध होता है ।

### (६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनय से जीव अपनी आत्मा से प्रत्यक्षतः भिन्न शरीर को  
अज्ञान के वश हो कर पारिणामिक भाव से आत्मप्रदेशोंकी एकता समझ कर, और  
आत्मा का ऐसा ही स्वरूप मान कर शरीर की पुष्टता और रक्षा आदि के लिए  
एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान,  
मैथुन और परिग्रह आदि नाना प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करता है । वस्तुतः  
आत्मा के स्वरूप में और शरीर में अत्यन्त भिन्नता है, वह इस प्रकार—आत्मा चैतन्य

पापकार्य करीने पोताने मलीन बनावे छे आ प्रमाणे कर्मने वश थर्छ भमताना  
पाशमां जकडाओले आ एव उपचरित व्यवहारनयथी कर्ता सिद्ध थाय छे.

### (६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनयथी एव पोताना आत्माथी प्रत्यक्ष भिन्न शरीरने  
अज्ञानवश थर्छ पारिणामिक भावथी आत्मप्रदेशोनी एकता समझने, अने आत्मानुं  
अपुं ज स्वरूप भानीने शरीरनी पुष्टता अने रक्षा आदि भाटे एकेन्द्रिय आदि  
तमाम प्राणीओनी हिंसा थवावाणा, महारंभ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, अने  
परिग्रह आदि नाना—अनेक प्रकारनां पाप कर्मोनुं आचरण करे छे. वस्तुतः आत्माना  
स्वरूपमां अने शरीरमां अत्यन्त भिन्नता छे, ते आ प्रमाणे केः—आत्मा चैतन्य

चैतन्यरूपः, शरीरमिदं जडरूपम् । आत्मा-अरूपी, शरीरमिदं रूपि । आत्मा ज्ञान-दर्शनसुखवीर्यादिरूपः, शरीरं तु निःसत्त्वं विविधव्याधियुक्तम् । आत्मा-नित्यः शाश्वतो ध्रुवरूपश्च, शरीरमिदमनित्यमशाश्वतमध्रुवम् । आत्मा-नितान्तनिर्मलः, शरीरं तु गर्भाशयस्थानतः शुक्रशोणितारख्यकारणतः, नवद्वारतो मलनिःसरणेन च नितान्ताशुचि, मलमाण्डं च ।

यदर्थमेतादृशानि कर्माणि कुर्वन्ति, तदनन्तवारं लब्धं त्यक्तं च वपुः । ईदृशे नश्वरे शरीरेऽनुरज्य पुनः पुनस्तान्येव पापकर्माणि समाचरन् स्वीयमात्मानं कर्मभाराक्रान्तं करोति । तेन पुनः पुनरनादिदुरन्तसंसारमहागते पतितः स्वा-

स्वरूप है, शरीर जड है । आत्मा अरूपी है, शरीर रूपी है । आत्मा ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यादिरूप है, शरीर निःसत्त्व और विविध व्याधियों से युक्त है । आत्मा नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, शरीर अनित्य, अशाश्वत, और अध्रुव है । आत्मा नितान्त निर्मल है, शरीर गर्भाशय में स्थित होने से शुक्र और शोणित से बना हुआ होने के कारण, तथा नौ द्वारों से मल निकलने के कारण अत्यन्त अशुचि है, और मल का पात्र है । जिस शरीर के लिए ऐसे २ उपर्युक्त कर्म किये जाते हैं वह शरीर अनन्त वार पाया है और अनन्त वार छोड़ा है, लेकिन संसारी जीव इस नश्वर शरीर में अनुराग करके पुनः पुनः वही पापकर्म करता हुआ अपने को कर्म के भार से भारी बनाता है । इस कारण अनादि और दुरन्त संसाररूपी महागर्त में पुनः पुनः पडकर अपना उद्धार करने

स्वप्न છે, શરીર જડ છે. આત્મા અરૂપી છે, શરીર રૂપી છે. આત્મા જ્ઞાન, દર્શન, સુખ, અને વીર્યરૂપ છે, શરીર નિઃસત્ત્વ અને વિવિધ વ્યાધિઓથી યુક્ત છે. આત્મા નિત્ય છે, શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે, શરીર અનિત્ય અશાશ્વત અને અધ્રુવ છે. આત્મા અત્યન્ત નિર્મલ છે, શરીર ગર્ભાશયમાં સ્થિત હોવાથી શુક્ર અને શોણિતથી (વીર્ય અને લોહીથી) બનેલું હોવાના કારણે, તથા નવ દ્વારોથી મલ નીકળવાના કારણે અત્યન્ત અશુચિ-અપવિત્ર છે અને મલનું પાત્ર છે. જે શરીરના માટે એવાં એવાં ઉપર કહેલાં તેવાં કર્મ કરવામાં આવે છે, તે શરીર અનંતવાર પ્રાપ્ત થયું છે અને અનંતવાર છોડી દીધું છે, પરંતુ સંસારી જીવ આ નાશવંત શરીરમાં અનુરાગ-પ્રીતિ કરીને ફરી-ફરીને તે પાપકર્મ કરીને પોતાને કર્મના ભારથી ભારે બનાવે છે. એ કારણથી અનાદિ અને દુરંત-મુશ્કેલીથી પાર પડે તેવો-સંસારરૂપી મહાગર્ત-મોટો ખાડો તેમાં વારંવાર પડીને પોતાનો ઉદ્ધાર કરવામાં અસમર્થ બની જાય છે, પરંતુ

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति । अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति संसारिणः । एवमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणार्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति । उक्तरीत्या षडविधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम् ।

### जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूपं लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि संसारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम् ? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा संसाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करने लगते हैं । इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है । इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्यवहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए ।

### जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवांका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो संसारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों है ।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही है । उन में से जो जीव संसारी एवं पोतानां करेला कर्मोना भारने समजतो नथी, तथा संसाररूपी महागर्तमां पड्यो छे ते तेने ज्ञाणतो नथी. तेथी इरी-इरी तेवां कर्मो करवा लागे छे. अे प्रमाणे आत्माथी सिद्ध शरीरने ज पोतानुं स्वरूप समजने तेनां पोषण तथा रक्षण माटे करवामां आवती क्रियाथी एवं अनुपचरित व्यवहार नयनी अपेक्षाअे कर्ता सिद्ध थाय छे. अे प्रमाणे पूर्वे कहेला प्रकारथी छ प्रकारना व्यवहारनयथी एवंने कर्ता समजवो जेध अे.

### एवना स्वरूपमां सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सर्व एवोनुं स्वरूप अने लक्षण समान छे तो पछी संसारी एवं दुःखी अने सिद्ध एवं सुखी केम छे ?

उत्तर—निश्चयनयथी सर्व एवो सिद्धोनी समान छे. तेमांथी जे एवं तमान

सिद्धसदृशा एव, तत्र ये सकलं कर्म क्षपयन्ति ते सर्वे जीवाः सिद्धा भवन्ति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते । यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तर्हि कथमभव्यजीवैः सिद्धगतिभागिभर्न भूयते ? इति श्रूयताम्—

अभव्यजीवानामनाद्यनन्तचिक्रणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावाच्च कर्मक्षपणशक्तिर्नास्ति, भव्यानां तु तादृशचिक्रणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावाच्च देवगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वे ज्ञानादिरत्नत्रयसमाराधनेन, गुणश्रेणिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम् ।

समस्त कर्मोंका क्षय कर डालते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं । उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है । संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं । इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता पृथक्-पृथक् है, तथापि उन में स्वरूप की समानता है ।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान हैं तो अभव्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये, अभव्य जीवों में अनादि अनन्त चिकने कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है । भव्य जीवों के वैसे चिकने कर्मों के न होने से, और परावर्त स्वभाव से, देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके मिलने पर ज्ञानादिरत्नत्रय की आराधना करने से, तथा गुणश्रेणी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है ।

कर्मोंना क्षय करी नांणे छे, ते सर्वे सिद्ध कडेवाय छे. तेनुं असली स्वरूप प्रगट थई नय छे. संसारी एव कर्मने आधीन होवाना कारणे दुःखी होय छे. ये प्रमाणे ने के प्रत्येक एवनी सत्ता पृथक्-पृथक्-जूही जूही छे, तो यणु तेनामां स्वरूपनी समानता छे.

प्रश्न—ने सर्व एव सिद्धोंनी समान छे तो अभव्य एव सिद्धगतिने केम प्राप्त करी शकता नथी ?

उत्तर—सांलणो, अभव्य एवोमां अनादि-अनंत चिक्रणा कर्मोंना संबध होवाथी अने अपरिवर्तनशील स्वभावना कारणे कर्मोंना क्षय करवानी शक्ति नथी; भव्य एवोने तेवां चिक्रणां कर्म न होवाथी अने परावर्त-स्वभावथी हेव, गुरु अने धर्मरूप सामग्रीना भणवा पर, ज्ञानादि रत्नत्रयनी आराधना करवाथी, तथा गुण-श्रेणी पर आरोहण करवाथी तेओने सिद्धपद प्राप्त करवुं शक्य छे.

મનુષ્યમ્ભવં પ્રાપ્ય કર્માણિ ક્ષપયિત્વા જીવા મોક્ષં યાન્તિ, તદાની-  
મેવાવ્યવહારરાશિમ્સૂક્ષ્મનિગોદાદકામનિર્જરયા નિઃસૃત્યાઽન્યે જીવાઃ વિકાસદશાં  
પ્રાપ્નુવન્તિ । યદિ દશ જીવા મુક્તિ ગચ્છન્તિ તદા દશ સૂક્ષ્મનિગોદાન્નિષ્ક્રાન્તા  
ભવન્તિ । કદાચિત્તતોઽપ્યલ્પસંખ્યકાઃ સૂક્ષ્મનિગોદા વહિરાયાન્તિ તદા તૈઃ  
સાર્ધમેકો દ્વાવભવ્યજીવૌ નિઃસરતઃ, કિન્તુ વ્યવહારાગૌ જીવાનાં હાસવૃદ્ધી ન  
ભવતઃ । ઈદૃશા નિગોદગોલકા અસંખ્યાતા લોકે સન્તિ, ઇતિ ગ્રન્થાન્તરે ।

। ઇત્યવતરણા સંપૂર્ણા ।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम् । तत्र चरणकरणानुयोगस्य  
प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम् ।

મનુષ્ય ભવ પાકર કર્મો કા ક્ષય કરકે જીવ મોક્ષ જાતે હૈ, ઉસી સમય  
અવ્યવહારરાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદ સે અકામનિર્જરાદ્વારા દૂસરે જીવ નિકલકર વિકાસદશા કો પ્રાપ્ત  
કરને હૈ । અગર દશ જીવ મોક્ષ મેં જાતે હૈ તો દશ જીવ સૂક્ષ્મનિગોદ સે વાહર  
નિકલ આતે હૈ । કદાચિત્ અલ્પસંખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ જીવ વાહર નિકલતે હૈ તો ઉનકે  
સાથ એક-દો અભવ્ય જીવ વાહર આ જાતે હૈ મગર વ્યવહાર રાશિ મેં જીવોં કી ઘટતી  
વઢતી નહીં હોતી । એસે નિગોદગોલક લોકમેં અસંખ્યાત હોતે હૈ, એસા ગ્રન્થાન્તર મેં કહા હૈ ।

इति अवतरणा संपूर्ण—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप वतलाया गया है ।  
यह कहा जा चुका है कि—चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण  
सर्वप्रथम क्रिया गया है ।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોને ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે  
અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા બીજા જીવો નીકળીને  
વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે. અગર દસ જીવ મોક્ષમાં જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષ્મ  
નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે. કદાચિત્ અલ્પસંખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ-જીવ બહાર  
નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે. પણ અવહાર  
રાશિમાં જીવોનું ઘટવું-વધવું થતું નથી. એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમાં અસંખ્યાત  
હોય છે. આ પ્રમાણે ગ્રન્થાન્તરમાં કહ્યું છે.

इति अवतरणा संपूर्ण—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં  
આવ્યું છે. એ કહી આપ્યું છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનું  
પ્રહુણ સૌથી પ્રથમ કરવામાં આવ્યું છે.

तत्राचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणावबोधकतयैतद्बोधितार्थावस्थितस्येतराङ्गाध्ययनयोग्यतालाभाच्च प्राधान्यात् ।

किञ्च-एतत्सूत्राध्ययनेन क्षान्त्यादिश्चरणकरणरूपो वा श्रमणानां धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणा-माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।

आचारशब्देन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्गृह्यते । तत्प्रतिपादकमङ्ग-माचाराङ्गम्, अस्येदमादिसूत्रम्-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

बारह अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्यों कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, अतः यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने वाला दूसरे अङ्गोंके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण-करणरूप श्रमणधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणभूत स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मों में आचारधारित्व (संयम पालन) ही प्रधान है, अत एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

यहाँ ‘आचार’ शब्द से ज्ञानचार आदि पांच प्रकार का आचार समझना चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाता है । इस आचाराङ्ग सूत्र का पहला सूत्र यह है-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

બાર અંગોમાં આચારાંગ પહેલું અંગ છે, કેમકે ચરણ અને કરણ મોક્ષનો ઉપાય છે, તેથી આ અંગ પણ મોક્ષનું કારણ છે.

આચારાંગ સૂત્રમાં નિરૂપિત અર્થનું અનુષ્ઠાન કરનારા ખીજા અંગોનાં અધ્યયનની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરે છે, તે કારણથી આ અંગ પ્રધાન છે.

ખીજી વાત એ છે કે:-આ અંગના અધ્યયનથી ક્ષમા આદિ, અથવા ચરણ-કરણરૂપ શ્રમણ-ધર્મનું સમ્યક્ પ્રકારે જ્ઞાન થાય છે આચાર્ય આદિ પદોની પ્રાપ્તિના કારણભૂત સ્વસમયનું પરિજ્ઞાન આદિ સમસ્ત ધર્મોમાં આચારધારિત્વ (સંયમપાલન)જ પ્રધાન છે. એ માટે આચારનું પ્રતિપાદન કરનાર આગમજ પહેલું અંગ હોવું જોઈએ, એ સિદ્ધ છે.

અહિં ‘આચાર’ શબ્દથી જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારનો આચાર સમજવો જોઈએ. તેનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું અંગ ‘આચારાંગ’ કહેવાય છે. આ ‘આચારાંગ’ સૂત્રનું પહેલું સૂત્ર આ છે-

‘સુયં મે’ ઈત્યાદિ.



મૂલમ્—

સુયં મે આસં તેણં મગત્તયા એવમસ્વાયં, ( સૂ. ૧ )

( છાયા )

શ્રુતં મયા આયુષ્મન્ ! તેન મગવતા એવમાખ્યાતમ્ ( સૂ. ૧ )

ટીકા—

‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ । આયુષ્મન્ ! હે ચિરજીવિન્ ! જમ્બૂઃ ! ‘આયુષ્મ’-  
ન્નિતિપદં શિષ્યસ્ય જમ્બૂસ્વામિનઃ કોમલવચનામન્ત્રણં વિનીતતાખ્યાપનાર્થમ્ ।  
કિન્ચ-તસ્યાશેષશ્રુતજ્ઞાનોપદેશ-શ્રવણ-ગ્રહણ - ધારણ - રત્નત્રયારાધન - મોક્ષસાધન-  
યોગ્યતાપ્રાપ્ત્યર્થમેતદ્વચનમ્ । વિનાઽઽયુષા શ્રુતશ્રવણાદિમોક્ષપર્યન્તસિદ્ધિર્ન કસ્યચિત્સં-  
ભવતીતિ ભાવઃ । એતદ્વચનપ્રભાવાદેવ જમ્બૂસ્વામી મોક્ષપદં તસ્મિન્નેવ જન્મનિ  
પ્રાપ ।

મૂલાર્થ—‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ, હે આયુષ્મન્ ! મૈને સુના હૈ । ડન મગવાન્ને એસા  
કહા હૈ ( સૂ. ૧ )

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ ! અર્થાત્ હે ચિરંજીવી જમ્બૂ !, ‘આયુષ્મન્’ પદ અપને શિષ્ય  
જમ્બૂ સ્વામીકા કોમલ વચનરૂપ સમ્બોધન હૈ, ઓર વિનીતતા પ્રકટ કરને કે લિએ હૈ ।  
અથવા—ડનકે સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશ કા શ્રવણ, ગ્રહણ ધારણ, રત્નત્રયકા આરાધન, તથા  
મોક્ષસાધન કી યોગ્યતા કી પ્રાપ્તિ કે લિએ ઇસ પદ કા પ્રયોગ ક્રિયા ગયા હૈ । આયુકે  
અભાવ મેં શ્રુતશ્રવણ સે લેકર મોક્ષ તક કિસીકી મી સિદ્ધિ નહીં હો સકતી । ઇસી વચન  
કે પ્રભાવ સે જમ્બૂ સ્વામીને ડસી મવ મેં મોક્ષ પ્રાપ્ત ક્રિયા થા ।

‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ .

મૂલાર્થ—હે આયુષ્મન્ ! મેં સાંલળ્યુ છે,—તે લગવાને આલું કહું છે (સૂ-૧)

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ અર્થાત્ હે ચિરંજીવી જમ્બૂ !, ‘આયુષ્મન્’ પદ  
પોતાના શિષ્ય જમ્બૂ સ્વામીતું કોમલ-વચનરૂપ સંબોધન છે, અને વિનીતપણું  
પ્રકટ કરવા માટે છે. અથવા તેમના સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશતું શ્રવણ, ગ્રહણ,  
ધારણ, રત્નત્રયતું આરાધન તથા મોક્ષસાધનની યોગ્યતાની પ્રાપ્તિ માટે આ પદનો  
પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે, આયુના અભાવમાં શ્રુતના શ્રવણથી લઈને મોક્ષ સુધી  
કોઈ પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી આ વચનના પ્રભાવથી જમ્બૂ સ્વામીએ એ  
લવમાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો હતો.

श्रुतं=श्रवणविषयीकृतं, मया=साक्षाद् भगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणधराणामनन्तरागमो भवति । 'मया श्रुत'—मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां लभ्यते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकाभिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनश्रवणं च नोपपद्यते ।

भगवया -भगः=(१) - ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२) - माहात्म्यम्=अनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहन-समुद्भूता कीर्तिः, यद्वा-जगद्रक्षणप्रज्ञासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम-

मैने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं, क्या कि गणधरो का आगम अनन्तरागम होता है । 'मैने सुना' इस वाक्य का 'मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये विना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाले वचनों का श्रवण नहीं हो सकता ।

'भगवान्' शब्द में जो 'भग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा, (३) यश अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति, अथवा जगत् की रक्षा (उद्धार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति, (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग की

में भगवान्ना मुष्थी साक्षात् सांल्ल्युं छे—परम्पराथी नहि, डेभडे गणधरोनां आगम अनन्तरागम-डोय छे. 'में सांल्ल्युं' में गुरुकुलमां निवास करता थका सांल्ल्युं' आ अर्थ स्वतः सिद्ध छे. गुरुकुलमां निवास कर्या विना गुरुना चरणकुमलौना स्पर्श करीने अलिवादन नमस्कार तथा तेना मुखारविन्दथी निकलवावाणां वचनो श्रवणु थर्छ शकतां नथी.

'भगवान्' शब्दमां जे 'भग' शब्द छे, तेना अनेक अर्थ थाय छे ते आ प्रमाणे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थानि ज्ञावावाणुं ज्ञान, (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाथी युक्त डोवुं, (३) यश-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषहो अने उपसर्गानि सहन करवाथी इलाती कीर्ति, अथवा जगतनी रक्षा (उद्धार) करवानी भावनाथी उत्पन्न थयेली कीर्ति, (४) वैराग्य-

भोगाभिलाषराहित्यम्, यद्वा-क्रोधादिकषायनिग्रहलक्षणम्, (५)-मुक्तिः=सकल-  
कर्मक्षयलक्षणो मोक्षः, (६)-रूपम्=सकलहृदयहारिसौन्दर्यम्, (७)-वीर्यम्=अन्त-  
रायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम्, (८)-श्रीः=घातिकर्मपटलविघटनजनितज्ञानदर्शन  
सुखवीर्यरूपानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः । ( ९ ) - धर्मः-अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधन-  
श्रुतचारित्र्यलक्षणः (१०)-ऐश्वर्यम्=लोकत्रयाधिपत्यम्, चास्यास्तीति भगवान्,  
तेन भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन तीर्थङ्करेण, वक्ष्यमाणार्थस्य तीर्थङ्करभाषितत्वात्त-  
च्छब्देनात्र तीर्थङ्करपरामर्शः । उक्तञ्च—

तनिक भी अभिलाषा न होना, अथवा क्रोध आदि कषायोंका निग्रह करना, (५) मुक्ति  
समस्त कर्मोंका क्षय रूप मोक्ष, (३) रूप-सब का हृदय हरलेनेवाला अनुपम सौन्दर्य  
(७) वीर्य-अन्तराय कर्मके क्षय से उत्पन्न अनन्तशक्ति, (८) श्री-घाति कर्मों के क्षय से  
उत्पन्न अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी  
द्वार के किवाड उघाडने का साधन श्रुतचारित्र्यरूप धर्म, (१०) ऐश्वर्य-तीन लोक का  
आधिपत्य । ये दश गुण जिस में विद्यमान हों उसे 'भगवान्' कहते हैं । ऐसे  
भगवान्ने कहा है । आगे कहा जाने वाला तत्त्व तीर्थकरभाषित है, अत एव 'तत्'  
शब्द से यहाँ भगवान् तीर्थकर समझना चाहिए । कहाभी है—

अर्थात् कामलोगनी जरा पणु अलिखाषा नथवी, अथवी क्रोध कषायोना निग्रह  
करवो, (५) मुक्ति-समस्त कर्मोना क्षयरूप मोक्ष (६) रूप-सर्वना हृदयने उरी  
देवावाणुं अनुपम सौन्दर्य, (७) वीर्य-अन्तराय कर्मना क्षयथी उत्पन्न अनन्त  
शक्ति (८) श्री-घाति कर्मोना क्षयथी उत्पन्न अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख अने  
वीर्यरूप अनन्तचतुष्टयलक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी द्वारनां कमाड उघाडवानुं  
साधन श्रुत-चारित्र्यरूप धर्म (१०) ऐश्वर्य-त्रणु लोकनुं आधिपतिपणुं आ दस  
गुणु जेमां छोय तेने भगवानुं उहे छे जेवा भगवाने उहुं छे.

आगण उडेवाशे ते तत्त्व तीर्थकरभाषित छे, अटला भाटे 'तत्' शब्दथी  
तीर्थकर भगवानने अर्थ अहिं समजवो जेधजे. उहुं पणु छे—

“ अत्थं भासद् अरिहा, सुत्तं गंथंति गणधरा णिउणा ” इत्यादि ।

अर्थं भाषतेऽर्हन् मूत्रं ग्रथन्ति गणधरा निपुणाः, इति च्छाया ।

भगवतीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय मेधाविनो गणधरा मूलरूपमागमं निबध्नन्तीत्यर्थः ।

एवं=वक्ष्यमणरीत्या आख्यातं=कथितं द्वादशविधपरिषत्सु ।

भगवतीर्थङ्करकथितार्थजातमेव बानुसृत्य वक्ष्यमाणं वाक्यमनुवदिष्यामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य काल्पनिकत्वाभावाद् द्रव्यार्थिकनयेनार्थरूपोऽयमागमोऽनादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्ति सर्वेषां गणधराणां, यद् विनीतैः स्वस्वान्ते-वासिभिर्मोक्षमार्गं सविनयं पृष्ठा गणधराः “सुयं मे” इतिवाक्यं प्रथमं वदन्ति । उक्तञ्च—

“अर्हन्त भगवन्त अर्थका निरूपण करते हैं । और गणधर उसे भलो-मैति सूत्र रूप में गूँथते हैं । अर्थात् भगवान् तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के आधार पर कुशल गणधर मूलरूप आगमकी रचना करते हैं ।”

उन भगवानने बारह प्रकारकी परिषद् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में निरूपण किया जायगा । आगमोक्त अर्थ काल्पनिक नहीं होता, अतः द्रव्यार्थिकनय से अर्थरूप यह आगम अनादि है ।

सभी गणधरों की यह परम्परा-परिपाटी है कि-अपने २ विनीत शिष्यों द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछे जाने पर गणधर महाराज पहले-पहल ‘सुयं मे’ यह वाक्य बोलते हैं । कहा भी है—

“अर्हन्त भगवन्त अर्थानु निरूपणु करे छे, अने गणधर तेने रुडी रीते सूत्र रूपमां गुंथे छे, अर्थात् भगवान तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट-उपदेशेलां अर्थरूप आगमना आधार पर कुशल गणधर मूलरूप आगमनी रचना करे छे.”

ते भगवाने बार प्रकारनी परिषद्-सभामां आ प्रमाणे कहुं छे ने, आगण आ सूत्रमां निरूपणु करवामां आवशे. आगमोक्त-आगममां कडेदो अर्थ काल्पनिक नथी, तेथी द्रव्यार्थिक नयथी अर्थरूप आ आगम अनादि छे.

सर्व गणधरानी अ परंपरा-परिपाटी छे के:-पोत-पोताना विनीत शिष्ये द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछवाथी गणधर महाराज प्रथम ‘सुयं मे’ आ वाक्य बोले छे. कहुं पणु छे:—

( द्रुतविलम्बितं छन्दः )

“ निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितैः—

विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।

गणधररखिलैः प्रथमं वचः,

खलु ‘सुयं मे’ इति प्रतिभाषितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यातं तदाह—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसि णो सण्णः भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उच्चराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उट्ठाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ मू. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुयं मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ने जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को संज्ञा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अघोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

“विनयधी युक्त निपुण शिष्योऽपि सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्व गणधरो द्वारा पोतपोताना शिष्यो प्रति सर्व प्रथम ‘सुयं मे’ अपि वाक्य उडेवाभां आण्युं छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगेसि’ इत्यादि. डोई-डोई (लवो)ने संज्ञा नहीं होती के हुं पूर्व दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं दक्षिण दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं पश्चिम दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं उत्तर दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं उर्ध्व दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं अघो दिशाभांथी आण्यो छुं, अथवा हुं अन्य-भीए डोई दिशाभांथी अथवा अनुदशा (विदिशा)भांथी आण्यो छुं. ॥२॥

छाया—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्यथा—पूर्वस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । ऊर्ध्वाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, अधोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि ।

‘इहमेगेसि’ इति इह—चतुर्गतिसंसरणरूपे संसारे एकेषां ज्ञानावरणीयकर्मोदयवतां संज्ञानां जीवानां संज्ञा—स्मृतिरूपो मतिविशेषः नो भवति—न जायते ।

अन्यं प्रतिषेधवाचकं शब्दं विहाय ‘नो’ शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-प्रतिषेधबोधनार्थम् । ‘नो’ शब्दः सर्वनिषेधवाची, देशनिषेधवाची च । उक्तञ्च—

“प्रतिषेधयति समस्तं, प्रसक्तमर्थं जगति नो—शब्दः ।

स पुनस्तद्वयवो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात् ॥ १ ॥”

‘नो’ शब्दः—प्रसंगादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थः प्रसक्तावयवो वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् तमपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः ।

टीकार्थ—चार गति में भ्रमण करनेरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उदय वाले कितनेक सजी जीवों को संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं होती ।

निषेधवाचक दूसरे शब्द को छोड़ कर यहाँ ‘नो’ शब्द का प्रयोग किया गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिए समझना चाहिए । ‘नो’ शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और देशनिषेधवाचक भी है । कहा भी है—

“नो’ शब्द प्रसङ्ग में आये हुए सम्पूर्ण अर्थ का निषेध करता है । यह अर्थ चाहे उन का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थान्तर हो—उस का भी निषेध करता है” ॥१॥

टीकार्थ—चार गतिमां भ्रमण करवा रूप संसारमां ज्ञानावरण कर्मना उदय-वाणा डेटलाक संज्ञी एवोने संज्ञा अर्थात् स्मृति नथी रहैती. निषेधक-वाचक अन्य शब्दो त्यएने अडि ‘नो’ शब्दना प्रयोग कर्यो छे, ते विशिष्ट संज्ञानो अभाव सूचववा भाटे समजवो जेध अये ‘नो’ शब्द सर्वनिषेधवाचक पणु छे अने देशनिषेधवाचक पणु छे कहुं पणु छे—

“ ‘नो’ शब्द प्रसंगमां आवेला संपूर्ण अर्थना निषेध करे छे, ते अर्थ गमे ते तेनुं अेक अवयव होय अथवा तेनाथी बिन्न अर्थान्तर होय तेना पणु निषेध करी दे छे” ॥ १ ॥

યયા સંજ્ઞયાઽઽત્મનો ગત્યાગત્યાદિકં જીવો જાનાતિ તસ્યા ંવ પ્રતિષેધો વિવક્ષિતઃ ।

અથ સંજ્ઞાભેદાઃ—

સંજ્ઞા ચ જીવાનાં વહુવિધા । તત્ર-દશવિધા ભગવતીસૂત્રે ( શતક-૭, ઉદ્દેશ ૮ ) પ્રોક્તા—

“ કઙ્ઞ ણં મંતે ! સન્નાઓ પન્નત્તાઓ ? ગોયમા ! દસ સન્નાઓ પન્નત્તાઓ, તંજહા-(૧) આહારસન્ના, (૨) ભયસન્ના, (૩) મેહુણસન્ના, (૪) પરિગ્ગહસન્ના, (૫) કોહસન્ના, (૬) માણસન્ના, (૭) માયાસન્ના, (૮) લોભસન્ના, (૯) લોગસન્ના, (૧૦) ઓહસન્ના ” ંતિ ।

જિસ સંજ્ઞા કે દ્વારા આત્મા કી ગતિ ંર આગતિ જીવ જાનતા હૈ, ંહાં ંસીકા નિષેધ સમજ્ઞના ચાહિં .

સંજ્ઞા કે ભેદ—

જીવોં કી સંજ્ઞા ંનેક પ્રકાર કી હોતી હૈ । ભગવતીસૂત્ર ( શ૦ ૬, ં૦ ૮, મેં દશ પ્રકાર કી સંજ્ઞા કહી ગઈ હૈ, વહ ંસ પ્રકાર હૈ;—

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! સંજ્ઞાં કિતની કહી ગઈ હૈ ।

ંત્તર—ગૌતમ ! દશ સંજ્ઞાં કહી ગઈ હૈ । વે ંસ પ્રકાર હૈ—  
(૧) આહાર-સંજ્ઞા, (૨) ભય-સંજ્ઞા, (૩) મૈથુન-સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા, (૫) ક્રોધ-સંજ્ઞા  
(૬) માન-સંજ્ઞા, (૭) માયા-સંજ્ઞા, (૮) લોભ-સંજ્ઞા, (૯) લોક-સંજ્ઞા ંર (૧૦) ંઘ-સંજ્ઞા ।

જે સંજ્ઞા દ્વારા આત્માની ગતિ ંને આગતિ ંવ જાણે છે. ંહિં ંનેા નિષેધ સમજવો જોઈએ

સંજ્ઞાના ભેદ—

ંવેાની સંજ્ઞા ંનેક પ્રકારની હોય છે. ભગવતી સૂત્ર ( શ. ૬. ં. ૮ )માં હસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ કહેવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે:—

પ્રશ્ન—ભગવાન ! સંજ્ઞાઓ કટલી કહી છે ?

ંત્તર—ગૌતમ ! હસ સંજ્ઞાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે:—

(૧) આહાર-સંજ્ઞા (૨) ભય-સંજ્ઞા (૩) મૈથુન-સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા.  
(૫) ક્રોધ-સંજ્ઞા (૬) માન-સંજ્ઞા (૭) માયા-સંજ્ઞા (૮) લોભ-સંજ્ઞા (૯) લોક-સંજ્ઞા ંને (૧૦) ંઘ-સંજ્ઞા.

अथवा—संज्ञानं संज्ञा-चेतना, सा चाशातवेदनीयमोहनीयकर्मादयजन्य-विकारयुक्ता आहारादिसंज्ञादित्वेन व्यपदिश्यते । सा द्विधा-अनुभवनसंज्ञा, ज्ञानसंज्ञा च । तत्रानुभवनसंज्ञा षोडशविधा । तत्र भगवतीसूत्रोक्तदशविधसंज्ञा उपादायाधिकाः षट् संज्ञाः समिलिताः षोडश भवन्ति । तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति षड् अधिका विज्ञेयाः ।

### (१) आहारसंज्ञा—

(१) क्षुद्रेदनीयोदयात् कवलाद्याहारार्थं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया सम्यग् ज्ञायतेऽनयेत्याहारसंज्ञा । यद्वा—क्षुद्रेदनीयोदयसमुद्भवः आहाराभि-

अथवा—संज्ञानं—संज्ञा—चेतना, अर्थात् संज्ञा चेतना को कहते हैं । यह जब अशातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से जनित विकारों से युक्त होती है तब वह आहार आदि संज्ञा कहलाने लगती है । वह दो प्रकार की है—(१) अनुभवनसंज्ञा और (२) ज्ञानसंज्ञा । इन में से अनुभवनसंज्ञा सोलह प्रकार की है । भगवतीसूत्रोक्त दश संज्ञाओं में छह संज्ञाएँ मिला देने से सोलह हो जाती है । छह संज्ञाएँ ये हैं—(१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, और (६) धर्मसंज्ञा ।

### (१) आहारसंज्ञा

क्षुधावेदनीय के उदय से कवलाहार आदि के लिए योग्य पुद्गलो को ग्रहण करने की क्रिया जिस द्वारा सम्यक् प्रकार से जानी जाय वह आहारसंज्ञा कहलाती है ।

अथवा—संज्ञानं अष्टवे संज्ञा, ते चेतना, अर्थात् चेतनाने संज्ञा कहे छे ते न्यारे अशातावेदनीय अने मोहनीय कर्मना उदयथी उत्पन्न विकारे युक्त होय छे, त्यारे ते आहार आदि संज्ञा कहेवाय छे. ते ये प्रकारनी छे—(१) अनुभवनसंज्ञा अने (२) ज्ञानसंज्ञा. तेमां अनुभवनसंज्ञा सोण प्रकारनी छे, भगवतीसूत्रोक्त दस संज्ञाओंमां छ भेणवी हेवाथी सोण थाय छे, छ संज्ञाओं आ छेः—(१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा अने (६) धर्मसंज्ञा.

### (१) आहारसंज्ञा—

क्षुधा (भूष) वेदनीयना उदयथी कवलाहार आदि भाटे योग्य पुद्गलोने ग्रहण करवानी क्रिया जेना वडे सम्यक् प्रकारथी ज्ञानी शक्य, ते आहारसंज्ञा कहेवाय छे.



लापरूप आत्मनः परिणामविशेषः । अभिलाषश्चात्र—‘मदर्थमीदृशं वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती’—त्येवं विचारानुबद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणी-भूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः । रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तु-श्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसंज्ञा जायते । आहारादयः संज्ञाः एकेन्द्रियादि-पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति । जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसंज्ञा विज्ञायते ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसंज्ञा कहलाती है । यहां अभिलाषा शब्द से ‘इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा’ ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला अन्मा का परिणाम ग्रहण करना चाहिए । खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है । आहार आदि संज्ञाएं एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती हैं, जब तक संसार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती है । जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसंज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्मना उदयथी उत्पन्न तथा वाणी आधारनी अभिलाषा-इच्छा-धृष्ट्या इय आत्मानि परिणति ते आहारसंज्ञा उडेवाय छे, अर्द्धि अभिलाषा शब्दथी ‘आ प्रकारनी वस्तु मारा माटे पुष्टि करनारी छे, आ वस्तु भजे तो माइं हित थसे’ अथा विचारथी युक्त पोतानी पुष्टि अने सन्तोषना कारणभूत पदार्थनी प्राप्ति माटे विचार करनार आत्मानुं परिणाम, अडुषु करवुं लेधअे, आदी पेट डोवाना कारणे लोअय ( लोअन करवा योग्य ) वस्तुना श्रवण, दर्शन अने चिन्तनथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. आहार आदि संज्ञाओ अडेन्द्रियथी आरंभने पञ्चेन्द्रिय सुधीना सर्व एवोने डोय छे; अने ज्यां सुधी संसारने अंत थतो नथी त्यां सुधी ते संज्ञाओ रहे छे. जल वगेरेना आहार पर एवित रहेवाना कारणे वनस्पति आदि अडेन्द्रिय एवोमां यथु आहारसंज्ञानुं अस्तित्व हेभाय छे.

(२) भयसंज्ञा—

(२) सनिमित्तमनिमित्तं वा भयमोहनीयोदयाद् भयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकषायरूपा नयनवदनविकृतरोमाञ्चाविर्भावादिक्रियालक्षणा स्वात्मनः परिणतिर्भयसंज्ञा । हीनबलत्वेन, भयवार्ताश्रवणभीषणदर्शनादिजनितबुद्ध्या, इहलोकादिभयजनकार्थपर्यालोचनेन वा भयसंज्ञा जायते । हस्तस्पर्शादिभीत्या स्वावयवसंकोचनादिना लज्जालुबल्ल्यादीनां भयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

( ३ ) पुरुषवेदोदयान्मैथुनार्थं वनितालोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र-

(२) भयसंज्ञा—

किसी कारण से या विना ही कारण भयमोहनीय कर्म के उदय से भयभीत पुरुषकी मोहके अन्तर्गत नोकषायरूप, नेत्रों में और मुख में विकार होना, रोमाञ्च होना आदि क्रियाएँ जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मा की परिणति भयसंज्ञा कहलाती है, दुर्बलता से, भय उपन्न करने वाली बात सुनने से, भयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में भयजनक वस्तुका विचार करने से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है । लजवन्ती आदि वनस्पतियाँ हाथ के स्पर्श के भय से अपने अवयवों को सिकोड लेती है, अतः उन में भयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(२) भय संज्ञा—

डोर्ध डारणुथी अथवा विना डारणे भय थवो, मोहनीय डर्भना उदयथी भयभीत पुरुषनी मोहने अंतर्गत नोकषायरूप, नेत्रोमां अने अडेरामां विकार थवो, रोमाञ्च थवुं (इंवाडां उलां थवां) वगेरे डियाओ न्नेनुं लक्षणु छे, ओवी आत्मानी परिणुति ते भयसंज्ञा डडेवाय छे दुर्बलताथी, भय उत्पन्न डरावनारी वात सांलणवाथी, भयङ्कर वस्तु डेणवाथी, तथा आ डोड वगेरेमां भयजनक वस्तुनो विचार डरवाथी भयसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. लज्जवन्ती (लज्जणु) आदि वनस्पतिओ ड्पर्श थवाथी भय लाग्ये डोय तेम पोताना अवयवोने संडोये छे तेथी तेमां भयसंज्ञानी विद्यमानता डेणाय छे.

(३) मैथुन संज्ञा—

पुरुषवेद—मोहनीकर्मना उदयथी मैथुन माटे स्त्री तरङ्ग न्नेनुं डसतुं सुभ

शैथिल्योरुक्रम्पनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा । रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्प्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते । कुरुबकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन-चरणाघात-कटाक्षविक्षेपादिभ्यः प्रसन्नपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते ।

### (४) परिग्रहसंज्ञा—

( ४ ) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त-सचित्ताऽचित्तमिश्र-वस्तूपादानादिमूर्च्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा । सचित्तादिवस्तु-

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उस में शिथिलता पैदा होना उरु (घुटनोके नीचेका भाग) आदि का कापना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते हैं । रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मैथुन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है । कुरुबक आदि वनस्पतियों में सुन्दरी कामिनी की भुजाओं के आलिङ्गन से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते हैं, अतः वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है ।

### (४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्च्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है ।

धनुं, शरीरनुं स्तम्भित यच्च न्वुं, तथा तेषां शिथिलता उत्पन्न भवी, नांग वगेरेनुं कंपवुं आदि क्रियारूप आत्मानि परिणतिने मैथुनसंज्ञा कळे छे. रक्त (लोही) अने मांसनी अधिकताथी, स्त्रीकथा वगेरे सांलगवाथी उत्पन्न थयेली भुद्धिथी, अने मैथुनने विचार करवाथी मैथुनसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. कुरुबक (अेक जेतनुं वृक्ष) आदि वनस्पतिमां सुंदरी कामिनीना हाथना आलिङ्गन थतां, चरणाघातथी तथा कटाक्षपात आदिथी कुल, पत्तां आदि उत्पन्न थाय छे, आ हांरथुथी वनस्पतिमां मैथुनसंज्ञानुं अस्तित्व सिद्ध थाय छे.

### (४) परिग्रह संज्ञा—

लोभमोहनीयना उदयथी धर्मना उपकरणे सिवाय भीज सचित्त, अचित्त अने मिश्र पदार्थानुं ग्रहण करवुं वगेरे मूर्च्छारूप आत्मानि परिणति ते परिग्रहसंज्ञा

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते ।  
बिल्वादिवनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीवस्य जात्यादिमदजनिता कर्तव्याकर्तव्य-  
विवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा-

(६) मानमोहनीयोदयाद् अंहकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।  
देवगुरुधर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से, परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है । बिल्व (बेल) आदि वनस्पतियाँ अपने पत्तों से फूल फल वगैरह को ढँक लेती है, इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में जातिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा जलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है ।

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय के उदय से अहङ्काररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है । देव गुरु धर्म आदि बड़ोंका अनादर आदि करने से मानसंज्ञा मादृम होती है ।

कडेवाय छे. सचित्त आदि वस्तुओंको परिग्रह देखावाथी, परिग्रहको विचार करवाथी अने परिग्रहको संग्रह करवाथी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. बिल्व (भीली) आदि वनस्पतिओ पोतानां पांढराथी कुल-इल वगेरेने ढांकी दे छे, तेथी वनस्पतिमां परिग्रहसंज्ञा देखाय छे.

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय कर्मना उदयथी, अने जातिमद वगेरेथी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नाश करवावाणी स्व-परनी अप्रीतिरूप तथा जलनरूप आत्मानी विभावपरिणति ते क्रोधसंज्ञा कडेवाय छे.

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय कर्मना उदयथी अहङ्काररूप आत्मानी विभावपरिणति मानसंज्ञा कडेवाय छे. देव, गुरु, धर्म आदि मोटाओको अनादर वगेरे करवाथी मानसंज्ञा मादृम पडे छे.

## (७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा । परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाक्कायव्यापारेण सा विज्ञायते ।

## (८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा । आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते ।

## (९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क-

## (७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है । दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है ।

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है । आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है ।

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

## (७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय कर्मना उदयथी लुवनी कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहेवाय छे. भीजने ठगवानी धृष्टार्थी, मोहजनक मन, वचन अने कायाना व्यापारथी तेनी प्रतीति थाय छे.

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय कर्मना उदयथी सचित्त आदि वस्तुओमां आसक्तिरूप लुवनी विभावपरिणति ते लोभसंज्ञा कहेवाय छे. आरंभ-परिग्रह आदिनी प्रवृत्तिथी लोभसंज्ञाने पते लागे छे.

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी अने मोहनीयकर्मना उदयथी कुबुद्धिजनित

रूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्लोकसंज्ञा । यथा—“अपुत्रस्य गतिर्नास्ती”-त्यादि ।

(१०) ओघसंज्ञा—

(१०) ज्ञानावरणीयाल्पक्षयोपशमसमुद्भूता, अव्यक्तोपयोगरूपा जीवस्य परिणतिः ओघसंज्ञा । सा लतादीनां प्रतानारोहणादिना ज्ञायते ।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) संसारिणां सातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा ।

तर्करूप आत्मा की विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहलाती है; यथा—“निपूते को सद्रति नहीं मिलती” आदि ।

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्म के अल्प क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली तथा अव्यक्त (अप्रकृत) उपयोगरूप जीव का विभावपरिणमन ओघसंज्ञा कहलाती है । लता वगैरह का मंडप पर चढ़ने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जीवोंको सातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिको सुखसंज्ञा कहते हैं ।

तर्करूप आत्मानि विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहेवाय छे. जेभ—“अपुत्रियाने सद्गति भणती नथी.”

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अल्प क्षयोपशमथी उत्पन्न थनारी अने अप्रकृत उपयोग रूप जिवनुं विभावपरिणमन ते ओघसंज्ञा कहेवाय छे, वेदो वगेरेनुं मंडप उपर अठपुं वगेरेथी तेनुं ज्ञान थाय छे.

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जिवोने सातावेदनीयना उदयथी सर्व इन्द्रियोमां अनुकूलतानुं ज्ञान करवनारी आत्मानि एक विशिष्ट परिणतिने सुखसंज्ञा कहे छे.

## (१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणां प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा ।

## (१३) मोहसंज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसंज्ञा । कुदेवकुगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा विज्ञायते ।

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च संशयरूपा जीवस्य परिणति—

## (१२) दुःखसंज्ञा—

संसारी जीवों को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के संतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दुःखसंज्ञा कहलाती है ।

## (१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसंज्ञा है । कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसंज्ञा का ज्ञान होता है ।

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से संशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा—

## (१२) दुःखसंज्ञा—

संसारी जिवोने असातावेदनीयना उदयथी सर्वे इन्द्रियोमां प्रतिकूलतानुं भान क्शववा वाणी, विविध प्रकारना संतापोना अनुभवरूप जिवनी परिणति ते दुःखसंज्ञा कडेवाय छे.

## (१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयथी मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणोने निरोध करवावाणी, समस्त पापस्थानना कारणरूप आत्मानी विभावपरिणति ते मोहसंज्ञा छे. कुदेव, कुगुरु अने कुधर्म आदिमां प्रवृत्ति होवना कारणे मोहसंज्ञानुं ज्ञान थाय छे.

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी संशयरूप आत्मानुं परिणमन ते

विचिकित्सासंज्ञा । यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति संशयः । सा द्विधा-देशतः, सर्वतश्च । 'द्वाविंशतिपरिषहसहनब्रह्मचर्यकेशोल्लुञ्चनादिक्लेशसहनस्य फलं भविष्यति न वे'-तिरूपा देशतः । 'परलोकादि सत्यं न वे'-तिरूपा, सर्वज्ञप्ररूपितजीवादितत्त्वं यथार्थं न वे'-त्यादिरूपा वा सर्वतः ।

(१५) शोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोदयादिष्टवियोगजनिता विप्रलाप-वैमनस्यरूपा आत्मनः परिणतिः शोकसंज्ञा । सा चाक्रन्दनादिना ज्ञायते ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयक्षयोपशमेन सर्वविरति-देशविरतिलक्षणा कर्मक्षयजनक-

संज्ञा कहलाती है । जैसे-दान धर्म आदि के फल में संदेह होना । यह संज्ञा दो प्रकार की है-देश से और सर्व से । 'बाईस परीषहों के सहने का, ब्रह्मचर्य पालने का, केशलोच आदि क्लेश सहने का फल मिलेगा या नहीं ?' इस प्रकार का संशय होना देशतः विचिकित्सासंज्ञा है । 'वास्तव में परलोक है या नहीं, सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्व यथार्थ है या नहीं ?' इस प्रकार का संशय सर्वतः विचिकित्सासंज्ञा है ।

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विलाप और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति शोकसंज्ञा कहलाती है ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कर्मक्षयजनक सर्वविरति, तथा देशविरति

विचिकित्सा संज्ञा कहेवाय छे. जेभके:-दान धर्म आदिना इलमां संदेह थयो. आ संज्ञा जे प्रकारनी होय छे-(१) देशथी, (२) सर्वथी, 'षापीश परिषहोनुं सहन करवुं ते, ब्रह्मचर्य पालन करवुं ते, केशनुं लोचन करवुं वगेरे क्लेश सहन करवानुं इल भणशे के नडि ?' आ प्रकारनो संशय ते देशथकी विचिकित्सासंज्ञा छे. 'वास्तवमां परलोक छे के नडि, सर्वज्ञद्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्वो यथार्थ छे के नडि' आ प्रकारनो संशय ते सर्वथकी विचिकित्सासंज्ञा छे.

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयने लीधे, इष्टवियोगथी उत्पन्न थवा वाली, विलाप अने विमनस्कता ( व्याकुल चित्त ) इय आत्मानी परिणति शोकसंज्ञा कहेवाय छे.

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीयकर्मना क्षयोपशमथी कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरतिरूप



सर्वविरतिदेशविरतिरूपाऽऽत्मनः स्वभावपरिणतिः धर्मसंज्ञा । सा जीवरक्षणादि-  
व्यापारेण ज्ञायते ।

ज्ञानसंज्ञाभेदाः—

ज्ञानसंज्ञा तु मतिश्रुतादिभेदात् पञ्चधा—(१) मतिज्ञानं, (२) श्रुतज्ञानं,  
(३) अवधिज्ञानं, (४) मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, चेति ।

(१) मतिज्ञानम्—

मननं मतिरवबोधः । मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम् । अत्र ज्ञानशब्दः  
सामान्यज्ञानवाचकः । इन्द्रिय-नोइन्द्रियजन्यं ज्ञानं मतिर्ज्ञानविशेषः, अतः सामान्य-  
विशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम् ।

रूप आत्मा की स्वभावपरिणति को धर्मसंज्ञा कहते हैं । जीवरक्षा आदि व्यापारों  
से उसका ज्ञान होता है ।

ज्ञानसंज्ञा के भेद

मति, श्रुत आदिके भेद से ज्ञानसंज्ञा पांच प्रकार की है । वह इस प्रकार—  
(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, और (५) केवलज्ञान ।

(१) मतिज्ञान

मनन करना मति है, अर्थात् बोध । मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है । यहाँ ज्ञान  
शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक है । 'इन्द्रिय और मनसे होनेवाला ज्ञान मति है' । ऐसा अर्थ  
करने से सामान्य और विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हो जाती है ।

आत्मान्नी स्वभावपरिणतिने धर्मसंज्ञा कडे छे. जीवरक्षा आदि व्यापारेथी तेनुं  
ज्ञान थाय छे.

ज्ञानसंज्ञाना भेद—

मति, श्रुत आदि भेद वडे-करी ज्ञानसंज्ञा पांच प्रकारनी कही छे ते आ  
प्रमाणे छे—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, अने  
(५) केवलज्ञान.

(१) मतिज्ञान—

मनन करवुं ते मति छे. अर्थात् बोध छे, मतिरूप ज्ञान ते मतिज्ञान कडेवाय  
छे. अहिं ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञानने वाचक छे. 'इन्द्रिय अने मनथी उत्पन्न  
ज्ञान ते मति छे' अवे अर्थ करवाथी सामान्य अने विशेष ज्ञानोमां समाना-  
धिकरणता (समानपाणुं) थर्थ जाय छे.

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुतं=श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः । तच्च कीदृशम् ? उच्यते—शब्दस्य श्रवणेन, भाषणादिना वा यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम् ।

अत्र श्रुतशब्देन ज्ञानं गृह्यते, ज्ञानप्रभेदप्रकरणान्तःपातित्वात् । न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः । लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात्—श्रुतज्ञान-मुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ननु मतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं संपद्यते, यथा—मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः,

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है । शब्द के श्रवण से या भाषण आदि से वाच्य—वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

यहाँ 'श्रुत' शब्द से ज्ञान का ग्रहण किया जाता है, क्यों कि वह ज्ञान के प्रभेदों के अन्तर्गत है, किन्तु 'श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से शब्दार्थक श्रुत—शब्द नहीं है । लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर बादमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है ।

शङ्का—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है, जैसे मिट्टी घटरूप में पलट जाती है, और तन्तु पट (वस्त्र) रूप में बदल जाते हैं, ऐसी स्थिति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का पृथक् ग्रहण किस प्रयोजन से किया है ?

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति अथवा श्रवण—सांख्यारूप एक प्रकारतुं ज्ञान ते श्रुत—ज्ञान कडेवाय छे. श्रुत—ज्ञान डेवुं डेवाय छे ? शब्दना सांख्यवाथी अथवा लाषणु आदिथी, वाच्य—वाचक लाव संबन्ध प्रमाणे ने पदार्थतुं ज्ञान थाय छे, तेने श्रुतज्ञान कडे छे.

अडिं श्रुत—शब्दथी ज्ञान अडणु करी शक्याय छे. डेमडे ते ज्ञानना प्रलेहोनी अंदर छे, परंतु 'श्रूयते' आ व्युत्पत्तिथी शब्दार्थक श्रुत—शब्द नथी. लब्धिरूप मतिज्ञान थया पछी श्रुतज्ञान उत्पन्न थाय छे, मतिज्ञानना अलावमां थतुं नथी ते कारणथी मतिज्ञान ते श्रुतज्ञानतुं कारण छे.

शंका—मतिज्ञान न श्रुतज्ञानरूपमां परिणत थर्ष जाय छे, नेमडे भाटी घट रूपमां करी जाय छे. अने तन्तु वस्त्ररूपमां बदलाय जाय छे. अथी स्थितिमां लगवाने श्रुतज्ञानतुं बुद्ध अडणु शुं प्रयोजनथी क्युं ?

तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते—दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम्, यथा घटप्रादुर्भावे पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च, तथा श्रुतज्ञाने समुपन्ने मतिज्ञानं न प्रणश्यति, उक्तञ्च भगवता—

‘जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई’ ( नन्दी. )

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः ।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता, तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च—मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्तवचनानुसारि ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति निष्कर्षः । इति ।

‘श्रूयते यत् तच्छ्रुत’—मतिव्युत्पत्त्या श्रुतशब्देनाप्तवचनमपि गृह्यते

समाधान—ये दोनों दृष्टान्त विषम हैं, जैसे—घट प्रकट होने पर पिण्डाकार मिट्टी मिट जाती है, और जैसे पटकी उत्पत्ति होने पर तन्तुओं का पुञ्ज नष्ट हो जाता है, उस प्रकार श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर मतिज्ञान नष्ट नहीं होता । भगवानने कहा है—

“जहाँ मतिज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान है ।” श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अस्तित्व भगवानने बतलाया है, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का अपेक्षाकारण ही है, ऐसा मानना चाहिए । तात्पर्य यह निकलता है कि—मतिज्ञानपूर्वक इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होने वाला, तथा आप्तवाक्यका अनुसरण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है ।

‘जो सुनाजाय वह श्रुत है’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार ‘श्रुत’ शब्द से आप्त

समाधान—એ બંને દષ્ટાંત વિષમ છે, જેમકે ઘટ પ્રકટ થતાં પિંડાકાર માટી મટી જાય છે, જેમ વસ્ત્રની ઉત્પત્તિ થતાં તંતુઓનો જથ્થો નાશ પામે છે, તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં મતિજ્ઞાન નાશ પામતું નથી. લગવાને કહ્યું છે કે:—

“જ્યાં મતિજ્ઞાન છે ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે, જ્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે ત્યાં મતિજ્ઞાન છે” શ્રુતજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં મતિજ્ઞાનનું અસ્તિત્વ લગવાને બતાવ્યું છે. એ કારણથી મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનનું અપેક્ષાકારણ જ છે. એમ માનવું જોઈએ, તે તાત્પર્ય એ નીકળ્યું કે મતિજ્ઞાનપૂર્વક, ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન થવાવાળું, તથા આપ્તવાક્યનું અનુસરણ કરવાવાળું જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે.

‘જે સાંભળવામાં આવી શકે તે શ્રુત છે’ આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે ‘શ્રુત’ શબ્દથી

तस्मिन् पक्षे-श्रुतस्य आप्तवचनस्य ज्ञानं, श्रुतज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषः । आप्तो=रागादि-  
रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-आप्तवचनम् । तदर्थ्याध्यवसायरूपं ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति ।  
अध्यवसायो निर्णयः । श्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो  
भवति । ज्ञानभेदव्यवस्थायां तु श्रुतशब्दः श्रवणार्थवाचीत्यवधेयम् ।

### (३) अवधिज्ञानम्-

अवशब्दोऽधःशब्दार्थः, अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते-ज्ञायतेऽने-  
नेत्यवधिः । अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेति विग्रहः । विस्तृतविषयकं ज्ञानमवधि-

वचन का भी ग्रहण होता है । उस पक्ष में श्रुत का अर्थात् आप्तवचन का ज्ञान  
श्रुतज्ञान है, ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास होगा । आप्त अर्थात् रागादिसे रहित सर्वज्ञ,  
उनका वचन आप्तवचन कहलाता है । अध्यवसाय अर्थात् निश्चय । ऐसा अध्यवसायरूप अर्थात्  
पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान श्रुतज्ञान होता है । शब्द, श्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस  
लिथे शब्द भी त कहलाता है, किन्तु ज्ञान-भेदकी व्यवस्था में श्रुत-शब्द श्रवण अर्थ का  
वाचक है ।

### (३) अवधिज्ञान—

‘अव का अर्थ है ‘अधः’ अर्थात् नीचे । तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान  
अधोदिशा की वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिरूप  
ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान । जैसे-अनुत्तरोपपातिक देव अवधिज्ञान

आप्तवचननुं श्रद्धां यथ शक्ये छे. ते पक्षमां श्रुतनुं अर्थात् आप्तवचननुं ज्ञान ते  
श्रुतज्ञान छे. अे प्रमाणे षष्ठीतत्पुरुष समास थशे. आप्त अर्थात् रागादिथी रहित,  
सर्वज्ञ, तेनुं वचन ते आप्तवचन कडेवाय छे अध्यवसाय अर्थात् निश्चय, अेवा  
अध्यवसायरूप अर्थात् पदार्थनुं निश्चयात्मक ज्ञान ते श्रुतज्ञान कडेवाय छे. शब्द,  
श्रुतज्ञानमां कारण छे, अेटला माटे शब्द पणु श्रुत कडेवाय छे, परंतु ज्ञान-भेदनी  
व्यवस्थांमां श्रुत-शब्द सांखण्युं अे अर्थनो वाचक छे.

### (3) अवधिज्ञान—

‘अव’नो अर्थ छे ‘अधः’ अर्थात् नीचे, तात्पर्य अे छे के-ने ज्ञान अधो  
दिशानी वस्तुअेने विस्तारथी ळणु छे, ते अवधिज्ञान कडेवाय छे. अवधिरूप ज्ञान  
अवधिज्ञान छे, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान. नेभके:-अनुत्तरोपपातिक देव अवधि-

ज्ञानम् । यथा—अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानवलेन भगवन्तमापृच्छद्य जीवादि-  
तत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

यद्वा—‘अवधिना ज्ञानम्’ इति तृतीयासमासः । अवधिर्मर्यादा—‘रूपिद्रव्याण्येव  
विषयीकरोति नेतराणी’—तिव्यवस्थारूपा, तथा चायमर्थः—अरूपिद्रव्यपरिहारेण  
रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम् । तच्च चतुर्गतिवर्तिनां  
जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार-  
जनकं भवति । एतस्य ज्ञानस्य देव—मनुष्य—तिर्यङ्—नारका अधिकारिणः ।

के वल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्वो का स्वरूप निश्चित कर लेते है ।

अथवा—अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिका  
अर्थ है मर्यादा । अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह  
व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए । तात्पर्य यह हुआ कि—अरूपी द्रव्यों को  
छोडकर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।

अथवा—जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक जाना जाय वह अवधिज्ञान है ।  
यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है । यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात्  
जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है । देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और  
नारकी, सभी इस ज्ञान के अविकारी है, अर्थात् यह चारों को हो सकता है ।

ज्ञानना षण्णथी लगवानने प्रश्न पूछीने लुवादि तत्त्वोना निश्चय करी ले छे. अथवा—  
अवधिनी साथे ले ज्ञान थाय छे ते अवधिज्ञान कहेवाय छे. अवधिने अर्थ छे  
मर्यादा. अवधिज्ञान, रूपी द्रव्योने न् नाले छे, अरूपी द्रव्योने नालेतुं नथी, आ  
व्यवस्था न् अहिं मर्यादा समजवी लेधये. तात्पर्य ये थयुं के अरूपी—द्रव्योने  
छोडीने डेवण रूपी द्रव्योने नालुवावाणुं ज्ञान ते अवधिज्ञान कहेवाय छे. अथवा  
ले ज्ञान द्वारा नीचे—नीचे विशेष नालुवामां आवे, ते अवधिज्ञान छे. ते ज्ञान आर  
गतियोना लुयोने थध शके छे, मात्र रूपी पदार्थोने साक्षात् नाले छे, अने विशिष्ट  
क्षयोपशमधी उत्पन्न थाय छे, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च अने नारकी, आ सर्व ते ज्ञानना  
अधिकारी छे, अर्थात् ये आरेयने अवधिज्ञान थध शके छे.

(४) मनःपर्ययज्ञानम्—

पर्ययनं—सर्वतः परिच्छेदनम्—अवबोधनं पर्ययः । मनसः पर्ययो मनः—पर्ययः, मनोविषयकः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम् । यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनो द्विविधं द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः । संज्ञिना मनोवर्गणा गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते ।

तत्रेह भावमनः परिगृह्यते । भावमनसः पर्ययाश्च परेषां सार्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरवर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाध्यवसायरूपाः । यथा—अन्यः

(४) मनःपर्ययज्ञान—

पर्यय अर्थात् जानना, मन को सर्वथा जानना मनःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। अथवा—मनःपर्यय (मनके पर्ययो) का ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है ।

मन दो प्रकार का है—द्रव्य-मन और भाव-मन । मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन कहते हैं । संज्ञी जीव द्वारा ग्रहण की हुई मनोवर्गणाएँ जब चिन्तन की जाती है वे भावमन कहलाती है ।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही लिया जाता है । अर्थात् द्वीप के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के द्वारा चिन्तन क्रिये जाने वाले, विषयाध्यवसायरूप पर्ययों को मनःपर्यय ज्ञान जानता है । जैसे—कोई दूसरा जीव ऐसा विचार करे—आत्मा कैसा

(४) मनःपर्यय ज्ञान—

पर्यय अर्थात् જાણવું, મનને જાણવું તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. અર્થાત્—મન વિષયકનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મનઃપર્યય કહેવાય છે. અથવા મનઃપર્યયનું જ્ઞાન તે મનઃ-પર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે.

મન બે પ્રકારનાં છે—(૧) દ્રવ્યમન અને (૨) ભાવમન. મનોવર્ગણાઓને દ્રવ્ય-મન કહે છે, અને સંજ્ઞી જીવ દ્વારા ગ્રહણ કરાયેલી મનોવર્ગણાઓનું ન્યારે ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને ભાવમન કહે છે.

મનઃપર્યય જ્ઞાનના પ્રકરણમાં ભાવમન જ લેવામાં આવે છે. અર્થાત્ દ્વીપના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો દ્વારા ચિન્તન કરવામાં આવતા વિષયાध्यવસાયરૂપ પર્યયોને મનઃપર્યય જ્ઞાન જાણું છે. જેમ કે—કોઈ બીજો જીવ એવો વિચાર કરે—આત્મા કેવો

કશ્ચિદેવં ચિન્તયેત્—‘આત્મા કીદશઃ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વભાવઃ, કર્મણાં કર્તા, તત્કલ્મ્ભોક્તા ચેત્યાદયો યે જ્ઞાનવિશેષરૂપાસ્તસ્યાત્મનઃ પરિણામાસ્તેષાં યદ્ જ્ઞાનં તન્મનઃપર્યયજ્ઞાનમ્ ।

મનઃપર્યયજ્ઞાની ચ મનઃપર્યયાનેવ પ્રત્યક્ષીકરોતિ ન તુ વાહ્યં વસ્તુ । ન ચ— ‘મનઃપર્યયજ્ઞાનિના વાહ્યં વસ્તુ ન જ્ઞાયતે’ ઇતિ વાચ્યમ્, અનુમાનતસ્તસ્ય વાહ્યવસ્તુ-જ્ઞાનસદ્ભાવાત્ । યથા—વિશિષ્ટક્ષાયોપશમિકપ્રતિભાશાલી પ્રેક્ષાવાન્ પ્રશાન્તઃ કસ્યચિદાકારેદ્ગિતાદિકં વિલોક્ય તદીયમનોગતં ભાવં સામર્થ્યં ચાનુમાનતો વિજાનાતિ ।

હૈ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વરૂપ, કર્મોં કા કર્તા, કર્મફલ્મ્ભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્મા કે જો જ્ઞાન-વિશેષરૂપ પરિણામ હૈ, ઁન્હેં જાનના મનઃપર્યયજ્ઞાન હૈ । મનઃપર્યયજ્ઞાની જીવ, મન કે પર્યાયોં કો હી પ્રત્યક્ષ કરતા હૈ, વાહ્ય વસ્તુ કો નહીં । પરન્તુ યહ કહના ઠીક નહીં હૈ કિ—મનઃપર્યયજ્ઞાની વાહ્ય વસ્તુઓં કો જાનતા હી નહીં હૈ । મનઃપર્યયજ્ઞાની કો અનુમાન સે વાહ્ય પદાર્થોં કા જ્ઞાન હોતા હૈ । જૈસે—વિશિષ્ટક્ષયોપશમ-જન્ય પ્રતિભા વાલા બુદ્ધિમાન્ પુરુષ કિસી કે ઇશારે યા ચેષ્ટા કો દેખકર ઁસકે મનકા ભાવ ઁર ઁસકા સામર્થ્ય અનુમાન સે જાન લેતા હૈ, ઇસી પ્રકાર મનઃપર્યયજ્ઞાની દૂસરે કે ભાવરૂપ મન કો પૂર્ણતયા પ્રત્યક્ષ કરકે અનુમાન સે વાહ્ય વસ્તુ કો જાન લેતા હૈ કિ—‘ઇસને અમુક વસ્તુ કા વિચાર ક્રિયા હૈ’ । વાહ્ય પદાર્થોં કા વિચાર કરતે સમય ઁસી પદાર્થ કે આકાર કા મન હો જાતા હૈ ।

છે ? અરૂપી, ચેતના—સ્વરૂપ, કર્મોંનો કર્તા, કર્મફલ્મ્ભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને જાણવા તે મન-પર્યાય જ્ઞાન છે.

મનઃપર્યાય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ. પરંતુ એમ કહેવું ઠીક નથી કે—મનઃપર્યાયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને જાણતા જ નથી, મનઃપર્યાયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનું જ્ઞાન હોય છે. જેમકે:—વિશિષ્ટક્ષયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરુષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને જોઈને તેના મનનો ભાવ અને તેનું સામર્થ્ય અનુમાનથી જાણી લે છે, એ પ્રમાણે મનઃપર્યાયજ્ઞાની ખીજના ભાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમાં પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને જાણી લે છે કે:—“તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે” બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન ધર્મ જાય છે.

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावरूपं मनः सर्वतोभावेन प्रत्यक्षी-  
कृत्यानुमानेन बाह्यं विषयमवबुध्यते—' इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते ' इति । बाह्यपदार्थ-  
चिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्व-क्षयोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिसाम्ये-  
ऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात् । तथाहि—अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि  
भवति, तद् द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकविषयम्, कालतोऽतीतानागता-  
संख्यातोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयम्, भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यात-  
पर्यायविषयम् ।

मनःपर्ययज्ञानं तु प्रमादरहितस्याऽऽमर्षाद्यन्यतमलब्धिधारिणः संयतस्य  
भवति । द्रव्यतः—संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यविषयं, क्षेत्रतः—समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है;  
क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है, क्यों कि स्वामी आदिके  
भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि को भी  
होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है,  
काल से असंख्यात भूत और भात्री उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है,  
भाव से समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयत को तथा आमर्ष आदि किसी लब्धि के धारक  
को ही होता है । वह द्रव्य से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान प्रमाणे रूपी पदार्थानि विषय करे छे—जाले छे  
मनःपर्ययज्ञान क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, परंतु अवधिज्ञानथी ते भिन्न छे, केमके  
स्वामी आदिना लेहथी ते अनेमां लेह छे. ते आ प्रमाणे—अवधिज्ञान अविरत  
सम्यग्दृष्टिने पणु थाय छे. ते द्रव्यथकी सर्व रूपी जेवने जाले छे, क्षेत्रथकी समस्त  
लोकने जाले छे, कालथकी असंख्यात भूत अने लावी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीने जाली  
शके छे, लावथी समस्त रूपी द्रव्येमांथी प्रत्येक द्रव्यनी असंख्यात पर्यायेने जाले छे.

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयतने (मुनिने) तथा आमर्ष आदि केछ लब्धिना  
धारकने ज थाय छे. ते द्रव्यथी संज्ञी पञ्चेन्द्रियनां मनोद्रव्यने, क्षेत्रथकी समयक्षेत्र-



કાલતોઽતીતાનાગતપલ્યોપમાસંખ્યાતભાગવિષયમ્ , ભાવતો મનોદ્રવ્યગતાનન્તપર્યાય-  
વિષયકમ્ ।

### (૫) કેવલજ્ઞાનમ્ —

કેવલમ્—એકમસહાયં જ્ઞાનાવરણીયકર્માત્યન્તક્ષયસમુદ્ભૂતમ્—અતીતાના  
ગતવર્તમાનયથાવસ્થિતસકલદ્રવ્યગુણપર્યાયવિષયકમપ્રતિપાતિ જ્ઞાનં કેવલજ્ઞાનમ્ ।  
અત્ર ગ્રન્થવિસ્તરભિયા વિરમામઃ ।

જ્ઞાનપ્રસન્નેન મત્યાદિભેદપશ્ચકં પ્રદર્શિતં, પ્રકૃતે તુ મતિજ્ઞાનસ્યૈવાધિકારઃ ।

( અઢાઈ દ્વીપ કો ), કાલ સે પલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવેં ભાગ—ભૂત—ભવિષ્યત્ કાલકો ઓર  
ભાવ સે મનોદ્રવ્ય કી અનન્ત પર્યાયોં કો વિષય કરતા હૈ ।

### (૫) કેવલજ્ઞાન—

કેવલજ્ઞાન, કેવલ અર્થાત્ એક હી હૈ । ઉસ કે સાથ દૂસરાં જ્ઞાન નહીં હોતા ।  
વહ અસહાય હૈ અર્થાત્ ઇન્દ્રિય મન આદિ કિસી કી સહાયતા કી ઉસે અપેક્ષા નહીં હૈ ।  
વહ જ્ઞાનાવરણ કર્મ કે આત્યન્તિક ક્ષય સે ઉત્પન્ન હોતા હૈ । અતીત, અનાગત, વર્તમાન કાલ  
કે સમસ્ત દ્રવ્યોં ગુણોં ઓર પર્યાયોં કો યથાર્થરૂપ મેં જાનતા હૈ, અપ્રતિપાતી હૈ, અર્થાત્  
એકવાર ઉત્પન્ન હો કર કમી નષ્ટ નહીં હોતા । એસા જ્ઞાન કેવલજ્ઞાન કહલાતા હૈ ।  
ગ્રન્થવિસ્તાર કે મય સે અધિક વિસ્તાર નહીં કરતે ।

જ્ઞાન કા પ્રકરણ હોને સે મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ ભેદ બતલાયે જા ચુકે હૈં ।

માત્રને ( અઢી દ્વીપને ) કાલથી પદ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગે ભૂત—ભવિષ્ય કાલને  
અને ભાવથી મનોદ્રવ્યની અનંત પર્યાયોને બાણે છે.

### (૫) કેવલજ્ઞાન—

કેવલજ્ઞાન, કેવલ અર્થાત્ એકજ છે. તેની સાથે બીજું જ્ઞાન થતું નથી, તે  
અસહાય છે, અર્થાત્ ઇન્દ્રિય, મન આદિ કોઈની પણ સહાયતાની તેને અપેક્ષા નથી.  
અને તે કેવલજ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના આત્યન્તિક ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે. કેવલજ્ઞાન  
ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાન કાલના સમસ્ત દ્રવ્યો, ગુણો અને પર્યાયોને  
યથાર્થરૂપથી બાણે છે. તે અપ્રતિપાતી છે, અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી  
કોઈ પણ વખત નાશ પામતું નથી, એવું જે જ્ઞાન તે કેવલજ્ઞાન કહેવાય છે.  
અંધવિસ્તારના ભયથી અધિક વિસ્તાર અહિં કરતા નથી.

જ્ઞાનનું પ્રકરણ હોવાથી મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ ભેદો બતાવ્યા છે. અહિં

मतिज्ञानं चानेकविधम्, ईहादिभेदात् । उक्तञ्च भगवता—

“ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेषणा ।

सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ” ॥ (नन्दी मति-  
ज्ञानगाथा २७)

छाया-ईहा, अपोहः विमर्शः मार्गणा च गवेषणा ।

संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आभिनिबोधिकम् ॥

‘आभिणिबोहियं’ इत्यनेन त्रिकालविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा-चोक्तं  
भगवता—“पंचविहं णाणं पण्णत्तं । तंजहा—(१) आभिणिबोहियणाणं, (२) सुयणाणं,  
(३) ओहिणाणं (४) मणपज्जवणाणं (५) केवलणाणं । इति (नन्दी, १)

(१) ईहा—

ईहाऽपोहादयो मतिज्ञानप्रभेदाः । तत्र-ईहनम्-ईहा । नामजात्यादि-

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईहा आदि के भेद से अनेक प्रकार का है ।  
भगवान् ने कहा है :—

“ ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, संज्ञा, स्मृति, मति और प्रज्ञा, यह सब  
आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) है ” (नन्दीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थ है—त्रिकालविषयक मतिज्ञान । भगवान् ने  
कहा है—“ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आभिनिबोधिकज्ञान,  
(२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान” (नन्दी—सू० १)

(१) ईहा—

ईहा अपोह आदि मतिज्ञान के भेद हैं । नाम और जाति आदि की विशेष

मतिज्ञाननो ऽ प्रसंगं छे, मतिज्ञानं धडा आदि लेहोथी अनेक प्रकारनुं छे. लगवाने  
कहुं छे के—धडा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति, अने  
प्रज्ञा, ये सर्व आभिनिबोधिक ज्ञान—मतिज्ञान छे (नन्दीसूत्र मतिज्ञानगाथा २७)  
आभिनिबोधिक ज्ञाननो अर्थ छे—त्रिकालविषयक मतिज्ञान, लगवाने कहुं छे के—  
“ज्ञान पांच प्रकारनुं छे, ते आ प्रमाणे (१) आभिनिबोधिकज्ञान (२) श्रुतज्ञान,  
(३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञान (नन्दी सू० १)

(१) धडा—

धडा तथा अपोह वगेरे मतिज्ञानना लेह छे. नाम अने जाति आदिनी विशेष

विशेषकल्पनारहितसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा-ईहा । यथा-  
स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः ?, कस्यायं  
स्पर्शः ?, किमयं कमलनालस्पर्शः उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्म-  
होऽपि विचारणा प्रवर्तते ।

### (२) अपोहः—

अपोहनम्—अपोहः निश्चयः । कोऽयमपोहः ? उच्यते—मतिज्ञानस्यावग्रहादि-  
भेदचतुष्टये तृतीयभेदो योऽपायः स एवापोहशब्देनोच्यते । अवग्रहादिभेद-  
चतुष्टयं च नन्दीसूत्रे भगवतैव प्रदर्शितमस्ति ।

कल्पना से रहित सामान्यज्ञान के पश्चात् होने वाली विचारणा ईहा कहलाती है ।  
जैसे—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्शका सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् गाढ अन्धकार होने  
पर चक्षुवाले को भी यह विचारणा होती है कि यह स्पर्श कैसा है ? किसका यह  
स्पर्श है ? यह कमल के नाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?, इस प्रकार की  
विचारणा को ईहा कहते हैं । १।

### (२) अपोह—

अपोह का अर्थ है—निश्चय । अपोह क्या है ? कहते हैं—मतिज्ञान के  
अवग्रह आदि चार भेदों में तीसरा भेद जो अपाय है उसी को यहाँ 'अपोह' शब्द  
द्वारा कहा है । अवग्रह आदि चार भेद नन्दीसूत्र में भगवान् ने कहे हैं ।

कल्पनाथी रहित, सामान्य ज्ञाननी पछी थवा वाणी विचारणाने धडा कडे छे, जेभडे:-  
स्पर्शनेन्द्रियना द्वारा स्पर्शनु' सामान्य ज्ञान थवा पछी गाढ अंधकार थाय त्तारे  
नेत्रवाणाने पछु जे विचार थाय छे के-आ स्पर्श केवो छे ? आ केवो स्पर्श कथो  
छे. शेनो स्पर्श छे ?, आ कमलना नाणनो स्पर्श छे के सर्पनो स्पर्श छे ?, आ  
प्रकारनी विचारणु तेने धडा कडे छे.

### (२) अपोह—

अपोहने अर्थ छे निश्चय, अपोह जे शुं छे ? कडे छे के-मतिज्ञानना अवग्रह  
आदि चार लेदो पछीनो त्रीने लेद जे अपाय छे, तेने अहि 'अपोह' शब्दथी  
कडेल छे. अवग्रह आदि चार लेद नन्दीसूत्रमां भगवाने कडेला छे.

सामान्यज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु-  
गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा—‘किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोस्विद्  
भुजङ्गमस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘मृणालस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-  
दित्यस्यैवाय’—मिति निश्चयोऽन्यं भुजङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽपोहोऽ-  
पनोदश्चेति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा—मातुमिच्छा, मातुं—जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपोह कहलाता है । यथा—  
‘यह कमलनालका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर “यह कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है” इस प्रकार का निश्चय होना, और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपोह, अपाय और अपनोद भी कहलाता है ।

(३) विमर्श—

जीव आदि के स्वरूप को जानने की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गणा—

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है ।

सामान्य ज्ञान तथा पछी विशेषनो निश्चय करवा भाटे विचारणा तथा पछी तेना गुण-दोषनी विचारणार्थी उत्पन्न निश्चय तेने अपोह कहे छे, जेम—‘आ कमलना नाणनो स्पर्श छे के सर्पनो स्पर्श छे ?’ आ प्रकारनी विचारणा तथा पछी नकडी करवामां आवे के “आ स्पर्श कमलना नाणनो न छे, केमके तेमां अत्यन्त शीतलता छे” जे प्रकारनो निश्चय थाय छे अने जे निश्चय जीणनो अर्थात् सर्पना स्पर्शनो निराकरण करी हे छे. तेथी करी आ निश्चय ते अपोह, अपाय अने अपनोद पण कहेवाय छे.

(३) विमर्श—

जव आदिना स्वरूपने ज्ञानुवानी छिछा ते विमर्श छे.

(४) मार्गणा—

जव आदि पदार्थोना यथार्थ स्वरूपनुं अन्वेषण करवुं ते मार्गणा छे.

## (५) गवेषणा—

मार्गणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभावनं—निर्णयाभि—  
मुखविचारपरायणता गवेषणा ।

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतस्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन “स एवाय”-मिति जायमानं  
ज्ञानं संज्ञा । यथा—“स एवायमाहारकलब्धिमान् महात्मा, यो मया कानने दृष्टः” ।

## (७) स्मृतिः—

अनुभूतार्थविषयकं ज्ञानं स्मृतिः । इदं ज्ञानमतीतविषयकं भवति ।  
अत्रोदाहारणं यथा—

## (५) गवेषणा—

मार्गणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूरी तरह विचार  
करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेषणा है ।

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुनः दर्शन होने पर ‘यह वही है’  
इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान संज्ञा कहलाता है । जैसे—“यह वही आहारकलब्धि  
वाले महात्मा है जिन्हे मैंने वनमें देखा था” ।

## (७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता  
है । स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है । यहां एक उदाहरण है, जैसे—

## (५) गवेषणा—

मार्गणानी पछी उपलब्ध नहि थवा वाणा एवादि पदार्थानां पूरी रीते विचार  
करवे। अर्थात् निर्णयने अभिमुख-विचार परायणताने गवेषणा कडे छे.

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्य ज्ञानना विषयभूत पदार्थानु द्दरी दर्शन थतां “आ तेज छे.”  
ये प्रकारे उत्पन्न थवा वाणुं ज्ञान ते संज्ञा कडेवाय छे. जेम—“आ तेज आहारक-  
लब्धिवाणा महात्मा छे जेने में वनमां जेया हुता.”

## (७) स्मृति—

प्रथम अनुभव करेला पदार्थानां विषय करुनाइं ज्ञान स्मृति कडेवाय छे. स्मृति-ज्ञान  
अतीत विषयनुं न. (वीती गयेला प्रसंगनुं न) डोय छे अह्नीं अेक उदहरणु छे, जेमके:-

चेलुणा देवी हेमन्ते भगवत्सप्तवसरणतः प्रत्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये स्वप्रतिज्ञाऽविनं जिनकल्पिनं कमपि मुनिं ध्यानावस्थमालोक्य भक्त्या तद्दर्शनवन्दनादिकं विधाय स्वप्रासादमागता रात्रौ सुप्ता । निद्रावस्थायां तस्याः पाणिरावरणवस्त्राद् बहिर्भूतः शीतेन शिथिलीबभूव । अथाऽसौ जागरिता जडीभूतं स्वहस्तं विलोक्य शीतादिपरिषहपरिगतं महारण्यस्थं मुनिं स्मृतवती “ कथमहो असौ मुनिरिदानीं बहिर्महावने शीतपरिभूतो भविष्यति ” । इति कर्मणां महानिर्जरां महापर्यवसानं चकार ।

चेलना देवी हेमन्त ऋतु में भगवान् के समवसरणसे लौटती हुई, मार्ग में महा—अरण्य में, अपनी प्रतिज्ञा पालने वाड़े किन्ही जिनकल्पी मुनि को ध्यान में स्थित देखकर, भक्तिपूर्वक उन का दर्शन वन्दन आदि कर के अपने महल में आई और रात्रि में सो गई । निद्रावस्था में उस का हाथ ओढने के वख से बाहर निकल गया और ठंड के कारण ठर गया । रानी की नौद खुल गई । उसने अपने हाथ को जडीभूत देख कर शीत परिषहों से आक्रान्त, महा—अरण्यवासी मुनिका स्मरण किया । कहने लगी—अहो ! महावन में, नगर के बाहर वह मुनि इस समय शीत से कैसा कष्ट पा रहे होंगे, ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्जरा की ।

चेलना देवी हेमन्त ऋतुमां लगवानना समवसरणुमांथी पाछी इरे त्यारे मार्गमां मडावनमां, पोतानी प्रतिज्ञा पालनारा, केध अेक जिनकल्पी मुनिने ध्यानमां स्थित जेधने, लक्तिपूर्वक तेना दर्शन, वंदन वगेरे करीने पोताना मडेलमां आवी अने रात्रीअे सुध गध. निद्रावस्थामां तेना अेक हाथ ओढवाना वस्त्रमांथी अडार रडी गयो, अने ठंडी होवाना कारणे ते हाथ ठरी गयो, राणीनी निद्रा उडी गध, त्यारे तेले पोताना हाथने ठरी जवाथी जउ जेवो जेधने शीत आदि परिषहोथी आडान्त, मडा—वनवासी मुनि सांलरी आव्या; अने कडेवा लागी के—अहो ! मडावनमां नगर अडार ते मुनि आ समयमां शीतथी केवुं कष्ट पामता डशे ?, जेवो विचार करीने कर्मनी महानिर्जरा करी.

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञानं मतिः । यथा—‘ मुनिः संयमार्थं भिक्षामटति ’ ।

(९) प्रज्ञा—

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथावस्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञानं प्रज्ञा ।

आभिनिवोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

“ इहैकेषां नो संज्ञा भवती ”—त्यत्र संज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

(८) मति—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है । जैसे—‘ मुनि संयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है ।

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये ।

‘ कितनेक जीवोंको संज्ञा नहीं होती ’ यहाँ संज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान् ने ‘ नो ’ शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की संज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है ।

(८) मति—

वर्तमान विषयक ज्ञान ते मति कहेवाय छे, जेभ ‘ मुनि संयम पालन भाटे भिक्षा देवा भ्रमण करे छे । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशमार्था उत्पन्न थनाइं प्रभूत पदार्थोना यथार्थ स्वरूपनु निर्णयात्मक ज्ञान ते प्रज्ञा छे ।

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञानना प्रभेद कहेवाया ।

‘ कितनेक जीवोने संज्ञा नहीं थती ’ अडिं संज्ञा शब्दधी मतिज्ञानना अंतर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञानना लगवाने ‘ नो ’ शब्दना निर्देश करीने निषेध कथी छे परंतु सर्व प्रकारनी संज्ञारूप सामान्य ज्ञानना निषेध कथी नथी ।

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न भवत्येकेषाम् ? इत्याकाङ्क्षायामाह-“ तंजहा ” इति । सा यथा—

“ पुरत्थिमाओ वा दिसासो ” इत्यारभ्य-“अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि ” इत्यन्तेनेदमुक्तं भवति-वर्तमानजन्मनः प्राक् कस्यां दिशि ममावस्थान-मासीदिति स्वगत्यागत्यवधिविशिष्टपूर्वादिषड्दिशाज्ञानं नास्ति संज्ञिनामपि कियतांचित् । यथा-मदिरामदघूर्णितनयनो मूर्च्छितः पथि पतितः स्वजनादिना समुत्थाप्य गृहमानीयते । अथ मूर्च्छापगमेऽप्यसौ न जानाति-काहं पतितः ?, कथमुत्थापितः ?, केन कया रीत्याऽत्र समानीतोऽस्मी ?-ति । तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है जो किन्हीं २ जीवों को नहीं होती ? । इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर कहा गया है-तंजहा-अर्थात् वह इस प्रकार-

‘पुरत्थिमाओवा वा दिशाओ’ से लेकर ‘अहोदिशाओवा आगओ अहमंसि’ तक का आशय यह है कि-इस वर्तमान जन्म से पहले मैं कहाँ रहता था ?, इस प्रकारका अपनी गति-आगति से युक्त छह दिशाओं का ज्ञान कितनेक संज्ञी जीवोंको भी नहीं होता । जैसे-मदिरा के मद से छका हुआ, मूर्च्छित और रास्ते में पड़ा हुआ पुरुष स्वजन आदि के द्वारा उठाकर घर लाया जाता है, किन्तु मूर्च्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि-मैं कहाँ गिरा था ?, किस प्रकार उठाया गया ?, कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया ?, इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव के कारण जीव

ते संज्ञा केवा प्रकारनी छे, जे कोर्ध-कोर्ध जेवोने नथी छेती ?, आ प्रभाणे ज्ञासा थवाथी क्युं छे जे-‘तंजहा’ अर्थात् ते आ प्रकारे-

“ पुरत्थिमाओवा दिसाओ ” थी लधने “ अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि, ” सुधीना आशय जे छे जे:-आ वर्तमान जन्मथी पडेलां हुं क्यां रहेतो डतो, आ प्रकारनुं चेतानी गति-आगतिथी युक्त छ दिशाओनुं ज्ञान डेटलाड संज्ञी जेवोने पणु नथी थतु. जेम मदिराना डेक्षथी छडेला मूर्च्छित-जेलान रस्तामां पडेला पुश्चने स्वजनद्वारा उठावीने चेताना घेर लाववामां आवे छे; परंतु मूर्च्छा उतरी गया पछी पणु तेने ज्ञान थतुं नथी छे-हुं क्यां पडी गयो डतो ? डेवी रीते मने उठाव्ये ? कोणु डेवी रीते मने अडिं लाव्या ?, आ प्रकारनी विशिष्ट संज्ञाना



अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

“अणयरीओ वा दिसाओ” इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन संज्ञिनः, सर्वः गूज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासंभवादिति भावः ।

“अणुदिसाओ वा” इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञानं न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते—संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा ।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

‘अणयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जितनी दिशाएं हैं, उनमें किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक संज्ञी नहीं जानते हैं । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव में किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । ‘अणुदिशाओ वा’ ईशान वगैरह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न—दिशाएँ कितनी हैं ?

उत्तर—संक्षेप से दिशा के दो भेद हैं—द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व,

अलावधी एव पोताना पूर्वभवने न्नात्तो नथी.

‘अणयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जेटली दिशाओ छे, तेभांथी डोए पणु ओक दिशाथी हुं आओ छुं. आ प्रभाणे पोताना आगमननी दिशाने सामान्य रूपथी पणु डेटलांक संज्ञी न्नात्ता नथी. डेभके सर्व दिशाओना ज्ञानना अलावधी डोए ओक दिशानुं ज्ञान थपुं ते असंभव छे ‘अणुदिसाओ वा’ ईशान वगैरे डोए रूप विदिशाओने अनुदिशा डहे छे. तेभांथी सामान्यरूपे डोए पणु ओक दिशाथी हुं आओ छुं, अथवा विशेषरूपथी ईशान आग्नेय आदि विदिशाओथी हुं आओ छुं. अयुं ज्ञान थतुं नथी.

प्रश्न—दिशाओ डेटली छे ?

उत्तर—संक्षेपथी दिशाना जे लेह छेः—द्रव्यदिशा अने लावदिशा. पूर्व, पश्चिम,

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रोः दिशः, एशानी आग्नेयी, नैर्ऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टावन्तरदिशः, मिलित्वा षोडश । अथोर्ध्वम्, अधश्चेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश । द्रव्यदिगेव प्रज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते ।

तथा-संमूर्च्छिममनुष्याः, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यञ्चः,

पृथिव्यप्तेजोवायुकायभेदाच्चतुर्विधाः स्थावराः । अग्रबीज-मूलबीज-पर्वबीज-स्कन्धबीज-भेदाच्चतुर्विधा वनस्पतयः । इति मिलित्वा षोडश । नरकगति-

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान, अग्नेय नैर्ऋत्य, वायव्य, ये चार विदिशाएँ हैं । इन आठों के बीच में आठ अवान्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिलकर सोलह होती है । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अठारह द्रव्य-दिशाएँ होती है । द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं ।

तथा—संमूर्च्छिम मनुष्य, गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मजभूमिज मनुष्य, छप्पन अन्तरद्वीपो के मनुष्य, ये चार प्रकार के मनुष्य । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यञ्च । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्थावर, और अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, तथा

दक्षिण અને ઉત્તર. આ ચાર દિશાઓ છે. અગ્નિ, ઇશાન, નૈર્ઋત્ય, અને વાયવ્ય, આ ચાર વિદિશાઓ છે, આ આઠની વચ્ચેમાં આઠ અવાન્તર દિશાઓ છે. આ સર્વ મળીને સોળ દિશાઓ થાય છે. તેમ ઉર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા શામિલ કરવાથી અઠાર દ્રવ્ય દિશાઓ થાય છે, દ્રવ્યદિશાને પ્રજ્ઞાપકદિશા પણ કહે છે. તથા-સંમૂર્છિમ મનુષ્ય, ગર્ભ જ કર્મભૂમિ જ મનુષ્ય, ગર્ભ જ-અકર્મભૂમિ જ મનુષ્ય, છપન અન્તરદ્વીપોના મનુષ્ય, આ ચાર પ્રકારના મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના લેદથી ચાર પ્રકારના તિર્યંચ, પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય અને વાયુકાયના લેદથી ચાર પ્રકારના. સ્થાવર, અને અગ્રબીજ, મૂલબીજ, પર્વબીજ

देवगतिश्चेति द्वे । सर्वयोगेऽष्टादश भावदिशः सन्ति ।

अथ दिशां विदिशां च प्रवृत्तिः कुतः स्थानाद्भवति ? उच्यते—

तिर्यग्लोकस्य मध्यभागे रत्नप्रभा भूमिः, तदुपरि मध्यभागे मेरु-  
पर्वताभ्यन्तरे द्वौ लघुतरौ प्रतरौ स्तः । तदुपरि गोस्तनाकाराश्चत्वारश्चत्वारः  
प्रदेशाः सन्ति । ईदृशाष्टप्रदेशी चतुष्कोणो रुचकनामा भागोऽस्ति । तत एव दिशां  
विदिशां च प्रवृत्तिर्भवति । उक्तञ्च—

“ तिर्यग्लोकस्य मध्ये यो, रुचकोऽष्टप्रदेशकः ।

दिशामनुदिशां चैव, प्रवृत्तिर्जायते ततः ” ॥१॥

स्कन्धबीज के भेद से चार प्रकार की वनस्पति, ये सब मिलकर सोलह होते हैं ।  
तथा नरकगति और देवगति मिलकर अठारह प्रकार की भाव-दिशाएँ हैं ।

प्रश्न—दिशाओं और विदिशाओंकी प्रवृत्ति किस स्थान से होती है ?

उत्तर—तिर्यग्लोक के मध्यभाग में रत्नप्रभा भूमि है । उसके उपर मध्यभाग  
में मेरु पर्वत के अन्दर दो छोटे प्रतर है । उनके उपर गाय के स्तन के आकारवाले  
चार चार प्रदेश है । ऐसा अष्टप्रदेशी चौकोना रुचक नामक भाग है । वहाँ से दिशाओं  
और विदिशाओं की प्रवृत्ति होती है । कहा भां है—

“ तिर्हे लोक के मध्य में आठ प्रदेशवाला रुचक भाग है । उसी से सब दिशाओं  
और अनुदिशाओं की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥ ”

तथा स्कन्धबीजना लेदृथी चार प्रकारनी वनस्पति, आ सर्व भजीने सोण थाय छे,  
तथा नरकगति अने देवगति भजीने अठार प्रकारनी भाव-दिशाओ छे.

प्रश्न—दिशाओ अने विदिशाओनी प्रवृत्ति कया स्थानथी होय छे ?

उत्तर—तिर्यग्लोकना मध्य भागमां रत्नप्रभा भूमि छे, तेना उपर मध्य  
भागमां मेरु पर्वतनी अंदर नाना छे प्रतर छे, तेना उपर गायना स्तनना आकार  
वाला चार-चार प्रदेश छे. ओवो आठप्रदेशी चार भुजावाणो रुचक नामनो भाग छे,  
तेनाथी दिशाओ अने विदिशाओनी प्रवृत्ति थाय छे. कहुं पणु छे:-

“ तिर्हा होइना मध्यमां आठ प्रदेशवाणो रुचक भाग छे, त्याथी सर्व दिशाओ  
अने अनुदिशाओनी प्रवृत्ति थाय छे. ” ॥ १ ॥

द्रव्यदिग्विषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति विवक्षया—“इहमेगेसि णो सण्णा भवइ” इत्युक्तं भगवता । भावदिशाविषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति वक्ष्यतेऽनन्तरसूत्र एव—“ एवमेगेसि णो णायं भवइ ” इत्यादिना । ॥ सू. २ ॥

भावदिशाविषयकं च ज्ञानं भवति संज्ञिनां कियतांचिदित्याह—‘एवमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम् ।

एवमेगेसि णो णायं भवइ—अत्थि मे आया ओववाइए, नत्थि मे आया ओववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि ॥ सू. ३ ॥

( छाया )

एवमेकेषां नो ज्ञातं भवति—अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इतश्च्युन इह प्रेत्य भविष्यामि ? ॥ सू० ३ ॥

कितनेक जीवां को द्रव्यदिशासम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से भगवानने कहा है कि—‘ इहमेगेसि णो सण्णा भवइ ’ । भावदिशाविषयक ज्ञान कितनेको नहीं होता है, यह बात ‘ एवमेगेसि णो णायं भवइ ’ इत्यादि अगले सूत्र में कही जायगी ॥ सू० २ ॥

कितनेक सञ्जी जीवोको भावदिशाविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहने है—‘एवमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्ही जीवोको यह ज्ञान नहीं होता कि—मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है । मैं पहले कौन था और यहाँ से मरकर परलोक में कौन होऊँगा ? ॥ सू० ३ ॥

केटलाक ओवोने द्रव्यदिशासम्बन्धी ज्ञान नथी थतुं. ओ अपेक्षाथी लगवाने कहुं छे के—‘इहमेगेसि णो सण्णा भवइ ’ भावदिशा विषयनुं ज्ञान केटलाक ओवोने नथी. ओ वात ‘ एवमेगेसि णो णायं भवइ ’ इत्यादि आगला सूत्रमां कहीशुं. ॥ सू० २ ॥

केटलाक संज्ञी ओवोने भावदिशाविषयनुं ज्ञान नथी ते कहे छे—‘एवमेगेसि’ इत्यादि.

मूलार्थ—केछ केछ ओवोने ओ ज्ञान नथी के भारे आत्मा उत्पत्तिशील छे, भारे आत्मा उत्पत्तिशील नथी, हु प्रथम केओ उतो अने अहिंथी मृत्युणाह परलवमां हुं केओ थथि ? ( हुं कया नथि ? ) ( सू. ३ )

## ટીકા ।

‘એવમેગેસિં’ ઇતિ, એવં વક્ષ્યમાણપ્રકારેણ એકેષાં સંજ્ઞિનાં ક્રિય-તાંચિત્ જ્ઞાતં-જ્ઞાનમ્ આત્મનિ વિષયે વર્તમાનાતીતાનાગતજન્મવિષયકં નો ભવતિ=નો સમુત્પદ્યતે ।

કિંસ્વરૂપં જ્ઞાનં નોત્પદ્યતે તેષામ્ ? ઇતિ દર્શયતિ—અસ્તિ મે આત્મા ઔપપાતિક્ ઇત્યાદિ । ઔપપાતિક્ ઇતિ । ઉપપતનમ્—ઉપપાતઃ, પ્રાદુર્ભાવઃ=ચતુર્ગતિષુ જન્મતો જન્માન્તરે સંક્રમણમ્ । ઉપપાતે ભવઃ—ઔપપાતિકઃ । મે મમ આત્મા—ઔપપાતિકો જન્માન્તરસંક્રાન્તોઽસ્તીતિ । તથા—નાસ્તિ મે આત્મા ઔપ-પાતિક્ ઇતિ, મમાત્મા વર્તમાનજન્મનિ કર્મક્ષયસંભવાદ્ ભાવિજન્માન્તર-સમ્બન્ધરહિતોઽસ્તીતિ । इदं જ્ઞાનદ્વયં વર્તમાનજન્મવિષયકમ્ ।

यद्वा — उपपातः — गर्भसंमूर्च्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः । स च देवनारकाणां भवति । उक्तञ्च—

ટીકાર્થ—આગે કહે અનુસાર કિતનેક સંજ્ઞી જીવોકો અપને વિષય મેં વર્તમાન અતીત ઔર અનાગત જન્મ સમ્બન્ધી જ્ઞાન નહીં હોતા । ઉન્હેં કિસ પ્રકાર કા જ્ઞાન નહીં હોતા ? ઇસ વિષય મેં કહા ગયા કિ—મેરા આત્મા ઔપપાતિક્ હૈ યા નહીં ? અર્થાત્ ચાર ગતિયાં મેં, એક જન્મ સે દૂસરે જન્મ મેં ગમન કરતા હૈ યા વર્તમાન જન્મ મેં કર્મોં કા ક્ષય હોને સે ભાવી જન્મ કે સમ્બન્ધ સે રહિત હૈ ?, યે દોનો જ્ઞાન વર્તમાન જન્મસમ્બન્ધી હૈ ।

अथवा—उपपातका अर्थ है—गर्भजन्म और संमूर्च्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार का जन्म । वह देवों और नारकों का होता है । कहा भी है—

ટીકાર્થ—આગળ કહેવા પ્રમાણે કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને પોતાના વિષયમાં વર્તમાન, ભૂતકાલ, અને ભવિષ્યકાલના જન્મ સંબંધી જ્ઞાન હોતું નથી. તેને કયા પ્રકારનું જ્ઞાન નથી હોતું તે વિષયમાં કહે છે કે:—મારો આત્મા ઔપપાતિક્ છે કે નહિ ? અર્થાત્ ચાર ગતિઓમાં એક જન્મથી બીજા જન્મમાં ગમન કરે છે, અથવા વર્તમાન જન્મમાં કર્મોનો ક્ષય થવાથી ભાવી જન્મના સંબંધથી રહિત છે ? તે બંને જ્ઞાન વર્તમાનજન્મસંબંધી છે.

अथवा उपपातनो अर्थ है—गर्भजन्म અને સંમૂર્છન જન્મથી વિલક્ષણ એક ત્રીજા પ્રકારનો જન્મ છે, તે દેવો અને નારકીજીવોને થાય છે. કહ્યું છે કે:—

“दोण्हं उववाए पण्णत्ते तंजहा-देवाणां चैव णेरइयाणं चैव”  
इति । (स्थानाङ्ग० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोरुपपातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-देवानां चैव नैरयिकाणां चैव । इति च्छाया ।  
उपपातादागतः औपपातिकः । देवभवाद् नरकभवाद्वा ममायमात्मा  
समागतोऽस्तीत्यर्थः । नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अत्र-नञर्थस्यौपपाति-  
केऽन्वयः । ममात्मा-अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः । समूर्च्छनभवाद् गर्भभवाद् वा  
ममात्मा समागतोऽस्तीति भावः । इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह-कोऽहमासम् ? इति ।

अत्र प्रसङ्गवशेन जन्मतत्प्रभेदाश्च निरूप्यन्ते—

“दो प्रकार के जीवों के उपपातजन्म कहा गया है । वह इस प्रकार-देवोंके और  
नारकोंके ।” (स्था० २, उ. ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कहलाता है । तात्पर्य यह हुआ कि-मेरा  
आत्मा देवभव या नरकभव से आया है ? इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता ।

‘णत्थि मे आया उववाइए’ यहां निषेध का औपपातिक के साथ अन्वय है  
अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए । तात्पर्य यह है कि-  
मेरा आत्मा गर्भभव से या समूर्च्छनभव से आया है । इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कहा  
गया है-मैं कौन था ?

प्रसङ्ग पाकर यहाँ जन्म और जन्मों के भेदों का निरूपण करते हैं—

‘अे प्रकारना जेवोने उपपात जन्म कडेवो छे. ते आ प्रमाणे-(१) देवोने  
अने (२) नारकीअोने. (स्था. २ उ. ३)

उपपातथी उत्पन्न थवा वाणा ते औपपातिक कडेवाय छे, तात्पर्य अे थयुं  
के :-मारो आत्मा देवलव अथवा नरकलवथी आव्यो छे ? आ प्रकारनु ज्ञान थतुं नथी.

“णत्थि मे आया उववाइए” अडिं निषेधने औपपातिकनी साथे अन्वय छे.  
अर्थात्-मारो आत्मा औपपातिक नथी. अेवो अर्थ समजवो जेधअे. तात्पर्य अे  
छे के-मारो आत्मा गर्भलवथी अथवा समूर्च्छनलवथी आव्यो छे ? आ अर्थनी  
स्पष्टता करवाने माटे कडेल छे, के-“हुं कोणु डतो ?”

प्रसङ्ग प्राप्त थवाथी अडिं जन्म अने जन्मना लेदोनुं निरूपणु करे छे-

पूर्वभवसम्बन्धि - स्थूलशरीरपरित्यागानन्तरमन्तरालगत्या तैजस-  
कर्मणशरीरमात्रेण सहागतस्य जीवस्य नवीनभवयोग्यस्थूलशरीरार्थं प्रथमं  
योग्यपुद्गलानां ग्रहणं जन्म । तच्च त्रिविधं-संमूर्च्छन-गर्भो-पपातभेदात् ।

### (१) संमूर्च्छनजन्म-

मातापित्रोः सम्बन्धं विनैवोत्पत्तिस्थानावस्थितानामौदारिकपुद्गलानां  
बाह्यानामाध्यात्मिकानां वा स्वशरीररूपेण जीवकर्तृकं परिणतिकरणं संमूर्च्छनम् ।  
बाह्यपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा-काष्ठत्वकूपकफलादिपूतपद्यमानाः कीटादयो  
जन्तवः काष्ठफलवर्तिनो बाह्यपुद्गलान् स्वशरीररूपेण परिणमयन्त उत्पद्यन्ते ।

पूर्वभवसम्बन्धी स्थूल शरीर का त्याग करने के अनन्तर विग्रहगतिसे तैजस  
और कर्मण शरीर के साथ आया हुआ जीव नवीन भव के योग्य स्थूल शरीर के लिए  
सर्व प्रथम योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वही जन्म कहलाता है ।

जन्म तीन प्रकारका है-संमूर्च्छन, गर्भ, और उपपात ।

### (१) संमूर्च्छनजन्म—

माता-पिता के सम्बन्ध विना ही, उत्पत्तिस्थान में रहे हुए बाह्य या आध्यात्मिक  
औदारिक पुद्गलोंका अपने शरीररूप से जीव द्वारा परिणत कर लेना संमूर्च्छन जन्म कहलाता  
है । काठ, त्वचा और पके फल आदि में उत्पन्न होने वाले कीड़े वगैरह जन्तु काठ या  
फल आदि के बाह्य पुद्गलों को अपने शरीर के रूप में परिणत कर लेते हैं । यह बाह्य  
पुद्गलनिमित्तक जन्म है,

पूर्वभवसंबन्धी स्थूल शरीरको त्याग करीने पछी विग्रहगतिथी तैजस अने कर्मण  
शरीरनी साथे आवेलेो छव नवा लवने योग्य स्थूल शरीर माटे सर्वप्रथम योग्य  
पुद्गलोने ग्रहण करे छे, ते जन्म कहेवाय छे. जन्म त्रण प्रकारना छे-  
(१) संमूर्च्छन (२) गर्भ, अने (३) उपपात.

### (१) संमूर्च्छनजन्म—

माता-पिताना संबन्ध विना, उत्पत्तिस्थानमां रहेला गडारना अथवा  
आध्यात्मिक औदारिक पुद्गलोने, पिताना शरीररूपथी छवद्वारा परिणत करी लेवुं  
ते संमूर्च्छन जन्म कहेवाय छे. काष्ठ त्वचा (छाल) अने इण आदिमां उत्पन्न थवा  
वाणा कीड वगैरे जन्तु काष्ठ अथवा इण आदिमां गडारना पुद्गलोने पिताना  
शरीरना रूपमां परिणत करी ले छे. ते गडारनां पुद्गल निमित्तक जन्म छे.

आध्यात्मिकपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा — जीवितश्वशृगालादीनां शरीरेषु जायमानाः कीटादयस्तदीयशरीरान्तर्गतपुद्गलान् स्वशरीरतया परिणमयन्तो जायन्ते । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति—द्वित्रिचतुरिन्द्रिय—गर्भजव्यतिरिक्त—पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्—मनुष्याणां संमूर्च्छनजन्म भवति ।

### (२) गर्भजन्म—

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुकशुक्रशोणितपुद्गलानां स्वशरीररूपेण परिणतिकरणं मातृभुक्ताहाररसपरिपुष्टिसापेक्षं च गर्भजन्म । जरायुजानामण्डजानां पोतजानां च गर्भजन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुजाः ।

जीवित कुत्ते और शृगाल आदि के शरीरो में उत्पन्न होने वाले कीड़े आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गलो को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं, वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म कहलाता है, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और गर्भज के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो और मनुष्यो का जन्म संमूर्च्छन होता है ।

### (२) गर्भजन्म—

उत्पत्तिस्थान में स्थित आगन्तुक रज—वीर्य के पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करना, और माता द्वारा भोगे हुए आहार के रस से पोषण की अपेक्षा रखनेवाला गर्भजन्म होता है । जरायुज, अण्डज और पोतज जीवों का जन्म गर्भज होता है, गर्भ को लपेट रखनेवाली चमड़े की थैली जरायु कहलाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

जन्म कुत्ता अने शियाण आदिनां शरीरोमां उत्पन्न थवा वाणा कीडा आदि तेनां शरीरनी अंदरनां पुद्गलोने पोतानां शरीररूपमां परिणत करे छे ते आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म छे. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने गर्भज सिवाय, पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्चो अने मनुष्योनां जन्म संमूर्च्छन होय छे.

### (२) गर्भजन्म—

उत्पत्तिस्थानमां स्थित, आगन्तुक रज—वीर्यनां पुद्गलोने पोतानां शरीर रूपमां परिणत करवुं, अने माताये करेला आहारना रसथी पोषणनी अपेक्षा राथवा वाणा ते गर्भजन्म कहेवाय छे. जरायुज, अण्डज अने पोतज जिवानुं जन्म गर्भज होय छे. गर्भने लपेटरी राथनारी आमडानी थैली जरायु कहेवाय छे. तेमां उत्पन्न थवा वाणा जिव जरायुज कहेवाय छे. मनुष्य, गाय, बैस, गधरी.



तत्र - मनुष्य - गो - महिष्य - जा - ऽविका - ऽश्व - खरो - षू - मृग - चमर - वराह -  
 गवय - सिंह - व्याघ्र - क्ष - द्वीपि - श्व - शृगाल - मार्जार - दयो जरायुजाः । सर्प - गोधा -  
 कृकलास - गृहगोधिका - ( पल्ली ) - मत्स्य - कूर्म - नक्र - शिशुमारादयः, पक्षिषु यथा -  
 लोमपक्षाः, हंस - चाप - शुक - गृध्र - ज्येन - पारावत - काक - मयूर - मण्डू - वकादयश्चा -  
 षड्जाः । पोता - ज्जाता इति पोतजाः शुद्धप्रसवाः, न तु जरायुजवचर्मा -  
 दिवेष्टिता इति यावत्, यथा - शलुक - हस्ति - श्वाविल्लापक - शश - शारिका - नकुल -  
 मूषिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जलूका - वल्गुलि - भारण्डपक्षि - विरालादयश्च -  
 पोतजाः ।

जीव जरायुज कहलाते है । मनुष्य. गौ, भैंस, बकरी, भेष, घोडा, गधा, अंट, मृग, चमर  
 शूकर, रोझ. सिंह, बाघ, रीछ, द्वीपि, कुत्ता, सियार, विलाव आदि जरायुज है । सर्प,  
 गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कछुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों में लोमपक्षी,  
 हंस. चाप, शुक, गृध्र, बाज, कबूतर, कौवा, मोर, मण्डू ( एक जातका पक्षी ), वगुला आदि  
 अण्डज है । जो जरायुज की माँति चमडे से लिपटे हुए उत्पन्न न हो, वे पोतज कहलाते है,  
 जैसे—सेही, हाथी. श्वाविल्लापक. गजक, शारिका, नकुल, मूषिक आदि । पक्षियों में चर्मपक्षी,  
 जलूका ( जौंक ). वल्गुली, भारण्डपक्षी विराल आदि पोतज है ।

घेरा, घोडा, गधेडा, अंट, मृगला, चमर ( डिमालयमां यती अेक गाय विशेष )  
 भूड, राज, सिंह, बाघ, रींछ, छीपला, कुतरा, शियाण, षिलाडां, वगेरे जरायुज  
 छे. सर्प घोयरां, कण्मलां, ढेढगरोडी, मच्छ, कायणा, नक ( भगर ) शिशुमार ( अेक  
 प्रकारनुं जलचर प्राणी ) आदि तथा पक्षियोंमां लोमपक्षी, हंस, चाप ( अेक  
 नतनुं लीली पांजोवाणुं टाणरना नेवुं पंणी ) शुक - ( पोपट ), गीध, बाज, कबूतर,  
 बागडा, मोर, मंडू ( अेक पक्षी ) वगला वगेरे. अंडज छे जे जरायुज प्रभाषे  
 आभरीधी विटअेलां उत्पन्न न घाय ते पोतज ठडेवाय छे. जेभके—सेही—( साहुडी )  
 दाशी, श्वविटलापक, गजक, शारिका, नकुल—नोणीओ, मूषिक—उंहर वगेरे पक्षीओमां  
 चर्मपक्ष—( टंवाडां वगन्नां आभडानी पांजोवाणा ) जलूका ( जणो ) वल्गुली  
 ( वटवांगण ) वारंड—पक्षी. विराल आदि पोतज छे.

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथमं स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातजन्म । यथा - देवानां नारकाणां च । तत्र देवसमुद्भावा यथा-प्रच्छदपटस्योपरिष्ठाद् देवदूष्यस्याधस्ताद् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा-नरकस्थितातिसंकुटमुख-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“ अहं कः-चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पहले-पहल अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात-जन्म कहलाता है, देव और नारकों को यह जन्म होता है । देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य वस्त्रके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है । नारकों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-नरकवर्ती अत्यन्त संकुट ( सकडे ) मुखवाली कुम्भियों में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गलों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारकी जीव उत्पन्न होता है ।

तथा—“ मैं कौन था ? चार गतियों में से पूर्वभव में मैं नारक था, तिर्यञ्च था,

(३) उपपातजन्म—

उपपात क्षेत्रमां प्राप्तिमात्र जेमां निमित्त छे. जेवा उत्पत्तिस्थानमां स्थित वैक्रिय पुद्गलाने पडेलां-पडेलां पोताना शरीररूपमां परिष्णुत करवुं ते उपपातजन्म कडेवाय छे. देव जेने नारकीजिवेने आ जन्म डेवाय छे.

देवनी उत्पत्ति आ प्रभाषे थाय छे:—प्रच्छदपट-उत्तरीय वस्त्रना उपर जेने देवदूष्य वस्त्रनी नीचे, जेटले के जेनेनी वस्त्रमां वर्तमान पुद्गलाने वैक्रियशरीरना रूपमां ग्रहणु करता थका देव उत्पन्न थाय छे. नारकीजेनी उत्पत्ति आ प्रभाषे छे के:—नरकवर्ती अत्यन्त सांकडा मुभवाणी कुम्भियांमां स्थित वैक्रिय शरीरनां पुद्गलाने वैक्रिय शरीरना रूपमां ग्रहणु करता थका नारकी जिव उत्पन्न थाय छे.

तथा—“हुं केषु हुतो ? चार गतिजोमांथी पूर्वभवमां हुं नारकी हुतो, तिर्यञ्च

वा देवो वा आसम् ?” इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा—“इतः=अस्माल्लोकात्  
च्युतः=वियुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतु  
र्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि” इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं  
च न भवतीत्यर्थः । भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियतांचित् संज्ञिनाम्,  
असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का वार्ता तेषामिति भावः  
॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, संप्रति तज्ज्ञानं यथा  
भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलम् ।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा  
मनुष्य था या देव था ?” इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और “इस भव से च्युत होकर  
अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?” इस प्रकार का आगामी जन्म  
सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता । कितने ही संज्ञियों को भी भावदिशा—विषयक ज्ञान  
नहीं होता । असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

संसारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया  
जाचुका, अब यह कथन किया जाता है कि—वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?—

—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलार्थ—सहसम्मति से (परोपदेश के बिना ही सहज ज्ञानसे) पर  
का वागणा (स्वप्तीकरण) से, दूसरों के समीप से सुनकर जाने कि मैं पूर्व दिशा  
हुतो, मनुष्य हुतो अथवा देव हुतो ?” आ प्रभाणे आगला जन्मनी स्मृति अने  
“आ लवथी नीटणीने आगला हुवेना जन्ममां आर गतिमांथी हुं इध गतिमां  
जडंश. अथवा हुं इध गति पाभीश ?” आ प्रभाणे आगामी—हुवे पछी थवावाणा  
जन्म सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान थतुं नथी; डेटलाक संजीओने (संज्ञीओवेने)  
पणु भावदिशा—विषयतुं ज्ञान थतुं नथी. असंज्ञी ओवेने दिशाओ सम्बन्धीतुं ज्ञान  
थतुं न थी. ॥३॥

संसारी ओवेने पातानी गति अने आगति विषेनुं ज्ञान नथी थतुं, ते  
अतावी गया छीओ हुवे ते डडेवामां आवे छे डेः—ते ज्ञान डेवी रीते थडं शडे छे ?—  
‘से जं पुण’ इत्यादि.

मूलार्थ—सहसम्मतिथी, (गीतना उपदेश विना पणु सहज ज्ञानथी), गीतनी  
नापरपुर्णा (स्वप्तीकरणथी). गीतनी पासेथी आंगणीने लले डे हुं

सोचा, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसि णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा संचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं ॥ सू० ४ ॥

( छाया )

अथ यत् पुनर्जानीयात्-सहसंमत्या, परव्याकरणेन, अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि । एवमेकेषां ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, योऽस्या दिशाया अनुदिशाया वा अनुसंचरति, सर्वस्या दिशायाः सर्वस्या अनुदिशाया य आगतः अनुसंचरति सोऽहम् ॥ सू० ४ ॥

‘से जं पुण’ इति । ‘से’ इत्यव्ययं मागधीभाषायामथशब्दार्थकम् । ‘अथ’ इति, अनेन ‘नो सन्ना भवइ’ इति द्रव्यदिग्ज्ञानाभावं ‘नो णायं भवइ’ इति भावदिग्ज्ञानाभावं च प्रदर्श्य तज्ज्ञानप्रारम्भ इति द्योत्यते ।

से आया हूँ ( यावत् ) अन्यतर दिशा से अथवा विदिशा से मैं आया हूँ । इस प्रकार कितनेक जीवों को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (जन्म लेने वाला) है; जो इस दिशा से अथवा अनुदिशा से संचार करता है, सभी दिशाओं से, सभी अनुदिशाओं से आया हुआ जो आत्मा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ । ( सू० ४ )

टीकार्थ-मागधी भाषा में ‘से’ अव्यय ‘अथ’ शब्द के अर्थ में है । यहाँ ‘अथ’ शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-पहले के सूत्रों में ‘नो सन्ना भवइ’ इत्यादि कहकर द्रव्यदिशा के ज्ञानका निषेध करके, और ‘नो णायं भवइ’ इत्यादि कह कर भावदिशासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके अब इस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रकार प्रदर्शित करते हैं-

पूर्व दिशाथी आण्ये छुं, यावत् णीण दिशाओथी अथवा विदिशाओथी हुं आण्ये छुं, आ प्रमाणे डेटलाक णवोने ज्ञान थाय छे डे-मारो आत्मा औपपातिक ( जन्म लेवावाणे ) छे; ने आ दिशाथी अथवा अनुदिशाथी संचार करे छे सर्व दिशाओथी, सर्व अनुदिशाओथी, आवेदो ने आत्मा भ्रमण करे छे ते हुं छुं ( सू. ४ )

टीकार्थ-मागधी भाषा में ‘से’ अव्यय ‘अथ,’ शब्दना अर्थ में है । अर्थात् ‘अथ’ शब्दथी से प्रकट कर्युं छे डे-प्रथमना सूत्रों में ‘नो सन्ना भवइ’ इत्यादि कहीने द्रव्यदिशाना ज्ञानने निषेध करीने अने ‘नो णायं भवइ-इत्यादि कहीने भावदिशासंबन्धी ज्ञानने निषेध करीने डेवे ते ज्ञाननी उत्पत्तिने प्रकार प्रदर्शित करे छे-

## टीका—

यत्=यदि पुनर्जानीयात् स्वस्वगत्यागत्यादिकं कश्चित्, तत् त्रिविधेन कारणेन, तदाह—सहसंमत्येत्यादि । आत्मना सह वर्तते या सम्यग्मतिः, सा सहसंमतिः, परोदेशमन्तरेण समुत्पन्ना जातिस्मरणावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानरूपा, तथा सहसंमत्या । तत्र जातिस्मरणवान्नियमतः संख्यातभवान् जानाति, अवधिज्ञानी संख्यातभवानसंख्यातभवान् वेत्ति, तथैव मनःपर्ययज्ञानी च । केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् भवान् विजानाति । जातिस्मरणज्ञानवानवान्तरे यद्यसंज्ञिभवं न कुर्यात्, तर्हि स्वकीयसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवस्योत्कृष्टतो नवशतभवान् विज्ञातुं शक्नुयात् । जातिस्मरणेन स्वकीयपूर्वभवं विज्ञातुर्दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अगर कोई अपनी-अपनी गति और आगति को जाने तो तीन प्रकार के कारण से जान सकता है, उसी को कहते हैं—सहसंमति आदि से, आत्मा के साथ रहने वाली सम्यग्मति कहलाती है, अर्थात् परोपदेश के विना ही उत्पन्न होनेवाली जातिस्मरण, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान रूप मति सहसंमति कहलाती है, उनमें जाति स्मरणवाला नियम से संख्यात भवोंको जानता है, अवधिज्ञानी संख्यात या असंख्यात भवों को जानता है, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी भी जानता है, किन्तु केवलज्ञानी नियम से अनन्त भवों को जानता है । जातिस्मरण-ज्ञानवाला बीच में यदि असंज्ञी का भव न करे तो अपने संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट नौ सौ भवों को जान सकता है । जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जानने वाले का दृष्टान्त प्रदर्शित किया जाता है—

अथवा डोई पोतपोतानी गति अने आगतिने ज्ञाने तो त्रय प्रकारना कारण्थी ज्ञानी शक्ये छे, तेने कहे छे—सहसंमति आदिथी, आत्मानी साथे रहेवा वाणी सम्यग् मति-बुद्धि अर्थात् परोपदेश विनाज उत्पन्न थवा वाणी जतिस्मरण, अवधि, मनःपर्यय, अने केवल-ज्ञानरूप मति ते सहसंमति कहेवाय छे. जतिस्मरण वाणी नियमथी संख्यात लवोने ज्ञाने छे. अवधिज्ञानी संख्यात अथवा असंख्यात लवोने ज्ञाने छे. अने प्रमाणे मनःपर्ययज्ञानी पणु ज्ञाने छे. परंतु केवलज्ञानी नियमथी अनन्त लवोने ज्ञाने छे. जतिस्मरण ज्ञानवाणी एव वच्यमां अने असंज्ञीने लव न करे तो पोताना संज्ञी पञ्चेन्द्रियना उत्कृष्ट नवसौ (६००) लवोने ज्ञानी शक्ये छे. जतिस्मरण्थी पोताना पूर्वलवने ज्ञानानु द्रष्टात गताये छे—

सुग्रीवनगरे बलभद्रनामा नृप आसीत् । तस्याग्रमहिषी मृगानाम्नी बभूव । बलभद्रनृपस्य तस्यां पुत्रो जातः । स च मातापितृभ्यां बलश्री-नाम लब्ध्वाऽपि लोके मृगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव । अथ मातापित्रोः परमप्रियः कृतयौवराज्याभिषेको मुदितचित्तो मृगापुत्रः प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः सह क्रीडतिस्म ।

स चैवं विलसन् मणिरत्नराजितकुट्टिमतले सर्वोपरिवर्तिनि प्रासाददेशे समुपविष्टः सकुतूहलं चतुष्क-त्रिक-चत्वर-मार्गान् विलोकमानः पथि शीलाढ्यं गुणसागरं तपोनियमसंयमघरं संयतमनिमिषदृशाऽद्राक्षीत् । तमवलोक्य शुभाध्य-

सुग्रीव नगर में बलभद्र नामक राजा था । उसकी पटरानी का नाम मृगा था । इस मृगारानी से बलभद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई । माता-पिताने उसका नाम बलश्री रक्खा, किन्तु वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ, वह माता-पिता का परम प्रिय था । उसका युवराज पद पर अभिषेक किया गया । वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग ( विलासी एक देवकी जाति ) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था ।

एक वार मृगापुत्र मणियों और रत्नों से सुशोभित फर्शवाले महल के सब से ऊपर के मंजिल पर बैठा था । वह कौतूहल के साथ नगर के चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गों का अवलोकन कर रहा था । तब उसे मार्ग में शील से विभूषित गुणों के सागर तप, नियम और संयम धारण करने वाले एक मुनि दृष्टिगोचर हुए । उसने टकटकी लगाकर

सुग्रीव नगरमां बलभद्र नामनो राज उतो. तेनी पटराणीनुं नाम-मृगा उतुं, ते मृगा राणी थकी बलभद्रने पुत्रनी प्राप्ति थछ, माता-पिताञ्चे तेनु नाम बलश्री राण्युं, परंतु ते लोकने विषे मृगापुत्र नामथी प्रसिद्ध थयो. ते माता-पिताने परमप्रिय उतो, तेनो युवराज पद पर अबिषेक कर्यो. पछी ते प्रसन्नचित्त थधने दोगुन्दुग ( विलासी ञ्के देवनी जाति ) देव समान पोताना भडेलमां क्रीडा करतो उतो.

एक वार मृगापुत्र मणियों अने रत्नों-सुशोभित फर्श-सुंदर तणियावाणो भडेलनो सौथी उपरनो भउ उतो, तेना उपर ञ्के उतो. ते कुतूहलपूर्वक नगरना चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गोनुं अवलोकन करी रह्यो उतो. ते वजते ञ्के मार्गमां शीलथी विलूषित, गुणोना सागर, तप, नियम, संयम धारण करवावाणा ञ्के मुनि दृष्टिगोचर

वसायेन मृगापुत्रो मूर्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप । 'पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुखं लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः' इति । अनेन जाति-स्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म ।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता संसारावस्थायां पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः । मनःपर्यय-केवलज्ञानयोस्तु दृष्टान्तौ सुप्रतीतौ ।

तथा—परव्याकरणेन-परस्तीर्थङ्करस्तस्य व्याकरणं यथावस्थितार्थस्य—

उनका ओर देखा । उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया । उससे मात्तम हुआ कि—' पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पांचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मैं इस राजकुल में उत्पन्न हुआ हूँ ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया ।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने संसार-अवस्थामें अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था । मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं ।

तथा—परके व्याकरण से भी गति-आगति का ज्ञान होता है । पर का अर्थ है—तीर्थकर । उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए ।

यथा, ते वभते मृगापुत्र ओक नजरथी तेमनी सामे ज्ञेयुं, अने तेने जेधने मृगापुत्रने मूर्छा आवी गध अने जातिस्मरणे ज्ञान उत्पन्न थयुं, तेनाथी मात्तम पडयुं हे—' हुं पूर्व जन्ममा दीक्षा धारण करीने, पांच महाव्रतानु पालन करी, पछी स्वर्गना सुखे भोगवीने आ राजकुलमां उत्पन्न थये छु ' आ प्रमाणे जातिस्मरणे यथाथी ते करीने आत्मकल्याणमां प्रवृत्त धरि गये।

अवधिज्ञानी मल्लीनाथ भगवाने संसार-अवस्थामां पोंताना पूर्व जन्मने वृत्तान्त जेठ लीधे छेने। मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञानना द्रष्टांत तो प्रसिद्ध न छे।

तथा—परना व्याकरणेधी पण गति-आगतिनुं ज्ञान थाय छे। परने अर्थ छे—तीर्थ करे। तेनु व्याकरणे-अर्थात् पदार्थनुं स्वरूप यथार्थरूपधी जण्णी-समझने छेवुं, अथवा परव्याकरणे अर्थ-तीर्थ करेना प्रवचनरूप आगम समझनुं जेठ छे।

साक्षात्कारेण सम्बोध्य कथनम् , तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन ।  
परव्याकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देशनया मेघकुमारादयो जातिस्मरणं  
प्राप्तवन्तः ।

तथा—अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, श्रुत्वा स्वगत्या-  
गत्यादिबोधकतद्वचनश्रवणेन । तृतीयोदाहरणं यथा—षड् मित्रभूपाश्छद्मस्थावस्थस्य  
मल्लीनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमवापुः ।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति—  
तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिशाया  
अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि—द्रव्यदिशाज्ञानं, तथा—

परव्याकरणका उदाहरण जैसे—साक्षात् भगवान् की देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण  
ज्ञान प्राप्त किया था ।

तथा—दूसरों से सुनकर भी गति अगति का ज्ञान होता है । तात्पर्य यह है  
कि—अपनी गति एवं आगति समझाने वाले दूसरे के बचनों से भी जातिस्मरण हो जाता  
है । जैसे—छह मित्र—राजाओंने छद्मस्थ—अवस्था वाले भगवान् मल्लीनाथ के वचनों से  
जातिस्मरण प्राप्त किया था ।

आत्मा के विषय में गति—आगति आदि का ज्ञान जिस प्रकार होता है,  
उसे दिखलाते हैं—'मै पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा  
अनुदिशा से मै आया हूँ' इस कथन से अपने गमन तक की द्रव्य—दिशा का ज्ञान  
सूचित किया है । तथा 'मेरा आत्मा औपपातिक' है यहाँ से लेकर 'भ्रमण करता है,  
परव्याकरणु उदाहरणु, जेमडे—साक्षात् भगवाननी देशनाथी मेघकुमार आदिये  
जातिस्मरणु ज्ञान प्राप्त कथुं' इतुं.

तथा—भील पासैथी सांलणीने पणु गति—आगतितुं ज्ञान थाय छे डेः—  
पोतानी गति अने आगति समजववावाणा भीलना वचनोथी पणु जातिस्मरणु ज्ञान  
थय जय छे. जेम—छ मित्र—रानज्योथे छद्मस्थ—अवस्था वाणा भगवान् मल्लीनाथना  
वचनोथी जाति स्मरणु प्राप्त कथुं' इतुं.

आत्माना विषयमां गति—आगतितुं ज्ञान जे प्रमाणे डोय छे तेने देखाडे  
छे—'हु पूर्व दिशाथी आव्यो छुं, (यावत्) अन्यतर दिशाथी अथता अनुदिशाथी हुं  
आव्यो छुं' आ कथनथी पोताना गमन सुधीनी द्रव्यदिशानुं ज्ञान सूचित कथुं' छे,



‘अस्ति मे आत्मा औपपातिकः’ इत्यारभ्य ‘अनुसंचरित सोऽहम्’ इत्यन्तेन द्रव्य-  
भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम् ।

सोऽहमस्मी’त्येनेनेदमावेदितं भवति । त्रिविधान्यतमेन कारणेन ज्ञानं  
प्राप्तो जीवः स्वात्मस्वरूपमेवं विशानाति—यद्यमात्मा सकलकर्मक्षयावधि चतुर्गति-  
भ्रमणकर्ता पुनरपि कस्याश्चिदेकस्यां दिशायामनुदिशायां वा गमिष्यति नास्त्यस्य  
गतिविरामस्तावदिति । एवमयमात्मा सर्वस्या दिशया अनुदिशाया आगतःपुनरपि  
स्वकर्मवशगः सन् सर्वस्यां दिशायामनुदिशायां वा परिभ्रमिष्यति । न कदाचिदस्य  
विश्रान्तिलेशोऽपि तादृशोऽहमस्मीति ॥ सू० ४ ॥

वह मैं हूँ’ यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान् ने प्रदर्शित  
क्रिया है ।

‘वही मैं हूँ’ इस कथन से यह प्रकट होता है कि—तीन में से किसी  
एक कारण के द्वारा ज्ञान को प्राप्त जीव इस रूप में अपना आत्मस्वरूप जानता है,  
कि—यह आत्मा जब तक समस्त कर्मों का क्षय नहीं कर देता तब तक चारों गतियों  
में भ्रमण करता है और फिर किसी एक दिशा में या अनुदिशामें गमन करेगा  
परन्तु कर्मों का क्षय जब तक न हो तब तक उसकी गति का अन्त नहीं आता है । इस  
प्रकार यह आत्मा सब दिशाओं से और अनुदिशाओं से आया है और कर्मों के अधीन  
हो कर फिर सब दिशाओं अथवा विदिशाओं में परिभ्रमण करेगा, इसे लेशमात्र भी कभी  
विश्राम नहीं मिल सकता, ऐसा मैं हूँ ॥ सू० ४ ॥

तथा—‘भारो आत्मा औपपातिकः’ त्यांथी लघने ‘भ्रमणु करे छे’ ते हुं छुं,  
त्यां सुधी द्रव्यदिशा अने भावदिशा, अने अन्तेनुं ज्ञान भगवाने प्रदर्शित कर्युं छे.  
“ने हुं छुं” आ कथनथी अेम प्रकट थाय छे के अे त्रणुमांथी केरि कारण द्वारा  
जानने पावेवे छेव आ रूपमां पोताना आत्मस्वरूपने जणु छे के आ आत्मा  
त्यां सुधी समस्त कर्मोने क्षय करतो नथी, त्यां सुधी आरथ गतिओमां भ्रमण  
करतो छे छे. अने इरी केरि दिशाभा अथवा तो अनुदिशाभां गमन करथे परंतु  
त्यां सुधी कर्मोने क्षय नहि होय त्यां सुधी तेनी गतिने अंत आवतो नथी. अे  
प्रमाणे आ आत्मा भवं दिशाओर्या अने अनुदिशाओर्या आव्ये छे अने कर्मोने  
आधीन बंधने इरीथी भवं दिशाओ अथवा विदिशाओमां परिभ्रमणु करथे. तेने  
लेशमात्र पणु विश्राम भवी शकतो नथी अेयो हुं छुं, (सू० ४)

आत्मवादिप्रकरणम्—

यस्तु द्रव्यदिक्षु भावदिक्षु चात्मनो गत्यागती अवगत्य स्वमात्मानमेवं विजानाति—‘अयमात्मा असिद्धगतिप्राप्तिचतुर्गतिषु घूर्णमानो जन्मान्तरसंक्रान्त-त्रिकालवर्ती शरीराद् भिन्नो नित्यपरिणामी ज्ञानसम्यक्त्वचारित्रसुखवीर्यादिगुणवा-निति, स एवात्मवादीत्याह—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोकावादी, कर्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकवादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरण—

जो जीव द्रव्य दिशाओं में और भावदिशाओं में आत्मा का गमन—आगम जान कर अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि—यह आत्मा सिद्धगति की प्राप्तिरहित चार गतियों में भ्रमण करता हुआ एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करता है, त्रिकालवर्ती है, शरीर से भिन्न है, नित्यपरिणामी है, और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य आदि गुणों वाला है, वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है :—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति । वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है, क्रियावादी है ( सू० ५ )

आत्मवादीप्रकरण

जे लुव द्रव्यदिशाओमां अने भावदिशाओमां आत्मानुं जपुं—आवपुं जाणुनि पोताना आत्माना विषयमां ओ प्रमाणे जाणुं छे के:—आ आत्मा सिद्धगतिनी प्राप्ति विना भीलु चार गतिओमां भ्रमणुं करतो करतो ओक जन्मथी जीने जन्म थडणुं करे छे, त्रिकालवर्ती छे शरीरथी भिन्न छे, नित्यपरिणामी छे अने सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य आदि गुणो वाणो छे, ते आत्मवादी छे. हुवे आ विषयनुं निरूपणुं करवामां आवे छे—‘से आयावादी’ इत्यादि.

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति. ते आत्मवादी छे, लोकवादी छे, कर्मवादी छे अने क्रियावादी छे. ( सू. ५ )

## टीका—

‘से आयावादी’ इति । सः=इत्थमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी= आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनि, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववान् । अयं भावः—आत्मस्वरूपं वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुसृत्यात्मानं विजानातीति ।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम् । तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्बुधिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानप्रसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस ( पूर्वोक्त ) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है, अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है । तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले संसार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है ।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है । उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीकी निश्चय—व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण है—प्रवृत्ति नहीं होती, अतः आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

टीकार्थ—जे आ (पूर्वोक्त) प्रकारथी आत्माने ज्ञाते छे, ते आत्मवादी छे, अर्थात्—आत्माना स्वरूपने कडेवा वाणा छे, तात्पर्य अे छे केः—आत्मानुं स्वरूप कडेवा वाणा संसारमां धरु छे परंतु वास्तवमां साया आत्मवादी ते छे के जे पूर्वोक्त प्रकारथी आत्माना ज्ञाता छे, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारे आत्माने ज्ञाते छे.

आत्माना स्वरूपने समज्या विना अंधनुं स्वरूप समज्यु अशक्य छे, तेना अलावमां केअने आत्मा उत्कर्ष करवुं इच्छिकर थतुं नथी. अने ते इच्छिना अलावमां केअने निश्चय—व्यवहाररूप ज्ञान अने क्रियामा जे मोक्षनुं कारण छे तेमां प्रवृत्ति थती नथी. ते कारणथी आत्मज्ञानने प्रसंग होवाथी अहि थोडु विवेचन करवामां आवे छे—

आत्मशब्दार्थः—

अतति-नित्यं जानातीति आत्मा । ‘अत सातत्यगमने’ इत्यत्रात-  
धातोर्गत्यर्थकत्वाद्, गत्यर्थानां च ज्ञानार्थकतया स्वीकारादयमर्थो लभ्यते ।  
सिद्धसंसारिभेदेन द्विविधस्यापि जीवस्य सर्वदाऽवबोधसद्भावादात्मनः कस्यां  
चिदवस्थायामुपयोगवियोगो न जायते । कदाचिदप्यवबोधाभावे च जीवत्वमेव  
व्याह्रियेत । अत एव—‘जीवो उवओगलक्खणो’ इत्युक्तम् ( उत्तरा. २८ अ. १० श्लो.)

यद्वा—अतति—सततं गच्छति, निरन्तरं प्राप्नोति स्वकीयान् पर्यायानिति-आत्मा ।

आत्मशब्द का अर्थ—

‘अतति’—इति—आत्मा ‘अर्थात् जो नित्य जानता रहता है वह आत्मा कहलता  
है । ‘अत’ धातु सतत गमन करने के अर्थ में है और गमनार्थक सभी धातु ज्ञानार्थक होते  
है, अतः उपर्युक्त अर्थ किया गया है । क्या सिद्ध और क्या संसारी, दोनों ही प्रकार के  
जीवों में सदैव ज्ञान विद्यमान रहता है, और किसी भी अवस्था में उपयोगका वियोग नहीं  
होता । किसी समय ज्ञान का अभाव हो जाय तो जीव में जीवत्व ही नहीं रहे । इसी कारण  
उत्तराध्ययन सूत्र ( अ. २८ श्लो. १० ) में कहा है :—“ जीवो उवओगलक्खणो ”  
जीव उपयोग लक्षण वाला है ।

अथवा—अतति अर्थात् जो अपने पर्यायों को सतत प्राप्त होता रहता है  
वह आत्मा है ।

आत्मा शब्दनेो अर्थ—

‘अतति’ इति आत्मा अर्थात् जे ज्ञाथुतो रहे छे, ते आत्मा कहेवाय छे.  
‘अत’ धातु सतत गमन करवाना अर्थमां छे. अने गमनार्थक सर्व धातु ज्ञानार्थक  
पणु छे. ( गमन करवुं अेवा अर्थवाणा तमाम धातु ज्ञान अर्थवाणा पणु छे ) अे  
कारणुथी उपर कहेतेो अर्थ कर्यो छे. तो शुं सिद्ध अने संसारी अने  
प्रकारना अेवोमां उमेशां ज्ञान विद्यमान रहे छे अने केअपणु अवस्थामां उपयोगनेो  
वियोग थतो नथी केअ समय ज्ञाननेो अभाव थछ जय तो अेवमां अेवत्व न न  
रहे. अे कारणुथी उत्तराध्ययन सूत्र ( अ. २८ श्लो १० ) मां कहुं छे केः—  
“जीवो उवओगलक्खणो” “ अेव उपयोग लक्षणवाणेो छे.”

अथवा—अतति अर्थात् जे पेताना पर्यायिने सतत प्राप्त थतो रहे छे, ते  
आत्मा छे.

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दप्रयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्मैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम् । प्रवृत्तिनिमित्तं चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते ।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्म-वशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात् ।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा । किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेंगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा ।

समाधान—ऐसा मत कहिए । निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग ही है, अतः आकाश, आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है; क्यों कि संसार-अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था में भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है ।

शंका—आकाश आदि पणु पोत पोताना पर्यायेने निरन्तर प्राप्त थता रहे छे, तो तेने माटे पणु आत्मा शब्दने प्रयोग करवो अनिवार्य थशे. केध सभय तेनामां पर्यायेने अभाव डोय तो ते अपरिणामी ठरशे त्यारे तेनामां वस्तुत्व पणु नहि रहे.

समाधान—अे प्रमाणे न डडे. निरन्तर पोताना पर्यायेने प्राप्त करवुं ते तो आत्म शब्दनी व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र छे, परतु ते प्रवृत्तिनिमित्त नथी; प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग न छे, तेथी आकाश आदिमा आत्म शब्दने प्रयोग थर्ध शकते नथी.

अथवा—निरन्तर गमन करे छे, आ अर्थने पणु विरोध नथी. केमके-संसार अवस्थामां कर्मना आधीन थनीने आत्मा अनेक गतिओमां डुमेशां गमन करतो रहे छे. मुक्त-अवस्थामां पणु भूतकालीन सतत गमन विद्यमान छे.

आत्मनोऽस्तित्वसिद्धिः—

तावत् प्रत्यक्षप्रमाणत एवात्मनः सिद्धिरुच्यते—(१) किमयमात्मा—अस्ति नास्ति वेति संशयादिविज्ञानं स्वस्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण सिद्धम्, स एवात्मा, संशयादिविज्ञानस्यैव तदनन्यत्वेनात्मरूपत्वात् ।

(२) तथा—आत्मानमाश्रित्यैव सुखदुःखादयः स्वस्वशरीर एव प्रत्यक्षेण संवेद्यन्ते ।

(३) यद्वा—कृतवानहं, करोम्यहं, करिष्याम्यहम्, इत्यादिप्रकारेण योऽयम्—अहम्प्रत्ययः, एतस्मादपि प्रत्यक्ष एवायमात्मा । कथमसत्यात्मनि—

आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि—

सर्व प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण से ही आत्मा की सिद्धि कहते हैं:—

(१) आत्मा है या नहीं है, इस प्रकार का संशय आदि ज्ञान अपनी अपनी आत्मा में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है । वही ज्ञान आत्मा है, अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्मासे अभिन्न होने के कारण आत्मस्वरूप ही है ।

(२) आत्मा को आश्रित करके ही दुःख—सुख आदि अपने शरीर में प्रत्यक्ष से जाने जाते हैं ।

(३) अथवा—मैं कर चुका, मैं करता हूँ, मैं करूँगा, इत्यादि रूप से जो अहम्प्रत्यय होता है उससे भी आत्मा का प्रत्यक्ष होता है । आत्मा न होता तो आत्मा के विषय में अहम्प्रत्यय ( मैं का ज्ञान ) किस प्रकार हो सकता था ? आत्मरूप विषय के

आत्माना अस्तित्वनी सिद्धि—

सौथी प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणथी न आत्मानी सिद्धि कडे छे:—(१) आत्मा छे के नडि, आ प्रकारनु संशय आदि ज्ञान पोत पोताना आत्माना स्वसंवेदन प्रत्यक्षथी सिद्ध छे, ते ज्ञान आत्मा छे. अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्माथी अभिन्न होवना कारणे आत्मस्वरूप न छे.

(२) आत्माना आश्रितपणुथी न दुःख—सुख आदि पोत—पोताना शरीरमां प्रत्यक्ष नणुवामां आवे छे.

(३) अथवा—हुं करी चूक्यो, हुं करूं छुं. हुं करीश, धत्यादिपथी ने अहंप्रत्यय थाय छे, तेथी पणु आत्मानुं प्रत्यक्षपणुं थाय छे. आत्मा न होय तो आत्माना विषयमां अहंप्रत्यय ( हुं पणुनुं ज्ञान ) केवी रीते थर्ध शके ? आत्मरूप

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । बिना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं?' इस प्रकार का संशय करता कौन है? संशय एक प्रकार का ज्ञान-गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमां विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्ध शकती. शरीर न आ ज्ञाननेो विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' (हुं) नेो अर्थ आत्मा नथी अडके शरीर छे, अेम डडेपुं ते' उचित नथी, डेमके नेे अेम डेय ते। मृत शरीरमा अहम्प्रत्यय थर्ध शकशे आत्माने विषय डरवा वाणे। आ-अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामां "हुं छुं डे नथी" आ प्रकारनेो संशय न थते। नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानेो सद्भाव डेवाथी "हुं छुं" आ प्रकारनेो निश्चय न थर्ध शके छे. आत्माना अस्तित्वना विषयमां संशय डरवामा आवे ते। प्रश्न उपस्थित थाय छे डे आ अहम्प्रत्यय डेने थाय छे? डारणु विना ते। तेनी उत्पत्ति थर्ध शकती नथी नेे संशय डरवा वाणे। एव नथी ते। "हुं छुं डे नडि" अे प्रकारनेो संशय डरनार डेणु छे? संशय अेक प्रकारनेो ज्ञान-गुणु छे, अने गुणु गुणीना अभावमां थर्ध शकते। नथी.

न च देहोऽत्र गुणीति वाच्यम्, देहस्य मूर्तत्वाद् जडत्वाच्च ज्ञानस्य चामूर्तत्वाद् बोधरूपत्वाच्च । अहं नाहं वेतिगदतो 'माता मे वन्ध्या' इत्यादिवत् स्ववचनव्याघातः ।

( ४ ) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, स्मृति-जिज्ञासा-चिकीर्षा-जिगमिषा-संशयादिज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-सिद्धत्वात्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षाः स प्रत्यक्षो दृष्टः, यथा घटः, प्रत्यक्षगुणश्चात्मा, तस्मात् प्रत्यक्षः । यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेव प्रत्यक्षः, तथा विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति ।

यहाँ यह कहना ठीक नहीं है कि—'देह गुणी है', क्योंकि देह मूर्त है और जड है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है । मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता और न जड का गुण चेतना हो सकता है । इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने वाले को 'मेरी माता वन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्ववचनवाधा दोष आता है ।

(४) अथवा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि स्मृति, जिज्ञासा, करने की इच्छा, गमन की इच्छा, संशय आदि ज्ञान-जो आत्मा के गुण है-अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्ध है, जिस पदार्थ के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस कारण आत्मा प्रत्यक्ष है । घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट का प्रत्यक्ष होना देखा जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष है ।

અહીં 'દેહ ગુણી છે' એમ કહેવું તે ઠીક નથી, કારણ કે દેહ મૂર્ત છે અને જડ છે. જ્યારે જ્ઞાન અમૂર્ત છે અને ચેતનરૂપ છે. મૂર્ત ગુણીનો અમૂર્ત ગુણ હોઈ શકે નહિ. અને જડનો ગુણ ચેતન થઈ શકે નહિ. આ કારણથી. "હું છું કે નહિ" એ પ્રમાણે કહેવાવાળાને "મારી માતા વંધ્યા છે" એ પ્રમાણે કહેનારના જેવો સ્વવચનબાધા નામનો દોષ આવે છે.

(૪) અથવા-આત્મા ગુણી પ્રત્યક્ષથી જ સિદ્ધ છે, કેમકે-સ્મૃતિ, જિજ્ઞાસા, કરવાની ઇચ્છા, ગમનની ઇચ્છા, સંશય આદિજ્ઞાન વગેરે જે આત્માના ગુણ છે તે પોતાના આત્મામાં પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે જે પદાર્થનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે તે પદાર્થ પણ પ્રત્યક્ષ માનવામાં આવે છે. જેમ-ઘટ, આત્માનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે. તે કારણથી આત્મા પ્રત્યક્ષ છે. ઘટના રૂપ આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી જ ગુણી ઘટનું પ્રત્યક્ષ હોવું જેવામાં આવે છે. તે પ્રમાણે વિજ્ઞાન આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી આત્મા પણ પ્રત્યક્ષ છે.



न चाऽनैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात् । शब्दो हि पुद्गलगुणः ऐन्द्रिय-कत्वाद् रूपादिवदिति ।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम् ? उच्यते—गुणे-भ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते । यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

शङ्का—आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता ।

समाधान—ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है । शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का—गुणों को प्रत्यक्ष मान लें किन्तु गुणी के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है ?

समाधान—गुण और गुणी का कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है । अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता ।

शंका—आपे जे हेतु अहिं आप्ये छे ते अनैकान्तिक छे; केमके आकाशने गुणु शब्द ते तो प्रत्यक्ष थाय छे, परंतु आकाश प्रत्यक्ष थतुं नथी.

समाधान—जे प्रमाणे न कडो, केमके शब्द ते आकाशने गुणु नथी पणु शब्द ते पुद्गलने गुणु छे. केमके ते इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय)ने विषय छे. जे इन्द्रियने विषय होय छे ते पौद्गलिक जे होय छे, जेम-रूप आदि.

शंका—गुणेने प्रत्यक्ष मानी लथजे. परंतु गुणीना प्रत्यक्षपणुमां गुं प्रमाणु छे ?

समाधान—गुणु अने गुणीना कथंचित् तादात्म्य संबंध छे—गुणी, गुणेथी अलिन्न होय छे, अटवे गुणेना प्रत्यक्षपणुथी आत्मा गुणी पणु प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे. अगर जे गुणी, गुणेथी लिन्न होत तो गुणी घट आदि पणु प्रत्यक्ष थर्ष शकत नहिं. केमके मात्र रूपादि गुणेज प्रत्यक्ष होय छे, इपादि गुणेथी लिन्न

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातेऽन्यज्ज्ञातं न भवति, यथा घटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते । गुणाः कदापि द्रव्याद् भिन्नतया सत्तां न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेभ्यो भिन्नतया न सत्तां लभते । अयं गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो भेदसत्त्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः । यथा-अग्निगुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्नः स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात् ।

तथा-यद्यात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नो भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्भेदो न कदाचिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम् ।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन तत्र मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अन्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता । जैसे-घट के जाननेसे पट मालूम नहीं होता । गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता । 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (जलाने का कार्य) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता आ जाती । अत एव द्रव्य और गुण का भेद न कभी था, न है, और न होगा ।

दुर्जनसन्तोषन्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भले ही न हो

घट क्यारेय प्रत्यक्ष नथी थतो. अन्यनु ज्ञान थवाथी अन्यनो षोध थतो नथी, जेभके घटना ज्ञानथी पट मालूम थतो नथी (पटनुं ज्ञान थतुं नथी); गुणु, द्रव्यथी भिन्न कदापि रहू शकतो नथी. 'आ गुणु छे अने आ गुणी छे' जे प्रकारनो लेद नाममात्रनो छे वास्तविक रीते गुणु-गुणीमां लेद नथी. अगर अग्नि गुणी पोताना उष्णतागुणथी अत्यन्त भिन्न थथ जय तो ते दाहकार्य (भाजवानुं कार्य) करवामां असमर्थ थथ जय छे.

थील वात जे छे के-आत्मा जे पोताना ज्ञानगुणथी भिन्न होय तो आत्मामां जडता आवी जय. जेटला माटे द्रव्य अने गुणनो लेद कोष पणु वधते हुतो नहि, छे नहि अने थशे पणु नहि.

दुर्जनसन्तोष न्यायथी तमारा मत प्रमाणे कदाचित् जेम मानी लथजे के आत्मा गुणुथी भिन्न छे, अने ते कारणे आत्मा प्रत्यक्ष लवे न थाय तो पणु

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्वाधमेव । ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत ।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा । प्रयोगश्चैवम्—देहगुणा एव ज्ञानादयः, तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकृशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुषत्वाद् वा, गगनवत् । द्रव्यविरहितो गुणो न भवति ।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती । जिस के ज्ञानादि गुण मौजूद हैं उस गुणीरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ? ।

शङ्का—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अतः इन गुणों का आधार गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है । आत्मा ज्ञानादि गुणों का आश्रयभूत गुणी नहीं है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुबलापन और स्थूलता आदि ।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं हैं, क्यों कि वे अमूर्त हैं और अचाक्षुष ( जो आंखसे नहीं देखता ) हैं, जो अमूर्त और अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते. जैसे आकाश ।

गुण, द्रव्य के बिना रह नहीं सकते अतः ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए । ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एवं अचाक्षुष गुणी है वह देह से सिन्न आत्मा ही है ।

आत्माना अस्तित्वमां क्वैर् प्रकारनी हरकत आवती नथी. जेना ज्ञानादि गुणु डैयात छे, ते गुणीरूप आत्मानो अपलाप—( छती वस्तुने नथी जेभ कडेवुं ते ) केभ करवामा आवे ?.

शंका—देहमां ज ज्ञानादि गुणु देयाय छे, ते कारणथी जे गुणोना—आधार गुणी देह ज छे, जेभ रूपादि गुणोना आधार घट छे आत्मा ज्ञानादि गुणोना आश्रयभूत गुणी नथी. अनुमान आ प्रमाणे छे—ज्ञान आदि देहना गुणु छे, केभके ते देहमा ज उपलब्ध जणाय छे, जेभके गौरापणुं, दुबलापणुं अने स्थूलता—अक्षुषणुं वगेरे.

समाधान—जे प्रमाणे कडेवुं ते योज्य नथी; ज्ञान आदि गुणु ते देहना गुणु नथी, केभके ते अमूर्त छे, अने अचाक्षुष छे. ( जे नेत्रथी देयाता नथी ). जे अमूर्त अने अचाक्षुष होय छे ते देहना गुणु थर्क शकता नथी, जेभ आकाश. गुणु, द्रव्य बिना रही शकता नथी, ते कारणथी ज्ञान आदि गुणोना आधारभूत क्वैर् द्रव्य होवुं नैछये. अटला भाटे ज्ञानादि गुणोने अनुरूप जे अरूपी अने अचाक्षुष गुणी छे, ते देहथी सिन्न आत्मा ज छे.

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुरूपो यो रूपरहितोऽचाक्षुषश्च गुणी स देहाद् भिन्न आत्माऽस्तीति विज्ञेयः ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षबाधितम्, ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्या-नुमानबाधितत्वात् । शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति । तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान्, तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् । यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलब्धमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टः, यथा—पञ्च-वातायनोपलब्धार्थानुस्मर्ता देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिशक्ति-विघातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है, यह अनुमान, प्रत्यक्ष से बाधित है, क्यों कि—प्रत्यक्षप्रमाण से वे देह में ही प्रतीत होते हैं, यह कथन ठीक नहीं है, क्यों कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से बाधित है । अनुमान से यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियो से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जिसके नष्ट हो जाने पर भी, जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है वह उस से भिन्न होता है । जैसे—पांच खिडकियों द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है । इस से भलीभाँति सिद्ध है कि—देह और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है ।

ज्ञानादि गुण देहसंबन्धी नहीं, कारण के ते अनुमान प्रत्यक्षથી बाधित छे, केमके प्रत्यक्ष प्रमाणથી ते देहमां न प्रतीत थाय छे; ते कथन ठीक नहीं. केमके ते प्रत्यक्ष अनुमानથી बाधित छे. अनुमानથી ये सिद्ध छे के ज्ञान आदि गुणानो आधार शरीर अने इन्द्रियोथी केरि लिन्न पदार्थ (आत्मा) न छे. अनुमान आ प्रमाणे छे—ज्ञानादि गुणानो आधार शरीर अने इन्द्रियोथी लिन्न छे, केमके तेना नष्ट थवा छतांय तेना द्वारा न्हेला पदार्थनुं स्मरणे छे. तेना नष्ट थवा पछी पाए, तेना द्वारा न्हेला पदार्थ तेनुं ने स्मरणे करे छे ते तेनाथी लिन्न छे. तेम पांच अडकियो द्वारा तेना वाणा पदार्थोनुं स्मरणे करवा वाणे देवदत्त छे. तेने केरि कारणथी देभवानी शक्ति नष्ट थय न्वा छतांय प्रथम देहेला पदार्थोनुं

ઁવં ચ પ્રત્યક્ષપ્રમાણેનાત્મનોઽસ્તિત્વં નિરૂપિતમ્ ।

અથ જ્ઞાનાદિગુણાનાં સ્વાત્મનિ પ્રત્યક્ષતયા તદનન્યમ્ભૂતઃ સ્વાત્માઽપિ પ્રત્યક્ષો ભવતુ, પરશરીરે તુ કથમાત્મનોઽસ્તિત્વં વિજાનીયાત્ ? ઈતિ, ડચ્યતે—યથા સ્વદેહે પ્રત્યક્ષેણાત્મા વિજ્ઞાયતે, તથા પરદેહેઽપ્યનુમાનતો વિજ્ઞેયઃ ।

( ૧ ) પરશરીરં સાત્મકમ્ ઈષ્ટાનિષ્ટયોઃ પ્રવૃત્તિનિવૃત્તિદર્શનાત્, યત્રેષ્ટા-નિષ્ટયોઃ પ્રવૃત્તિનિવૃત્તી દૃશ્યેતે, તત્ સાત્મકં દૃષ્ટં યથા—સ્વશરીરમ્, તથા યત્

ઈસ પ્રકાર પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ સે આત્મા કા અસ્તિત્વ નિરૂપણ ક્રિયા ગયા ।

### અનુમાન સે આત્મા ક્રી સિદ્ધિ—

શઙ્કા—જ્ઞાન આદિ ગુણો કા અપની આત્મા મેં પ્રત્યક્ષ હોને સે ડન ગુણો સે અભિન અપની આત્મા કો પ્રત્યક્ષ માન લિયા જાય કિન્તુ ઢૂસરે કે શરીર મેં આત્મા કા અસ્તિત્વ કૈસે જાન સકતે હૈ ?

સમાધાન—જૈસે—અપને શરીર મેં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ સે આત્મા પ્રતીત હોતા હૈ, ડસી પ્રકાર ઢૂસરે કે શરીર મેં અનુમાનપ્રમાણ સે આત્મા સમજના ચાહિં ।

### અનુમાન પ્રમાણ ઈસ પ્રકાર હૈ—

( ૧ ) ઢૂસરે કા શરીર સાત્મક ( આત્મા સે યુક્ત ) હૈ, ક્યોં કિ ડસ કી ઈષ્ટ મેં પ્રવૃત્તિ ઔર અનિષ્ટ મેં નિવૃત્તિ દેસ્વી જાતી હૈ । જહાં ઈષ્ટ—અનિષ્ટ મેં પ્રવૃત્તિ ઔર નિવૃત્તિ દેસ્વી જાતી હૈ, વહ સાત્મક હોતા હૈ, જૈસે—અપના શરીર । તથા જો સાત્મક સ્મરણ રહે છે તેથી ધરાધર સિદ્ધ છે કે દેહ અને ઈન્દ્રિય આદિથી લિન્ન આત્મા જ ગુણી છે.

આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્માના અસ્તિત્વનું નિરૂપણ કયું છે.

### અનુમાનથી આત્માની સિદ્ધિ—

શંકા—જ્ઞાન આદિ ગુણો ષોતાના આત્મામાં હોવાથી, તે ગુણોથી અલિન્ન ષોતાના આત્માને તો પ્રત્યક્ષ માની લેવામાં આવે, પરંતુ ધીજ્ઞાના શરીરમાં આત્માનું અસ્તિત્વ કેવી રીતે જાણી શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે ષોતાના શરીરમાં પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્મા પ્રતીત થાય છે તે પ્રમાણે ધીજ્ઞાના શરીરમાં અનુમાનપ્રમાણથી આત્મા સમજવો જોઈએ. અનુમાનપ્રમાણ આ પ્રમાણે છે:—

(૧) ધીજ્ઞાનું શરીર સાત્મક ( આત્માથીયુક્ત ) છે, કેમકે તેની ઈષ્ટમાં પ્રવૃત્તિ અને અનિષ્ટમાં નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે. જ્યાં ઈષ્ટ—અનિષ્ટમાં પ્રવૃત્તિ—નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે તે સાત્મક હોય છે. જેમ ષોતાનું શરીર. તથા જે સાત્મક

सात्मकं न भवति तत्रेष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्ती न भवतः, यथा घट इति । तथा च परशरीरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते तस्मात् तत् सात्मकम् , इति ।

यद्वा—शरीरं सकर्तृकं, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, यत् पुनरकर्तृकं तद् आदिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथा—अभ्रविकारः । यश्च कर्ता शरीरस्य, स आत्मा । मेर्वादावनैकान्तिकत्ववारणायादिमत्त्वविशेषणम् ।

यद्वा—अस्तीन्द्रियाणामधिष्ठाता—आत्मा, तत्रानुमानप्रयोगश्चेत्थम्—

नहीं होता उसमें इष्ट—अनिष्ट की प्रवृत्ति—निवृत्ति भी नहीं होती, जैसे घट । दूसरे के शरीर में भी प्रवृत्ति—निवृत्ति देखी जाती है अतः वह सात्मक है ।

( २ ) शरीर सकर्तृक ( कर्ता से युक्त ) है, क्यों कि वह आदिवाला और नियत आकार वाला है, जैसे घट । जो सकर्तृक नहीं होता वह आदि वाला और नियत आकार वाला नहीं होता, जैसे मेघो का विकार ( बनावट ) । शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है । यहाँ नियत आकार वाले सुमेरु आदि से व्यभिचार ( हेतु हो और साध्य न हो ) निवारण करने के लिए ' आदि वाला ' विशेषण लगाया गया है ।

अथवा इन्द्रियोंका अधिष्ठाता आत्मा है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए :—

( आत्माथीयुक्त ) नहीं, तेमां इष्ट—अनिष्टनी प्रवृत्ति—निवृत्ति पशुथती नहीं, जेमके-घट, भीजना शरीरमां पशु प्रवृत्ति—निवृत्ति जेवामां आवे छे, तेथी ते सात्मक छे.

( २ ) शरीर सकर्तृक ( कर्ताथी युक्त ) छे. जेमके ते आदिवाणुं अने नियत आकार वाणुं छे; जेम घट. जे सकर्तृक नहीं होतां ते आदिवाणां अने नियत आकार वाणां नहीं होतां जेम मेघानो विकार ( बनावट ). शरीरनो जे कर्ता छे ते आत्मा छे. अहिं नियत आकारवाणा सुमेरु आदिथी व्यभिचार ( हेतु होय अने साध्य न होय ) निवारण करवा भाटे ' आदिवाणा ' विशेषण लगाव्युं छे.

अथवा—इन्द्रियोंको अधिष्ठाता आत्मा छे. आ विषयमां अनुमाननो प्रयोग आ प्रमाणे करवो जेधये—

( ३ ) इन्द्रियं साधिष्ठातृकं, करणत्वात् , यथा चक्रचीवरमृत्सूत्रदण्डादयः, अस्ति हि चक्रचीवरादीनामधिष्ठाता कुलालः । यच्च निरधिष्ठातृकं तत् करणमपि न भवति, यथा—आकाशम् , यश्चेन्द्रियाणामधिष्ठाता स आत्मेति ।

( ४ ) यद्वा—इन्द्रियविषयाणामादाता संभवति, इन्द्रियविषया शब्दादय आदातृसहिताः आदानादेयभावसद्भावात् , संदंशकलोहवत् । यथा लोके संदंशकलोहानामयस्कार आदाताऽस्ति । इन्द्रियविषयाणां चादानादेयभावो विद्यते, अतस्तेषामप्यादाताऽस्तीत्यनुमीयते । यत्र तु आदाता नास्ति, तत्रादानादेयभावोऽपि न विद्यते, यथा—आकाशे ।

( ३ ) इन्द्रियों किसी अधिष्ठाता से युक्त है, क्या कि—वे करण है, जैसे चक्र, चीवर, मृत्तिका, सूत और दण्ड आदि । चक्र, चीवर आदि का अधिष्ठाता कुंभार है, जिस का कोई अधिष्ठाता नहीं होता वह करण भी नहीं होता, जैसे—आकाश । इन्द्रियों का जो अधिष्ठाता है, वही आत्मा है ।

( ४ ) अथवा इन्द्रियों के विषय शब्द आदि आदातायुक्त ( ग्रहण करने वाले से युक्त ) है, क्यों कि उन में आदान आदेयभाव मौजूद है, जैसे संडासी और लोहे में, तात्पर्य यह है कि—लोक में संडासी और लोहे में आदान ( लेना ) आदेयभाव ( जो लिया जाय ) प्रसिद्ध है और उन का आदाता लुहार है, इसी प्रकार इन्द्रियों तथा विषयों का भी आदान—आदेयभाव है, अतः उनका भी कोई आदाता होना चाहिए । जहाँ आदाता नहीं होता वहाँ आदान—आदेयभाव भी नहीं होता, जैसे—आकाश में ।

( ३ ) ઇન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે, જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દંડ આદિ. ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુંભાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ; જેમકે—આકાશ. ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે.

( ૪ ) અથવા—ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત—( ગ્રહણ કરવાવાળા-યુક્ત ) છે, કેમકે તેમાં આદાન—આદેય ભાવ મોજુદ છે. જેમ સાણસી અને લોહમાં. તાત્પર્ય એ છે કે લોહમાં સાણસી અને લોહમાં આદાન—આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે. અને તેના આદાતા લુહાર છે; આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન—આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યાં આદાતા નથી, ત્યાં આદાન—આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમાં.

( ५ ) यद्वा—देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम् , भोग्यत्वात् , यथा—अन्नवस्त्रादिकम् । अन्नवस्त्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति । यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्यमपि न भवति, यथा खरविषाणम् , भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम् ।

( ६ ) यद्वा—अस्ति देहादिकं सस्वामिकं, संघातरूपत्वात् , मूर्तिमत्त्वात् , ऐन्द्रियत्वात् , चाक्षुषत्वात् , यथा—गृहादिकम् । गृहादीनां स्वामिनः देवदत्तादयः सन्ति । यत् पुनरस्वामिकं तत् संघातरूपं न भवति, मूर्तिमन्न भवति, ऐन्द्रियं न भवति, चाक्षुषं च न भवति, यथा—गगनकुसुमम् । देहादिकं, चास्ति संघातादिरूपम् , तस्माद् विद्यमानस्वामिकम् । यश्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति ।

( ५ ) अथवा—देह आदि का भोक्ता कोई अवश्य है, क्यों कि वे भोग्य है, जो भोग्य होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का । अन्न—वस्त्र आदिका भोक्ता मनुष्य है । जिसका भोक्ता नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता, जैसे गधे का सींग । शरीर आदि भोग्य है अतः उनका भोक्ता अवश्य है ।

( ६ ) अथवा—देह आदि का कोई स्वामी है, क्यों कि वे संघातरूप है, मूर्तिमान् है, इन्द्रियो के विषय हैं और चाक्षुष है, घर आदि के समान । घर आदि के स्वामी देवदत्त आदि है । जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संघातरूप नहीं होता, मूर्तिमान् नहीं होता, इन्द्रिय का विषय नहीं होता, और चाक्षुष ( आंख से दीखने वाला ) भी नहीं होता, जैसे—आकाशपुष्प । देह आदि संघातरूप है, अतः उन का स्वामी अवश्य है । देह आदि का जो स्वामी है वही आत्मा है ।

( ५ ) अथवा—देह आदिने लोडता केरु अवश्य छे, केमके ते लोड्य छे, जे लोड्य डोय छे, तेने लोडता पणु डोय छे. जेमके अन्न, वस्त्र आदिने. अन्न—वस्त्र आदिने लोडता मनुष्य छे. जेने लोडता नथी ते लोड्य पणु नथी, जेम गधेडाना सींग. शरीर आदि लोड्य छे, तेथी तेने लोडता अवश्य छे.

( ६ ) अथवा देह आदिने केरु स्वामी छे, केमके—ते संघातरूप छे, मूर्तिमान छे, इन्द्रियोने विषय छे. अने चाक्षुष छे, घर आदि प्रमाणे. घर आदिने स्वामी देवदत्त आदि छे. जेने केरु स्वामी नथी ते संघातरूप पणु नथी, अने ते मूर्तिमान पणु डोय नडि, इन्द्रियोने विषय पणु डोय नडि अने चाक्षुष ( नेत्रथी जेठ शक्य तेवे ) पणु डोय नडि, जेमके आकाशपुष्प. देह आदि संघातरूप छे, तेथी तेने स्वामी अवश्य छे, देह आदिने स्वामी छे, ते आत्मा छे.



न च—आदिमत्प्रतिनियताकारत्वादिहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्रादय एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम् । अन्यस्येश्वरादेर्युक्त्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसंभवाद् देहादीनां कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात् ।

ननु—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलालादयो मूर्तिमन्तः संघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरुद्धसाधकतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्मैवम्, संसारिणमात्मानं साधयितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतदोपासंभवात् । संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

पूर्वोक्त—‘आदिमान होते हुए नियत आकार वाले होने से’ इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते हैं, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि—आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नहीं ठहरता, अतः देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाता है ।

शङ्का—घट आदि के कर्ता कुंभार वगैरह मूर्तिक, संघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वाले देखे जाते हैं, अतः जीव भी ऐसा ही सिद्ध होता है, मगर आपको इस से विपरीत धर्मोवाला आत्मा सिद्ध करने के कारण पूर्वोक्त हेतुओं में विरुद्ध दोष आता है ।

समाधान—ऐसा मत कहो । हम संसारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उद्यत

पूर्वोक्त—‘आदिमान डोवा छतांय नियत आकारवाणा डोवाथी’ इत्यादि हेतुओंकी शरीर आदिना कर्ता आदि न सिद्ध होय छे. प्रस्तुत आत्मा सिद्ध थतो नथी. अयेम नडि डडेवुं नैथ अये, डेमडे आत्माथी सिन्न ईश्वर आदिनुं कर्तापणुं युक्ति संगत थतु नथी, तेथी देड आदिने कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता अने स्वामी आत्मा न छे. अयेम निश्चय थथ नय छे.

शंका—घट आदिना कर्ता कुलार वगैरे मूर्तिक, संघातरूप अने अनित्य आदि स्वभाववाणा नेवामां आवे छे, तेथी अथ पणु अवे न सिद्ध थाय छे परंतु तमने तेनाथी विपरीत धर्मोवाणा आत्मा सिद्ध करयो छे, अयेवी स्थितिमां साध्यथी विरुद्ध सिद्ध करवाना डारणे पूर्वोक्त हेतुओंमां विरुद्धता दोष आवे छे.

समाधान—अये प्रमाणे न डडो, अये संसारी आत्मा सिद्ध करवा भाटे तैयार थया-

पुद्गलसंघातोपगूढत्वात्, सशरीरत्वाच्च कथंचिन्मूर्तत्वादिधर्मयुक्त एवास्तीति ।

( ७ ) यद्वा—‘ जीव ’ इति पदं सार्थकं, व्युत्पत्तिमत्त्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् घटादिपदवत् । घटादिपदं व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्थकम् । यत्तु सार्थकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा—खरविषाणादिकं, डित्थादिकं च पदम् । जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्थकम् ।

यद् व्युत्पत्तिमन्न भवति तदेकपदमपि सद् न सार्थकम्, यथा डित्थादिपदम्, इति हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिस्तद्वारणाय व्युत्पत्तिमत्त्वविशेषणमुपात्तम् ।

हुए है, इस लिए कोई दोष नहीं आता । संसारी आत्मा आठ कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सशरीर होने के कारण मूर्तत्व आदि धर्मों से युक्त ही है ।

( ७ ) अथवा—‘ जीव ’ पद का वाच्य अवश्य है, क्यो कि यह पद व्युत्पत्ति वाला होते हुए समासरहित है, एक पद है, घट आदि पदों के समान । घट वगैरह पद व्युत्पत्तिवाले, असमासपद, एक पद लोक में देखे जाते है अतः उनके वाच्य भी अवश्य है । ‘ जीव ’ पद भी ऐसा ही है, अतः वह भी सार्थक है । जो पद सार्थक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाला असमासपद, एक पद भी नहीं होता, जैसे—‘ खरविषाण ’ पद, अथवा ‘ डित्थ ’ पद, जीव पद ऐसा नहीं है, अतः वह सार्थक है ।

जो व्युत्पत्ति वाला नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्थक नहीं होता, जैसे ‘ डित्थ ’ आदि पद । इस हेतु में अनैकान्तिकता निवारण करने के लिए ‘ व्युत्पत्ति

धीअे, अेटला भाटे डेाध डेष आवतो नथी, संसारी आत्मा आठ कर्मोना समूडथी युक्त डोवाना डारणे तथा सशरीर डोवाना डारणे मूर्तत्व आदि धर्मोथी युक्तन छे.

(७) अथवा ‘जुव’ पदनेा वाच्य अवश्य छे, डारणु डे आ पद व्युत्पत्तिवाणुं डोवा छतांय समासरहित छे, अेक पद छे, घट आदि पदोना समान. ‘घट’ अे व्युत्पत्तिवाणुं असमास पद अेक पद लोकमां नेवामां आवे छे, ते डारणुथी तेनुं वाच्य पणु अवश्य छे. ‘जुव’ पद, पणु अेवुं न छे, तेथी ते पणु सार्थक छे. ने पद सार्थक नथी थतुं ते व्युत्पत्तिवाणा असमास पद अेक पद पणु थतुं नथी. नेमडे अरविषाणु (गधेडाना शींग) पद, अथवा ‘डित्थ’ पद. जुव-पद अेवुं नथी. तेथी ते सार्थक छे.

ने व्युत्पत्तिवाणुं थतुं नथी ते अेक पद डोवा छतांय पणु सार्थक नथी थतुं, नेम ‘डित्थ’ आदि पद.

आ डेतुमां अनैकान्तिकता निवारणु डरवा भाटे, ‘ व्युत्पत्तिवाणुं ’ विशेषणु

यच्चैकपदं नास्ति किन्तु सामासिकम्, तदपि व्युत्पत्तिमत्त्वे सत्यपि सार्थकं नास्ति, यथा खरविषाणादिकमिति । तत्रानैकान्तिकत्वापत्तिदोषस्तत्परिहारार्थमेकपदत्वमिति ।

ननु देह एव जीवपदस्यार्थोऽस्तु कथं पुनरात्मा विज्ञायेत । देहरूपेऽर्थे जीवशब्दप्रयोगोऽपि दृष्टः, यथा—‘अयं जीवः, तस्मान्न हन्तव्यः’ इति । अतो देह एव जीवशब्दार्थतया ग्रहीतव्यः, इति चेन्न, पर्यायशब्दभेदाद् देहजीव-शब्दयोरर्थो भिन्न एवेति बोधनात्, यथा घटाकाशयोः, तत्र—घटकुम्भकलशादयो घटशब्दस्य पर्यायाः, आकाशनभोव्योमादयस्त्वाकाशशब्दपर्यायाः, अतस्तयोरर्थे

वाला’ विशेषण लगाया है । तथा जो एक पद नहीं है किन्तु समासयुक्त पद है वह व्युत्पत्तिवाला होते हुए भी सार्थक नहीं होता । जैसे खरविषाण आदि पद । इस में अनैकान्तिकता हटाने के लिए ‘एकपद’का प्रयोग किया गया है ।

शङ्का—जीव पदका अर्थ देह ही क्यों न मान लिया जाय ? आत्मा अर्थ कैसे समझा जाय ? देह के अर्थ में जीव शब्दका प्रयोग देखा भी जाता है, जैसे ‘यह जीव है, अतः हनन करने योग्य नहीं है’ । इस लिए जीव शब्द का अर्थ शरीर ही लेना चाहिए ।

समाधान—देहके और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग अलग है, अतः दानो का अर्थ अलग—अलग ही मानना चाहिए । जैसे घटके पर्यायवाची कुम्भ, कलश आदि शब्द अलग है, और आकाश के पर्यायवाची शब्द नभ, व्योम, गगन आदि आभ्यु छे. तथा जे अेक पद नथी. परंतु समासयुक्त पद छे ते व्युत्पत्तिवाणुं डोवा छतांय सार्थक थतुं नथी. जेम अरविषाणु आदि पद, तेभां अनैकान्तिकता डुहाववा माटे—‘अेक पद’नेा प्रयोग करेवो छे.

शंका—‘एव’ पदनेा अर्थ देह शा माटे मानवाभां नथी आवतो ? आत्मा अर्थ केम समजय छे ? देहना अर्थभां एव शब्दनेा प्रयोग जेवाभां पणु आवे छे. जेम—‘आ एव छे, तेथी डुणुवा योज्य नथी’ अेटला माटे एव शब्दनेा अर्थ शरीर जे लेवो जेध अे.

समाधान—देह अने एवना पर्यायवाची शब्द नूहा नूहा छे तेथी अे अनेनेा बोध नूहो—नूहो मानवो जेध अे. जेम घटना पर्यायवाची कुल, कलश आदि शब्द अलग छे, अने आकाशना पर्यायवाची शब्द—नभ, व्योम, गगन आदि शब्द अलग छे. अे अरणुथी घटनेा अर्थ अने आकाशनेा अर्थ अलग छे. अे

भिन्नता प्रतीयते । प्रकृतेऽपि प्राणी, भूतः, जीवः, सत्त्वः, इत्यादयो जीवशब्दस्य पर्यायाः, शरीरं वपुः, कायो, देहः, गात्रमित्यादयस्तु शरीरशब्दपर्याया 'अयं जीवस्तस्मान्न हन्तव्यः' इत्यनेनापि देहस्थितस्य प्राणिन एव हिंसा निषिध्यते ।

आप्तागमस्तु समस्त एवात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रार्थं तस्य प्रवृत्तत्वात् । तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः-

‘से आयावादी’ इति प्रस्तुतमेव वचनं तावद् गृहाण । ‘से जं पुण

शब्द अलग है, इस लिए घटका अर्थ और आकाश का अर्थ अलग-अलग है । इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व आदि शब्द अलग है और देह के पर्यायवाचक शरीर, वपु, काय, गात्र आदि भिन्न है, अतः इन दोनों का अर्थ भी अलग होना चाहिए । ‘यह जीव है अतः हनन करने योग्य नहीं है’ इस वाक्य द्वारा देह में स्थित प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है ।

### आगम से आत्मा की सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है । आत्मतत्त्व के सम्यग् दर्शन, ज्ञान, और चारित्र के लिए ही आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रदर्शित करते हैं:—

सब से पहले-‘से आयावादी’, इस प्रस्तुत वाक्य को ही लीजिए प्रमाणे एवनां पर्यायवाचक-प्राणी, भूत, एव सत्त्व आदि शब्द अलग छे. अने देहना पर्यायवाचक-शरीर, वपु, काय, गात्र आदि भिन्न छे. ते भाटे अे अनेना अर्थ पण अलग थये जेधये. “आ एव छे तेथी हनन करवा योग्य नथी” आ वाक्य द्वारा देहमां रहेला प्राणीनी ज हिंसाने निषेध करवामां आव्ये छे.

### आगमधी आत्मानी सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मानुं बोधक छे. आत्मतत्त्वना सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चारित्र भाटे ज आगमनी प्रवृत्ति होय छे. ते पण आगमना केटलाक वाक्य प्रमाणरूपमां प्रदर्शित करे छे—

सौथी प्रथम ‘से आयावादी’ आ प्रस्तुत-आलु वाक्यने ज लधये ‘से जं पुण

जाणेज्जा ' इत्यादि—' सोऽहं ' इत्यन्तं प्राग्व्याख्यातं च ( आचा० १ अ० १ उ० ) ।  
 ' अत्थि आया ' ( अस्त्यात्मा ) इति । ' अत्थि जीवा ' ( सन्ति जीवाः ) इति ।  
 ' एगे आया ' ( एक आत्मा ) ( स्था० १ स्था० १ उ० ) इति ।

“ कइविहा णं भंते ! दव्वा पणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पणत्ता, तंजहा-  
 जीवदव्वा य, अजीवदव्वा य ” ( अनु. सू. १४१ )

इत्यादीन्यनुसन्धेयानि । अन्येऽपि सांख्यादयः प्रायशः स्वीकुर्वन्त्येव  
 शरीराद्भिन्नतयाऽऽत्मनोऽस्तित्वमिति ।

### आत्मनो द्रव्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा द्रव्यमस्ति, चेतनाद्यनन्तगुणवत्त्वात्, ज्ञानदर्शनलक्षणविवि-  
 धोपयोगाद्यनन्तपर्यायवत्त्वाच्च । चेतनाद्वारेणात्मा नानारूपोपयोगरूपेण परिणमते ।

' से जं पुण जाणेज्जा ' से लेकर ' सोऽहं ' तक पहले व्याख्यान किया जा चुका  
 है । ( आचा. १ अ. १ उ. ) तथा ' अत्थि आया ' ' अत्थि जीवा ' ' एगे आया '  
 ( स्था. १ स्था. १ उ. ) तथा ' कइविहा णं भंते दव्वा ; पणत्ता ? गोयमा ! दुविहा  
 पणत्ता, तंजहा-जीवदव्वा य अजीवदव्वा य, ( अनु. सू. १४१ ) इत्यादि अनेक  
 आगमवाक्य समझ लेने चाहिए । दूसरे सांख्य वगैरह भी प्रायः शरीर से भिन्न आत्मा  
 का अस्तित्व स्वीकार करते हैं ।

### आत्माका द्रव्यत्वनिरूपणम्—

आत्मा द्रव्य है, क्यों कि वह चेतना आदि अनन्त गुणों से युक्त है  
 और वह ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग आदि अनन्त पर्यायों वाला भी है । चेतना

जाणेज्जा' थी लघने 'सोऽहं' सुधी पडेला व्याख्यान करी दीधुं छे ( आत्मा. १-अ.  
 १-७ ) तथा ' अत्थि आया ' ' अत्थि जीवा ' ' एगे आया ' ( स्था. १ स्था. १ उ. ) ' कइविहा णं  
 भंते ! दव्वा पणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पणत्ता, तंजहा-जीवदव्वा य अजीवदव्वा य'  
 ( अनु. सू. १४१ ) इत्यादि अनेक आगम-वाक्य समझ लेवां लेधये. पीन्त सांख्य  
 शास्त्र वगैरे पणु प्रायः शरीरथी भिन्न आत्माना अस्तित्वनो स्वीकार करे छे.

### आत्मानुं द्रव्यत्वनिरूपणम्—

आत्मा द्रव्य छे, केभडे ते चेतना आदि अनन्त गुणोथी युक्त छे, अने ते  
 ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग आदि अनन्त पर्यायो वाणो पणु छे. चेतनाद्वारा  
 आत्मा नाना प्रकारना रूपमां परिणुत थाय छे. परंतु चेतना आत्मद्रव्यना रूपमां

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतश्चानपायिनो । तामेवाश्रित्य ज्ञानदर्शना-  
दिविविधोपयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां त्रैकालिकः प्रवाहो भवति । तस्याश्चेत-  
नायाः कार्यरूपः पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्या-  
त्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहाः सह-युगपत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण  
इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽनन्तगुणाः सिद्ध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया  
एकस्मिन् समये समुपलभ्यन्ते परन्तु वैकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना,  
आत्मद्रव्य के रूप में, तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में  
सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती, उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि  
भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह वहता है । उस चेतना  
का कार्यरूप पर्याय-प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है ।

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाह के समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्याय का  
प्रवाह है; तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय-प्रवाह एक साथ जारी  
रहते हैं, अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण  
स्वीकार करने योग्य होने से अनन्त गुण सिद्ध होते हैं ।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्न-विभिन्न पर्यायों एक ही  
समय में उपलब्ध होती है, किन्तु एक ही समय में अकेले चेतनागुण की विविध

तथा आत्मा में रडेववाणा सुण आदि गुणोना रूपमां डमेशां विद्यमान रडे छे.  
डेड वभत पणु नाश पामती नथी. तेना आधार पर ज्ञान, दर्शन आदि सिन्न  
सिन्न समयोमां थवावाणा अनेक उपयोगोना प्रवाड वडेतो रडे छे. ते चेतनाना  
कार्यरूप पर्यायप्रवाड स्वरूपथी उपयोग न छे.

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाहना समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्यायनो प्रवाड  
छे. तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्याय-प्रवाड आदि अनन्त पर्यायप्रवाड अेक साथे नरी रडे  
छे. तेथी चेतनागुण समान आत्मा में आनन्द वीर्य आदि. अेक-अेक गुण स्वीकार  
करवा योग्य डोवाथी अनन्त गुण सिद्ध थाय छे.

आत्मा में चेतना, सुख, वीर्य, आदि गुणों की भिन्न-भिन्न विविध पर्यायों  
अेक-अेक समयमा उपलब्ध थाय छे, परंतु अेक-अेक समयमा अेकला चेतनागुणनी

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा त्रिविधा वेदनपर्याया एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा—जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनाजन्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही पर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे—जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनो उपयोग एक साथ नहीं हो ते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नहीं पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णोपयोग नहीं पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य है, परन्तु चेतना-जन्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं है, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है, अतः व्यक्तिरूपसे अनित्य है, उपयोग-पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

विविध उपयोगरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती, अतः प्रमाणे एक ही समयमें एकला आनन्द गुणनी पणु विविध वेदनरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुणनी एक समयमें एक ही पर्याय प्रकट थाय छे, जेभ जलमां उला रडेला पुइधने शीत अने उष्ण, अे जने उपयोग एक साथे थशे नडि, उष्णोपयोगना समये शीतोपयोग थशे नडि अने शीतोपयोगना समये उष्णोपयोग नष्टाशे नहीं ।

आत्मा नित्य छे, तेना चेतना आदि गुण पणु नित्य छे, परंतु चेतनाजन्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं, ते दुभेशां उत्पन्न अने नाश थती रडे छे, तेथी व्यक्तिरूपथी अनित्य छे, तो पणु उपयोग-पर्यायना प्रवाह त्रिकालवर्ती होवाथी नित्य छे ।

अनन्तगुणानामखण्डसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-  
चारित्रवीर्यादयो गुणाः परिमिता एव साधारणधियां छद्मस्थानां ज्ञेया भवन्ति,  
न तु सर्वे गुणाः । इदमत्र कारणम्-विशिष्टज्ञानमन्तरेणात्मनः सर्वे पर्यायप्रवाहा  
विज्ञातुमशक्याः भवन्ति । यो यः पर्यायप्रवाहः साधारणबुद्ध्या ज्ञातुं शक्यते  
तत्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति ।  
यथा-आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति । शेषास्तु  
सर्वे केवलिगम्या इति ।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायाणामेकैकप्रवाहस्य कारणीभूतकैस्यैकगुणोऽस्ति,  
तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम् । एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया । अभेद-

अनन्त गुणों का अखण्ड समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना  
सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छद्मस्थो के द्वारा परिमित ही जाने  
जाते हैं, सब गुण नहीं जाने जाते । इस का कारण यह है कि-विशिष्ट ज्ञान के बिना  
आत्मा के समस्त पर्याय-प्रवाहों को जानना अशक्य है । जो जो पर्याय-प्रवाह  
साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है, उसके कारणभूत गुणों का व्यवहार किया  
जाता है, अत एव वे गुण व्यवहार्य होते हैं, जैसे-आत्मा के चेतना, सुख, चारित्र, और  
वीर्य आदि गुण व्यवहार्य होते हैं । शेष सब केवलिगम्य है ।

तीन काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों के एक-एक प्रवाह का कारण एक-एक  
गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है । यह कथन क्वचित् भेद-

अनन्त गुणोंने अखण्ड समुदाय न द्रव्य है, तो यद्यु आत्माना चेतना, सुख  
चारित्र, वीर्य आदि गुण साधारण बुद्धिवाणा छद्मस्थोद्वारा परिमित-पर्यायित न  
नक्षुवामां आवे है, परंतु सर्व गुण नक्षुवामां आवता नथी. तेनुं कारण अे है  
के-विशिष्ट ज्ञान विना आत्माना समस्त पर्याय-प्रवाहोंने नक्षुवा अशक्य है. नै नै  
पर्याय-प्रवाह साधारण बुद्धिवाणा द्वारा नक्षु शक्य है, तेना कारणभूत गुणोंने  
व्यवहार करवामां आवे है, अे कारणथी ते गुण व्यवहार्य थाय है, नैम आत्मानो  
चेतना, सुख, चारित्र अने वीर्य आदि गुण व्यवहार्य थाय है, याकी सर्व  
केवलिगम्य है.

त्रैक काल संगंधी अनन्त पर्यायोंने अेक-अेक प्रवाहनुं कारण अेक-अेक  
गुण है. अने अेवा अनन्त गुणोंने समुदाय ते द्रव्य है. आ कथन कथयित



દૃષ્ટ્યા તુ પર્યાયાઃ સ્વસ્વકારણીભૂતસ્ય ગુણસ્ય સ્વરૂપાઃ, ગુણા અપિ દ્રવ્યસ્વરૂપા इति ગુણપર્યાયાત્મકમેવ દ્રવ્યમિત્યુચ્યતે ।

દ્રવ્યેષુ સર્વે ગુણા એકરૂપા ન સન્તિ । તત્ર કતિચન સાધારણાઃ અનેક-દ્રવ્યવર્તિનઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનશ્ચ । યથા—અસ્તિત્વ-પ્રદેશવત્ત્વ-જ્ઞેયત્વાદયઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનઃ, નિષ્ક્રિયત્વાઽચેતનત્વાઽરૂપિત્વાદયોઽનેકદ્રવ્યવર્તિનઃ । કતિચિદસાધારણા ગુણા એકદ્રવ્યમાત્રવર્તિનઃ સન્તિ । યથા—આત્મનશ્ચેતનાઽઽનન્દચારિત્રવીર્યાદયઃ । સ્વસ્વાઽસાધારણગુણાનાં તજ્જન્યપર્યાયાણાં ચાપેક્ષયા પ્રત્યેકદ્રવ્યમન્યદ્રવ્યાદ્ મિન્નમસ્તીતિ વોધ્યમ્ ।

વિવિક્ષા સે હી હૈ । અમેદ-વિવક્ષા સે તો પર્યાયેં અપને કારણભૂત ગુણ સે અમિન્ન હૈં ઓર ગુણ, દ્રવ્ય સે અમિન્ન હૈ, અતઃ ગુણપર્યાયરૂપ હી દ્રવ્ય કહલાતા હૈ ।

દ્રવ્ય મેં સમી ગુણ એકરૂપ નહી હૈ । કોઈ-કોઈ ગુણ સાધારણ હૈ, અર્થાત્ સામાન્ય રૂપ સે અનેક દ્રવ્યો મેં પાયે જાતે હૈ, યા સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાયે જાતે હૈ । જૈસે-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ, ઓર જ્ઞેયત્વ, યે ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાયે જાતે હૈ ।

નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, ઓર અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી હૈ । કોઈ-કોઈ ગુણ અસાધારણ હૈ—સિર્ફ એક દ્રવ્ય મેં રહતે હૈ, જૈસે—આત્મા કે ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ । અપને-અપને અસાધારણ ગુણો ઓર ગુણો સે ઉત્પન્ન પયાયાં કી અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય દૃસરે દ્રવ્ય સે મિન્ન હૈ, એસા જાનના ચાહિણ ।

લેદવિવક્ષાથી જ છે. અલેદવિવક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત ગુણથી અલિન્ન છે, અને ગુણ દ્રવ્યથી અલિન્ન છે તેથી ગુણપર્યાયરૂપ દ્રવ્ય કહેવાય છે.

દ્રવ્યમાં સર્વ ગુણ એકરૂપ નથી, કોઈ કોઈ ગુણ સાધારણ છે, અર્થાત્—સામાન્ય રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. જેમ—અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે. કોઈ કોઈ ગુણ અસાધારણ છે—માત્ર એક દ્રવ્યમાં રહે છે. જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ. પોત-પોતાના સાધારણ ગુણો અને ગુણોથી ઉત્પન્ન પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય ખીલ દ્રવ્યથી લિન્ન છે, એમ સમજવું જોઈએ.

आत्मनः स्वरूपम्—

आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते—

आत्मा—(१)—जीवः (२)—नित्यः (३)—चेतनावान्, (४)—उपयोगवान्, (५)—परिणामी, (६)—प्रभुः, (७)—कर्ता, (८)—साक्षाद्भोक्ता, (९)—स्वशरीर-परिमाणः, (१०)—अमूर्तः, (११)—प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः, (१३)—ऊर्ध्वगतिशीलश्च ।

तत्राऽऽत्मनो जीवत्वादिस्वरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन सत्ता-चैतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः, तथा

आत्मा का स्वरूप—

अब आत्मा का स्वरूप कहते हैं—

आत्मा—(१)—जीव है, (२)—नित्य है, (३)—चेतनावान् है, (४)—उपयोगवान् है, (५)—परिणामी है, (६)—प्रभु है, (७)—कर्ता है, (८)—साक्षात् भोक्ता है, (९)—अपने शरीर के बराबर है, (१०)—अमूर्त है, (११)—प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)—पौद्गलिक कर्मों से युक्त है, और (१३)—ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है ।

उन में अब आत्मा के जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं—

(१) जीवत्व का निरूपण—

आत्मा निश्चयनय से सत्ता चैतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से, तथा

आत्मानुं स्वरूप—

हुवे आत्मानुं स्वरूप कहे छे—

आत्मा—(१) जिव छे, (२) नित्य छे, (३) चेतनावंत छे, (४) उपयोगवंत छे, (५) परिणामी छे, (६) प्रभु छे, (७) कर्ता छे, (८) साक्षात् लोकता छे, (९) चोताना शरीर बराबर छे, (१०) अमूर्त छे, (११) प्रत्येक शरीरमां भिन्न भिन्न छे, (१२) पौद्गलिक कर्मोथी युक्त छे, अने (१३) ऊर्ध्वगमन स्वभाववाणे छे.

तेमां आत्माना जिवत्वादि स्वरूपनुं निरूपणुं करवामां आवे छे—

(१) जिवत्वनुं निरूपणुं—

आत्मा निश्चयनयथी सत्ता, चैतन्य अने ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणोथी, तथा

व्यवहारनयतो यथासंभवं क्षायोपशमिकैरिन्द्रियादिद्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीविष्यति, जीवितवांश्चेत्यतोऽयमात्मा 'जीवः' इत्युच्यते ।

“अयमात्मा न देहादन्यः, नापि जन्मान्तरसंक्रान्तः” इति नास्तिकमतं निराकर्तुमुक्तम्—“अयमात्मा जीवः” इति । पूर्वभवसंस्कारं विना कथमिह प्रमृत एव बालो मातुः स्तन्यपाने प्रवर्तते । प्रवृत्तिं प्रति स्वकृतिसाध्यत्वस्येष्टसाधनताज्ञानस्य च कारणतया बालस्य तज्ज्ञानजनकपूर्वभवीयसंस्कारोऽस्तीति विज्ञायते । तस्मादात्मनः पूर्वभवसम्बन्धोऽवधार्यते । तेन च देहभिन्नत्वमपि ज्ञायते ।

अयमात्मा यदि पाञ्चभौतिकदेहरूपः स्यात्, तर्हि मृन्मयभाण्ड-सलिल-

व्यवहारनय से यथासंभव क्षयोपशम-जन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणो से जीवित है, जीवित रहेगा और जीवित था, इस कारण आत्मा 'जीव' कहलाता है ।

“आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और न एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है” नास्तिकों के इस मत का निराकरण करने के लिए कहा गया है कि—“आत्मा जीव है” । पूर्वभव के संस्कार के विना इस भव में तत्काल जन्मा हुआ शिशु माता के स्तन-पान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है ?, शिशु की इस प्रवृत्ति से सिद्ध होता है कि उस में पूर्व भव का संस्कार विद्यमान है । इस से निश्चित हो जाता है कि—आत्मा पूर्व भव में भी था, और इस कारण वह शरीर से भिन्न भी मालूम होता है ।

पांच भूतो से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक—(अग्नि), पवन और आकाश रूप पांचों भूतों का चूले के ऊपर जब संयोग

व्यवहारनयथी यथासंभव क्षयोपशमजन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीविष्यति, जीवितवांश्चेत्यतोऽयमात्मा 'जीवः' इत्युच्यते ।

व्यवहारनयथी यथासंभव क्षयोपशमजन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीविष्यति, जीवित रहेगा और जीवित था, इस कारण आत्मा 'जीव' कहलाता है ।

“आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और न एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है” नास्तिकों के इस मत का निराकरण करने के लिए कहा गया है कि—“आत्मा जीव है” । पूर्वभव के संस्कार के विना इस भव में तत्काल जन्मा हुआ शिशु माता के स्तन-पान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है ?, शिशु की इस प्रवृत्ति से सिद्ध होता है कि उस में पूर्व भव का संस्कार विद्यमान है । इस से निश्चित हो जाता है कि—आत्मा पूर्व भव में भी था, और इस कारण वह शरीर से भिन्न भी मालूम होता है ।

पांच भूतो से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक—(अग्नि), पवन और आकाश रूप पांचों भूतों का चूले के ऊपर जब संयोग

पांच भूतो से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक, अग्नि, आकाश, पवन वगैरे पांच भूतों के चूले के ऊपर जब संयोग

दहन-पवन-गगनरूपपञ्चभूतेषु चुल्हूपरि मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपलभ्यते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपलभ्यते । अतोऽयमात्मा जडरूपपाञ्चभौतिकदेहाद् भिन्नो निश्चीयते ।

अपरञ्च-आत्मनो देहरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्चापद्येत । कृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिं विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिश्च । अकर्तुः फलप्राप्तिः, कर्तुश्च नेति द्वयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा देहाद् भिन्नो जन्मान्तरसंक्रान्तोऽपीति निश्चयम् ।

होता है तो चेतनारूप आत्मा क्यों नहीं पैदा हो जाता ?, वही पांचो भूतो का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो ?

अथवा-मृत शरीर में पांचो भूतो का सद्भाव होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्यों उपलब्ध नहीं होता ?, इस से निश्चित होता है कि आत्मा जडरूप पांच भूतो से भिन्न हैं और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष की प्राप्ति होगी । किए हुए कर्म, फल दिए बिना ही नाश हो जायगा, और अकृत कर्म के फल को भोगना पड़ेगा । कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय, यह दोनों बातें अनुचित है, अतः अब यह निश्चय कर लेना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है ।

चेतनारूप आत्मा કેમ પેદા થતો નથી ?, અહીં પાંચ ભૂતોનો સંયોગ વિદ્યમાન છે અને તેમાંથી તમે (નાસ્તિકો) આત્માની ઉત્પત્તિ માનો છો ?

અથવા-મૃત્યુ પામેલા શરીરમાં પાંચ ભૂતોનો સદ્ભાવ હોવા છતાં ચેતનસ્વરૂપ આત્મા કેમ ઉપલબ્ધ થતો નથી ?, એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે:-આત્મા જડ સ્વરૂપ પાંચભૂતોથી ભિન્ન છે અને નિત્ય છે.

અને ધીબું એ પણ છે કે-આત્માને દેહસ્વપ્ન સ્વીકાર કરવાથી કૃતનાશ અને અકૃતાભ્યાગમ દોષની પ્રાપ્તિ થશે, કરેલા કર્મ, ફળ આપ્યા વિના જ નાશ થઈ જશે. અને અકૃત-નહિ કરેલા કર્મનું ફળ ભોગવવું પડશે. કર્મ નહિ કરવાવાળાને કર્મનું ફળ ભોગવવું પડે, અને કર્મ કરનાર ફળ ભોગવવામાંથી બચી જાય. આ બંને વાત અનુચિત છે. એ કારણે એ નિશ્ચય કરી લેવો જોઈએ કે આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, અને જન્માન્તર ગમન કરે છે.

आत्मा देहे कदाचित्तिष्ठति, कदाचिन्न तिष्ठति, अतः तस्याभावस्तत्र नियतो नास्ति । तस्माद् देहादन्य इति मन्तव्यम् । एवमनुमानप्रयोगः—

आत्मा—देहादन्यः, तद्भावेऽपि तत्र तस्यानियमेनाभावात्, उपाश्रयगतसाधु-श्रावकवत् । ननु देहे जीवस्य गमनागमनं न दृश्यते, तथा च जीवस्य देहे सदा सद्भावसत्त्वेनाभावरूपो हेतुरप्रसिद्ध इति चेन्न, मृतशरीरे तस्यादर्शनात् ।

यद्वा—आत्मा देहेन्द्रियभिन्नः. तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् ।

आत्मा शरीर में कभी रहता है, कभी नहीं रहता, अतः उसका अभाव वहाँ नियत नहीं है । अत एव मानना चाहिए कि—आत्मा देह से भिन्न है । अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए—

आत्मा शरीर से भिन्न है, क्यों कि देह के होने पर भी आत्मा वहाँ नियम से नहीं रहता, उपाश्रय में स्थित साधु श्रावक के समान ।

शंका—शरीर में जीव का गमन और आगमन दिखाई नहीं देता अतः वह देह में सदैव विद्यमान रहता है । ऐसी अवस्था में आप का यह अभाव सिद्ध करने वाला हेतु असिद्ध है ।

समाधान—ऐसा कहना समीचीन नहीं है, क्यों कि मृत शरीर में आत्मा मालूम नहीं होता ।

अथवा—आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जैसे जातिस्मरण

आत्मा शरीरमां केळ वण्त रहे छे, केळ वण्त नथी रहेतो तेथी तेना अभाव त्यां ओळखू नथी. तेथी मानवु नेधजे केः—आत्मा देहथी भिन्न छे. अनुमानने प्रयोग आ प्रमाणे करवा नेधजेः—

आत्मा शरीरथी भिन्न छे, केमके देह होवा छतांय आत्मा त्यां नियमथी रहेतो नथी, उपाश्रयमां रहेला साधु श्रावक प्रमाणे.

शंका—शरीरमां जवतुं गमन-जवतुं, अने आगमन-आवतुं ते नजरे नेवामां आवतुं नथी, तेथी ते देहमां सदैव विद्यमान रहे छे. जेवी अवस्थामां आपने जे अभाव सिद्ध करवाने हेतु असिद्ध छे. जेम कहेवुं ते गराणर नथी, केमके मृत शरीरमां आत्मा मालूम पडतो नथी.

अथवा—आत्मा देह अने इन्द्रियेथी भिन्न छे, कारण के—तेना नाश थया पथी पथु तेना द्वारा जणवामां आवेला पदार्थनुं स्मरण थाय छे. जेम जतिस्मरण

यथा—जातिस्मरणशक्त्या मृगापुत्रवत् संयमी पूर्वभवं स्मरति, व्याध्यादिकारणेन नष्टदृष्टिः पूर्वानुभूतं रक्तपीतादिवर्णं, नष्टश्रवणश्च शब्दं स्मरति । यथा गेहगवाक्षैः पूर्वदृष्टस्य पूर्वश्रुतस्यान्यत्रानुस्मर्ता देवदत्तः ।

### (२) नित्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा नित्यत्वादमूर्त इति विज्ञायते । अमूर्तत्वाच्च देहादन्य इति निश्चीयते । तथाहि—आत्माऽनुत्पत्तौ सत्यामविनाशी, तथा सर्वकालावस्थायी । तथा—आत्मा क्षणापेक्षयापि न निरन्वयनाशवान् ; वस्तुत्वे सति उत्पत्तेरभावात् ,

ज्ञान से मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ था । कोई—कोई संयमी अपने पूर्वभव का स्मरण करता है । रोग आदि किसी कारण से जिस की दृष्टि नष्ट हो गई है, वह पुरुष पहले अनुभव किए हुए लाल पीले आदि रंगों को स्मरण करता है, और जिसके कान नष्ट हो गये हैं वह शब्द का स्मरण करता है । किसी घर की खिडकियों के द्वारा पहले देखे हुए पदार्थों का या सुने हुए शब्दों का देवदत्त को अन्यत्र स्मरण होता है, अत एव देवदत्त खिडकियों से भिन्न है । उसी प्रकार आत्मा, इन्द्रियों से भिन्न है ।

### (२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त प्रतीत होता है और अमूर्त होने के कारण देह से भिन्न है । वह इस प्रकार—आत्मा उत्पत्तिरहित और अविनाशी है, तथा सर्वकाल में स्थायी है, तथा आत्मा क्षण की अपेक्षा भी निरन्वय ( समूल ) नाशवान् नहीं है, क्यों कि वस्तु होने पर भी उस की उत्पत्ति नहीं होती, जैसे आकाश ।

ज्ञानधी मृगापुत्रने पूर्वभवतुं स्मरत्यु यथुं हतु . कोछ कोछ संयमीने पोताना पूर्व भवतुं स्मरत्यु थाय छे . रोग आदि कोछ कारणधी नेनी दृष्टि ( नेत्रधी नेवानी शक्ति ) नाश पाभी गछ छे ते पुरुष प्रथम अनुभवेला लाल, पीला आदि रंगोतुं स्मरत्यु करे छे . अने नेना कान नष्ट थछ गया होय—( सांख्यवानी शक्ति नाश पाभी होय ) ते शब्दतुं स्मरत्यु करे छे . कोछ घरनी खडकीओ द्वारा प्रथम नेयेला पदार्थोतुं अथवा तो सांख्येला शब्दतुं देवदत्तने अन्यत्र—भीन्न स्थणे स्मरत्यु थाय छे . ओ कारणधी देवदत्त खडकीओधी भिन्न छे . ते प्रमाणे आत्मा इन्द्रियोधी भिन्न छे .

### (२) आत्मानी नित्यता—

आत्मा नित्य होवाना कारणे अमूर्त जणाय छे अने अमूर्त होवाना कारणे, हेतुधी भिन्न छे . ते आ प्रमाणे—आत्मा उत्पत्तिरहित अने अविनाशी छे, तथा सर्व कालमां स्थायी छे, अने क्षणनी अपेक्षा पणु निरन्वय ( समूल ) नाशवान् नधी,

यथा गगनम् । अनुत्पत्तौ सत्यामविनाशित्वेन, तथा सर्वकालावस्थायित्वेन, तथा क्षणापेक्षयाऽपि निरन्वयनाशाभाववत्त्वेन चात्मनो नित्यत्वं सिध्यति । देहात्म-वादिना परिमितकालावस्थायित्वमात्मनो मन्यते, तथा क्षणिकवादिनापि निरन्वय-क्षणिकपरिणामप्रवाहस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते । तौ चैवंविधनित्यत्वसाधनेन निराकृतौ । शशशृङ्गादावपि जन्माभावसत्त्वेन हेतौ साध्यव्याप्तिर्न स्यादतो वस्तुत्वे सतीत्युक्तम् ।

न चामूर्तत्वस्य परमाणौ व्यभिचार आशङ्कनीयः, आर्हतमते नित्य-

उत्पत्तिरहित और अविनाशी होने के कारण, तथा सर्वकाल में विद्यमान रहने के कारण और क्षण की अपेक्षा भी समूल नाशवान् न होने के कारण आत्मा की नित्यता सिद्ध होती है । देह को ही आत्मा मानने वाला कहता है कि—आत्मा परिमित काल तक ठहरता है । तथा क्षणिकवादी भी निरन्वय क्षणिक परिणाम—प्रवाह को नित्य मानता है । इस प्रकार आत्मा की नित्यता सिद्ध करके इन दोनों के मत का निराकरण किया गया है । प्रस्तुत हेतु में 'वस्तु होते हुए भी' यह विशेषण इस लिये लगाया है कि शश—विषाण आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) न हो, क्यों कि उत्पत्ति का अभाव तो उन में भी है किन्तु वस्तुत्व उन में नहीं है ।

अमूर्तत्व, परमाणु में नहीं है और वहाँ नित्यत्व हेतु है, इस लिये परमाणु

डेमडे वस्तु छतांय तेनी उत्पत्ति नथी डोती, जेमडे आकाश. उत्पत्तिरहित अने अविनाशी डोवाना कारणे, तथा सर्वकालमां विद्यमान रहेवाना कारणे, अने क्षणनी अपेक्षामे पणु अभूणगे नाशवान नडि डोवाना कारणे आत्मानी नित्यता सिद्ध थाय छे. देडने न आत्मा मानवावाणा डडे छे डेः—आत्मा परिमित काल सुधी थाले छे, तथा क्षणिकवादी पणु निरन्वय क्षणिक—परिणामप्रवाहने नित्य माने छे. आ प्रमाणे आत्मानी नित्यता सिद्ध करीने अने जने (देडवादी अने क्षणिकवादी)ना मततुं निराकरणे ड्युं छे. प्रस्तुत हेतुमां “वस्तु डोवा छतांय पणु” अने विशेषण अने कारणथी आभ्युं छे डेः—शश—विषाण—(ससदानां शिंगडां) आदिथी व्यभिचार (हेतु डोय अने साध्य न डोय) न थाय, कारणे डे उत्पत्तिने अभाव तो तेमां पणु छे, परंतु वस्तुत्व तेमां नथी.

अमूर्तत्व, परमाणुमां नथी, अने त्यां नित्यत्व हेतु छे, अने कारणथी परमाणुमां

त्वामूर्त्तत्वयोरात्मन्येकान्ततोऽनङ्गीकारात् ।

यद्वा-आत्मा नित्यः संसारात्, त्रिकालविषयकक्रियापर्यालोचकत्वात्, 'स एष' इति प्रत्यभिज्ञावत्त्वात् । अनेन हेतुत्रयेण क्षणिकवादो निरस्तः ।

यत्तु-आत्मा-एकान्तनित्यः 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादिवचनप्रामाण्यात्, 'स एष अक्षयोऽजः' इत्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्च, इति, तन्न युक्तम्, आत्मन एकस्वभावत्वे संसराणादिव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात् तस्मात् कथञ्चिन्नित्यः कथञ्चिदनित्य इति

में व्यभिचार की आशङ्का नहीं करना, क्यों कि आत्मा में नित्यत्व और अमूर्त्तत्व एकान्त रूप से नहीं माना गया है ।

अथवा-आत्मा नित्य है, क्यों कि वह एक गति से दूसरी गति में जाता है, क्यों कि वह त्रिकालविषयक क्रियाका आलोचक है, और वह प्रत्यभिज्ञान ( यह वही है इस प्रकार का जोड़रूप ज्ञान ) वाला है । इन तीन हेतुओं से क्षणिकवादका निराकरण हो गया ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादि वचन से और 'स एषः अक्षयोऽजः' इत्यादि श्रुति के प्रमाण से आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध होता है । ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्यों कि आत्मा को एकान्त नित्य स्वभाव वाला मानने से संसरण ( एक जन्म से दूसरे जन्म में जाना ) आदि व्यवहारों का नाश हो जायगा । अत एव कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य आत्मा स्वीकार करना चाहिए ।

व्यलियारनी आशंका करवी नहि. कारणु के आत्माभां नित्यत्व अने अमूर्त्तत्व अेकान्तरूपथी मानवाभां आव्युं नथी.

अथवा-आत्मा नित्य छे, कारणु के ते अेक गतिथी भीलु गतिभां नथ छे, कारणु के-ते त्रिकालविषयक क्रियाने आलोचक ( विचार करनार ) छे, अने ते प्रत्यभिज्ञान ( 'आ तेन छे' अे प्रकारनु जोडरूप ज्ञान ) वाणे छे. आ त्रणु डेतुअे वडे करी क्षणिकवादनुं निराकरणु थध गयुं छे

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" इत्यादि वचनथी अने 'स एष अक्षयोऽजः' इत्यादि श्रुतिना प्रमाणथी आत्मा अेकान्त नित्य सिद्ध थाय छे. अेम कडेवुं ते पणु युक्त नथी, कारणु के आत्माने अेकान्त नित्य स्वभाव वाणे मानवाथी संसरणु ( अेक जन्मथी भीलु जन्मभां जवुं ते ) आदि व्यवहाराने नाश थध नशे, अे कारणुथी कथञ्चित् नित्य अने कथञ्चित् अनित्य आत्मा छे. अे प्रमाणे स्वीकार करवे न्नेधअे.



स्वीकर्तव्यम् । द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन—अनित्य इति । एवमनङ्गीकारे हि 'संसारा'—दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात् । आत्मन एकस्वभावत्वस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्त्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हेत् । एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसंगः स्यात्, एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चाविपादादिप्रसंगाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिवोधकसकलशास्त्रानर्थक्यं, तथाऽऽत्मनः संसारगतादनुद्धारश्च स्यात् ।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है । ऐसा स्वीकार न करने पर 'संसारण करने से' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे । एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाए तो उस में दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरा भाव कभी प्राप्त नहीं होगा । इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग आएगा । आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असंभव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण-करण आदि के बोधक सब शास्त्र व्यर्थ हो जाएँगे । इस के अतिरिक्त आत्मा का संसाररूपी स्वड्डे से कभी उद्धार भी नहीं होगा ।

आत्मा द्रव्यार्थिक नयथी नित्य छे, अने पर्यायार्थिक नयथी अनित्य छे. जे प्रमाणे स्वीकार नहि करवाथी 'संसारण करवाथी' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असंगत थय नशे. जेक स्वभाववाणे आत्मा स्वीकार करवाभां आवशे तो तेभां भीन स्वभावनी उत्पत्ति नहि थाय, अने वर्तमानकालीन भाव विना भीने भाव कोय पणु वधत प्राप्त नहि थाय, जे प्रमाणे अनित्यत्व अमूर्तत्वना विषयभां पणु स्याद्वादना न आश्रय लेवेो जेथजे. अन्यथा व्यवहारना अभावना प्रसंग आवशे. आत्माने जेकान्त अमूर्त मानवाथी तथा देहथी जेकान्त भिन्न मानवाथी तेना घात थवेो असंभव छे, अने जे दशाभां हिंसा आदिथी निवृत्त थवाने उपदेश देवावाणा अरण्य-करण आदिना बोधक तन्मम शास्त्रो व्यर्थ थय नशे. ते सिवाय आत्माने संसाररूपी आराथी कोय वधत पणु उद्धार नहि थाय.

यद्वा-आत्मा नित्यः स्वकारणविभागाभावाद् आकाशवत् । आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति । यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागाभाववान्, यथा पटः । दृश्यते हि पटस्तन्तूनां विभागो भवतीति ।

किञ्च-आत्मा नित्यः कारणविनाशाभावाद् आकाशवदेव । कारणाभावादेव हि कारणस्य विनाशाभावः, यथा गगनमेव । यो न नित्यः, स न कारणविनाशाभाववान् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः । दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्विनाशो भवतीति । अयं चात्मा स्वकारणाभावेन कारणविनाशाभाववान्, तस्मान्नित्य इति । नित्यत्वादयममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च शरीराद् भिन्न इति निश्चीयते ।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्योंकि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश । आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है । जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव वाला भी नहीं होता जैसे-पट । पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है ।

और भी-आत्मा नित्य है, क्योंकि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे-आकाश । कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश । जो नित्य नहीं होता वह कारण-विनाशभाव वाला भी नहीं होता, जैसे पट, देखा जाता है कि-पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है । आत्मा के जनक कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव वाला है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं है तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा ?

अथवा—आत्मा नित्य छे, केमके तेना कारणोना विभाग नथी, जेम आकाश. आकाशने कारणोना अभाव छे तेथी ज तेना कारणोना विभाग पणु नथी. जे नित्य नथी ते पोताना कारणोना विभागना अभाववाणे पणु नडि थाय, जेम पट. पटथी तंतुओना विभाग थतो जेवामां आवे छे.

इरी पणु-आत्मा नित्य छे. कारणु के तेना कारणोना विनाशने अभाव छे, जेम आकाश. कारणोना अभाव होवार्थी ज कारणोना विनाशने अभाव छे. जेम आकाश जे नित्य नथी ते कारणुविनाशभाववाणुं पणु नथी, जेम पट. जेवामां आवे छे के-पटना कारणभूत तंतुओना नाश थाय छे. पणु आत्माना जनक कारणोना अभाव छे, तेथी ते कारणोना विनाशने अभाववाणे छे, अर्थात् आत्माने

परन्त्वेकान्तनित्यत्वे, एकस्यात्मनो नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिणामानोपपद्येरन् । एकान्तक्षणिकत्वेऽपि स्वाध्यायाध्ययनध्यानादिपरिश्रमप्रत्यभिज्ञानानोपपद्येत । तस्मादात्मा कथञ्चिन्नित्यः, कथञ्चिदनित्यः, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

यत्तु—“द्रव्यक्षेत्रकालभावैरेकान्तेनैव नित्यः, अविचलितस्वभाव आत्मे”—ति वदन्ति तत्सर्वमयुक्तम् । तथा सति सुखदुःखसंसारमोक्षणामनुपपत्तिरापद्येत । तत्र हि आह्लादानुभवरूपं क्षणं सुखं, तापानुभवरूपं दुःखम्, तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवभवसंसरणरूपः संसारः, अष्टविधकर्मबन्धवियोगो मोक्षः । एकान्तवाद-

इस लिए आत्मा नित्य है । आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के कारण शरीर से भिन्न है ।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा । और एकान्त क्षणिक मानने पर भी स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदि का परिश्रम वृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जायगा । अत एव आत्मा कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य है, ऐसा अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

जो लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आत्मा को एकान्त नित्य अविचल स्वभाव वाला मानते हैं, वह सब अयुक्त है । ऐसा मानने से सुख, दुःख, संसार और मोक्ष नहीं बन सकते । आह्लाद का अनुभव करनारूप क्षण सुख कहलाता है । संताप का अनुभव करना दुःख है । तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक और देव भव में जाना संसार है । आठ प्रकार के कर्मबन्ध का वियोग होना मोक्ष है । एकान्तवाद

कारण न् नर्था तो पछी तेना कारणोने अलाव शुं थशे ? अे कारण्थी आत्मानित्ये छे. आत्मानित्ये होवाना कारणे अमूर्त छे. अने अमूर्त होवाना कारणे शरीरथी भिन्न छे.

परंतु आत्माने एकान्त नित्य मानवाथी अेक न् आत्मानरक, तिर्यञ्च, मनुष्य अने देवगतिरूप नाना पर्याये ने प्राप्त नहि थाय, अने एकान्त क्षणिक मानवाथी पणु स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदिने परिश्रम वृथा थर्ष न्थे, अने प्रत्यभिज्ञानने अलाव थर्ष न्थे, अे कारण्थी आत्मान कथञ्चित् नित्य अने कथञ्चित् अनित्य छे. अे प्रमाणे न्इर स्वीकारवुं लेधअे

अे भाणुसे द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावथी आत्माने एकान्त नित्य, अविचल स्वभाव वाणो माने छे, ते सर्व अयुक्त छे. अे प्रमाणे मानवाथी सुख, दुःख संसार अने मोक्ष अनी शकथे नहि. आह्लादने अनुभव करवाथ्य क्षण सुख कहवाथ छे. संतापने अनुभव करवे ते दुःख छे. तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक अने देवलवमां न्थुं ते संसार छे. आठ प्रकारना कर्म बन्धने वियोग थवे ते मोक्ष छे. एकान्तवाद

समालम्बने तु सुखदुःखादयः सर्वे आत्मनोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतयाऽ-  
न्यथात्वरूपपरिणामासंभवान्नोपपद्येरन्, नारकत्वादिभावो यस्य यादृशो विद्यते,  
तदन्यरूपतां नासौ प्रपद्येत ।

भावतोऽप्रसन्नस्यात्मनः पूर्वरूपापरित्यागे सति पुनः प्रसन्नरूपताया  
असंभवः स्यात् । दृश्यते पुनरप्रसन्नस्य कदाचित् प्रसन्नताऽपि, सा नोपपद्येत ।  
तस्मादेकान्तवादं परित्यज्यानेकान्तवादः समालम्बनीयः ।

### (३) चेतनावत्त्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन शुद्धचेतनासहितः, व्यवहारनयेन च कर्मादि

स्वीकार करने पर आत्मा अप्रच्युत, अनुत्पन्न और स्थिर एकरूप तथा एक स्वभाव  
वाला होने के कारण, और उसमें रूपान्तर होना असंभव होने से सुख दुःखादि नहीं  
होगे, अतः विभिन्न अवस्थाएँ भी नहीं हो सकेंगी, फिर जो आत्मा नारकत्वादि  
जिस रूप में है वह सर्वदा उसी रूप में रहेगी—एक भव से दूसरे भव में नहीं जा  
सकेगी । जो आत्मा अप्रसन्न है, मगर अप्रसन्न का भी कभी प्रसन्न होना दिखाई देता है,  
फिर ऐसा न हो सकेगा । अत एव एकान्तवाद का त्याग करके अनेकान्तवाद का आश्रय  
लेना चाहिए ।

### (३) चेतनावत्त्व—

यह आत्मा निश्चयनय से शुद्ध चेतना से युक्त है और व्यवहारनय से

स्वीकार करवाती आत्मा अप्रच्युत, अनुत्पन्न अने स्थिर ऐकरूप तथा ऐक स्वभाव  
वाला होवाना कारणे तेमां रूपान्तर यत्वं असंलपित होवाती सुख-दुःखादि नडि  
होय. ते कारण्थी विलिन्न अवस्थाओ पणु थर् शकशे नडि. इरी ने आत्मा  
नारकत्वादि ने रूपमां छे, ते सर्वदा ते रूपमां न रहेशे. अटले ऐक लवमांथी  
पीला लवमा नर् शकशे नडि. वणी ने आत्मा अप्रसन्न छे ते पोताना पूर्वरूपनो  
परित्याग न करे तो तेने इरी प्रसन्नतामां आववुं ते असंलव छे, परंतु अप्रसन्न  
पणु कोठ वप्यत प्रसन्न होय अम देभाय छे; इरी अम नडि थर् शकशे. अ  
कारण्थी अनेकान्तवादनो त्याग करीने अनेकान्तवादनो आश्रय देवो नैर्धमे.

### (३) चेतनावत्त्व—

आ आत्मा निश्चयनयथी शुद्ध चेतनाथी युक्त छे अने व्यवहारनयथी 'आत्माने

પીડયત્યાત્માનમિતિ જ્ઞાનરૂપાશુદ્ધચેતનયા સદ્ધિતશ્ચેતનાવાનિત્યુચ્યતે । ચેતનાવાનિતિ કથશ્ચિદુચ્યતે; આત્મા વસ્તુતશ્ચેતનાસ્વરૂપ ઇવાસ્તિ । આત્મનો ગુણશ્ચેતનેતિ સર્વેષાં મતં, તદભિપ્રાયેણ ચેતનાવાનિત્યુક્તમ્ । ચેતના દ્વિવિધા-શુદ્ધા, અશુદ્ધા ચેતિ । જ્ઞાનચેતનૈવ શુદ્ધચેતના । કર્મચેતના, તથા કર્મફલચેતના ચાશુદ્ધચેતનોચ્યતે ।

### (૪) ઉપયોગવત્ત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિશ્ચયનયેન કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનરૂપાભ્યાં શુદ્ધોપયોગાભ્યાં સદ્ધિતો વ્યવહારનયેન મતિજ્ઞાનાદ્યુપયોગયુક્તશ્ચેત્યતોડયમુપયોગવાનિત્યુચ્યતે ।

‘આત્મા કો કર્મ પીડિત કરતે હૈ’ ઇસ પ્રકાર કે જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતના સે યુક્ત હૈ, અત ઇવ આત્મા ચેતનાવાન્ કહલાતા હૈ । આત્મા કો કિસી અપેક્ષા સે હી ચેતનાવાન્ કહતે હૈ, વાસ્તવ મેં તો આત્મા ચેતનારૂપ હી હૈ । ‘ચેતના આત્મા કા ગુણ હૈ’ ઇસા સવકા મત હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ડસે ચેતનાવાન્ કહ દિયા હૈ । ચેતના ડો પ્રકાર કી હૈ-શુદ્ધ ચેતના ઓર અશુદ્ધ ચેતના । જ્ઞાન ચેતના હી શુદ્ધ હૈ । કર્મચેતના ઓર કર્મ-ફલચેતના અશુદ્ધ ચેતના હૈ ।

### ( ૪ ) ઉપયોગવત્ત્વ-

યહ આત્મા નિશ્ચયનય સે કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ । વ્યવહારનય સે મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ, અત ઇવ આત્મા ઉપયોગવાન્ કહલાતા હૈ ।

કમોં પીડિત કરે છે’ ઓ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે. આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમાં તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે, ‘ચેતના આત્માનો ગુણ છે’ ઓ પ્રમાણે સર્વનો મત છે. ઓ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી લીધો છે. ચેતના ણે પ્રકારની છે. (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના. જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે.

### (૪) ઉપયોગવત્ત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. ઓ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે.

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोगाम्यां न भिन्न इति बोधयितुमुपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तभेद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम् । सर्वज्ञ-सिद्धान्ते तु द्रव्यं वस्तुतो गुणपर्यायेभ्यो न भिन्नम्, अतः कथञ्चिद्भेद-विवक्षयाऽऽश्रयिभावं परिकल्प्य—उपयोगवानिति निगदितम् ।

उपयोगो द्विधा—ज्ञानदर्शनभेदात् । सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः, । निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोगः । तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः—मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विभंग-भेदेन त्रीण्यज्ञानानि चेति । अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि । अत्रैकमेव केवलज्ञानं क्षायिकं सर्वा-

‘ आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है ’ यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है । ‘ ज्ञान और आत्मा का एकान्त भेद है ’ ऐसा नैयायिकों का मत है । इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है । सर्वज्ञ के सिद्धान्त में द्रव्य वास्तव में गुण और पर्यायों से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चित् भेद की विवक्षा करके आधाराधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है ।

उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलाता है । इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभङ्गज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान कहलाते हैं । ये विपरीतज्ञानरूप होने के कारण इन्हे ज्ञान की कोटि में रक्खा है । इनमें

आत्मा ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोगथी भिन्न नहीं, अथवा भाटे अने उपयोगवान् कह्यो छे. ‘ ज्ञान अने आत्मानो एकान्त भेद छे ’ अथवा नैयायिकोको मत छे, अथवा मतनु निराकरण करवा भाटे अथवा कथन करवाभां आयुं छे. सर्वज्ञना सिद्धान्तभां द्रव्य अथवा वास्तवभां गुण अने पर्यायोथी भिन्न नहीं, तेथी कथञ्चित् भेदनी विवक्षा करीने आधाराधेय भावनी कल्पनाथी उपयोगवान् कह्यो छे.

उपयोगना अथवा भेद छे—(१) ज्ञानोपयोग अने (२) दर्शनोपयोग, सविकल्प उपयोगने ज्ञानोपयोग कह्यो छे, अने निर्विकल्प उपयोग ते दर्शनोपयोग कह्यो छे. तेभां ज्ञानोपयोग आठ प्रकारनो छे. (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, तथा (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान अने (८) विभङ्गज्ञान. तेभां छेपटना त्रण अज्ञान कह्यो छे. परंतु विपरीतज्ञानरूप होवना कारणे तेने ज्ञाननी कोटिभां राख्या छे. अथवा अथवा

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति । अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायो-  
पशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि । त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि ।  
दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः— (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३)  
अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च । तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिकं सर्वतोऽनावरणं  
सर्वतः शुद्धं च । चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि  
देशतः शुद्धानि च सन्ति ।

‘ ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे ’ ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्,  
ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते

एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है । शेष मतिज्ञान  
आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देशतः आवरणरहित है और देशतः शुद्ध है । तीनो  
कुज्ञान अशुद्ध है ।

दर्शनोपयोग के चार भेद है—( १ ) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन  
और (४) केवलदर्शन । इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है  
और पूर्णरूप से शुद्ध है । चक्षुर्दर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक है, देशतः निरावरण  
है, और देशतः शुद्ध है ।

‘ आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है ’ ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त  
नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को  
ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पड़ेगा और इस प्रकार उन के मत में आत्मा जड़  
मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, संपूर्ण आवरणरही रहित अने पूर्ण शुद्ध है, आधीनां  
मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देश तकी आवरणरहित है, अने देश  
तकी शुद्ध है, तद्यु कुज्ञान अशुद्ध है.

दर्शनोपयोगना चार भेद है—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधि-  
दर्शन अने (४) केवलदर्शन. तेमांशी अेक केवलदर्शन क्षायिक है. पूर्णरूपथी आवरण-  
रहित है, अने पूर्णरूपथी शुद्ध है. चक्षुर्दर्शन आदि त्रयु क्षायोपशमिक है, देश  
तकी निरावरण है अने देश तकी शुद्ध है.

“ आत्मा ज्ञानादि गुणोथी सर्वथा भिन्न है. ” अेवो नैयायिक आदिनेो मत  
युक्त नथी-उचिन नथी, कारण के ज्ञानादि गुणोनेो संबंघ थया पड़ेलां डोर्ध समय  
आत्माने ज्ञानादि गुणोथी रहित पण मानवो पडशे, अने अे प्रभाणु तेना मतमा

जडरूपत्वापत्तिः । आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्वय-  
कल्पनायां पुनस्तत्सम्बन्धरूपसमवायस्य कल्पनायां महद् गौरवम्, तस्माद्  
गुणगुणिनोर्वस्तुतस्तादात्म्यस्वीकार एवौचित्यमर्हति । यदि गुणगुणिनोरभेद  
एव समवायोऽपीत्युच्येत तर्हि नास्ति काऽपि क्षतिः । उक्तञ्च—

“ गुणपर्ययतादात्म्यः—विशिष्टं द्रव्यमुच्यते ।

उत्पत्तिव्ययनैयत्व, —पर्यायास्तस्य शाश्वताः ॥ १ ॥ ” इति ।

(५) परिणामित्वनिरूपणम्—

अयमात्मा परिणामी । प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो जायगा । आत्मा में ज्ञान का नित्य—अनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो पदार्थ मानने पड़ेंगे, और उन दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिए तीसरा समवाय सम्बन्ध मानना होगा, यह बड़ा गौरव होगा । अत एव गुण और गुणीका वास्तव में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है । अगर गुण और गुणी के अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है । कहा भी है :—

“ जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से युक्त हो वह द्रव्य कहलाता है । उस द्रव्य की पर्याये सदा उत्पत्ति और विनाशवाली हैं, और वे अनादिप्रवाहरूप हैं ” ॥ १ ॥

( ५ ) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है । प्रत्येक समय एक पर्याय को छोड़कर दूसरा पर्याय

आत्मा जड थर्ड जशे. आत्माने विषे ज्ञानने नित्य—अनादि संध स्वीकार करवामां आवे तो ये पदार्थ मानवा पडशे, अने ते अने अर्थात् आत्मा अने ज्ञान ते अने ने सम्बद्ध करवा माटे त्रीजे कोर समवाय संध मानवे पडशे. ये लारे गौरव थशे. ते कारणुथी गुणु अने गुणीने वास्तवमां तादात्म्य संध स्वीकार करवे ये उचित छे. अथवा गुणु—गुणीना अलेहने ज समवाय संध उडे तो तेने स्वीकार करवामां कोर प्रकारे हानि नथी. कहु पणु छे:—

‘ जे गुणु अने पर्यायना तादात्म्यथी युक्त होय ते द्रव्य कहेवाय छे ते द्रव्यनी पर्याये सदाय उत्पत्ति अने विनाश वाणी छे, अने ते अनादिप्रवाहरूप छे. ’ ॥१॥

(५) आत्मानुं परिणामीपणुं—

आत्मा परिणामी छे. प्रत्येक समय जेक पर्यायने छोडी भीजे पर्याय धारणु करवे ते परिणाम कहेवाय छे. ते परिणाम जेमां होय ते परिणामी कहेवाय छे.



सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातुर्विज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

### (६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है । यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी । इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है । आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा । ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है । अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई । अत एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए । आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है ।

### ( ६ ) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

आ विशेषणार्थी आत्मानो कूटस्थनित्यतानुं निराकरणं कथुं छे. "आत्मा कूटस्थ नित्य छे" ओवो स्वीकार करवाथी आत्मा ओवो पडेलां हुतो तेवो न ज्ञानोत्पत्तिना समयमां पणु रडेथे, ओवी दशांमां आत्मा पडेलां अज्ञाता हुतो तो पधी पदार्थोना ज्ञाता केवी रीते थसे ?, केमके—आपना मत प्रमाणे प्रतिनियत स्वरूपार्थी च्युत नहि थतां ओवो छे तेवो न अनी रडे ते कूटस्थता छे. अगर तो पधीथी आत्माने पदार्थोना ज्ञाता स्वीकार करे छे तो प्रथम न्ने अज्ञाता हुतो तेनुं ज्ञाताना रूपमां परिणमन थर्छ गथुं, तेथी कूटस्थरूप नित्यता नाश पाभी गर्छ, आ कारणार्थी आत्माने परिणामी अवश्य मानवो न्नेर्छ ओ. आत्मा कूटस्थ नित्य नथी परंतु परिणामी नित्य छे.

### (६) आत्मानुं प्रभुत्व—

निश्चय नय प्रमाणे आत्मा मोक्ष अने मोक्षना कारणरूप शुद्ध परिणामो

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयतः संसारतत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-शक्तिमत्त्वाच्च प्रभुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-शक्तिमत्तया च प्रभुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-दिति नास्तिकमतं निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मनः प्रभुत्वमस्तीति संवेद्यते । यथा-अभ्रपटलमलाच्छन्नं रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैर्मल्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽभ्रपटलमलादि-व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिभिरशुद्ध आत्मा क्रमशः शुद्धिं लभमानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यवाला है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अशुद्ध परिणामों के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रभु कहलाता है ।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’ ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में भी आत्मा का प्रभुत्व सूचित किया गया है । जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, चन्द्रमा की ज्योति, सुवर्ण या चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अभ्रपटल या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध हो जाने है, उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है ।

भाटे परिष्कृत-सामर्थ्य वाणो छे. तथा व्यवहार नयथी संसार अने संसारना कारणरूप अशुद्ध परिष्कृतो भाटे परिष्कृत थवानी शक्तिथी युक्त छे. आ कारणथी आत्मा प्रभु कडेवाय छे.

आ आत्मा मोक्षमार्गोपदेश देवानी, रत्नत्रयना द्वारा मोक्षसाधननी अने सर्वज्ञताप्राप्तिनी शक्तिथी युक्त होवाना कारणे प्रभु छे. “कोई सर्वज्ञ नहीं है” अथवा जे नास्तिकमत छे तेनुं निराकरण करवा भाटे सर्वज्ञरूपमां पणु आत्मानुं प्रभुत्व सूचित करुं छे. जेम-मेघसमूह तथा भणथी आच्छादित सूर्य, चंद्रमानी ज्योति, सुवर्ण अथवा चांदी वगैरे क्रमथी निर्मल थतां थतां मेघसमूह अथवा भणना असी जवाथी पूर्ण शुद्ध रूपमां आवी जाय छे-शुद्ध थय जाय छे, ते प्रमाणे राग-द्वेष आदिथी अशुद्ध आत्मा धीरे धीरे शुद्ध थयने पूर्ण शुद्धता प्राप्त करी दे छे. अ प्रमाणे पूर्ण शुद्ध आत्मा ज सर्वज्ञ कडेवाय छे.

किञ्च—आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

### (७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा—अदृष्टादिकर्मकरणात्, निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात्, व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नो कर्मबाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्—‘आत्मा कर्ते’ति ।

दूसरी बात यह है कि—आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वकीय कल्याण—साधन में स्वयं समर्थ है । इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है । अतः आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

### (७) आत्माका कर्तृत्व—

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता होने से; तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म—बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

‘आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है’ सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है ।

भील वात अे छे के:—आत्मा पोतानुं कल्याणु करवामां भीलनी अपेक्षा राभते। नथी, ते पोताना कल्याणसाधनमां पोते न समर्थं छे. ते कारणथी आत्मानुं प्रभुत्व सिद्ध थाय छे. अे कारणथी आत्महितना अभिलाषी पुरुषोअे मोक्षना कारणभूत तप अने संयमनी आराधनामां प्रवृत्त थनुं लेई अे.

### (६) आत्मानुं कर्तृत्व—

आ आत्मा अदृष्ट आदि कर्मो करवाथी, निश्चयनयनी अपेक्षाअे शुद्ध लावोने कर्ता होवाथी तथा व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म, लावकर्म तथा नोकर्म—बाह्यशरीर आदिने कर्ता होवाथी कर्ता कहेवाय छे.

“आत्मा अेकान्तइथी अकर्ता छे.” सांख्यना आ मतनुं निराकरणु करवा माटे आत्माने कर्ता विशेषणु आभ्युं छे.

औदारिकादिशरीरस्य कर्ताऽस्ति, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुलालः । यत्पुनरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथाऽभ्रविकारः । यश्च शरीरस्य कर्ता स आत्मा, इत्येवमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति । अत्रादिमत्त्वविशेषणं मेर्वादीनुपादाय हेतोरनैकान्तिकत्ववारणाय ।

यद्वा-आत्मा कर्ता, स्वकर्मफलभोक्तृत्वात् वणिकृषीवलादिवत् । आत्मा स्वकृतकर्मफलभोक्ता तस्मात् कर्ता, यथा वणिकृषीवलादयोऽकृतकर्मणः फलं न प्राप्नुवन्ति ।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान् और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-घडेका कर्ता कुम्भार । जो वस्तु विना कर्ता की होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का विकार । जो शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है । इस प्रकार आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है । यहाँ 'आदिमत्' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकान्तिक दोषका निवारण किया गया है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं हैं ।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का भोक्ता है, जैसे वणिक या किसान । आत्मा अपने कर्मों के फलका भोक्ता है इस कारण कर्ता है । जैसे-वणिक या किसान आदि विना किये कर्म का फल नहीं भोगते, इसी प्रकार आत्मा विना किये कर्म का फल नहीं भोगता ।

आ औदारिकादि शरीरनेो केाँ कर्ताँ छे, कारण के औदारिकादि शरीर, आदिमान् अने प्रतिनियत आकार वाणुं छे, जेभ घडनेो कर्ता कुम्भार. जे वस्तु कर्ता विनानी डोय छे, ते आदिमान् अने नियत आकार वाणी डोय नडि, जेभ वादणनेो विकार. जे शरीरनेो कर्ताँ छे ते आत्मा छे. जे प्रकारे आत्मानुं कर्तृत्व सिद्ध थाय छे. अही 'आदिमत्' विशेषणुथी मेरु आदिथी थवा वाणा अनेकान्तिक दोषनुं निवारणु क्युं छे, कारण के ते 'आदिमान्' नथी.

अथवा—आत्मा कर्ताँ छे, कारण के—ते पोताना कर्मनेो लोडता छे. जेभ वणिक अथवा जेडुत. आत्मा पोतानां कर्मनेां डलनेो लोडता छे, ते कारणुथी कर्ताँ छे, जेभ वणिक अथवा जेडुत आदि, कर्म क्यो विना कर्मनुं डण लोडवता नथी. ते प्रमाणे आत्मा कर्म क्यो विना तेनुं डण लोडवतो नथी.

यद्वा—आत्मा सुकृतदुष्कृतकर्मणामकर्ता न भवति, सुकृतदुष्कृतकर्म-फलरूपसुखदुःखानुभवात् । अकर्तुरात्मनः सुखदुःखानुभवो न युज्यते, तथा सति अतिप्रसंगात् । मुक्तानामपि सांसारिकसुखदुःखानुभवापत्तेः, अकर्तृत्वाऽ-विशेषात् ।

अनुभवितृत्वेन भोक्तृत्वसिद्धिः, भोक्तृत्वेन च कर्तृत्वसिद्धिः । यद्य-मात्मा कर्ता न भवेत्तदाऽनुभविताऽपि न भवेत् । न चानुभवितुः कर्तृत्वस्वीकारे मुक्तस्यापि कर्तृत्वप्रसङ्गः, इति वाच्यम्, मुक्तात्मनः साक्षिरूपेणानुभवसत्त्वेऽपि द्रव्यभावकर्मरहितत्वादेव सांसारिकविषयसुखादिजनककर्मकर्तृत्वासंभवेनाकर्तृत्वात्,

अथवा—आत्मा सुकृत और दुष्कृतरूप कर्मों का अकर्ता नहीं है, क्यों कि वह अपने सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फलस्वरूप सुख—दुःख का अनुभव करता है । आत्मा अकर्ता होता तो उसे सुख—दुःख का अनुभव नहीं होना चाहिए था । कर्ता न होने पर भी फल का भोक्ता मानने से गडबडी मच जायगी । फिर तो मुक्त जीवों को भी सांसारिक सुख और दुःख भोगना पड़ेगा, क्यों कि वे भी अकर्ता है ।

आत्मा अनुभव करने वाला होने के कारण भोक्ता सिद्ध होता है और भोक्ता होने के कारण कर्ता सिद्ध होता है । आत्मा कर्ता न होता तो अनुभविता ( अनुभव करनेवाला ) भी न होता । ‘ अनुभव करनेवाले को कर्ता मानने पर मुक्तात्मा को भी कर्तापन का प्रसङ्ग आयगा ’ ऐसा कहना उचित नहीं है, क्यों कि मुक्तात्माओं को साक्षीरूपसे अनुभव होने पर भी, द्रव्य—भाव को से रहित होने के कारण वे सांसारिक

अथवा आत्मा सुकृत अने दुष्कृत—रूप कर्मोंना अकर्ता नथी, कारण के ते पोताना सुकृत अने दुष्कृत रूप कर्मोंना इलस्वरूप सुख—दुःखने अनुभव करे छे. आत्मा अकर्ता होत तो तेने सुख—दुःखने अनुभव नहि थवे न्नेछे. कर्ता न होवा छतांय पण इलने लोक्ता होवाथी गण्ड थछे न्ने. इरी तो सुकृत एवने पण संसारनुं सुख अने दुःख लोगवपुं पडथे; कारण के ते पण अकर्ता छे.

आत्मा अनुभव करवा वाणो होवाथी लोक्ता सिद्ध थाय छे, अने लोक्ता होवाना कारणे कर्ता सिद्ध थाय छे. आत्मा कर्ता न होय तो अनुभविता ( अनुभव करवा वाणो ) न होय. ‘ अनुभव करवा वाणाने कर्ता मानवाथी मुक्तात्माने पण कर्तापणाने प्रसंग आवथे, ’ अने इडेवुं ते उचित नथी. कारण के मुक्तात्माओंने साक्षीरूप अनुभवथी होवा छतांय द्रव्य, भाव कर्मोंथी रहित होवाना कारणे ते

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानामभोक्तृत्वं च सिध्यति । प्रकृते हि कर्तृशब्देनादृष्टादिजनककर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नातिप्रसंगः । तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभविता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तृर्भोक्तृत्वानुपपत्तेः ।

### (८) भोक्तृत्वसिद्धिः—

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धमात्मस्वभावं विस्मृत्य परवस्तुनि मोहितः सन् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषवशोऽहर्निशं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमानस्तद्वियोगे सति चिन्ताव्याकुलितचेता आर्त्तरीन्द्रध्यानमुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः

विषयसुख आदि के जनक कर्मों के कर्ता नहीं है, इस कारण वे अकर्ता है । और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखो के भोक्ता भी नहीं है । यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के जनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अति-प्रसङ्ग नहीं आता, अत एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का भोक्ता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है । जो कर्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं है ।

### (८) आत्मा का भोक्तृत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को भूलकर पर-पदार्थों में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है । राग-द्वेष के वश हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होता हुआ, और उनका वियोग होने पर चिन्ता से व्याकुलचित हो कर आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को प्राप्त होता है, और इस

संसारना विषय-सुख वगैरेने उत्पन्न करनार कर्मोने कर्ता नथी. अे कारणथी ते आत्मा अकर्ता छे, अने अकर्ता होवाना कारणे ते संसारना विषयसुखोना लोकता पणु नथी. अहिं 'कर्ता' शब्दथी अदृष्ट आदिना जनक कर्मोने कर्ता अ विवक्षित छे. तेथी मुक्त आत्माभां अतिप्रसंग आवतो नथी. अे कारणथी अेम सिद्ध थयुं के अे संसारना सुख-दुःख वगैरेने लोकता छे, ते अेना कारणभूत कर्मोने कर्ता पणु होय छे, अे कर्ता नथी ते लोकता पणु नथी.

### (८) आत्मानुं लोकतत्त्व—

आत्मा मोहना उदयथी शुद्ध आत्मस्वरूपने भूली अर्धने पर-पदार्थोभां मोहित थर्धने राग-द्वेष करे छे, राग-द्वेषने वश थर्धने रात्री अने दिवस नवा-नवा विषयोने संग्रह करवा भाटे प्रयत्नशील रहते थके, अने तेने वियोग थतां चिन्ताथी व्याकुल-चित्त थर्धने आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यान ने प्राप्त थाय छे, अने ते कारणथी पोताना

સમુપાદત્તે । યથા કોઽપ્યજ્ઞાની વ્યાધિનિદાનભૂતમપથ્યમશ્નન્અવાઙ્ચિછતમપિ જ્વરાદિકં સ્વયમુત્પાદયતિ, તથાઽયમાત્મા કર્મવન્ધનમવાઙ્ચન્નપ્યાર્તરૌદ્રધ્યાનવશેન કર્મવન્ધનં પ્રાપ્નોતિ । યથા કર્મવન્ધનં સ્વયમેવાદત્તે, તથા તત્ફલમપિ વાહ્યં કિશ્ચિન્નિમિત્ત-મપેક્ષ્ય સ્વયમેવોપમુહુક્તે । એવં ચાત્મનો ભોક્તૃત્વં સિધ્યતિ । ભોક્તૃત્વાચ્ચ કર્તૃ-ત્વમપિ તસ્ય નિર્વાધમ્ ।

સાંખ્યસિદ્ધાન્તે પ્રકૃતેઃ કર્તૃત્વં, ન તુ જીવસ્ય, ભોક્તૃત્વં ચાપિ જીવસ્યોપચરિતમેવ । દર્પણાકારાયાં વુદ્ધૌ સંક્રાન્તાનાં સુખદુઃસ્વાદીનાં સ્વાત્મનિ

કારણ અપની આત્મા મેં કર્મ-રજ ઇકટ્ટી કર લેતા હૈ । જૈસે અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગ કે કારણભૂત અપથ્ય કા સેવન કરતા હુઆ ન ચાહતે હુએ મી જ્વર આદિ કો ઉત્પન્ન કર લેતા હૈ, ઁસી પ્રકાર આત્મા કર્મવન્ધન કી ઇચ્છા ન કર કે મી આર્ત-રૌદ્રધ્યાન કે અધીન હોકર કર્મવન્ધ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ । જૈસે કર્મવન્ધ કો આત્મા સ્વયં પ્રહણ કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર કિસી વાહ્ય નિમિત્ત કી અપેક્ષા સે ઁસકા ફલ મી સ્વયં હી મોગતા હૈ । ઇસી પ્રકાર આત્મા મેં મોક્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ, ઁર મોક્તા હોને સે ઁસ મેં કર્તાપન મી વિના કિસી વાધા કે સિદ્ધ હો જાતા હૈ ।

સાંખ્યમત સે પ્રકૃતિ કર્તા હૈ, જીવ નહીં, ઁર મોક્તાપન જીવ મેં ઉપચાર સે હૈ । દર્પણાકાર વુદ્ધિ મેં પ્રતિબિમ્બિત હોને વાલે સુખ-દુઃખ આદિ કા આત્મા મેં પ્રતિબિમ્બ

આત્માને વિષે કર્મ-રજ (કર્મના રજકણા) એકઠી કરી લે છે, જેમ અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગના કારણભૂત અપથ્યનું (રોગ ઉત્પન્ન કરે તેવું) સેવન કરીને, પોતે ઇચ્છતો નથી તો પણ જ્વર (તાવ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મબંધનની ઇચ્છા નહિ કરવા છતાંય પણ આર્ત-રૌદ્રધ્યાનને આધીન થઈને કર્મ બંધનને પ્રાપ્ત થાય છે. જેવી રીતે કર્મબંધનને આત્મા પોતે જ ટુકણ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ વાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનું ફલ પણ પોતે જ ભોગવે છે. એ પ્રમાણે આત્મામાં ભોક્તાપણું સિદ્ધ થાય છે. અને ભોક્તા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની વાધા વિના કર્તાપણું પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

સાંખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી. ભોક્તાપણું તે પણ જીવમાં ઉપચારથી છે દર્પણાકાર વુદ્ધિમાં પ્રતિબિમ્બિત (પ્રતિબિંબરૂપે) થવાવાળા (દેખાવવાવાળા) સુખ-દુઃખ આદિનું પ્રતિબિંબ આત્મામાં પડી શકતું નથી, સ્ફટિક

प्रतिबिम्बोदयासभवात् । स्फटिकदर्पणादावपि परिणामेनैव प्रतिबिम्बोदय-  
समर्थनात् । तादृशपरिणामाङ्गीकारे च जीवस्य कर्तृत्वं, स्वत एव भोक्तृत्वं  
च सिद्धम् ।

### (९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्—

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाणः । निश्चयनयेन लोकाकाशपरिमाणोऽ-  
संख्यातप्रदेशी च । व्यवहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातेन सूक्ष्मशरीरेण  
स्थूलशरीरेण वा समानपरिमाणो भवति, तस्मादयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते ।

नहीं पड सकता । स्फटिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पडता है सो परिणामी  
होने के कारण ही पडता है । स्फटिक आदि एकान्त अपरिणामी होते तो उन में  
किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता था । इस प्रकार का परिणाम स्वीकार  
कर लेने पर जीव में कर्तापन सिद्ध हो जायगा और फिर भोक्तापन भी स्वतः सिद्ध  
हो जायगा ।

### (९) आत्माका शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है । वही  
आत्मा का भी परिमाण है । आत्मा निश्चयनय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात  
प्रदेशी है । व्यवहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म या स्थूल शरीर  
का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण  
कहलाता है ।

तथा दर्पण आदिमां ने प्रतिबिम्ब पडे छे, ते परिणामी होवाना कारणे पडे छे.  
स्फटिक आदि ने एकान्त अपरिणामी होत तो तेमां केध पणु वस्तुनुं प्रतिबिम्ब  
पडी शकत नही. आ प्रमाणे परिणाम स्वीकार करी देवाथी एवमां कर्तापणुं सिद्ध  
थध नशे, अने लोकतापणुं पणु स्वतः सिद्ध थध नशे.

### (९) आत्मानुं शरीरप्रमाण—

आत्मा प्राप्त शरीरनी बराबर छे, अर्थात् शरीरनुं ने परिमाण छे ते  
आत्मानुं पणु परिमाण छे. आत्मा निश्चयनयथी लोकाकाशनी बराबर असंख्यातप्रदेशी  
छे. व्यवहारनयथी शरीर-नामकर्मना उदयथी प्राप्त थअएल सूक्ष्म अथवा स्थूल  
शरीरनुं ने परिमाण छे. ते परिमाण वाणो आत्मा छे. अटला भाटे आत्मा  
शरीरपरिमाण कहेवाय छे.



आत्मा सर्वव्यापीति वेदान्तिकादिमतं, तथाऽऽत्मा-अणुरिति कस्यचिन्मतं च निराकर्तुं शरीरपरिमाण इत्युक्तम् । आत्मनः सर्वव्यापित्वे निष्क्रियत्वाद् भवान्तरसंक्रान्तेरसंभवापत्तिराकाशवत् ।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी, शरीर एव तद्गुणोपलब्धेः, अग्न्यौष्ण्यवत्, अथवा घटादिगुणवत् । यथा घटादेर्वर्णादयो गुणा यत्रव देशे दृश्यन्ते तत्रैव तस्यास्तित्वं प्रतीयते, नान्यत्र । एवमात्मनोऽपि गुणाश्चैतन्यादयो शरीर एव दृश्यन्ते, न वहिः, तस्माद् देहप्रमाण एवावमात्मेति । न च पुष्पादीनां

‘आत्मा सर्वव्यापक है’ ऐसा वेदान्तिक आदि का मत है । कोई-कोई यह भी मानते हैं कि-‘आत्मा अणु-परिमाणवाला है’ इन सब मतों का निराकरण करने के लिए आत्मा को शरीर-परिमाण विशेषण लगाया है । आत्मा को सर्वव्यापक माने तो वह निष्क्रिय ठहरेगा और भवान्तर में नहीं जा सकेगा, जैसे आकाश ।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी है, क्यों कि शरीर में ही उसके गुण उपलब्ध होते हैं, जैसे अग्नि की उष्णता अथवा घट आदि । जैसे घट आदि के गुण रूप वगैरह जिस जगह देखे जाते हैं उसी जगह उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, अन्यत्र नहीं । इस प्रकार आत्मा के गुण चैतन्य आदि जहाँ पाये जाँएँ वहीं उसका अस्तित्व मानना चाहिए । आत्मा के गुण शरीर में ही पाये जाते हैं अतः शरीर में ही आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना उचित है, अतः आत्मा शरीरपरिमाण ही है ।

‘आत्मा सर्वव्यापक छे.’ अयेवे वेदांतिक आदिना मत छे डोर्ध डोर्ध अयेम पणु माने छे डे:—“आत्मा अणु-परिमाणवाणो छे.” ते सर्व भतेणु निराकरणु करवा भाटे आत्माने शरीर-परिमाणु विशेषणु लगाउयुं छे. आत्माने सर्वव्यापक मानशे तो ते निष्क्रिय करशे अने भवान्तरमां न्ध शकशे नडि, नेम आकाश.

आत्मा शरीरमात्रव्यापी छे डारणु डे शरीरमां न् तेना गुणु उपलब्ध थाय छे. नेम अग्निनी उष्णता अथवा घट आदिना गुणु रूप वगेरे ने न्ग्यामां नेवामां आवे छे, ते न् न्ग्यामां तेनुं अस्तित्व प्रतीत थाय छे, अन्यत्र (भीन स्थणे) नडि. अये प्रमाणे आत्मानां चैतन्य आदि गुणु नेवामां आवे, त्यां न् तेनुं अस्तित्व मानवुं नेधअे. आत्माने गुणु शरीरमां न् नेवामां आवे छे ते डारणुथी शरीरमां न् आत्माना अस्तित्वने स्वीकार करवे ते उचित छे. तेथी आत्मा शरीर

गन्धादिगुणः पुष्पाद्यवस्थितिदेशादन्यत्राप्युपलभ्यते, तथा च हेतोरनैकान्तिकत्वा-  
पत्तिरिति वाच्यम्, पुष्पाद्याश्रितगन्धादिपुद्गलानां वैस्रसिक्क्या प्रायोगिक्या वा  
गत्या गतिमत्त्वेन तदुपलम्भकघ्राणादिदेशपर्यन्तगमनोपपत्तेरिति ।

आत्मा सर्वगतो न भवति, तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात् । यस्य  
यस्य गुणः सर्वत्रानुपलभ्यमानः स स सर्वगतो न भवति, यथा घटः । अयं चात्मा  
सर्वत्रानुपलभ्यमानगुणवान्, तस्मात् सर्वगतो न भवतीति । व्यतिरेक्युदाहरणं  
तु व्योमादि । न चासिद्धोऽयं हेतुरिति वाच्यम्, देहव्यतिरिक्तदेशे बुद्ध्यादीनां

यह कहना ठीक नहीं है कि—‘फूल आदि का गुण—गन्ध वगैरह फूल की जगह से  
दूसरी जगह भी पाये जाते हैं, इस कारण आपका हेतु अनेकान्तिक है’ क्यों कि गन्ध के  
आधारभूत पुद्गल स्वाभाविक गति से या प्रयत्नजन्य गति से गतिमान् होने के कारण,  
गन्ध को ग्रहण करने वाले घ्राण—देश तक आते हैं । तात्पर्य यह है कि जहां फूलकी  
गन्ध है वहाँ उस गन्ध के आधारभूत गन्ध—पुद्गल भी होते हैं, इस कारण हेतु में  
व्यभिचार नहीं आता ।

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है, क्यों कि आत्मा के गुण  
सर्वत्र नहीं पाये जाते । जिस—जिस के गुण सर्वत्र उपलब्ध नहीं  
होते, वह पदार्थ सर्वव्यापक नहीं होता, जैसे घट । आत्मा के गुण  
सर्वत्र नहीं पाये जाते, अतः वह सर्वव्यापक नहीं है । ‘आकाश यहां व्यतिरेकी  
उदाहरण है । ‘यह हेतु असिद्ध है,’ ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि देह से अति-

परिभाष्ये छे. “कूल आदिनो गुणु—गंध वगेरे कुलनी जग्या विना भीणु जग्याये  
पणु जेवामां आवे छे ते कारणथी आपनो हेतु अनैकान्तिक छे.” जेम कडेपुं ते  
ठीक नथी. कारणु के गंधना आधारभूत पुद्गल स्वाभाविक गतिथी अथवा  
प्रयत्नजन्य गतिथी गतिमान होवाना कारणे, गंधने ग्रहणु करवा वाणा घ्राणुदेश  
सुधी आवे छे. तात्पर्ये जे छे के:—ज्यां कूलनी गंध छे त्यां ते गंधना आधारभूत  
गंधपुद्गल पणु होय छे, आ कारणु हेतुमां व्यभिचार आवतो नथी.

आत्मा सर्वव्यापक नथी. केमके आत्मनो गुणु सर्वत्र जेवामां आवतो नथी,  
जेनो गुणु सर्वत्र उपलब्ध थतो नथी, ते पदार्थ सर्वव्यापक होय नहि, जेम घट.  
आत्मनो गुणु सर्वत्र जेवामां आवतो नथी, जे कारणथी ते सर्वव्यापक नथी.  
आकाश अहि व्यतिरेकतुं उदाहरणु छे. “ते हेतु असिद्ध छे.” जेम कही शकाशे

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् बहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए.

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है; अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि. कारणु के देहथी अतिरिक्त (देह सिवाय) देशमां बुद्धि आदि गुणानो सद्भाव नथी. ओ प्रमाणे सौओ स्वीकारेणुं छे. शरीरमां आत्माना गुणानुं अस्तित्व छे न, ओ कारणथी हेतु असिद्ध नथी. आ प्रमाणे शरीरनी गहार आत्मानुं अस्तित्व मानवुं त्यजने पोताना देहमां न अस्तित्व मानवुं लेधओ.

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कारणु के ते चेतन छे. ने व्यापक होय छे ते चेतन होय नहि, नेम आकाश. आत्मा चेतन छे ते कारणथी व्यापक नथी.

आ हेतुथी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाथी पूर्वोक्त हेतुथी (केभके शरीरमां न तेना गुणु नेवामां आवे छे ओ हेतुथी) आत्मानी शरीरप्रमाणता पथु सिद्ध थध नय छे. आठ समयमां संपन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थामां चौद राजूलोकमां आत्मानुं व्याप्त थध नवानुं अहि ने मान्युं छे, ते कादाचित्के

सर्वव्यापित्वं, तत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः ।

आत्मा श्यामाकतण्डुलमात्रो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, तावन्मात्रस्योपात्तशरीरव्यापित्वात्, तिले तैलवत् त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापित्वेन चोपलभ्यमानगुणत्वात्, तस्मादुपात्तशरीरे त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापीति सिद्धम् ।

### (१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैर्ग्राह्यत्वात्, खड्गादिभिरच्छेद्यत्वात्, शूलादिभिरभेद्यत्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात् ।

कादाचित्क ( कभी—कभी होनेवाला ) है, उस से व्यभिचार नहीं आता ।

आत्मा श्यामाक धान्यकण बराबर नहीं है, न अंगूठे के पर्व ( पोर ) के बराबर ही है, इतना सा आत्मा एक साथ समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के गुण तो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे तिलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है, अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में त्वचापर्यन्तव्यापी है ।

### (१०) आत्मा का अमूर्तत्व—

आत्मा अमूर्त है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह खड्ग आदि से छेदा नहीं जा सकता, शूल आदि से भेदा नहीं जा सकता, वह अरूपी है, अनादि काल से अमूर्त परिणामवाला है और वह नित्य है ।

( कदाचित्थं यथावाणुं ) छे, तेमां व्यभिचार आवतो नथी.

आत्मा श्यामाक धान्यना कणु अराअर नथी; तेमअ अंगूठाना पर्व ( पोर ) अराअर पणु नथी. अेटले आत्मा अेक साथे समस्त शरीरमां व्यापक थअ शकतो नथी, परंतु आत्माना गुणु तो संपूर्ण शरीरमां उपलब्ध थाय छे, अेम तलमां तेल सर्वत्र होय छे. अे कारणथी अे सिद्ध थयुं के आत्मा आ प्राप्त शरीरमां त्वचा—आमडी सुधी व्यापी रहेले छे.

### (१०) आत्मानुं अमूर्तत्व

आत्मा अमूर्त छे. कारण के ते इन्द्रियो द्वारा अहणु करी शकतो नथी, अउग ( तलवार ) आदिथी छेदी शकतो नथी, शूल आदिथी लेदी शकतो नथी, अरूपी छे, अनादि कालथी अमूर्त परिणामवाणे छे. अने ते नित्य छे.

अनेन—“आत्मा नातीन्द्रियो नापि जडाद् भिन्नः” इति नास्तिकमतं निरस्तम् ।

नन्वमूर्तोऽयमात्मा नेत्रादिभिरिन्द्रियैस्तु न विज्ञेयस्तर्हि कथमिमं जनो जानीयात्—‘अस्त्यत्रात्मे’—ति ।

श्रूयताम्—कस्यचित् समक्षमष्टवर्षीयो बालस्तिष्ठति; तत्समानाकृति-  
भृन्मयी पुत्तलिकाऽपि तिष्ठति । तत्रासौ द्रष्टा पश्यति—इयं पुत्तलिका चक्षुर्ग्राण-  
कर्णयुक्ताऽपि द्रष्टुं घ्रातुं श्रोतुं वा न शक्नोति, पुनरयं बालश्चक्षुर्भ्यां पश्यति,  
पुष्पमाघ्राति, कस्यचिद्भाषितं शृणोति च ।

इस कथन से नास्तिक के इस मत का निराकरण हो गया कि—‘आत्मा न अतीन्द्रिय है और न जड से भिन्न है’ ।

शङ्का—आत्मा अमूर्त है, नेत्र आदि इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता तो मनुष्य कैसे समझे कि आत्मा का अस्तित्व है ? ।

समाधान—सुनिये । मान लीजिए किसी के सामने आठ वर्ष का बालक खड़ा है, उसी के समान आकृतिवाली मिट्टी की एक पुतली भी रक्खी है । दोनों को देखने वाला देखता है कि—यह पुतली नेत्र, नाक और कान से युक्त तो है किन्तु देखने में सूंघने में और सुनने में समर्थ नहीं है, और यह बालक आँखों से देखता है, फूल सूँघता है, और किसी का भाषण सुनता है ।

आ इथनथी नास्तिकना अने मतनुं निराकरणं यथं गयुं के “आत्मा अतीन्द्रिय नथी, अने जडथी भिन्न नथी.”

शंका—आत्मा अमूर्त छे, नेत्र आदि इन्द्रियेथी जखी शकते नथी; ते पछी भाषणे केवी रीते समञ्ज शकथे के आत्मानु अस्तित्व छे.

समाधान—सांलणे ? मानी वेा के केछ (भाषण)ना सामे अेक आठ वर्षने आणक उलो छे. तेनी आनुमां तेना जेवी समान आकृतिवादी भाटीनी अेक पुतली पणु रापी छे. आ अन्नेने जेवावाणां लुवे छे के—आ पुतली नेत्र, नाक, कानथी युक्त तो छे; परन्तु जेवामा, सुंघवामां अने सांलणवामां समर्थ नथी. अने आ आणक नेत्रथी लुवे छे, फूल सूंघे छे अने केछनुं भाषण सांलणे छे.

इयं च पुत्तलिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं बालः सकलेन्द्रियैर्विषय-  
मुपभुज्य सुखीभवितुमिच्छति । यदि कोऽपि खड्गमुत्थाप्येमावभिधावेत् तदा  
पुत्तलिका पूर्ववदेवावस्थिता भविष्यति, बालस्तु खड्गाभिघातजनितदुःखादुद्विज्य  
पलायिष्यते । असौ बालः कमपि बुभुक्षितं बालमुपकरिष्यति भोजनीयवस्तु-  
प्रदानेन, कमपि चान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति । पुत्तलिका तु  
हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं प्रभविष्यति । यदि मिष्टाशनाय बाल आहूतो  
भवेत् तदानीं सत्वरमागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तज्जन्यसुखानुभवोऽपि तस्य  
जायेत । पुत्तलिका तु नागमिष्यति न किञ्चिद् भोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुभवस्य ? ।

यह पुतली कुछ भी इच्छा नहीं करती मगर बालक सभी इन्द्रियों के विषयों का भोग करके सुखी होने की इच्छा करता है । अगर कोई तलवार उठाकर इन्हें मारने दोड़े तो पुतली ज्यों की त्यों खड़ी रहेगी मगर बालक तलवार के आघात के दुःख से उद्विग्न हो कर या आघात की आशङ्का से भाग जायगा । वह बालक किसी भूखे बालक को भोजन देकर उसका उपकार भी करेगा और किसी बालक को थप्पड़ आदि मारकर रुलाएगा, मगर पुतली किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं है । अगर बालक को मिठाई खाने के लिए बुलाया जाय तो उसी समय आकर वह मिठाई पर टूट पड़ेगा और उसे मिठाई खाने के सुख का अनुभव भी होगा । पुतली न मिठाई के लिए आएगी न खाएगी, सुख का अनुभव करने की तो बात ही अलग रही । अत एव यह निश्चय होता है कि बालक में जीव का लक्षण ज्ञान

आ पुतली कांश्च पशु इच्छति कर्तुं नथी. परंतु आणक सर्व इन्द्रियोना विषयोना भोग करीने सुभी थवानी इच्छति करे छे. अथवा कोर्ध तलवार उठावीने तेने मारवा दोडे तो पुतली तो नेम छे तेम त्यां उली रहेशे. परंतु आणक तलवार मारवाना दुःभथी उद्विग्न-चित्ततुर अनीने अथवा तो मारवानी आशङ्कथी लागी नशे.

आ आणक कोर्ध लूथ्या आणकने भोजन आपीने तेने उपकार पशु करशे अने कोर्ध आणकने थपड आदि मारीने तेने शवशवशे, परंतु पुतली कोर्धनुं हित के अथवा अहित करवा समर्थ नथी. अथवा आणकने मिठाई आवा माटे जोलाववामां आवे तो तेन समये आपीने मिठाई पर टूटी पडशे अने तेने मिठाई आवानो सुभनो अनुभव पशु थशे. पुतली मिठाई माटे आवशे नडी. अने आशे पशु नडी. तो सुभना अनुभवनी तो वात न नही रही. आ कारणथी निश्चय थाय छे के

તથા ચાયં નિશ્ચયઃ—વાલે જીવલક્ષણસ્ય જ્ઞાનસ્ય સદ્ભાવાદ્ વાલશરીરે જીવોઽસ્તીતિ ।  
 એવમન્યત્રાપિ સજીવશરીરે જીવસ્ય સત્તા નિશ્ચેતું શક્યતે । વસ્તુતોઽયમાત્મૈવ કર્તા  
 ભોક્તા નાનાવિધશુભપરિણતિકર્તા ચેતિ । અયમાત્મા સંસારાવસ્થાયાં સ્વજ્ઞાનવશેન  
 દુઃખમર્જયતિ । ઉક્તઞ્ચ—

“સંસારે પર્યટન્ જન્તુ,—વૃહ્યોનિસમાકુલે,  
 શારીરં માનસં દુઃખં, પ્રાપ્નોતિ વત દારુણમ્ ॥૧॥  
 આર્તધ્યાનરતો મૂઢો, ન કરોત્યાત્મનો હિતમ્,  
 તેનાસૌ સુમહત્ ક્લેશં, પરત્રેહ ચ ગચ્છતિ ” ॥૨॥

વિદ્યમાન છે, ઇસ લિષ્ ઉસ મેં જીવ છે । ઇસી પ્રકાર અન્યત્ર મી સજીવ શરીર મેં  
 જીવ કી સત્તા કા નિશ્ચય ક્રિયા જા સકતા છે । વાસ્તવ મેં યહી આત્મા કર્તા, ભોક્તા  
 ઓર નાના પ્રકાર કી શુભ ઓર અશુભ પરિણતિયો કા કર્તા છે । આત્મા સંસાર—  
 અવસ્થા મેં અપને અજ્ઞાન કે આધીન હો કર દુઃખ ઉપાર્જન કરતા છે, કહા મી છે :—

“નાના પ્રકાર કી યોનિયો સે યુક્ત ઇસ સંસાર મેં ભ્રમણ કરતા હુઆ જીવ  
 અનેક ઓર મયાનક શારીરિક ંવં માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરતા છે ॥ ૧ ॥

આર્તધ્યાન ઓર રૌદ્રધ્યાન મેં લીન રહને વાલો મૂઢ જીવ આત્મા કા હિત  
 નહીં કરતા । ઇસી કારણ વહ ઇસ લોક ઓર પર લોક મેં મહાન્ ક્લેશ પાતા છે ” ॥૨॥

બાલકમાં જીવનું લક્ષણ—જે જ્ઞાન તે વિદ્યમાન છે, તે કારણથી તેમાં જીવ છે. એ  
 પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સજીવ શરીરમાં જીવની સત્તાનો નિશ્ચય કરી શકાય છે.  
 વાસ્તવમાં આ આત્મા કર્તા, ભોક્તા અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ  
 પરિણતિઓનો કર્તા છે આત્મા સંસાર અવસ્થામાં પોતાના અજ્ઞાનને આધીન થઈને  
 દુઃખ ઉપાર્જન કરે છે. કહ્યું પણ છે કે:—

“નાના પ્રકારની યોનિયોથી યુક્ત આ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો થકો જીવ  
 અનેક ભયાનક શારીરિક અને માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૧॥

આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનમાં લીન રહેવા વાળો મૂઢ જીવ આત્માનું હિત  
 કરતો નથી. આ કારણથી તે આ ભોક્તા અને પરભોક્તામાં મહાન્ ક્લેશ પામે છે. ॥૨॥

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा-प्रतिशरीरं भिन्नः । एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु जन्ममरणबन्ध-  
मोक्षव्यवस्था नोपपद्येरन् । अन्यो जातः, अन्यो मृतः । अन्यो बद्धः, अन्यस्तु मुक्त  
इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम् । तथा चानन्ता  
आत्मान इति मन्तव्यम् । अनेनाऽद्वैतवादो निराकृतः ।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तत्वम्—

अयमात्मा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः । निश्चयनयेन कर्मरहितोऽपि व्यवहार-  
नयतोऽनादिकालतः पौद्गलिककर्मसंबद्धोऽस्ति, तस्मादयं पौद्गलिककर्मसंयुक्त  
इति कथ्यते ।

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व-

आत्मा अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग है । समस्त शरीरों में  
एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो जन्म, मरण, बन्ध और मोक्ष  
की व्यवस्था नहीं हो सकेगी । अर्थात् कोई जनमा, कोई मरा, कोई बद्ध हुआ  
और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी ? अतः आत्मा प्रत्येक  
शरीर में अलग ही सिद्ध होता है । आमाएँ अनन्त हैं, ऐसा मानना चाहिए ।  
इस से अद्वैतवाद का निराकरण हो गया ।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग-

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है । निश्चयनय से कर्मरहित होने पर  
भी व्यवहारनयकी अपेक्षा अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

(११) आत्मानुं प्रतिशरीरभिन्नत्व

आत्मा जूदा-जूदा शरीरोंमां जूदो-जूदो छे. समस्त शरीरोंमां ओक ज आत्मानुं  
अस्तित्व मानवामां आवे तो जन्म, मरण, अंध अने मोक्षनी व्यवस्था थर्ध शकशे  
नही. अर्थात्, कोधनुं जन्म, कोधनुं मरण, कोध अद्ध थाय अने कोध मुक्त थाय  
ओवी व्यवस्था डेवी रीते अनी शकशे ? आ डारणुथी 'आत्मा प्रत्येक शरीरमां अलग  
छे.' ओम सिध्ध थाय छे आत्मा अनंत छे ओम मानवुं जेध ओ, आथी अद्वैतवादनुं  
निराकरण थर्ध गयुं.

(१२) आत्मानो पौद्गलिक कर्मसंयोग

आ आत्मा पौद्गलिक कर्मोथी संयुक्त ( कर्मो साथे जेडाओले ) छे निश्चय-  
नयथी कर्मरहित होवा छतांय पणु व्यवहारनयनी अपेक्षा अनादिकालथी पौद्गलिक



आत्मनो मिथ्यात्वेन सहानादिः सम्बन्धः । अनादिमिथ्यात्वजनित-  
विभावपरिणामरूपरागद्वेषपरिणत्याऽऽत्मा संतप्तायोगोलक इव सलिलं सर्वतोभावेन  
ज्ञानावरणीयादिकर्मदलं समाकृष्य स्वस्मिन् संयोजयति । ततोऽसौ वह्निनाऽयोगालक  
इव, नीरेण क्षीरमिव तेन कर्मदलेनैक्यभावं प्राप्य मूर्त इव भवति, अत एव  
निश्चयनयेनाऽमूर्तोऽपि व्यवहारनयेनात्मा मूर्त इत्युच्यते । कर्मसम्बन्धोऽयमात्मनो  
व्यवहारनयत एव ।

का संयोग है । अत एव उसे पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त कहते हैं । मिथ्यात्व  
के साथ आत्मा का अनादि सम्बन्ध है । अनादिकालीनमिथ्यात्वजनित  
विभाव-परिणतिरूप राग-द्वेष से आत्मा अपने समस्त प्रदेशों से ज्ञानावरण आदि  
के कर्मदलिकों को उसी प्रकार ग्रहण करता है, जैसे खूब तपा हुआ लोहे का  
गोला जल को ग्रहण करता है । अतः जैसे अग्नि और लोहगोलक एकमेक  
से हो जाने हैं, और दूध-पानी एक-मेक होया हुआ प्रतीत होता है, इसी  
प्रकार कर्मदलिकों के साथ आत्मा एकमेक होकर मूर्त-सा हो जाता है । इस  
प्रकार निश्चयनय से अमूर्त होने पर भी व्यवहारनय से आत्मा मूर्त है । आत्मा  
और कर्म का वह सम्बन्ध व्यवहारनय से ही समझना चाहिए ।

कर्मान्नी साथे आत्मानो संयोग छे. अे डारणुथी तेने पौद्गलिक कर्माथी संयुक्त  
कडे छे.

मिथ्यात्वनी साथे आत्मानो अनादि संबंध छे. अनादिकालीन मिथ्यात्वथी  
उत्पन्न विभाव-परिणतिरूप राग-द्वेषथी आत्मा पोताना समस्त प्रदेशोथी ज्ञानावरण  
आदिना कर्मदलोने अेवी रीते अडुषु करे छे के लेवी रीते भूष तयेला दोढानो  
गोणो 'जलतु' अडुषु करे छे. अेटवे के लेम अग्नि अने दोढानो 'गोणो अेकमेक  
थध लय छे, अने दूध-पाणी अेकमेक थयेला प्रतीत थाय छे. ते प्रमाणे कर्म-  
दलिकोनी साथे आत्मा अेक-मेक थधने मूर्त लेवो थध लय छे. आ प्रमाणे  
निश्चयनयथी अमूर्त होवा छतांय पणु व्यवहारनयथी आत्मा मूर्त छे. आत्मा  
अने कर्मनो आ संबंध व्यवहारनयथी ल समजवो लेधअे.

कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु लक्षणा-  
पेक्षया द्वयोर्भिन्नता प्रतीयते । तस्मादात्मन एकान्तेनाऽमूर्तत्वं नास्ति । इदमत्र  
तत्त्वम्—बन्धस्तु वस्तुतः पुद्गलस्य पुद्गलेन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला  
रूक्षस्निग्धगुणाभ्यां परस्परं बन्धं प्राप्नुवन्ति तद्वत्—आत्मना सह पूर्ववद्बन्धः कर्मपुद्गलैः  
सह नूतनकर्मपुद्गला निबध्यन्ते । आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेषां कर्मपुद्गलानामवगाहनं  
भवति । आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठन्ति । आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां  
चैकक्षेत्रेऽवगाहनरूप एव बन्धः । ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति ।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है, किन्तु लक्षणों  
से दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, इस लिए आत्मा में एकान्त अमूर्तता नहीं है । तात्पर्य  
यह है कि-वास्तव में पुद्गलका बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल  
रूक्षता और स्निग्धता गुणों के कारण परस्पर बद्ध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ  
पहले से बँधे हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों  
की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है । आत्मा के एक-एक प्रदेश में  
अनन्त पुद्गल रहते हैं । आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध एकक्षेत्रावगाहन  
रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण  
मिल कर स्कन्ध बन जाता है, वैसा आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता । कर्म-

कर्म बंधनी अपेक्षा आत्मानि साथे पुद्गलानो ऐक्यरूप संबन्धे, परन्तु  
लक्षणोपेक्षया द्वयोर्भिन्नता प्रतीयते । तस्मादात्मन एकान्त अमूर्तता नही ।  
तात्पर्य ये छे के:—वास्तवमां पुद्गलानो बंध तो पुद्गलानि साथे न थाय छे ।  
पृथक्-पृथक् पुद्गल रूक्षता अने स्निग्धता गुणाना कारणे परस्पर बद्ध थय जय  
छे । अे प्रमाणे आत्मानि साथे प्रथमथी बद्ध थयेला ( आत्माने प्रथम चोटेला )  
कर्मपुद्गलानि साथे नवीन कर्मपुद्गलानो बंध थाय छे । ते पुद्गलानि अवगाहना  
आत्माना असंख्यात प्रदेशोमां थाय छे । आत्माना ऐक्य ऐक्य प्रदेशमां अनन्त पुद्गल  
रहे छे । आत्माना प्रदेशो अने कर्मपुद्गलानो बंध ऐकक्षेत्रावगाहनरूप न छे । तेवी  
रीते ऐक्य पुद्गल भीज पुद्गलानि साथे स्निग्धता अने रूक्षता गुणाना कारणे  
मणीने स्कंध अनी जय छे, तेवी रीते आत्मा अने पुद्गलानो बंध थतो नथी ।  
कर्मपुद्गलानि अवगाहना आत्मानि साथे आ प्रकारे अनादिकालथी चाली आवे छे

यथा—पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो वन्धो भवति । कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्थमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्-एकपिण्डरूपं कर्मणशरीरमेव संजायते । तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति । आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कर्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु-अक्षर-स्यानन्ततमो भागो वर्तते एव, मेघपटलाच्छादितसूर्यरश्मिवत् । इदं कर्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वयं शरीरमतिमूक्ष्मं सदाऽऽत्मना सह वर्तते । यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति । तदानीमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति ।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कर्मण शरीर ही उत्पन्न होता है । यह कर्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोड़ता । आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कर्मण शरीर रहता है, किन्तु ज्ञान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है ।

यह कर्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं । जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं ।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है के अेकपिण्डरूप कर्मण शरीर न उत्पन्न थाय छे ते कर्मण शरीर आत्माना अेक पणु प्रदेशने छोडते नथी. आत्माना तमाम प्रदेशोने व्याप्त ( चारेय तरक्ष घेरायेलुं ) करीने तलमां तेल रडे छे ते प्रमाणे कर्मण शरीर रडे छे.

परंतु ज्ञानने अनंतमे लाग, वादणाओथी ठंडाओदी सूर्यनी प्रभा प्रमाणे पुद्गले रडे न छे ? ते कर्मण शरीर अने तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म छे. अने आत्माना साथे ते हमेशां रडे छे. जे सूक्ष्म के स्थूल शरीरमां आत्मा नय छे ते शरीर प्रमाणे संकुचित अथवा विस्तृत थर्ष नय छे. अने ते समय आ णंने शरीर पणु सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीरना अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत थर्ष नय छे.

जेवी रीते अकृत्रिम पर्वत आदिना स्कन्धनी रचना तो जेवी छे तेवी न

स्कन्धात् पुरातनाः पुद्गलाः क्षरन्ति नूतनास्तु तत्रागत्य मिलन्ति, तथाऽनयो-  
स्तैजस-कर्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु तत्रत्याः  
पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वफलप्रदानपुरस्सरं स्वावस्थितिसमयं समाप्याप-  
गच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु मिलित्वा संबद्धा भवन्ति ।  
एवामात्मप्रदेशैः सहानादिकालतः प्रवाहरूपोऽयं समायातः कर्मणां सम्बन्धः ।

अयं च कर्मसम्बन्धस्तदैव विनङ्क्ष्यति, यदाऽयमात्मा मुक्तिं लभेत । आभ्यां  
तैजसकर्मणशरीराभ्यां वियोग एव मुक्तिरुच्यते । यद्यनादिकालतः कर्मण-  
शरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकर्मणवर्गणाभिर्वन्धो न  
भवेत् । कर्मणशरीराभावादेव सिद्धानां कर्मणवर्गणापरिपूर्णेऽपि सिद्धक्षेत्रे  
कर्मबन्धो न भवति ।

फिर भी उस स्कन्ध से पुराने पुद्गल खिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिल जाते  
हैं, इसी प्रकार तैजस और कर्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के  
पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काल समाप्त करके हट जाते  
हैं और नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशों में मिलकर बद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ  
कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से प्रवाहरूप में चला आता है ।

यह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब आत्मा मुक्त हो जायगा । तैजस और  
कर्मण शरीर से सर्वथा वियोग हो जाना ही आत्मा की मुक्ति है । संसारी जीव के साथ  
अनादि काल से कर्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध  
कभी न होता । यद्यपि सिद्धक्षेत्र कर्मणवर्गणा से भरा हुआ है, फिर भी सिद्धों में कर्मण  
शरीर न होने से उन्हें कर्मबन्ध नहीं होता ।

विद्यमान रहे छे, तो पणु ते रूधभांथी पुराणा पुद्गल भरतां रहे छे. अने  
नवीन पुद्गल आवीने तेमां भणी जाय छे. अे प्रमाणे तैजस अने कर्मण  
शरीरनुं स्वरूप केरु वधत पणु नाश थतुं नथी, परंतु तेमां पुराणा कर्मपुद्गल  
पोत-पोतानुं इण आपीने पोतानी स्थितिने समय समाप्त करीने उठी जाय छे,  
अने नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशोमां भणीने अरु थरुं जाय छे. आ प्रमाणे आत्म-  
प्रदेशोनी साथे कर्मोने संबंध अनादि कालथी प्रवाहरूपमां आव्ये आवे छे.

आ कर्म-संबंध ते समये नाश थशे के ज्यारे आत्मा मुक्त थरुं जशे  
तैजस अने कर्मण शरीरनी सर्वथा वियोग थरुं जवे तेज आत्मानी मुक्ति छे.  
संसारी एवनी साथे अनादि कालथी कर्मण शरीरने संबंध जे न छेत तो  
नवीन कर्मवर्गणाओने संबंध पणु केरु वधत नडी थते, जे के सिद्धक्षेत्र

## (૧૩) આત્મન ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવત્વમ્—

અયમાત્મા—ઝર્ધ્વગતિશીલઃ, અગુરુલઘુત્વાત્ । યદ્યેવં તર્હિ કથમધો ગચ્છતિ ? । અલાબુર્યથા સ્વભાવત ઝર્ધ્વગમનશીલોપિ મૃલ્લેપાજ્જલેઽધો ગચ્છતિ; તદપગમાદૂર્ધ્વ-માજલાન્તાદ્ ગચ્છતિ, એવમાત્માપિ કર્મલેપાદધો ગચ્છતિ તદપગમાદૂર્ધ્વમાલો-કાન્તાદ્ ગચ્છતિ । યથા વા-એરળ્ડવીજમપિ વન્ધનમુક્તં સદૂર્ધ્વં ગચ્છતિ ।

## (૧૩) આત્માકા ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

યહ આત્મા ઝર્ધ્વગમન સ્વભાવ વાલા હૈ; ક્યોં કિ વહ અગુરુલઘુ હૈ । પ્રશ્ન કિયા જા સકતા હૈ કિ અગર એસી વાત હૈ તો આત્મા અધોગમન ક્યોં કરતા હૈ ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહ હૈ કિ જૈસે પાની મેં ઝપર કી ઓર ગમન કરને કા તૂંબેકા સ્વભાવ હૈ, ફિર મી મિટ્ટી કા લેપ કર દેને સે વહ અધોગમન કરતા હૈ ઓર લેપ હટ જાને પર જલ કી સતહ તક ઝપર કી ઓર ઉઠતા હૈ । ઇસી પ્રકાર આત્મા કર્મલેપ કે કારણ નીચે જાતા હૈ ઓર કર્મલેપ હટ જાને સે લોક કે અગ્રભાગ તક ઝપર કી ઓર જાતા હૈ । અથવા જૈસે—એરળ્ડ કા વીજ વન્ધન સે મુક્ત હોકર ઝપર જાતા હૈ ઁસી પ્રકાર આત્મા મી કર્મવન્ધન કા નાશ હોને પર ઝપર જાતા હૈ ।

કાર્મણ્યવર્ગણ્યઓથી ભરેલો છે, તો પણ સિદ્ધોમાં કાર્મણ્ય શરીર નહિ હોવાથી તેને કર્મબંધ થતો નથી.

## (૧૩) આત્માનો ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઝર્ધ્વ-ગતિ-ગમન-સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરુ-લઘુ છે. તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર ને એ પ્રમાણે છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે ? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે:—તુંબડાનો સ્વભાવ જેમ પાણીમાં ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમાં નીચે જાય છે. અને માટીનો લેપ દૂર થતાં જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમાં આવે છે. એ પ્રમાણે આત્મા કર્મલેપના કારણે નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અગ્રભાગ સુધી ઉપરના ભાગમાં જાય છે. અથવા જેવી રીતે એરંડાનું બીજ બંધનથી મુક્ત થતાં ઉપર જાય છે. તે પ્રમાણે આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતાં ઉપર જાય છે.

### लोकवादिप्रकरणम्—

यः पुनरेवंरूपमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह—‘लोकवादी’ इति । लोक्यते सर्वज्ञैरिति लोकः— षड्जीवनिकायरूपः । अत्र लोकशब्देन षड्जीवनिकायो गृह्यते, भगवताऽऽत्मज्ञानमेव पुरस्कृत्य लोकवादिप्रतिबोधनात् । यः षड्जीवनिकायरूपं लोकं विजानाति स एव लोकवादी=लोकस्वरूपकथनस्वभाववान्, न तु षड्जीवनिकायानभिज्ञ इत्यर्थः ।

षड्जीवनिकायरक्षणेनैवात्मस्वरूपं प्रकटीभवति । तच्च षड्जीव-

### लोकवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है ।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोका जाय—अवलोकन किया जाय वह लोक है, अर्थात् षड्जीवनिकाय को लोक कहते हैं । ‘लोक’ शब्द से यहाँ षड्जीवनिकाय का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही आगे रखकर लोकवादी का कथन किया है । जो षड्जीवनिकायरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कथन करने वाला है, किन्तु षड्जीवनिकाय से अनभिज्ञ नहीं ।

षड्जीवनिकाय की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है । षड्जीव-

### लोकवादीप्रकरण

जे आ प्रमाणे आत्माना स्वरूपने जाणी करीने आत्माना निरूपणमां तत्पर थाय छे ते वास्तविक रीते लोकवादी छे.

सर्वज्ञों द्वारा जे लोकावाय—अवलोकन कराय,—अर्थात् सर्वज्ञों जेने जेध शके छे ते लोक छे. अर्थात् षड्जीवनिकायने लोक कहे छे. ‘लोक’ शब्दथी षड्जीवनिकायनुं जे अहणु कयुं छे, कारणु के भगवाने आत्मज्ञानने जे आगण राभीने लोकवादीनुं कथन कयुं छे. जे षड्जीवनिकायइय लोकने जाणु छे, ते लोकवादी छे, अर्थात् लोकना स्वरूपनु कथन करवा वाणा छे षड्जीवनिकायथी अनलिख डाय ते नहि.

षड्जीवनिकायनी रक्षा करवाथी जे आत्मानुं स्वरूप प्रकट थाय छे. षड्

निकायज्ञानं विना तद्रक्षणं - न संभवति । अतः षड्जीवनिकायस्वरूपं निरूप्यते—

जीवास्तावत् संक्षेपतो द्विविधाः—सिद्धा असिद्धाश्चेति । तत्र मुक्तिं प्राप्ताः सिद्धाः, संसारिणोऽसिद्धाः । संसारिणः पुनर्द्विविधाः—त्रस—स्थावरभेदात् । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः । त्रसाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय—त्रीन्द्रिय—चतुरिन्द्रिय—पञ्चेन्द्रियभेदात् । तत्रेन्द्रियाणि पञ्च श्रोत्र—चक्षु—घ्राण—रसन—स्पर्शनाख्यानि । पृथिवीकायोऽपकायस्तेजस्कायो वायुकायो वनस्पतिकायश्चेति पञ्चविधा जीवा एकेन्द्रियाः । कृम्यादयो द्वीन्द्रियाः, । पिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः, भ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः । मनुष्यादयःपञ्चेन्द्रियाः ।

निकाय की रक्षा उसके ज्ञान के अभाव में नहीं हो सकती, अतः षड्जीवनिकाय के स्वरूप का निरूपण किया जाता है—

संक्षेप में जीवों के दो भेद हैं—सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । मुक्त जीव सिद्ध कहलाते हैं और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । संसारी जीव भी दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर । पृथिवीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय स्थावर है । त्रस जीव चार प्रकार के हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । श्रोत्र, चक्षु, घ्राण (नाक), रसना और स्पर्शन, ये पांच इन्द्रियाँ हैं । पृथिवीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, ये पांच स्थावर जीव एकेन्द्रिय है । कृमि आदि द्वीन्द्रिय है । पिपीलिका ( चिउंटी ) आदि त्रीन्द्रिय है । भैंरा आदि चौइन्द्रिय हैं । मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय है ।

एवनिशयनी रक्षा तेना ज्ञानना अभावमां थर्ध शकती नर्था, ते कारणुथी षड्-एवनिशयनां स्वइपतुं निरूपणु करवामां आवे छे:—

संक्षेपमां एवना जे लेद छे.—(१) सिद्धएव अने (२) असिद्धएव. मुक्तएव ते सिद्ध कडेवाय छे अने असिद्ध ते संसारी एव कडेवाय छे. संसारी एव पणु जे प्रकारना छे. (१) त्रस अने (२) स्थावर. पृथिवीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, अने वनस्पतिकाय ते स्थावर छे. त्रस एव चार प्रकारना छे. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. श्रोत्र (जान) अक्षु (नेत्र), घ्राणु (नाक), रसना (जुल), अने स्पर्शन (आमडी), आ पांच इंद्रियो छे. पृथिवीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय अने वनस्पतिकाय, आ पांच स्थावरएव एकेन्द्रिय छे, कृमि आदि द्वीन्द्रिय छे. धीडी आदि त्रीन्द्रिय छे, लभरा वगेरे, चौइन्द्रिय

अत्र पञ्च स्थावरा एकस्त्रसश्चेति मिलित्वा षड्जीवनिकाया भवन्ति  
एषां प्रत्येकं भेदान् प्रदर्शयामः—

### (१) पृथिवीकायभेदाः—

पृथिवीकायस्तावदुच्यते—पृथिव्येव कायो यस्य स पृथिवीकायः ।  
पृथिवीकायादयः पञ्च स्थावरनामकर्मोदयात् समुत्पन्नास्तस्मादिमे स्थावरा इति  
कथ्यन्ते । पृथिवीकायोऽनेकविधः, शुद्धपृथिवीशर्करा-वालुकादिभेदात् । तत्र  
शर्करादिभेदरहिता मृत्तिकारूपा, तथा गोमयकचवरादिरहिता वा पृथिवी-

पांच स्थावर और एक त्रस मिलकर षड्जीवनिकाय हैं । इन सबके  
भेद दिखलाते हैं—

### (१) पृथिवीकाय के भेद—

पृथिवी ही जिस का शरीर हो, वह पृथ्वीकाय कहलाता है । पृथ्वीकाय आदि पांचों  
स्थावरनामकर्म के उदय से उत्पन्न होने के कारण स्थावर कहलाते हैं । पृथिवीकाय  
अनेक प्रकार का हैं—शुद्ध पृथिवी, शर्करा, वालू आदि । उनमें शर्करा आदि  
भेदों से रहित मृत्तिकारूप, तथा गोबर या कचरा आदि से रहित पृथिवी शुद्धपृथिवी  
कहलाती है । पत्थर के छोटे-छोटे खण्डों से मिली हुई मृत्तिका शर्करा पृथिवी है ।

छे, मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय छे

पांच स्थावर अने अेक त्रस मणीने षड्जीवनिकाय छे. अे तमामना लेहो  
अतावे छे:—

### (१) पृथिवीकायना लेह—

पृथिवी जेनुं शरीर छे, ते पृथिवीकाय कहेवाय छे. पृथ्वीकाय आदि पांचेय  
स्थावरनामकर्मना उदयथी उत्पन्न होवाना कारणे स्थावर कहेवाय छे. पृथ्वीकाय अनेक  
प्रकारे छे, शुद्धपृथ्वी, शर्करा, वालू ( रेती ) आदि. तेमां शर्करा आदि लेहोथी रहित  
मृत्तिकारूप, अने छाणु अगर कचरा आदिथी रहित पृथ्वी शुद्धपृथ्वी कहेवाय छे.  
पत्थरना नाना-नाना ककडाओथी मणेली माटी ते शर्करा पृथिवी छे. वालू ( रेती )



शुद्धपृथिवी । अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका-शर्करापृथिवी । बालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका-बालुकापृथिवी । एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि-

उपल - शिला - लवणो-षर - लोह - त्रपु - ताम्र - सीसक - रजत-सुवर्ण हरिताल-  
हिङ्गुलक-मनःशिला-सस्यकाञ्जन-प्रवाला-भ्रकपटला-भ्रवालुका-गोमेद-रुचका-ङ्क-  
स्फटिक - लोहिताक्ष - मरकत-मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक - हंसगर्भ-  
पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त-वैडूर्य-जलकान्तादयः सर्वे बादरपृथिवीकाय-  
भेदाः । एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वखनिस्थिता एव चेतनावन्तः । गोमय-  
कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरूपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति ।

बालू मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है । इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक भेद हैं, वे इस प्रकार :—

पत्थर, शिला, नमक, उषर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा, चांदी, सोना, हडताल, हिंगल, मैसिल, सस्यकांजन, मूंगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त, आदि बादर पृथिवीकाय के भेद हैं । वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं । गोबर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की धूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेतन हो जाते हैं ।

भणेली माटी बालुकापृथिवी उडवाय छे. ओ प्रभाले पृथिवी कायना अनेक लेद छे.

पत्थर, शिला, भीडुं, उषर-आरो, दोडुं, रांगो, (कलध), त्रांधुं, सीधुं, चांदी, सोनुं, उडताल, हिंगलो, मनशिल, सुरभो, मूंगा-परवाणां, अभ्रक, अभ्रवालुका, गोमेद, रुचक, अंक, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजंग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त आदि बादरपृथिवीकायना लेद छे (आ अर बादर पृथ्वीकाय छे). ओ शुद्ध पृथिवी आदि न्यारे पोतानी भाषुमां स्थित होय छे, त्यारे ते सचेतन होय छे. छाषु-कचरो आदि शस्त्रोथी उपहत (उषुअेला) थधने, अथवा तो सूर्य अने अग्निना तापरूप शस्त्रोथी अचेतन थध जाय छे.

उक्तवादरपृथिवीकायानां यत्रैको जीवस्तत्र नियमतोऽसंख्याताः पृथिवीकाया जीवाः सन्ति । स्थानमप्येषां पृथिवी-पाताल-भवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं ज्ञेयम् । सूक्ष्मपृथिवीकायजीवास्तु सर्वलोकव्यापिनः । उभयेषां भेदप्रभेदाः सर्वज्ञप्रणीतादागमादवगन्तव्याः ।

( २ ) अप्कायभेदाः—

अप्कायाऽनेकविधः—अवश्याय - मिहिका - करक-हरतनु - शुद्ध-शीतो-ष्ण-क्षारा-ऽम्ल-लवण-क्षीरोदक-घृतोदकादिभेदात् । एको यत्राप्कायस्तत्रासंख्याता अप्कायाः सन्ति । वादराप्कायानां समुद्र-हृद-नदी-वापी-कूपादिः स्थानम् । सूक्ष्माप्कायस्तु सर्वलोकव्यापकः । अस्यापि भेदप्रभेदा आगमतो विज्ञेयाः ।

उक्त वादर पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक जीव है वहाँ नियम से असंख्यात पृथिवीकाय के जीव है । पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान है । सूक्ष्म पृथिवीकाय के जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं । दोनों के भेद-प्रभेद सर्वज्ञोक्त आगम से समझ लेने चाहिए ।

( २ ) अप्काय के भेद—

अप्काय अनेक प्रकार का है—ओस, मिहिका, ओले, हरतनु, शुद्धजल, शीतजल, उष्णजल, क्षार, अम्ल लवणजल (खारा पानी) क्षीरोदक, और घृतोदक आदि । जहाँ एक अप्काय है वहाँ असंख्यात अप्काय हैं । वादर अप्कायका स्थान समुद्र, तलाव, नदी, वावडी, कूप आदि हैं, और सूक्ष्म अप्काय समस्त लोक में व्याप्त है । इसके भी भेद-प्रभेद आगम से समझना चाहिए ।

उपर कहेला वादर पृथिवीकाय आदिने न्यां अेक एव छे. त्यां नियमथी असंख्यात पृथिवीकाय एव छे पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि तेना स्थान छे. सूक्ष्म पृथिवी कायना एव समस्त लोकमां व्याप्त छे. अे अनेना भेद-प्रभेद सर्वज्ञाना आगमथी समल लेवा जेधअे.

( २ ) अप्कायना भेद—

अप्कायना अनेक प्रकार छे—ओस, मिहिका (निहार), ओणी, हरतनु- (पृथ्वीने लेहीने तृणुना अथभाग वगेरे उपर रहेनाइं पाणी) शुद्ध जल (अंतरिक्षथी पडेलुं अथवा नदीनुं पाणी) शीतजल, उष्णजल (स्वभावथी गरम पाणीना कुंडानुं पाणी), आटुं जल, आइं जल, क्षीरोदक अने घृतोदक आदि, (लवण, वाइणु, क्षीर, धक्षुरस अने पुंकरवर समुद्रनां पाणी) न्यां अेक अप्काय छे, त्यां असंख्यात अप्काय छे. वादर अप्कायना स्थान समुद्र, तलाव, नदी, वावडी, कूपा आदि छे, अने सूक्ष्म अप्काय समस्त लोकमां व्याप्त छे. तेना भेद-प्रभेद पणु आगमथी समजवा जेधअे

## ( ३ ) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात् । इमे तेजस्काया जीवा वादराः । यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति । तेषां स्थानं सार्धत्तृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो वहिः । सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

## ( ४ ) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः । वादर-वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवननादिकम् । सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः ।

## ( ३ ) तेजस्काय के भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि । जहाँ एक वादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं । इन का स्थान अर्द्धद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी है । इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए ।

## ( ४ ) वायुकाय के भेद—

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं । घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक और पाताल, भवन आदि वादर वायुकाय के स्थान हैं । सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है ।

## ( ३ ) तेजस्कायना भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकारना छे; जेभ के अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि, आदि, ज्वां अेक वादर तेजस्कायना एव होय छे त्यां असंख्यात तेजस्काय होय छे. तेनुं स्थान अर्द्धद्वीपरूप समयक्षेत्र न छे, तेनाथी अहार ते नथी. सूक्ष्म तेजस्कायना एव लोकव्यापी छे. तेना पणु भेद-प्रभेद आगमथी ज्ञाणी वेवा जेधअे.

## ( ४ ) वायुकायना भेद—

वायुकाय पणु पूर्व अने पश्चिम आदिना भेदथी, अने उत्कलिक ( जेभ अमुद्रमां उद्बोदो ) मंडलिक, ( मूणमांथी जे गोण इरतो वातो होय ते वायु ) आदि भेदथी अनेक प्रकारना छे, घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक, अने पाताल, भवन आदि वादर वायुकायना स्थान छे, अने सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी छे.

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया त्रसावपि निगद्येते ।

### ( ५ ) वनस्पतिकायभेदाः—

वनस्पतिकायोऽनेकविधः—शैवाल—पनक—हरिद्रा—ऽऽर्द्रक—मूलका—लूक—सूरण—पलाण्डु—लशुन—कन्दादिभेदात् । इमे वनस्पतिकायाः साधारणा उच्यन्ते । वृक्षगुच्छगुल्मलतादयः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकायस्यैकस्मिन्

इनके भेद-प्रभेद पूर्ववत् आगम से जानने चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण त्रस भी कहे जाते हैं ।

### ( ५ ) वनस्पतिकाय के भेद—

वनस्पतिकाय अनेक प्रकार का है । जैसे—शैवाल, पनक, हरिद्रा, ( हल्दी ), आर्द्रक ( अदरक ) मूलक, अलूक ( आलू ), सूरण, प्याज, लहसुन, और कन्द आदि । ये वनस्पतियों साधारण कहलाती हैं । तथा वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि प्रत्येकशरीर कहलाती हैं । साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं । इनका

तेना भेद-प्रभेद पूर्व प्रमाणे आगमथी समञ्ज देवा लोभ्ये. तेजस्काय अने वायुकाय गतिशील होवाना कारणे त्रस यणु कडेवाभां आवे छे.

### ( ५ ) वनस्पतिकायना भेद—

वनस्पति काय अनेक प्रकारे छे, जेभके-शैवाल, पनक, हरिद्रा, आलू, मूलक, आलू, सूरण, डुंगणी, लसणु अने कन्द आदि. आ वनस्पतियों साधारण कडेवाय छे, ( जेभां अनंत जिवे होय तेने साधारण कडे छे ) तथा वृक्ष, ( लगवती सूत्रभां वृक्षोना त्रणु भेदो पाडेला छे. ( १ ) शृंगणेर ( आलू ) नी पेठे अनंत जिवेवाणां ओडो, ( २ ) आंभानी भाइक असंज्य जिवेवाणा ओडो, ( ३ ) अने ताड-तमाल वगेरे प्रमाणे संज्यात जिवेवाणां ओडो ). गुच्छ, गुल्म ( नवभालिका लोभ वगेरे ) लता आदि प्रत्येक शरीर कडेवाय छे. साधारण वनस्पति कायना अने शरीरभां अनन्त जिवे होय छे. तेनुं स्थान धनोदधि आदि छे. सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्व लोकोप्यापी छे.

शरीरेऽनन्ता जीवाः सन्ति । एषां स्थानं वनोदध्यादि । सूक्ष्मास्तु वनस्पतिकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेदप्रभेदाश्च शास्त्रतोऽवसेयाः । एते पञ्च स्थावराः स्पर्शन-रूपैकेन्द्रियाः ।

पञ्च जीवनिकाया उक्ताः, इदानीं षष्ठस्रसाधिकारः कथ्यते—

( ६ ) त्रसकायभेदाः—

त्रसत्त्वं द्विविधं, क्रियातो लब्धितश्च । तत्र क्रिया = कर्म-चलनं-देशान्तर-प्राप्तिः । अतः क्रियैव तेजस्कायो वायुकायश्च त्रसो भवति । लब्ध्या तूर्भौ स्थावरौ । द्वीन्द्रियादयस्तु क्रियया लब्ध्यापि त्रसा भवन्ति । लब्धिर्हि त्रसनामकर्मो-दयः, देशान्तरप्राप्तिलक्षणा क्रियाऽपि द्वीन्द्रियादीनाम् । स्थावरनामकर्मोदयरूपया स्थान वनोदधि आदि है । सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्वलोकव्यापी है । इनके भेद-प्रभेद शास्त्र से समझ लेने चाहिए । इन पांच स्थावरों को एकमात्र स्पर्शनइन्द्रिय होती है ।

पांच जीवनिकायों का कथन किया जा चुका है । अब छोटे त्रसकाय का प्ररूपण किया जाता है—

( ६ ) त्रसकाय—

त्रसपन दो प्रकार का है—क्रिया से और लब्धि से । कार्य करना, चलना, एक जगह से दूसरी जगह जाना क्रिया है । इस क्रिया से ही तेजस्काय और वायुकाय त्रस कहलाते हैं । लब्धिकी अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही है । द्वीन्द्रिय आदि, क्रिया से भी त्रस है और लब्धि से भी । यहाँ त्रसनामकर्म का उदय लब्धि है, और देशान्तर में तेना लेद-प्रलेद शास्त्रथी समल्ल लेवा नेधये, आ पांच स्थावराने ओक मात्र स्पर्शन इन्द्रिय होय छे.

आ पांच जीवनिकायोनं कथन करी चूक्या छीये. डवे छूटा त्रस कायनुं प्ररूपणु करवाभा आवे छे—

( ६ ) त्रसकाय—

त्रसपणुं ओ प्रकारनुं छे—क्रियाथी अने लब्धिथी. कार्य करणुं, आलणुं, ओक न्याथी भील न्याये नुं ते क्रिया छे. आ क्रियाथी न तेजस्काय अने वायुकाय त्रस कडेवाय छे, लब्धिनी अपेक्षाये आ अने स्थावर न छे. द्वीन्द्रिय आदि क्रियाथी पणु त्रस छे अने लब्धिथी पणु त्रस छे. अहि त्रसनामकर्मने उदय ते लब्धि छे, अने देशान्तरमां गमन करणुं ते क्रिया छे. द्वीन्द्रिय आदिमां ये अने लेवामां

लब्ध्या पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सर्वे स्थावरा एव । एवं च त्रसः षड्विधः  
तेजस्काय-वायुकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-भेदात् । तत्र  
तेजस्कायो वायुकायश्च प्रागुक्तः ।

द्वीन्द्रियादिषु चतुर्विधेषु त्रसजीवेषु द्वीन्द्रियास्तावदुच्यन्ते—

( १ ) द्वीन्द्रियः—

शरीरकाष्ठादिजाः—कृमयः, फलादिजाः—नीलङ्गप्रभृतयः, गोमया-  
दिजाः—गन्दोलकादयः, जलजाः—शङ्खशुक्तिशम्बूकजलौकाप्रभृतयो द्वीन्द्रियाः ।

गमन करना क्रिया है, द्वीन्द्रिय आदि में ये दोनों पाई जाती है । स्थावरनामकर्मों-  
दयरूप लब्धि की अपेक्षा पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, और वनस्पति, ये सब स्थावर है ।  
इस प्रकार त्रसजीव छह प्रकार के है—तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,  
और पञ्चेन्द्रिय । इन में से तेजस्काय और वायुकाय का वर्णन पहले किया जा चुका है ।

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकार के त्रसजीवों में से प्रथम द्वीन्द्रिय का स्वरूप बतलाते हैं—

( १ ) द्वीन्द्रिय—

शरीर और काठ आदि में उत्पन्न होने वाली कृमि, फल आदि में उत्पन्न  
होने वाले नीलंगु वगैरह, गोबर में उत्पन्न होने वाले गिंडोला वगैरह, जल में पैदा  
होने वाले शङ्ख, सीप, जोक आदि द्वीन्द्रिय जीव है । इन के स्पर्शन और रसना, ये दो  
आवे छे. स्थावरनामकर्मोदय लब्धिनी अपेक्षा-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति,  
आ सर्व स्थावर छे. आ प्रमाणे त्रस एव छ प्रकारना छे—तेजस्काय, वायुकाय,  
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. आमांथी तेजस्काय अने वायुकायतुं  
वर्णन पढेलां करवामां आंथुं छे.

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकारना त्रस एवमांथी द्वीन्द्रिय आदिनुं स्वरूप  
बतावे छे.

( १ ) द्वीन्द्रिय—

शरीर अने काष्ठ आदिमां उत्पन्न थवा वाणा कृमि, इण आदिमां उत्पन्न  
थवा वाणा नीलंगु वगेरे. छाणुमां उत्पन्न थवा वाणा गिंडोला वगेरे. जलमां  
उत्पन्न थवा वाणा शङ्ख, शीप, जणो वगेरे द्वीन्द्रिय एव छे. तेने स्पर्शन अने

इमे स्पर्शन-रसनोभयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

( २ ) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः—पिपीलिका—रोहिणिका—कुन्थु—यूक—लिख—मत्कुण-  
मत्कोटक—शुलशुल—गोपदिका—खजूरा—कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-  
घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

( ३ ) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः—भ्रमर—वटर—मक्षिका—दंश—मशक—वृश्चिक—कीट-  
कंसारी—पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-रिन्द्रियाः । चतुरि-  
न्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रियां होती हैं । द्वीन्द्रिय जीव असंख्यात है ।

( २ ) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका ( कीडी ), रोहिणिका, कुन्थुवा, जूं, लीख, खटमल, मकोडा, शुलशुल, गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल, आदि त्रीन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियां होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असंख्यात हैं ।

( ३ ) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मक्खी, डांस, मच्छर, विच्छू, कीट, पतङ्ग, कंसारी, आदि चौइन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियां होती हैं । ये जीव असंख्यात हैं ।

रसना ये ये धन्द्रियो वाणा एवो असंख्यात छे

( २ ) त्रीन्द्रिय—

डीडी, रोहिणिका, कुन्थुवा, जूं, लीख, मांकड, मंकोडा, शुलशुल, गोपदिका, कानभजूरा, कर्णशूल आदि त्रीन्द्रिय एव प्रसिद्ध छे. तेने स्पर्शन, रसना, अने घ्राण. आ त्रण धन्द्रियो होय छे. त्रीन्द्रिय एव असंख्यात छे.

( ३ ) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमरा, वटर, मांभी, डांस, मच्छर, वींछी, कीट, पतंग, कंसारी आदि चार धन्द्रियवाणा एव प्रसिद्ध छे. तेमने स्पर्शन रसना, घ्राण अने नेत्र आ चार धन्द्रियो होय छे. ये एव असंख्यात छे.

( ४ ) पञ्चेन्द्रियजीवाः—

पञ्चेन्द्रियजीवाश्चतुर्धा—नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देव-भेदात्, नारकाः सप्त-विधाः, सप्तनरकेषु ससृद्भवात् । रत्न(१)-शर्करा(२)-वालुका(३)-पङ्क(४)-धूम(५)-तमो(६)-महातमो(७)-नाम्न्यः सप्त पृथिव्यस्तत्र सप्त नरकभूमयः, तत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति । नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति ।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चो द्विविधाः— गर्भज-संमूर्च्छिमभेदात् । तत्र-गर्भजाः पञ्चधा-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदात् । संमूर्च्छिमा अपि

( ४ ) पञ्चेन्द्रियजीव-

पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के है—( १ ) नारक, ( २ ) तिर्यञ्च, ( ३ ) मनुष्य, और ( ४ ) देव ।

नारक सात प्रकार के हैं, क्यों कि सात नरकों में उनकी उत्पत्ति होती है । ( १ ) रत्नप्रभा ( २ ) शर्कराप्रभा ( ३ ) वालुकाप्रभा, ( ४ ) पङ्कप्रभा, ( ५ ) धूमप्रभा, ( ६ ) तमःप्रभा और ( ७ ) तमस्तमःप्रभा नामक सात पृथिवी है । वहाँ सात नरकभूमियाँ है । इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात प्रकार के कहलाते हैं । नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ होती हैं ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च दो प्रकार के हैं—गर्भज और संमूर्च्छिम । इन में गर्भज के पांच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (६) खेचर, (४) उरःपरिसर्प और (५) भुजपरिसर्प ।

( ४ ) पञ्चेन्द्रिय—

पांच इन्द्रियो वाणा एव चार प्रकारना छे—(१) नारकी, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य, अने (४) देव. नारकीना सात प्रकार छे, कारण डे सात नरकोमां तेनी उत्पत्ति होय छे. (१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा, (३) वालुकाप्रभा, (४) पङ्कप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा अने (७) तमस्तमः-प्रभा नामनी सात पृथिवी छे. त्यां सात नरकभूमियो छे. ते नरकभूमियोमां निवास करवा वाणा नारकी पञ्च सात प्रकारना कहेवाय छे. नारकी, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च, मनुष्य, अने देवोने स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु अने श्रोत्र, आ पांच इन्द्रियो होय छे.

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ये प्रकारना छे—(१) गर्भज, (२) संमूर्च्छिम. तेमां गर्भजना पांच भेद छे—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४) उरःपरिसर्प, अने



પશ્ચધા-જલચર(૧)-સ્થલચર(૨)-લેચરો(૩)-રઃપરિસર્પ(૪)-ભુજપરિસર્પભેદાત્ । તત્ર જલચરા મત્સ્યમકરાદયઃ, સ્થલચરા ગોમ્હિષ્યાદયઃ, લેચરાઃ મયૂરાદયઃ, ઊરઃપરિસર્પાઃ સર્પાદયઃ, ભુજપરિસર્પાઃ ગોધાદયઃ ।

મનુષ્યા દ્વિવિધાઃ—કર્મભૂમિજાઃ, અકર્મભૂમિજાઃ । યત્ર જાતા મનુષ્યાઃ સિદ્ધ્યન્તિ; બુદ્ધ્યન્તે, પરિનિર્વાન્તિ; સર્વદુઃલાનામન્ત્રં કુર્વન્તિ સા કર્મભૂમિઃ । અત્રૈવ સંસારાન્તપ્રાપ્તિકારકસ્ય રત્નત્રયરૂપમોક્ષમાર્ગસ્ય વિજ્ઞાતારઃ કર્તાર ઉપદેષ્ટારશ્ચ ભગવન્તસ્તીર્થઙ્કરા અવતરન્તિ । તે ચ સ્વયં સંસારાર્ણવં તરન્તિ, પરાન્ ભવ્યાનપિ તારયન્તિ । અર્ધતૃતીયદ્વીપાભ્યન્તરે કર્મભૂમયઃ પશ્ચદશક્ષેત્રરૂપા ભવન્તિ—પશ્ચ

સંમૂર્ચ્છિમ કે ભી પાંચ ભેદ હૈં—(૧) જલચર, (૨) સ્થલચર, (૩) લેચર, (૪) ઊરઃ—પરિસર્પ ઓર (૫) ભુજપરિસર્પ । મચ્છ, મકર, આદિ જલ કે જીવ જલચર કહલાતે હૈ । ગાય, મૈસ આદિ સ્થલચર કહલાતે હૈ । મયૂર આદિ લેચર કહલાતે હૈ । સર્પ આદિ ઊરઃપરિસર્પ, ઓર ગુહેરા ( ગોહ ) આદિ ભુજપરિસર્પ કહલાતે હૈ ।

મનુષ્ય ઢો પ્રકાર કે હૈં—કર્મભૂમિજ ઓર અકર્મભૂમિજ । જહોં ઉત્પન્ન હોકર જીવ સિદ્ધ બુદ્ધ હોતે હૈ, નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરતે હૈ ઓર સવ દુઃલોં કા અન્ત કરતે હૈ, ડસે કર્મભૂમિ કહતે હૈ । સંસાર કા અન્ત કરને વાલે, રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગ કે જ્ઞાતા, કર્તા ઓર ઉપદેશક તીર્થઙ્કર ભગવાન કર્મભૂમિ મેં હી ઉત્પન્ન હોતે હૈ । લે સ્વયં સંસાર સમુદ્ર તરતે હૈ ઓર ઢૂસરે ભવ્ય જીવોં કો ભી તારતે હૈ । અઢાઈ ઢ્વીપ મેં પન્દર કર્મ—ભૂમિયોં હૈં—પાંચ ભરત ક્ષેત્ર મેં, પાંચ ઔરવત ક્ષેત્ર મેં, ઓર પાંચ મહાવિદેહ મેં । પાંચ

(૫) ભુજપરિસર્પ. મચ્છ, મકર (મગર) આદિ જલના જીવ જલચર કહેવાય છે. ગાય, ભેંસ આદિ સ્થલચર કહેવાય છે મયૂર (ભોર) આદિ લેચર કહેવાય છે. સર્પ આદિ ઊરપરિસર્પ, અને ગોચરા આદિ ભુજપરિસર્પ છે.

મનુષ્ય ઢે પ્રકારના છે—(૧) કર્મભૂમિજ, (૨) અકર્મભૂમિજ, જ્યાં ઉત્પન્ન થઈને જીવ સિદ્ધ બુદ્ધ હોય છે, નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરે છે, અને સર્વ દુઃખોને અંત કરે છે તેને કર્મભૂમિ કહે છે. સંસારને અંત કરવાવાળા, રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગના જ્ઞાતા કર્તા, અને ઉપદેશક તીર્થંકર ભગવાન કર્મભૂમિમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે. તે સ્વયં સંસાર સમુદ્રને તરે છે અને બીજા ભવ્ય જીવોને પણ તારે છે. અઢી ઢ્વીપમાં પન્દર કર્મભૂમિયો છે—પાંચ ભરતક્ષેત્રમાં, પાંચ ઔરવત ક્ષેત્રમાં, અને

भरतानि, पञ्चैरवतानि, पञ्च महाविदेहाः । तत्र पञ्चसु महाविदेहेषु पञ्च देव-  
कुरुक्षेत्राणि पञ्चोत्तरकुरुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा  
कर्मभूमयो भवन्ति । एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु जाता एव ज्ञानावरणीयादिसकल-  
कर्मतस्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामाभिधावन्ति । एतत्पञ्चदश-  
व्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणमोक्षमार्गं  
लब्धुं न प्रभवन्ति ।

अहो भव्यप्राणिनः ! स्वनिः यसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकालतः  
षड्जीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिपु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनु-  
भूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लब्धम् । देशविरति-सर्वविरति-

महाविदेहों में पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र भी अन्तर्गत है, उन्हें छोड़कर  
पांच महाविदेह कर्मभूमि है । इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही  
ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरों से संसाररूपी महा अरण्यो में छूटकर मोक्षधाम  
जाते हैं । इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र  
स्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

अहो भव्य जीवो ! अपने श्रेय ( कल्याण ) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो । अनादि  
काल से षड्जीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण  
आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव मिला है ।  
देशविरति और सर्वविरतिके रूप सुधा से परिपूर्ण मनुष्यायु रूप कटोरको

पांच महाविदेहोमां पांच देवकुड, अने उत्तरकुड क्षेत्र पण अन्तर्गत  
छे. तेने छोडीने पांच महाविदेह कर्मभूमि छे. आ पंढर कर्मभूमिमां उत्पन्न थवा  
वाणा मनुष्य ज्ञानावरणीय आदि तमाम कर्मरूपी चोरैथी संसाररूपी महा-  
अरण्यमांथी छुटीने मोक्षधाम जाय छे. आ पंढर क्षेत्रैथी भिन्न क्षेत्रोमां जन्म  
देवावाणा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप मोक्षमार्गने प्राप्त करवा समर्थ थता नथी.

अहो भव्य जीवो ! चेताना कल्याण भाटे शीघ्र-जलदही प्रयत्न करो !  
अनादि कालथी षड्जीवनिकायनी भवस्थिति अने कायस्थितिमां अनन्त जन्म, जरा,  
मरण आदिवुं दुःख भोगवीने पूर्वपुण्यना उदयथी कर्मभूमिमां दुर्लभ मनुष्य  
भव मल्ले छे. देशविरति अने सर्वविरतिरूप अमृतथी परिपूर्णा मनुष्यायुश्य आ

पीयूषपूर्णमेतन्मनुष्यायुःकटोरकं मृत्युरपहर्तुं पुरोऽवतिष्ठते । तदत्र विरतिसुधास्वाद-  
सुखवञ्चिता भवन्तो मा भवन्तु ।

अकर्मभूमयः कथ्यन्ते—

पञ्च हैमवतानि, पञ्च हरिवर्षाणि, पञ्च रम्यकवर्षाणि, पञ्चैरण्यवतवर्षाणि,  
पञ्च देवकुरवः पञ्चोत्तरकुरवः, इति त्रिंशत्, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः । अन्तरद्वीपा  
अपि युगलक्षेत्रत्वादकर्मभूमयो भवन्ति । एताः सर्वा अकर्मभूमयः,  
तीर्थङ्करजन्मादिरहितत्वात् ।

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रमर्यादाकारकहिमवत्पर्वतस्य पूर्वपश्चिमान्तभागद्वयात्  
वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः । एवम् ऐरवतक्षेत्रमर्यादाकारकशिखरि-

छीनने के लिए मृत्यु सामने खड़ा है, अतः आप विरतिरूपी सुधा के आस्वाद के सुख से  
वञ्चित मत रहो ।

अकर्मभूमिका कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच ऐरण्यवत, पांच देवकुरु  
और पांच उत्तरकुरु, ये तीस, और छप्पन अन्तर द्वीप, ये सब अकर्मभूमि है । अन्तरद्वीप  
भी युगलियाक्षेत्र होने के कारण अकर्मभूमि ही है । इन में कभी भी तीर्थंकर का  
जन्म आदि नहीं होता ।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले हिमवत्पर्वत के पूर्वभाग और  
पश्चिमभाग से वक्र आकार की दो-दो दाढ़ाएँ निकली हैं । इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की  
मर्यादा करने वाले शिखरिपर्वत के पूर्व और पश्चिम भागों से दो दो वक्राकार दाढ़ाएँ  
कटोराने छीनवी देवा माटे मृत्यु सामेण उलेदो छे. ये कारण्णथी तमे विरतिरूपी  
अमृतना स्वादना सुभथी वञ्चित रहेशो नडि.

अकर्मभूमितुं कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक वर्ष, पांच ऐरण्यवत, पांच  
देवकुरु, अने पांच उत्तरकुरु, आ तीस, अने छप्पन अन्तरद्वीप, आ सर्व अकर्म-  
भूमि छे. अतर द्वीप पण्णुगणीया क्षेत्र होवाना कारण्णो अकर्मभूमि न छे, तेमां  
केध पण्णु स्थणे तीर्थंकरने जन्म आदि थतो नथी.

जम्बूद्वीपमां भरत क्षेत्रनी मर्यादा करवावाणा हिमवत पर्वतना पूर्वभाग अने  
पश्चिम लागथी वक्र आकारनी जे-जे दाढो निकली छे. ये प्रकारे ऐरवत क्षेत्रनी  
मर्यादा करवावाणा शिखरी पर्वतना पूर्व अने पश्चिम लागथी जे-जे वक्राकार  
दाढो निकली छे.

पर्वतस्य, पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयाद् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः । अष्टासु दंष्ट्रासूर्ध्वभागे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति । एवं षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपा भवन्ति । अन्तरद्वीपजा अप्यकर्मभूमिजाः । तत्रोभयेषां मनुष्याणामुच्चारादिषु संमूर्च्छिमा मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायन्ते ।

तत्र गर्भजा मनुष्या एकोत्तरशतम् (१०१), पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्व्यधिकशतद्वयम् (२०२), संमूर्च्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरशतमेव (१०१), सर्वेषु संमिलितेषु त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) मनुष्याणां भेदाः भवन्ति ।

देवनिकायः-

देवाश्चतुर्विधाः-भवनपति १-व्यन्तर २-ज्योतिष्क ३-वैमानिक ४-भेदात् ।

निकली हैं । इन आठ दाढ़ों पर सात-सात अन्तरद्वीप है । इस प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप है । अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) जीव भी अकर्मभूमिज (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए) कहलाते हैं । इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मूल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

गर्भज मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के है । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से दो सौ दो (२०२) भेद होते हैं । संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं, अतः उनके एक सौ एक (१०१) भेद मिला देने से मनुष्यों के कुल भेद तीन सौ तीन (३०३) हो जाते हैं ।

देवनिकाय-

देव चार प्रकार के हैं-(१)भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

आ आठ दाढ़ों पर सात-सात अन्तरद्वीप छे. आ प्रभावे छप्पन अन्तरद्वीप छे. अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीपमां उत्पन्न थनारा) एव एणु अकर्मभूमिज (अकर्मभूमिमां उत्पन्न थनारा) कडेवाय छे. आ अने प्रकारना मनुष्येनां भण आदिमां अे अने भूमिओमां संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न थाय छे.

गर्भज मनुष्य ओकसो ओक (१०१) प्रकारना छे. तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेह करवाथी असो अे (२०२) लेह थाय छे. संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ए डोय छे ते कारणथी तेना ओकसो ओक (१०१) लेह तेमां भणववाथी मनुष्येना कुल त्रणुसो त्रणु (३०३) लेह थाय छे.

देवनिकाय-

देव चार प्रकारना छे-(१) भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क अने (४) वैमानिक.

## (१) भवनपतिदेवभेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविधाः—(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमाराः, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च । कुमार इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः केलिविलोलितचेतसः कुमारवच्चोद्धतरूपवेषभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाश्चेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते । जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्ताद्दक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्-भागेऽनेककोटिकोटिलक्षयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति ।

## (१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दश प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार ।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रोडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेष, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं । जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा-कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं ।

## (१) लवनपतिदेव—

लवनपति देव दस प्रकारना छे—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार (९) वायुकुमार, अने (१०) स्तनितकुमार.

कुमार प्रमाणे, सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललितगतिवाणा, कुमारना समान राग व्यक्त करवा वाणा, क्रीडां चित्त लगाववा वाणा, कुमारना प्रमाणे उद्धत-रूप, वेष, भाषा आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करवा वाणा होवाथी ते देव, कुमार कहवाय छे. जम्बूद्वीपमां सुमेरु पर्वतनी नीचे दक्षिणभाग अने उत्तर भागना तिरछा भागमां अनेक कोडा-कोडी लाख योजन सुधी लवनपति देव निवास करे छे.

तत्र बहवोऽसुरकुमारा आवासेषु, तथा कदाचिद् भवनेषु च निवसन्ति । तथा नागकुमारादयः सर्वे प्रायशो भवनेष्वेव प्रतिवसन्ति । रत्नप्रभापृथ्वी-पिण्डादूर्ध्वमधश्चकैकसहस्रयोजनं विहायैकलक्षाष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि तु रत्न-प्रभातोऽधस्तान्नवतिसहस्रयोजनपरिमाणभाग एव भवन्ति, तत्र भवनानि दक्षिणा-र्धाधिपतीनां चमरेन्द्रादीनाम्, उत्तरार्धाधिपतीनां बलीन्द्रादीनाम् । महामण्डप-वदावासाः, भवनानि नगरसदृशानि भवन्ति, परन्तु तानि भवनानि बहिर्वृत्तानि, अभ्यन्तरे समचतुष्कोणानि, तलभागे तु पुष्करकर्णिकावद् भवन्ति । अम्बादयः परमाधार्मिका अपि असुरकुमारजातीयाः पञ्चदश सन्ति-१अम्बारम्बरीष-

वहीं बहुत से असुरकुमार आवासों में और कभी-कभी भवनों में निवास करते हैं । नागकुमार सब प्रायः भवनों में ही रहते हैं । रत्नप्रभा पृथ्वी के पिण्ड से ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर एक लाख अठहत्तर हजार योजन परिमाण में मध्य भाग में सभी जगह असुरकुमार देवों के आवास है, किन्तु भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नब्बे हजार योजन परिमित भाग में ही है । वहाँ दक्षिणार्धाधिपति चमरेन्द्र आदि के और उत्तरार्धाधिपति बलीन्द्र आदि के भवन हैं । महामण्डप के समान आवास है । नगर के समान भवन हैं, किन्तु वे बाहर गोलकार और भीतर समचतुष्कोण है । उनका तलभाग कमल की कर्णिका के समान होता है । अम्ब आदि पन्द्रह परमाधार्मिक भी असुरकुमार जाति के हैं । उनके नाम-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) श्याम, (४) शबल,

त्यां धृषु असुर कुमारे, आवासेमां अने कोर्ध कोर्ध वपत लवनोमां निवास करे छे. नागकुमार सर्व प्रायः लवनोमां निवास करे छे. रत्नप्रभा पृथ्वीना पिण्डथी उपर अने नीचे अेक-अेक हुन्नर योजन छोडीने, अेक लाख अठयोतेर हुन्नर योजन परिमाणमां मध्यभागमां सर्व जग्याअे असुरकुमार देवोना आवास छे. परन्तु लवन; रत्नप्रभा पृथ्वीनी नीचे (६००००) नेवुं हुन्नर योजन परिमित लागमां ज छे. त्यां दक्षिणार्धाधिपति चमरेन्द्र आदिना अने उत्तरार्धाधिपति बलीन्द्र आदिना लवन छे. महामण्डपनी समान आवास छे. नगरना समान लवन छे परंतु ते लवनो अडारथी गोणाकार अने अंदरथी समचतुष्कोण छे. तेनो तणीअानो लाग कभलनी कर्णिकासमान होय छे. अम्ब आदि पंदर परमाधार्मिक पणु असुरकुमार अतिना छे. तेअोना नाम जेभके-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) श्याम, (४)

३श्याम४शवल५रुद्र६वैरुद्र७काल८महाकाल९असिपत्र१०धनुः११कुम्भ१२वालुक१३  
वैतरणी१४खरस्वर१५महाघोष-भेदात् ।

### (२) व्यन्तरदेवाः—

रत्नप्रभाकाण्डस्य सहस्रयोजनपरिमाणयुक्तस्याधस्तादेकशतयोजनमूर्ध्वं च  
तथैकशतयोजनं विहायाष्टशतयोजनपरिमाणयुक्तरत्नप्रभाकाण्डे व्यन्तरदेवाना-  
मसंख्यातानि नगराणि सन्ति । तथैव भवनानि तेषामावासाश्च सन्ति । तत्र  
वालवत् स्वेच्छया शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया वा चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायेणा-  
नियतगतिप्रचारा भवन्ति । मनुष्यान्पि केचिद् भृत्यवदुपचरन्ति । विविधेषु च  
शैलरुन्दरान्तरवनविवरादिषु प्रतिवसन्ति; अतो व्यन्तरा इत्युच्यन्ते ।

(५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुम्भ,  
(१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

### (२) व्यन्तर देव—

एक हजार योजन परिमाण वाले रत्नप्रभाकाण्ड के नीचे और एक सौ योजन  
ऊपर तथा एक सौ योजन छोड़कर आठ सौ योजन परिमाण युक्त रत्नप्रभाकाण्ड में  
व्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । उसी प्रकार भवन और उनके आवास हैं ।  
वालकों के समान अपनी इच्छासे, शक्र आदि देवों की आज्ञा से, या चक्रवर्ती आदि की आज्ञासे  
प्रायः अनियतगति वाले होते हैं । ये देव किन्हीं-किन्हीं मनुष्यों की दास के समान सेवा  
करते हैं । ये विविध प्रकार के पर्वतों की गुफाओं में और वनविवर आदि में निवास करते  
हैं अतः इन्हें व्यन्तर कहते हैं ।

शभल, (५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०)  
धनुष, (११) कुम्भ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष.

### (२) व्यन्तरदेव—

एक हजार योजन परिमाणवाला रत्नप्रभाकाण्डनी नीचे अने एकसौ योजन  
ऊपर तथा एकसौ योजन छोड़ने आठसौ योजन परिमाणयुक्त रत्नप्रभाकाण्डमें  
व्यन्तर देवोंना असंख्यात नगर छे. ते प्रमाणे लवन अने तेना आवासो छे.  
आण्डोनी नेम पोतानी छिच्छथी, छद्र आदि देवोनी आज्ञाथी. अथवा अकवर्ती  
आदिनी आज्ञाथी प्रायः अनियत गतिवाणा होय छे. आ देव कोछ कोछ मनुष्यनी  
दासनी समान सेवा करे छे. ते विविध प्रकारना पर्वतानी गुफाओमां अने वन-  
गुफाओ आदिमां निवास करे छे.

व्यन्तराः षोडशविधाः— १ पिशाच—२ भूत—३ यक्ष—४ राक्षस—५ किन्नर  
६ किंपुरुष—७ महोरग—८ गन्धर्वा—९ प्रज्ञप्तिक—१० पञ्चप्रज्ञप्तिक—११ ऋषिवादिक—१२ भूत-  
वादिक—१३ क्रन्दित—१४ महाक्रन्दित—१५ कूष्माण्ड—१६ पतंग भेदात् । ( स्था.  
स्था. २ उ ३ )

जृम्भका अपि व्यन्तरदेवा दश सन्ति । यथा—(१) अन्नजृम्भकाः  
(२) पानजृम्भकाः, (३) वस्त्रजृम्भकाः, (४) लयनजृम्भकाः, (५) शयनजृम्भकाः,  
(६) पुष्पजृम्भकाः, (७) फलजृम्भकाः, (८) पुष्पफलजृम्भकाः, (९) विद्याजृम्भकाः,  
(१०) अव्यक्तजृम्भकाः ।

(६) ज्योतिष्कदेवाः—

ज्योतींषि—प्रभापुञ्जस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र भवाः

व्यन्तर देव सोलह हैं—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर,  
(६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक, (११)  
ऋषिवादिक, (१२) भूतवादिक, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५) कूष्माण्ड, और  
(१६) पतङ्ग ( स्था. स्था. २ उ. ३ )

जृम्भक व्यन्तर देव भी दश प्रकार के हैं । जैसे—

(१) अन्नजृम्भक, (२) पानजृम्भक, (३) वस्त्रजृम्भक, (४) लयनजृम्भक, (५) शयनजृम्भक,  
(६) पुष्पजृम्भक, (७) फलजृम्भक, (८) पुष्पफलजृम्भक, (९) विद्याजृम्भक और (१०) अव्यक्त-  
जृम्भक ।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रभा के पुञ्ज के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उत्पन्न होने वाले

व्यन्तर देव सोलह छे (१) पिशाच, (२) भूत (३) यक्ष, (४) राक्षस (५)  
किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक,  
(११) ऋषिवादिक, (१२) भूतवादिक, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५)  
कूष्माण्ड अने (१६) पतंग, ( स्था. स्था. २ उ. ३ )

भूतलक व्यन्तर देव पञ्च दस प्रकारना छे, जेभ—(१) अन्नभूतलक, (२)  
पान भूतलक, (३) वस्त्रभूतलक, (४) लयनभूतलक, (५) शयनभूतलक, (६) पुष्प भूतलक,  
(७) फलभूतलक (८) पुष्पफलभूतलक, (९) विद्याभूतलक, अने (१०) अव्यक्तभूतलक.

(३) ज्योतिष्कदेवा—

प्रभाना पुञ्ज समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानोंमें उत्पन्न थवा वाणा देव



ज्योतिष्काः । ज्योतिष्कदेवास्तिर्यग्लोके ज्योतिःप्रकाशं कुर्वन्ति । ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधाः—(१) चन्द्र—(२) सूर्य—(३) ग्रह—(४) नक्षत्र—(५) तारा—भेदात् । इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनश्चरस्वभावाः सन्ति । अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति ।

### (४) वैमानिकदेवाः—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः । यद्वा—विशेषेण मानयन्ति= विशन्ति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः । यद्वा—वि= विशिष्टं मानं=ज्ञानं यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः ।

देव ज्योतिष्क कहलाते हैं । ज्योतिष्क देव मध्यम लोक में प्रकाश करते हैं । ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं—

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारागण । ये पांचों समयक्षेत्र ( अढाई द्वीप ) में चलते हैं और समयक्षेत्र से बाहर स्थिर स्वभाव वाले हैं ।

### (४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्व लोक में विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा जहां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हें विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा समदर्शी होने के कारण जहां विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहां हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं ।

न्योतिष्क ऊडेवाय छे. न्योतिष्क देव मध्य लोकमां प्रकाश करे छे. न्योतिष्क देव पांच प्रकारना छे. (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र अने (५) तारागण. आ पांच समयक्षेत्र (अढीद्वीप)मां आवे छे अने समयक्षेत्रनी अडार स्थिर स्वभाववाणा छे.

### (४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्वलोकमां विमानोमां वास करवा वाणा वैमानिक ऊडेवाय छे, अथवा न्यां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करे छे तेने विमान ऊडे छे. अने विमानोमां वास करवा वाणा वैमानिक ऊडेवाय छे, अथवा—समदर्शी होवाना कारणे न्यां विशिष्ट ज्ञान होय, अथवा अन्य देवोनी अपेक्षाये, न्यां हेय-उपादेयनुं विशिष्ट ज्ञान होय ते विमान छे, अने तेमां थवा वाणा वैमानिक छे.

वैमानिकदेवानां द्वौ भेदौ-कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च । कल्पः=आचारः  
स चेन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशदिव्यवहाररूपस्तद्युपगताः कल्पोपपन्नाः=सौधर्मादि-  
देवलोकनिवासिनो वैमानिका देवाः । यद्वा-कल्पेषु सौधर्मादिषु उपपन्नाः सौधर्मादि-  
देवलोकोत्पन्ना वैमानिकदेवाः कल्पोपपन्नाः । यद्वा-कल्पेन=नियमेन इन्द्रसामा-  
निकादिस्वामिसेवकादिभावरूपमर्यादयोपपन्नाः=युक्ताः=कल्पोपपन्नाः ।

१ इन्द्र- २ सामानिक - ३ त्रायस्त्रिंश - ४ लोकपाल - ५ पारिषद्या - ६ नीका -  
७ आत्मरक्षका - ८ आभियोगिक - ९ प्रकीर्णाः, किल्बिषिकाश्च १० स्वस्वमर्यादापालकतया  
कल्पोपपन्ना इत्युच्यन्ते । तत्रेन्द्राः - सामानिकादिदेवानामधिपतयः ।  
इन्द्रसमानाः-सामानिकाः । मन्त्रिपुरोहितस्थानीयास्त्रायस्त्रिंशाः । सीमारक्षका

वैमानिक देव दो प्रकार के है-कल्पोपपन्न और कल्पातीत । कल्प का अर्थ  
है-आचार । यहां इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार कल्प माना गया है,  
और यह कल्प जिन में पाया जाय वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं । सौधर्म आदि देवलोको  
में निवास करने वाले वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं । अथवा कल्प से अर्थात् नियम से  
अर्थात् इन्द्र, सामानिक आदि, या स्वामी-सेवक आदिभावरूप मर्यादा से युक्त देव  
कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, पारिषद्य, आनीक. आत्मरक्षक,  
आभियोग्य, प्रकीर्णक और किल्बिषिक, ये दश अपनी-अपनी मर्यादा का पालन  
करते हुए कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

सामानिक आदि देवों के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं । इन्द्र के समान

वैमानिक देव दो प्रकारना छे-(१) कल्पोपपन्न अने (२) कल्पातीत. कल्पने  
अर्थ छे-आचार. अर्हि इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदिने व्यवहार कल्प मान्यो  
छे, अने आ कल्प नेनामां नेनामां आवे छे ते कल्पोपपन्न कहेवाय छे. सौधर्म  
आदि देवलोकोमां निवास करवावाणा वैमानिक देव कल्पोपपन्न छे. अथवा कल्पथी  
अर्थात्, नियमथी अर्थात् इन्द्र सामानिक आदि, अथवा स्वामी-सेवक आदि  
भावइय मर्यादाथी युक्त देव कल्पोपपन्न कहेवाय छे.

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, पारिषद्य, आनीक, आत्मरक्षक, आभियोग्य,  
प्रकीर्णक अने किल्बिषिक, पोत-पोतानी मर्यादानुं पालन करता थका कल्पोपपन्न  
कहेवाय छे.

सामानिक आदि देवोना अधिपति इन्द्र कहेवाय छे. इन्द्रना समान सामानिक

लोकपालाः । मित्रस्थानीयाः पारिषद्याः । सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च—आनीकाः ।  
इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः । दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः ।  
नागरिक—पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः । अन्त्यजसमानाः कल्विषिकाः । सौधर्मादि-  
द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति । व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु  
त्रायस्त्रिंश लोकापालाश्च न भवन्ति ।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति—१सौधर्म—२शान—३सन-  
त्कुमार—४माहेन्द्र—५ ब्रह्मलोक—६लान्तक—७महाशुक्र—८सहस्रार—९ऽऽनत १०प्राणता-  
११ऽऽरणा—१२ऽऽच्युताः । इमे द्वादश देवलोकाः कल्पविमानानि । तत्र सौधर्मस्य

सामानिक होते हैं । मन्त्री और पुरोहित जंसे त्रायस्त्रिंश देव हैं । सीमा की रक्षा करने वाले लोकपाल हैं । मित्र के समान पारिषद्य हैं । सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं । इन्द्र के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं । नागरिक—पौरजनके समान प्रकीर्णक देव है । दास के समान देव आभियोगिक कहलाते है, और अन्त्यजों के समान किल्विषिक हैं । ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं । व्यंतरो और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ।

कल्पोपपन्न देवों के निवासस्थान बारह हैं—

१ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत । ये बारह देवलोक कल्पविमान हैं । सौधर्म कल्प की बराबरी पर ऐशान कल्प है । ऐशान

होय छे. मन्त्री अने पुरोहित जेवा त्रायस्त्रिंश देव छे. सीमानी रक्षा करनारा ते लोकपाल छे मित्रनी समान पारिषद्य छे, सैनिक अने सेनाधिपतिरूप आनीक छे. इन्द्रना शरीरनी रक्षा करवावाणा आत्मरक्षक कहेवाय छे. नागरिक—पौरजननी समान प्रकीर्णक देव छे. दासना समान सेवक देव आभियोगिक कहेवाय छे, अन्त्यजेनी समान किल्विषिक छे. आ इन्द्र, सामानिक आदि देव साधर्म आदि सर्व कल्पोभां होय छे. व्यंतरो अने ज्योतिष्क देवोभां त्रायस्त्रिंश अने लोकपाल होता नथी.

कल्पोपपन्न देवाना निवासस्थान बार छे (१) सौधर्म, (२) ऐशान (३) सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत.

आ बार देवलोक कल्प विमान छे. सौधर्म कल्पनी बराबरी पर ऐशान कल्प छे.

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः । ऐशानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः । सनत्कुमार-  
स्योपरि माहेन्द्रः कल्पः । एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति ।

तत्रज्योतिष्कलोकादूर्ध्वम संख्यातयोजनकोटिकोटिषुमार्गमारुह्य रूपलक्षितद-  
क्षिणभागे गगनप्रदेशे सौधर्मकल्पस्तथैशानकल्पश्चाऽस्ति । सौधर्मकल्पः पूर्व  
पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यवद्भास्वरः, आयामविष्कम्भाभ्यां-  
परिक्षेपतश्चाऽसंख्येययोजनकोटिकोटयः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति ।  
तत्र मध्यभागे सर्वरत्नमयाशोक-सप्तपर्ण-चम्पका-ऽऽम्र - सौधर्मावतंसकसुशोभितः  
शक्रावासः । तत्र सुधर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य सभा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति  
सौधर्मः कल्पः ।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है । सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है । इसीप्रकार ऊपर-ऊपर  
सभी कल्प समझने चाहिए ।

ज्योतिष्क मण्डल से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर जाकर मेरु से उपलक्षित  
दक्षिण भाग में आकाश-प्रदेश में सौधर्मकल्प और ऐशान कल्प है । सौधर्मकल्प पूर्व पश्चिम  
में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है । सूर्य के समान चमक-  
दार, लम्बाई, चौड़ाई और परिधि से असंख्यात कोडाकोडी योजन, सर्वरत्नमय और लोक के  
अन्ततक विस्तृत है । उसके मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र, एवं  
सौधर्मावतंसक से शोभित शक्र का आवास है । शक्र देवेन्द्र की सुधर्मानामक सभा जिस  
कल्प में हों, वह सौधर्मकल्प कहलाता है ।

ऐशानना उपर सनत्कुमार कल्प छे, सनत्कुमारना उपर माहेन्द्र कल्प छे. ये  
प्रमाणे उपर उपर तमाम कल्प समजवा जेईये.

ज्योतिष्कमंडलनी उपर, असंख्यात कोडा-कोडी योजन उपर जेईने मेरुथी  
उपलक्षित दक्षिण भागमां आकाश-प्रदेशमां सौधर्मकल्प अने ऐशान कल्प छे. सौधर्मकल्प  
पूर्व पश्चिममां लाम्बा, उत्तर-दक्षिणमां विस्तीर्ण अने अर्धचन्द्रकारे छे. सूर्यना समान  
चमकदार लाम्बाई, चौडाई अने परिधिथी असंख्यात कोडाकोडी योजन, सर्वरत्नमय  
छे, अने लोकना अंत सुधी विस्तृत छे. तेना मध्य भागमां सर्व रत्नमय अशोक,  
सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र, एवं सौधर्मावतंसथी शोभित छंद्रना आवास छे. शक्र  
देवेन्द्रनी सुधर्मा नामनी सभा जे कल्पमां होय, ते सौधर्म कल्प कहवाय छे.

તથેશાનકલ્પોઽપ્યર્ધચન્દ્રાકારોઽસ્તિ । ઉમૌ મિલિતૌ પૂર્ણચન્દ્રકારેણા-  
વસ્થિતૌ સ્તઃ તતોઽસંખ્યાતયોજનકોટિકોટિષ્ઠપરિ સમાનપ્રદેશે સનત્કુમાર-  
માહેન્દ્રૌ કલ્પૌ વર્તેતે । અર્ધચન્દ્રાકાર ઇવ સનત્કુમારસ્તથૈવ માહેન્દ્રોઽપિ ।  
ઉમૌ મિલિત્વા પૂર્ણચન્દ્રસદૃશાકારેણ સ્તઃ । તતોઽસંખ્યાતયોજનકોટિકોટયુપરિ  
બ્રહ્મલોકઃ પૂર્ણચન્દ્રાકારોઽસ્તિ । એવમેવ લાન્તક-મહાશુક્ર-સહરાસ્ત્રાસ્તાવત્તાવ-  
યોજનોર્ધ્વમુપર્યુપરિ પ્રત્યેકં પૂર્ણચન્દ્રાકારાઃ સન્તિ તતોઽપ્યસંખ્યાતયોજનકોટિ-  
કોટયુપરિ સમાનગગનપ્રદેશે આનત-પ્રાણતલોકૌ પ્રત્યેકમર્ધચન્દ્રાકારૌ  
સ્તઃ । ઉમૌ મિલિત્વા પૂર્ણચન્દ્રાકારેણ ભવતઃ । તતોઽપ્યસંખ્યાતયોજનકોટિ  
કોટયુપરિ-આરણાચ્યુતલોકૌ પ્રત્યેકમર્ધચન્દ્રાકારૌ સ્તઃ । ઉમૌ મિલિત્વા  
પૂર્ણચન્દ્રાકારં ભજતઃ ।

એશાનકલ્પ મી અર્ધચન્દ્રાકાર હૈ । ઢોનો કલ્પ મિલકર પૂર્ણ ચન્દ્રમા કે સમાન હૈ ।  
ઇન સે અસંખ્યાત કોડાકોડી યોજન ડપર સમાન ઢેશ મેં સનત્કુમાર ડર માહેન્દ્ર કલ્પ હૈ ।  
સનત્કુમાર કલ્પ અર્ધચન્દ્રાકાર હૈ ડર માહેન્દ્ર કલ્પ મી ઇસી પ્રકાર કા હૈ । ઢોનોં મિલકર  
પૂર્ણચન્દ્રમા કે સદૃશ આકાર વાલે હૈ । ઇન સે અસંખ્યાત કોડાકોડી યોજન ડપર બ્રહ્મલોક  
પૂર્ણચન્દ્રાકાર હૈ । ઇસી પ્રકાર લાન્તક, મહાશુક્ર, ડર સહસ્રાર ડતને-ડતને યોજન ડપર-ડપર  
પ્રત્યેક પૂર્ણચન્દ્રમા કે સમાન અવસ્થિત હૈ । ડન સે અસંખ્યાત કોડાકોડી યોજન ડપર  
આકાશ પ્રદેશ મેં આનત ડર પ્રાણત વરાવરી પર પ્રત્યેક અર્ધચન્દ્રાકાર હૈ । યે ઢોનોં મિલકર  
પૂર્ણચન્દ્રકે આકાર કે હો જાતે હૈ । ડન સે અસંખ્યાત કોડાકોડી યોજન ડપર આરણ ડર  
અચ્યુત લોક પ્રત્યેક અર્ધચન્દ્રાકાર હૈ । યે ઢોનોં મિલકર પૂર્ણચન્દ્ર કે આકાર કે જૈસે  
હો જાતે હૈ ।

એશાન કલ્પ પણ અર્ધચન્દ્રાકાર છે. ડન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાની સમાન  
છે. તેનાથી અસંખ્યાત કોડા-કોડી યોજન ડપર સમાન ઢેશમાં સનત્કુમાર ડને માહેન્દ્ર  
કલ્પ છે સનત્કુમાર કલ્પ અર્ધચન્દ્રાકાર છે ડને માહેન્દ્ર કલ્પ પણ એ પ્રકારનો છે.  
ડન્ને મળીને પૂર્ણચન્દ્રમાની ડરાબર આકારવાળા છે. તેનાથી અસંખ્યાત કોડા-કોડી  
યોજન ડપર બ્રહ્મલોક પૂર્ણચન્દ્રાકાર છે એ પ્રમાણે લાન્તક, મહાશુક્ર ડને સહસ્રાર તેટલા-  
તેટલા યોજન ડપર-ડપર પ્રત્યેક, પૂર્ણચન્દ્રમાસમાન અવસ્થિત છે. તેથી અસંખ્યાત  
કોડા-કોડી યોજન ડપર આકાશપ્રદેશમાં આનત ડને પ્રાણત ડરાબરી પર પ્રત્યેક  
અર્ધચન્દ્રાકાર છે. એ ડન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાના આકારના થઈ જાય છે.  
તેથી અસંખ્યાત કોડા-કોડી યોજન ડપર આરણ ડને અચ્યુત લોક પ્રત્યેક અર્ધ-  
ચન્દ્રાકાર છે. એ ડન્ને મળીને પણ પૂર્ણચન્દ્રાકાર જેવાં થઈ જાય છે.

द्वादशकल्पनिवासिनामिन्द्राणां नामानि यथा-सौधर्मकल्पस्य शक्रः १, ऐशानस्येशानः २, सनत्कुमारस्य सनत्कुमारः ३, माहेन्द्रस्य महेन्द्रः ४, ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, लान्तकस्य-लन्तकः ६, महाशुक्रस्य महाशुक्रः ७, सहस्रारस्य सहस्रारः ८, आनत-प्राणतयोः कल्पयोः एक-एव प्राणतनामा सुरपतिः ९, आरणाच्युतयोरपि तथैवैकोऽच्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव लोकांतिकाः-सारस्वता१-ऽऽदित्य२-वह्नि३-वरुण४-गर्दतोय५-तुषिता६-ऽव्याबाधा७-ऽऽग्नेय८-रिष्ट९-नामानः सन्ति । ब्रह्मलोके लोकान्तिका निवसन्ति । ईशानकोणे सारस्वताः१, पूर्वस्यामादित्याः२, आग्नेयकोणे वह्नयः३, दक्षिणस्यां वरुणाः४, नैऋत्ये गर्दतोयाः५, पश्चिमायां तुषिताः६, वायव्यकोणे-अव्याबाधाः७, उत्तरस्याम् अग्निच्चा (आग्नेयाः)८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति ।

बारह कल्पवासी इन्द्रों के नाम इस प्रकार हैं-सौधर्म कल्प का शक्र १, ऐशान का ईशान २, सनत्कुमार का सनत्कुमार ३, माहेन्द्र का महेन्द्र ४, ब्रह्मलोकका ब्रह्मेन्द्र ५, लान्तक का लन्तक ६, महाशुक्र का महाशुक्र ७, सहस्रार का सदस्रार ८ और आनत-प्राणत कल्पों का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९ । आरण और अच्युत कल्पों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र है १० ।

इन में नौ लोकान्तिक देव हैं-(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) अव्याबाध, (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट । ये लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं । ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य, आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, वायव्य में अव्याबाध, उत्तर में अग्निच्चा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं ।

बारह कल्पवासी इन्द्रों के नामों का प्रमाण है-सौधर्मकल्पना शक्र; (१) ऐशानना ईशान (२) सनत्कुमारना सनत्कुमार (३) माहेन्द्रना महेन्द्र, (४) ब्रह्मलोकना ब्रह्मेन्द्र, (५) लान्तकना लन्तक, (६) महाशुक्रना महाशुक्र, (७) सहस्रारना सहस्रार अने आनत-प्राणत कल्पोंना एक प्राणत नामना इन्द्र है, आरण अने अच्युत कल्पोंना अच्युत नामना एक इन्द्र है (१०) तैमां नव लोकान्तिक देव हैं-(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) अव्याबाध, (८) आग्नेय, अने (९) रिष्ट. आ लोकान्तिक देव ब्रह्मलोकमा निवास करे हैं. ईशानकोणमां सारस्वत, पूर्वमां आदित्य, आग्नेयकोणमां वह्नि, दक्षिणमां वरुण, नैऋत्यमां गर्दतोय पश्चिममां तुषित, वायव्यमां अव्याबाध, उत्तरमां अग्निच्चा(आग्नेय)अने मध्यमां रिष्ट निवास करे हैं.

## कल्पातीताः—

कल्पमतीताः—अतिक्रान्ताः कल्पातीताः । सौधर्मादिद्वादशकल्पवर्हिभूताः स्वामिसेवकाद्याचारवर्जिताः, स्वातन्त्र्यादहमिन्द्रनाम्ना प्रसिद्धाः, भद्रादिनवग्रैवेयकविमान-विजयादिपञ्चानुत्तरविमानाधिवासिनो देवाः कल्पातीताः ।

सौधर्मादिद्वादशकल्पतश्चोर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोटिषूपरि नवग्रैवेयकानि विमानान्युपर्युपरि सन्ति । पुरुषाकारलोकस्य ग्रीवास्थानीयतया विमानानि ग्रैवेयकान्युच्यन्ते । तद्वासिनो देवा अपि ग्रैवेयका उच्यन्ते । सर्वोपरितनग्रैवेयकविमानादूर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोट्युपरि पञ्चानुत्तरविमानानि सन्ति । तत्रैकं मध्यभागे, चतुर्दिक्षु चत्वारि । अनुत्तरविमानवासिनो देवा अनुत्तरा उच्यन्ते ।

## कल्पातीत—

जो देव कल्प से परे है वे कल्पातीत कहलाते हैं, अर्थात् सौधर्म आदि कल्पों से बाहर, स्वामी, सेवक आदि मर्यादा से रहित—स्वतंत्र होने के कारण अहमिन्द्र नाम से प्रसिद्ध भद्र आदि नौ ग्रैवेयकों में तथा विजय आदि पांच अनुत्तर विमानों में निवास करने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं ।

सौधर्म आदि बारह कल्पों से ऊपर असंख्यात कोडाकोड़ी योजन जाकर नौ ग्रैवेयक विमान एक दूसरे के ऊपर अवस्थित हैं । पुरुषाकार लोक की ग्रीवा के स्थान पर जो विमान है, वे ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं । सब से ऊपर के ग्रैवेयक विमान से ऊपर असंख्यात कोडाकोड़ी योजन जाकर पांच अनुत्तर विमान हैं । उन में से एक मध्य भाग में है और चार चारो दिशाओं में है । अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कहलाते हैं ।

## कल्पातीत—

जे देवो कल्पेथी षडार छे ते कल्पातीत कडेवाय छे. अर्थात् सौधर्म आदि कल्पेथी षडार स्वामी-सेवक आदि मर्यादाथी रहित, स्वतंत्र होवाना कारणे अहमिन्द्र नामथी प्रसिद्ध छे. भद्र आदि नवग्रैवेयकमां, तथा विजय आदि पांच अनुत्तर विमानोमां निवास करवा वाणा देव ते कल्पातीत कडेवाय छे.

सौधर्म आदि बार कल्पेथी उपर असंख्यात कोडा-कोड़ी योजन जेधने नव ग्रैवेयक विमान ओक भीजनी उपर अवस्थित छे. पुरुषाकार लोकनी ग्रीवा (कोड) ना स्थान पर जे विमान छे. ते ग्रैवेयक विमान कडेवाय छे.

सौथी उपरना ग्रैवेयक विमान उपर असंख्यात कोडा-कोड़ी योजन जेधने पांच अनुत्तर विमान छे. तेमांथी ओक मध्य भागमां छे, चार चारैय दिशाओमां छे. अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कडेवाय छे.

नवग्रैवेयकनामानि यथा - १ भद्र - २ सुभद्र - ३ सुजात - ४ सुमानस - ५ सुदर्शन-६ प्रियदर्शना-७ऽमोघ-८सुप्रतिभद्र-९यशोधराणि ।

पञ्चानुत्तरविमानानि यथा-१ विजय-२वैजयन्त-३जयन्ता-४ऽपराजित-५ सर्वार्थसिद्धाख्यानि । अविद्यमानमुत्तर-मुत्कृष्टं विमानादि येभ्यस्तान्यनुत्तराणि । तानि च विमानानि-अनुत्तरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणादौ कल्पोपपन्नदेवा गमनागमनं कुर्वन्ति । कल्पातीतदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

### ष जीवनिकायभेद-संकलनम्

षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तरपञ्चशतानि (५६३) भेदाः । तथाहि-पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं बादर-सूक्ष्म-भेदाद् द्वैविध्येऽष्टधा । तेषां

नौ ग्रैवेयकों के नाम-(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सुमानस, (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिभद्र, और (९) यशोधर है ।

पांच अनुत्तर विमान-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध । जिन से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई विमान नहीं वे अनुत्तर विमान कहलाते हैं । तीर्थंकर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीत देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

### षड्जीवनिकाय के भेदों का संकलन-

षड्जीवनिकायों के कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) भेद है । वे इस प्रकार हैं-पृथिवी, अप्, तेज, और वायुकाय के बादर और सूक्ष्म के भेद से आठ भेद हुए ।

नवग्रैवेयकना नाम—(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सुमानस, (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिभद्र अने (९) यशोधर छे.

पांच अनुत्तर विमान-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित अने (५) सर्वार्थसिद्ध. जेनाथी उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट कोई विमान न होय ते अनुत्तर विमान कहेवाय छे. तीर्थंकर आदिना समवसरण आदिमां कल्पोपपन्न देव गमनागमन करे छे. कल्पातीत देव पोताना स्थानथी अन्य जग्यामे जाता नथी.

### षड्जीवनिकायना भेदानो योग

षड्जीवनिकायाना कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) भेद छे. ते आ प्रकारे छे—पृथ्वी, अप्, तेज अने वायुकाय, तेना बादर अने सूक्ष्मना भेदथी आठ भेद थया.



पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्वैविध्ये षोडश (१६) भेदाः । वनस्पतिकायस्य सूक्ष्म-साधारणप्रत्येकभेदात् त्रैविध्यम्, त्रिविधस्य वनस्पतिकायस्य पर्याप्तापर्याप्त-भेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये तस्य षड् भेदाः, इत्थं (२२) द्वाविंशतिर्भेदाः स्थावर-पञ्चकस्यैकेन्द्रियजीवस्य भवन्ति ।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये षड् भेदाः । सर्वसंकलनयाऽष्टाविंशति (२८) भेदाः ।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्पभुजपरिसर्प-भेदात्-पञ्चविधाः । तेषां पञ्चानां संज्ञ्यसंज्ञिभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः । तेषां पर्याप्ता-पर्याप्तभेदेन विंशति(२०)भेदाः । पूर्वोक्ताष्टाविंशतिसंकलनतोऽष्टचत्वारिंशद् (४८) भेदास्तिरश्चाम् ।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं । वनस्पतिकाय-सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक के भेद से-तीन प्रकार का है । इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से छह भेद हुए । इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद हैं ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त भेद से छह भेद । सबको जोड़ देने पर अट्ठाईस (२८) भेद हुए ।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय-जलचर, स्थलचर, खेचर, उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से पांच प्रकार के हैं । पांचों के संज्ञी, असंज्ञी के भेद से दश हुए, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से बीस (२०) भेद हुए । इन बीस में पूर्वोक्त अट्ठाईस और मिलाने से तिर्यञ्चों के अडतालीस (४८) भेद होते हैं ।

ते आठना पर्याप्त अने अपर्याप्तना लेदथी सोण लेद थाय छे वनस्पतिकाय सूक्ष्म, साधारण अने प्रत्येकना लेदथी त्रणु प्रकारना छे अे त्रणुना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेद करवाथी छ लेद थया. आ प्रमाणे पांच अेकेन्द्रिय स्थावर जिवेना आवीस लेद छे.

द्वैन्द्रिय, त्रैन्द्रिय अने चतुरिन्द्रियना पर्याप्त अपर्याप्तना लेदथी छ लेद थया ते सर्वने अेक करवाथी अठ्ठावीस (२८) लेद थया.

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय-जलचर, स्थलचर, खेचर, उरःपरिसर्प अने भुजपरिसर्पना लेदथी पांच प्रकारना छे. ते पांचना संज्ञी अने असंज्ञीना लेदथी दस थया, तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेद करवाथी बीस (२०) लेद थया, ते बीसमां पूर्वोक्त अठ्ठावीस मेलववाथी तिर्यञ्चोना अडतालीस (४८) लेद थाय छे.

रत्नप्रभादयः सप्त नरकभूमयः । तत्र भवा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) भेदाः पूर्वमेव तत्प्रकरणे सुस्पष्टं कथिताः ।

देवानामष्टनवत्युत्तरशत (१९८) भेदाः । तत्र भवनपतीनां दश भेदाः असुरकुमारादयः । परमाधार्मिकाः पञ्चदश । एवं (२५) पञ्चविंशतिर्भेदाः । व्यन्तराणां षड्विंशतिर्भेदाः । तत्र पिशाचादयः षोडश, अन्नजृम्भकादयो दश (२६) । ज्योतिष्कानां दश भेदाः । तत्र चन्द्रादयः पञ्च । तेषां पञ्चानां चर-स्थिरभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति । वैमानिकानामष्टत्रिंशद् भेदाः । तत्र सुधर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किल्बिषिकास्त्रयः, ग्रैवेयकाः-भद्रादयो

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकार के नारकी हैं । उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से चौदह भेद होते हैं ।

मनुष्यों के तीसौ तीन ( ३०३ ) भेद पहले स्पष्ट कहे जा चुके हैं ।

देवों के एकसौ अट्ठानवे ( १९८ ) भेद हैं । वे इस प्रकार-भवनपतियों के असुर-कुमार आदि दस, परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पच्चीस ( २५ ) भेद हुए । व्यन्तरों के छवीस भेद हैं-सोलह पिशाच आदि और दस अन्नजृम्भक आदि ( २६ ) । चन्द्रमा आदि पांच के चर और अचर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दश ( १० ) भेद हैं । वैमानिकों के अड़तीस भेद हैं-सुधर्म आदि बारह, सारस्वत आदि नौ, किल्बिषिक आदि तीन, भद्र आदि ग्रैवेयक नौ, विजय आदि पांच अनुत्तर विमान ( ३८ ) । इन सब का योग करने से

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकारना नारकी छे. तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेह करवाथी चौह लेह थाय छे.

मनुष्याणां त्र्युत्तरशत (३०३) लेह प्रथम स्पष्ट कही चूक्या छीअ. देवोना अष्टसो अष्टाष्ट (१९८) लेह छे. भवनपतियोना असुरकुमार आदि दस, परमाधार्मी पंद्र, सर्व पच्चीस लेह थया. व्यन्तराणां छवीस लेह छे-सोण पिशाच आदि, अने दस अन्नजृम्भक-आदि. चंद्रमा आदि पांचना चर अने अचर लेह होवाथी ज्योतिष्क देवोना दश (१०) लेह छे. वैमानिक देवोना अड़तीस (३८) लेह छे-सुधर्म आदि बार, सारस्वत आदि नव, किल्बिषिक आदि त्रय, भद्र आदि ग्रैवेयक नव, विजय आदि पांच अनुत्तर विमान, आ सर्वने अष्ट

नव, विजयादयः पञ्चानुत्तरविमानाः (३८) । सर्वेषां संकलनेन (९९) नव-  
नवतिर्भेदाः । तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये सत्यष्टनवत्युत्तरशतं (१९८) भेदाः  
देवानां भवन्ति । इत्थं सकलभेदसंकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तर-  
पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति ।

### जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति । तथाहि—

- |  |                                  |
|--|----------------------------------|
| (१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः ।        | (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः |
| (३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः ।               | (४) देवाः संख्याताः ।            |
| (५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः । | (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः ।    |
| (७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।            | (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः ।   |

निन्यानवे (९९) भेद होते हैं, और इन के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से एकसौ अट्टानवे  
(१९८) भेद देवों के हैं । इस प्रकार सब भेदों का जोड़ करने से पांचसौ त्रेसठ (५६३)  
षड्जीवनिकाय के भेद होते हैं ।

### जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं । वे इस प्रकार—

- |                                      |                               |
|--------------------------------------|-------------------------------|
| (१) संज्ञी मनुष्य संख्यात ।          | (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्यात । |
| (३) नारकी असंख्यात ।                 | (४) देव असंख्यात ।            |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात । | (६) द्वीन्द्रिय असंख्यात ।    |
| (७) त्रीन्द्रिय असंख्यात ।           | (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात ।   |

ऊरवाथी नवाष्टुं (६६) लेह थाय छे. अने तेना पर्याप्त अपर्याप्त लेह ऊरवाथी ओकसो  
अष्टाष्टुं (१६८) लेह देवोना छे. आ प्रभाले उपर ऊडेला सर्व लेहोने ओकठा ऊरवाथी  
पांयसो त्रेसठ (५६३) षड्जीवनिकायना लेह थाय छे.

### जीवों की संख्या—

जीव अनन्त छे, ते आ प्रकारे छेः—

- |  |                                 |
|--|---------------------------------|
| (१) संज्ञी मनुष्य संख्यात छे.          | (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्यात छे. |
| (३) नारकी असंख्यात छे.                 | (४) देव असंख्यात छे.            |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात छे. | (६) द्विन्द्रिय असंख्यात छे.    |
| (७) त्रीन्द्रिय असंख्यात छे.           | (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात छे.   |

- (९) पृथिवीकाया असंख्याताः । (१०) अपूकाया असंख्याताः ।  
 (११) तेजस्काया असंख्याताः । (१२) वायुकाया असंख्याताः ।  
 १३) प्रत्येक-वनस्पतिकाया असंख्याताः । (१४) तद्पेक्षया सिद्धजीवा अनन्ताः ।  
 (१५) तेभ्योऽपि कन्दमूलादिरूपा (१६) सूक्ष्मनिगोदजीवाः  
 बादरनिगोदजीवा अनन्तगुणाः । सर्वतोऽनन्तगुणाः ।

### कर्मवादिप्रकरणम्—

यः पुनरेवं षड्जीवनिकायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी वस्तुतः कर्मवादीत्याह—‘कर्मवादी’ इति । कर्म=ज्ञानावरणीयादि, तद् वदितुं शीलमस्येति कर्मवादी—कर्मस्वरूपकथनशीलः । षड्जीवनिकायतत्त्वज्ञः खलु लोकवादी ज्ञाना

- |   |  |
|---|--|
| (९) पृथ्वीकाय असंख्यात ।                                | (१०) अपूकाय असंख्यात ।                     |
| (११) तेजस्काय असंख्यात ।                                | (१२) वायुकाय असंख्यात ।                    |
| (१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात ।                      | (१४) इस से सिद्ध जीव अनन्त ।               |
| (१५) बादरनिगोदजीव कन्दमूल आदि सिद्धों से भी अनन्तगुणा । | (१६) सूक्ष्म , निगोदजीव सब से अनन्त गुणा । |

### कर्मवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार षड्जीवनिकाय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्तवादी है । ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का स्वभाव हो, वह कर्मवादी है । षड्जीवनिकाय का तत्त्व समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

- |  |   |
|--|---|
| (९) पृथ्वीकाय असंख्यात छे.                             | (१०) अपूकाय असंख्यात छे.                  |
| (११) तेजस्काय असंख्यात छे.                             | (१२) वायुकाय असंख्यात छे.                 |
| (१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात छे.                   | (१४) तेनाथी सिद्धजीव अनन्त छे.            |
| (१५) बादर निगोद जीव कन्दमूल आदि सिद्धोथी यणु अनन्त छे. | (१६) सूक्ष्म निगोद जीव सौथी अनन्तगुणा छे. |

### कर्मवादीप्रकरण—

जे आ प्रमाणे षड्जीवनिकायना स्वरूपतुं निरूपणु करवावाणा छे ते लोकवादी वास्तविके रीते कर्मवादी छे. ज्ञानावरणु आदि कर्मोंतुं कथन करवुं ते जेना स्वभावु होय, ते कर्मवादी छे. षड्जीवनिकायना तत्त्वने समझवावाणा लोकवादी ज्ञानावरणु

वरणीयाद्यष्टविधकर्मैव नरकादिचतुर्गतिभ्रमणकारणतया विजानाति । ज्ञाना-  
वरणीयादिकर्मबन्धादेव हि जीवाश्चतुर्विधासु गतिषु परिभ्रमन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्र-  
प्राप्तिमन्तरेण संसारदावाग्निपतितमात्मानं समुद्धर्तुं न प्रभवन्ति । एवं कर्मबन्धवेदी  
भव्यः कर्मवादी बोद्धव्य इत्यर्थः ।

### (१) कर्मस्वरूपम्—

अत्र कर्मप्रसङ्गेन तत्स्वरूपं निरूप्यते—

जीवेन मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते यत्, तत् कर्म । यथा तप्तायो-  
गोलकः सलिले निक्षिप्तः सन् सर्वतः सलिलमाकर्षति तथाऽनादिमिथ्यात्वा-

आदि आठ कर्मों को ही नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण जानता है ।  
ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्ध के कारण ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते  
हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के विना संसाररूपी दावानल में पड़े हुए आत्मा  
का उद्धार करने में समर्थ नहीं होते । इस प्रकार कर्मबन्ध के वेत्ता ( जाननेवाले ) भव्यजीव  
कर्मवादी कहलाते हैं ।

### (१) कर्मका स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होने से उसके स्वरूप का निरूपण करते हैं :—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो कियाजाय वह कर्म है । जैसे-  
तपा हुआ लोहे का गोला जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को  
खींचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

आदिआठ कर्मोंने नरक आदि चार गतियों में भ्रमण करने का कारण जाले है । ज्ञानावरणीय आदि  
कर्मों का बन्धना कारणों से ही चार गतियों में परिभ्रमण करते थे । सम्यग्ज्ञान अने  
चारित्र की प्राप्ति विना संसाररूपी दावानल में पड़ेला आत्माने उद्धार करवाने  
समर्थ थते नहीं, आ प्रकारे कर्मबन्धने जलुनार लव्यलव कर्मवादी कहेवाय है ।

### (१) कर्मनुं स्वरूप—

कर्मने प्रसंग होवाथी तेना स्वरूपनुं निरूपण करे छे :—

एवद्वारा मिथ्यात्वआदि कारणों से जो करवाने आवे ते कर्म छे । जेवी  
रीते अग्निही तपावेवे दोहनो गोणो पाणीमां नाभवामां आवे तो ते आरथ  
तर्कही पाणीने जेथे छे, ते प्रमाहे अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा

दिहेतुभिर्निरन्तरमयमात्मा रागद्वेषपरिणत्या स्वस्मिन् सकलप्रदेशेषु कर्मवर्गणा-  
रूपं पुद्गलं समाकर्षन् क्षीरनीरन्यायेन तादात्म्यसमापन्नं करोति तदेव कर्मोच्यते ।

(२) कर्मणः सिद्धिः—

आत्मत्वधर्मेण सर्वेषामात्मनामेकरूपत्वेऽपि देवनारकमनुष्यतिर्यगादि  
रूपं सुखि-दुःखि-सधन-निर्धन-सुरूप-क्रूरूप-सबल-ऽबल-नीरोग-सरोगादिरूपं वा  
यद् वैचित्र्यं तन्न निर्हेतुकं भवितुमर्हति, सदा भवाऽभावदोषप्रसंगात् ।  
निर्हेतुकत्वे देवनारकादिभवः शाश्वतिकः स्यात्, तथा देवनारकादिभवा

रागद्वेषरूप परिणामों से अपने समस्त आत्मप्रदेशों में कर्मवर्गणा के पुद्गलों को खींचता है  
और क्षीर-नीर की तरह तद्रूप बना लेता है उन्हीं को कर्म कहते हैं ।

(२) कर्मकी सिद्धि—

सब आत्माओं में आत्मत्व समान होने पर भी कोई देव है, कोई नारक  
कोई मनुष्य है, कोई तिर्यञ्च, कोई सुखी है, कोई दुःखी, कोई सधन, कोई निर्धन,  
कोई सुरूप, कोई क्रूरूप, कोई सबल, कोई निर्बल, कोई रोगी है, कोई नीरोगी है,  
यह सब विचित्रता निष्कारण नहीं हो सकती, अगर इसका कोई कारण न होता तो  
या तो यह विचित्रता होती ही नहीं, अगर होती भी तो सदैव के लिए होती । निष्कारण  
ही देवगति या नरकगति होती तो वह नित्य होती । तथा देव नरक आदि भवका

निरन्तर रागद्वेषरूप परिणामोत्थी पोताना समस्त आत्मप्रदेशोभां कर्मवर्गणाना पुद्ग-  
गत्वाने जेञ्चे छे, अने क्षीर-नीर प्रमाणे तद्रूप बनावी ते छे, तेने कर्म कडे छे.

(२) कर्मनी सिद्धि—

सर्व आत्माओंमें आत्मत्व समान होवा छतांय पणु कोर्द देव छे, कोर्द नारकी;  
कोर्द मनुष्य छे; कोर्द तिर्यञ्च, कोर्द सुभी छे, कोर्द दुःभी छे. कोर्द धनवान् छे, कोर्द  
निर्धन छे; कोर्द स्वइपवान् छे, कोर्द क्रूरूप छे, कोर्द सबल छे, कोर्द निर्बल छे. कोर्द  
रोगी छे, कोर्द निरोगी छे. आ सर्व विचित्रता कोर्द कारण विना कोर्द शके नडी. तेनुं  
कोर्द कारण न होय तो आवी विचित्रता पणु होय नडी. अने होय तो पछी ते उभेशां  
भाटे रडी शकते. कोर्द पणु कारण विना देवगति अथवा नरकगति होय तो ते नित्य  
होय, तथा देव अने नारक आदि लवने आलाव पणु नित्य होत. अे प्रमाणे

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्—सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात् ।

अत एव—“नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्” इत्याहुः । सहेतुकत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति । उक्तञ्च—

“आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात् ।  
नरादिरूपं तच्चित्रमदृष्टं कर्मसंज्ञितम्” ॥ १ ॥

અભાવ હી શાશ્વતિક હોતા । ઇસી પ્રકાર જો સુખી હૈ વહ સદા કે લિખ સુખી હોતા । જો દુઃખી હૈ ઉસે સદૈવ દુઃખ હી હોતા—ઉસ કે લિખ સદૈવ સુખ કા અભાવ હોતા । ઇસી લિખ કહા ગયા હૈ કિ— “જો વસ્તુ કિસી કારણકી અપેક્ષા નહીં રખતી વહ, યા તો આકાશ કી ભૌતિ સદૈવ વિદ્યમાન રહતી અથવા સ્વરવિષાણ કી તરહ કદાપિ નહીં હોતી । ” અગર ઇસ વિચિત્રતા કા જો કારણ હૈ ઉસી કારણ કો હમ કર્મ કહતે હૈ । કહા ભી હૈ—

“આત્મત્વ કી સમાનતા હોને પર ભી જિસ કારણ સે મનુષ્યાદિરૂપ વિચિત્રતા હોતી હૈ વહી અદૃષ્ટ હૈ । ઉસી કો કર્મ કહતે હૈ, વહ નાના પ્રકાર કા હૈ ॥ ૧ ॥ ”

જે સુખી છે તે હંમેશાં માટે સુખીજ હોત. અને જે દુઃખી છે તે હંમેશાં દુઃખીજ રહેત, તેને હંમેશા માટે સુખનો અભાવ રહેત. એ કારણથી કહ્યું છે કે—“ જે વસ્તુ કોઈ કારણની અપેક્ષા રાખતી નથી તે આકાશ પ્રમાણે સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે, અથવા ખર-વિષાણ (ગધેડાના શિંગડા)ની પ્રમાણે કદાપિ હોય નહીં ” અગર આ વિચિત્રતાનું કોઈ કારણ માનવામાં આવે તો તે કારણને અમે કર્મ કહીએ છીએ, કહ્યું છે—

“આત્મત્વ—(આત્માપણ)ની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે કારણથી મનુષ્યાદિરૂપ વિચિત્રતા હોય છે—દેખાય છે. તે અદૃષ્ટ છે. તેને કર્મ કહે છે. અને તે નાના પ્રકારના છે—અર્થાત્ ઘણા પ્રકારના છે.” ॥ ૧ ॥

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तत्वे हि कर्मणः सकाशा-  
दात्मनामनुग्रहोपघातासंभवात्, गगनादिवत् । उक्तञ्च—

“ तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां,  
केचिल्लभन्ते निजकार्यसिद्धिम् ।  
परे न तां मित्र । निगद्यतां मे,  
कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः ? ॥१॥ ”

अपरञ्च—

“ निवध्य मासान्नव गर्भमध्ये,  
बहुप्रकारैः कललादिभावैः ।  
उद्वर्त्य निष्काशयते सवित्र्याः,  
को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम् ? ” इति ।

यह कर्म, पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं । अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपघात होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता । कहा भी है :—

“ समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते । मित्र ! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो कहो ? अर्थात् कर्म ही इस का एकमात्र कारण है ” ॥ १ ॥  
और भी कहा है :—

“ गर्भ में नौ महीने तक कलल आदि अनेक रूपों में बढ़ाकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कोन बाहर निकालता है ? ” ॥ १ ॥

ये कर्म, पुद्गलस्वरूप छे, अमूर्त नथी. अथवा कर्मने अमूर्त मानवामां आवे तो तेनाथी आत्मानो अनुग्रह अने उपघात थयो असंभव छे, जेभ आकाशथी थतो नथी. कहुं पणु छे:—

“समान पराक्रम, उद्यम, अने साहसवाणी व्यक्तिओमां कोछ-कोछ पोतानुं कार्य सिद्ध करी ले छे; अने कोछ कोछ नथी करी शकती. मित्र ! आ भाणतमां कर्म विना भीणुं कोछ कारणु डोय तो कडो ? अर्थात् कर्मन अणुं अक मात्र कारणु छे.” ॥१॥

भीणुं पणु कहुं छे—“गर्भमां नव मास सुधी कलल (गर्भनुं प्रथम स्वरूप) आदि अनेक रूपोमां वृद्धि पामीने माताना गर्भमांथी पूर्वकर्म सिवाय भीणुं कोणु अडार कडे छे ? ” ॥१॥



ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः ? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा . गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहप्राकारवृक्षरक्तनीलपीतादि-भावेन वैचित्र्यं विभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्टं परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादि-शिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरि-गृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत् ? ।

शङ्का—जैसे कर्म के बिना भी भ्रांति-भ्रांतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी संसारी जीवों में सुख-दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है ? ।

समाधान—मेघविकार—गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख-दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी ? ।

शंका—जेवी रीते कर्म विना पणु लात-लातना मेघ आदिना विकारो जेवामां आवे छे, ते प्रमाणे कर्मना अभावमां पणु संसारी जेवामां सुख-दुःख आदिनी विचित्रता छाय छे. जेभ मानवामां शुं हानि छे ?

समाधान—मेघविकार—गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त नील, पीत आदि रूपमां विचित्रता धारणु करे छे. त्यां स्वभावथी परिणत इन्द्रधनुष आदि पुद्गलना परिणामानी विचित्रता जेवामां आवे छे. परन्तु चित्रकार आदि केरि शिल्पीद्वारा गृहीत चित्रमां अङ्कित, लेप्य, काष्ठ आदि पुद्गलनां मां तेनाथी पणु अधिक विशिष्टता जेवामां आवे छे तो पथी जेवद्वारा ग्रहणु करेला आन्तरिक कर्मपुद्गलानी सुख-दुःख आदि नाना (जुहा-जुहा) रूपमां परिणमननी विशिष्टतर विचित्रता केभ न छाय ?

ननु अभ्रादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर-  
मेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्तद्-  
वैचित्र्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात् एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम-  
वैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अवधेहि—

अभ्रादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोष-  
मेषि, तर्हि कर्मापि ननु तनुरेव, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यवेहि ।  
जीवेन सहातिसंश्लिष्टत्वादतीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कर्मणं शरीरम्,  
औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते ।

शंका—अभ्र—मेघ आदि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते  
हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख—दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र  
परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या लाभ है ? पुद्गलों की  
सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान—अभ्र आदि के समान शरीर का ही सुख—दुःख आदि विचित्र  
परिणमन अङ्गीकार करने में आप को सन्तोष मिलता है तो कर्म भी तो शरीर ही है,  
और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए । जीव के साथ  
घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर  
और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है । बस इतना ही दोनों  
शरीरों में अन्तर है ।

शंका—अभ्र (मेघ) आदिना समान कर्मपुद्गलानुं विचित्र परिणमन स्वीकार  
करे छे तो पछी, 'बाह्य शरीर न सुख—दुःख आदि नाना रूपोमां विचित्र परिणमन  
करे छे' अथ शा भाटे मानता नथी ? कर्मने अे विचित्रतानुं कारण मानवाथी शुं  
लाभ छे ?, पुद्गलानुं परिणमननी तमाम विचित्रता स्वभावथी न सिद्ध छे.

समाधान—मेघ आदिना समान शरीरनुं पणु सुख दुःख आदि विचित्र परिणमन  
अङ्गीकार करवामां आपने सन्तोष भणे छे तो कर्म ते शरीर न छे, अने ते कर्म—शरीर  
विचित्र परिणमन करे छे, अे प्रमाणे समञ्ज ल्यो. जवनी साथे घनिष्ठ संबन्ध होवाना  
कारणे अने अतीन्द्रिय होवाना कारणे कर्म—शरीर आभ्यन्तर अने सूक्ष्म कडेवाय छे,  
तथा औदारिक शरीर बाह्य अने—स्थूल छे. अेटलुं न अे जे शरीरमां अन्तर छे.

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्य-  
शरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरू-  
पातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कर्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आप-  
तति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टबाह्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्त-  
रीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्मं कर्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणा-  
भावरूपो दोषः समापद्यते, ततश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणान्तरं सर्वस्यापि  
जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात् । न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः ।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य  
शरीर के साथ ही अभ्र आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख  
दुःख आदिरूप परिणमन मानना चाहिए । कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप  
अतीन्द्रिय शरीर की कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार  
न करने से अगर कोई दाष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता  
स्वीकार कर लेंगे ? ।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष दीखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण  
करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर  
सकेगा । सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है । जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण  
न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

शंका—बाह्य शरीर स्थूल छे अने प्रत्यक्ष देखाय छे, अे कारणथी बाह्य शरीरनी  
साथेन मेघ आदिनी समानता छे अेवी स्थितिमां बाह्य शरीरनुंन सुख-दुःख  
आदि रूप परिणमन मानी लेवुं न्नेछेअे. केछ वअत प्रत्यक्ष नहि देखाता अेवा  
कर्मरूप अतीन्द्रिय शरीरनी कल्पना करवानुं कष्ट शा माटे उहाये छे ? हाँ ! कर्मण  
शरीरने स्वीकार नहि करवाथी न्ने केछ दोष आवशे तो पछी अर्थापत्ति प्रमाणथीन  
कर्मनी विचित्रता स्वीकारी लछेअे.

समाधान—मृत्युना समये प्रत्यक्ष देखातां बाह्य स्थूल शरीरथी एव अलग थछ  
लय छे. आगता लवमां बाह्य स्थूल शरीरने अछेअे करवाना कारणभूत सूक्ष्म शरीर  
नहि होय तो एव आगामी शरीरने अछेअे करी शकशे नहि. सूक्ष्म शरीर नहि  
मानवाथी आ दोष आवे छे. एव न्ने मृत्यु पछी जीव शरीरने अछेअे न करे तो मृत्यु  
पछी अशरीर होवाने कारणे सर्व एये मुक्त थछ न्ने अने संसार अंध थछ न्ने.

शरीरान्तरग्रहणं च निष्कारणं न संभवति । तस्मात् । स्थूलशरीकारणभूतं सूक्ष्म-  
कार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु कर्मरहितः शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तथेश्वरः,  
स्वभावो यदृच्छा वा विविधशरीरादिकं करोतीत्येव मन्यते, किं कर्मकल्पनेन ?  
अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिरकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणाभावात्,  
दण्डाद्युपकरणरहितकुम्भकारवत् । कर्म विनाऽन्यदुपकरणं शरीराद्यारम्भकं  
जीवेश्वरादीनां न संभवति, गर्भाद्यवस्थास्वन्योपकरणासंभवात्, कर्म विना  
शुक्रशोणितादिग्रहणस्याप्यनुपपत्ते ।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और विना कारण के  
शरीर का ग्रहण नहीं हो सकता, अत एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का  
अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए ।

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय,  
या ईश्वर; स्वभाव अथवा यदृच्छा को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना  
से क्या लाभ है ? ।

समाधान—कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख—दुःख आदि का कर्ता  
नहीं है, क्यों कि उसके पास उपकरण नहीं है, दण्ड आदि उपकरणों से रहित कुम्भार  
के समान । कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण  
नहीं हो सकता । कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्भ आदि अवस्थाओं  
में शुक्र शोणित आदिका ग्रहण भी नहीं हो सकता ।

परन्तु संसार अंध थयो तेवुं जेवामां आवतुं नथी. अने कारणे विना शरीरनुं अडणु  
डोर्छ शके नडीं अे कारणेथी स्थूल शरीरनुं कारणे सूक्ष्म-कार्मण शरीरना अस्तित्वने  
अंगीकार करवे। जेध अे.

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीवने नाना प्रकारना शरीराना कर्ता मानी लर्छ अे, अथवा  
ईश्वर स्वभाव या यदृच्छाने कर्ता मानी लर्छ अे तो पथी कर्मनी कल्पना करवाथी शुं लाभ ? ।

समाधान—कर्मरहित जीव अथवा तो ईश्वर आदि, शरीर, सुख, दुःखना कर्ता नथी.  
कारणे के तेनी पासे उपकरणे—( सुख साधन ) नथी, दंड आदि प्रधान साधने। विनाने  
जेम कुम्भार, ते प्रमाणे, कर्म विना शरीर आदि रचवामां ईश्वर वगेरेने भीलुं डोर्छ  
पणु उपकरणे डोर्छ शके नडि. कर्मना विना भीलुं डोर्छ प्रधान साधन नडिं डोवने  
कारणे गर्भ आदि अवस्थाओंमां शुके शोणित वगेरेनुं अडणु पणु थर्छ शके नडी.

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत् । तथा—एकत्वात् एकपरमाणुवत् ।

यदि शरीरवानीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-  
दोषः समापद्यते । तथाहि—शरीरस्येश्वरस्य जगद्वैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-  
कर्तृत्वमकर्मणस्तस्येश्वरस्य न संभवति, निरूपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत् ।  
अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो  
वा ? यद्यशरीरस्तर्हि नासौ शरीरकर्ता निरूपकरणत्वात् । शरीरवांश्चेत्—तर्हि

अथवा—जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है । जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि को जनक नहीं होता, जैसे आकाश । तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु ।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है । वह इस प्रकार—जब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह बिना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुम्भार के समान । अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि—वह सशरीर है अथवा अशरीर है ?, अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

अथवा—जे कर्मरहित छे ते शरीर आदिना उत्पादक थर्छ शकै नहि, अरए छे ते चेष्टारहित छे. अथवा अमूर्त छे. जे चेष्टाहीन अथवा अमूर्त होय छे, ते शरीर आदिना उत्पन्न करनार होय नहि. जेवी रीते—आकाश, तथा ते अेक होवाना कारणे पए शरीर आदिना उत्पन्न करनार होय नहि. जेवी रीते अेक परमाणु.

कदाचित् अेभ कडेवामां आवे छे—सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिना कर्ता छे. तो अनवस्था दोष आवे छे. ते आ प्रमाणे छे:—न्यारे सशरीर ईश्वर जगतनी विचित्रतानुं कारणे छे तो ते, शरीर बिना पोतानुं शरीर पए बनावी शक्ये नही; कारणे छे ते उपकरणहीन छे, जेभ दंड आदिथी रहित कुम्भार. हुवे जे अेभ कडेवामां आवे छे कोछ भीजे ईश्वर प्रथमना ईश्वरनुं शरीर बनाववामां प्रवृत्त थाय छे, तो ते विषयमां पए अे प्रश्न होय थाय छे छे:—ते सशरीर छे अथवा अशरीर छे ? अगर जे अशरीर छे तो उपकरणहीन

तच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रश्नस्य । सोऽप्यकर्मा निजशरीरं नारभते निरूपकरण-  
त्वात् । यदि तच्छरीरकर्ताऽन्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा ?  
इत्थं चानवस्था । अनिष्टं च सर्वमेतत् । तस्मान्नेश्वरो देहादीनां कर्ता, किन्तु  
कर्मसहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति ।

किञ्च-ईश्वरस्य देहादिकरणं निष्प्रयोजनमिति तदोन्मत्ततुल्यता स्यात् ।  
सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः । किञ्चानादिशुद्धस्य तस्येश्वरस्य  
देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात् ।

नहीं हो सकता । अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तीसरा ईश्वर मानना  
पड़ेगा । वह तीसरा ईश्वर भी अशरीर है या सशरीर है ?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित  
होनेके कारण अनवस्था दोष आता है ।

यह सब अभीष्ट नहीं है । अतः देह आदिका कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, वरन्  
कर्मसहित जीव ही अपने शरीर आदि का कर्ता है ।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर, विना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर आदि की  
रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा । अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह  
ईश्वर नहीं रहेगा ।

एक बात और-अनादि काल से शुद्ध ईश्वर की देह आदि रचने में इच्छा  
ही नहीं हो सकती, क्यों कि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता ।

छोवाना कारणे शरीरकर्ता थर् शकतो नथी. अगर सशरीर छे तो तेनुं शरीर बना-  
ववावाणे कोर् त्रीने धश्वर मानवे पडशे. ते त्रीण धश्वर पणु सशरीर छे अथवा  
सशरीर छे ?, धत्यादि विकल्प इरीने उपस्थित छोवाना कारणे अनवस्था दोष आवे  
छे, ते सर्व अभीष्ट नथी, ते कारणथी हेड आदिना कर्ता धश्वर थर् शकता नथी.  
परन्तु कर्मसहित एवण पोताना शरीर आदिना कर्ता छे.

भील वात अे छे के-धश्वर कोर् प्रयोजन विना ने शरीर आदिनी रचना  
करे छे तो ते उन्मत्तनी समान गणुशे. अथवा तो तेने कांर् प्रयोजन छे, तो ते  
धश्वर नहीं रहे. अेक भील वात अे छे के-अनादि काणथी शुद्ध धश्वरनी, हेड  
आदि रचनामां धिछाण रहेती नथी, कारणे के धिछा अेक प्रकारना राग छे, अने  
रागी धश्वर थर् शकता नथी.

नापि स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति । स स्वभावः किं वस्तु-  
विशेषो वा ? अकारणता वा ? वस्तुधर्मो वा ? , तत्र न तावद् वस्तुविशेषः, तस्य  
वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात् । प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे कर्मापि  
कथं नाङ्गीकरोपि ? , त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात् ।

किञ्च—वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तौ वा स्यादमूर्त्तौ वा ? , यदि  
मूर्त्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति । यदि पुनरमूर्त्तस्तर्हि नासौ  
स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्त्तत्वात् निरुपकरणत्वाच्च, गगनवत् ।

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता । आखिर स्वभाव का अर्थ  
क्या है ? स्वभाव कोई वस्तु है ? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव है ? या  
किसी वस्तु का धर्म है ? । स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु मानने में  
कोई प्रमाण नहीं है । प्रमाण के अभावमें भी स्वभाव को वस्तु मान लिया जाय  
तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है ? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने में भी कोई  
प्रमाण नहीं है ।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त्त है या अमूर्त्त ? , अगर मूर्त्त है  
तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है । आप कर्म को ही स्वभाव—शब्द  
से कहते हैं तो कह लीजिये । स्वभाव को अमूर्त्त मानते हैं तो वह देह  
आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त्त है और उपकरणरहित  
है, जैसे आकाश । मूर्त्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त्त ही होना चाहिए,

स्वभाव पणु देह आदिनो कर्ता थर् शकतो नथी, छेवट स्वभावनेो अर्थ शुं छे ?  
स्वभाव कोर् वस्तु छे ? अथवा कोर्पणु कारणु नहीं होवुं ते स्वभाव छे ? अथवा कोर्  
वस्तुनेो धर्म छे ? स्वभाव कोर् वस्तु तो छे नहीं, कारणु के तेने वस्तु मानवामां कोर्  
प्रमाणु नथी, प्रमाणुना अभावमां पणु स्वभावने वस्तु मानी देवामां आवे तो कर्म  
मानवामां शुं आपत्ति छे ? तमारा मत प्रमाणे कर्म मानवामां पणु कोर् प्रमाणु नथी.

स्वभाव अगर कोर् पणु वस्तु छे तो ते मूर्त्त छे अथवा अमूर्त्त छे ? ने मूर्त्त  
छे तो स्वभाव अने कर्म ओकण वस्तु छे, तमे कर्मने स्वभाव—शब्दथी कडो छे तो  
पुशीथी कडो ने स्वभावने अमूर्त्त मानशे तो ते देह आदिनो कर्ता थर् शकशे नही,  
कारणु के ते अमूर्त्त छे. अने उपकरणु (प्रधान साधनेो) रडित छे नेवी रीते आकाश.

मूर्तस्य शरीरादिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव संभवति, यथा मृत्पिण्डो घटस्य ।

अकारणत्वरूपः स्वभावः ? इति चेत्, एवं सति शरीरादिकमकारण-  
मेवोत्पद्यते, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणाभावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव  
समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः ।

यदि स्वभावो 'वस्तुधर्म' इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिवदात्मनो  
धर्मस्तर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारणं भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्तं  
प्रागेव । यदि स स्वभावो मूर्तवस्तुधर्मस्तर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुद्गलरूप-  
मेवेति वयं ब्रूमः । तस्मात् कर्मैव जगद्वैचित्र्यकारणमिति सिद्धम् ।

जैसे घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है ।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर  
आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं । अगर निष्कारण ही शरीर की उत्पत्ति होती है तो  
फिर संसार के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते ? ।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है ।  
अगर वह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म है तो आकाश की तरह अमूर्त होने के  
कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता, यह पहले ही कहा जा चुका है । स्वभाव  
अगर किसी मूर्त वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्योंकि हमारे कथनानुसार  
कर्म भी पुद्गल का क्रमभावी धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही जगत् की  
विचित्रता का कारण है ।

मूर्त्तं शरीरनुं अनुरूपं कारणं मूर्त्तं ङोपुं ङोधये, ङेम घटनुं कारणं भाटीनो पिण्डे छे.

अथवा कोर्धं ङ कारणं न ङोय अवेो ङ स्वभाव छे तो तेनो अर्धं अये थये।  
के शरीर आदि निष्कारणं उत्पन्न थर्धं ङय छे, अने निष्कारणं ङ शरीरनी उत्पत्ति  
थाय छे तो पछी संसारना समस्त शरीर अेक साथे केम थर्धं नथी ङतां ?

‘स्वभाव कोर्धं वस्तुनो धर्मं छे’ अये प्रमाणे कडेपुं ते पणु युक्तिसंगत नथी।  
अथवा तो ते ज्ञान आदिना समान आत्मानो धर्मं छे. तो आकाशनी साङ्क अमूर्त्तं  
ङोवाना कारणे शरीरना कर्ता थर्धं शकथे नडी, आ ङकीकत प्रथमथीं ङ ङडी आपी  
छे. स्वभाव अये कोर्धं मूर्त्तं वस्तुनो धर्मं छे, तो ते वात अमारे पणु भान्य छे,  
कारणु के अमारो कडेवा प्रमाणे कर्म पणु पुद्गलरूपं छे, अये माटे अयेम सिद्ध थयुं  
के कर्मं ङ ङगतनी विचित्रानुं कारणु छे.



## (૩) કર્મણો મૂર્તત્વમ્—

નન્વતીન્દ્રિયસ્ય કાર્મણશરીરસ્ય મૂર્તત્વે કિં માનમ્ ? અત્રોચ્યતે—  
શરીરાદિકાર્યદર્શનાત્ત્કારણભૂતં કર્મ સિધ્યતિ ચેત્ તર્હિં કાર્યાનુરૂપમેવ  
કારણં ભવિતુમર્હતીતિ શરીરાદિકાર્યાણાં મૂર્તત્વાત્ત્કારણં કર્માપિ મૂર્તમેવ । યથા  
મૂર્તસ્ય ઘટાદિકાર્યસ્ય કારણં પરમાણુપુદ્ગલાસ્તે મૂર્તા એવ સન્તિ । યચ્ચ પુનરમૂર્તં  
કાર્યં તસ્ય કારણમપિ—અમૂર્તમ્ , યથા જ્ઞાનસ્યાત્મેતિ ।

નનુ સુખદુઃખાદયોઽપિ કર્મણઃ કાર્યં તર્હિં તેષામમૂર્તત્વાત્ કર્મણોઽ  
મૂર્તત્વમપિ પ્રાપ્નોતિ, નહિ મૂર્તાદમૂર્તોત્પત્તિઃ સંભવતિ, યથા પુદ્ગલાદ્ જ્ઞાનપર્યાયઃ,

## (૩) કર્મ કા મૂર્તપન—

શંકા—અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીર કે મૂર્ત હોને મેં કયા પ્રમાણ હૈ ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોં કે દેખને સે અનેકે કારણભૂત કર્મ કી સિદ્ધિ હોતી  
હૈ, ઓર કારણ, કાર્ય કે અનુરૂપ હી હોતા હૈ, અત એવ જબ શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત હૈં તો  
અન કા કારણ કર્મ મી મૂર્ત હી હોના ચાહિએ । જૈસે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોં કે કારણભૂત  
પુદ્ગલ પરમાણુ મી મૂર્ત હી હૈં, જો કાર્ય અમૂર્ત હોતા હૈ, અસકા કારણ મી અમૂર્ત હી હોતા હૈ;  
જૈસે જ્ઞાન કા કારણ આત્મા ।

શંકા—સુખ ઓર દુઃખ આદિ કા કારણ મી કર્મ હૈ, ઓર સુખ  
દુઃખ આદિ અમૂર્ત હૈ; અત અન કા કારણ કર્મ અમૂર્ત મી હોના ચાહિએ । મૂર્ત સે  
અમૂર્ત કી ઉત્પત્તિ નહીં હો સકતી, જૈસે પુદ્ગલ સે જ્ઞાનપર્યાય કી ઉત્પત્તિ નહીં હો

## (૩) કર્મણુ મૂર્તપણુ—

શંકા—અતીન્દ્રિય કાર્મણુ શરીરમાં મૂર્તપણુ હોવામાં શું પ્રમાણુ છે ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણભૂત કર્મની સિદ્ધિ થાય  
છે, અને કારણુ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે. એ કારણુથી જ્યારે શરીર આદિ કાર્ય  
મૂર્ત છે, તો તેનું કારણુ કર્મ પણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ. જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ  
કાર્યોના કારણભૂત પુદ્ગલપરમાણુ પણ મૂર્ત છે. જે કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનું કારણુ  
પણ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણુ આત્મા.

શંકા—સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણુ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત  
છે, તેથી તેનું કારણુ કર્મ પણ અમૂર્તજ હોવું જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ  
શકતી નથી; જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, અને એકજ

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तत्वममूर्तत्वं च युज्यते, विरुद्धत्वादिति चेत् ? उच्यते—

अत्र कारणशब्देनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्, सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽन्नपानादयो विषादया वा सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति । उपादानकारणं तु तेषामात्मैव सुखदुःखादीनामात्मधर्मत्वादिति नास्ति दोषलेशोऽपि ।

(४) जीवकर्मणोः सम्बन्धः ।

ननु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सह कथं संयोगलक्षणः सम्बन्धः ? इति चेन्मैवम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन संयोगलक्षणः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति । उक्तञ्च—

सकती । और एक ही कर्म मूर्त भी हो और अमूर्त भी हो, यह कैसे हो सकता है ?, ये दोनों धर्म विरोधी हैं, एक जगह नहीं रह सकते ।

समाधान—यहाँ कारण—शब्द से उपादान कारण ग्रहण किया गया है, निमित्त कारण नहीं । कर्म सुख—दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे अन्न, पान, विष आदि सुख—दुःख के निमित्त कारण हैं । सुख दुःख का उपादान कारण तो आत्मा ही है, क्यों कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहाँ दोष का लेश भी नहीं है ।

(४) जीव और कर्म का सम्बन्ध—

शङ्काः—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया, मगर मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है ? ।

समाधान—ऐसा न कहिए । जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ संयोग-सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का भी सम्बन्ध है । कहा भी है :—

कर्म मूर्तं पणु ढोय अने अमूर्तं पणु ढोय, अये केवी रीते ढोई शके ? आ अन्ने धर्म विरोधी छे तेथी अयेक जग्याअये रही शकता नथी.

समाधान—अर्हिए कारण—शब्दथी उपादान कारण ग्रहण करवायां आवे छे, निमित्त कारण नहिं. कर्म, सुख—दुःख थवायां निमित्त कारण छे, केवी रीते अन्न, पान, विष आदि सुख—दुःखना निमित्त कारण छे, परन्तु सुख—दुःखतुं उपादान कारण तो आत्मा छे, कारण के ते आत्मानो धर्म छे तेथी तेमां लेश पणु दोष नथी.

(४) जिव अने कर्मना सम्बन्ध—

शंका—आपे कर्मने 'मूर्त छे' अये सिद्ध कर्युं तो पछी मूर्त कर्मना अमूर्त जिवनी साथे सम्बन्ध केवी रीते ढोई शके छे ?

समाधान—आ प्रमाणे नहिं कडो ? जेम मूर्त घटने अमूर्त आकाशनी साथे संयोगसम्बन्ध छे, ते प्रमाणे जिव अने कर्मना पणु सम्बन्ध छे. कहुं पणु छे:—

“ यथा ह्यरूपमाकाशं, रूपिद्रव्यादिभाजनम् ।  
तथा ह्यरूप आत्मापि, रूपिकर्मादिभाजनम् ॥१॥ ”

यथा वा - अमूर्तयाऽऽकुञ्चनादिक्रियया सह मूर्तद्रव्यस्याङ्गुल्यादेः  
सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्ध इति बोध्यम् ।

यद्वा-यथा बाह्यशरीरमिदं जीवेन सह सम्बद्धं प्रत्यक्षदृष्टमेवास्ति,  
एवं भवान्तरं गच्छता जीवेन सह कर्मणशरीरं सम्बद्धमेवेति ।

यदि बाह्यशरीरस्य जीवेन सह सम्बन्धे धर्माधर्मयोः कारणताऽस्ती-  
त्युच्यते तर्हि तावपि धर्माधर्मौ मूर्तौ स्याताममूर्तौ वा ? । यदि मूर्तौ तर्हि

“ जैसे अरूपी आकाश रूपी द्रव्य आदि का आधार है, उसी प्रकार अरूपी आत्मा  
कर्मों का आधार है ” ॥ १ ॥

अथवा जैसे-आकुञ्चन ( सिकोडना ) आदि अमूर्त क्रिया के साथ अंगुली आदि  
मूर्त द्रव्य का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार यहां जीव और कर्म का सम्बन्ध समझ  
लेना चाहिए ।

अथवा जैसे बाह्य शरीरका जीव के साथ सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसी  
प्रकार भवान्तर में जाते जीव के साथ कर्मण शरीर का सम्बन्ध है ।

अगर कहा जाय कि जीव के साथ बाह्य शरीर का सम्बन्ध होने में धर्म  
और अधर्म कारण है तो प्रश्न खडा होता है कि-धर्म अधर्म मूर्त हैं या अमूर्त है ?

“ जेवी रीते अरूपी आकाश, रूपी द्रव्य आदिने आधार छे. ते प्रमाणे अरूपी  
आत्मा, रूपी कर्मोनि आधार छे. ” ॥१॥

अथवा-जेवी रीते-संकोचवुं आदि अमूर्त क्रियानी साथे आंगुली आदि मूर्त  
द्रव्यने सम्बन्ध होय छे ते प्रमाणे एव अने कर्मने सम्बन्ध समझ लेवो जेधजे.

अथवा जेवी रीते आ बाह्य शरीर एवनी साथे संबद्ध छे. ते प्रत्यक्षथी सिद्ध  
छे. ते प्रमाणे भवान्तरमां जाता एवनी साथे कर्मणु शरीरने संबंध छे.

अथवा तो जेभ कडेवामां आवे के एवनी साथे बाह्य शरीरने सम्बन्ध होवामां  
धर्म अने अधर्म कारण छे तो प्रश्न उलो थाय छे. के-धर्म अधर्म मूर्त छे के अमूर्त  
छे ? जे ते मूर्त छे जेभ कडे तो अमूर्त एवनी साथे तेना संबंध जेवी रीते थये ?

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ? यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कुतो न स्यात् । यद्यमूर्त्तौ धर्माधर्मौ तर्हि बाह्येन स्थूल-शरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? तवमते मुर्तामूर्तयोः सम्बन्धासंभवात् । यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्बाह्यशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ? ।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ स्याताम्, न ह्यमूर्तस्याकाशस्य मूर्तैः स्रक्चन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ जायेते ? ।

अगर वे मूर्त है तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ ? अगर किसी प्रकार उनका सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ? । अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं तो बाह्य स्थूल और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया ? आपके मत से मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता । अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में क्या दोष है ? ।

शङ्का—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात कैसे हो सकता है, मूर्त माला, चन्दन, अग्नि, ज्वाला आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता ?

अथवा केछ प्रकारे तेनो सम्बन्ध थछ गयेो तो कर्मनो सम्बन्ध शा भाटे नछि थछ शके ? अगर धर्म अधर्म अमूर्त छे तो बाह्य स्थूल अने मूर्त शरीरनी साथे तेनो सम्बन्ध केवी रीते थछ गयेो ? आपना मत प्रमाणे तो मूर्त अने अमूर्तनो सम्बन्ध-न छोछ शके नछी. परन्तु जे अमूर्त धर्म-अधर्मनो मूर्त शरीरनी साथे सम्बन्ध थयेो ते स्वीकार करता छे तो जवनी साथे कर्मनो सम्बन्ध मानवामां दोष शुं छे ?

शंका—अमूर्त जवने, मूर्त कर्मद्वारा सुख-दुःख आदिइय अनुग्रह अने उपघात कछ रीते थछ शके ? मूर्त माला चन्दन, अग्नि, ज्वाला आदिथी अमूर्त आकाशनो अनुग्रह अने उपघात थछ शकतेो नथी.

શૃણુ—યથામદિરાપાનૈર્વિષપિપીલિકાદિભિર્મક્ષિતૈરમૂર્તાનામપિદૃતિસ્મૃતિ—મેધા-  
દીનામાત્મગુણાનામુપઘાતો જાયતે, “મેધાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ-  
વચનાત્, તથા પયઃશર્કરાઘૃતાદિભિશ્ચાનુગ્રહઃ ક્રિયતે તથૈવામૂર્તસ્યાત્મનો મુર્તેન  
કર્મણાનુગ્રહોપઘાતૌ જાયેતે । इदं च जीवस्यामूर्तत्वमङ्गीकृत्य समाहितम्,  
न ह्येकान्तरूपेणाऽमूर्त एवात्मा किन्तु बह्वययोगोलकवत् क्षीरनीरवच्च कार्मणशरीरा-  
मेदरूपतां प्राप्तः कथञ्चिन्मूर्तोऽपीति । तस्य मूर्तेन कर्मणानुग्रहोपघातौ भवत  
एव । आकाशस्य तु तौ न भवतः, तस्यैकान्तरूपेणामूर्तत्वादचेतनत्वाच्च ।

સમાધાન—મુનિયે એસે—મદિરા કા પાન કરને સે, વિષમક્ષણ સે ઓર કીડી  
આદિ કે સ્વાયે જાને સે અમૂર્ત ધૈર્ય, સ્મૃતિ ઓર બુદ્ધિ આદિ આત્મિક ગુણો કા ઉપઘાત  
હોતા હૈ, “મેધાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચન સે, તથા દૂધ, શક્કર ઓર ઘૃત  
આદિ સે અનુગ્રહ હોતા હૈ, ઊસી પ્રકાર અમૂર્ત આત્મા કા મૂર્ત કર્મ દ્વારા અનુગ્રહ ઓર  
ઉપઘાત હોતા હૈ । જીવ કો અમૂર્ત અઙ્ગીકાર કરકે યહ સમાધાન ક્રિયા હૈ, કિન્તુ જીવ  
એકાન્તરૂપ સે અમૂર્ત નહીં હૈ । ક્ષીર—નીર કો તરહ અથવા અગ્નિ ઓર લોહે કે ગોલે કી  
તરહ આત્મા કાર્મણશરીર સે કથચ્ચિત્ અભિન્ન હૈ, અત એવ મૂર્ત મી હૈ । કર્મ-  
લિપ્ત આત્મા મૂર્ત હોને કે કારણ મૂર્તે કર્મો સે ઊસકા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત હોતા હી હૈ ।  
હાં ! આકાશ કા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત નહીં હોતા, ક્યોં કિ વહ એકાન્તતઃ અમૂર્ત ઓર  
અચેતન હૈ ।

સમાધાન—સાંભળો ! જેમ મદિરાનું પાન કરવાથી, વિષલક્ષણથી, અથવા કીડી  
આદિ પેટમાં ગાઈ જવામાં આવવાથી અમૂર્ત ધૈર્ય, અને બુદ્ધિ આદિ આધ્યાત્મિક  
ગુણોનો ઉપઘાત થાય છે. “મેધાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચનોથી, તથા દૂધ,  
શાકર અને ઘી આદિથી અનુગ્રહ થાય છે, તે પ્રમાણે અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત કર્મ  
અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે.

જીવને અમૂર્ત અંગીકાર કરીને આ સમાધાન કર્યું છે, પરન્તુ જીવ એકાન્તથી  
અમૂર્ત નથી. ક્ષીર—નીરની પ્રમાણે અથવા અગ્નિ અને લોહના ગોળાની માફક  
આત્મા કાર્મણશરીરથી કથચિત્ અભિન્ન છે. આ કારણથી મૂર્ત પણ છે. કર્મલિપ્ત  
આત્મા મૂર્ત હોવાના કારણે મૂર્ત કર્મોથી તેનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાયજ છે.  
હાં ! આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતો નથી, કારણ કે તે એકાન્તથી અમૂર્ત  
અને અચેતન છે.

(५) कर्मणोऽनादित्वम्—

अनादिः कर्मणः प्रवाहः । शरीरकर्मणोः परस्परं कार्यकारण भावात्, बीजाङ्कुरवत् । यथा बीजादङ्कुरो जायते, अङ्कुरादपि क्रमेण बीजमुपजायते । एवं शरीरात् कर्म जायते कर्मतस्तु शरीरमित्येवं पुनः पुनरपि परस्परमनादिकालतः कार्यकारणभावसद्भावोऽस्ति । इह ययोः परस्परं कार्यकारणभावस्तयोरनादि प्रवाहो दृश्यते यथा बीजाङ्कुरयोः, यथा वा कुकुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणो- रनादिप्रवाह इति ।

(५) कर्मों का अनादिपन—

कर्मों की परम्परा अनादिकालीन है, क्योंकि शरीर और कर्म का परस्पर कार्य-कारणभाव है, जैसे बीज और अंकुर का । तात्पर्य है कि जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, और अंकुर से क्रमशः बीज की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर से कर्म और कर्म से शरीर उत्पन्न होता है । यह पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चला आता है । जिन दो पदार्थों में परस्पर कार्य-कारणभाव होता है उनका प्रवाह अनादिकालीन देखा जाता है, जैसे पूर्वोक्त बीज और अंकुर का, अथवा मुर्गी और अण्डे का । इस प्रकार शरीर और कर्म का प्रवाह अनादिकालीन है ।

(५) कर्मोंनुं अनादिपणुं—

कर्मोंनी परंपरा अनादिकादीन छे. कारणु के-शरीर अने कर्मोंनी परस्पर कार्य-कारणभाव छे, जेवी रीते भीज अने अंकुरनो. तात्पर्य अ छे के-जेवी रीते भीजथी अंकुर उत्पन्न थाय छे, अने अंकुरथी क्रमशः (कर्म-कर्म) भीजनी उत्पत्ति थाय छे. ते प्रमाणे शरीरथी कर्म अने कर्मथी शरीर उत्पन्न थाय छे. आ परस्परनो कार्य-कारणु भाव अनादि कालथी आये आवे छे. जे जे पदार्थोंमां परस्पर कार्य-कारणुभाव छे तेनो प्रवाह अनादिकादीन जेवामां आवे छे. जेवी रीते पूर्व कहेल भीज अने अंकुरनो, अथवा मरधी अने धडानो, अ प्रमाणे शरीर अने कर्मनो प्रवाह अनादिकादीन छे.

## (६) अकर्मवादिमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नास्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः—अयम-  
दृष्टाभावः किम् अप्रत्यक्षत्वात्, विचाराक्षमत्वात्, साधकाभावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टाभावः सिध्यति, यतस्तव यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीति  
स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात्, तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन  
तवाप्रत्यक्षत्वात् । तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन  
भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ? ।

## (६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है,  
उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से,  
विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नहीं होने से, या साधक प्रमाणों  
का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता । जो  
तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो  
तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा । वह तुम्हारे जन्म से पहले  
ही गुजर चुके हैं, अतः तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते । ऐसी अवस्था में  
तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी  
खतरे में पड़ जायगी ।

## (६) अकर्मवादीना मतनुं निराकरणम्—

ने नास्तिक्येऽपि भवेत्तु चे-अदृष्ट कर्मनो सद्भाव (अस्तित्व) नथी, तेमने  
पूछवुं नेऽपि चे-तमे अदृष्टनो अभाव शा भाटे मानो छे ? प्रत्यक्ष नही होवाथी, विचारने  
सहन नही करवाथी अर्थात्—विचारवायोग्य नहि होवाथी, अथवा साधक प्रमाणोंनो  
अभाव होवाथी अदृष्टनो अभाव कडो छे ?

प्रत्यक्ष नही होवा मात्रथी अदृष्टनो अभाव सिद्ध थर्द शकतो नथी, ने वस्तु  
तमने प्रत्यक्ष नेवाभां न आवे ते वस्तु होयन नही, ये प्रमाणे ने मानी देशे  
तो तमारा पितामह (पापनो आप) आदिनो अभाव थर्द नथे, कारणे के ते तमारा  
जन्मता पड़ेवान् शुनरी गया छे तेथी तमने ते प्रत्यक्ष नेवाभां आवता नथी,  
येवी अवस्थाभां तमारा पितामह आदिनी भूतकालीन सत्तानो अभाव थर्द नवाथी  
तमारी सत्ता पद्यु अतराभां (लयभां) पडी नथे.

अथ सर्वप्रमातॄणां यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीत्यपि न संभवति । यतः सर्व-  
मतीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातॄणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानशक्तेरभावात् । अस्मा-  
भिस्तु समस्तभावावभासनभास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते ।

विचाराऽक्षमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्धर्ष)तर्कैस्तर्क्यमाणस्य कर्मणः  
सद्भावसंभवात् ।

साधकाभावादपि नादृष्टाभावः, पूर्वोक्तागमानुमानयोस्तत्साधकयोः  
सत्त्वात् । यथा च-शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्येत्यागमः । शुभयोगः पुण्यस्य,  
अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः ।

अगर कहा जाय कि एक-दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता वरन्  
जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है । यह कथन भी ठीक नहीं है,  
क्यों कि सब अतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमाताओं के प्रत्यक्ष नहीं होती, इसका कारण विशिष्ट  
ज्ञानशक्ति का अभाव है । मगर हम लोग तो समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सूर्य के  
समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं ।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नहीं है, यह कथन भी  
युक्त नहीं, कठोर तर्कों द्वारा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है ।

साधक प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बतलाना भी ठीक नहीं,  
क्यों कि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सद्भाव सिद्ध करते हैं ।  
' शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य ' यह आगमप्रमाण है । अर्थात् शुभयोग पुण्य का  
और अशुभ योग पाप का कारण होता है ।

अथवा कडेशो के ओक-जेना अप्रत्यक्ष होवाथी कोधिनो अलाव थतो नथी.  
परन्तु जे वस्तु सर्वने अप्रत्यक्ष छे तेनो अलाव होय छे. ओम कडेवुं ते पणु डीक  
नथी, कारण के सर्व अतीन्द्रिय वस्तुओ प्रमाताओने प्रत्यक्ष थती नथी. तेनुं कारण  
विशिष्ट ज्ञानशक्तिनो अलाव छे. अथवा अमे तो समस्त पदार्थोने प्रकाशित करवामां  
सूर्यना समान सर्वज्ञनो स्वीकार करीये छीये.

अदृष्ट, विचारने सहन करता नथी अर्थात् विचारवा योग्य नथी, ओम कडेवुं  
ते पणु युक्त नथी, कठिन तर्को द्वारा विचार करवाथी कर्मनुं अस्तित्व सिद्ध थध  
न नथ छे.

साधक प्रमाणोने अलाव होवाथी कर्मोने अलाव अताववो ते पणु डीक नथी;  
कारण के पूर्वोक्त आगम अने अनुमान प्रमाण तेनो सद्भाव (अस्तित्व-होवापणुं)  
सिद्ध करे छे. शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' ये आगमप्राणु छे, अर्थात् शुभ योग  
पुण्यनुं अशुभ योग पापनुं कारण होय छे.



कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः, कार्यत्वात्, कुम्भवत् । उक्तञ्च—

“ तुल्याकृत्योश्च यमयो, -दृश्यते महदन्तरम् ।

चारित्र-वीर्य-विज्ञान, -वराग्या-रोग्य-संपदाम् ” ॥१॥ इति ।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेदं महदन्तरं न संभवति, तस्मादवश्यं स्वी-  
करणीयं कर्म ।

### (७) बन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र बन्धशब्देन भावबन्धो गृह्यते, न तु निगडादिबन्धरूपो द्रव्यबन्धः ।  
बन्धनं बन्धः । कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

कार्यविशेष से कारण का अनुमान होता है । जैसे—इस कार्य का कोई कारण है,  
क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

“समान आकृति वाले यमल (जोड़ली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,  
और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है ” ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के बिना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य  
स्वीकार करना चाहिए ।

### (७) बन्ध के स्वरूपका निरूपण—

बन्ध—शब्द से यहाँ भावबन्ध का ग्रहण करना चाहिए । वेडी आदि द्रव्यबन्धका  
नहीं । कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूध

कार्य-विशेषथी कारणुं अनुमान थाय छे जेवी रीते आ कार्यनुं डोर्ध कारण  
छे, कारण छे कार्य छे, जेवी रीते घट. डहुं पणु छे—

‘समान आकृति वाणां यमल-जेडलां संतानमां चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,  
आरोग्य अने सम्पत्तिनुं महान अन्तर जेवामां आवे छे ” ॥१॥

अदृष्टरूप कारण विना आ महान अन्त डोर्ध शके नहि, जे कारणथी कर्मने  
अवश्य स्वीकार करी देवे जेर्ध जे.

### (७) बन्धस्वरूपनुं निरूपण—

बन्ध-शब्दथी अहि भाव-बन्धनुं अहणु करवुं जेर्ध जे, जेडी आदि द्रव्यबन्धनुं  
नहि, कर्मवर्गणाने योग्य पुद्गलस्कन्धाने अने आत्म-प्रदेशाने परस्पर दूध अने

नीरवत् सम्बन्धो बन्धः । यद्वा—बध्यते=अस्वातन्त्र्यमापद्यते आत्मा येन, सम्बन्धः । ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपुद्गलानामवस्थानं हि जीवस्याऽनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धकतया स्वातन्त्र्यविघातकं भवति ।

यद्यपि निश्चयनयेन रागद्वेषरहितोऽयमात्मा, तथाप्यसौ व्यवहारनयेन रागद्वेषरूपभावकर्मणां ज्ञानावरणीयादिद्रव्यकर्मणां च कर्ता भवति । आत्मसंलग्नशरीरावगाहनक्षेत्रावस्थितकर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धाः स्वकीयोपादानकारणशक्त्यैव कर्मरूपामवस्थां प्राप्नुवन्ति । ते च कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशैः सह परस्परमेकक्षेत्रावगाहरूपं बन्धं क्षीरनीरवत् प्राप्नोति । यथा समुद्गीयमानानि रजांसि

और पानी की तरह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है । आत्मा—जीव जिस के द्वारा बाँधा जाय=पराधीन किया जाय, वह बन्ध है । ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति, जीव के अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप सामर्थ्य में बाधक होने के कारण स्वतन्त्रता का घात करने वाली है ।

यद्यपि निश्चयनय से आत्मा राग—द्वेष से रहित है, किन्तु व्यवहारनय से राग—द्वेषरूप भावकर्मों का, तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता है । जिस आकाशक्षेत्र में आत्मा से संबद्ध शरीर है, इसी आकाशक्षेत्र में स्थित कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध, अपनी उपादानकारण—शक्ति से ही कर्मरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं । वे कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बन्ध को क्षीर—नीर की नाई प्राप्त होते हैं । जैसे—उड़ती हुई रज, तेल से चिकने घड़े आदि पर चिपक जाती है,

पाणीनी प्रमाणे सम्बन्धो यद्येवो ते बन्धो छे. आत्मा—एव जेना द्वारा बंधाई जाय—पराधीन यद्येव. ते बन्धो छे. ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंनी स्थिति, एवना अनन्त ज्ञान, दर्शन सुख अने वीर्यरूप सामर्थ्यमां बाधक होवाना कारणे स्वतन्त्रतानो घात करवा वाणी छे.

जे के निश्चयनयथी आत्मा राग—द्वेषथी रहित छे, परन्तु व्यवहारनयथी राग—द्वेषरूप भावकर्मोंना, तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मोंना कर्ता छे. जे आकाशक्षेत्रमां आत्माथी संबद्ध शरीर छे, ते आकाशक्षेत्रमां स्थित (रहेला) कर्म—वर्गणाना योग्य पुद्गलस्कन्ध, पोतानी उपादान कारण—शक्तिथी जे कर्मरूप अवस्था प्राप्त करे छे, ते कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशोंनी साथे परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बंधने क्षीर—नीरना न्याय प्रमाणे प्राप्त थाय छे; जेवी रीते उड़ती रज. तेलना चिकन्या घड़ा आदिने

तैलस्निग्धे घटादौ संश्लिष्टानि भवन्ति, तथा रागद्वेषरूपतैलस्निग्धमलिनात्म-  
प्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाः स्वकीयोपादानशक्त्या ज्ञानावरणीयादिकर्मरूपा-  
मवस्थां प्राप्य संश्लिष्टा भवन्ति ।

परमाणुरूपा द्विप्रदेशिप्रभृतिस्कन्धरूपाश्च पुद्गला औदारिक-वैक्रिया-  
-ऽऽहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनः-कर्मण-भेदादष्टविधाः । तत्र कर्म-  
वर्गणापुद्गला अपि समस्तलोकं व्याप्य वर्तन्ते, यत्र संसारिणां शरीराणि  
सन्ति, तत्रापि तद्वह्निश्चापि सर्वत्र ते वर्तन्ते, तत्र कर्मयोग्यपुद्गला आत्मना परि-  
गृहीताः कर्मरूपेण परिणता भवन्ति ।

रागद्वेषपरिणत्याऽऽर्द्धीकृतस्यात्मनो

मनोवाक्कायरूपकरणसाहाय्येन

उसीप्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से चिकने मलिन आत्मप्रदेशों में, कर्मवर्गणा के योग्य  
पुद्गल, अपनी-अपनी उपादानशक्ति से ज्ञानावरण आदि कर्म-रूप अवस्था को प्राप्त कर के  
चिपक जाते हैं ।

परमाणुरूप और द्विप्रदेशी वगैरह स्कन्धरूप पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, आहारक,  
तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन और कर्मण के भेद से आठ प्रकार के होते हैं । इन में  
से कर्मवर्गणा के पुद्गल भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है । जहाँ संसारी जीवों के शरीर हैं,  
वहाँ भी है, और बाहर भी सर्वत्र है । ये कर्मयोग्य पुद्गल आत्माद्वारा जब ग्रहण किये जाते  
हैं तब कर्मरूप में परिणत हो जाते हैं ।

राग-द्वेषरूप परिणति से युक्त आत्मा का, मन, वचन, काय, की सहायता से

चोंटी लय छे, ते प्रभाण्णु राग-द्वेष इपी तेलथी चिकण्णु अने मलिन आत्मप्रदेशोभां  
कर्मवर्गण्णुयोग्य पुद्गल पोत-पोतानी उपादानशक्तिथी ज्ञानावरण्णु आदि कर्म-इप  
अवस्था प्राप्त करीने चोंटी लय छे.

परमाणुरूप अने द्वि-प्रदेशी वगैरे स्कन्धरूप पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, आहारक,  
तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन अने कर्मणना लेदथी आठ प्रकारना होय छे. तेभांथी  
कर्मवर्गण्णुना पुद्गल पण्णु संपूर्ण लोकभां व्याप्त छे. न्यां संसारी जिवोनां शरीर  
छे त्यां पण्णु छे अने बाहर सर्वत्र पण्णु छे. ते कर्मयोग्य पुद्गल आत्माद्वारा  
न्यारे ग्रहण करवामां आवे छे त्यारे ते कर्मरूपभां परिणत थई लय छे.

राग-द्वेषरूप परिणतियुक्त आत्मानो मन, वचन अने कायानी सहायताथी

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुभाशुभक्रिया भवति । इयं क्रिया चात्मनः प्रदेशानां परिस्पन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति चोच्यते । इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते । इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूपे बन्धे हेतुश्च ।

आत्मनः शुभाशुभक्रियायां सत्यामात्मसंलग्नानादिकार्मणशरीरेणात्मानन्तानन्तप्रदेशिस्कन्धरूपांश्चतुःस्पर्शान् कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कार्मणशरीरतया परिणमयति । आत्मसंलग्नं यदनादि कार्मणशरीरं, तद्धि आत्मैक्यात् कर्मयोग्यपुद्गलानां ग्रहणे स्वाधीनकरणे स्वस्मिन्नेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति । अनादिकार्मणशरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति । मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति ।

वीर्यगुण के परिणमनरूप शुभा-शुभ क्रिया होती है । इस क्रिया को आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन, कम्पन, व्यापार या योग कहते हैं । यही मन, वचन और काय का योग कहलाता है । यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण है ।

आत्मा की जब शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बंधे हुए कार्मणशरीर के द्वारा आत्मा, अनन्तानन्तप्रदेशी-स्कन्धरूप; चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कार्मणशरीर के रूप में परिणत करता है । आत्मा से सम्बद्ध अनादिकालीन कार्मणशरीर आत्मा के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक करलेने में समर्थ होता है । अनादिकालीन कार्मणशरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है ।

वीर्यगुणना परिणमनरूप शुभाशुभ क्रिया थाय छे. ते क्रियाने आत्माना प्रदेशानुं परिस्पन्दन, कम्पन, व्यापार अथवा योग कडे छे. आन मन वचन अने कायाने योग कडेवाय छे. आ क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोना बंधनुं कारण छे.

आत्माना न्यारे शुभ अथवा अशुभ क्रिया थाय छे तो आत्माना साथे पडेवाथी बांधेला कार्मणशरीरद्वारा आत्मा अनन्तानन्तप्रदेशी-स्कन्धरूप, चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलाने अडणु करीने कार्मणशरीरना रूपमां परिणत करे छे. आत्माथी संबद्ध अनादिकालीन कार्मणशरीर आत्माना साथे एकमेक होवाना कारणे कर्मयोग्य पुद्गलाने अडणु करवामां, पोताना आधीन करवामां अने पोतानी साथे एकमेक करी देवामां समर्थ थाय छे. अनादिकालीन कार्मणशरीरना संबन्धथी न संसारी एव मूर्त होवाना कारणे न तेना पौद्गलिक कर्मोनी साथे सम्बन्ध थाय छे.

યથા દીપક ઝ્મગુણયોગાદ્ વર્તિદ્વારા તૈલમાદાય જ્વાલારૂપેણ પરિણમ-  
યતિ તથા રાગદ્વેષોષ્મગુણસમ્બન્ધાન્મનોવાગાદિયોગવર્ત્યાઽઽત્મદીપઃ કર્મયોગ્યપુદ્ગલ-  
સ્કન્ધતૈલમાદાય કર્મજ્વાલારૂપેણ પરિણતં કરોતિ । મનોવાગાદિરૂપકરણસંયોગાદા-  
ત્મનો વીર્યપરિણામો ભવતિ, અતો મનોવાગાદિવ્યાપારો યોગશબ્દેનોચ્યતે । યથા મૃનમય-  
ઘટસ્યાગ્નિસંયોગાદ્ રક્તવાદિપરિણતિઘટસ્યૈવ ભવતિ તથા મનોવાગાદિસંયોગાત્  
શુભાશુભક્રિયારૂપા વીર્યપરિણતિરાત્મન એવ ભવતિ, ન તુ પુદ્ગલરૂપમનોવાગાદેઃ ।

યથા ચ તૈલાભ્યક્તે શરીરે જલાદેં વસ્ત્રે વા ધૂલિરાશ્લિષ્ટા ભવતિ, તથા

જૈસે—દીપક ઝ્મગુણ કે કારણ વત્તીદ્વારા તૈલ ગ્રહણ કર કે જ્વાલા કે રૂપ મેં  
પરિણત કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષ રૂપ ઝ્મગુણકે સમ્બન્ધ સે મન, વચન આદિ યોગોં  
કી વત્તી દ્વારા આત્મરૂપી દીપક કર્મયોગ્યપુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ તૈલ કો ગ્રહણ કર કે કર્મરૂપ  
જ્વાલા મે પરિણત કર લેતા હૈ । મન, વચન ઁર કાયરૂપ કરણ કે દ્વારા આત્મા કા વીર્ય-  
રૂપ પરિણમન હોતા હૈ । ઁસીલિએ મન, વચન, આદિ કા વ્યાપાર યોગ કહલાતા હૈ । જૈસે  
—અગ્નિ કે સંયોગ સે મિટ્ટી કે ઘડે કી લલઈ આદિરૂપ પરિણતિ હોતી હૈ, ઁર વહ ઘડે કી  
હી કહલાતી હૈ, ઁસીપ્રકાર મન, વચન આદિ કે સંયોગ સે શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્ય કી  
પરિણતિ આત્મા કી હી હોતી હૈ, પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિ કી નહીં ।

જૈસે તેલ સે લિપ્ત શરીર પર યા મીંગે હુએ વસ્ત્ર પર ધૂલ લગ જાતી હૈ,

જેવી રીતે દીપક ઝ્મગુણના કારણે વત્તીદ્વારા તેલને ગ્રહણ કરીને જ્વાલાના  
રૂપમાં પરિણત કરે છે તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપ ઝ્મગુણના સમ્બન્ધથી મન  
વચન આદિ યોગોની વત્તી દ્વારા આત્મારૂપી દીપક કર્મયોગ્ય—પુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ  
તેલને ગ્રહણ કરીને કર્મરૂપ જ્વાલામાં પરિણત કરી લે છે. મન, વચન અને  
કાયરૂપ કરણદ્વારા આત્માનું વીર્યરૂપ પરિણમન થાય છે; એ કારણથી મન, વચન  
આદિનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે. જેવી રીતે અગ્નિના સંયોગથી માટીના ઘડાની જ  
લાલી (રાતાશપણું) રૂપ પરિણતિ થાય છે, અને તે ઘડાની જ કહેવાય છે. તે પ્રમાણે  
મન, વચન આદિના સંયોગથી શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્યની પરિણતિ આત્માની જ  
થાય છે. પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિની નહિ.

જેવી રીતે તેલથી લિપ્ત શરીર પર, અથવા લિંગએલા વસ્ત્ર પર  
ધૂળ લાગી જાય છે. તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપી તેલથી યુક્ત આત્માના કાર્મણ્યશરીરરૂપ

रागादिरूपतैलाभ्यक्तस्यात्मनः कार्मणशरीरपरिणामो नवीनकर्मग्रहणे योग्यतां संपादयति । आत्मशरीरयोरैक्ये सति सम्यग्ज्ञानाभावरूपानाभोगवीर्यतः कर्मबन्धो भवति । इत्थं कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मतया परिणतानां कषायस्यात्मनः सकलप्रदेशेषु लोलीभावो बन्ध इति बोध्यम् ।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्-

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि मिथ्यात्वा-विरति-प्रमाद-कषाय-योग-भेदात् ।

तत्रातन्त्रे तत्त्वाध्यवसायरूपो विपरीतावबोधो मोहकर्मोदयजनित आत्म-परिणामो मिथ्यात्वम् । यद्वा-कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेष्वभिरुचिरूपमतत्त्वार्थश्रद्धानं

उसी प्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से युक्त आत्मा का कार्मणशरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को ग्रहण करने में योग्य हो जाता है । आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्यग्ज्ञान के अभावरूप अनाभोग वीर्य से कर्मबन्ध होता है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मरूप में परिणत कार्मणवर्गणाओं के योग्य पुद्गलों का कषाययुक्त-आत्मा के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो जाना बन्ध है ।

(९) बन्धके कारण-

बन्ध के साधारण कारण पांच हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग ।

अतत्त्व को तत्व समझनेरूप मोहनीयकर्मजन्य विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं, अथवा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म में रुचिरूप अतत्त्व का

परिणाम नवीन कर्मों अहणु करवाभां योग्य थर्ष जाय छे. आत्मा अने शरीरना अकमेक थवाथी सम्यग्ज्ञानना अलावइप अनालोग वीर्यथी कर्मअंध थाय छे.

अे प्रमाणे ज्ञानावरण आदि कर्मइपभां परिणत कार्मणवर्गणाना योग्य पुद्गलानुं कषाययुक्त आत्माना समस्त प्रदेशोभां अकमेक थर्ष जवुं ते अंध छे.

(८) अंधनुं कारण--

अंधना साधारण कारणो पांच्य छे.—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय अने (५) योग.

अतत्त्वने तत्व समझवा रूप मोहनीयकर्मजन्य, विपरीतज्ञानइप आत्म-परिणामने मिथ्यात्व कडे छे. अथवा कुदेव कुगुरु, अने कुधर्मभां इच्छिइप अतत्त्वनी

मिथ्यात्वम् १ । सावद्ययोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः २ । सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमादः ३ । कष्यते=पुनःपुनर्मर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कषायः, मोहनीयकर्मोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा-कष्यते यत्र शारीरिकमानसिकदुःखैः, स कषः-संसारः, तस्य आयः-प्राप्तिकारणं कषायः=क्रोधादि ४ । युज्यते-आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाक्कायव्यापाररूपः ५ । उक्तञ्च-

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५” । (समवा० समवाय ५) ‘आसवदारा’ इति-आश्रवो बन्ध-कारणम् ।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलाता है ? । सावद्य योगों में प्रवृत्ति करना अविरत्ति है २ । सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलाता है, या मोक्षमार्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३ । जिस के द्वारा आत्मा कषा जाय अर्थात् वारंवार जन्म-मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कषाय कहते हैं । कषाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है । अथवा - जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से जीव कषा जाय (युक्त हो) उसे कष अर्थात् संसार कहते हैं और उस कष (संसार) की आय-प्राप्ति जिस से हो वह कषाय कहलाता है ४ । जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलाता है ५ । कहा है—

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा” । (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ ‘आसवदारा’ का अर्थ है-आश्रव के द्वार अर्थात् बन्धके कारण ।

श्रद्धा तेने मिथ्यात्व कडे छे (१). सावद्य योगोमां प्रवृत्ति करवी ते अविरति छे (२). सम्यक् उपयोगने अभाव ते प्रमाद कडेवाय छे, अथवा मोक्षमार्गना विषयमां शिथिलता थवी ते प्रमाद छे (३). जेना द्वारा आत्मा कषाय अर्थात् वारंवार जन्म मरणने क्लेश भोगवाय तेने कषाय कडे छे. कषाय, मोह कर्मथी उत्पन्न आत्मानी अेक परिणति छे. अथवा—ज्यां शारीरिक अने मानसिक दुःखेथी लव कषाय अर्थात् पीडाय तेने कष अर्थात् संसार कडे छे, अने ते संसारनी आय-प्राप्ति जेनाथी छाय ते कषाय कडेवाय छे (४). जेनाथी आत्मा व्याप्त छाय जेवा मन, वचन अने कायाना व्यापार ते योग कडेवाय छे. (५), कहुं छे के :—

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया जोगा.” (समवायांग, समवाय ५, ) अहिं “आसवदारा” ने अर्थ अे छे के:-आश्रवना द्वार, अर्थात् बंधना कारण.

एषु पञ्चसु कारणेषु कषायः प्रधानम् । स च क्रोधमानमायालोभ-  
भेदाच्चतुर्विधः । चतुर्विधोऽप्ययं कषायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति । उक्तञ्च—

“दोहिं ठाणेहिं पावकम्मा बंधति, तंजहा-रागेण य, दोसेण य । रागे  
दुविहे पणत्ते, तंजहा-माया य लोभे य । दोसे दुविहे पणत्ते, तंजहा-कोहे य  
माणे य” (स्था० स्थान २ उ० )

बन्धश्चतुर्विधः-प्रकृति-स्थित्य-नुभाव-प्रदेशभेदात् । उक्तञ्च—

“चउट्ठिवहे बंधे पणत्ते, तंजहा-पगइबंधे१, ठिइबंधे२, अणुभावबंधे३,  
पएसबंधे४ ।” (समवायाङ्ग. समवाय४ )

इन पांच कारणों में कषाय प्रधान है । क्रोध, मान, माया और लोभ के  
भेदसे वह चार प्रकार का है । कषाय के ये चारों भेद राग और द्वेष में ही अन्तर्गत हो  
जाते हैं । कहा भी है—

“दो स्थानों से पाप कर्मों का बन्ध होता है । वह इस प्रकार—राग से  
और द्वेष से । राग दो प्रकार का है—माया और लोभ । द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध  
और मान” । (स्था० स्थान २ उ. २ )

बन्ध चार प्रकार का है—(१) प्रकृति-बन्ध, (२) स्थिति बन्ध, (३) अनुभाव-बन्ध;  
और (४) प्रदेश-बन्ध । कहा भी है—

“बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) प्रकृतिबन्ध, (२)  
स्थितिबन्ध, (३) अनुभावबन्ध, (४) प्रदेशबन्ध” । (सम. स. ४)

आ पांच कारणोंमें कषाय प्रधान छे:— मुख्य छे. क्रोध, मान, माया अने  
दोलना लेश्ठी ते चार प्रकारना छे. कषायना ते चारे य लेद राग-अने द्वेषमां  
समाधि जय छे. कहुं छे के:—

“जे स्थानोथी पापकर्मोनि अंध थाय छे. ते आ प्रमाणे छे—रागथी अने  
द्वेषथी. राग जे प्रकारने छे—माया अने दोल. द्वेष पणु जे प्रकारने छे—क्रोध अने  
मान” (स्था. स्थान २-उ. २).

अंध चार प्रकारना छे—(१) प्रकृतिअंध, (२) स्थितिअंध, (३) अनुभावअंध  
(४) प्रदेशअंध. कहुं पणु छे—

“अंध चार प्रकारना छे. (१) प्रकृतिअंध, (२) स्थितिअंध, (३) अनुभावअंध,  
(४) प्रदेशअंध,” (सम० स. ४)



तत्र प्रकृतिः—स्वभावः । आत्मपरिगृहीतकर्मपुद्गलानां तच्छक्तिरूपेण परिण-  
मनम् । यथा निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वम् । प्रकृतिर्द्विविधा—मूलप्रकृतिः,  
उत्तरप्रकृतिश्च । मूलरूपः कर्मणः स्वभावो मूलप्रकृतिः । मूलप्रकृतिरष्टधा—ज्ञाना-  
वरणीय १ — दर्शनावरणीय २ — वेदनीय ३ — मोहनीया ४—ऽऽयुष्य ५—नाम ६—गोत्रा ७—  
न्तराय ८—भेदात् । उक्तञ्च—

“ अट्ट कम्मपगडीओ पणत्ताओ, तंजहा-णाणावरणिज्जं १, दंसणावरणिज्जं २,  
वेयणित्ज ३ मोहणित्ज ४, आउय ५, नामं ६, गोयं ७, अंतरायं ८ ” । ( प्रज्ञापना ०  
पद-२१ उ. १ सू. २८८ )

प्रकृति अर्थात् स्वभाव । आत्मा के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मपुद्गलों में अमुक-  
अमुक प्रकार की शक्ति (स्वभाव) उत्पन्न हो जाना प्रकृतिबन्ध है । जैसे—नीम में कटुकता  
और गुड में मधुरता होती है ।

प्रकृति दो प्रकार की है—मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति । कर्म का मूल स्वभाव  
मूलप्रकृति कहलाती है । मूलप्रकृति के आठ भेद हैं—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय,  
(३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, और (८) अन्तराय ।  
कहा भी हैः—

“ आठ कर्मप्रकृतियां है, वे इस प्रकार—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय,  
(३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय । ”  
( प्रज्ञा. पद २१ उ. १ सू. २८८ )

प्रकृति अर्थात् स्वभाव,—आत्माद्वारा अट्टणु करेला कर्मपुद्गलोमां अमुक-  
अमुक प्रकारनी शक्ति (स्वभाव) नुं उत्पन्न थछं नुं ते प्रकृतिबंध छे. जेवी रीते  
लींभडांमां कठवाश अने गोणमां मधुरता डोय छे.

प्रकृति जे प्रकारनी छे— (१) मूलप्रकृति अने (२) उत्तरप्रकृति. कर्मनो मूल  
स्वभाव ते मूलप्रकृति डडेवाय छे. ते मूल प्रकृतिना आठ लेह छे— (१) ज्ञानावरणीय,  
(२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र  
अने (८) अंतराय. डहुं छे डेः—

“ आठ कर्मप्रकृतिओ छे, ते आ प्रमाणे—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय,  
मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अंतराय. ” ( प्रज्ञा. पद २१ उ. १ सू. २८८ )

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमावृणोति१ । दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणम्२ । वेदनीयकर्म जीवस्याव्यावाधगुणं संरुणद्धि३ । मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तत्त्वानभिरुचिं च जनयति४ । आयुष्यकर्म जीवस्यामरत्वं प्रतिहन्ति५ । नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्वं प्रतिवध्नाति६ । गोत्रकर्म तस्यागुरुलघुगुणं व्याहन्ति७ । अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं रुणद्धि८ ।

यथा-गवादिभक्षिततृणादयो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्य-स्वभावः सहैव जायते, स चैतावत्कालपर्यन्तस्थायीत स्थितिसमयमर्यादाऽपि जायते माधुर्ये तीव्रमन्दभावादिविशेषोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौद्गलिक-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको ढाँकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको । (३) वेदनीयकर्म जीव के अव्यावाधगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-कर्म जीव में अविरति और तत्त्व के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है । (५) आयुकर्म जीव की अमरता को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है । (७) गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुण को नष्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अनन्त वीर्य का घात करता है ।

जैसे गायद्वारा खाये हुए तृण आदि दूध रूप में परिणत होते हैं, और उन में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है । उस में अमुक कालपर्यन्त ठहरने की स्थिति-मर्यादा भी उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीव्रता या मन्दता की विशेषता भी आजाती है । उस दूध का पौद्गलिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है ।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान-गुणने ढाँकी दे छे; (२) दर्शनावरणीय कर्म दर्शनगुणने ढाँके छे. (३) वेदनीय कर्म ज्ञान-अव्यावाध गुणने, रोकती दे छे (४) मोहनीय कर्म ज्ञान-अविरति अने तत्त्वप्रति अरुचि उत्पन्न करावे छे. (५) आयु कर्म ज्ञान-अमरताने रोकते छे. (६) नाम-कर्म ज्ञान-अमूर्तत्व गुणने रोकते छे. (७) गोत्र-कर्म अगुरुलघुत्व गुणने नाश करे छे अने (८) अन्तराय कर्म ज्ञान-अनन्तवीर्यने घात करे छे.

जैसी रीते गाये भाधेतुं घास आदि दूध रूपमां परिणत थाय छे अने तेमां मधुरताने स्वभाव पणु साथे न उत्पन्न थाय छे. तेमां अमुककालपर्यन्त स्थिर रहवानी स्थिति-मर्यादा पणु उत्पन्न थई जाय छे. अने मधुरतामां तीव्रता अथवा मन्दतानी विशेषता पणु आवी जाय छे. ते दूधतुं पौद्गलिक परिणाम पणु साथे न

परिणामश्चापि सहैव प्रादुर्भवति तथा जीवेन परिगृहीतानां कर्मवर्गणायोग्य-  
पुद्गलानां कर्मरूपेण परिणमने चतुर्विधा अंशाः सहैव भवन्ति । त एवांशाः  
बन्धभेदाः प्रकृत्यादयः सन्ति ।

कणिकागुडघृतकटुकादिद्रव्याणामौषधमोदकरूपेण परिणमने सहैवा-  
नेकाकारपरिणामो भवति । यथा मोदको हि कश्चिद् वातपित्तहरणशीलः, कश्चिद्  
बुद्धिवर्धनः, कश्चित् संमोहकारी, कश्चिन्मारकः, इत्यनेकाकारेण परिणमते  
जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्कर्मरूपेण परिणामे  
कश्चित्कर्मपुद्गलः ज्ञानमावृणोति, कश्चिद्दर्शनमावृणोति ; अपरः सुखदुःखानुभवं जनयती  
त्यादि योजनीयम् ।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गोका कर्मरूप परिणमन  
होने पर चार प्रकार के अंश उन में साथ ही उत्पन्न होते है । वही अंश बन्ध के प्रकृति  
आदि भेद कहलाते है ।

आटा, गुड, घी और कटुक आदि द्रव्यों से बने हुए लड्डू में एक साथ अनेक  
प्रकार के परिणमन होते है । कोई लाडूँ वात-पित्त का नाशक होता है, कोई बुद्धिवर्धक  
होता है, कोई सम्मोहजनक होता है, और कोई घातक होता है, इस प्रकार जीव के संयोग से  
लड्डू अनेक आकारों में परिणत होता है । इसी प्रकार कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलों का आत्मा के  
निमित्त से कर्मरूप परिणमन होने पर कोई कर्म, ज्ञान को आच्छादित करता है, कोई  
दर्शनको कोई कर्म, सुख-दुःख का अनुभव कराता है । इत्यादि सब घटा लेना चाहिए ।

उत्पन्न थाय छे अे प्रभावे अवद्वारा अडुषु करेला कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलानुं  
कर्मरूप परिणमन थावानी साथे चार प्रकारना अंश तेमां साथे अे उत्पन्न थाय छे  
ते अंश, बंधना प्रकृति आदि लेद कडेवाय छे.

लोट, गोण, घी अने कटुक आदि द्रव्ये नांभीने बनावेला लाडुमां अेक साथे  
अनेक प्रकारनुं परिणमन थाय छे, केरु लाडु वात-पित्तना नाश करनार डोय छे. केरु  
बुद्धिपूर्वक डोय छे. केरु संमोह उत्पन्न करनार डोय छे. अने केरु घातक डोय  
छे. अे प्रभावे अवना संयोगथी लाडु अनेक आकारेमां परिणत थाय छे. ते  
प्रभावे कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलानुं आत्माना निमित्तथी कर्मरूप परिणमन थाय त्यारे  
केरु कर्म ज्ञानने आच्छादित करे छे केरु दर्शनने, केरु कर्म सुख-दुःखना अनुभव  
करावे छे. अे प्रभावे सर्व आमतमां घटावी लेवुं लेथे अे.

यथा वा-वातहारिद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या वातं हरति, पित्तोपशम-  
कद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रव्यनिर्मितः कफं  
हरति । इत्येवं मोदकस्य नानाविधा प्रकृतिः । तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु  
कस्यचिदेकदिनव्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्थायिनी, अन्यस्य कस्यचिन्मासादि-  
कालं व्याप्य स्थितिर्भवति, ततः परं तत्तन्मोदकस्य विनाशात् । एवं मोदकस्यानु-  
भावो मधुरकटुकषायादिरूपः । रसस्तीव्रमन्दभावेन कस्यचिन्मोदकस्यैकगुणः,  
कस्यचिद् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति । प्रदेशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेक-  
कर्षमितः, कस्यचिद् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति ।

अथवा जैसे-वातहारक द्रव्यो से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता है,  
पित्तका नाश करने वाले द्रव्यों से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफहारी द्रव्यों से बना  
मोदक कफको दूर करता है, इस प्रकार मोदक की प्रकृति नाना प्रकार की है । कोई मोदक  
एकदिन तक ही ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई महीने भरतक ठहर सकता है,  
उसके पश्चात् मोदक में वह शक्ति नहीं रहती है । इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या  
कटुक रस तीव्र होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है,  
किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुणा, किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष  
परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित  
होता है ।

अथवा-जैम वायुनाशक द्रव्येथी अनेला लाडु स्वभावथी वायुनो नाश करे छे;  
पित्तने शान्त करवा वाणा द्रव्येथी अनेला लाडु पित्तनो नाश करे छे. कङ्क नाश करनारा  
द्रव्येथी अनेला लाडु कङ्कने हर करे छे, अये प्रभाण्णे लाडुनी प्रकृति जूहा-जूहा प्रकारनी  
छे. कोर्ध लाडु अयेक द्विपस सुधी रही शके छे, कोर्ध अये द्विपस अने कोर्ध मडिना सुधी  
रही शके छे. ते पछी लाडुमां ते प्रथमना जेवी शक्ति रहेती नथी. अये प्रभाण्णे कोर्ध  
लाडुनो मधुर अथवा कटुक रस तीव्र होय छे. कोर्धनो मंद होय छे, कोर्ध लाडुमां अयेक  
शुष्ण रस होय छे, कोर्धमां द्विशुष्ण अने कोर्धमां त्रशुष्ण रस होय छे. कोर्ध लाडुना  
प्रदेशसमूह अयेक कर्ष ( अये तोला ) परिमित होय छे. कोर्धना अये कर्ष ( चार तोला )  
परिमित होय छे, अने कोर्धना त्रशुष्ण कर्ष ( छ तोला ) परिमित होय छे.

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शनावरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

कर्मणः स्थितिश्च कस्यचित् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीरूपा, अपरस्य कस्यचित् कर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीरूपेत्यादि । रसस्तु कस्यचित् कर्मणस्तीव्रः, कस्यचित्तीव्रतरः, कस्यचित्तीव्रतमः, कस्यचिन्मन्दः, कस्यचिन्मन्दतर इत्यादि बोध्यम् ।

(१) प्रकृतिवन्धः-

॥ अष्टविध-मूलप्रकृतिवन्ध-लक्षणम्-

(१) ज्ञानस्य ( विशेषबोधस्य ) आवरकं कर्म ज्ञानावरणीयम् ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन को ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है, किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है । किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(१) प्रकृतिवन्ध

(१) ज्ञान अर्थात् विशेष धर्मों के बाधको आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरण कहलाता है ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાની પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને ઢાંકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે. કોઈની સીતેર (૭૦) કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે. કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મંદ છે, કોઈનો મંદંતર છે. ઇત્યાદિ સમજ લેવું જોઈએ.

(૧) પ્રકૃતિબંધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બોધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે.

- (२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरकं कर्म दर्शनावरणीयम् ।
- (३) सुखदुःखानुभवजनकं कर्म वेदनीयम् ।
- (४) मदिरावन्मोहजनकं कर्म मोहनीयम् ।
- (५) भवधारणकारणं कर्म आयुष्कम् ।
- (६) विशिष्टगतिजात्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
- (७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
- (८) दानलाभादिविघातकं कर्म अन्तरायः ।

मूलरूपः कर्मणः स्वभावोऽष्टविध इति मूलप्रकृतिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है ।

(३) सुख-दुःखका वेदन कराने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) भवधारणा का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अतः आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है, इन आठ प्रकृतियों के अवान्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते हैं ।

- (२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधने के आच्छादित करवावाणुं कर्म ते दर्शनावरणे छे.
- (३) सुख-दुःखानुं वेदन करवावावाणुं कर्म ते वेदनीयकर्मं कडेवाय छे.
- (४) मदिराना समान मोह उत्पन्न करवावावाणुं कर्म ते मोहनीय कडेवाय छे.
- (५) लव-धारणुं करवानुं के कारण कर्म ते आयुष्य कडेवाय छे.
- (६) विशेष प्रकारनी गति-जाति आदिनी प्राप्तिनुं कारणुं ते नामकर्म कडेवाय छे.
- (७) उत्कर्षं अने अपकर्षंनी प्राप्तिनुं कारणुं ते गोत्रकर्म कडेवाय छे
- (८) दान-लाभ आदिमां विघ्न नाभवावाणुं ते अन्तराय कर्म कडेवाय छे.

कर्मने मूल स्वभाव आठ प्रकारने छे. तेथी आठ प्रकृतिओनुं संक्षिप्तमां कथन कथुं छे. ओ आठ प्रकृतिओना अवांतर भेदोने उत्तरप्रकृति कडे छे. अज्ञासु पुत्रोने

विस्तरतो जिज्ञासूनां बोधाय शास्त्रे निर्दिष्टा । ज्ञानावरणीयादिमूलप्रकृती-  
नामष्टानामवान्तरभेदा यथाक्रमम्—(१) पञ्च, (२) नव, (३) द्वा, (४) अष्टाविंशतिः,  
(५) चत्वारः, (६) द्विचत्वारिंशत्, (७) द्वा, (८) पञ्च सन्ति । एतत्सर्वमागतोऽव-  
वगन्तव्यम् ।

### (२) स्थितिवन्धः—

आत्मसंलग्नानां कर्मपुद्गलानां यया जघन्यमध्यमोत्कृष्टकालमर्या-  
दयाऽऽत्मप्रदेशेष्ववस्थानं सा कालमर्यादा स्थितिवन्धः । किञ्च—अध्यसायविशेष-  
गृहीतस्य कर्मदलिकस्य स्थितिकालनियमनं स्थितिवन्धः ।

वेदनीयकर्मणो जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्तप्रमाणा । नाम—गोत्रकर्मणो-

विस्तार से जिज्ञासु पुरुषों की जानकारी के लिए शास्त्र में वर्णन किया गया है । ज्ञानावरणीय  
आदि मूल प्रकृतियों के अवान्तर भेदों की संख्या क्रम से पांच, नौ, दो, अठारह, चार,  
बयालीस, दो और पांच है । इन सबको आगम से समझ लेना चाहिए ।

### (२) स्थितिवन्ध

आत्मा के साथ लगे हुए कर्मपुद्गल जिस जघन्य मध्यम या उत्कृष्ट कालमर्यादा से  
आत्मप्रदेशों में स्थिर है, उस कालमर्यादाको स्थितिवन्ध कहते हैं । अथवा यों कहिए कि—  
अध्यवसायविशेष द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मदलियों के आत्मा में ठहरने के कालसम्बन्धी नियमन  
को स्थितिवन्ध कहते हैं ।

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति वारह मुहूर्त की, तथा नाम और गोत्रकर्म की

जघन्य भाटे शास्त्रमां विस्तारथी वर्णनकरवामां आव्युं छे. ज्ञानावरणीय आदि मूल  
प्रकृतिना अवान्तर भेदोनी संख्या क्रमथी—पांच, नौ, दो, अठारह, चार, बयालीस,  
दो, अने पांच छे, आ सर्वने आगतथी समस्त देवुं जेधये.

### (२) स्थितिवन्ध

आत्मानां साथे लागेला कर्मपुद्गल जे जघन्य, मध्यम, अने उत्कृष्ट काल  
मर्यादाथी आत्मप्रदेशोमां स्थिति छे, ते कालमर्यादाने स्थितिवन्ध कहे छे. अथवा अने  
कहे छे—अध्यवसायविशेषद्वारा ग्रहण करेला कर्मदलिकेने आत्मानां ठही शकवाना  
कालसंबन्धी नियमनने स्थितिवन्ध कहे छे.

वेदनीय कर्मनी जघन्य स्थिति वारह मुहूर्तनी, तथा नाम अने गोत्र कर्मनी

जघन्य-स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीया-ऽऽयुष्या-  
ऽन्तरायकर्मणां जघन्यस्थितिरन्तमुहूर्तप्रमाणा ।

ज्ञानावरणीय - दर्शनावरणीय - वेदनीयाऽ - न्तरायकर्मणामुत्कृष्टस्थितिः  
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः  
स्थितिरुत्कृष्टा । नाम-गोत्र-कर्मणोर्विंशत्सागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा ।  
आयुष्यकर्मणस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा स्थितिरुत्कृष्टा । मध्यमा स्थितिस्त्व-  
संख्यातप्रकारा, कषायपरिणामतारतम्येन तस्या असंख्यातभेदात् ।

आठ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की  
जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस  
कोडा-कोडी सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम की, नाम और  
गोत्र कर्म की बीस कोडा-कोडी सागरोपम की है । आयुष्य कर्म की तेतीस सागरोपम की  
है । मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकार की है, कषायरूप परिणामों की हीनता और अधिकता  
के कारण उसके असंख्य प्रकार होते हैं ।

स्थितिवन्धका कोष्टक टीका के अनुसार पृष्ठ ३३६ से समझ लेना चाहिए ।

आठ मुहूर्तनी छे. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु अने अन्तराय  
कर्मनी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्तनी छे.

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अने अन्तराय कर्मोंनी उत्कृष्ट स्थिति त्रीश  
कोडा-कोडी सागरोपमनी, मोहनीय कर्मनी सीतेर (७०) कोडा-कोडी सागरोपमनी,  
नाम अने गोत्र कर्मनी बीस कोडा-कोडी सागरोपमनी, आयुष्य कर्मनी तेतीस  
सागरोपमनी छे. मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकारनी छे. कषायरूप परिणामोंनी  
हीनता अने अधिकताना कारणे तेना असंख्य प्रकार थाय छे.

स्थितिवन्धनुं कोष्टक टीकाना अनुसार पृष्ठ ३३६थी समझ लेवुं न्नेछिअ.



## स्थितिवन्ध-कोष्टकम् ।

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञाना- वरणीय- कर्मणः	३० त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्र- वर्षाणि	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षो- न- त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(२) दर्शना- वरणीय- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(३) वेदनीय- कर्मणः	"	द्वादश १२ मुहूर्ताः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनाना एकादश ११ मुहूर्ताः
(४) अन्तराय- कर्मणः	"	अन्तर्मुहूर्तः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(५) मोहनीय- कर्मणः	७० सप्ततिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	"	७००० सप्तसहस्र- वर्षाणि	"	सप्तसहस्र- वर्षोऽन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्तर्मुहूर्त- सप्ततिसाग- रोपमकोटीकोटयः ।	"

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(६) नाम- कर्मणः	२० विंशति- सागरोपम- कोटीकोटयः	अष्टौ मूर्हर्त्ताः	२००० द्विसहस्र- वर्षाणि	"	२००० द्विसहस्रवर्षेण- विंशतिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनः सप्त मूर्हर्त्ताः
(७) गोत्र- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(८) आयुष्य- कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि- भागाधिका- नि ३३ त्रय- स्त्रिंशत्साग- रोपमाणि ।	अन्त- मुहूर्त्तः	पूर्वकोटि- त्रिभागः	"	पूर्वकोटि- त्रिभागोन- त्रयस्त्रिंशत्- सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनोऽन्त- मुहूर्त्तः

पूर्वकोटित्रिभागः-३३ लक्षाणि, ३३ सहस्राणि; ३ शतानि, ३३ पूर्वाणि, २३ लक्षाणि, ५२ सहस्रकोटिवर्षाणि । अन्तर्मुहूर्त्तस्यासंख्यभेदाः सन्ति, तेनान्त-  
मुहूर्त्तरूपाया जघन्यस्थितेरन्तर्मुहूर्त्त एवावाधाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मु-  
हूर्त्तश्च वाधाकाल इति विज्ञेयम् ।

## (३) अनुभावबन्धः ।

कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा घात्यघाती वा यो रसो विपाकः सोऽनुभावबन्धः । कर्मणां विशिष्टो विविधो वा पाको विपाकः । कर्मबन्धस्य फलं विपाकस्तस्योदयोऽनुभाव इति बोध्यम् । किञ्च-कर्मणां विविधफलदानशक्तिर्विपाकः सोऽनुभावः ।

बन्धकारणस्य कषायपरिणामस्य तीव्रमन्दभावानुसारेण प्रत्येककर्मणि तीव्रमन्दफलदानशक्तिः प्रादुर्भवति । इदं च फलोत्पादनसामर्थ्यम्-अनुभवः, तत्तत्फलानुभवनं चेति ।

## (३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलों का शुभ या अशुभ अथवा घाती या अघाती रूप जो रस है वही अनुभाव कहलता है । गृहीत कर्मपुद्गलों में यह रस उत्पन्न हो जाना अनुभाव या अनुभाग बन्ध है । कर्मों का विशिष्ट या विविध प्रकार का पाक विपाक कहलाता है । तात्पर्य यह है कि-कर्म का फल विपाक है, और उसका उदय अनुभाव कहा जाता है । अथवा कर्मों की भाँति-भाँतिकी फल देने की शक्ति को विपाक कहते हैं, और वही अनुभाव है, और तत्तत्फल का अनुभव भी अनुभाव है ।

बन्ध के कारण कषायरूप परिणाम की तीव्रता और मन्दता के अनुसार प्रत्येक कर्म में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इस फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य अनुभाव है ।

## (३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलानामेव शुभ अथवा अशुभ, अथवा-घाती के अघातीरूप के रस के अनुभाव कहेवाय के गृहीत कर्मपुद्गलानामां ये रसतुं उत्पन्न भवतुं ते अनुभाव, अथवा अनुभाग बन्ध के । कर्मोना विशिष्ट अथवा विविध प्रकारना पाक ते विपाक कहेवाय के । तात्पर्यं ये के-कर्मतुं इत्येते विपाक के, अने तेना उदय ते अनुभाव कहेवाय के । अथवा कर्मोनी तरेह-तरेहनी इण देवानी शक्तिः तेने विपाक कहे के अने तेन अनुभाव के अने ते ते इणना अनुभाव पणु अनुभाव के । \*

बन्धनां कारण कषायरूप परिणामनी तीव्रता अने मन्दताना प्रमाणे प्रत्येक कर्मोना तीव्र अथवा मन्द इत्येते देवानी शक्ति उत्पन्न भवति न्ये के, ते इणने उत्पन्न कर्वातुं सामर्थ्यं ते अनुभाव के ।

\* “अणुभागे, अणुभावे, विभागे, रसे-त्ति एगद्वा” अनुभागोऽनुभावो, विपाको रसः, इत्येकार्थिकाः । अनुभाग, अनुभाव, विपाक अने रस ये अघा अर्थार्थक के ।

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फलं प्रयच्छति, न त्वन्यकर्मस्वभावानुसारम् । यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभाव-स्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्दं वा फलं समुत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभवादिरूपं फलम् । एवं दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तीव्रमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिरूपमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम् ।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-दूसरे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं । जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है । उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का वेदन नहीं होता । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आवरण करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं ।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही लागू होता है; उत्तरप्रकृतियों के लिए

कर्मना इलदानशक्तिरूप अनुभाव ने कर्ममां रडे छे, ते कर्म पोताना स्वभाव प्रमाणेण इल आपे छे, पीण कर्मना स्वभाव प्रमाणे नडि. नेवी रीते के-ज्ञानावरणीय कर्मना अनुभाव ज्ञानावरणीयना स्वभावना प्रमाणेण डोय छे, अर्थात्-ते तीव्र अथवा मंदरूपमां ज्ञाननुं अच्छादन करे छे, तेनाथी दर्शनावरणीय अथवा वेदनीय कर्मनी प्रकृति अनुसार दर्शननुं आवरण अथवा सुख-दुःखनुं वेदन थनुं नथी. अे प्रमाणे दर्शनावरणीय कर्मना अनुभाव तीव्र अथवा मंदरूपमां दर्शननुं आवरण करवुं तेण छे, परन्तु ज्ञाननुं आवरण करवुं अथवा अन्य कर्मप्रकृति अनुसार इण आपवुं ते नथी.

अनुभाव बंधने पोतानी कर्मप्रकृतिना अनुसार इण. आपवाने आ नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतिओमांण लागु थाय छे, परन्तु उत्तर प्रकृतिओ माटे

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-  
प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता  
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-  
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-  
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-  
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता  
भवन्ति । यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न

यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति  
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल  
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में  
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल  
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जत्र श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता  
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान  
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी  
अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं. केअ पणु मूलप्रकृतिनी केअ उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी केअ  
भीलु उत्तर प्रकृतिना रूपमां पणु परिणुत थर् शके छे, डारणुके कर्मपुद्गलमां अे प्रभाणु  
परिणुमननी शक्ति विद्यमान छे. त्यां प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमां रडेले अनुभाव  
भददी गयेदी उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मंद इल आपे छे.

नेम—मतिज्ञानावरणीय न्त्यारे श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना  
रूपमां पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयने अनुभाव पणु श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव  
प्रभाणु श्रुतज्ञाननु आवरणु करे छे.

उत्तरप्रकृतिओमां केददीक अेवी पणु प्रकृतिओ छे के ने सजातीय होवा छतांय  
पणु अन्यरूपमां पलटती नहीं. नेवी रीते—दर्शनमोहनीय केअ वणुत चारित्रमोहनीयना

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदायुष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसायसामर्थ्यात् स्थितिरसयोरपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिणमति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एवमुत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यरूपेण परिणमति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभावानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत् तदा तत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽपगता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुद्गलाः संलग्ना भवन्ति ।

बदलता, और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पलटता । उसी प्रकार नरकायु कभी तिर्यचायु के रूप में नहीं पलटती और तिर्यचायु किसी अन्य आयुके रूप में नहीं बदलती ।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कभी तीव्र रस, मंद रस के रूप में बदल जाता है, और कभी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में बदल जाती है ।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है, उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं लगे रहते हैं ।

इपमां षट्पलाती नथी, अने चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीयना इपमां षट्पलाती नथी. अये प्रमाणे नरकायु केाईवधत पणु तिर्यचायुना इपमां पलटातुं नथी, अने तिर्यचायु भील केाई आयुना इपमां पलटातुं नथी.

आ तमाभ परिवर्तन जेवी रीते प्रकृतिबंधना विषयमां थाय छे, ते प्रमाणे अध्यवसायनी शक्तिथी स्थिति अने रसमां पणु थाय छे—क्यारेक तीवरस, मंदरसना इपमां षट्पलाथं लय छे, अने क्यारेक मंदरस, तीवरसना इपमां परिवर्तित थधं लय छे. अये प्रमाणे उत्कृष्ट स्थिति जघन्य इपमां अने जघन्य स्थिति उत्कृष्ट इपमां षट्पलाथं लय छे.

अनुभावप्रमाणे केाई कर्मनु तीव्र अथवा मंद इल लोगवी देवाय तो ते कर्मना प्रदेश आत्मप्रदेशोथी डटी लय छे—पछी ते आत्मानी साथे लागेला रहेता नथी.

इदमत्र तत्रम्-कर्मणां फलं विविधं भवति । कर्मैव मूलप्रकृतिः । सर्वासां-  
मूलप्रकृतीनां फलविविधत्वं तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति ।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म वद्धं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण  
अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति । स च तीव्र-  
मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि । तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनु-  
भूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम् ।

सकपायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभा-  
वानां कर्मपुद्गलानां स्वभावानुसारं तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशबन्धः ।

तात्पर्य यह है कि कर्मों का फल विविध प्रकार का होता है । कर्म ही मूल  
प्रकृति है । समस्त मूलप्रकृतियों का फल उसी रूप में या अन्यथा रूप में दो प्रकार  
से होता है ।

जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस स्वभाव वाला कर्म बँधा है वह उसी रूप में  
या अन्यथा रूप में फल देता है । वह फल तीव्र या मन्द अवस्था—भेद से शुभ भी होता है  
और अशुभ भी होता है । कभी शुभ भी अशुभ रस के रूप में और कभी अशुभ शुभ रस के  
रूप में भोगा जाता है ।

#### (४) प्रदेशबन्ध—

मन वचन आदि के द्वारा क्रियाविशेष करने वाले कषाययुक्त जीव के साथ भिन्न—भिन्न  
स्वभाव वाले कर्मपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार अमुक—अमुक परिमाण विभाग के साथ  
सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है ।

तात्पर्य ये छे के:- कर्मोंनां इल विविध प्रकारना छेय छे. कर्मण मूलप्रकृति  
छे तमाभ मूलप्रकृतिओनुं इल ते इपमां अथवा भीलइपमां, अम ये प्रकारथी छेय छे.

ये प्रकारना अध्यवसायथी ये स्वभाववाणां कर्म णांध्यां छे ते अण इपमां  
अथवा भील इपमां इल आपे छे. ते इल तीव्र अथवा मंद अवस्था—लेदथी शुल  
पणु छेय छे, अने अशुल पणु छेय छे, केध वणत शुल पणु अशुल रसना इपमां  
अने केध वणत अशुल ते शुल रसना इपमां लोगवामां आवे छे.

#### (४) प्रदेशबन्ध—

मन, वचन आदि द्वारा क्रिया—विशेष करवा वाणा कषाययुक्त जीवनी साथे भिन्न-  
भिन्न स्वभाव वाणा कर्मपुद्गलोंना स्वभाव अनुसार अमुक—अमुक परिमाणविलागनी  
साथे सम्बन्ध थवे ते प्रदेशबन्ध छे.

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिक्ष्ववस्थिताः,  
(३) तीव्रमन्दादिभेदाद् मनोवाक्कायक्रियाविशेषसंयोगात् कर्मवर्गणायोग्याः  
पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु बद्धा भवन्ति । (४) औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-  
तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनोवर्गणाऽपेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूपा एव कर्मवर्गणा-  
योग्याः बद्धाः भवन्ति, न तु वादराः । (५) तत्रापि त एव पुद्गला बद्धा भवन्ति,  
ये खलु यत्राकाशे जीवोऽवगाढस्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्बहिःक्षेत्रवर्तिनः ।

(६) तथाविधा अपि पुद्गलाःस्थिता एव बद्धा भवन्ति, न तु गतिपरिणताः,  
प्रचलितस्वभावत्वेन बन्धानर्हत्वात् । (७) असंख्यातप्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत, (२) समस्त दिशाओं में स्थित,  
(३) तीव्र मन्द आदि के भेद से मन, वचन और काय की क्रियाविशेष के संयोग से  
कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं । (४) औदारिक  
वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म  
परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, बाहर नहीं बंधते । (६) उन में  
भी वही पुद्गल बंधते हैं जो एकक्षेत्रावगाढ हों, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है  
उन्हीं आकाशप्रदेशों में विद्यमान हों, बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बंधते ।  
(६) ऐसे पुद्गल भी स्थित ही बंधते हैं चलते-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते, चलित  
स्वभाव वाले होने के कारण वे बन्ध के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यातप्रदेशी जीव का

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का कारणभूत, (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३)  
तीव्र, मंद आदि के भेद से मन, वचन और काय की क्रिया-विशेष के संयोग से कर्मवर्गणा  
योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं, (४) औदारिक, वैक्रिय, आहारक,  
तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्म-  
वर्गणा योग्य पुद्गल ही बंधते हैं; बाहर बंधता नहीं, (५) वे भी यही पुद्गल बंधते  
हैं जो एक क्षेत्रावगाढ हों, अर्थात्-जो आकाशप्रदेशों में जीव है तब आकाशप्रदेशों में  
विद्यमान हों, बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बंधते । (६) ऐसे पुद्गल  
भी स्थित ही बंधते हैं चलते-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते, चलित स्वभाव वाले होने  
के कारण वे बन्ध के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यात प्रदेशी जीव का



પ્રદેશોઽનન્તૈર્જ્ઞાનાવરણીયકર્મસ્કન્ધૈર્વદ્ધઃ । એવમનન્તૈર્દર્શનાવરણીયાદિકર્મસ્કન્ધૈર્વદ્ધઃ ।  
(૮) તત્ર તે સ્કન્ધા અપિ પ્રત્યેકમનન્તાનન્તપ્રદેશિનઃ સન્તિ । ઇતિ પ્રદેશવન્ધેઽષ્ટ  
હેતવઃ ।

### પુણ્યપાપકર્મનિરૂપણમ્—

જ્ઞાનાવરણીયાઘટવિધં પૌદ્ગલિકં કર્મ પ્રત્યેકં દ્વિવિધમ્—પુણ્યપાપભેદાત્ ।  
શુભંકર્મ—પુણ્યમ્ । અશુભં કર્મ—પાપમ્ । નન્તુ વિનાઽપિ પુણ્યપાપાભ્યાં સ્વભાવત્  
એવ જગદ્વિચિત્ર્યં જાયતે કિં પુનસ્તત્કલ્પનયા ? ઉચ્યતે—શૃણુ—સ્વભાવાદેવ હિ  
ત્રયો વિકલ્પાઃ સમુત્પદ્યન્તે યથા—(૧) સ્વભાવઃ કિં વસ્તુરૂપઃ ? (૨) કારણાભાવો

એક—એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોં કે સાથ બંધતા હૈ, ડસી પ્રકાર  
અનન્તદર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોં કે સાથ ડી બંધતા હૈ । (૮) કર્મ કે વે સ્કન્ધ ડી  
અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોતે હૈ । પ્રદેશવન્ધ ડેં યે આઠ હેતુ હૈ ।

### પુણ્યકર્મ ડૌર પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ ડો—ડો પ્રકાર કા હૈ, પુણ્યરૂપ ડૌર  
પાપરૂપ । શુભ કર્મ પુણ્ય ડૌર અશુભ પાપ કહલાતા હૈ ।

શઙ્કા—પુણ્ય ડૌર પાપ કે વિના હી સ્વભાવ સે જગત્ કી વિચિત્રતા હો સકતી હૈ, ફિર  
પુણ્ય પાપ કી કલ્પના કરને સે ક્યા લાભ હૈ ? ।

સમાધાન—સ્વભાવવાદ ડેં તીન વિકલ્પ હો સકતે હૈં, જૈસે સ્વભાવ કોઈ  
વસ્તુ હૈ ?, યા કારણ કા અભાવ હી સ્વભાવ કહલાતા હૈ ?, અથવા સ્વભાવ કિસી

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોની સાથે પણ બંધાય છે. એ  
પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોની સાથે પણ બંધાય છે. (૮) કર્મના તે સ્કન્ધ  
પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે. પ્રદેશ બંધમાં આ આઠ હેતુ છે.

### પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે—બે પ્રકારના છે—(૧) પુણ્યરૂપ અને  
(૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ—પુણ્ય અને અશુભ કર્મ પાપ કહેવાય છે.

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા હોઈ શકે છે,  
તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે ?

સમાધાન:—સ્વભાવવાદમાં ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક—વિતર્ક) થઈ શકે છે; જેમકે સ્વભાવ  
શું કોઈ વસ્તુ છે? અથવા: કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે? અથવા સ્વભાવ કોઈ

वा स्वभावः ? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुधर्मः ? । इति विकल्पत्रयगत-  
दोषाणां कथनं पूर्वं कृतमासीदतो विरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौद्गलिके  
विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

पुण्यपापसद्भावे युक्तीस्तावत् प्रदर्शयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्तः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-  
र्यौगपद्येनानुभवाभावात्, अतोऽनेनैव भिन्नकार्यदर्शनेन तत्कारणभूतयोः  
पुण्यपापयोर्भिन्नताऽनुमीयते । जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः  
कार्यतश्चानुमीयेते ।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य-

वस्तु का धर्म है, इन तीनों विकल्पों में आने वाले दोषों का कथन पहले किया जा चुका  
है, अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती । अत एव पुण्य और पाप को पौद्गलिक कर्म ही  
स्वीकार करना चाहिए ।

पुण्य और पाप के सद्भाव में युक्तियाँ दिखलाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्यों कि उनका फल सुख और दुःख  
एक साथ नहीं भोगा जाता । कार्य की यह भिन्नता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और  
पाप की भिन्नता का अनुमान होता है । जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का  
अनुमान कारण से और कार्य से होता है ।

दानादि क्रियाएँ और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कार्य

वस्तुने धर्म छे ? आ त्रण्ये विकल्पोभां आववावाणा दोषोनुं कथन प्रथम कही यूक्या  
छीये, येदला कारणथी अहिं पुनइक्ति करता नथी. ये भाटे पुण्य अने पापने  
पौद्गलिक कर्मण स्वीकार करवे. जेधये.

पुण्य अने पापना सद्भावमां युक्तिओ अतावे छे—

पुण्य अने पाप अन्ने जूदा अने स्वतंत्र छे, कारण के तेनुं इण सुख अने  
दुःख अेक साथे लोगववामां आवतुं नथी. कार्यनी आ भिन्नता जेवाथी तेना कारणभूत  
पुण्य अने पापनी भिन्नतानुं अनुमान थाय छे. एवं अने कर्मना परिणामरूप पुण्य  
अने पापनुं अनुमान कारणथी अने कार्यथी थाय छे.

दान आदि क्रियाओ अने हिंसा आदि क्रियाओ कारण छे, ते भाटे तेनुं कार्य

पापात्मको जीवकर्मपरिणामोऽस्ति । यथा-कृष्यादिक्रियाणां शालि-यव-गोधूमा-  
दिकं नियमेन फलं भवति । इदमनुमानं कारणतो भवति ।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति । यथा-अस्ति शरीरादीनां  
कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात् । यथा-घटस्य मृदण्डचक्रादिसामग्रीसहितः  
कुम्भकारः कारणम् ।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्,  
दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरूपादिभावेन शरीरादीनां वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी अवश्य होना चाहिए, और वही कार्य जीव और कर्म का परिणामरूप पुण्य और पाप  
है । जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहूँ आदि फल नियम से होता है । यह  
कारण से अनुमान है ।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण  
अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी; दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त  
कुंभार होता है ।

शङ्का-शरीर आदि का कारण प्रत्यक्ष से प्रतीत होने वाले माता-पिता आदि ही  
मानना चाहिए ।

समाधान-दिखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता  
कुरूपता आदि की विचित्रता देखी जाती है, अतः उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

पणु अवश्य होवुं जेधये, अने ते कार्य एव अने कर्मना परिणामरूप पुण्य अने  
पाप छे: जेवी रीते जेती आदि क्रियाओमां शालि-उंगर, जव, घट आदि इत  
नियमथी थाय छे. आ कारणथी अनुमान छे.

आ प्रमाणे कार्यथी पणु कारणनुं अनुमान थाय छे. जेभ शरीर आदिनुं कारण  
जइर छे; कारण छे ते कार्य छे, जेवी रीते घटनुं कारण माटी, दंड, अक-आकणो,  
आदि सामग्रीथी युक्त कुंभार होय छे.

शङ्का-शरीर आदिनुं कारण प्रत्यक्षथी जणुता माता-पिता आदि मानवा जेधये.

समाधान:-देखावावाणा कारणनी समानता होवा छतांय पणु शरीरमां सुरूपता  
कुरूपता आदिनी विचित्रता जेवामां आवे छे, तेथी तेमने कारण मानी शकथे नहि.

तत्कारणत्वासिद्धेः । तद्वैचित्र्यस्य चादृष्टकर्मारव्यहेतुं विनाऽभावात् । शुभ-  
शरीरादीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरादीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन  
तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम् ।

पुण्यं पापं चेति द्वे कर्मणी भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यत्रागमोऽपि  
प्रमाणम् । उक्तञ्च स्थानाङ्गसूत्रे—“ एगे पुण्ये । एगे पावे ” इति । एवमेव  
समवायाङ्गेऽपि ।

### सर्वघातिप्रकृतयः—

(१) केवलज्ञानावरणीयम् । (२) केवलदर्शनावरणीयम् । (३) निद्रा,  
(४) निद्रानिद्रा, (५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः,  
(८-११) अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयम्, (१२-१५) अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्,

यह विचित्रता अदृष्ट कारण—कर्म के विना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का  
कार्य है और अशुभ शरीर आदि पाप का कार्य है । अतः पुण्य और पाप के भेद से  
कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है ।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र—भिन्न है, इस विषय में आगम भी प्रमाण है ।  
स्थानाङ्ग सूत्र में कहा है—‘ पुण्य एक है पाप एक है ’ । इसी प्रकार समवायाङ्गसूत्र में  
भी कहा है ।

### सर्वघाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा,  
(५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धि, (८-११) अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान,  
माया, लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानावरण—क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्याना-

या विचित्रता अदृष्ट कारण—कर्मना विना छोड़ शक्य नहीं है । शुभ शरीर आदि पुण्यनुं  
कार्य है । अने अशुभ शरीर आदि पापनुं कार्य है । ते कारण्थी पुण्य अने पापना  
लेदथी कर्म के प्रकारनां सिद्ध थाय है ।

पुण्यकर्म अने पापकर्म अने स्वतन्त्र—भिन्न है । आ विषयमां आगम पणु  
प्रमाणु है, स्थानांग सूत्रमां कहुं है—“ पुण्य अके है, पाप अके है । ” अने  
प्रमाणु समवायाङ्ग—सूत्रमां पणु कहुं है ।

### सर्वघाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा  
(५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धि, (८-११) अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान,  
माया, लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानावरण—क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्यानावरण

(१६-१९) प्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्यः ।

समस्तावरणक्षयादाविभूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहि केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम् । इदं हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्यच्यते ।

ननु-सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनाद्यत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्वहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व । ये वीस प्रकृतियों सर्वघाती हैं ।

केवलज्ञान समस्त आवरणो के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है । इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है । यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है ।

शङ्का—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो जायगा । ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य—चन्द्र की सारी प्रभा छिप

—क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व, आ वीस प्रकृतियों सर्वघाती छे.

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होवावाणु, तथा समस्त द्रव्यों अने पर्यायों के ग्रहण करवा वाणुं छे, तेने आच्छादित करवावाणुं कर्म केवलज्ञानावरणीय कहेवाय छे. ओ कर्म केवल ज्ञानने घात करीने समस्त द्रव्य-पर्यायोंना ज्ञानने घात करे छे. अतएव भाटे ते सर्वघाती कहेवाय छे.

शङ्का—सर्व लोकोने केवलज्ञानने अनन्तमे लाग प्रकट रहे छे. पणु ने अतएव पणु प्रकट न रहे तो एव; अणुव थर्ष नशे. आवी स्थितिमां केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती देखी रीते थर्ष शङ्के छे ?

समाधानः—देखी रीते अत्यन्त, सघन मेघपटल (घनघोर वादल) द्वारा सूर्य अथवा चन्द्रमानी घनीभूरी प्रभा—क्रांति ढंकाई लवार्थी लोकमां कहेवाय छे के सूर्य—चंद्रनी

तयोरावृतेति लोकव्यवहारवत् जीवस्य सर्वज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते ।

मतिज्ञानादिविषयान् अर्थान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादि-प्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिकमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र कारणं भवतीति बोध्यम् । एवं केवलदर्शनस्यानन्तभागोऽप्यनावृत एव, तत्रापि मेघदृष्टान्तानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वघातित्वमुपपद्यते । तत्रापि चक्षुर्दर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादेव जीवश्चक्षुर्दर्शनादिविषयानर्थान् ज्ञातुं न शक्नोति, न तु केवलदर्शनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम् ।

गई । इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है ।

जीव मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलदर्शन का अनन्तवाँ भाग उघाडा रहता है । वहाँ भी मेघ के दृष्टान्त के अनुसार आवरण का व्यवहार समझ कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वघाती प्रकृति समझना चाहिए । यहाँ भी चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों को जीव चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता । वहाँ केवलदर्शनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

तमाम् अंति-प्रकाश ढंकार्थ गध. अे प्रभाणे केवलज्ञानवरणु प्रकृति एवना समस्त ज्ञाननुं आवरणु करे छे, अेम कडेवाय छे.

एव मतिज्ञानना विषयभूत पदार्थीने ज्ञातुते नथी; तेमां मतिज्ञानावरणीय प्रकृति-कर्मने उदयज कारणुइय छे. तेज मतिज्ञानने रोके छे अेमां केवलज्ञानावरणीयने उदय कारणु इय नथी. अे प्रभाणे केवलदर्शनने अनन्तमे भाग उघाडो रहे छे. त्यां पणु मेघना दृष्टान्त प्रभाणे आवरणुने व्यवहार समजु लधने केवलदर्शनावरणीयने सर्वघाती प्रकृति समजुनुं जेधअे, अडीं पणु चक्षुर्दर्शन आदिना विषयभूत पदार्थीने एव चक्षुर्दर्शनावरणीय आदिना उदयथी ज्ञातुते नथी, त्या केवलदर्शनावरणीय कारणु नडि समजुनुं जेधअे.

ननु केवलज्ञानावरणीयस्य केवलदर्शनावरणीयस्य च क्षये सत्यपि मतिज्ञानादीनां चक्षुर्दर्शनादीनां च विषया ज्ञातुमशक्याः स्युः, तेषां केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीय-प्रकृत्योर्विषयाभावात्, मतिज्ञानावरणीयादीनां च क्षयाभावात्ताभिर्मतिज्ञानादीनां समावृत्तत्वादिति चेत् ? उच्यते—

केवलज्ञानलाभे शेषावबोधलाभस्य तदन्तर्गतत्वात् । यथा—ग्रामलाभे क्षेत्रलाभो ग्रामलाभान्तर्भूत एव भवति ।

निद्रादिपञ्चकमपि सकलपदार्थावबोधं प्रतिहन्तीति सर्वघाति भवति । यदि पुनः स्वापदशायामपि किञ्चिद् ज्ञानमस्तीति संभाव्यते, तर्हि तत्रापि जलधरदृष्टान्तमाश्रित्य समाधेयम् ।

शङ्का—केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का क्षय होने पर भी मतिज्ञान आदि और चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जानना अशक्य होना चाहिए, क्यों कि वे केवलज्ञानावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियों के विषय नहीं हैं, और मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, उन्हीं से मतिज्ञान आदि आवृत्त होते हैं ।

समाधान—केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर शेष ज्ञानों की प्राप्ति उसी में अन्तर्गत हो जाती है । जैसे ग्राम मिलने पर खेत आप ही मिल जाता है ।

निद्रा आदि पांच प्रकृतियाँ भी सकल पदार्थों के ज्ञान का घात करती हैं, अत एव सर्वघाती हैं । अगर निद्रा—अवस्था में भी किञ्चित् ज्ञान की संभावना की जा सकती है तो वहाँ भी मेघ का दृष्टान्त लेकर समाधान करना चाहिए ।

शंका—केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीयने क्षय थवा छतांय पणु मतिज्ञान आदि अने चक्षुर्दर्शन आदिना विषयभूत पदार्थोने ज्ञानुं ते अशक्य डोषुं जेध अे; डारणु डे ते केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियोने विषय नथी. अने मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोने क्षय थयो नथी, तेनाथी मतिज्ञान आदि आवृत्त थाय छे.

समाधान—केवल ज्ञानकी प्राप्ति थवाथी शेष ज्ञानोनी प्राप्ति तेमां अन्तर्गत थय जय छे. जेवी रीते गाम मणवार्थी जेतरे पोतेज मदी जय छे.

निद्रा आदि पांच प्रकृतियो पणु तमाभ पदार्थोना ज्ञानने घात करे छे, अे भाटे ते सर्वघाती छे. अथवा निद्रा अवस्थांमां पणु डियित् ज्ञानकी संभावना कराय छे. तो त्यां पणु मेघनु दृष्टान्त लधने समाधान करी लेवुं जेध अे.

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कषायाः प्रत्येकं यथाक्रमं सम्यक्त्वं देशविरति-  
चारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव घ्नन्ति, तस्मादेते द्वादश कषायाः सर्वघातिन  
इत्युच्यन्ते । तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशादशुद्धाहारादिविरमण-  
दर्शनात् सर्वघातित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनघनघटादृष्टान्ता-  
श्रयणेन तस्यापि समाधेयत्वात् । मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं  
सर्वमपि प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते । यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि  
मनुष्यपश्वादिवस्तुविषयकं सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वघातित्वं मिथ्यात्वस्येति  
संभाव्यते, तदाऽत्राप्युक्तजलदावलीदृष्टान्तः शरणीकरणीयः ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय क्रमशः सम्यक्त्व का देशविरति का, और  
सर्वविरतिका पूर्णरूप से घात करते हैं, अतः ये बारह कषाय भी सर्वघाती कहलाते हैं । यह  
शङ्का नहीं करनी चाहिए कि—इन कषायों का प्रबल उदय होने पर भी कुलाचार आदि  
कारणों से अशुद्ध आहार आदि का त्याग देखा जाता है अत एव इन्हें सर्वघाती नहीं कहा  
जा सकता, क्योंकि नवीन मेघघटाका दृष्टान्त लेकर इस शङ्का का भी समाधान किया जा  
सकता है ।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से घात करती  
ही है, अतः वह सर्वघाती है । यदि मिथ्यात्व का प्रबल उदय होने पर भी मनुष्य  
पशु आदि वस्तुओं सम्बन्धी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वघाती कैसे कहा  
जा सकता है ? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघघटल के ही दृष्टान्त का आश्रय  
लेना चाहिए ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय क्रमशः सम्यक्त्वने देशविरतिने अने सर्व  
विरतिने पूर्णरूपी घात करे छे, तेथी अे बारह कषाय पणु सर्वघाती कडेवाय छे. अेवी  
शंका नडि करवी नेधअे के—अे कषायोना प्रबल उदय वधते पणु कुलाचार आदि  
कारणोथी अशुद्ध आहार आदिने त्याग नेवामां आवे छे. ते भाटे तेने सर्वघाती कडी  
शकाशे नडि; कारणु के नवीन मेघ घटानुं द्रष्टांत लधने आ शंकानु समाधान करी शकाय छे.

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्वने पूर्णरूपी घात करे छेण,  
तेथी ते सर्वघाती छे. ने मिथ्यात्वने प्रबल उदय होय ते वधते पणु—मनुष्य, पशु आदि  
वस्तुओसंबन्धी सम्यक्त्व रहे छे तो मिथ्यात्वने सर्वघाती केवी रीते कडी शकशे ? अे  
शंकाना समाधान भाटे पणु आगण कडेल मेघघटणनां द्रष्टांतने आश्रय लेवे नेधअे.



## देशघातिप्रकृतयः—

अथ देशघातिप्रकृतयः कथ्यन्ते—। (१) मतिज्ञानावरणीयम्, (२) श्रुतज्ञानावरणीयम्, (३) अवधिज्ञानावरणीयम्, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्, एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४ । (१) चक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (३) अवधिदर्शनावरणीयम्, इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि ७ । संज्वलन-रूपाः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः ११ । हास्य-रत्य-रति-भय-शोक-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुंवेद-नपुंसकवेदभेदतो नवसंख्यका नोकषायाः २० । तथा दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यभेदात् पञ्चविंशतिः २५ प्रकृतयो देशघातिन्यः सन्ति ।

मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयी प्रकृतिः केवलज्ञानावरणीयावृतं दैशिकं ज्ञानं हन्ति, तस्माद्देशघातिनीयमुच्यते ।

## देशघाती प्रकृतियाँ—

अथ देशघाती प्रकृतियों का कथन किया जाता है—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ये चार ज्ञानावरणीय ४ । तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, ये तीन दर्शनावरणीय ७ । तथा संज्वलन—क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय ११ । हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद के भेद से नौ नोकषाय २० । तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय, ये पांच अन्तराय २५ । सब मिलकर पच्चीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ।

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत एक देश ज्ञानका घात करती हैं, अत एव उन्हें देशघाती प्रकृतियाँ कहते हैं,

## देशघाती प्रकृतिओ—

इवे देशघाती प्रकृतिओनुं कथन—निष्पणु-करवामां आवे छे—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, आ चार ज्ञानावरणीय छे ४, तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, आ त्रणु दर्शनावरणीय, ७, तथा संज्वलन—क्रोध, मान, माया, लोभ, अये चार कषाय, ११, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ना भेदधी नव नोकषाय, २०, तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, अने वीर्यान्तराय, आ पांच अन्तराय २५, अधी मणीने पच्चीस देशघाती प्रकृतिओ छे.

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतिओ केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत अेक देश ज्ञानने घात करे छे, तेठला भाटे तेने देशघाती प्रकृति कहे छे.

मतिज्ञानादिविषयाणामर्थानामवबोधो यन्न भवति, तच्च मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयप्रकृत्युदयादेव । यत्तु मतिज्ञानाद्यविषयाणामनन्तपदार्थानां ज्ञानं न भवति तत् केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्युदयादेव ।

चक्षुर्दर्शनावरणीयादित्रयी प्रकृतिः केवलदर्शनावरणीयानावृतं केवलदर्शनैकदेशं ज्ञानं हन्तीति देशघातित्वं सिद्धम् । चक्षुरादिदर्शनविषयभूतानामर्थानां दर्शनं यन्न भवति, तत् चक्षुरादिदर्शनावरणीयप्रकृत्युदयादेव; यच्च तद्विषयभूतान् अनन्तगुणान् न पश्यति, तत् केवलदर्शनावरणीयोदयादेव ।

तथा—संज्वलनाश्रुत्वारः कषायास्तथा नव नोकषायाश्च लब्धस्य

मतिज्ञान आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से ही समझना चाहिए । और जो पदार्थ मतिज्ञान आदि के विषय नहीं है, उनके ज्ञानका अभाव केवलज्ञानावरणीय प्रकृति के उदय से होता है ।

चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि तीन प्रकृतियाँ केवलदर्शनावरणीयद्वारा अनावृत केवलदर्शन के एकदेश ज्ञानका घात करती हैं, अतः वे देशघाती हैं । चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से समझना चाहिए और केवलदर्शन के विषयभूत अनन्त गुणों के ज्ञानका जो अभाव होता है सो केवलदर्शनावरणीय के उदय से ही समझना चाहिए ।

चार संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय प्राप्त हुए चारित्र के एक देश का

मतिज्ञान आदिना विषयभूत पदार्थानुं ज्ञानं यत्तुं नथी ते मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतिभ्योना उदयधीञ् समञ्च लेवुं ज्ञेयञ्च. अने ज्ञे पदार्थ मतिज्ञानादिना विषय नथी तेना ज्ञानने। अभाव केवलज्ञानावरणीय प्रकृतिना उदयधी ज्ञेय छे.

चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि त्रय प्रकृतिभ्यो केवलदर्शनावरणीय द्वारा अनावृत केवलदर्शनना एकदेश ज्ञानने घात करे छे. ज्ञे कारणधी ते देशघाती छे चक्षुर्दर्शन आदिना विषयभूत पदार्थानुं ज्ञानं यत्तुं नथी ते चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि प्रकृतिभ्योना उदयधी समञ्चुं ज्ञेयञ्च, अने केवलदर्शनना विषयभूत अनन्त गुणाना ज्ञानने ज्ञे अभाव थाय छे ते केवलदर्शनावरणीयना उदयधीञ् समञ्चुं ज्ञेयञ्च.

चार संज्वलन कषाय अने नव नोकषाय प्राप्त थयेदा चारित्रना एक देशनेञ्

चारित्रस्य देशमेव घ्नन्ति, तेषां मूलोत्तरगुणातीचारजनकत्वात् । तस्मादेता-  
स्त्रयोदश प्रकृतयो देशघातिन्य इति बोध्यम् ।

तथा—दानान्तरायादिपञ्चान्तरायरूपाः प्रकृतयोऽपि देशघातिन्य एव ।  
दानलाभभोगोपभोगानां चतुर्णां विषयस्तावद् ग्रहणधारणयोग्यान्येव द्रव्याणि  
सन्ति । तानि च सकलपुद्गलास्तिकायस्यानन्तभागरूपे देश एव वर्तन्ते, अतो  
यासां प्रकृतीनामुदयात् पुद्गलास्तिकायदेशवर्तीनि द्रव्याणि दातुं लब्धुं भोक्तुमुपभोक्तुं  
च न शक्नोति ताः प्रकृतयो दानलाभभोगोपभोगान्तरायरूपास्तावद्देशघातिन्य एव ।

यत्तु—समस्तलोकान्तर्गतानि द्रव्याणि दातुं लब्धुं भोक्तुमुपभोक्तुं च न  
प्रभवति तदानान्तरायादिप्रकृत्युदयतो न भवति, किन्तु तेषामेव ग्रहणधारण-

ही घात करते हैं, क्यों कि वे मूलगुणों और उत्तरगुणों में अतिचार उत्पन्न करते हैं, इस  
कारण ये तेरह प्रकृतियाँ देशघाती हैं, ऐसा समझना चाहिए ।

अन्तराय कर्म की पांच प्रकृतियाँ भी देशघाती ही हैं । दान, लाभ, भोग और  
उपभोग, इन चार के विषय ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्य ही हैं, और ऐसे द्रव्य  
समस्त पुद्गलास्तिकाय के अनन्तवें भाग हैं, अतः जिन प्रकृतियों के उदय से पुद्गलास्तिकाय  
के एकदेशवर्ती द्रव्यों का दान, लाभ, भोग या उपभोग न हो सके वे दानान्तराय आदि  
प्रकृतियाँ भी देशघाती ही हैं ।

समस्त लोक के अन्तर्गत द्रव्यों का दान, लाभ, भोग और उपभोग नहीं  
हो सकता, सो यह दानान्तराय आदि प्रकृतियों के उदय से नहीं, परन्तु उन द्रव्यों को

घात करे छे कारणु के ते मूलगुणो अने उत्तरगुणोमां अतिचार उत्पन्न करे छे, आ  
कारणुथी ते तेर प्रकृतियो देशघाती छे. ए प्रमाणे समजवुं लोधये.

अन्तराय कर्मनी पांच प्रकृतियो पणु देशघातीण छे. दान, लाभ, भोग अने  
उपभोग, ए चारना विषय अणुणु अने धारणु करवा योग्य द्रव्यण छे, अने एवा  
द्रव्य समस्त पुद्गलास्तिकायना अनन्तमे भाग छे, तेथी ने प्रकृतियोना उदयथी  
पुद्गलास्तिकायना एकेदेशवर्ती द्रव्येना दान, लाभ, भोग अने उपभोग न थछ  
शके, ते दानान्तराय आदि प्रकृतियो पणु देशघाती छे.

समस्त लोकना अन्तर्गत द्रव्येना दान, लाभ, भोग अने उपभोग थछ शकते  
नथी. ते आ दानान्तराय आदि प्रकृतियोना उदयथी नछि; परन्तु ते द्रव्येने अणुणु अने

योग्यताया अभावादशक्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न हन्तीति देशघातिन्येवं । तथाहि-  
सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति आक्षीणमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपशम-  
विशेषाद् वीर्यं कस्यचिदल्पं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतमं  
भवति, वीर्यान्तरायकर्मणोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिणमनकर्मदलिक-  
ग्रहणगत्यन्तरगमनादिकं विद्यते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्माद्देशत  
एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या हन्यते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

ग्रहण और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अशक्यानुष्ठान से समझना चाहिए ।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती अतः देशघाती है ।  
सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर क्षीणमोह-गुणस्थान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के  
क्षयोपशम से किसी जीव में अल्प वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता  
है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अत्यन्त अधिक वीर्य होता  
है । वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिणमन  
करता है, कर्मदलियों को ग्रहण करता है और दूसरी गति में जाता है । ये सब  
कार्य वीर्य के विना नहीं हो सकते । इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य  
को एकदेश से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं । अगर यह प्रकृति सर्वघाती मानी जाय  
तो जैसे सर्वघाती मिथ्यात्व के उदय में सम्यग्दर्शन लेशमात्र नहीं होता, और

धारण करवानी योग्यता नहीं होवानी कारणे अशक्यानुष्ठानथी समञ्जुं जेधये.

वीर्यान्तराय प्रकृति पणु समस्त वीर्येना घात करती नथी, तेथी ते देशघाती छे.  
सूक्ष्मनिगोदना अवथी लधने क्षीणमोहगुणस्थान सुधीना अवोमां वीर्यान्तरायना क्षयोप-  
शमथी केध अवमां अल्पवीर्यं (थोडी शक्ति) होय छे, केध अवमां बहु वीर्यं होय छे;  
केध अवमां बहुञ्च अधिक वीर्यं होय छे, अने केधमां अत्यन्त अधिक वीर्यं होय छे.  
वीर्यान्तराय कर्मने उदय होय त्यारे पणु सूक्ष्म निगोदना अव आहारनुं परिणमन करे  
छे, कर्मदलिकेने ग्रहण करे छे, अने भीण गतिमां जाय छे. आ तमाम कार्य वीर्यं विना  
थध शके नही, तेथी ये सिद्ध थयुं के:- वीर्यान्तराय कर्म वीर्येना केध देशेनाञ्च घात  
करे छे, सर्वदेशेना नही. अथवा तो आ प्रकृतिने सर्वघाती मानवामां आवे तो जेवी रीते  
सर्वघाती मिथ्यात्वना उदयमां सम्यग्दर्शन लेशमात्र पणु होय नही, अने जेभ

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वासार२-ऽऽतपो३-उद्योता४-अगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-उपघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे वारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

आठ कषायोन्नो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशथी पणु डोय नही; ते प्रमाणे वीर्यान्तराय कर्मो उदय तथा लेशमात्र पणु वीर्यगुणु प्रकट थयो नही लेधये, परन्तु अे प्रमाणे थतुं नथी, अे कारणथी सिद्ध थयु के—वीर्यान्तराय प्रकृति पणु देशघातीन छे.

अघाती प्रकृतिओ—

अघाती प्रकृतिओ पंचोत्तर (७५) छे. ते आ प्रमाणे छे:—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिओ अघाती छे. (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कार्मण शरीर, आ पांच शरीर अघाती प्रकृतिओ छे; (१३) त्रणु उपांग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पांच लतिओ, (३३) आर गति, ३७ अे विहायो-

नानि६ । पञ्च जातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे खगती२ । चतस्रः आनु  
पूर्व्यः४ । आयुषि चत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्थावरदशकम्१० । उच्चैर्गोत्रम्१ ।  
नीचैर्गोत्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्या-  
श्रतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न हन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते ।  
इमाः सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं  
प्रदर्शयन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं  
दर्शयन्ति । यथा-स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत् ।

छह संहनन२८, पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७, दो विहायोगतियाँ३९, चार  
आनुपूर्वी४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७, स्थावरदशक६७; उच्चगोत्र६८, नीचगोत्र६९,  
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार  
प्रकृतियाँ७५ ।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती है । इसी लिये ये अघाती  
कहलाती है । जब इनका सर्वघातो प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती  
होते हुए भी सर्वघातो रसकों प्रकट करती है, और देशघाती प्रकृतियों  
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती है ।  
जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है ।  
यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है ।

गति, (३६) आर अनुपूर्वी, (४३) आर आयु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्थावरदशक,  
(६७) उच्चगोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)  
तथा वर्ण रस, गंध, अने स्पर्श नामनी आर प्रकृतिओ (७५).

आ प्रकृतिओ ज्ञान आदि केरि शुष्मो घात करती नथो. अेटला भाटे तेने  
अघाती प्रकृति कडे छे, परन्तु सर्वघाती प्रकृतिओनी साथे न्यारे तेनुं वेदन थाय छे  
तो पोते अघाती होवा छतांय पणु अे सर्वघातीनु क्षण प्रदर्शित करे छे. अथवा  
देशघाती प्रकृतिओनी साथे तेनुं वेदन होय तो पोते अघाती होवा छतांय पणु  
देशघाती रसने प्रगट करे छे. जेवी रीते केरि पुरुष आर न होय परन्तु आरौनी साथे होय  
तो ते पणु आर जेवो न देणाय छे. अे प्रमाणेन आ अघाती प्रकृतिओ विषे समजवुं.

### ઉત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીયાઘષ્ટવિધકર્મણામુત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા અષ્ટચત્વારિંશદધિકશતં ૧૪૮ ભવન્તિ । તથાહિ—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયસ્ય—મતિ—શ્રુતા—ઽવધિ—મનઃપર્યય—કેવલજ્ઞાનાવરણીય—ભેદાત્ પञ्च ।

(૨) દર્શનાવરણીયસ્ય—ચક્ષુર્દર્શના—ઽચક્ષુર્દર્શના—ઽવધિદર્શન—કેવલદર્શનાવરણીયાનિ ચત્વારિ, તથા—નિન્દ્રા—નિદ્રાનિદ્રા—પ્રચલા—પ્રચલાપ્રચલા—સ્ત્યાનર્દ્ધિભેદાત્ પञ्ચ મિલિત્વા નવ ભવન્તિ ।

(૩) વેદનીયસ્ય શાતાશાતભેદેન દ્વૌ ભેદૌ સ્તઃ ।

### ઉત્તરપ્રકૃતિયોંકી સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંકી ઉત્તર પ્રકૃતિયોંકી સંખ્યાએ (મધ્યમવિવક્ષા સે) ૧૪૮ હૈ । વે ઇસ પ્રકાર—

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કી પાંચ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય ।

(૨) દર્શનાવરણીય કી નૌ—(૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રાનિદ્રા, (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, યે પાંચ નિદ્રાએ મિલકર કુલ નૌ પ્રકૃતિયાં હૈ ।

(૩) વેદનીય કી દો—સાતાવેદનીય ઔર અસાતાવેદનીય ।

### ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંકી ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી) એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે. તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાંચ — (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય.

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે. (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રા (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાંચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति । तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति-चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः । चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति-भेदाः, यथा - कषायमोहनीय १ - नोकषायमोहनीय २-भेदेन चारित्रमोहनीयं द्विविधम् । तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश भेदा भवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, लोभः ४, अनन्तः=संसारो नारक-तिर्यग्-मनुष्य-देव-जन्म-जरा-मरण-परम्परालक्षणः, तदनुबन्धादनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा-श्चत्वारः कषायाः ४ । तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकाऽक्षमारूप आत्म-परिणामः । मानो-गर्वः, माया-शाठ्यम्, लोभो-गृध्नुता । अनन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अट्ठाईस-सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं । चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचारित्र-मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय । कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ, जो कषाय, नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति में जन्म-जरा-मरण-रूप अनन्त संसार का अनुबन्ध करे, वह अनन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ । कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है । गर्वको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गृद्धिभाव (लालच) लोभ कहलाता है । अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राजि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टावीस छे. (१) सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, अने मिथ्यात्वमोहनीय, आ त्रण दर्शनमोहनीयनी, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीयनी, अने प्रमाणे कुल अष्टावीस प्रकृतिअो छे. चारित्रमोहनीयनी पच्चीस प्रकृतिअो आ प्रमाणे छे:- चारित्रमोहनीयना अे लेद छे. (१) कषायचारित्रमोहनीय अने (२) नोकषायचारित्रमोहनीय, कषायचारित्रमोहनीयना सोण लेद छे. अेभके-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, दोल. अे कषाय नारक, तिर्यच, मनुष्य, अने देवगतिमां जन्म, जरा, मरणरूप अनन्त संसारना अनुबन्ध करे ते अनन्तानुबन्धी छे. तेना चार लेद छे, क्रोध, मान, माया अने दोल, कर्तव्य-अकर्तव्यनां विवेकना नाश करवावाणा अक्षमारूप आत्मना परिणाम ते क्रोध कडेवाय छे. गर्वने मान कडेछे. मायाना अर्थ कपट छे. लालच ते दोल कडेवाय छे. अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कमां क्रोधने पर्वतनी राजिनुं (पर्वत कषावाधी



કષાયચતુષ્ટયે ક્રોધસ્ય પર્વતરાજિઃ, માનસ્ય શૈલસ્તમ્ભઃ, માયાયાઃ-વંશમૂલં, લોભસ્ય-કૃમિજરાગઃ, ઉદાહરણમ્ ।

एवमप्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं द्विविधम् - देशविरति-सर्वविरति-भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रति-पेधवाची, प्रतिपेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्-प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानावरणीयम्, न प्रत्याख्यानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्' - शब्दः ।

(પર્વત ફટને સે ઉત્પન્ન હુઈ દરાર,) કા, માન કો શૈલસ્તંભકા, માયાકો વાંસકી જડકા ઓર લોભકો કિરમિચી રંગકા ઉદાહરણ દિયા ગયા હૈ ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो प्रकारका है-देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-वाचक है, अर्थात् प्रतिपेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मैं जीवनपर्यन्त किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो प्रत्याख्यानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ में है, अर्थात् जो कषाय प्रत्याख्यानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી કાટ-ચીર) માનને શૈલસ્તંભનું, માયાને વાંસની જડનું અને લોભને કિરમિચી રંગનું ઉદાહરણ આપ્યું છે.

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદી ચાર ભેદ છે. પ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારના છે-દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'પ્રત્યાખ્યાન' શબ્દમાં 'પ્રતિ' ઉપસર્ગ નિષેધ-વાચક છે. અર્થાત્ પ્રતિપેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે. અર્થાત્ "હું જીવન સુધી કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહીં" ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે. પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે. અહિં 'નજ્' શબ્દ ઉપમાના અર્થમાં છે અર્થાત્-જે કષાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. અથવા 'નજ્' અદ્ય-થોડું-એવા અર્થમાં છે. અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयवत् = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । यद्वा-अल्पार्थो नञ्, अल्पं प्रत्याख्यानम्=अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति । अल्पं=देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं समावृणोति कषायचतुष्टयम्, तस्मादप्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते । यः कषायः स्वल्पं देशविरतिरूपमावृणोति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमावृणोत्येवेति नात्र चित्रम् । यत्कर्मोदयादाविर्भूताः कषायाः केवलं विरतिमात्रमावृण्वन्ति ते त्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कषायाः ।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः । अत्र प्रत्याख्यानशब्देन सर्वविरतिपरिग्रहः । ये पुनः कषायाः सर्वविरतिमेव प्रतिबध्नन्ति, न तु देशविरतिं ते प्रत्याख्यानावरणीया इति ।

कहलाता है । अथवा 'नञ्' अल्प-अर्थ में है, अर्थात् अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलाता है, उसका आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है । यह कषायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आवृत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो कषाय स्वल्प देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है ? । जिस कर्म के उदय से आविर्भूत कषाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं । यहा प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का ग्रहण किया गया है । जो कषाय, सिर्फ सर्वविरति का ही घात करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं ।

अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहेवाय छे. तेनुं आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय छे. आ कषायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यानने आवृत करे छे (टांकी हे छे). अे कारण्थी अे अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे. ने कषाय स्वल्प देशविरतिने पणु थवा हेता नथी. ते सर्वविरतिने नहि थवाहे. अेमां आश्चर्यं नुं छे ? ने कर्मना उदयथी आविर्भूत (उत्पन्न थयेला) कषाय केवल विरतिमात्रने रोके छे, ते अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे.

आ प्रमाणे क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय छे, अहिं प्रत्याख्यान शब्दथी सर्वविरतिनुं ग्रहण क्युं छे. ने कषाय, मात्र सर्वविरतिने घात करे छे, देशविरतिने नही, ते प्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे.

प्रत्याख्यानस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपस्य परिणामद्वयस्योत्पत्तेर्विधा-  
तकत्वात् प्रत्याख्यानावरणीया उच्यन्ते, न तु विद्यमानस्य प्रत्याख्यानस्य-  
विधातकतयेति तच्चम् ।

एवं संज्वलनकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावध्ययोगविरतं  
संयमरतर्माप यति दुःसहपरिषहसंपाते संज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति - इति  
संज्वलनाः । (१६) ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये दृष्टान्ता उच्यन्ते-क्रोधस्य-  
तडागभूमिराजिः, मानस्यास्थिरस्तम्भः, मायायाः मेषशृङ्गः, लोभस्य कर्दमरागः ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्या-  
ख्यानावरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार संज्वलन कषाय हैं । सब प्रकार के सावध्य योग से  
निवृत्त संयम में लीन मुनि को दुःसह परीषह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता  
उत्पन्न करने वाला कषाय संज्वलन कहलाता है ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचौकड़ी के दृष्टान्त बतलाते हैं-क्रोध का दृष्टान्त तडाग-  
भूमिराजि है, अर्थात् तालाव की भूमि फटने से उत्पन्न होनेवाली दरार के समान यह क्रोध  
होता है । मान का उदाहरण हड्डीका स्तंभ है । मायाका उदाहरण मेढाका सींग है और  
लोभ का दृष्टान्त गाड़ी का ओगन (गाड़ी के पैये में दिये हुए तेल का कीटा) है ।

देशविरति अने सर्वविरतिश्च प्रत्याख्याननी उत्पत्तिनुं घातक होवाथी तेने  
प्रत्याख्यानावरणीय कहे छे, पड़ेलाथी विद्यमान प्रत्याख्याननुं घातक होवाथी नहिं.

अे प्रभासे क्रोध आदि चार संज्वलन कषाय छे, सर्व प्रकारना सावध्य योगथी  
निवृत्त, संयमभां लीन मुनिने दुस्सह परीषह आवी प्राप्त थतां जलाववावाणा अर्थात्  
मलिनता उत्पन्न करवावाणा कषाय संज्वलन कहेवाय छे.

अप्रत्याख्यानावरणीय-कषाय-चौकडीनुं दृष्टान्त बतावे छे-क्रोधनुं दृष्टान्त तलावनी  
भूमिराजि छे. अर्थात् तलावनी भूमि टूटवाथी उत्पन्न थयेली टूट-चीरना समान  
अे क्रोध होय छे. माननुं उदाहरण हड्डानो स्तंभ छे. मायानुं उदाहरण घेतानां सींग  
छे, अने लोभनुं दृष्टान्त गाडीनी भणी (गाडीनां पैयांमां अयायेला तेलनुं कीटां) छे.

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये क्रोधस्य-वालुकाराजिः, मानस्य-  
काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोभस्य-खञ्जनरागः ।

संज्वलनकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सलिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भः,  
मायाया-रथकारतक्षितकाष्ठसंवलितत्वक्, लोभस्य-हरिद्राराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरति, शोकः,  
भयं, जुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-देवायुर्भेदात् । यस्यो-  
दयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण वालु में खींची हुई लकीर है । मान का उदाहरण काठका खंभा है । माया का उदाहरण चलते हुए बैल के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी लकीर है और लोभ का उदाहरण खंजन-राग है ।

संज्वलन कषाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में बनाई हुई लकीर है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बढई द्वारा छीले हुए काठका छिलका है, और लोभ का उदाहरण हलदी का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद है-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद है-नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु । जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कषायनी चौकडीनुं उदाहरण-क्रोधनुं उदाहरण-रेतीमां करेदी लीटी छे. माननुं उदाहरण-काष्ठनो थांललो छे. मायानुं उदाहरण-यालता भण्डीआना भूत्रनी वांकी-चूकी लीटी छे, अने दोलनुं उदाहरण-खंजन-राग छे.

संज्वलन कषायनी चौकडीना उदाहरण-क्रोधनुं उदाहरण-पाणीमां करेदी लीटी छे. माननुं उदाहरण तण्णलानो थांललो छे. मायानुं उदाहरण भढई द्वारा (सुतार द्वारा) छोलेला लाकडानी छाल छे अने दोलनुं उदाहरण-हलदरनो रंग छे.

नोकषायमोहनीयता नव लेह छे-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अने नपुंसकवेद. २५.

(५) आयुष्य-कर्मना चार लेह छे-नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु, अने देवायु. जे कर्मना प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी, अर्थात् जे कर्मना उदयथी ते-ते गतियोग्य प्रकृतिविशेषमां स्थित आत्मा नारकी आदिना रूपमां लवे छे, अने जेना क्षयथी भरण

ક્ષયાન્મૃત ઉચ્યતે, તદાયુઃ । યદ્વા-આનીયન્તે શેષપ્રકૃતયઃ ઉપભોગાય જીવેન યસ્મિન્, તદાયુઃ । યથા-કાંસ્યાદિપાત્રે શાલ્યોદનવ્યઞ્જનાદયો ભોક્ત્રા ભોક્તુ-માનીયન્તે, તદ્વત્ ।

(૬) નમયતિ=પ્રાપયતિ નારકાદિસંજ્ઞાં જીવમિતિ નામ । નામકર્મ-ણત્વિનવતિર્ભેદાઃ ભવન્તિ ।

તત્ર મૂલભેદાઃ દ્વિચત્વારિંશત્ । તથાહિ—

(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અઙ્ગોપાઙ્ગનામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શ-

ઔર જિસ કે ક્ષય સે મર જાતા હૈ, ઉસે આયુકર્મ કહતે હૈ । અથવા જિસ મેં જીવ ભોગને કે લિષ અન્ય પ્રકૃતિયાં કો લાતા હૈ વહ આયુ હૈ, જૈસે કાંસે આદિ કે ભાજન મેં ચાવલ, ઓદન, વ્યંજન આદિ વસ્તુએં ભોગને વાલા પુરુષ લાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર શેષ પ્રકૃતિયાં આયુ મેં ભોગી જાતી હૈ ।

(૬) નામ-કર્મ કે તેરાનવે (૧૩) ભેદ-જો કર્મ જીવ કો નારક આદિ સંજ્ઞાઓં કા પાત્ર વનાતા હૈ, વહ નામકર્મ કહલાતા હૈ । ઉસકે તેરાનવે ભેદ હૈ । ઉન મેં મી મૂલ ભેદ વચાલીસ હૈ, વે ઇસ પ્રકાર-(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અઙ્ગોપાઙ્ગનામ; (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનનામ (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વીનામ,

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમાં જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને ભોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે. જેમ કે કાંસા આદિના વાસણમાં ચોખા, ભાત, વ્યંજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ ભોગવવાવાળા પુરુષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમાં ભોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રણ (૮૩) ભેદ છે. જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સંજ્ઞાઓનું પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રણ (૮૩) ભેદ છે. તેમાં પચ મૂલ ભેદ એંતાલીસ છે. તે આ પ્રમાણે-(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અંગોપાંગનામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વીનામ, (૧૫)

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्स्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशोनाम, (४१) अयशोनाम, (४२) तीर्थङ्करनाम ।

एते मूलभेदाः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते । अत्र गत्यादिचतुर्दशपिण्ड-  
प्रकृतीनामुत्तरप्रकृतयः- पञ्चषष्टिः (६५) ।

(१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१) अयशःकीर्तिनाम, और (४२) तीर्थकरनाम-कर्म ।

इन बयालीस प्रकृतियों में जिन प्रकृतियों के अवान्तर भेद है, उन्हें पिण्ड-  
प्रकृति कहते हैं । गति आदि चौदह पिण्डप्रकृतियाँ हैं और उनके पैसठ (६५) भेद  
होते हैं ।

अशुल्लघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम,  
(२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारण-  
शरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८)  
सुस्वरनाम, (२९) दुःस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम,  
(३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७)  
अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१)  
अयशःकीर्तिनाम, (४२) तीर्थङ्करनाम-कर्म ।

आ मेंतालीस प्रकृतियोंमें जे प्रकृतियोंना अवान्तर लेद छे, तेने पिंडप्रकृति  
कहे छे. गति आदि चौदह पिंडप्रकृतियों छे. अने पांसठ (६५) तेना लेद छे.

[१] गतिनाम्नः पिण्डप्रकृतेश्चत्वारो भेदाः— नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगतिनाम च ।

[२] जातिनाम्नो भेदाः पञ्च— एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

[३] शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम ।

[४] अङ्गान्युपाङ्गानि च यस्य कर्मण उदयाद्भवन्ति, तदङ्गोपाङ्गनामकर्म । तत् त्रिविधम्—औदारिक-वैक्रियका-आहारक-भेदात् । तत्राङ्गान्यष्टौ—उरः, शिरः,

[१] गतिनामकर्म के चार भेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म ।

[२] जातिनामकर्म के पांच भेद है—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम और पञ्चेन्द्रियजातिनाम—कर्म ।

[३] शरीरनामकर्म के पांच भेद हैं—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम; आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम और कार्मणशरीरनाम—कर्म ।

[४] जिस कर्म के उदय से अङ्ग और उपाङ्ग होते हैं वह अङ्गोपाङ्गशरीरनामकर्म, कहलाता है । उसके तीन भेद है औदारिक-अङ्गोपाङ्ग, वैक्रिय-अङ्गोपाङ्ग और आहारक अङ्गोपाङ्ग । इन में अङ्ग आठ होते हैं—छाती, सिर, पीठ, पेट, दो हाथ और दो पैर । चन्दना करने में पांच अङ्ग प्रशस्त माने जाते हैं—दो पैर, दो हाथ, और सिर । यहाँ

(१) गतिनामकर्मना चार लेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म अने देवगतिनाम-कर्म ।

(२) जातिनामकर्मना पांच लेद छे—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, अने पञ्चेन्द्रियजातिनाम-कर्म ।

(३) शरीरनामकर्मना पांच लेद छे—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, अने कार्मणशरीरनाम-कर्म ।

ये कर्मना उदयथी अंग अने उपांग थाय छे ते अंगोपांगशरीरनामकर्म कहेवाय छे. तेना त्रय लेद छे. औदारिकअंगोपांग, वैक्रियअंगोपांग अने आहारक अंगोपांग. तेमां अंग आठ होय छे—छाती, शिर, पीठ, पेट जे हाथ अने जे पैर. चन्दना करवामां पांच अंग प्रशस्त मान्यां छे. जे पैर जे हाथ अने शिर-माथुं. अर्द्ध

पृष्ठम्, उदरं, करौ, पादौ च । वन्दने तु पञ्चाङ्गान्येव प्रशस्तानि— द्वौ चरणौ, द्वौ करौ, शिरश्चेति । तत्र चरणावित्यनेन जानुनी गृह्येते । एतानि पञ्चाङ्गानि भूमा-  
वारोप्य वन्दनं पञ्चाङ्गवन्दनम् । अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्,  
तत्र शिरोङ्गस्योपाङ्गानामानि— यथा— मस्तिष्क—कपाल—कृकाटिका—शङ्ख—ललाट—  
तालु—कपोल—हनु—चिबुक—दशनौ—षष्ठ—भ्रू—नयन—कर्ण—नासादीनि । तत्र मस्तिष्कं  
शिरोऽङ्गस्यारम्भकोऽवयवः ।

ननु मस्तिष्कं धातुविशेषो न त्वङ्गं नाप्युपाङ्गम् ? इति चेत्, उच्यते—कपाला-  
दिवत् शिरोऽङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरसोऽवगन्तव्यम् ।

स्थावरपञ्चके तूरःप्रभृतीन्यङ्गानि न सन्ति ।

पैरों का अभिप्राय घुटना समझना चाहिए । इन पांचों अङ्गों को भूमि पर टिका कर वन्दना  
करना पञ्चाङ्गवन्दना है । इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं । उन में से  
सिरअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं—मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख, ललाट, तालु, कपोल,  
हनु, दाडी, चिबुक (ठोड़ी) दांत, ओठ भौंह, नेत्र, कान, नाक, आदि । मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग  
का आरम्भक अवयव है ।

‘मस्तिष्क एक प्रकार की धातु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है’ इसका  
समाधान यह है कि—कपाल आदि के समान शिररूप अङ्गका आरम्भक होने के कारण  
मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग, ही है ।

पांच स्थावरों में छाती आदि अङ्ग नहीं होते ।

पुगनो अलिप्राय घुंठणुं समञ्जुं लोधये. आ पांच अंगाने भूमिपर अडाडीने वंदना  
करवी ते पांचांग वंदना छे. आ आठे अंगोभांथी प्रत्येक अंगनां अनेक उपांग छे.  
तेभांथी शिर-अंगना उपांग आ प्रमाणे छे—मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका (श्रीवानो  
उन्नत देश) शंख (कर्णसमीपतु अस्थि) ललाट, तालु, गाल, दाढी, चिबुक (हडपची  
वस्त्रेनो छाछर आडे) दांत, ओठ, लौड, नेत्र, कान, नाक आदि. मस्तिष्क शिररूप  
अंगतुं आरंभक अवयव छे.

‘मस्तिष्क अेक प्रकारनी धातु छे, अंग नथी अने प्रत्यंग पणु नथी’ तेनुं  
समाधान अे छे के—कपाल आदि प्रमाणे शिररूप अंगतुं आरंभक होवाना कारणे  
मस्तिष्क, शिरतुं उपांगण छे.

पांच स्थावरोंमां छाती आदि अंग नथी.



(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृह्यमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्म-  
प्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकाष्ठवत् परस्परमवियोगलक्षणं  
बन्धननाम । यदीदं न स्यात् ततो बालुकापुरुषवद् विघटितानि शरीराणि स्युः ।  
बन्धननाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डायःपिण्डवत् वद्धानामपि पुद्गलानां संघातविशेष-  
जनकं संघातनाम । यदि संघातनामरूपः कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोषिद्-  
गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात् । संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात् ।

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्म-  
प्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य पुद्गलों में लकड़  
और लकड़ी के समान परस्पर अवियोग होना बन्धननामकर्म है, अगर बन्धननामकर्म न  
होता तो बालू से बनाये हुए पुरुष के समान बिखर जाता । औदारिक आदि के भेद से  
बन्धन के भी पांच भेद हैं ।

[६] काष्ठपिंड, मृत्तिकापिंड या लोह के पिंड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक  
विशेष प्रकार का संघात (घनिष्टता) उत्पन्न करने वाला कर्म संघातनामकर्म कहलाता  
है, और संघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता,  
क्यों कि संघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं है । कार्य, कारण जैसा

(५) शरीरनामकर्मना उदयथी ग्रहणु करेला अथवा ग्रहणु करवाभां आवता  
आत्मप्रदेशोभां स्थित अने शरीरना आकारे परिणत करेला शरीरना योग्य पुद्गलोभां  
लाभ अने लाकडीना समान अवियोग होवुं ते बंधननामकर्म छे. अथवा बंधननाम  
कर्म न होत तो रेतीथी बनावेला पुरुषनी समान विघेराध जत. औदारिक आदिना  
बेदथी बंधनना पञ्च पांच बेद छे.

(६) काष्ठपिंड, मृत्तिकापिंड, अथवा लोहाना पिंड समान बद्ध पुद्गलोभां पञ्च  
अध विशेष प्रकारना संघात (घनिष्टता) उत्पन्न करवावाणा कर्म ते संघात-  
नामकर्म करेवाय छे अथवा संघातनामकर्म न होय तो पुरुष, स्त्री, गाय आदि  
रूपबेद शरीरभां होय नहि. कारणके संघात-विशेष उत्पन्न करवावाणा अन्य कर्मन नथी.

कारणानुरूपं हि कार्यं दृष्टम् । संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुषादिशरीरव्यपदेशी भवति । संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

[७] बध्यमानेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकार-विशेषो भवति तत् संस्थाननाम । एतच्च षड्विधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोधपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुब्जनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनामभेदात् ।

[८] संहनननाम-अस्थां बन्धविशेषः । तच्च षड्विधम्-(१) वज्रर्षभनाराचनाम, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्धनाराचनाम, (५) कीलिकानाम, (६) सेवार्तनाम च ।

ही होता है । संघात की भिन्नता के कारण ही शरीरों में स्त्री, पुरुष आदिका भेद-व्यवहार होता है । औदारिक आदि के भेद से संघात भी पांच प्रकार का है ।

[७] बांधे जाते हुए शरीरयोग्य पुद्गलों में जिस कर्म के उदय से आकृति-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं । संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुब्जक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान ।

[८] अस्थियों के बन्धविशेष को संहनननामकर्म कहते हैं । उसके छह भेद हैं—(१) वज्रर्षभनाराच-संहनन, (२) अर्धवज्रर्षभनाराच-संहनन, (३) नाराच-संहनन, (४) अर्धनाराच-संहनन, (५) कीलिका-संहनन और (६) सेवार्त-संहनन ।

कार्य, कारण जेवांज डोय छे. संघातनी भिन्नताना कारणेज शरीरोमां स्त्री, पुरुष आदिना भेद-व्यवहार डोय छे. औदारिक आदिना भेदथी संघात पांच प्रकारना छे.

(७) अंघाता शरीरयोग्य पुद्गलोमां जे कर्मना उदयथी आकृतिविशेष अने छे. तेने संस्थाननामकर्म कहे छे. संस्थान छ प्रकारना छे—(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुब्जक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान, (६) हुंडक-संस्थान.

(८) अस्थियोना अंधविशेषने संहनननामकर्म कहे छे. तेना छ भेद छे:- (१) वज्रर्षभनाराचसंहनन, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचसंहनन, (३) नाराचसंहनन, (४) अर्धनाराचसंहनन, (५) कीलिकासंहनन अने (६) सेवार्तसंहनन.

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्श-विशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम । स्पर्शनामाष्टधा-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-रूक्ष-शीतो-ष्णनामभेदात् ।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुरभेदात् । लवणो मधुरान्तर्गत इति केचित् ।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद् गन्धनाम । गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात् ।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम, तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात् । सर्वाणि चैतानि स्पर्शना-मादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति ।

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं । स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी, हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण ।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार का है-तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा और मीठा । किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है ।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्धनामकर्म कहते हैं । उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम ।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है, वह वर्णनामकर्म है । इस के पांच भेद हैं-कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सब, शरीरवर्तों पुद्गलों में ही परिणत होते हैं ।

(९) औदारिक आदि शरीरों में जो कर्मों का उदय हो कर कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न हो पाय है तेने स्पर्शनामकर्म कहते हैं । स्पर्शनामकर्मों का आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी, हलका, चिकना, रूखा, शीत और उष्ण ।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार के हैं-तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा और मीठा । किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है ।

(११) जो कर्मों का उदय हो कर शरीरों में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न हो पाय है तेने गन्धनामकर्म कहते हैं । उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम ।

(१२) जो कर्मों का उदय हो कर शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति हो पाय है ते वर्णनामकर्म कहते हैं । इसके पांच भेद हैं-कृष्ण, नीला, रक्ता, पीला और धावा । स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सब, शरीरवर्तों पुद्गलों में ही परिणत हो पाय हैं ।

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तत्तद्देशक्रमेण] तत्तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम । गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयाद-  
तिशयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-वारिवेगो  
बलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनु-  
पूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताव-  
त्कालिकी गतिः । सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च । तत्र यदा ऋज्व्या समय-

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि- गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे जलका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है । अथवा जैसे गाडीवान बैलको नाथ पकड कर अपनी ओर मोड लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोडकर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं । वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(१३) नरक आदि गतिमां जवावाणा एव जे के-अन्तर्गति (विग्रहगति)मां वर्तमान छे तेने ते नरक आदि गतिओनी तरङ्ग अबिमुख करीने आनुपूर्वीथी अर्थात् ते ते स्थानना कर्मथी ते ते गतिओमां पडोंयाडवामां जे कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनु-  
पूर्वी कर्म कडे छे. जे के आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कर्म, जेवे छे ते पशु गत्यन्तरमां जते एवने जे कर्मने उदय थवाथी ते गतिमां ते ते स्थानना कर्मथी जवुं होय छे, आटला माटे ते कर्मने आनुपूर्वी कडे छे. जेम पाणीने प्रवाह जणहीयाने पोतानी तरङ्ग जेथी ले छे, अथवा जेम गाडीवाणे जणहीयाने तेनी नाथ पकडीने पोतानी आणु मोडी ले छे तेज प्रमाणे आनुपूर्वीकर्म-एव जे गतिनुं कर्म बांध्युं छे ते गतिमां तेने पडोंयाडी हे छे माटे ते गतिमां पडोंयाडवाने माटे सहायक छे.

ज्यां सुधी मनुष्य पोतानी मनुष्यगतिने भूझीने नरक आदि भील गतिमां नथी पडोंये। त्यां सुधीनी अर्थात् वयदी गतिने अन्तर्गति-विग्रहगति कडे छे. ते जे प्रकारनी होय छे:-सरल अने वक्र. एव ज्यारे जेकसमयप्रमाणवाणी सरल (सीधी) गतिथी

પ્રમાણયા ગચ્છતિ, તદાઽઽયુષ્યકર્મણૈવાત્પત્તિસ્થાનં પ્રાપ્નોતિ । તત્રાનુપુર્વીનામ્નઃ કશ્ચિદુપયોગો ન ભવતિ । વક્રગત્યા પુનઃ પ્રવૃત્તઃ કૂર્પર- (વક્રાકારરથાવયવ)-લાઙ્ગલ-ગોમૂત્રિકાલક્ષણયા દ્વિત્રિચતુઃસમયમાનયા વક્રારમ્ભકાલે પુરસ્કૃત-માયુરાદત્તે, તદૈવ ચાનુપૂર્વીનામાપ્યુદેતિ ।

નનુ ચ યથૈવ ઋજ્વ્યાં ગતૌ વિનાઽઽનુપૂર્વીનામકર્મણા ગતિં પ્રાપ્નોતિ, તદ્વદ્ વક્રગત્યામપિ કસ્માન્ન ? ઇતિ ચેત્, ઉચ્યતે-ઋજ્વ્યાં-પૂર્વાયુષ્કર્મવ્યાપારેણૈવ ગચ્છતિ, યત્ર તત્ પૂર્વાયુષ્કર્મ ક્ષીણં, તત્ર તસ્યાધ્વયષ્ટિસ્થાનીયસ્યાનુપૂર્વીનામકર્મણ ઉદયો ભવતિ ।

ગતિ સે જાતા હૈ તવ આયુ કર્મ કે દ્વારા હી ઉત્પત્તિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ, વહાં આનુપૂર્વીનામકર્મ કા કોઈ ઉપયોગ નહીં હોતા । જવ જીવ કૂર્પર (રથ કા ટેઠા અવયવ) હલ યા ગોમૂત્રિકા સરીઁલી ઓર દો તીન યા ચાર સમયવાલી વક્ર ગતિ સે જાતા હૈ તવ મોડકે આરમ્ભ-સમય મેં આગે કી આયુ ગ્રહણ કરતા હૈ, ઁસી સમય આનુપૂર્વી કર્મકા ઉદય હોતા હૈ ।

શઙ્કા-જૈસે સરલગતિ મેં આનુપૂર્વીકર્મ કે વિના હી ગતિ પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર વક્ર ગતિ મેં હી ક્યો નહીં ગતિ કરતા ? ।

સમાધાન-સરલ ગતિ મેં પહેલે કે આયુકર્મ કે વ્યાપાર સે હી જીવ ગતિ કરતા હૈ । જહાં વહ આયુ ક્ષીણ હો જાતી હૈ વહાં માર્ગયષ્ટિ કે સમાન આનુપૂર્વીનામકર્મ કા ઉદય હોતા હૈ ।

નય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પત્તિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે. ત્યાં આનુપૂર્વી નામકર્મનો કાંઈ ઉપયોગ થતો નથી જ્યારે જીવ કૂર્પર (રથનો વાંકો એક ભાગ) હલ અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને જો, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી નય છે ત્યારે વળવાના આરંભ સમયમાં આગળની આયુ ગ્રહણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી કર્મનો ઉદય થાય છે.

શંકા-જેમ સરલગતિમાં આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે પ્રમાણે વક્રગતિમાં ગતિ શા માટે કરતા નથી ?

સમાધાન-સરલગતિમાં પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે. ત્યાં તે આયુ ક્ષીણ થઈ નય છે ત્યાં માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી નામકર્મનો ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्-नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च ।

(१४) लब्धि-शिक्षर्द्धि-प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति रित्युच्यते न तु केवलमाकाशगमनरूपेति । सा द्विधा-शुभा-शुभभेदात् । तत्र-हंस गज-वृषादीनां शुभा । उष्ट्रशृगालादीनाम् अशुभा । तत्र-लब्धिर्देवादीनां देवत्वोत्पत्त्यविनाभाविनी । शिक्षया ऋद्धिः, शिक्षर्द्धिः, लब्ध्या शिक्षर्द्ध्या च तपस्विनां, शिक्षर्द्ध्या प्रवचनमधीयानानां विद्याद्यावर्तनप्रभावाद् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है-नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लब्धि एवं शिक्षाऋद्धिकारणक, आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है । वह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलाती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप । इस के दो भेद है-शुभ और अशुभ । हंस, गज, वृषभ आदि की गति के समान शुभविहायोगति है और ऊंट सियार आदि की गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लब्धि देवों को प्राप्त होती है । शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋद्धि शिक्षा-ऋद्धि कहलाती है । लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रवचन का अध्ययन करने वालों का विद्या आदि के आवर्तन के प्रभाव से या शिक्षाऋद्धि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकारनां छे-नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, अने देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करवावाणुं कर्म विहायोगतिनामकर्म कह्लेवाय छे । सामान्य गमनरूप गति यणु विहायोगति कह्लेवाय छे इकत आकाशगमनरूप गति नही । तेना जे लेह छे-शुभ अने अशुभ । हंस, हाथी, भण्ड वीगेरेनी गति समान शुभविहायोगति छे । अने उंट, शियाल वगेरेनी गति अनुसार अशुभविहायोगति छे । देवना रूपमां उत्पन्न होवाना साथे उत्पन्न थवावाणी लब्धि देवाने प्राप्त थाय छे । शिक्षाथी प्राप्त थवावाणी ऋद्धि शिक्षाऋद्धि कह्लेवाय छे । लब्धि एवं शिक्षाऋद्धिथी तपस्वियो आकाशगमन करे छे । प्रवचननुं अध्ययन करवावाणाना विद्या आदिना आवर्तनना प्रभावथी अथवा शिक्षाऋद्धिथी जे आकाशगमन थाय छे ते विहायोगति छे ।

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्—उच्चनीचभेदात् । तत्र उच्चगोत्रं—देश—जाति—कुल—स्थान—मान—सत्कारै—श्र्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश—चाण्डालादिजातिदास्य—निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्—दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशतं (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तषड्जीवनिकायानां यथार्थ—

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त षड्जीवनिकाय के वास्तविक

(७) गोत्रकर्म के प्रकार—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र की देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न था है । नीच गोत्र के नीचे विपरीत है । नीचे अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता के उत्पन्न था है ।

अन्तरायकर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

आ प्रमाणों के योग करने पर आठ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों के अड़तालीस (१४८) था है ।

कर्मक्षय का विचार—

ज्ञान और क्रिया की कर्मों का क्षय था है । पूर्वोक्त षड्जीवनिकाय के वास्तविक

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अवबोधो ज्ञानम् । गुप्तिसमितिसमाराधनपूर्वकं शास्त्रविधिना तपःसंयमाचरणं क्रिया ।

अष्टकर्मणां भस्मसात्कारकं तपः । तस्यानशनादयो द्वादश भेदाः । सावद्य क्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवद्यक्रियासु प्रवृत्तिः संयमः । तस्य पृथिवीकाय-संयमादयः सप्तदश भेदाः ।

उक्तषड्जीवनिकायस्वरूपं सम्यग् विज्ञाय संयमपूर्वकतपश्चरणेनाभिनवकर्म-प्रवेशाभावः, पूर्वेपचितकर्मपरिक्षयश्च भवति । तत्रैवं क्रमः—

अष्टमगुणस्थानादात्मा क्षपकश्रेणिं समारोहति । असौ क्षपको नवमं दशमं गुणस्थानं समारूढ्य द्वादशं गुणस्थानमारोहति । तत्र शुक्लध्यानस्य द्वितीय-

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध-ज्ञान कहलाता है । गुप्ति समिति का आराधन करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करना क्रिया है ।

आठ कर्मों का भस्म करना तप है । तप के अनशन आदि बारह भेद है । सावद्य क्रियाओं का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति करना संयम है । पृथ्वीकायसंयम आदि के भेद से वह सत्तरह (१७) प्रकार का है ।

उक्त षड्जीवनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर, संयमपूर्वक तप का आचरण करने से नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और पहले के संचित कर्मों का क्षय होता है । कर्मक्षय का क्रम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होता है । यह क्षपक आत्मा नौवें दशवें गुणस्थानों पर आरूढ हो कर बाहरवें गुणस्थान पर पहुंचता है ।

स्वइयने। विस्तारपूर्वक अथवा संक्षिप्त बोध ते ज्ञान कडेवाय छे. गुप्ति, समितिनी आराधना करतां शास्त्रोक्त विधि प्रमाणे तप अने संयमनु आराधन करवुं ते क्रिया छे. आठ कर्मोंने आणी नांभवा ते तप छे. तपना अनशन आदि आर लेद छे. सावद्य क्रियाओंने सम्यक् प्रकारे परित्याग करीने निरवद्य क्रियाओंमां प्रवृत्ति करवी ते संयम छे. पृथ्वीकायसंयम आदिना लेदधी ते सत्तर (१७) प्रकारने छे. आगण कडेला षड्जीवनिकायना स्वइयने सारी रीते नष्टीने संयमपूर्वक तपनुं आचरण करवाथी नवीन कर्मोंनुं आववुं रोकाई नय छे, अने पडेलांना संचित कर्मोंने क्षय थाय छे. कर्मक्षयने कर्म अे छे— आत्मा आठमां गुणस्थानथी क्षपकश्रेणीपर आरूढ थाय छे. आ क्षपक आत्मा नवमां, दसमा गुणस्थाने पर आरूढ थईने आरमा गुणस्थान पर नई पडेांये छे.



पादे प्रथमं मोहनीयं कर्म क्षपयति । तदनु ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीया-अन्तराय-कर्माणि युगपदेव क्षपयित्वा द्वादशगुणस्थानान्ते त्रयोदशगुणस्थानादौ सर्वद्रव्य-पर्यायविषयं पारमैश्वर्यमनन्तं केवलं ज्ञानदर्शनं प्राप्य शुद्धो बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शी जिनः केवली भवति । ततः सयोगिकेवली प्रतनु-शुभ-चतुष्कर्मावशेषः, आयुः-कर्मसंस्कारवशाद् भव्यजनबोधनाय भूमण्डले विहरति, विविधं कर्मरजो भव्यानां हरति च ।

असौ तत्पश्चाद् अयोगिकेवली भूत्वा चतुर्दशगुणस्थाने-आयुष्यकर्मपरिसमाप्तौ सत्यां, वेदनीय-नाम-गोत्रकर्माणि क्षपयति । एवं मूलप्रकृतिवाच्यमष्टविधं ज्ञाना-वरणीयादिसकलकर्म क्षीयते ।

वहाँ शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाये में सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय करता है । तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को एक ही साथ क्षय करके चारहवें गुणस्थान के अन्त में और तेरहवे गुणस्थान की आदि में समस्त द्रव्य पर्याय को विषय करने वाला परम ऐश्वर्य को प्राप्त होने योग्य अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली हो जाता है । फिर वह सयोगी केवली चार हल्के अघातिया कर्म शेष रहने पर आयुर्कर्म के संस्कार वश हो कर भव्य जीवों को बोध देने के लिए भूमण्डल में विहार करते हैं ।

तत्पश्चात् अयोगी केवली हो कर चौदहवें गुणस्थान में आयुर्कर्म की समाप्ति होने पर वेदनीय नाम आयु गोत्र कर्मों का क्षय करते हैं । इस प्रकार मूलप्रकृति कहलाने वाले आठों ही कर्मों का क्षय हो जाता है ।

त्यां शुक्ल ध्यानना पीला पायामां सर्वप्रथम मोहनीय कर्मना क्षय करे छे. ते पछी ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अन्तराय कर्मना ओकी साथे क्षय करीने, आरमा शुष्-स्थानना अंतमां अने तेरमा शुष्स्थाननी आदिमां समस्त द्रव्य-पर्यायने विषय करवावाणा परम ऐश्वर्यने प्राप्त थवा योग्य अनन्त केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त करीने शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन अने केवली थई जाय छे पछी ते सयोगी केवली या उलकां अघातियां कर्म जाकी रहैवा पर आयुर्कर्मना संस्कारवश थईने लव्यश्रवणे जोध आपवा भाटे पृथ्वीमां विहार करे छे.

ते पछी अयोगी केवली थईने चौदहां शुष्स्थानमां आयुर्कर्मनी समाप्ति थया पछी वेदनीय, नाम अने गोत्रकर्मना क्षय करे छे. या प्रमाणे मूलप्रकृति उलैवाता आठ कर्मना क्षय थई जाय छे.

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साधन-  
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षय-  
लक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थविषयकतया बलवत्तरत्वेन मिथ्याज्ञानं  
निवर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते ।  
कारणाभावे कार्यस्यानुत्पादात् । रागाद्यभावे च तत्फलभूता मनोवाक्काय-  
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरब्धकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशों से समस्त कर्मों के हटजाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा  
सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । अत एव सिद्ध  
हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थ को विषय करता  
है, अतः वह बलवान् है, और बलवान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।  
मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं  
होती; क्योंकि कारण के अभाव में काय उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि  
का अभाव होने पर उस से होने वाली मन, वचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।  
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । जिन का कार्य

आत्मप्रदेशोत्थी समस्त कर्मों हूर तथा पथी उर्ध्वगतिशील होवाना कारणे  
आत्मा सादि-अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त करे  
छे. अटले अे सिद्ध थयु के ज्ञान अने क्रियाथी सकल कर्मोंना क्षयरूप मोक्षने  
प्राप्त थाय छे.

केटलाक भाणुसोनु कडेवुं अे छे के:-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थने विषय करे  
छे, अे कारणथी ते अणवान छे. अने अणवान होवाना कारणे मिथ्याज्ञानने हूर करे छे  
मिथ्याज्ञान न्यारे हूर थर्ष जय छे, तो तेना कारणे उत्पन्न थवावाणा राग-आदिनी  
उत्पत्ति थती नथी; केमके कारणेना अलावमां कार्य उत्पन्न थतुं नथी. आ प्रकारे-रागादिने  
अलाव थवाथी तेनाथी थवा वाणी मन, वचन अने कायानी प्रवृत्ति अटकी जय छे.  
प्रवृत्तिना अटकावथी पुण्यकर्म अने पाप कर्मनी उत्पत्ति थती नथी. नेतुं कार्य आरंभ

पुण्यपापकर्मणोरुपभोगादेव प्रक्षयो भवति; सञ्चितरूपयोस्तु पुण्यपापकर्मणोस्तत्त्व-  
ज्ञानादेव प्रक्षयः । एवं कर्मक्षयो भवति । उक्तञ्च—

“ ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा ” । इति । तथा “ नाभुक्तं  
क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि ” इति च ।

केचिच्च—संचितकर्मणामपि प्रक्षयो भोगादेव भावतीत्युक्तं तत्रानुमानं  
प्रमाणं च प्रदर्शितम् । तथाहि—पूर्वकर्माण्युपभोगादेव क्षीयन्ते, कर्मत्वात् । यत् यत्  
कर्म तत् तत् उपभोगादेव क्षीयते, यथा—आरब्धशरीरं कर्म, तथा चैतत् कर्म, तस्मा-  
दुपभोगादेव क्षीयते ।

न चोपभोगात् कर्मप्रक्षयस्वीकारे कर्मान्तरस्यावश्यम्भावात् संसारानुच्छेदः  
इति वाच्यम्,

आरम्भ हो चुका है, ऐसे पाप—पुण्य का, उपभोग से क्षय होता है और सञ्चित पुण्य—पाप  
का, तत्त्वज्ञान से । इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है । कहा भी है—

“ ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर डालती है ” । तथा—“ करोड़ों सैकड़ों  
कल्पों में भी कर्म का भोगे विना क्षय नहीं होता ” ।

किसी का कहना है कि—संचित कर्मों का क्षय भी भोग से ही हो जाता है । इस  
विषय में अनुमान प्रमाण भी दिया गया है । वह इस प्रकार है—पूर्वसंचित कर्म उपभोग  
से ही क्षीण होता है, क्यों कि वह कर्म है । जो जो कर्म होता है वह वह उपभोग से ही  
क्षीण होता है, जैसे आरब्ध शरीरकर्म । संचितकर्म भी कर्म है अतः वे भी उपभोग से ही  
क्षीण होते हैं ।

उपभोग से कर्मों का क्षय स्वीकार किया जाय तो नवीन कर्मों की उत्पत्ति अवश्य  
होगी और फलतः जन्म—मरण का कभी नाश नहीं होगा । ऐसी आशङ्का करना  
उचित नहीं है ।

धर्ध दूधयु छे, अेवा पाप—पुण्यने। उपलोगथी क्षय छे, अने संचित पुण्य—पापने।  
तत्त्वज्ञानथी क्षय थाय छे. आ प्रकारे समस्त कर्मोने। क्षय धर्ध नय छे. इहुं पण्य  
छे के:—“ ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मोने आणी नांणे छे. ” तथा “ करोडो सैकडो  
कल्पोमां पण्य कर्म लोगव्या विना क्षय थता नथी. ”

केटलाड कडे छे के—संचित कर्मोने। क्षय पण्य लोगथीन थर्ध नय छे. आ  
विषयमां अनुमान प्रमाण पण्य आपवामां आव्युं छे ते आ प्रमाणे छे—पूर्वसं-  
चितकर्म उपलोगथीन क्षीण थाय छे, कारणे के ते कर्म छे, ने ने कर्म डाय छे ते  
ते उपलोगथीन क्षीण थाय छे, नेवी रीते आरब्ध शरीरकर्म संचित कर्म पण्य कर्म  
छे, अे कारणेथी ते पण्य उपलोगथी न क्षीण थाय छे.

उपलोगथी कर्मोने। क्षय स्वीकार करवामां आवे तो, नवीन कर्मोनी उत्पत्ति अवश्य  
थये अने फलतः जन्म मरणेने क्यारेय नाश नहि थाय, आवी शंका करवी ते उचित नथी.

समाधिबलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य जनस्य कर्मज्ञानसामर्थ्यात्तदुपभोगार्थमशेष-  
शरीरमुत्पाद्याशेषभोगादेव पूर्वकर्मक्षयः, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावा-  
त्तज्जनितसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपभोगादेव  
सकलकर्मक्षयस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ।

न च पुण्यपापकर्मणोर्जन्मान्तरशरीरोत्पादने सहकारि कारणं मिथ्या-  
ज्ञानजनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मणी न  
जन्मान्तरशरीराण्युत्पादयतः, अतस्तेषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति  
वाच्यम् ।

समाधि के बल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का  
उपभोग करने के लिए अशेष शरीर उत्पन्न करके अशेष भोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो  
जाता है । उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने  
वाला संस्कार भी नहीं होता । इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती । ऐसी  
स्थिति में उपभोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में लेशमात्र भी दोष नहीं है ।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार जन्मान्तर के शरीर की उत्पत्ति में  
सहकारी कारण होता है । वह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता । उस का अभाव हो  
जाने पर, पुण्य-पाप कर्म भले ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते ।  
अत एव उन में कर्म का सद्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती । यह सब कथन  
सत्य नहीं है ।

समाधिना भज्यते उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाणा पुरुषानां कर्मज्ञानानां सामर्थ्यात्  
कर्मिणो उपभोग करवा भाटे अशेष शरीर उत्पन्न करीने अशेष भोगार्थिण पूर्वकर्मिणो  
क्षय थर्ध्नाय छे. ते तत्त्वज्ञानी पुरुषां मिथ्याज्ञान नथी अने मिथ्याज्ञानथी उत्पन्न  
थवावाणा संस्कार पणु नथी. आ कारणुथी नवीन कर्मिणी उत्पत्ति पणु थती नथी. अेवी  
स्थितिमां उपभोगार्थिण समस्त कर्मिणो क्षय मानी देवामां देश मात्र पणु दोष नथी.

मिथ्याज्ञानथी उत्पन्न थवावाणा संस्कार जन्मान्तरना शरीरनी उत्पत्तिमां  
सहकारी कारणु थाय छे. ते संस्कार तत्त्वज्ञानीमां रडेता नथी. तेनो अभाव थर्ध्  
नवाथी, पुण्य-पापकर्म लदेने विद्यमान रडे. परन्तु ते शरीर उत्पन्न करी शकतां  
नथी, अेटला भाटे तेमां कर्मिणो सद्भाव होवा छतांय पणु कोर्ध प्रकारे हानि थती  
नथी. आ सर्व कथन सायां नथी.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत ।  
 तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि  
 तयोर्नित्यत्वप्रसङ्गः । किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्व-  
 ज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत ? इति वदन्ति ।  
 अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचित-  
 योश्च तयोः प्रक्षयस्तच्चज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम् । तथाहि—उपभोगात्  
 कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽभिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो  
 जायगा । वह इस प्रकार—पुण्य—पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार  
 की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है । दूसरी बात यह  
 है कि—आगामी काल में पुण्य—पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए,  
 प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य—नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार  
 संगत होगा । ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मों का उपभोग से क्षय होता है और  
 संचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है । उपभोग से कर्मों का  
 क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

सौधी प्रथम महान् हानि तो ऐं छे डे जन्य पदार्थ (कार्य) पक्षु नित्य  
 थर्ध न्शे. ते आ प्रभाहे—पुण्यपापरूप कर्मोना इणने उत्पन्न न करतां नित्यतानो  
 स्वीकार करवाभां आव्ये छे. ते कार्यरूप होवा छतांय पक्षु तेभां नित्यतानो प्रसंग  
 आवे छे. भीछ वात ऐ छे डे—आगामी कालभां पुण्यपापनी उत्पत्ति नहि  
 स्वीकारवाधी तत्त्वजानीओ भाटे प्रत्यवाय (दोष)नो परिहार करवा भाटे नित्य-  
 नैमित्तिक अनुष्ठान करवुं ते डेवी रीते संगत थशे आ प्रभाहे तेभनु कथन छे.

तेना पर विचार करवाभां आवे छे:—

कार्यरूपभां परिणत पुण्य अने पाप कर्मोना उपभोगधी क्षय थाय छे. अने  
 संचित कर्मोना तत्त्वजानधी. इत्यादि कथन पक्षु संगत नधी. उपभोगधी कर्मोना क्षय  
 मानवाधी, कर्मोना उपभोग करवा अभये इच्छापूर्वक मन, वचन अने कायानो व्यापार

संभवात् पुनः प्रचुरतरपुण्यपापकर्मसद्भावे कथमात्यन्तिकः कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु चारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संचितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं संभाव्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपचारित्रसहयोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्भवति । तद्वत् संचित-कर्मक्षयोऽपि चारित्रसहकृतसम्यग्ज्ञानादेव भवति । यथौषधं ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्सेवनादिक्रियापरिणत्यैव, तद्वत् चारित्रसहितसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म संचित हो जाएँगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अकेला सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ, चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप चारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संचित कर्मों का क्षय भी चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे-औषधि ज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

थशे, अने ते व्यापार नवीन कर्मबंधनु कारणु छे, अे भाटे इरी धणांनु पुण्य-पाप कर्म संचित थर्धु नशे. अेवी दशाभां आत्यन्तिक कर्मक्षय डेवी रीते थशे ?

अेकतुं सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मोनी उत्पत्तिने रोकवाभां समर्थ नथी. -डा. चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मोना क्षयभां अने आगामी कर्मोनी उत्पत्ति रोकवाभां समर्थ थर्धु शके छे. सम्यग्ज्ञानथी मिथ्याज्ञाननी निवृत्ति थाय छे. पछी राग-द्वेष वगेरेने अभाव थर्धु नवाथी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप चारित्रनी सहायताथी नवीन कर्मोनी उत्पत्ति अटके छे. अे प्रमाणे संचित कर्मोनी क्षय पणु चारित्रथी युक्त सम्यग्ज्ञानथीन थाय छे. नेवी रीते औषधना ज्ञानमात्रथी अथवा औषधनुं नाम देवाथी व्याधि दूर थती नथी, परन्तु सेवन करवाथी न दूर थाय छे. ते प्रमाणे चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानथीन कर्मोनी क्षय थाय छे.

યથા—ઉષ્ણસ્પર્શસ્યાગામિશીતસ્પર્શાનુત્પાદનસામર્થ્યં પૂર્વકાલિકશીતત્પર્શધ્વં-  
સેડપિ ચ સામર્થ્યં લોકે દૃષ્ટમ્, તદ્વચારિત્રસહિતસમ્યગ્જ્ઞાનસ્યાપિ સકલ-  
કર્મક્ષયસામર્થ્યં ભવતિ ।

इदमत्रावधेयम्—सम्यग्ज्ञानं तदेवास्ति, यत् खलु परिणामिजीवाजीवादिवि-  
षयकम्, न त्वेकान्ततोऽपरिणामिकूटस्थनित्यात्मादिविषयकम्, तस्य विपरीतार्थविषय-  
कतया मिथ्यात्वरूपत्वात् । यदि पुनः संवररूपचारित्रसहितसम्यग्ज्ञानस्याग्निरूपत्वं  
स्वीकृत्य निःशेषकर्मक्षयसामर्थ्यमङ्गीक्रियते, “यथैधांसि समिद्रोऽग्निः” इत्यादि-  
वचनेन तर्हि मन्मतसिद्ध एवार्थस्तेन साधित इति ।

जैसे उष्ण स्पर्श, आगामी शीतस्पर्श की उत्पत्ति को रोकता है और पूर्व कालीन शीतस्पर्श का नाश करने में भी समर्थ होता है, यह वात लोक में देखी जाती है । उसी प्रकार चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान भी समस्त कर्मों के क्षय में समर्थ होता है ।

સારાંશ યહ હૈ કિ—સમ્યગ્જ્ઞાન વહી હૈ જો જીવ—અજીવ આદિ કો પરિણામી જાનતા હૈ । આત્મા આદિ કો એકાન્તઅપરિણામી, કૂટસ્થ નિત્ય સમજાને વાલા જ્ઞાન સમ્યગ્જ્ઞાન નહીં હૈ । યહ જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુ કા વોધક હોને સે મિથ્યા હૈ । હાँ, અગર સંવરરૂપ ચારિત્ર સે યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાન કો અગ્નિ કે સમાન માન કર ઉસકો સવ કર્મોં કે ક્ષય કા કારણ માનતે હો, જૈસા કિ કહા હૈ— “વઢી હુઈ અગ્નિ ઇન્ધન કો ભસ્મ કરતી હૈ” યહ તો હમારં હી મત કા સમર્થન કિયા ગયા હૈ, અર્થાત્ યહ કથન હમંં મી ઇષ્ટ હી હૈ ।

જેવી રીતે ઉષ્ણસ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શની ઉત્પત્તિને રોકે છે, અને પૂર્વ કાલીન શીતસ્પર્શનો નાશ કરવામાં પણ સમર્થ થાય છે. આ વાત લોકમાં જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન પણ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય માટે સમર્થ થાય છે.

સારાંશ એ છે કે:—સમ્યગ્જ્ઞાન તેજ છે કે જે—જીવ—અજીવ આદિને પરિણામી બને છે. આત્મા આદિને એકાન્ત અપરિણામી, કૂટસ્થ, નિત્ય સમજવાવાળું જ્ઞાન તે સમ્યગ્જ્ઞાન નથી. તે જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુનું બોધક હોવાથી મિથ્યા છે. હા. અગર સંવરરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનને અગ્નિસમાન માનીને તેને સર્વ કર્મોના ક્ષયનું કારણ માનો છે; જેવી રીતે કહ્યું છે કે:—“જેમ વધેલી અગ્નિ લાકડાંને બાળી નાંખે છે.” એ તો અમારાજ મતનું સમર્થન કર્યું છે, અર્થાત્ તે કથન તો અમારે પણ ઇષ્ટ છે.

इति संक्षेपतः कर्मवादिप्रकरणं वर्णितम् । विस्तरतस्तु यथाशास्त्र-  
मवगन्तव्यम् ।

॥ अथ क्रियावादिप्रकरणम् ॥

यः पुनरेवं कर्मबन्धवेदी भव्यः कर्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव कर्मवादी  
वस्तुतः क्रियावादीत्याह—‘क्रियावादी’ इति । करणं क्रिया । क्रियते जीवेन इति  
वा क्रिया । कर्मबन्धनिबन्धना चेष्टा । एषा मनोवाक्कायसम्बन्धिनी यथासंभवं  
योग उच्यते । अथवा—युनक्ति जीवो यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं  
पर्यायं स योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं मनोयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं  
मनोयोगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं वाक्संयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं

इस प्रकार संक्षेप में कर्मवादी के प्रकरण का वर्णन किया गया है । अधिक विवरण  
शास्त्रों से समझ लेना चाहिए ।

### क्रियावादी का प्रकरण ।

जो भव्य जीव इस प्रकार कर्मबन्ध का ज्ञाता है, और कर्म के स्वरूप का निरूपण  
करने वाला है वही कर्मवादी सच्चा क्रियावादी है ।

करना क्रिया है । अथवा जीव के द्वारा जो की जाय वह क्रिया है । कर्मबन्ध  
का कारण चेष्टा क्रिया है । मन, वचन, काय सम्बन्धी यह क्रिया यथासम्भव योग  
कहलाती है । अथवा जिस के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जनित  
पर्याय से युक्त बनता है, उसको योग कहते हैं । वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित  
मन-युक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन मनोयोग कहलाता है । वीर्यान्तराय  
के क्षयोपशम से जनित, वचनयुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन वचनयोग

આ પ્રમાણે સંક્ષેપમાં કર્મવાદીના પ્રકરણનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અધિક  
વિવરણ શાસ્ત્રોથી સમજ લેવું જોઈએ.

### ક્રિયાવાદીનું પ્રકરણ.

જે ભવ્ય જીવ આ પ્રમાણે કર્મબંધના જ્ઞાતા છે, અને કર્મના સ્વરૂપનું નિરૂપણ  
કરવાવાળા છે; તેજ કર્મવાદી સાચા ક્રિયાવાદી છે.

કરવું તે ક્રિયા છે, અથવા જીવ દ્વારા જે કરવામાં આવે તે ક્રિયા છે. કર્મબંધનું  
કારણ ચેષ્ટા, ક્રિયા છે. મન, વચન, કાયા સંબંધી એ ક્રિયા યથાસંભવ યોગ કહેવાય છે.  
અથવા જેના દ્વારા જીવ વીર્યાન્તરાય-કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન પર્યાયયુક્ત બને  
છે, તેને યોગ કહે છે. વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન, મનયુક્ત આત્મ-  
પ્રદેશોમાં રહેલા વીર્યના પરિણમન તે મનોયોગ કહેવાય છે વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી



વાગ્યોગઃ । વીર્યાન્તરાયક્ષયોપશમજનિતં કાયયુક્તાત્મપ્રદેશગતવીર્યપરિણમનં  
કાયયોગઃ । સા ચ ક્રિયા સકલકર્મવન્ધસ્ય કારણમ્, અતઃ કર્મવાદી મન્યઃ  
ક્રિયાં સકલકર્મકારણસ્વરૂપતયાઽઽત્મપરિણતિરૂપત્વેન ચ વિજાનાતિ, તસ્માત્  
સકલકર્મવન્ધકારણમાત્મપરિણતિરૂપા ચ ક્રિયેતિ વેદિતા, ક્રિયાવાદી-ક્રિયાસ્વરૂપ-  
કથનસ્વભાવો વેદિતવ્ય ઇત્યર્થઃ ।

ક્રિયા કર્મણઃ કારણમિતિ ભગવતા ભગવતીસૂત્રે નિગદિતમ્, તથાહિ—

“મંડિઅપુત્તા ! જાવં ચ ણં સે જીવે સયા સમિયં ઇયઢ, વેયઢ, ચલઢ, ફંદઢ, ઘટ્ટઢ, યુન્મઢ, ઉદીરઢ, તં તં ભાવં પરિણમઢ, તાવં ચ ણં સે જીવે આરંભઢ સારંભઢ સમારંભઢ, આરંભે વટ્ટઢ સારંભે વટ્ટઢ, સમારંભે વટ્ટઢ, આરંભમાણે સારંભમાણે સમારંભમાણે આરંભે વટ્ટમાણે સારંભે વટ્ટમાણે સમારંભે વટ્ટમાણે વહૂણં પાણાણં મૂયાણં જીવાણં સત્તાણં ઢુક્વાવણયાઇ, સોયાવણયાઇ, ઝૂરાવણયાઇ, તિપ્પાવણયાઇ, પરિયાવણયાઇ વટ્ટઢ, સે તેણઢેણં મંડિઅપુત્તા ! ઇવં વુચ્છઢ-જાવં ચ ણં સે જીવે સયા સમિયં ઇયઢ જાવ પરિણમઢ, તાવં ચ ણં તસ્સ જીવસ્સ અંતે અંતકિરિયા ન મવઢ” (ભગવતી. ૩. શત. ૩૭.)

કહલાતા હૈ । વીર્યાન્તરાય કે ક્ષયોપશમ સે જનિત, કાયયુક્ત આત્મપ્રદેશો મેં રહે હુઇ વીર્ય કા પરિણમન કાયયોગ કહલાતા હૈ । યહ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધ કા કારણ હૈ, ઇસ લિઇ મન્ય પુરુષ ક્રિયા કો સવ કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ સમજ્ઞતા હૈ, અતઃ “ક્રિયા, સમસ્ત કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ હૈ” ઇસ પ્રકાર જાનને વાલેકો ક્રિયાવાદિક્રિયા કે સ્વરૂપ કા કથન કરને વાલા સમજ્ઞના ઇાહિઇ ।

ક્રિયા, કર્મ કા કારણ હૈ, યહ વાત મગવાન્ ને મગવતીસૂત્ર મેં કહી હૈ, વહ ઇસ પ્રકારઃ—

ઉત્પન્ન, વચન-ચુક્ત આત્મપ્રદેશોમાં રહેલા વીર્યના પરિણમન કાયયોગ કહેવાય છે. આ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધનું કારણ છે. એટલા માટે મન્ય પુરુષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોંનું કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ સમજે છે. તે કારણથી “ક્રિયા સમસ્ત કર્મોંનું કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ છે.” આ પ્રમાણે જણાવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના સ્વરૂપનું કથન કરવા વાળા સમજવા નોઈએ.

ક્રિયા એ કર્મોંનું કારણ છે, એ વાત લગવાને ભગવતીસૂત્રમાં કહી છે, તે આ પ્રમાણે છે—

छाया-मण्डितपुत्र ! यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते व्यजते चलति स्पन्दते घट्टते क्षुभ्यति उदीरयते तं तं भावं परिणमति, तावच्च खलु स जीव आरभते संरभते समारभते, आरम्भे वर्तते संरम्भे वर्तते समारम्भे वर्तते, आरभमाणः, संरभमाणः समारभमाणः । आरम्भे वर्तमानः, संरम्भे वर्तमानः समारम्भे वर्तमानो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःस्वापनतया शोचापनतया झूरापनतया तेषापनतया पिष्टापनतया परितापनतया वर्तते तत् तेनार्थेन मण्डितपुत्र ! एवम् उच्यते-यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते यावत् परिणमति, तावच्च खलु तस्य जीवस्य अन्ते अन्तक्रिया न भवति ।

भावार्थः—

मनोवाक्काययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-स्थानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिक्षोभण-बलात्कारपूर्वकप्रेरणो-त्क्षेपणा-पक्षेपणा-ऽऽकुञ्चन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-द्रवकरणेन वा, विनाशसंकल्पनेन वा, परितापनेन वा, मरणलक्षणदुःख-प्रापणया वा, प्रियवियोगादिदुःखप्रापणया वा, शोकप्रापणया वा, शोकाधिक्यजन्य-

“मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन, विविध कम्पन; एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किञ्चित् चलना, सब दिशाओं में गमन करना, पृथ्वी आदि को क्षुब्ध करना, बलात्कार से प्रेरित करना, ऊपर उठाना, नीचे करना, सिकोडना, फैलाना, इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है । इस परिणाम के कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, घातका संकल्प करने से, परिताप पहुँचाने से, मृत्युरूप दुःख पहुँचाने से, इष्टवियोग आदि का कष्ट पहुँचाने से, शोक

मन, वचन अने काययोगशी सहित जिव सहाय क्रियारूप परिणतिथी कम्पन, विविध कम्पन, एक स्थानथी धीन स्थानपर गमन, किञ्चित् चालवुं, सर्व दिशाओमां गमन करवुं, पृथ्वी आदिने क्षुब्ध करवुं, बलात्कारथी प्रेरित करवुं, उपर उठावुं, नीचे करवुं, सिकोड्यावुं, फैलावुं, इत्यादि परिणामेने प्राप्त थाय छे. आ परिणामना कारणे जिवने पृथ्वीकाय आदिना जिवेने उपद्रव करवाथी, घातना संकल्प करवाथी, परिताप पहुँचाववाथी, मृत्युरूप दुःख पहुँचाववाथी, शोकनी अधिकताथी थवावाणी शरीरनी

शरीरजीर्णताप्रापणया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ग्लानिजननेन वा सकलकर्मक्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः । एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः ।

क्रियायाः पञ्चविंशतिर्भेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था. २ उ. १ । स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः —

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि वध्नाति । तत्रायुर्वन्धे सत्यष्टौ कर्माणि, आयुर्वन्धाभावे सप्त कर्माणि वध्नाति ।

तत्र जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते— कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः ।

पहुँचाने से शोक की अधिकता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि करवाने से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता । तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता । ”

क्रिया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं । (स्था. २ उ. १, स्था. ३ उ. ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता है ? ।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता है । आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है ।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है । इस का उत्तर यह है—कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से ।

एषुता पडोंत्राडवाथी, आंसु पडाववाथी, शरीरमां पीडा उत्पन्न करवाथी, ग्लानि उत्पन्न करवाथी समस्तकर्मोना क्षयरूप मोक्ष प्राप्त थतो नथी. तात्पर्यं अे छे डेः— आ प्रभाषे एवनो आरगतिना दुःषोथी परिपूष् संसाररूपी विकट अटवी (वन)मां भ्रमण करवानो अंत आवतो नथी.

क्रियाना पच्चीस भेद स्थानांग सूत्रमां क्ख्या छे. (स्था. २-७-१. स्था. ३-३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता है ?

प्राणातिपात करनार एव ज्ञानावरणीय आदि सात अथवा आठ कर्मोना अंध करे छे. आयुनो अंध डोय तो आठ कर्मोना—अन्यथा सात कर्मोना अंध करे छे.

एव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करी शक्ये छे ? तेनो उत्तर अे छे डेः—कदाचित् त्रयु क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से; कदाचित् पांच क्रियाओं से.

तत्र-कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकीभिः क्रियाभिस्त्रिक्रियो जीवः कर्माणि बध्नाति । कायिकीनाम-हस्तपादादिव्यापारणम् । अधिकरणिकी-खड्गतीक्ष्णीकरणादिकम् । प्राद्वेषिकी-'एनं मारयामी'-त्यशुभमनःसंप्रधारणमिति ।

प्राणातिपातं कर्तुर्जीवस्य चतुष्क्रियता-कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकी पारितापनिकीभिश्चतसृभिः क्रियाभिर्भवति । तत्र-पारितापनिकीनाम-खड्गादिघातेन पीडाकरणम् । पञ्चक्रियता तदा भवति यदा प्राणातिपातक्रियाऽपि पञ्चमी भवति । प्राणातिपातक्रियानाम-जीविताद् व्यपरोपणम् । उक्तरीत्या ज्ञानावरणी-

कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं वाला होकर जीव कर्मबन्ध करता है । हाथ-पैर आदि का हिलाना डुलाना वगैरह 'कायिकि' क्रिया है । तलवार को तीक्ष्ण करना वगैरह 'आधिकरणिकी' क्रिया है । 'इसे मारूंगा' इस प्रकार मन में अशुभ विचार करना 'प्राद्वेषिकी' क्रिया है ।

प्राणातिपात करने वाला जीव चार क्रिया वाला होता है-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, ये चार क्रियाएँ उसे लगती हैं । तलवार आदिका आघात कर के पीडा पहुँचाना 'पारितापनिकी' क्रिया है । जब प्राणातिपात क्रिया भी जीव कर डालता है तब उसे पांचों क्रियाएँ लगती हैं । किसी प्राणी को जीवन से वियुक्त कर देना 'प्राणातिपातिकी' क्रिया है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारणभूत

कायिकी, आधिकरणिकी અને પ્રાદ્વેષિકી, આ ત્રણ ક્રિયાઓવાળા થઈને જીવ કર્મબંધ કરે છે, હાથ-પગ આદિને હલાવવું-ફેરવવું વગેરે કાયિકી ક્રિયા છે. તલવાર વગેરેને તીક્ષ્ણ કરવી વગેરે આધિકરણિકી ક્રિયા છે 'એને મારીશ' આ પ્રકારનો મનમાં અશુભ વિચાર કરવો તે પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા છે.

પ્રાણાતિપાત કરવાવાળા જીવ ચાર ક્રિયાવાળા હોય છે-કાયિકી, આધિકરણિકી, પ્રાદ્વેષિકી અને પારિતાપનિકી, આ ચાર ક્રિયાઓ તેને લાગે છે. તલવાર આદિને આઘાત કરીને પીડા પહોંચાડવી તે પારિતાપનિકી ક્રિયા છે. બીજા પ્રાણાતિપાત ક્રિયા પણ જીવ કરી નાંખે છે ત્યારે તેને પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે. કોઈ પ્રાણીને જીવનથી વિયુક્ત (બૂદ્) કરી દેવું તે પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણીય આદિ

यादिकर्मणां कारणीभूतस्य प्राणातिपातस्य निष्पत्तिस्त्रिक्रियतया, चतुष्क्रियतया पञ्चक्रियतया वा त्रिधा भवति । एवं चतुर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयम् ।

### मृगवधोद्यतस्य क्रिया—

मृगवधोद्यतो लुब्धकः खलु वनपर्वतजलाशयादिषु मृगवधार्थं गत्वा मृगग्रहणाय गर्तादिकं तवन्धनार्थं च पाशं रचयति, तदा मृगवधार्थं गमनगर्त-पाशादिकरणात् तस्य कायिक्यादिकाः क्रिया भवन्ति । तत्र गमनधावन-ग्रहणादिना गमनादिकायचेष्टारूपा कायिकी, गर्तपाशादिरूपेणोधिकरणेन निर्वृत्ता क्रिया आधिकरणिकी, यश्च मृगेषु प्रद्वेषस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी क्रिया भवति ।

प्राणातिपात की निष्पत्ति कहीं तीन, चार तथा कहीं पांच क्रियाओं से, ऐसे तीन प्रकार से होती है । चौबीसों दण्डकों में इसी प्रकार समझना चाहिए ।

### मृगवध में उद्यतको क्रिया—

मृग मारने के लिए उद्यत हुआ शिकारी वन पर्वत और जलाशय आदि में मृगका वध करने के लिए जाकर मृग पकडने के लिए खड्डा बनाता है और उसे बांधने के लिए जाल रचता है । उस समय मृगवध के लिए गमन करने से, तथा खड्डा एवं पाश तैयार करने से, उसे कायिकी आदि क्रियाएँ लगती है । जाना दौडना, पकडना आदि से कायिकचेष्टारूप कायिकी क्रिया लगती है । खड्डा और जालरूप अधिकरणों के कारण आधिकरणिकी क्रिया होती है, मृग पर होने वाले द्वेष के कारण

धर्मोना डारणुभूत प्राणातिपातनी उत्पत्ति केरु स्थणे त्रणु, केरु ठेकाले चार तथा केरु ठेकाले पांच क्रियाओधी ओवा त्रणु प्रकारथी डोय छे. चोवीशेय दंडकेभां आ प्रभाले समजपुं नेरु ओ.

### मृगवधमां तैयार थनारने क्रिया—

मृगने मारवा माटे तैयार थयेले शिकारी वन, पर्वत अने जलाशय आदिमां मृगने वध करवा माटे जधने मृग पकडवा माटे भाडो बनावे छे, अने तेने बांधवा माटे जाल रचे छे ते समये मृगना वध माटे गमन करवाथी, तथा भाडो अने पाश तैयार करवाथी तेने कायिकी आदि क्रियाओ लागे छे. जपुं, दोडपुं, पकडपुं आदिथी कायिक चेष्टारूप कायिकी क्रिया लागे छे. भाडो अने जालरूप अधिकरणोना डारणे आधिकरणिकी

बद्धे सति तु मृगे तस्य लुब्धकस्य पारितापनिकी, पारितापनप्रयोजना क्रिया भवति।  
घातिने च सति मारणरूपा प्राणातिपातक्रिया।

पूर्व क्रियया ज्ञानावरणीयादिकं कर्म जन्यते। तत्तत्कर्मफलानुभवनरूपा वेदना  
च तत्पश्चादेव भवति। उक्तञ्च—

“पुत्रं भंते ! किरिया पच्छा वेयणा ? पुत्रं वेयणा तच्छा किरिया ?  
मण्डितपुत्र ! पुत्रं किरिया पच्छा वेयणा, णो पुत्रं वेयणा, पच्छा किरिया”।

( भग. ३ श. ३. उ. )

छाया—पूर्व भदन्त ! क्रिया पश्चाद् वेदना ? पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ?  
भोगण्डितपुत्र ! पूर्व क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ॥

कुमूलादौ लोहमुत्क्षिपतः क्रिया—

लोहं लोहप्रतापनार्थं कुशूले. लोहमयेन संदंशनेनोत्क्षिपन् प्रक्षिपन् वा

प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है। मृग के बंध जाने पर शिकारी को पारितापनिकी क्रिया  
लगती है। मृग का घात करने पर हिंसारूप प्राणातिपातिकी क्रिया होती है।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण आदि कर्मों का बंध होता है और उस का फल  
भोगनारूप वेदना बाद में ही होती है। कहा भी है—

“हे भगवन् ! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है ? अथवा पहले वेदना और  
पश्चात् क्रिया होती है ? हे मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया, पश्चात् वेदना होती है। पहले वेदना  
और पश्चात् क्रिया नहीं होती” ( भगवती. श. ३. उ. ३. )

कुशूल आदि में लोहा डालने वाले को क्रिया—

तपाने के लिए कुशूल (मूष) में लोहे की संडासी से लोहा डालने वाले को

क्रिया थाय छे. मृग उपर थवावाणा द्वेषथी प्राद्वेषिकी क्रिया लागे छे. मृगना अ'धा'र्ष  
न'वा'थी शिकारीने पारितापनिकी क्रिया लागे छे. मृगने घात करवाथी हिंसारूप  
प्राणातिपातिकी क्रिया थाय छे.

प्रथम क्रियाथी ज्ञानावरण आदि कर्मोंने अ'ध थाय' छे, अने तेनु इण लोगववा  
इय वेदना पछीथी' थाय छे. कहुं छे के:—

“हे भगवन् ! पड़ेलां क्रिया अने पछी वेदना थाय छे ? केपड़ेलां वेदना अने  
पछीथी क्रिया थाय छे ? हे मण्डितपुत्र ! पड़ेली क्रिया, अने पछीथी वेदना थाय छे,  
पड़ेली वेदना अने पछीथी क्रिया थती नथी.” ( भग. श. ३. उ. ३. )

मूष आदिमां लोहं ना'भनारने क्रिया—

तपाववा साटे मूषमां, लोहानी साणुसीथी लोहं ना'भवावाणाने कायिकीथी लधने

कायिक्यादि-प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति । एवं लोहेन फालपरशुकुठारकुदालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीनां पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरतिसद्भावात् । एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया ध्मापनेन विध्यापनेन प्रज्वलितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्तद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

### धनुषा विध्यतः क्रिया-

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, धनुः प्रसारयति, कर्ण-पर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, वाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुख-मागच्छतो हन्ति, अन्योन्यगात्रं संहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांच क्रियाओं का स्पर्श होता है । इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दांतला आदि के बनाने में लुहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है । इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कूटने में, धौंकने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठंडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पांच २ क्रियाएँ लगती हैं ।

### धनुष से वेधने में क्रिया-

धनुर्धारी पुरुष वाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस में वाण जोड़ता है, ऊपर फैकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोडता है, जरा-सा स्पर्श

प्राण्यतिपात सुधीनी पांच क्रियाओंको स्पर्श थाय छे. ओ प्रभाणु लोढाना क्षल-हुणनी डेस, इरसी, कुवाडा, डेदाडी, दांतला आदि बनाववामां लुडार वगेरेने पांच क्रियाओ लागे छे, कारणु डे तेमां अविरति हुणर छे. आ प्रकारे धनुने उपर राभवामां, डूटवामां धोडनीथी धोडवामां, अशि भुअवामां; अण्वलित डरवामां अने लोडुं ठंडुं डरवा भाटे पाण्णीमां नाभवामां. आ प्रत्येक कार्यमां पांच क्रियाओ लागे छे.

### धनुषथी विधवामां क्रिया-

धनुष धारणु डरनार पुडुष आणुथी मारतो न्यांसुधी धनुष अडणु डरे छे, धनुष डेलावे छे, डान सुधी जेथे छे, गोल डरे छे, तेमां आणु नेडे छे, उपर डेडे छे, पोताना सामे आवनारने मारे छे, शरीरने संडेथे छे, थोडो ओवो स्पर्श डरे छे,

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, जीविताद् व्यपरोययति । तत्र कायिक्यादि-  
प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

वृष्टिज्ञानाय हस्तादिकं प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निविडान्धकारे चक्षुदर्शनाभावे सति वृष्टिं विज्ञातुमाकाशे यः  
खलु हस्तं पादं वा बाहुं वा ऊरुं वा यावत्कालं प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालत  
एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परितापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता हैं,  
जीवन से च्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों  
क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं ।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में—चक्षुदर्शन का अभाव होने पर, वर्षा जानने के  
लिए आकाश में जो हाथ, पैर, बाहु, या ऊरु, जब तक पसारता है, सिकोडता है,  
तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीते परितापना करे छे, ओक स्थानथी भीन स्थानमां लई नय छे, लवनथी  
न्युत (विद्युक्त) करे छे. ओवी रीते करवामां ते कायिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी  
पांचेय क्रियाओथी स्पृष्ट थाय छे, अर्थात् तेने पांचेय क्रियाओ लागे छे.

वृष्टिज्ञान भाटे हाथ आदि झेलाववा वाणाने क्रियाओ—

रात्रिनो घोर अंधकारमां, चक्षुदर्शननो अभाव होवाथी, वरसाह आवे छे के  
नहि ? ओे नालुवा भाटे, आकाशमां ने हाथ, पग, आहु अथवा उरु नयां सुधी प्रसारे छे,  
संकोचे छे, त्यां सुधी ते कायिकी आदि प्राणातिपातिकीसुधीनी पांच क्रियाओ तेने स्पृष्टे छे.



॥ तालमारुह्य तत्फलं पातयतः क्रिया ॥

तालवृक्षमारुह्य तत्फलं पातयन्नपि तावत्कालत एव पञ्चभिः कायिक्यादि-  
क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

अष्टादश पापस्थानानि—

(१) प्राणातिपातः—

जीवानां प्राणातिपाताध्यवसायेन प्राणातिपातक्रिया भवति । हिंसापरिणाम-  
काल एव प्राणातिपातक्रिया भवति । प्राणातिपातादीनामध्यवसायमात्रादपि ज्ञाना-  
वरणीयादि कर्म जन्यते । उक्तञ्च—

“ परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणं ” इति ।

तालवृक्ष पर चढ कर फल गिरानेवाले को क्रियाएँ—

ताल वृक्ष पर चढ कर उस के फल गिराता हुआ तब तक कायिकी आदि पांच  
क्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

अठारह पापस्थान—

(१) प्राणातिपात—

जीवों का प्राणातिपात करने के अध्यवसाय से प्राणातिपातक्रिया होती है । हिंसा-  
रूप परिणाम के समय ही प्राणातिपातक्रिया होती है । प्राणातिपात का अध्यवसाय होने  
मात्र से भी ज्ञानावरण आदि कर्म उत्पन्न होते हैं । कहा भी है—

“ परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणं ”

अर्थात् प्राणातिपात करने का निश्चय करने वाले का परिणाम ही कर्मबन्ध का कारण है

तालवृक्षपर चढीने इल पाउनारनी क्रियाओ—

तालवृक्ष पर चढीने तेना इण पाडे छे त्यां सुधी कायिकी आदि पांच क्रियाओने।  
स्पर्श करे छे.

अठार पापस्थान—

(१) प्राणातिपात—

जिवेना प्राणातिपात करवाना अध्यवसायथी प्राणातिपातक्रिया थाय छे. हिंसा-  
रूप परिणामना समयेण प्राणातिपातक्रिया थाय छे. प्राणातिपातने। अध्यवसाय थावा  
मात्रथी पणु ज्ञानावरणु आदि कर्म उत्पन्न थाय छे कहुं छे. केः—

“ परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणं ”

अर्थात्—प्राणातिपात करवाने। निश्चय करवावाणानां परिणामणु कर्मबंधनुं कारणु छे.

इयं च प्राणातिपातक्रिया षड्जीवनिकायविषये भवति । यथा—रज्जादौ सर्पादिबुद्ध्या मारणाध्यवसायोऽपि जीवविषयक एव । तत्र हि—‘सर्पोऽय’-मितिबुद्ध्या मारणाध्यवसायो जायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवधभावयुक्तः सर्पवधजन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति । अजीवविषयको मारणाध्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुत्वेन विज्ञाय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाध्यवसायं करोति तस्मात् षट्सु जीवनिकायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया प्रवर्तते, न त्वजीवविषय इति । उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाणं किरिया कज्जइ ! । गोयमा छसु जीवणिकाएसु” इति

यह प्राणातिपात क्रिया षड्जीवनिकाय के विषय में होती है । रस्सी आदि में सांप आदि की भावना से मारने का अध्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अध्यवसाय है । वहाँ ‘यह सर्प है’ इस प्रकार की भावना से मारने का अध्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्सी में सर्प के वधके भाव से युक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है । अजीवविषयक मारने का अध्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है—रस्सी को रस्सी समझ कर कोई रस्सी में मारने की भावना नहीं करता, अतः षड्जीवनिकायों में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अजीव में नहीं । कहा भी है—

“ भगवन् ! किन में जीवों को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ? गौतम ! छह जीवनिकायों में ” ।

आ प्राणातिपात क्रिया षड्जीवनिकायनां विषयमां थाय छे. दोरडां आदिमां सर्पआदिनी लावनाथी मारवानो अध्यवसाय थवो ते पणु लवविषयञ् अध्यवसाय छे. त्यां ‘आ सर्प छे’ आ प्रकारनी लावनाथी मारवानो अध्यवसाय थाय छे. अेटला कारणुथी त्यां रस्सी—दोरडांमां—सर्पना वधनी लावनायुक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रियाने स्पृष्टे छे. अलवविषयक मारवाना अध्यवसाय तो थर्ध शकता नथी—रस्सीने रस्सी (दोरडी) समलने केर्ध रस्सी—दोरडांमां मारवानी लावना करता नथी, ते माटे षड्जीवनी-कायेमांञ् प्राणातिपातनी क्रिया प्रवृत्त डोय छे. अलवमां नहि. कहुं पणु छे—

“ लववन् ! शे-ं लवने प्राणातिपातिकी क्रिया थाय छे ? गौतम ! छ लवनिकायेमां. ”

## (२) मृषावादः—

सतोऽपलापोऽसतश्च प्ररूपणं मृषावादः । स सर्वद्रव्यपर्यायविशेषये भवति ।

## (३) अदत्तादानम्—

अदत्तस्य=देवगुर्वादिभिरननुज्ञातस्यादानं=ग्रहणम्=अदत्तादानम्, यद् वस्तु ग्रहीतुं धारयितुं वा शक्यते, तद्वस्तुमात्रत्रिपयकमादानं भवति, न तु तदन्यवस्तु-विषयकम्, उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं अदिन्नादाणेणं किरिया कज्जह ? । गोयमा ग्रहणधारणिज्जसु दव्वेसु” । इति (भग० १ श. ६ उ.)

## (४) मैथुनम्—

स्त्रीपुंसयोः कर्म-मैथुनम् । मैथुनाध्यवसायोऽपि चित्रलेप्यकाष्ठादिकर्म—

## (२) मृषावादः—

सत् का अपलाप करना और असत् का प्ररूपण करना मृषावाद है । मृषावाद समस्त द्रव्यों और पर्यायों के विषय में होता है ।

## (३) अदत्तादानम्—

अदत्त अर्थात् देव एवं गुरु आदि द्वारा जिस की आज्ञा प्राप्त न हुई हो उसको ग्रहण करना अदत्तादान है । जो वस्तु ग्रहण की जा सकती है या धारण की जा सकती है उसी वस्तु का आदान हो सकता है, अन्य वस्तु का नहीं । कहा भी हैः—

“भगवन् ! किस वस्तु में अदत्तादान के द्वारा क्रिया की जाती है ? गौतम ! ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों में (भग., श. १, उ. ६ )

## (४) मैथुनम्—

मैथुन अर्थात् स्त्री और पुरुष का कार्य मैथुन कहलाता है । मैथुन का अध्यवसाय

## मृषावादः—

सत्-ने जोट्टुं कडेवुं अने असत्-ने सायुं कडी तेनुं प्ररूपणु करवुं ते मृषा-वाद-समस्त द्रव्ये अने पर्यायेना विषयेमां थाय छे.

## (३) अदत्तादानम्—

अदत्त अर्थात् देव-गुरु आदिद्वारा जेनी आज्ञा मणी न डेय, तेवी वस्तुने ग्रहणु करवी ते अदत्तादान छे. जे वस्तु ग्रहणु करी शकय छे, अथवा धारणु करी शकय छे ते वस्तुनु आदान थर्ष शक्ये छे. भील वस्तुनु नडि. कहुं पणु छेः—

लगवन् ! कथं वस्तुमां अदत्तादान द्वारा क्रिया थर्ष शक्ये छे ? गौतम ! ग्रहणु करवा अने धारणुकरवा योग्य द्रव्येमां.” (लाग. श. १ उ. ६ )

## (४) मैथुनम्—

मैथुन अर्थात् स्त्री अने पुरुषनु कार्य मैथुन कडेवाय छे, मैथुनना अध्यवसाय

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्यादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये ।  
उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ? । गोयमा ! ख्वेसु  
वा ख्वसहगएसु वा दव्वेसु” इति ( भग. १ श. ६ उ. )

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्त-  
वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=  
गर्वः ७ । माया=शाठ्यम् ८ । लोभो=गृध्नुता ९ ? । रागः=प्रीतिरासक्तिर्वा १० ।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता । चित्र, लेप्य, या काष्ठ आदि में अङ्कित किये जाने वाले  
रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अध्यवसाय होता है । कहा भी है—

“भगवन् ! किस विषय में जीव मैथुन क्रिया करते है ? गौतम ! रूपों में और  
रूप-युक्त विषयों ( स्त्रियों आदि ) में । ( भग. श. १, उ. ६ )

(५) परिग्रह—

“यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ” इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह  
कहते हैं । प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो  
सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम  
(६) क्रोध कहलाता है । गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते है ।

पणु सर्व वस्तुओमां नथी. चित्र लेप्य अथवा काष्ठ आदिमां चितरवामां आवेदा  
इपोमां अथवा स्त्री आदिमां मैथुनो अध्यवसाय थाय छे. उहुं पणु छे :—

“लगवन् ! क्या विषयमां एव मैथुन क्रिया करे छे ?

गौतम ! रूपोमां अने इययुक्त विषयो ( स्त्रियो आदि ) मां” ( लग० १ श-६-७ )

(५) परिग्रह—

“आ वस्तु भारी छे-हुं तेना भाविक छुं” आ प्रकारनी मूर्छाने परिग्रह  
कडे छे. प्राणीओमां लोभनी अधिकता होवाना कारणे सर्व वस्तुओमां मूर्छा होय छे.

कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाश करवावाणा, अक्षमारूप आत्मानुं परिणाम ते  
क्रोध कडेवाय छे. (६), गर्व ने मान (७), अने कपटने माया कडे छे (८), गृध्नि ते

द्वेष=अप्रीतिः ११ । कलहो=विरोधः १२ । अभ्याख्यानम्=असद्वोषारोपणम् १३ ।  
 पैशुन्यं=कर्णान्तिकादौ परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४ ।  
 परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५ । रत्यरतिः=विषयेष्वनुरागो  
 रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेकं पापस्थानम् १६ ।  
 मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७ । मिथ्यादर्शन-  
 शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यथाजनकत्वात् मिथ्या-

गृद्धि-(९) लोभ है, प्रीति या आसक्ति (१०) राग है, और अप्रीति को (११) द्वेष  
 कहते हैं, (१२) कलह अर्थात् विरोध । (१३) अभ्याख्यान अर्थात् किसी को झूठा  
 दोष लगाना । चुगली वगैरह को (१४) पैशुन्य कहते हैं, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-  
 मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना । बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष  
 प्रकाशित करना (१५) परपरिवाद है । विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में  
 अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) रत्यरति कहते हैं । यह एक  
 पापस्थानक है । माया से युक्त मृषावाद (१७) मायामृषा कहलाता है, यह भी  
 एक पापस्थानक है । शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला  
 मिथ्यात्व (१८) मिथ्यादर्शनशल्य कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

दोष छे (९). प्रीति अथवा आसक्ति ते राग छे (१०). अने अप्रीतिने द्वेष कडे छे  
 (११). कलह अर्थात् विरोध (१२). अभ्याख्यान अर्थात् केधना पर जुठो आरोप भूकये  
 ते (१३). चुगली वगैरेने पैशुन्य कडे छे, अर्थात् विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषोने  
 पाछ्णथी प्रकाशित करवा (१४). धणा दोकेना समक्ष पीलना दोषो प्रकाशित करवा  
 ते परपरिवाद छे (१५). विषयोमां अनुराग थयो ते रति छे, अने धर्ममां अनुराग  
 नहि थयो ते अरति छे, रतिसहित अरतिने रत्यरति कडे छे. आ पणु अेक पाप-  
 स्थानक छे (१६). मायाथी युक्त मृषावाद ते मायामृषा कडेवाय छे. ते पणु अेक  
 पापस्थानक छे (१७). शल्यनी प्रमाणे विविध प्रकारनी पीडाओ उत्पन्न करवावाणा  
 मिथ्यात्व मिथ्यादर्शनशल्य कडेवाय छे. अर्थात् कुदेव कुगुरु अने कुधर्मने सुदेव

दर्शनशल्यम्=कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेषु सुदेवादिबुद्धिः १८ । एतान्यष्टादश पापस्थानानि ।  
एताभिः क्रियाभिर्जीवः कर्म बन्धाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया किलात्मनः परिणामः । तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति ।  
तत्तत्कालिकक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकालवर्तित्वं च सिध्यतीत्याशयेनाह-“अकरिस्सं”  
इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अकरिस्सं चड्हं, कारवेसुं चड्हं, करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि । एयावंति  
सच्चावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ६ ॥

सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझना मिथ्यादर्शनशल्य है । ये अठारह पापस्थानक हैं ।  
इन अठारह प्राणातिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है । ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है । उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व  
सिद्ध होता है, और अमुक-अमुक-कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है  
कि-“ आत्मा त्रिकालवर्ती है ” यह बात अब बतलाई जाती है:-‘अकरिस्सं चड्हं’  
इत्यादि ।

मूलार्थ—मैंने किया था, मैं कराता हूँ और करने वाले की मैं अनुमोदना करूंगा ।  
यह सब लोक में कर्मसमारम्भ जानने चाहिए । सू. ६ ॥

सुशुद्ध अने सुधर्म समझवा ते मिथ्यादर्शनशल्य छे (१८). आ अठार पाप स्थानक  
छे. आ अठार प्राणातिपात आदि क्रियाओथी ज्वने कर्मोना अध थाय छे. (सू. ५)  
इति क्रियावादिप्रकरणम्.

क्रिया आत्मानुं अेक परिणाम छे, तेनाथी आत्मानुं ‘क्रियावत्त्व अथवा कर्तृत्व  
सिद्ध थाय छे, अने अमुक-अमुक-कालीन क्रियाओना संबन्धथी अे पणु सिद्ध थाय छे  
के:-आत्मा त्रिकालवर्ती छे. ते वात डवे अताववामां आवे छे-‘अकरिस्सं चड्हं’ इत्यादि.

मूलार्थः—मैं क्युं, मैं करायुं अने करवावाणाने मैं अनुमोदन आप्पुं.  
आ सर्व लोकमां कर्म-समारंभ ज्ञाणवा जेधये. (सू. ६)

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ टीका ॥

‘अकार्षं चाहम्’ इति । अत्र ‘च’-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानु-  
मोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं  
कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । ‘कारयामि चाहम्’ इति, अत्र  
‘च’-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, । तेन-(१)  
अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ यहाँ जो ‘च’ का प्रयोग किया है; उस से यह अर्थ समझना चाहिए कि-“मैंने अनुमोदन किया था ।” इस प्रकार मैंने किया, करवाया और अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

‘कारवेसुं चऽहं’ यहाँ भी ‘च’ पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ; इन तीन भेदों का कथन समझना चाहिए ।

“ करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि ” यहाँ भी ‘च’ पद से भविष्यकालीन करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन करूँगा, मैं स्वयं करूँगा और मैं कराऊँगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ अर्हि जे ‘च’ ने प्रयोग कर्यो छे, तेथी अर्थ समजवो जेध अर्थ के-‘मैंं करायुं हुं’ आ प्रमाणे ‘मैंं’ कर्युं, करायुं, अने मैंं अनुमोदन आय्युं, आ त्रणु लेहेतुं कथन समजवुं जेध अर्थ.

‘कारवेसुं चऽहं’ अर्हि पणु ‘च’ पदथी जे क्रियाओनु ग्रहणु थाय छे. तेथी ‘मैंं कर्युं’, मैंं करायुं, अने मैंं अनुमोदन आय्युं.’ आ त्रणु लेहेतुं कथन समजवुं जेध अर्थ.

‘ करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि ’ अर्हि पणु ‘च’ पदथी भविष्यकालीन करीश अने करावीश. ते अर्थ देवो जेध अर्थ. जे कारणथी ‘करवावाणाने हुं अनुमोदन करीश, हुं स्वयं करीश अने हुं करावीश’ अर्थ क्रियाना त्रणु लेह समज देवा जेध अर्थ.

कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि, इति । अत्रापि 'च'-शब्दोपादानेन भविष्य-  
त्कालिककृतकारितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम् । 'समनुज्ञः' इत्यस्य समनुज्ञाता अनुमो-  
दयितेत्यर्थः । तथा च-(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता भविष्यामि, (२)  
स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं कारयिष्यामि, इति भेदत्रयं क्रियायाः भवति ।  
कुर्वतश्चापीत्यत्र 'अपि'-शब्दोपादानेन तासां नवानां क्रियाणां मनोवाक्यायभेदेन  
सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्ति ।

आत्मवाचकमहमिति पदं पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादिक्रियापदोपादानात्  
"सर्वाः क्रिया आत्मपरिणामरूपाः" इति बोधितम् । एतेन "आत्मा निष्क्रियः"  
इति सांख्याद्यभिमतं निराकृतम् ।

'याचि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि—इन नौ क्रियाओं  
के मन वचन और कायके भेद से सत्ताईस भेद हो जाते हैं । अर्थात् पूर्वोक्त नौ क्रियाएँ  
मन से की जाती हैं, वचन से की जाती हैं, और काय से भी की जाती है, अतः उनके  
सत्ताईस भेद हो जाते हैं ।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों  
का ग्रहण करने से यह सूचित किया गया है कि—ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम  
हैं । इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो  
गया है ।

'याचि' शब्दमां ने 'अपि' पद छे तेथी अये समञ्जुं नेधअये के अये नव  
क्रियाओना मन, वचन अने कायाना लेदथी सत्तावीश लंग थाय छे. अर्थात् पूर्वोक्त  
नव क्रियाओ मनथी करी शकय छे. वचनथी अने कायथी पणु करी शकय छे.  
तेथी तेना सत्तावीश लेद थध नय छे.

आत्मानो वाचक 'अहम्' हुं-पदने प्रधान राणीने 'अकार्षम्' आदि क्रिया-  
पदोना अडणु करवाथी अये सूचन करवामां आव्युं छे के-अये सर्व क्रियाओ आत्मानुं  
परिणाम छे. आ सूचनथी आत्माने निष्क्रिय मानवावाणा सांख्य आदिना मतनुं  
निराकरषु थध गयुं छे.



एकस्य चात्मनस्त्रिकालवर्तितत्क्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः । किञ्च-  
आत्मपरिणतिरूपां क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण  
जानातीति भगवता बोधितम् । तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भूति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मृग-  
मृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावधक्रियापरायणतया  
वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं संप्रति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधि-  
विविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखभोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालसंसारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे  
क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है । भगवान्ने यह भी प्रकट कर दिया है  
कि-अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि-  
यह ( आत्मा ) त्रिकालवर्ती है । इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान  
उत्पन्न होता है—

“जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कष्ट पाता है उसी प्रकार भँति-भँति  
के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गड्ढे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने  
आरम्भ-परिग्रह-रूप सावध क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज  
जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ  
इन्द्रिय-भोगोंद्वारा ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेड़

એકજ આત્માનું ત્રિકાલવર્તી અમુક-અમુક ક્રિયાઓની સાથે સંબંધ દેખાડ-  
વાથી ક્ષણિકવાદનું પણ ખંડન કરવામાં આવ્યું છે. ભગવાને એ પણ પ્રગટ કરી  
દીધું છે કે-પોતાની પરિણતિરૂપ ક્રિયાઓ કરતો આત્મા મતિજ્ઞાનથીજ એ બાણી લે  
છે કે-તે ત્રિકાલવર્તી છે. એ કારણથી આત્માના વિષયમાં આ પ્રકારનું પ્રત્યભિજ્ઞાન  
ઉત્પન્ન થાય છે.

જેમ મૃગતૃષ્ણામાં ફસાઈને મૂઢ મૃગ કષ્ટ પામે છે તે પ્રમાણે જાત-જાતના  
વિષયોથી આકૃષ્ટ થઈને-એવાઈને મોહરૂપી ખાડામાં પડી જઈને સુખની લાલસાથી જે  
આરંભ પરિગ્રહરૂપ સાવધ ક્રિયામાં ઉદ્યમી થઈને વૃથા આયુ ગુમાવ્યું હતું, તે હું આજે  
જન્મ-જરા-મરણ-આધિ-વ્યાધિ વગેરે વિવિધ પ્રકારનાં દુઃખોથી પરિપૂર્ણ અને તુચ્છ  
ઇન્દ્રિયભોગો દ્વારા એવો જર્જરિત કરવામાં આવ્યો છું કે જેમ-પર્વત ઉપરનું ઝાંડ

भविष्यामीति चिन्तानलेन कोटरस्थवह्निना जरदूम इव संतप्तोऽस्मीति भावः ।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारंभाः=कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि समारभन्ते =जनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारंभाः । एतावन्त एव, नातोऽधिका इत्यर्थः, परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञाविषयीकृत्य ज्ञेया हेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिज्ञा हि द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च । तत्र ज्ञपरिज्ञया सप्तविंशतिभङ्गरूपाः कर्मसमारंभाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः ॥ सू० ६ ॥

आंधी से जर्जरित हो जाता है । अब मैं दुःस्वप्न संसार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा ? इस तरह की चिन्तारूपी अग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे कोटरस्थ अग्नि से जीर्ण वृक्ष भीतर ही भीतर भस्म हो जाता है ।

“लोक में अर्थात् जिनशासन में इतने ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उत्पन्न करने वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं ” । यह परिज्ञा विषय करने योग्य है, अर्थात् परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और हेय होते हैं । परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा । इन में से सत्ताईस भंग रूप कर्मसमारम्भ ( क्रियाविशेष ) ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ६ ॥

वावाओडाथी जर्जरित थर् नय छे. ‘डवे हुं दुःस्वप्न संसारथी छुटकारे केवी रीते यामीश ? आ प्रभाणे चिन्ताइयी अग्निथी हुं अवे-संतप्त छुं के जेभ-कोटरस्थ (आडनी थपोलभां रडेहुं) अग्निथी लुथुं वृक्ष अंदरने अंदरज बरम थर् नय छे.

दोषभां अर्थात् जिनशासनभां ज्ञानावरणीय आदि कर्मोने उत्पन्न करवावाणा आटलांज कर्मसमारंभ छे, तेनाथी ओछा के वधारे नथी. आ परिज्ञा विषय करवा योग्य छे, अर्थात् परिज्ञाथीज आ अधां ज्ञेय अने हेय थाय छे. परिज्ञा जे प्रकारनी छे. (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा, तेभांथी सत्तावीश भंगरूप कर्म-समारंभ ( क्रिया-विशेष ) ज्ञ-परिज्ञाथी नालुवुं नोछये, अने प्रत्याख्यान-परिज्ञाथी कर्मोनुं कारणुं समस्त कर्मसमारंभोने त्याग करवे नोछये. (सू० ६)

॥ मूलम् ॥

अपरिणायकम्मा खलु अयं पुरिसे जो इयाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ-सव्वाओ अणुदिसाओ साहेइ ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अपरिज्ञातकर्मा खलु अयं पुरुषः यः इमा दिशा अनुदिशा वा अनुसंचरति, सर्वा दिशाः सर्वा अनुदिशाः सहैति ॥ सू० ७ ॥

टीका—

‘अपरिणायकम्मा’ इत्यादि । यः इमा दिशा अनुदिशा अनुसंचरति-कर्मपरतन्त्रः संश्रतुर्गतिकसंसारं प्राप्य दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमति । तथा-सर्वा-दिशा अनुदिशाः सहैति । इह सर्वशब्देन द्रव्यभावोभयविधदिशो ग्रहणम् । द्रव्यभावदिशः सह=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिः साकम् एति=गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः । यत्तच्छब्दयोर्नित्यसाकाङ्क्षतयाऽत्र यच्छब्देन स इति परामृश्यते । सः अयं पुरुषः=जीवः खलु=निश्चयेन अपरिज्ञातकर्मा अस्तीति शेषः । न परिज्ञातं=परिज्ञाविषयी-

मूलार्थ—अपरिज्ञातकर्मा यह पुरुष इन दिशाओं और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है और सब दिशाओं एवं अनुदिशाओं को प्राप्त होता है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—कर्म से परतन्त्र जीव चार गतिरूप संसार को प्राप्त होकर दिशाओं में और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है । तथा समस्त दिशाओं और अनुदिशाओं को प्राप्त होता है, अर्थात् द्रव्य-दिशाओं एवं भाव-दिशाओं (ज्ञानावरण आदि कर्मों) के साथ प्राप्त होता है । वह जीव निश्चयपूर्वक अपरिज्ञातकर्मा है । कर्म की कारणभूत क्रियाओं का स्वरूप जिसने न जाना हो वह अपरिज्ञातकर्मा कहलाता है । अथवा जिसने ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की कारणभूत क्रियाओं का त्याग न किया हो उसे भी

मूलार्थ—अपरिज्ञात कर्मा आ पुरुष आ दिशाओ अने विदिशाओमां परिभ्रमणु करे छे, अने सर्व दिशाओ अने अनुदिशाओने प्राप्त थाय छे. (७)

टीकार्थ—कर्मथी परतन्त्र एव चार गतिरूप संसारने प्राप्त थधने दिशाओमां अने विदिशाओमां परिभ्रमणु करे छे, तथा समस्त दिशाओ अने अनुदिशाओने प्राप्त थाय छे. अर्थात् द्रव्यदिशाओ अने भावदिशाओनी साथे प्राप्त थाय छे. ते एव निश्चयपूर्वक अपरिज्ञातकर्मा छे; कर्मनी कारणभूत क्रियाओना स्वरूपने ने नानुता नथी ते अपरिज्ञातकर्मा कहेवाय छे. अथवा नेने ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंनी कारणभूत क्रियाओने त्याग न कर्थो होय तेने पणु अपरिज्ञातकर्मा कहे छे. आशय

कृतं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा । अज्ञातापरित्यक्त-  
ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यावदयं जीवः क्रिया-  
स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावद् द्रव्य-  
भावोभयविधां दिशं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति='अणेगरूवाओ.' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरुवरूवे फासे पडिसंवेणइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा योनीः संधयति, विरुपरूपान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा जीवः अनेकरूपा=विविधाः योनीः=प्राणिनामुत्पत्ति-  
स्थानानि, संधयति=प्राप्नोति । अयमात्मा पूर्वभव नाशानन्तरं शरीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं । आशय यह है कि-संसारि जीव जबतक कर्मबन्ध-की कारणभूत  
क्रियाओं को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावरूप-दोनों प्रकार  
की दिशाओं में परिभ्रमण करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं—'अणेगरूवाओ.' इत्यादि ।

मूलार्थ—(अपरिज्ञातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना  
प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के  
उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वभव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

ये छे डेः-संसारि एव ज्यां सुधी कर्मबंधनी कारणभूत क्रियाओने जाली देतो नथी  
अने त्यलु हेतो नथी त्यां सुधी ते द्रव्य-सावइय अन्ने प्रकारनी दिशाओमां परि-  
भ्रमणु करतो रहे छे. (सू० ७).

ये अर्थने इरी अधिक स्पष्ट करे छे—“अणेगरूवाओ.” इत्यादिः

मूलार्थः—(अपरिज्ञातकर्मा एव) अनेकरूप योनिओने प्राप्त थाय छे अने  
नाना प्रकारनी यातनाओने भोगवे छे. (८)

टीकार्थः—अपरिज्ञातकर्मा एव विविध प्रकारनी योनिओने अर्थात्-एवोना  
उत्पत्तिस्थानोने प्राप्त करे छे. पूर्वभवना अंत थवा अनन्तर एव नवीन शरीर अडणु

शरीरान्तरप्राप्तिस्थाने यान् पुद्गलान् गृह्णाति तान् बाह्यपुद्गलान् कर्मणेन सह तप्तायःपिण्डजलग्रहणवत् मिश्रयति यस्मिन् स्थाने, तत् स्थानं योनिः । प्रादुर्भावमात्रं शरीरिणां जन्म, इति योनि-जन्मनोर्भेदः । सा नवविधा । (१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता, (९) संवृतविवृता । उक्तञ्च—

“ कइविद्वाणं भंते ! जोणी पणत्ता ? गोयमा ! तिविहा जोणी पणत्ता, तंजहा-सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीआसिणा जोणी । तिविहा जोणी पणत्ता, तंजहा-सचिता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी ।

ग्रहण करने के लिए नवीन शरीर की प्राप्ति के स्थान पर जिन बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उन्हें जिस जगह पर कर्मणशरीर के साथ तपे लोहे के गोले और जलके समान एकमेक करता है, वह स्थान योनि कहलाता है । जीवों का प्रादुर्भाव होना जन्म है । यह योनि और जन्म में अन्तर है । जन्म का आधार योनि है, अतः योनि और जन्म में आधारार्थेयभाव-सम्बन्ध है । योनि के नौ भेद हैं:—(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) सचित्ताचित्त, (४) शीत, (५) उष्ण, (६) शीतोष्ण, (७) संवृत, (८) विवृत और (९) संवृत-विवृत । कहाँ भी है—

“ भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! तीन प्रकार की योनि कही गई है । वह इस प्रकार—शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्णयोनि । तथा तीन प्रकार की योनि कही है । वह इस प्रकार—सचित्तयोनि, अचित्तयोनि और मिश्रयोनि ।

કરવા માટે નવીન શરીરની પ્રાપ્તિના સ્થાન પર જે બાહ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. તેને જે જગ્યા પર કાર્મણશરીરની સાથે તપેલા લોહાનો ગોળો અને જલની સમાન એકમેક કરે છે તે સ્થાન યોનિ કહેવાય છે. જીવોનો પ્રાદુર્ભાવ થવો તે જન્મ છે. યોનિ અને જન્મમાં એજ અન્તર છે, જન્મનો આધાર યોનિ છે, તેથી યોનિ અને જન્મમાં આધાર-આર્થેય ભાવ સંબંધ છે. યોનિના નવ ભેદ છે:—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત (૩) સચિત્તાચિત્ત (૪) શીત (૫) ઉષ્ણ (૬) શીતોષ્ણ (૭) સંવૃત (૮) વિવૃત અને (૯) સંવૃત-વિવૃત. કહ્યું પણ છે—

“ ભગવન્ ! યોનિ કેટલા પ્રકારની કહી છે ? ગૌતમ ! ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે. તે આ પ્રમાણે છે—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ, અને શીતોષ્ણયોનિ. તથા ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે. તે આ પ્રમાણે છે—સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ અને મિશ્રયોનિ. ફરી પણ ત્રણ

तिविहा जोणी पणत्ता, तंजहा-संबुडा जोणी, वियडा जोणी, संबुडवियडा जोणी ” । ( प्रज्ञा. योनिपद ९ )

जीवप्रदेशैरधिष्ठिता योनिः सचित्ता, जीवप्रदेशैरनवधिष्ठिता योनिरचित्ता । क्वचिदंशे जीवप्रदेशैरधिष्ठिता, क्वचिदनधिष्ठिता सा सचित्ताऽचित्ता । यत्र शीतस्पर्शः सा शीता । यत्रोष्णस्पर्शः सा योनिरुष्णा । यत्र क्वचिदंशे शीतस्पर्शः, क्वचिदुष्णस्पर्शः सा शीतोष्णा । अप्रकटिता संवृता । प्रकटिता विवृता । यत्र क्वचिदंशे प्रकटिता, क्वचिदप्रकटिताः सा संवृतविवृता योनिः ।

कस्य जीवस्य का योनिर्भवती ?—त्युच्यते—देवनाराकाणामचित्ता योनिः । देवानां प्रच्छदपटदेवदूष्यान्तरालं योनिः, तच्च जीवप्रदेशवर्जितम् । नाराकाणां तु

फिर भी तीन तरह की योनि कही है । वह इस प्रकार—संवृतयोनि विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि ” । ( प्रज्ञा. योनिपद ९ )

जीवप्रदेशों से अधिष्ठित योनि सचित्त कहलाती है और जो जीवप्रदेशों से अधिष्ठित न हो वह अचित्त कहलाती है । जो योनि कहीं जीवप्रदेशों से अधिष्ठित हो और कहीं अधिष्ठित न हो वह मिश्र योनि है । जहाँ शीत स्पर्श हो वह शीतयोनि, जहाँ उष्ण स्पर्श हो वह उष्णयोनि और जिस में कहीं शीत और कहीं उष्ण स्पर्श हो वह शीतोष्णयोनि है । अप्रकट योनि संवृत कहलाती है । प्रकट को विवृत कहते हैं और जो कहीं अप्रकट और कहीं प्रकट हो वह संवृतविवृतयोनि है ।

किस जीव की कौन-सी योनि होती है ? वह बताते हैं—देव और नागकी जीवों की अचित्त योनि होती है । देवों की योनि प्रच्छदपट और देवदूष्य के बीच में होती है,

प्रकारनी योनि कही छे ते आ प्रभाषे छे:—संवृतयोनि, विवृतयोनि अने संवृत-विवृतयोनि ” ( प्रज्ञा. योनिपद ८ ).

जुवप्रदेशोथी अधिष्ठित योनि सचित्त कडेवाय छे. अने जे जुवप्रदेशोथी अधिष्ठित न होय ते अचित्त कडेवाय छे. जे योनि कौं स्थणे जुवप्रदेशोथी अधिष्ठित होय अने कौं स्थणे अधिष्ठित न होय ते मिश्रयोनि कडेवाय छे ज्यां शीत स्पर्श होय ते शीतयोनि, ज्यां उष्णस्पर्श होय ते उष्णयोनि, अने जेमां कथांक शीत अने कथांक उष्ण स्पर्श होय ते शीतोष्ण योनि छे. अप्रकट योनि संवृत कडेवाय छे, अने प्रकट योनिने विवृत कडे छे, अने जे कथांक प्रकट अने कथांक अप्रकट होय ते संवृत-विवृत योनि छे.

कथा जुवनी कौं योनि छे ? ते बतावे छे—देव-नागकी जुवोनी अचित्तयोनि होय छे. देवोनी योनि प्रच्छदपट अने देवदूष्यता वयमां होय छे अने ते जुव

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः—ता अपि जीवप्रदेशरहिताः। ये गर्भ-  
जास्तिर्यञ्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः। स्थावरपञ्च-  
कस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्च्छिममनुष्याणां च त्रिविधा  
सचित्ता अचित्ता, सचित्ताचित्ता च।

गर्भजमनुष्यतिरश्चां देवानां च शीतोष्णा योनिः। तेजस्कायस्य उष्णा।  
स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्च्छिममनुष्याणां  
नारकाणां च त्रिविधा शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः। गर्भजानां  
पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः। विकलेन्द्रियत्रयस्य

और वह जीवप्रदेशों से रहित है। नारकों की योनि वज्रमय वातायन के समान कुम्भियाँ है।  
वे भी जीवप्रदेशों से रहित है। गर्भज तिर्यचों और मनुष्यों की मिश्र (सचित्ताचित्त) योनि  
होती है। पांच स्थवरो की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों की तथा  
संमूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मिश्र) होती है।

गर्भज—मनुष्यों, तिर्यचों और देवों की शीतोष्ण योनि होती है। तेजस्काय की  
उष्ण योनि है। चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों की  
संमूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उष्ण और मिश्र) योनि  
होती है।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की संवृत योनि है। गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों  
और मनुष्यों की संवृतविवृत योनि होती है। तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय

प्रदेशोत्थी रहित छे. नारकीयानी योनि वज्रमय वातायन (भारी)नी समान कुम्भियाँ  
छे. ते पञ्च एवप्रदेशोत्थी रहित छे.

गर्भज तिर्यचो अने मनुष्योनी मिश्र (सचित्ताचित्त) योनि डोय छे. पांच  
स्थावरोनी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोनी तथा संमूर्च्छिम  
मनुष्योनी योनि त्रयोय प्रकारनी (सचित्त, अचित्त अने मिश्र) डोय छे.

गर्भज मनुष्यो, तिर्यचो अने देवोनी शीतोष्ण योनि डोय छे. तेजस्कायनी  
उष्णयोनि छे. चार स्थावरोनी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोनी  
संमूर्च्छिम मनुष्योनी अने नारकोनी त्रयोय प्रकारनी (शीत, उष्ण अने मिश्र) योनि डोय छे.

नारकी, देवो, अने एकेन्द्रियोनी संवृत योनि छे. गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यचो  
अने मनुष्योनी संवृत-विवृत योनि डोय छे. त्रय विकलेन्द्रियोनी अगर्भज पञ्चेन्द्रिय

अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्च्छिममनुष्याणां च विवृता योनिः ।

यद्वा—चतुरशीतिलक्षणभेदेनानेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजो-  
वायूनां प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाणि २८, प्रत्येकवनस्पतीनां दश लक्षाणि ३८,  
साधारणवनस्पतीनां चतुर्दश लक्षाणि, ५२, विकलेन्द्रियत्रयस्य प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे,  
इति तेषां षड् लक्षाणि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरश्चां प्रत्येकं चत्वारि लक्षाणीति  
तेषां द्वादश लक्षाणि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश लक्षाणि ८४ । एवं सर्वसंकलने  
चतुरशीतिलक्षाणि जीवानां योनयो भवन्ति ।

अनेकविधयोनिप्राप्तौ सत्यामपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मफलं ययाऽनु-  
भवति तत् प्रदर्शयति—'विरूपरूपान् प्रतिसंवेदयति' इति, विरूपं=दुःख-

तिर्यचो की और संमूर्च्छिम मनुष्यों की विवृतयोनि होती है ।

अथवा—योनियों के चौरासी लाख भेद भी हैं । वे इस प्रकार हैं—पृथ्वीकाय,  
अपकाय, तेजस्काय, और वायुकाय, की सात-सात लाख-योनियाँ हैं २८, प्रत्येक वनस्पति  
की दश लाख ३८, साधारण वनस्पति की चौदह लाख ५२, तीन विकलेन्द्रि की प्रत्येक  
की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल छह लाख ५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय  
तिर्यचों में प्रत्येक की चार-चार लाख, कुल बारह लाख ७०, मनुष्यों की चौदह लाख ८४,  
इस प्रकार कुल चौरासी लाख जीवयोनियाँ हैं ।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिज्ञातकर्मा जीव किस प्रकार  
कर्मफल भोगता है, सो बतलाते हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों

तिर्यचोनी अने संमूर्च्छिम मनुष्योनी विवृत योनि होय छे.

अथवा—योनिओना चौरासी लाख बेह पणु छे, ते आ प्रमाणे छे—पृथ्वीकाय,  
अपकाय, तेजस्काय, अने वायुकायनी. सात-सात लाख योनिओ छे (२८), प्रत्येक  
वनस्पतिनी दसलाख (३८), साधारण वनस्पतिनी चौदहलाख (५२), त्रणु विकलेन्द्रियनी  
प्रत्येकनी षेणु लाख, अर्थात् विकलेन्द्रियनी कुल छ लाख (५८), देवो नारकीओ,  
अने पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोमां प्रत्येकनी चार-चार लाख, तमाम भणी बार लाख  
(७०), मनुष्योनी चौदह लाख (८४), आ प्रमाणे कुल चौरासी लाख लवयोनि छे.

अनेक प्रकारनी योनिओ प्राप्त थवा छतांय अपरिज्ञातकर्मा लव डेवी रीते  
कर्मफल भोगवे छे ? ते अतावे छे—दुःख उत्पन्न करनार होवाना कारणे इन्द्रियोना अनिष्ट-



हेतुत्वादशोभनं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्=इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति । अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति । लक्षणया कार्य-कारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते । अत्र स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः ।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः ।

को भोगता है । इस प्रकार अनिष्ट विषयों का संयोग होने के कारण वह जीव पुनः—पुनः दुःख ही अनुभव करता है ।

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले—नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों का संवेदन करता है । लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं । यहाँ स्पर्श-उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखों का भी ग्रहण समझना चाहिए ।

अथवा—स्पर्श का अर्थ है—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख । जीव उन्हें भोगता है । तात्पर्य यह है कि — जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर निगोद आदि नाना

दुःखकारक विषयेने लोगवे छे, ओ प्रभाणु अनिष्ट विषयेनेो संयोग डोवाना डारणु ते एव इरी-इरी दुःखनेण अनुभव करे छे.

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाला नाना प्रकारना दुःखजनक, स्पर्शानुं संवेदन करे छे. लक्षणावृत्तिथी, अथवा कार्यकारणना अलेदनी विवक्षाथी स्पर्शजन्य दुःख पणु स्पर्श कडेवाय छे. अडि स्पर्श उपलक्षण मात्र छे, तेमां इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखानुं अडणु पणु समणु देवुं ओछ ओ.

अथवा—स्पर्शनेो अर्थ छे—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख, एव तेने लोगवे छे. तात्पर्य ओ छे के—एव अपरिज्ञात-पापकर्मा थधने नरक-निगोद आदि अनेक योनिओमां

अपरिज्ञातकर्मतया नरकनिगोदाद्यनेकविधयोनीः संप्राप्य सर्वे जीवाः विचित्रकर्मो-  
दयात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःखमेवानुभवन्तीति भावः ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद-‘तत्थे’-इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे जम्बू ! अपरिज्ञातकर्मा जीवो विभावपरिणामं कुर्वन् नानाविध-  
योनिषु पुनः पुनर्दुःखमेव लभते । तत्र-अपरिज्ञातकर्मणो जीवस्य कृतकारि-  
तानुमोदितादिभेदेनोक्तसप्तविंशतिभङ्गरूपसावद्यक्रियानुष्ठानानरकनिगोदादिनानावि-  
धयानिषु पुनः पुनर्दुःखानुभवविषये भगवता श्रीमहावीरस्वामिना परिज्ञा

योनियों में उत्पन्न होकर विचित्र कर्मों के उदय से अपने-अपने कर्मों का नानाविध दुःख-  
रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू. ८ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ-भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है ॥ सू. ९ ॥

टीकार्थ- हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा जीव विभाव परिणाम धारण करता  
हुआ नाना प्रकार की योनियों में वारंवार दुःख पाता है । अपरिज्ञातपापकर्मा जीव के  
कृत कारित अनुमोदना आदि के भेद से सत्ताईस भंगरूप सावद्यक्रिया के अनुष्ठान से  
नरक निगोद आदि नाना प्रकार की योनियों में पुनः पुनः दुःखानुभव करने के विषयमें

उत्पन्न थईने विचित्रकर्मोना उदयथी पोत-पोताना कर्मोना अनेक प्रकारना दुःखइय  
इलने अनुभव करे छे. (सू० ८)

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे-‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ-भगवाने परिज्ञाने उपदेश आप्ये छे. (९)

टीकार्थ- हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा जीव विभाव परिणाम धारण करता  
हुआ नाना प्रकारनी योनियोमां वारवार दुःख पाये छे. अपरिज्ञात-पापकर्मा जीवना  
कृत कारित अने अनुमोदना आदिना भेदथी सत्तावीस भंगइय सावद्य क्रियाना अनुष्ठानथी  
नरक-निगोद आदि नाना प्रकारना योनियोमां पुनः पुनः दुःख अनुभव करवाना विषयमां

खलु प्रवेदिता । तत्तद्दुःखकारणकर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणी-  
 करणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः परिज्ञा=सम्यग्बोधः । परिज्ञा  
 द्विविधा ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावद्यव्यापारेण कर्मबन्धो भवती'ति ज्ञानं  
 ज्ञ-परिज्ञा । कर्मबन्धकारणस्य सावद्यव्यापारस्य परित्यागः प्रत्याख्यान-परिज्ञा ।  
 अत्रेदमवगन्तव्यम्-अतीतकाले मनसा वाचा कायेन च मया सावद्य-  
 क्रिया कृता, कारिता, अनुमोदिता च, तथा वर्तमानकाले सावद्यक्रियां करोमि,  
 कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यमनुमोदयामि । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावद्यक्रियां  
 करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि । इत्थमनेकविधसा-  
 वद्यव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाद्यनेकविधदुस्सहयातनां

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञा की प्ररूपणा की है । दुःखों के कारणभूत कर्मों के  
 बन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का शरण अवश्य ग्रहण करना चाहिए;  
 ऐसा भगवान् ने कहा है । परिज्ञा का अर्थ है-सम्यग्ज्ञान । परिज्ञा दो प्रकार की है-  
 ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा । सावद्य व्यापार से कर्मबन्ध होता है 'ऐसा जानना  
 ज्ञ-परिज्ञा है । और कर्म बन्ध के कारण सावद्य व्यापारो का परित्याग कर देना प्रत्याख्यान  
 परिज्ञा है । यहाँ यह समझना चाहिए कि-भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावद्य क्रिया  
 की, कराई और उस की अनुमोदना की, तथा वर्तमान काल में सावद्य क्रिया करता हूँ, कराता  
 हूँ और दूसरे करने वाले का अनुमोदन करता हूँ, । इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावद्य  
 क्रिया करूँगा, कराऊँगा, और दूसरे का अनुमोदन करूँगा । इस प्रकार भौति-भौति का  
 सावद्य व्यापार करता हुआ जीव संसार में परिभ्रमण करता है और नरक निगोद आदि की

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञानी प्ररूपणा करी छे. दुःखोना कारणभूत कर्मोना  
 बंधनो नाश करवा भाटे ज्वने परिज्ञानुं शरणु अवश्य ग्रहणु करवुं लेधिये, ये  
 प्रमाणे भगवाने कहुं छे. परिज्ञानो अर्थ छे सम्यग्ज्ञान. परिज्ञा ये प्रकारनी छे-  
 (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा 'सावद्य व्यापारथी कर्मबंध थाय छे.'  
 आ प्रकारे समजवुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने कर्मबंधना कारणथी सावद्य व्यापारोना  
 त्याग करी देवो ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे. अहिं आ प्रमाणे समजवुं लेधिये के:-  
 भूतकालमां में मन, वचन, कायाथी सावद्य क्रिया करी छे, करावी छे. अने तेने  
 अनुमोदन आय्यु छे तथा वर्तमान कालमां सावद्य क्रिया करुं छुं, करावुं छुं, अने  
 भीज करवावाणाने अनुमोदन आपुं छुं. आ प्रमाणे भविष्यकालमां पणु सावद्य क्रिया  
 करीश. करावीश अने भीजने अनुमोदन आपीश. आ प्रमाणे अनेक तरेहुना जूहा-जूहा

चानुभवति । एवं ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावद्यक्रिया परित्याज्येति भगवता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सहसम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जाति-स्मृत्या वा ) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मान्निश्चयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव-जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीवः ? इत्याशङ्क्यामाह—‘ इमस्स चैव.’ इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अनेक प्रकार की दुस्सह यातनाएँ भोगता है, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सावद्य क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार भगवान्ने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, या, मतिज्ञान से होता है । इस लिये निश्चयव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के लिए हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावद्य क्रियाएँ दुःख का कारण हैं तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशंका का समाधान करते हैं—‘ इमस्स चैव.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के लिए, परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख दूर करने के लिए, ( जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है ) ॥ सू. १० ॥

सावद्य व्यापार करते। एव संसारमां परिभ्रमणु करे छे, अने नरक, निगोह आदिनी अनेक प्रकारनी कठिन यातनाओ लोगवे छे आ प्रमाणे ज्ञ-परिज्ञाथी ज्ञणीने प्रत्या-ख्यान-परिज्ञाथी सावद्य क्रिया त्यागवा योज्य छे, आ प्रमाणे लगवाने उपदेश आप्ये छे.

आ बोध-अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान अथवा जातिस्मरणथी थाय छे, अथवा तो मतिज्ञानथी थाय छे. ये भाटे निश्चय-व्यवहाररूप संयममार्गमां प्रवृत्ति करवी येज एवने भाटे हितकर छे, अने येनाथी परमपद मोक्ष थाय छे (सू० ९)

जे के सावद्य क्रियाओ दुःखनुं कारणु छे, तो तेमां एव प्रवृत्ति शा भाटे करे छे ? ये शंकांनुं समाधान करे छे—‘ इमस्स चैव.’ इत्यादि.

मूलार्थ—आ एवने भाटे, परिवंदन, मानन, अने पूजन भाटे, जन्म मरणथी मुक्त थवा भाटे, दुःख दूर करवा भाटे (एव पापक्रियामां प्रवृत्त थाय छे). (१०)

टीका—‘अस्य’ इति-अस्य=प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य वारितरङ्गवच्चञ्चलतरस्य, सन्ध्यारागवच्चरितभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य चिरसुखार्थमपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मबन्धहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तते । यथा-जीवनार्थं लावकतित्तिरादिपक्षिणां, अजमेषमृगमृगराजादिपशूनां वधरूपघोरकर्मसमाचरणम् । तथा-परिवन्दनमानन-पूजनाय, तत्र-परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-स्वख्यातिमाप्त्यर्थं सापराधनिरपराध-प्राणिनां हिंसनम् । माननम्=अभ्युत्थानासनदानादिरूपः सत्कारः, स्वाज्ञास्वीकारो वा, तदर्थम्, यथा-माननार्थं परेषां हिंसनादिकरणम् । पूजनम्-रत्नवस्त्रादिपुरस्कारः, प्रतिमादीनां पूजाप्रतिष्ठादि च, तदर्थं, प्राण्युपमर्दनरूपहिंसादिसावध-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव किये जाने वाले, जलकी तरङ्ग के समान अतिशय चंचल, सन्ध्या की लालिमा के समान भङ्गुर-जीवन के चिरकालीन सुख के लिए अपरिज्ञातकर्मा जीव कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । जैसे-जीवित रहने के लिए; लावा, तीतर आदि पक्षियों का और बकरा, मेढा, हिरन एवं सिंह आदि पशुओं का वधरूप घोर पापकर्म का आचरण करना ।

तथा परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए जीव पापकर्म करता है । ‘परिवन्दन’ का अर्थ है प्रशंसा । प्रशंसा के लिए सापराध और निरपराध प्राणियों का घात किया जाता है । उठकर खड़ा होना, आसन देना आदि सत्कार, अथवा अपनी आज्ञा स्वीकार कराना ‘मानन’ कहलाता है, इस के लिए भी दूसरों की हिंसा की जाती है । रत्नों और वस्त्रों आदि का पुरस्कार ‘पूजन’ कहलाता है, और प्रतिमा आदि की पूजा-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव करवामां आवेला जलना तरंगोनी समान अतिशय चंचल, सन्ध्यानी लालाश (रातापण्ण)नी समान लंगुर एवनना लांभा समयना सुभ माटे अपरिज्ञातकर्मा एव कर्मबन्धनी कारणभूत क्रियाओमां प्रवृत्त थाय छे. जेवी रीते एवित रडेवा माटे लावा तेतर, आदि पक्षीओना अने बकरा, मेढा, हुरणु अने प्रमाणे सिंह आदि पशुओना वधइय घोर पापकर्मनुं आचरणु करवुं.

तथा परिवन्दन, मानन अने पूजन माटे यणु एव पाप कर्म करे छे. ‘परिवन्दन’नो अर्थ छे:-प्रशंसा, प्रशंसा माटे अपराधवाणा अने अपराध विनानां प्राणीओना घात करवामां आवे छे उठीने उला थर्ध जवुं. आसन आपवुं आदि सत्कार अथवा पोतानी आज्ञा स्वीकार करावणी ते ‘मानन’ कडेवाय छे, ते माटे यणु भीजनी हिंसा करवामां आवे छे. रत्न अने वस्त्रो आदिनो पुरस्कार ते पूजन कडेवाय छे, अने प्रतिमा

क्रियां करोति । जातिमरणमोचनाय=जातिर्जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखप्राप्त्यर्थं  
श्रम्पापातादिकं समाचरति । मरणार्थम्=मरणं येषां पित्रादीनां संजातं, तदर्थं  
पिण्डदानादिक्रियासु प्रवर्त्तते । यद्वा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरनि-  
र्यापनार्थम् । यद्वा-मरणार्थं=मृत्युनिवृत्त्यर्थं मिथ्यात्वबुद्ध्या देवीपूजादौ  
बलिदानादिकरणम् । मोचनम्=आत्मनः कर्मबन्धापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या  
पञ्चाग्नितापादौ प्राण्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्त्तते । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखानां  
प्रतिघातो=विध्वंसस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा-व्याधि-

प्रतिष्ठा वगैरह भो 'पूजन' है, उसके लिए भी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा वगैरह  
सावध क्रियाएँ करता है ।

जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए सावध क्रियाएँ की जाती हैं ।  
'जाति'-जन्म के लिए जैसे आगामी भव में सुख प्राप्त करने के उद्देश से जीव  
श्रम्पापात-(अग्नि तथा पाणीमें पडकर अथवा ऊपरसे गिरकर मरना) आदि का  
आचरण करता है । 'मरण'-पिता आदि का मरण होने पर उनके लिए पिण्डदान आदि  
क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । अथवा-मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिशोध (वदला) लेने  
के लिए पाप करता है । अथवा मृत्यु टालने की मिथ्याबुद्धि से देवी वगैरह के लिए बलिदान  
आदि करता है । तथा 'मोचन' के लिए अर्थात् अपना कर्मबन्ध हटाने के लिए विपरीतमति हो  
कर पञ्चाग्निताप आदिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है । तथा 'दुःखप्रतिघातहेतुं' दुःखों  
को निवारण करने के लिए हिंसा आदि पाप करता है । जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(भूति) आदिनी पूजा-प्रतिष्ठा वगैरे यत् 'पूजन' छे. तेना माटे यत् एव, प्राणियोनु  
उपमर्दनरूप हिंसा वगैरे सावध क्रियाओ करे छे.

जन्म अने मरणथी छुटवा माटे यत् सावध क्रियाओ करवाभां आवे छे. जाति-जन्म  
माटे, जेभ आगामी भवभां सुख प्राप्त करवाना उदेशथी एव अ पापात (अग्नि के पाणीभां  
पडीने मरवुं. उंचेथी पडतुं भूडवुं) आदिनुं आचरण करे छे. 'मरण' पिता आदिना मरण  
प्रसंगे तेना माटे पिण्डदान आदि क्रियाओभां प्रवृत्त थाय छे, अथवा मृत्यु निवारण माटे  
मिथ्याबुद्धिथी देवी वगैरेने बलिदान आदि आपवां. तथा 'मोचन' माटे अर्थात् पेताना  
कर्मबन्धने हर करवा माटे विपरीत मतिथी पञ्चाग्निताप आदिरूप हिंसाभां प्रवृत्त थाय छे.  
तथा 'दुःखप्रतिघातहेतुं'-दुःखोनुं निवारण करवा माटे हिंसाआदि पाप करे छे. जेभ रोग

विध्वंसनबुद्ध्या मांसं भक्षयति, मदिरादिकं पिवति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्यासादि-  
शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं वह्निवनस्पत्याधारम्भं करोति । अत्र कारितानुमोदित-  
भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः ।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः  
संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः  
कर्मसमारम्भरूपा सकलसावद्यक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति-  
' एयावन्ति ' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस वगैरह  
निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का  
आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के  
भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण संसारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं  
द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव  
करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावद्य क्रियाओं का त्याग करना  
चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते  
हैं—“ एयावन्ति. ” इत्यादि ।

भटाडवानी बुद्धिथी मांस आय छे, मदिरा वगेरेनुं पान करे छे, वनस्पतिनां भूण, छाल,  
पांढडां रस वगेरे काटे छे. शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलो भाटे अग्नि अने वनस्पति  
आदिनो आरंभ करे छे. अर्हि कराववुं अने अनुमोदन आपवुं, तथा भूत भविष्य  
काल आदि ना लेहथी कर्मसमारंभरूप अन्य क्रियाओ पणु समणु लेवी लेहथे.

आ प्रमाणे अपरिज्ञातपापकर्मा होवाना कारणे, संसारी एव कर्मसमारंभरूप  
क्रियाओद्वारा संसारमां, समस्त दिशाओमां भ्रमणु करतो अनेक योनियोमां दुःख-  
नोण अनुभव करे छे. आ प्रमाणे समणुने लव्य एवोअे पापकर्मजनक सावद्य  
क्रियाओनो त्याग करवो लेहथे. (सू० १०)

कर्मसमारंभरूप क्रियाविशेषोनु स्मरणु कराववा भाटे पूर्वोक्त अर्थने इरी  
कहे छे:—‘ एयावन्ति ’ इत्यादि.

मूलम्—एवावन्ति सव्वावन्ति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवन्ति ॥ सू. ११ ॥

छाया—एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥ सू. ११ ॥

टीका—‘एतावन्तः’ इति-लोके=जिनशासने कर्मसमारम्भाः=कर्मबन्धहेतवः क्रियाविशेषाः सर्वे एतावन्तः । कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधानां कर्मसमारम्भाणां प्रत्येकमतीतवर्तमानानागतत्रयभेदेन नवविधानां पुनर्मनोवाक्कायभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति रीत्या पूर्वकथितसप्तविंशति-भङ्गवन्तः । न तु तेभ्योऽधिका इत्यर्थः । एते च कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति, एतत्परिज्ञानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः । ज्ञाते सति पुनः पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न त्वत्र प्रमादः कार्य इति भावः ॥ सू. ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिज्ञानस्य फलमाह—‘जस्सेते.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशासन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिनशासन में कर्मबन्ध के कारण इतने ही हैं । कृत, कारित, और अनुमोदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं । ये नौ भेद मन, वचन, काय के भेदसे सत्ताईस भङ्गरूप हो जाते हैं । इस प्रकार सत्ताईस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न कम है और न अधिक है । उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए । जान लेने के पश्चात् उनका बार-बार स्मरण करना चाहिए । इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के ज्ञानका फल बतलाते हैं—‘जस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशासनम आटला कर्मसमारंभ जाणुवा योग्य छे (११).

टीकार्थ—जिनशासनमां कर्मबन्धनां कारण आटलांज छे. करवुं. कराववुं अने अनुमोदने आपवुं आ लेदथी त्रणुं कारण कर्मसमारंभोने लूतकाल, वर्तमान अने भविष्य कालनी साथे गुणाकार करवाथी व लेद थाय छे. आ नव लेद मन, वचन, कायाना लेदथी सत्तावीस लंगरूप थर्छ जय छे. अे प्रमाणे सत्तावीस तरेडना कर्मसमारंभोने जाणुवा जेधये. अेनाथी अोछा नथी अने अधिक पणु नथी. तेने जाणुवा माटे यत्न करवे जेधये. जणुया पछी तेनुं वारंवार स्मरण करवुं जेधये. आ विषयमां प्रमाद नडि करवे जेधये. (११)

कर्मसमारंभना ज्ञाननुं क्षण अतावे छे:—‘जस्सेते’ इत्यादि.



मूलम्—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से ह्मु णुणी परिण्णायकम्मे—त्तिवेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘यस्य’ इति—लोके यस्य=भव्यजीवस्य एते=प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता भवन्ति=‘ एते हिंसादयः सप्तविंशतिभङ्गवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे हेतवो भवन्ति ’ इत्येवं जपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धनिवन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः ।

इति=आत्मतत्त्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं, सावद्यक्रियानिवृत्तिपुरस्सर मुनेर्विहरणं चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० १२ ॥

टीकार्थ—लोक में जिस भव्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भंगों वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात-कर्मा है । जो ज-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रियाओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

‘त्ति वेमि’ इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निवृत्तिपूर्वक

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारंभ जाने दे छे, ते मुनि निश्चयथी परिज्ञात-कर्मा छे. ओ प्रमाणे हुं कहुं छुं. (सू० १२)

टीकार्थ—लोक में जो लव्य लवने पूर्वोक्त कर्मसमारंभ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंको उत्पादक सावद्य व्यापार जानुवा में आवी जय छे. अर्थात् जो पूर्वो कहेला सतावीस लंगोवाणा हिंसादिक्रियाविशेषोने पोताना कर्मबंधनुं कारण समल दे छे ते परिज्ञातकर्मा छे. जो ज-परिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारण समलने प्रत्याख्यान-परि-ज्ञाथी सम्पूर्ण सावद्य क्रियाओंको त्याग करे छे. ते निश्चयथी परिज्ञातकर्मा मुनि छे.

त्ति वेमि—इति=आ प्रमाणे आत्माना स्वरूपनुं निरूपण, कर्मबंधना कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारोंको स्वरूपनुं प्रदर्शन, अने सावद्य क्रियांनी निवृत्तिपूर्वक मुनिनुं

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम् । यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च-छन्नस्थानां दृष्टयोप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सङ्ग्रहगाथा-

“ सुअणाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं ।

छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थि-त्त सुइयं इइणा ॥ १ ॥ ” इति ।

सावद्यक्रियायाः षड्जीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकतया सावद्यक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञया व्यपदेशः । ॥ सू. १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिका विचरना जो तीर्थंकर भगवान् महावीर के सन्निकट मैंने साक्षात् सुना है वही ' ब्रवीमि '=मैं कहता हूँ, अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात यह है कि छन्नस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सङ्ग्रहगाथा है:—

“ सुख के अभिलाषी भव्यों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए छन्नस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ ' इति ' शब्द से सूचित किया गया है ” ॥ १ ॥

सावद्य क्रिया षड्जीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावद्य क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विचरवुं. जे तीर्थंकर लगवान महावीर पासै में साक्षात् सांलज्यु छे, तेज ' ब्रवीमि '=हुं कहुं छुं, पोतानी बुद्धिथी कल्पित कहेतो नथी. पोतानी बुद्धिथी— तीर्थंकरनी वाणीनी अपेक्षा नही राखीने कहीअे तो श्रुतज्ञाननो अविनय थाय छे. भील वात अे छे के:—छन्नस्थनी दृष्टि पणु अपूर्णुं होय छे, ते कारणुथी लगवान द्वारा प्रतिपादन कराअेहुं तत्वज हुं तमने कहुं छुं. अहिं आ सङ्ग्रहगाथा छे.—

“ सुअना अबिलाषी लज्येअे श्रुतज्ञानना अविनयनो त्याग करवो जेधअे. छन्नस्थानी दृष्टि पूर्णुं होय नही. अे प्रमाणे ' इति ' शब्दथी सूचना करवामां आवी छे.”(७)

सावद्य क्रिया षड्जीवनिकाय भाटे शस्त्र (इथीआर) समान घातक छे. अे कारणुथी सावद्य क्रियाना स्वरूपनो बोध करावनाइं आ प्रथम-अध्ययन छे, तेनुं शस्त्रपरिज्ञानाम पड्यु छे.

नामक प्रथम अध्ययननो प्रथम उद्देश

संपूर्ण ( १-१ )

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिमूत्रम्—‘अट्टे’ इत्यादि ।

तथा—इह ‘पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषांश्चि’—दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते—‘अट्टे’ इत्यादि ।

प्रथम 'अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है । अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है—‘अट्टे’ इत्यादि ।

तथा—पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि—किन्हीं—किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता । वह ज्ञान क्यों नहीं होता ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—‘अट्टे’ इत्यादि ।

पडैला अध्ययनना - भीजे उद्देश.

पडैला उद्देशमां सामान्यरूपथी आत्माना स्वरूपनुं निरूपणुं करवामां आव्युं छे. उवे विशेषरूपथी आत्मानुं स्वरूप समजववाना उद्देशथी भीजे उद्देशना आरंभ करवामां आवे छे, तेनुं आ आदिसूत्र छे—‘अट्टे’ इत्यादि.

तथा—पडैला उद्देशमां अताववामां आव्युं छे के-केध-केध उवोने पूर्व-लवना स्मरणरूप विशिष्ट-उत्तम असाधारण ज्ञान थतुं नथी. ते ज्ञान केम थतुं नथी ? अेवी अज्ञासा थवाथी उडे छे—‘अट्टे’ इत्यादि.

तथा-अयमात्मा परिज्ञातकर्मतया सकलसावद्यक्रियानिवृत्तः सन् मुनि-  
भवतीत्युपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिज्ञातकर्मा स खलु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षा-  
यामाह-‘ अद्वे ’ इत्यादि ।

अद्वे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए, अस्सि लोए पव्वहिए तत्थ तत्थ  
पुढो पास, आतुरा अस्सिं परितावेति ॥ सू. १ ॥

छाया—

आर्तः लोकः परिघ्नः ( परिजीर्णः ) दुःसंबोधः अविज्ञानकः अस्मिन् लोके  
प्रव्यथिते तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुरा अस्मिन् परितापयन्ति ॥ सू. १ ॥

तथा-यह कहा जा चुका है कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त  
सावद्य व्यापारों से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर जिसने कर्मों का स्वरूप नहीं  
समझा है, उस आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—  
‘ अद्वे ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—( कर्मबन्ध का स्वरूप न समझने वाला ) आर्त लोक परिजीर्ण है—असमर्थ  
है, बोध पाने में अशक्त है, अज्ञान है, इस लोक में व्यथित है, पृथक्-पृथक् जीवों को  
देखो । वे आतुर-अज्ञानी-होकर जीवोंको परिताप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

तथा-એ પ્રમાણે કહી ચૂકયા છીએ કે આત્મા કર્મોના સ્વરૂપને સમજીને અને  
સમસ્ત સાવધ વ્યાપારોથી વિરત (દૂર) થઈને મુનિ થઈ જાય છે, પણ જેઓ કર્મોના  
સ્વરૂપને સમજ્યા નથી તે આત્માની સ્થિતિ કેવી થાય છે ? એવી જિજ્ઞાસા થવાથી  
કહે છે:-‘ અદ્વે ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(કર્મબંધના સ્વરૂપને નહીં સમજવાવાળા) આર્તલોક પરિજીર્ણ છે.  
અસમર્થ છે. બોધ પામવામાં અશક્ત છે. અજ્ઞાન છે. આ લોકમાં દુઃખી છે. જૂદા-જૂદા  
જીવોને જુઓ તે આતુર-અજ્ઞાની થઈને જીવોને પરિતાપ પહોંચાડે છે. (૧)

## टीका-

लोकः=पृथिव्यादिषड्जीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-  
हेतुभूतसावद्यक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति ।  
अत एव परिद्वूनः=शारीरमानसादिदुःखानलसंतप्तः । यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-  
भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसंबोधः=ब्रह्मदत्तवच्चरणकरण-  
शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव  
पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः । 'पश्य' इति पदेन शिष्येति  
संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य ! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-  
वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावद्य व्यापारो का स्वरूप न  
समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं । अतएव वे शारीरिक और  
मानसिक दुःखों की आग से संतप्त हैं । अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण  
मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते । इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और  
कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं । ऐसे जीव अविज्ञानक अर्थात् सम्यग्ज्ञान  
से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव की स्मृतिरूप विशिष्ट ( जातिस्मरण ) ज्ञान  
भी नहीं होता ।

'पश्य' ( देखो ) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया  
गया है । हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, प्यास, त्रास, इष्टवियोग,

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथ्वीकाय आदि छ प्रकारना लवसभूड ज्ञानावरण  
आदि आठ प्रकारना कर्मोना अंधना कारणे सावद्य व्यापारोना स्वइपने नहि समलने  
आर्त थाय छे. विषय सुखनी तृष्णाथी व्याकुल थाय छे. ते कारणथी ते शारीरिक  
अने मानसिक दुःखोनी आगथी संतप्त-भूतपेला छे. अथवा क्षायोपशमिक भावोना  
अभावना कारणे मोक्षमार्गमां प्रवृत्ति करी शकता नथी. ये कारणथी ते ब्रह्मदत्तनी  
पेठे चरण अने कारणनी शिक्षा लेवामां पणु असमर्थ छे, येवा लव अविज्ञानक  
अर्थात् सम्यग्ज्ञानथी रहित होय छे. आ कारणथी तेने पूर्वभवनी स्मृतिइय विशिष्ट  
( जातिस्मरण ) ज्ञान पणु थतुं नथी.

'पश्य' ( देखो—लुवो ) आ पदथी शिष्यना सम्बोधननुं अध्याहार करवामां  
आव्युं छे; हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मोना उदयथी लूख, तरस, त्रास, इष्टवियोग,

पिपासा-त्रास-प्रियवियोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडिते, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्व प्राणिषु पृथक्=प्रत्येकं पश्य । आतुराः=विषयसुखतृष्णाव्याकुला अज्ञानिनः अस्मिन् लोके परितापयन्ति=पृथिव्यादिजीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्यर्थः ।

यद्वा-लोकः-षड्जीवनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेषः । कुतः कारणाद् आर्तः ? इत्यत आह-‘परिजृण्णे’ इति । यतः परिजीर्णः=मोक्ष मार्गप्रवृत्तावक्षमः । कथं परिजीर्णः ? इत्यत आह-‘दुस्संबोधे’ इति, यतो दुःसंबोधः ब्रह्मदत्तवच्चरणकरणशिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः । दुःसंबोधः कुतोऽस्ती ?- इत्यत आह-यतः-अविज्ञानकः=विज्ञानरहितः, पूर्वभवार्जितघोरतरहिंसादिदुरितकर्म-

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा आदि से पीडित इस लोक में जहाँ पृथक्-पृथक् प्राणियों को देखो । वे विषयसुख के लिए व्याकुल एव ज्ञानहीन हो कर संसार में संताप भोग रहे हैं । वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीडा पहुंचाते हैं ( यह देखो ) ।

अथवा-षड्जीवनिकारूप यह लोक आर्त है-पीडा भुगत रहा है । यह किस कारण से आर्त है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-वह परिजीर्ण अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है । यह परिजीर्ण क्यों है ? इस का समाधान यह है कि-वह दुःसंबोध है अर्थात् ब्रह्मदत्त की भाँति चरण-करण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त है । वह दुःसंबोध क्यों है ? इस का कारण यह है कि-वह ज्ञानहीन है अर्थात् पूर्वभव में उपार्जन किये हुए घोरतर हिंसा आदि पापकर्मोंके वश हो कर एवं अत्यन्त

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा, आदिथी पीडित आ लोकमा न्यां-त्यां नूदा-नूदा प्राणीओने जुओ, ते विषयसुख भाटे व्याकुल ओव ज्ञानहीन थधने संसारमा संताप लोगवी रह्या छे. ते पृथिवीकाय आदि लुवोने पीडा पडोआडे छे. ते जुओ.

अथवा षड्जीवनिकारूप आ लोक आर्त छे-पीडा लोगवी रह्या छे. ते शुं कारणथी आर्त छे ? आ प्रश्नो उत्तर ओ छे के:-ते परिजृण्णुं अर्थात् मोक्ष मार्गमा प्रवृत्ति करवाने असमर्थ छे. ते परिजृण्णुं शा भाटे छे ? तेनु समाधान ओ छे के-ते दुःसंबोध छे, अर्थात् ब्रह्मदत्तनी प्रभाणे चरण-करणनी शिक्षा ग्रहण करवामां अशक्त छे. ते दुःसंबोध शा भाटे छे ? तेनु कारण ओ छे के:- ते ज्ञानहीन छे. अर्थात् पूर्व-भवमां उपार्जन करेला घोरतर हिंसा आदि पापकर्मोने वश थधने, ओम-ओ प्रभाणे

वशतः प्रगाढमिथ्यात्वमोहनीयोदयात् प्रगाढमोहाक्रान्त इत्यर्थः । एवं स्वकर्मवशतः परिपीडितमपि नितान्तदयनीयमपि रागद्वेषमोहान्धाः परितापयन्तीत्याह—अस्मिन् लोके' इत्यादि । अस्य व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ।

'पश्य' इति पदेन भागवता मां संबोध्य यथोपदिष्टं तथा कथयामीति जम्बूस्वामिनं श्रीसुधर्मा स्वामी प्रतिबोधयति ।

'प्रव्यथिते' इति विशेषणपदं च स्वस्वकर्मणैव नानाविधवेदना-समन्वितानामपि पृथिव्यादिषड्जीवनिकायानां परिपीडने विषयसुखतृष्णाक्रान्ताना-

गाढे मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से मोहयुक्त है । इस प्रकार अपने कर्मों से पीडित और अत्यन्त दयनीय पृथ्वीकाय आदि जीवों को राग-द्वेष और मोह से अन्धे पुरुष पीडा पहुंचाते हैं । 'अस्मिन् लोके'—(इस लोक में) इत्यादि की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए.

'पश्य' ( देखो ) इस पद से श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि—मुझे संबोधन करके भगवान् ने जैसा उपदेश दिया है वैसा ही मैं कहता हूँ ।

'प्रव्यथिते' पद से यह सूचित किया गया है कि—बेचारे षट्काय के जीव अपने-अपने कर्मों के कारण नाना प्रकार की वेदनाएँ भोग ही रहे हैं, इस पर भी विषय-सुख के लोलुप लोग उन्हें और सताते हैं । उन्हें दुःखी देख कर भी इनके

अत्यन्त गाढा मिथ्यात्वमोहनीयता उदयथी मोहयुक्त छे. ओ प्रकारे पोताना कर्मोथी पीडित अने अत्यन्त दयापात्र पृथ्वीकाय आदि लोकोने राग-द्वेष अने मोहथी अंध थयेल पुरुष पीडा पहुँचाउ छे 'अस्मिन् लोके' (आ लोकमां) इत्यादिनी व्याख्या प्रथम प्रमाणे समल लेवी लेईअे.

'पश्य' ( लुओ ) आ पदथी श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे के:- भने संबोधन करीने लगवाने जेवे उपदेश आये छे तेवो लुं कहुं छुं.

'प्रव्यथिते' पदथी ओ सूचित करवामां आवे छे के:- भियारा षट्कायना लुव पोत-पोताना कर्मोना कारणे नाना प्रकारनी वेदनाओ लोगवीर रह्या छे. ते उपरांत पणु विषय-सुखना लोलुप भाणुसो. तेने वधारे सतावे छे. तेने दुःखी लेईने पणु

मातुराणां हृदयं मनागपि न द्रवति; प्रत्युत मृगान् क्षुधितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादि-  
प्राणिगणं प्रणिघ्नन्ति, इति संसूचयति ॥ सू. १ ॥

तत्र षड्जीवनिकायरूपे लोके प्राथम्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह—‘ संति  
पाणा ’ इत्यादि ।

मूलम्—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास । अणगारामो—त्ति एगे  
पवयमाणा जमिणं विरुक्खुवेहिं सत्थेहि पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणा  
अण्णे अणेगरुवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके  
प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणा  
अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मन में दया नहीं आती, प्रत्युत भूखा वाघ जैसे मृगों को मारता है उसी प्रकार विषय-  
लोलुप लोग उन जीवों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

षड्जीवनिकायरूप लोक में पृथ्वीकाय पहला है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार  
कहते हैं—‘ संति पाणा ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वी में अलग-अलग प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के आरंभ की निवृत्ति करने  
वालों ( मुनियों ) को पृथक् समझो । ‘ हम अनगार हैं ’ इस प्रकार कहनेवाले द्रव्यलिङ्गी नाना  
प्रकार के पृथ्वीशस्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुए  
अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू. २ ॥

तेना मनमां दया आवती नथी, परन्तु भूभये वाघ नेम भृगोने मारे छे, ते प्रमाणे  
विषय-लालुप लोक ते लोवोनी हिंसा करे छे. (१)

षड्जीवनिकायरूप लोकमां पृथ्वीकाय प्रथम छे, ते कारण्थी पृथ्वीकायने  
अधिकार कडे छे:—‘ संति पाणा ’ इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीमां अलग-अलग प्राणी छे. पृथ्वीकायना आरंभनी निवृत्ति  
करवावाणा (मुनियो)ने बूढा लल्लो. परन्तु ‘ अमे अनगार-साधु मुनि छीये. ’ आ  
प्रकारनुं कडेवावाणा द्रव्यलिङ्गी (वेष धारणु करनारा) नाना-प्रकारना शस्त्रोथी पृथ्वी  
कर्मने समारंभ करीने पृथ्वीशस्त्रने आरंभ करता थका अनेक प्रकारना अन्य  
प्राणीओनी पणु हिंसा करे छे. (२)



## टीका—

प्राणाः=प्राणाः सन्ति येषामित्यर्थऽचूत्ययः, प्राणिन इत्यर्थः । पृथक्=भिन्नभिन्नतया श्रिताः=स्वस्वशरीराधिष्ठिताः सन्ति । यद्वा-श्रिताः-पृथिव्याश्रिताः=अङ्गुलासंख्यातभागप्रमाणस्वशरीरावगाहिनः पृथिव्यामवस्थिताः पृथिवीकायिकाः, प्राणाः=जीवाः, पृथक्=पृथग्भावेन सन्ति, इति पश्य । इदमुक्तं भवति-पृथिव्या एकदेवतारूपत्वं मन्यमाना भ्रान्ताः, वस्तुतस्तु प्रत्येकशरीररूपाणामसंख्यात-पृथिवीकायिकजीवानां समुदायः पृथिवी । एवं च पृथिवी सचित्ताऽनेकजीवाधिष्ठिता चेति ।

अथ द्वारप्रदर्शनेन वस्तुस्वरूपं सम्यग् निर्णीयते तस्माद् द्वारणि

टीकार्थ—प्राण का अर्थ है प्राणी । प्राणी पृथक्-पृथक् आश्रित है अर्थात् अलग-अलग प्राणी अपने-अपने शरीर में रहते हैं । अथवा 'श्रित' का अर्थ है-पृथ्वी में आश्रित । अङ्गुल के असंख्यातवे भाग अवगाहना वाले जीव पृथ्वी-आश्रित हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव पृथक्-पृथक् हैं । यह देखो । तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को एक ही देवता मानने वाले लोग भ्रम में हैं । वास्तव में पृथ्वी प्रत्येक शरीर वाले असंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का पिंड है । इसी प्रकार पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है ।

द्वारों के प्रदर्शन से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अतः यहाँ द्वार

टीकार्थ—प्राणुना अर्थ प्राणी छे. प्राणी पृथक्-पृथक् आश्रित छे, अर्थात् अलग-अलग प्राणी पोत-पोताना शरीरमां रडे छे. अथवा 'श्रित'ना अर्थ छे. 'पृथ्वीमां आश्रित' आंगलना असंख्यातमां लागनी अवगाहनावाणा अे एव पृथ्वी-आश्रित छे. अेवा पृथ्वीकायना एव ब्रूहा-ब्रूहा छे ते बुभो.

तात्पर्य अे छे डेः—पृथ्वीने अेकज देवता मानवावाणा लोक भ्रममां छे वास्तविक रीते तो पृथ्वी प्रत्येक शरीरवाणा असंख्यात पृथ्वीकायिक एवोना पिंड छे. आ प्रमाणे पृथ्वी सचित्त छे, अने अनेक एवोथी अधिष्ठित छे.

द्वारोना प्रदर्शनथी वस्तुनुं स्वरूप स्पष्ट थर्ध नय छे; अेटडे अरुि द्वार अता-

प्रदर्श्यन्ते—(१) लक्षणं, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणं, (४) वधः, (५) शस्त्रम्, (६) उपभोगः, (७) वेदना, (८) निवृत्तिश्चेत्यष्टौ । उक्तञ्च—

“लक्खण १ प्ररूपणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं ५ च । उपभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वत्ती ८ अट्ट दाराइं ॥ १ ॥”

(१) लक्षणद्वारम्—

ननु पृथिवी सचेतनाऽस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—अनुमानमेव तावत्प्रथमं गृहाण । पृथिवी सचेतना तदधिष्ठितशरीरोपलब्धेः, गवाश्वादिवत् ।

बतलाये जाते हैं—(१) लक्षण, (२) प्ररूपणां, (३) परिमाण, (४) वध, (५) शास्त्र, (६) उपभोग, (७) वेदना, और (८) निवृत्ति । ये आठ द्वार है । कहा भी है—

“लक्खण १ प्ररूपणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं च ५ । उपभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वत्ती ८ अट्ट दाराइं ॥ १ ॥” इति ।

लक्षण, प्ररूपणा, परिणाम, वध, शास्त्र, उपभोग, वेदना और निवृत्ति, ये आठ द्वार कहे गये है । ॥ १ ॥

शंङ्का—पृथ्वी सजीव है इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिए—पृथ्वी सचेतन है, क्यों कि उसमें चेतना से अधिष्ठित शरीर की उपलब्धि होती है, गाय और अश्व के समान ।

ववाभां आवे छे डेः—(१) लक्षणु, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणु, (४) वध, (५) शस्त्र, (६) उपभोग, (७) वेदना अने (८) निवृत्ति, आ आठ द्वार छे. कहुं पणु छे डेः—

“लक्खण १ प्ररूपणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं च ५ । उपभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वत्ती ८ अट्ट दाराइं ॥ १ ॥” इति ।

“लक्षणु, प्ररूपणा, परिमाणु, वध, शस्त्र, उपभोग वेदना अने निवृत्ति. आ आठ द्वार कहुं छे.” (१)

(१) लक्षणद्वार—

शंङ्काः—पृथ्वी सजीव छे, ओ विषयभां शुं प्रमाणु छे ?

समाधानः—प्रथम अनुमान प्रमाणुने लखिओ—पृथ्वी सचेतन छे. कारणु डे तेभां चेतनाथी अधिष्ठित शरीरनी उपलब्धि थाय छे. गाय अने अश्वनी समान.

કિન્ન-જીવસ્ય યાનિ લક્ષણાનિ તાનિ પૃથિવીકાયસ્ય સન્તિ, કેવલમત્રસ્ત્યાનર્દિના-મર્શનાવરણકર્મોદ્યાદુપયોગશક્તિર્જ્ઞાનર્શનરૂપા નાસ્તિ વ્યક્તા इत्यव्यक्तरूपेणोपयोगो वर्त्तते । तथौदारिक-तन्मिश्र-कार्मणशरीरात्मकः काययोगो वृद्धयष्टिवत् तस्यालम्बनाय वर्त्तते । तथा मानसिकचिन्ताविशेषवत्सूक्ष्मा आत्मपरिणामविशेषरूपा अध्यवसाया-स्तत्र सन्ति । तथा साकारोपयोगान्तर्गतमतिश्रुतरूपमज्ञानद्वयं च तत्रास्ति । तथा स्पर्शनेन्द्रियमात्रस्य सद्भावादचक्षुर्दर्शनं च । तथा सेवार्त्तसंहननं, चन्द्रमसूर-संस्थानं वास्ति । तथा-मिथ्यात्वादिसद्भावादष्टविधकर्मबन्धोऽपि । कृष्णनील-

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ-જીવ કે જો લક્ષણ હૈં વે સવ પૃથ્વી મેં પાયે જાતે હૈં । હાં, પૃથ્વીકાય મેં સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણ કર્મ કે ઉદય સે જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગશક્તિ પ્રકટરૂપ મેં નહીં હૈ । પૃથ્વી મેં અવ્યક્તરૂપ સે ઉપયોગ રહતા હૈ ।

તથા ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર ઔર કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષ કો લકડીકે સમાન ઉસ કે આલમ્બન કે લિણ વિધમાન હૈ । પૃથ્વી મેં આત્મા કે પરિણામ માનસિકચિન્તા-રૂપ અધ્યવસાય મી મૌજૂદ હૈ ।

પૃથ્વી મેં સાકાર-ઉપયોગ કે અન્તર્ગત મતિ ઔર શ્રુત-અજ્ઞાન મી પાયે જાતે હૈ । અકેલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોને સે અચક્ષુદર્શન મી હૈ । ઔર સેવાર્ત સંહનન, ઈવં ચન્દ્રમસૂર સંસ્થાન મી હૈ । મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિધમાન હોને સે આઠ પ્રકારકા કર્મબન્ધ હોતા હૈ । કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત ઔર તૈજસ યે ચાર લેણ્યાઈ મી પૃથ્વીકાય મેં હૈ ।

ખીલ વાત આ છે કે-જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમાં જોવામાં આવે છે. હા. પૃથ્વીકાયમાં સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપ-યોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમાં નથી. પૃથ્વીમાં અવ્યક્ત રૂપમાં ઉપયોગ રહે છે.

તથા-ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષની લાકડી સમાન તેના આલમ્બન માટે વિધમાન છે. પૃથ્વીમાં આત્માના પરિણામ, માનસિકચિન્તારૂપ અધ્યવસાય પણ મૌજૂદ છે.

પૃથ્વીમાં સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામાં આવે છે. એકલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે. અને સેવાર્ત સંહનન, એ પ્રમાણે ચન્દ્ર-મસૂર સંસ્થાન પણ છે.

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિધમાન હોવાથી આઠ પ્રકારનાં કર્મબન્ધ પણ થાય છે. કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તૈજસ. આ ચાર લેણ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમાં છે.

कापोततैजसलेश्याचतुष्टयं, सूक्ष्मपृथिवीकायस्याद्यलेश्यात्रयम् । तथा—आहारादि-  
सञ्ज्ञा अपि । तथा—वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घाताऽसञ्ज्ञित्वं, नपुंसकवेदः । पर्याप्ति-  
चतुष्टयम् । तथा पृथिवीकायजीवा निरन्तरं सततमुच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति च ।  
एवमुपयोगादिश्वासोच्छ्वासान्तजीवलक्षण समन्वितत्वान्मनुष्यवत्पृथिवीसचित्ताऽस्तीति  
सिद्धम् ।

ननु—उपयोगादीनि जीवलक्षणानि पृथिवीकायजीवेषु कचिन्नोपलभ्यन्ते, तथा  
सति—असिद्धेनैव उपयोगादिजीवलक्षणेन कथं पृथिव्याः सचित्तत्वं साध्यते ? ।

उच्यते—पृथिवीकायजीवेषुमासन्तुसुव्यक्तान्युपयोगलक्षणानि, अव्यक्तानि

सूक्ष्म पृथ्वीकाय में आदि की तीन लेश्याएँ है । आहार आदि संज्ञाएँ भी उसमें है ।

पृथ्वी में वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्घात है, असंज्ञीपन है, नपुंसक वेद है  
और चार पर्याप्तियाँ भी हैं, पृथ्वीकाय के जीव निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेते रहते हैं । इस प्रकार  
उपयोग से लगाकर श्वासोच्छ्वास पर्यन्त जीव के लक्षणों से युक्त होने के कारण पृथ्वी मनुष्य  
के समान सचित्त है, यह बात सिद्ध हुई ।

शङ्का—जीव के लक्षण उपयोग वगैरह पृथ्वीकाय के जीवों में कहीं भी उपलब्ध नहीं  
होते । ऐसी स्थिति में वहाँ उपयोग आदि जीव के लक्षणों का होना असिद्ध है । असिद्ध  
कथन से पृथ्वी की सचित्तता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

समाधान—पृथ्वीकाय के जीवों में भलीभाँति व्यक्त उपयोग आदि लक्षण भले

सूक्ष्मपृथ्वीकायमां आदिनी त्रणु लेश्याभ्यो छे. आहार आदि संज्ञाभ्यो यणु तेमां छे.

पृथ्वीमां वेदना, कषाय अने मारणान्तिकसमुद्घात छे. असंज्ञीपणुं छे. नपुंसक  
वेद छे अने चार पर्याप्तिभ्यो यणु छे. पृथ्वीकायना एव निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेता  
रहे छे. आ प्रमाणे उपयोगथी लक्षणने श्वासोच्छ्वास पर्यन्त एवना लक्षणोथी युक्त  
होवाथी पृथ्वी मनुष्य प्रमाणे सचित्त छे. ते बात सिद्ध थछ.

शङ्का—एवमु लक्षण उपयोग वगैरे पृथिवीकायना एवोमां कोछ स्थणे उप-  
लब्ध थतां नथी. अथी स्थितिमां न्यां उपयोग आदि एवना लक्षणोनुं होवुं ते  
नक्षी नथी. अे असिद्ध कथनथी पृथ्वीनी सचित्तता केवी रीते सिद्ध थछ शके छे ?

समाधान—पृथिवीकायना एवोमां सारी रीते (स्पष्ट) व्यक्त उपयोग आदि

तु तत्र सन्त्येव, यथा—कस्यचिन्मनुष्यस्य अत्युत्कटमदिरातिपानजनित-  
पित्तोदयमूर्च्छितस्य चेतनाया अव्यक्तत्वेऽपि न तस्याचित्तरूपता विज्ञायते, एवं  
पृथिवीकायजीवेष्वव्यक्तचेतना संभवति ।

न चाव्यक्तचेतनाऽभिव्यञ्जकमुच्छ्वासादिकं मद्यमूर्च्छितमनुष्यस्य सचित्त-  
त्वमावेदयति, इह तु न किञ्चिच्चेतनालक्षणं लक्षयत इति वाच्यम् ।

यथा मनुष्यशरीरे क्षतस्थानं मांसादिरिक्तमपि पश्चात्क्षतादिनिवृत्तौ स्वयं  
भ्रियते, तथैव खनितं खनिभूम्यादिकं सजातीयावयवैर्भ्रियमाणं दृश्यते ।

ही न हों, मगर अव्यक्तरूप में तो विद्यमान है ही । जैसे कोई मनुष्य खूब नसैली मदिराका  
डाँटकर पान कर ले और पित्त के प्रकोप से मूर्च्छित हो जाय तो उसकी भी चेतना अव्यक्त  
हो जाती है, फिर भी उसे अचित्त (अचेतन) नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार पृथ्वीकाय  
के जीवों में अव्यक्त चेतना है ।

शङ्का—अव्यक्त चेतना के बोधक उच्छ्वास वगैरह मद्यमूर्च्छित मनुष्य की सचित्तता  
को प्रकट करते हैं; मगर यहाँ (पृथ्वीमें) तो चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देता ।  
ऐसी स्थिति में पृथ्वी की सचेतनता किस प्रकार मानी जाय ?

समाधान—जैसे—मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है तो उस स्थान  
में मांस आदि नहीं रहता । पश्चात् घाव मिट जाने पर वह भर जाता है । इसी प्रकार  
खोदी हुई खान आदि की भूमि अपने सजातीय अवयवों से भरजाती दिखाई देती है ।

लक्षण लक्षे न डोय, परन्तु अव्यक्त रूपमा तो विद्यमान छे. जेभ डोय मनुष्य  
भूष पेटलरीने घणु नीसावाणी मदिरानु पान करी ले अने पित्तना प्रकोपथी  
मूर्च्छित थरु नय तो तेनी पणु चेतना अव्यक्त थरु नय छे, अटके तेने  
अचित्त कही शकता नथी. जे प्रमाणे पृथ्वीकायना जेवामां अव्यक्त चेतना छे.

शङ्का—अव्यक्त चेतनाना बोधक तरीके उच्छ्वास वगैरे मनुष्यनी सचित्तताने  
प्रकट करे छे परन्तु अहिं (पृथ्वीमां) तो चेतनानु डोय पणु लक्षण जेवामां आवतुं  
नथी. जेवी स्थितिमा पृथ्वीनी सचेतनता जेवी रीते मानी शकय ?

समाधान—जेवी रीते मनुष्यना शरीरमां घाव-डोय जणम थरु नय छे तो  
ते स्थानमां मांस आदि रहैतुं नथी. पाछणथी घाव इअरु नतां ते मांसथी लराध नय  
छे. जे प्रमाणे जोदेदी भाणुनी भूमि पोताना सजातीय अवयवोथी लराध नय छे.

एवं च मनुष्यवद् व्रणस्थानभरणरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकवर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् ।

अथवा-विद्रुमपाषाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि-दर्शनात्, शरीरस्थितास्थ्यादिवत् । तद्यथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान घाव का भरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा-पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलभाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा-मूंगा, पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है; जैसे शरीर की हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुवे की पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचित्त मादूम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मूंगा-शिला

ते प्रमाणे मनुष्यना समान घावनुं लराधं नुं ते पणुं ओक चेतनानुं लक्षणुं छे, अने ते पृथ्वीकायमां विद्यमान छे.

अथवा-पृथिवी सञ्जव छे, कारणुं के तेमां प्रतिदिन घसावुं अने वधवुं ते नेवामां आवे छे, पगना तणीआनी प्रमाणे. तात्पर्यं अे छे के-नेम पगना तणी. आने लाग घसाय छे अने इरी पाछा पुष्ट थर् नय छे ते प्रमाणे पृथिवी पणुं प्रतिदिन घसाय छे अने इरी पाछी लराधं नय छे, तेथी पृथिवी पणुं सञ्जव छे.

अथवा-मुंगा (परवाणा) पाषाणुं आदिश्य पृथ्वी सञ्जव छे केमके-तेमां कठिनता डोवा छतांय पणुं वृद्धि वगेरे नेवामां आवे छे, नेवी रीते शरीरना हाडका आदि. तात्पर्यं अे छे के-नेवी रीते शरीरना हाडकां आदि कायणानी पीठ नेवा कठोर डोवा छतांय पणुं सचित्त मादूम पडे छे, अने वृद्धिने प्राप्त थतां डोय तेम देभाय छे, ते

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च—विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्ति-दर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तथाथा—अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीय-धातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च — यथा सास्नाविषाणाद्यवयवसंघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो—त्क्षिप्त—स्पृष्ट—दृष्ट—द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्वं, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इस कारण पृथिवी सचित्त है ।

अथवा—मूंगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहां उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श ( मरसा ) के अंकुर के समान, जैसे अर्श के अंकुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मूंगा—शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि में छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अतः पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई ।

और भी लीजिए—जैसे सास्ना ( गायके गले में लटकने वाली चमड़ी ) सींग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर है, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

प्रमाणे मूंगा (परवाणी) शिला आदि रूप पृथ्वीमां कठिनता होवा छतांय पणु वृद्धि आदि प्रत्यक्ष नेवामां आवे छे, आ कारणुथी पृथ्वी सचित्त छे.

अथवा—मूंगा (परवाणी) आदि पृथ्वी सचित्त छे. केभके—तेनु छेदन थवाथी त्यां तेनी सजातीय धातु, उत्पन्न थाय छे, अर्श (मरसा)ना अंकुर प्रमाणे, नेम अर्शना अंकुर अेकवार कापी नांभवा छतांय पणु इरीथी त्यां ते नतिनेो अंकुर उत्पन्न थाय छे, ते प्रमाणे मूंगा—शिला आदि रूप पृथिवीनुं भाणु आदिमां छेदन करी देवा छतांय पणु तेनी सजातीय धातुओथी ते भाली स्थान लराध नय छे, ते कारणुथी पृथ्वीनी सचित्तता सिद्ध थध.

धीनुं पणु प्रमाणे लध अे, नेम सास्ना (गायना गणांमां लटकवावाणी आभडी) सींग आदि अवयवोना समुदायरूप—गाय, लेंस आदिना शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट, अने द्रव्यत्वना कारणुथी लवनुं शरीर छे, ते प्रमाणे पृथ्वी आदिमां प्रत्यक्ष

छिन्नत्वादिकमपलपितुं न शक्यते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि जीवशरीरत्वं सिद्ध्यति । जीवशरीरत्वेन निरूपितत्वाच्च पृथिव्यादीनामपि करचरणसंघातानामिव कदाचिच्चैतन्यं सिद्ध्यति, नतु सर्वथा शाश्वतिकनिर्जीवत्वं तेषां संभवति, कदाचिदचित्तत्वमपि शस्त्रोपहतत्वादेव भवति करचरणादिवदिति ।

पृथिव्याः सचित्तत्वेऽनेकजीवाधिष्ठितत्वे चागमोऽपि प्रमाणम् । तथाहि—  
“पृथ्वी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं” (दश.४ अ.)

पृथिवी चित्तवती=सजीवा-आख्याता=भगवता कथिता अनेकजीवा=

दिखाई देने वाली छिन्नता आदि का अपलप नहीं किया जा सकता, अतः पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय चैतन्य का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वथा निर्जीवता सिद्ध नहीं हो सकती । पृथिवी आदि कदाचित् निर्जीव होती है सो उसका कारण शस्त्र का उपघात है । शस्त्र के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्जीव हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्जीव हो जाती है ।

पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है, इस विषय में आगमप्रमाण भी है वह इस प्रकार—“पृथ्वी सचित्त कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उन सब की सत्ता पृथक्-पृथक् है,—शस्त्रपरिणत पृथ्वी को छोड़कर ” ( दश. ४. अ. )

अर्थात्—पृथ्वी सजीव है, ऐसा भगवानने कहा है । उस में अनेक एकेन्द्रिय जीव है ।

દેખાઈ આવે તેવી છિન્નતા આદિનો અપલાપ (છતી વસ્તુ દેખાય તે ના કહેવી કે નથી દેખાતી) કરી શકાશે નહિ, એ માટે પૃથ્વી આદિ પણ જીવનું શરીર સિદ્ધ થાય છે. પૃથ્વી આદિ જીવનાં શરીર છે. એ પ્રકારનું નિરૂપણ કરવાથી હાથ-પગની પ્રમાણે તેમાં પણ કેઈ સમય ચૈતન્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. તેની હમેશાં અને સર્વથા નિર્જીવતા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. પૃથ્વી આદિ કદાચિત્ નિર્જીવ હોય છે, તે તેનું કારણ શસ્ત્રનો ઉપઘાત છે. (હથિઆરથી કપાલું-ખોદાલું તે છે) શસ્ત્રના પ્રયોગથી જેમ હાથ-પગ અવયવ નિર્જીવ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી પણ નિર્જીવ થઈ જાય છે.

પૃથ્વી સચિત્ત છે. અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે. આ વિષયમાં આગમ પ્રમાણ પણ છે. તે આ પ્રમાણે:—

“પૃથ્વી સચિત્ત કહેવામાં આવી છે, તેમાં અનેક જીવ છે, અને તે સર્વની સત્તા પૃથક્-પૃથક્ છે; શસ્ત્રપરિણત પૃથ્વીને ત્યજીને.” ( દશવૈકલિક, ૪-અ )

અર્થાત્—પૃથ્વી સજીવ છે; એવું ભગવાને કહ્યું છે. તેમાં અનેક એકેન્દ્રિય જીવ છે.



अनेके=बहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक्सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गलासंख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्यां सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वाक्तिन संबन्धः ।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्यां गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां संयतानामर्हिसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवति, तस्मादर्हिसाव्रतपालनं वन्ध्यापुत्रपालनवद-संभवम् ?—इत्यत आह—'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' इति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा । शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽ-नेनेति शस्त्रं । यद् यस्य विनाशकारणं तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः । तत् द्विविधं द्रव्यभाव-

वे सब जीव अंगुल के असख्यातवें भागकी शरीर—अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं । यहाँ सत्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए ।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन—आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अर्हिसाव्रत कैसे स्थिर रह सकता है ? प्रत्युत मल—मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है । एसी स्थिति में अर्हिसा का पालन करना वन्ध्या—पुत्र का पालन करने के समान असंभव है ।

समाधान—शास्त्र में कहा है—'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोड़कर दूसरी पृथ्वी सचित्त है । जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस

ते सर्वे एव अंशुलना असंख्यातमा लागनी शरीर—अवगाहनावाणा भिन्न-भिन्न रूपमां स्थित छे. अर्हि सत्त्वने अर्थे अकेन्द्रिय एव समन्वे जेधे अे.

शङ्का—पृथिवी अगर सचित्त छे तो सचित्त पृथ्वी पर जवा आववानी क्रिया करवावाणा साधुअेनु अर्हिसाव्रत स्थिर केवी रीते रही सके छे ? उदटुं मल-मूत्र आदिने त्याग अनिवार्य छे, तेथी हिंसा थवी पणु अनिवार्य छे. अेवी स्थितिमां अर्हिसानुं पालन करवुं ते वन्ध्यापुत्रना पालन करवा समान असंभव छे.

समाधान—शास्त्रमां कहुं छे के:- 'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वीने त्ये अे पृथ्वी सचित्त छे जेना द्वारा प्राणिगणु हनन (नाश) थाय तेने शस्त्र कडे छे. तात्पर्य अे छे के-जे जेना विनाशनु कारणु छे ते तेना माटे शस्त्र छे.

भेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयलक्षणम् । तत्र स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः पृथिव्येव यथा-कृष्णमृत्तिकायाः शुक्लमृत्तिकेत्यादि । परकायशस्त्रं जलाग्निगोमय-चरणशकटचक्रादि । उभयकायशस्त्रं जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया मुनीनामर्हिसाव्रतक्षतिः ।

### (२) प्ररूपणाद्वारम्-

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मवादरभेदात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, वादरनामकर्मोदयाद् वादराः, न तु वादरामलकवदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं वादरत्वं च ।

के लिए शस्त्र है । शस्त्र के दो भेद हैं-द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शस्त्र है । पृथ्वी का शस्त्र पृथ्वी-स्वकायशस्त्र है जैसे काली मिट्टी का शस्त्र सफेद मिट्टी है । परकायशस्त्र जैसे-जल, अग्नि, गोबर, चरण (पग), शकट (गाड़ी) का पैया आदि । जल आदि से मिली हुई मृत्तिका उभयकायशस्त्र है । इन प्रकार शस्त्र से परिणत पृथ्वी अचित्त हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों के अर्हिसाव्रत में कोई क्षति नहीं पहुँचती ।

### (२) प्ररूपणा-द्वार-

पृथ्वी के सूक्ष्म और वादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और वादरनामकर्म के उदय से वादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और वादरता बेर और आवले की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शस्त्रना भे लेद छे. द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्र, स्वकाय, परकाय अने उलयकायइप द्रव्यशस्त्र छे. पृथ्वीनुं शस्त्र पृथ्वी स्वकाय-शस्त्र छे, जेम काली माटीनुं शस्त्र सफेद माटी छे. परकाय-शस्त्र जेमके जल, अग्नि, छाणु, पग, गाडीनुं याक आदि. जल-पाणी आदिथी भजेली माटी उलयकाय-शस्त्र छे. आ प्रमाणे शस्त्रथी परिणत पृथ्वी अचित्त थछ जय छे. ओटला माटे तेना पर भण-भूत्रादि त्याग करवावाणा मुनि-ओना अर्हिसाव्रतमां केछ डानि पडोअती नथी.

### (२) प्ररूपणाद्वार-

पृथ्वीकायना एव सूक्ष्म अने वादरना लेदथी भे प्रकारना छे. सूक्ष्मनामकर्मना उदयथी सूक्ष्म अने वादरनामकर्मना उदयथी वादर थाय छे. अर्हि सूक्ष्मता अने वादरता. ओर अने आंभजानी प्रमाणे सापेक्ष समजवी नडि जेछे.

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोक-  
व्यापिनः ।

बादरा अपि द्विधा-पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र बादराः पर्याप्ता  
अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यष्टकाधोऽधःपाताल-भवन-नकरप्रस्तरादौ  
सन्ति । ते विद्विधाः श्लक्ष्ण-खरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा बादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-  
नील-लोहित-पीत-शुक्ल-पाण्डु-पनकभेदात् । खरबादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०)  
भेदाः, तथाहि—

(१) शुद्धपृथिवी, (२) शर्करापृथिवी, (३) वालुकापृथिवी, (४) उपलः, (५) शिला,  
(६) लवणः, (७) ऊषः (८) अयः, (९) ताम्रः, (१०) त्रपुः, (११) सीसकम्, (१२) रूप्यम्,  
(१३) सुवर्णम्, (१४) वज्रः, (१५) हरितालः (१६) हिङ्गुलकः, (१७) मनःशिला,

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान  
सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

बादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के हैं । ये जीव लोक के एक देश में  
हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । श्लक्ष्णबादरपृथ्वी के सात भेद हैं—कृष्ण नील  
लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक खरबादर पृथ्वी के चालीस भेद हैं, वे इस  
प्रकार—

(१) शुद्ध-पृथिवी, (२) शर्करा-पृथिवी, (३) वालुका-पृथिवी, (४) उपल,  
(५) शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा,  
(११) सीसा, (१२) चांदी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगल,

सूक्ष्म जीव પણ ये प्रकारना छे. पर्याप्त अने अपर्याप्त-जीव काजलनी कुप्पीना  
समान संपूर्ण लोकमां भरला छे.

बादर પણ पर्याप्त अने अपर्याप्त अनेम ये प्रकारना छे. ये जीव लोकना  
अेक देशमां छे. तेना ये लेह छे. श्लक्ष्ण अने खर, श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीना सात  
लेह छे. कृष्ण, नील, लोहित (लाल) पीत, शुक्ल, पाण्डु अने पनक. खर-बादर  
पृथ्वीना चालीस लेह छे—ते आ प्रमाणे छे:—

(१) शुद्ध पृथिवी; (२) शर्करा पृथिवी, (३) वालुका पृथिवी, (४) उपल, (५)  
शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा-कलाह,  
(११) सीसा, (१२) चांदी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगल,

(१८) शस्यकः-पारदः, स्वनामख्यातो रत्नविशेषश्च, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१) अभ्रपटलम्, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्णम्,) (२३) गोमेदकः, (२४) रुचकः, (२५) अङ्कः, (२६) स्फटिकः, (२७) लोहिताक्षः, (२८) मरकतः, (२९) मसारगल्लः, (३०) भुजमोचकः, (३१) इन्द्रनीलः, (३२) चन्दनम् ।, (३३) गैरिकम्, (३४) हंसगर्भः, (३५) पुलकः, (३६) सौगन्धिकः, (३७) चन्द्रप्रभः, (३८) वैडूर्यम्, (३९) जलकान्तः, (४०) सूर्यकान्तः । एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्वाकरादौ सचित्ता भवन्ति ।

गोमय-कचवर-सवितृतापादिसंपर्कात्तु गतचेतना अपि भवन्ति । वादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राऽसंख्यातैर्नियमतो भाव्यम् ।

एवमपूतेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिष्वपि विज्ञेयम् । निगोदे तु यत्रैको

(१७) मैनसिल, (१८) शस्यक-पारा, अथवा रत्नविशेष, (१९) अंजन, (२०) प्रवाल, (२१) अभ्रपटल, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्ण), (२३) गोमेद, (२४) रुचक, (२५) अंकरत्न, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगल्ल, (३०) भुजमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चंदन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगधिक, (३७) चन्द्रप्रभ-चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९) जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त । ये शुद्ध पृथिवी आदि चालीस जब अपने आकर (खान) में रहते हैं तो सचित्त होते हैं । गोबर कचरा सूरज की धूप आदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं । जहां वादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं ।

इसी प्रकार अप्, तेज, वायु, और प्रत्येकवनस्पति में भी समझना चाहिए ।

(१७) मनशील, (१८) पारे, (१९) सुरभो, (२४) इयक, (२५) अंक-रत्न, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगल्ल, (३०) भुजमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चन्दन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगंधिक, (३७) चन्द्रप्रभ-चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९) जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त. आ शुद्ध पृथ्वी आदि चालीस ज्यारे पोताना आकर-आणुमां रडे छे तो सचित्त डोय छे. छाणु, कचरा, सूरजने तडके वगेरेना संपर्कथी ते अचेतन थर्नय छे. ज्यां वादर पृथ्वीकायने अेक एव डोय छे, त्यां असंख्यात एव नियमथी डोय छे.

अे प्रकारे अप्, तेज, वायु अने प्रत्येकवनस्पतिमां पणु समजवुं नेर्ध अे,

निगोदजीवस्तत्र नियमतोऽनन्ताः ।

वादराणां सूक्ष्माणां च पृथिवीकायानाभेते वक्ष्यमाणा भेदाः सन्ति, तत्रोभयोः पर्याप्तापर्याप्तभेदः प्रागुक्तः, अन्ये भेदा उच्यन्ते—शरीरत्रया—ऽङ्गुला-संख्येयभागशरीर—सेवार्त्तसंहनन—मसूरचन्द्रसंस्थान—कषायचतुष्क—सञ्ज्ञाचतुष्का—ऽऽद्यलेश्यात्रय—स्पर्शनेन्द्रिय—वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्धाता—ऽसञ्ज्ञित्व—नपुंसक-वेद—पर्याप्तिचतुष्टय—मिथ्यादर्शना—ऽचक्षुदर्शना—ऽज्ञान—काययोग—साकारानाकारो-पयोगाऽऽहारादिप्रभृतयः । तत्र विशेषस्तु वादरपृथिवीकायानां लेश्या आद्याश्चतस्रः, शेषं सर्वं समानम् । असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये ।

निगोद में जहाँ एक जीव होता है वहाँ नियम से अनन्त जीव होते हैं ।

वादर और सूक्ष्म पृथिवीकायों के भेद इस प्रकार है—दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद पहले कहे जा चुके हैं । अब अन्य भेद कहते हैं—तीन शरीर, अंगुलका असंख्यातवां भाग शरीर, सेवार्त्त संहनन, मसूरचन्द्रसंस्थान, चार कषाय, चार संज्ञाएँ, प्रारंभ की तीन लेश्याएँ, स्पर्शनेन्द्रिय, वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्धात, असंज्ञीपन, नपुंसकवेद, चार पर्याप्तियों, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन तीन अज्ञान; काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि । इन में विशेषता इतनी ही है कि वादरपृथिवी-काय में पहले की चार लेश्याएँ होती हैं । शेष सब बोल समान हैं । दोनों ही असंख्यात-असंख्यात हैं ।

निगोदमां न्यां ओक एव डोय छे त्यां नियमथी अनन्त एव डोय छे.

वादर अने सूक्ष्म पृथिवीकायाना लेश आ प्रमाणे छेः—अन्नेना पर्याप्त अने अपर्याप्त ओउ लेश प्रथम डोवामां आव्या छे. डोवे पीला लेश डोउ छे—त्रणु शरीर, अंगुलना असंख्यातमां लाग शरीर, सेवार्त्त संहनन, मसूर—चन्द्र संस्थान, चार कषाय, चार संज्ञाओ, प्रारंभनी त्रणु लेश्याओ, स्पर्श इन्द्रिय, वेदना कषाय, अने मारणान्तिक समुद्धात, असंज्ञीपणुं, नपुंसकवेद, चार पर्याप्तिओ, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन, त्रणु अज्ञान, काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि. तेमां विशेषता ओटली न छे केः—वादर पृथिवीकायमां प्रथमनी चार लेश्याओ डोय छे, ओकी तमाम ओल समान छे. अन्ने न असंख्यात—असंख्यात छे.

(३) परिमाणद्वारम्—

बादरपर्याप्ताः पृथिवीकायजीवाः सर्वतः स्तोकाः । तदपेक्षया बादराऽपर्याप्ताः असंख्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता असंख्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता असंख्येयगुणाः । यदि जवारीधान्यकणप्रमाणपृथिव्यंशाश्रया जीवा एकैकं बहिर्निगत्य पृथक्-पृथक् कपोतमितं कार्यं कुर्युस्तर्हि तेषां लक्षयोजनप्रमाणजम्बूद्वीपे समावेशोऽपि न संभवति ।

ननु जवारीधान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे कथमियन्तो जीवास्तिष्ठन्ति ? इति चेत् उच्यते—यथा सहस्रावधिसंमिश्रणनिष्पन्नसहस्रपाकतैलस्याल्पीयसि

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय के जीव सब से थोड़े हैं । उन की अपेक्षा बादर अपर्याप्त असंख्यात गुना अधिक है । उन से सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्येय गुना है । उन से सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गुना है । अगर जवार नामक धान्य के कण के बराबर पृथ्वी के अंश में रहने वाले जीव एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर कवूतर के शरीर के बराबर बनालें तो एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में उनका समावेश नहीं हो सकता ।

शङ्का—जवार के एक दाने के बराबर पृथिवी के अंश में इतने अधिक जीव किस प्रकार रह सकते हैं ?

समाधान—जैसे हजार औषधों के सम्मिश्रण से बने हुए सहस्र-पाक तैल के

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त बादर पृथ्वीकायना एव सौथी थोडा छे; तेनी अपेक्षा बादर अपर्याप्त असंख्यात गणु अधिक छे. तेनाथी सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्यात गणु छे, तेनाथी सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गणु छे. अगर जुवार नामना धान्यना कणुनी भराभर पृथ्वीमां रहैवावाणा एव ओक-ओक थर्छने भडार निकणे अने ते सर्व पोतानुं शरीर कवूतर-पारेवानां शरीर भराभर बनावी लीअे तो ओक लाख योजनना विस्तारवाणा जम्बू द्वीपमां तेना समावेश थर्छ शके नहि.

शङ्का—जुवारना ओक दाणुनी भराभर पृथिवीमां ओटला अधिक एव डेवी रीते रहै शके छे ?

समाधान—जेवी रीते हुअर औषधोना संमिश्रणुथी अनेला सहस्र-पाक तैलना

सूच्यग्रलग्नविन्दुमात्रेऽपि सहस्रौषधिसमावेशस्तथैव पृथिवीकायजीवास्तावन्मात्रे पृथिव्यंशे तिष्ठन्तीति । यथा वा सहस्रौषधिसंमिश्रणे कृते चूर्णीकृत्य परिपिष्य खसखसकणप्रमाणगुटिका क्रियते, तत्र प्रत्येकगुटिकायां सहस्रौषधिसमावेशो दृश्यते, तद्वज्ज्वारीधान्यकणमात्रेऽल्पीयसि पृथिव्यंशे पृथिवीकायजीवास्तिष्ठन्तीति नैतच्चित्रम् ।

यदि लोकाकाशस्य प्रत्येकप्रदेशे, एकैकः पृथिवीकायजीवः स्थाप्यते तदा असंख्याता लोका पूरिता भवेयुः । पृथिवीकायजीवानां परिमाणं तावदस्ति, यदि लोका असंख्याता भवेयुः, तेषामसंख्यातलोकानां यावन्तः प्रदेशाः भवेयुस्तावन्तः पृथिवीकायजीवाः सन्तीति बोध्यम् ।

छोटे से, सूई को नोक पर लगे हुए एक बूंद में भी हजार औषधों का समावेश हो जाता है, इसी प्रकार जवार के एक दाने के बराबर पृथ्वी के अंश में इतने जीव रहते हैं। अथवा जैसे एक हजार औषधों को मिला दिया जाय और उनका चूर्ण बना लिया जाय, खूब पीसा जाय और उससे खसखस के दाने के बराबर गोली बना ली जाय तो उस प्रत्येक गोली में हजार औषधियों का समावेश जान पड़ता है। इस प्रकार जवार बराबर पृथ्वी के अंश में अगर इतने जीव रहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ?

अगर लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में, एक-एक जीव स्थापित किया जाय तो असंख्यात लोक भरजाएँ। पृथिवीकाय के जीवों का परिमाण इतना है कि-यदि लोक असंख्यात हों और उन असंख्यात लोकों के जितने प्रदेश हों, उतने ही पृथिवीकाय जीव हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए ।

नाना अेवा सोधनी अण्णी पर दागेला अेक टीषामां पणु हुनर औषधोने समावेश थर्ध नय छे. अे प्रमाणे णुवारना अेक दाणुानी षराअर पृथ्वीमां अेटला अुव रडे छे. अथवा नेवी रीते-अेक हुनर औषधोने भेणववामां आवे अने तेनु अूणु अनावी देवाय, अने तेने षूण वाटवामां आवे अने तेमांथी षस-षसना दाणा षराअर गोणी अनाववामां आवे तो प्रत्येक गोणीमां हुनर औषधीअोने समावेश थयेदो छे, अेम नण्णी शकाय छे. अे प्रमाणे णुवार षराअर पृथ्वीमां अेटला अुव रडे छे तो तेमां आश्चर्यनी वात शुं डोर्ध शके ?

अथवा लोकाकाशना अेक अेक प्रदेशमां, अेक-अेक अुव स्थापित करवामां आवे तो असंख्यात लोक लराध नय. पृथिवीकायना अुवोनुं परिणाम अेटकुं छे-ले लोक असंख्यात डोय अने ते असंख्यात लोकना नेटला प्रदेशो डोय अेटला ष पृथिवीकाय अुव छे. अेम समअु देवुं नोर्ध अे.

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते—अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह—‘लज्जमाणाः’ इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया संकोचमापद्यमानाः पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि—मनःपर्यय—केवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्—पश्य ।

इमे सूक्ष्मबादरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपस्तियागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु—‘वयमगाराः साधवः स्मः’ इति साभिमानं प्रवदमानाः ‘वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः’ इति व्यर्थ

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिङ्गी हैं । यह बतलाने के लिए कहते हैं—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

कोई—कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से, संकोच—वृत्ति करते हैं, उन में से कोई—कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्—पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकाय का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, त्रस्त होते हैं, और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई—कोई ‘हम साधु हैं । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए ‘हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं’ । इस प्रकार वृथा प्रलाप

ये पुरुष पृथिवीकायनी हिंसाथी विरत—निवृत्त थाय छे तेन अणुगार छे. मुनि छे. ये हिंसायां प्रवृत्त छे ते द्रव्यलिङ्गी छे. ते अताववा भाटे कडे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि.

कोई—कोई पुरुष पृथिवीकायना आरंभमां अत्यन्त करुणाशील होवाना कारणे द्रवित हृदयवाणा होवाथी संकोच—वृत्ति करे छे तेमांथी कोई—कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अणुगार छे. पृथक्=पृथक्भावथी बुज्यो, अर्थात् ते पुरुषोने बुज्यो के ये सूक्ष्म अने बादर पृथ्वीकायना आरंभ करवामां लज्ज करे छे—शरमाय छे—नास पामे छे. अने त्रण करण त्रण योगथी पृथ्वीकायना आरंभना त्यागी छे.

अने कोई—कोई ‘अमे साधु छीये’ अथवा अभिमाननी साथे कडे छे के—‘अमे पणु पृथ्वीकायनी रक्षायां तत्पर छीये, अने महाव्रतधारी छीये.’ आ प्रमाणे वृथा—



प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

(४) वधद्वारं, (५) शस्त्रद्वारं च ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोष्टपाषाणादिभिः स्वकायरूपैः, अग्न्यादिभिः=परकायरूपै हलकुदालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः-पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवी-माश्रित्य ज्ञानावरणीयाघष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारः, तेन इमं=पृथिवीकायं विहिंसन्ति । पृथिवीकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकाय-

करते हुए द्रव्यलिङ्गी है उन्हें पृथक् देखो ।

(४) वध और (५) शस्त्रद्वार

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिकभी प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं—

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुदाल आदि खोदने के साधनरूप उभयकाय शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावद्य व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय की हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष छहों जीवनिकायों

मिथ्या प्रलाप करनारा द्रव्यलिङ्गी छे. तेने नूदा नूदा लावथी नुओ.

(४) वध अने (५) शस्त्र द्वार—

पोतेन पोताने अणुगार-साधु समजवावाणा अे द्रव्यलिङ्गी, साधुना गुणोभां नरा पणु प्रवृत्त थता नथी. अने गृहस्थोना कोर्ध कार्येनो त्याग करता नथी. अे वात भतावे छे:—

अे द्रव्यलिङ्गी दोक नूदा-नूदा प्रकारनी भाटी, पथर आदि स्वकाय शस्त्रोथी अग्नि आदि परकाय शस्त्रोथी हुण, कोदाणी आदि जोदवाना साधनरूप उभयकाय शस्त्रोथी पृथ्वीकर्मसमारंभ करे छे. अर्थात् पृथ्वीना निमित्तथी ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारना कर्मबन्धना कारण सावद्य व्यापार करे छे, अने तेथी पृथ्वीकायनी हिंसा करे छे. पृथ्वीकायनी हिंसाभां प्रवृत्त थवावाणा पुरुष छहवनिकायोनी हिंसा करे छे.

रूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-‘पृथ्वीसत्थं’-इत्यादि ।

पृथिवीशस्त्रम्=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्रम्, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रम्, तद् द्विविधं-द्रव्य-भाव-भेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकायपरकायतदुभयरूपम् । भावशस्त्रं=दुष्प्रयुक्तमनोवाक्कायलक्षणम्, समारम्भमाणाः=पृथिवीकायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान् पृथिवीकायभिन्नान् अनेकरूपान् अपूकायादीन् स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति ।

### (६) उपभोगद्वारम्-

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा-‘ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः

की हिंसा करता है, यह बतलाने के लिए कहते हैं-‘पृथ्वीसत्थं’ इत्यादि ।

पृथिवीशस्त्रका अर्थ है-पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शस्त्र । जिस से हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है । शस्त्र दो प्रकार का है-(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र । स्वकाय, परकाय और उभय-स्वपर-कायरूपसे द्रव्यशस्त्र तीन प्रकार का है । मन वचन और कायका दुष्प्रयोग करना भावशस्त्र है ।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथिवीकाय से भिन्न अनेक अपूकाय आदि स्थावर जीवों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

### (६) उपभोगद्वार-

संसार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । जैसे-‘ हम पञ्चमहाव्रतधारी हैं, सब आरंभ

अथ भताववा माटे कडे छे :-‘पृथ्वीसत्थं’ इत्यादि.

पृथ्वीशस्त्रेणो अर्थ छे-पृथ्वीकायनी हिंसा करवावाणां शस्त्रो जेनाथी हिंसा थर्ध शके ते शस्त्र कडेवाय छे. शस्त्र जे प्रकारना छे. (१) द्रव्य शस्त्र अने (२) भाव-शस्त्र-स्वकाय, परकाय, अने उभय-स्व-परकायरूप द्रव्यशस्त्र त्रणु प्रकारना छे. मन, वचन अने कायना दुष्प्रयोग करवा ते भावशस्त्र छे.

पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणा, पृथ्वीकायथी भिन्न अनेक अपूकाय आदि स्थावर जीवानी तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवानी पणु हिंसा करे छे.

### (६) उपभोग-द्वार-

संसारमां धृष्यान् द्रव्यलिङ्गी साधु छे. जेवी रीते “ अमे पञ्चमहाव्रतधारी

सर्वारम्भपरित्यागिनः पट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-  
शाक्यादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं सृत्तिकास्नायिनो भवन्ति । केचित्स्वनिवासार्थं  
गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति । केचित् स्वोदर-  
पूर्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति । केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावधमुपदिशन्ति । पार्थिवी-  
देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्रारो  
भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

“ जिणभवनकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्टाई । भियगाणइसंधाणं,  
सासयवुद्धी य जयणा य ॥९॥....एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सड्डेस्स ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं' । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य  
आदि हैं । इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं । कोई  
अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों  
द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं । कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि  
करते हैं । कोई देवकुल आदि के लिए सावध उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव  
प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,  
ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“ जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“ शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें,  
पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम  
उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना ” इत्यादि । . . भगवान की आज्ञाके

छीये. सर्व आरंभ अने परिग्रहना त्यागी छीये, षट्कायना रक्षक साधु छीये.' आ  
प्रमाणे कडेवावाणा दंडी शाक्य आदि छे तेमां केध-केध तो शरीरनी शुद्धि भाटे  
भाटीथी स्नान करे छे. केध पोताने रडेवा भाटे मकान आदि बनाववामां केदाणी,  
केस आदि भेदवानां साधनेा द्वारा पृथ्वीकायनुं उपमर्दन करे छे, केध-केध पोतानु  
पेट भरवाना उद्देश्यी भेती करे छे; केध देवकुल आदिने भाटे सावध उपदेश  
करे छे—देव, गुरु आदिनी पार्थिव प्रतिमा निर्माण करवावामां अने उर्णोद्धार करा-  
वामां भवसागरथी आत्मा तरी शके छे, येषुं मान छे अने कडे छे के:—

“ जिनमंदिर बनाववानी विधि आ प्रमाणे छे:—शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटो, पत्थर,  
काष्ठ आदि जेधये. काम करवावाणा कारीगराने प्रसन्न राखवा, पोतानां परिणाम उत्तरोत्तर  
चढतां राखाने यतनापूर्वक कार्य करवुं.” इत्यादि.... भगवाननी आज्ञाना आराधक श्रावकने

चित्तं सुहाणुबन्धं, निव्वाणं तं जिणिं देहिं ॥ ४४ ॥ ( पञ्चाशक टीका ७. वि. )

“ जिणभवणाइं जे उद्धरंति भक्तीइ सडियपडियाइं ।

ते उद्धरंति अप्पं, भीमाओ भवसमुद्दाओ ॥ ” ( धर्मसंग्रहटीका २अधि. )

छाया—“ जिनभवनकारणविधिः—शुद्धा भूमिर्दलं च काष्ठादि ।

भृतकानतिसन्धानं, स्वाशयवृद्धिश्च (शोभनाशयवृद्धिः) यतना च ॥

....एतस्य फलं भणितं, इत्याज्ञाकारिणस्तु श्राद्धस्य ।

चित्रं सुखानुबन्धं, निर्वाणान्तं जिनेन्द्रैः ( भणितम् ) ॥ ४४ ॥

जिनभवनानि ये उद्धरन्ति भक्त्या शटितपतितानि ।

ते उद्धरन्त्यात्मानं भीमाद् भवसमुद्रात् ” इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसावधकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि  
स्वात्मानं मुनिमेव मन्यन्ते । ये पृथिवीशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकाय-

आराधक श्रावक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—“उसको अनेकानेक सुखों का अनुबन्ध होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है ” ।  
( पञ्चाशकटीका ७ वि. )

“ जो पुरुष जीर्ण जिनभवनों का भक्तिसे उद्धार कराते हैं वे भीम भवसागर से अपनी आत्मा को तारते हैं ” । ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि. )

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि सावध कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिङ्गी भी अपनने आप को मुनि मानते हैं । आशय है कि—जो लोक पृथिवी-शस्त्र का प्रयोग करके षड्जीवनिकारूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं खोटी प्ररूपणा करते हैं अतः वे द्रव्य

लगवाने तेनु इत्थं आ प्रमाणे णताण्युं छे—तेने अनेकानेक सुखेणो अनुबन्धं थाय छे; अने परम्पराथी मोक्षनी प्राप्ति थाय छे. ” ( पञ्चाशकटीका ७ वि. )

“ जे पुरुष एणुं थयेतुं जिनमन्दिर, तेने लडितथी उद्धार करावे छे ते भडान भवसागरथी पोताना आत्माने तारे छे. ” ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

आज प्रमाणे शास्त्रनिषिद्ध पूजा, प्रतिष्ठा आदि सावध कार्योमां प्रवृत्ति करीने द्रव्यलिङ्गी पणुं पोते पोताने मुनि माने छे. आशय अे छे के—जे लोक पृथिवीशस्त्रेणो प्रयोग करीने षड्जीवनिकारूप समस्त लोकनी हिंसा करे छे अने लगवानतुं नाम लडने पोते पोटी प्ररूपणा करे छे माटे ते द्रव्यलिङ्गी छे, साया

रूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति ते द्रव्यलिङ्गिनो नानगारा इति भावः, उक्तञ्च—

“सावज्जा किरिया जेसिं, सावज्जा देसणा तहा ।

भमंति दीहसंसारे, ते सव्वे दव्वलिंणिणो ॥ १ इति ॥ सू. २ ॥

एवं शाक्यादीनां पृथिवीकायोपमर्दकत्वेन द्रव्यलिङ्गित्वं प्रतिबोधितं भगवतेति जम्बूस्वामिनं सुधर्मा स्वामी कथयति—‘तत्थे’—त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

तत्थ खलु ] भगवया परिण्णा पवेइआ, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण—  
माणण—पूयणाए जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव पुढवि-  
सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं

लिंगी है—सच्चे अनगार नहीं है । कहा भी है—

“जिन की क्रिया सावध है और जिनका उपदेश सावध है, वे दीर्घ संसारमें परिभ्रमण करते हैं । उन सबको द्रव्यलिंगी जानना चाहिए” ॥ सू. २ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय का उपमर्दन करने वाले होने से शाक्य आदि को भगवान् ने द्रव्यलिंगी कहा है । यह बात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है । इसी जीवन के लिए—  
वन्दना, मान और पूजन के लिए, जन्म और मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का नाश करने के लिए वह स्वयं ही पृथिवीकाय का आरंभ करता है, दूसरों से पृथिवीकायका आरम्भ कराता है, और पृथिवीकायका आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

अणुगार—साधु नहीं. कहुं छे के:—

“जेनी क्रिया सावध छे, अने जेनो उपदेश सावध छे, ते दीर्घ संसारमां परिभ्रमणु करे छे. ते सर्वने द्रव्यलिंणी जणुवा जेधये.” (सू० २)

ये प्रमाणे पृथ्वीकायनुं उपमर्दन—नाश करवावाणा डोवाथी शाक्य आदिने भगवाने द्रव्यलिंगी कहा छे. आ वात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ’ इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाने परिज्ञानो उपदेश आये छे, आ एवनने भाटे, वंदना, मान अने पूजन भाटे, जन्म अने मरणथी मुक्त होवाना भाटे, दुःखनो नाश करवा भाटे ते पोते ज पृथ्वीकायनो आरंभ करे छे, भीजथी पृथिवीकायनो आरंभ करावे छे, अने पृथ्वीकायनो आरंभ करनार भीजने अनुमोदन आये छे. ते आरंभ तेना

समारंभते समणुजाणइ । तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जाति-मरण-मोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति । तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य अबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः खलु प्रवेदिता=प्रबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः । परिज्ञा द्विविधा, ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावधव्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण'-मिति ज्ञानं-ज्ञपरिज्ञा, तद्व्यापारपरित्यागः-प्रत्याख्यानपरिज्ञा ।

वह आरंभ उसके अहित के लिए और उसको अबोधि के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है । तात्पर्य यह है कि-कर्मबन्ध को नष्ट करने के लिए जीव को वह परिज्ञा अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा भगवान्ने कहा है । परिज्ञा दो प्रकार की है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा । 'सावध व्यापार से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना ज्ञ-परिज्ञा है, और सावधव्यापार का त्याग करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है ।

अहित भाटे अने ते तेनी अबोधि भाटे छे. (३)

टीकार्थ—पृथिवीकायना समारंभना विषयमां लगवान श्री महावीर स्वामीअे सम्यग्बोधरूप परिज्ञानेा सदुपदेश आअे छे. तात्पर्य अे छे के:-कर्मअंधने नाश करवा भाटे अे ते परिज्ञा अवश्यअे स्वीकार करवी अेअे, अे प्रमाअे लगवाने कअुं छे. परिज्ञा अे प्रकारनी छे. ज्ञपरिज्ञा, अने प्रत्याअ्यानपरिज्ञा, 'सावध व्यापारअे कर्मअंधनु कारण थाय छे.' अे प्रमाअे अेअुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने सावध व्यापारनेा त्याग करवेा ते प्रत्याअ्यान-परिज्ञा छे.

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?—त्याह—  
 'इमस्स चेषे'—त्यादि । अस्यैव विद्युलताविलासवत्क्षणभङ्गरस्य जीवितस्य जीवन-  
 स्वार्थे चिरसुखार्थे, प्रासादसदनादिरचनार्थे, गमना—गमना—वस्थानो—पवेशन—पार्श्व-  
 परिवर्तन—पुत्तलिकाप्रतिमादिकरणो—चारप्रस्रवणादिकरणो—पकरणादिग्रहणनिक्षेपणा-  
 ऽऽलेपन—प्रहरण—भूषण—क्रय—विक्रय—कृषिकरण—भाण्डादिनिर्माणाद्यर्थमित्यर्थः । तथा  
 परिवन्दन—मानन—पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं यथा \*आश्चर्यगृहादि-

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावद्य व्यापार करता है ? सो  
 बतलाते हैं—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनश्वर जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश  
 से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान  
 (स्थित रहना), उपवेशन (बैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा बदलना), पुतली बनाना,  
 प्रतिमा बनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, ग्रहण  
 करना, सजाना, खरीदना, बेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि बनाना, इत्यादि  
 कार्यों के लिए सावद्य व्यापार किया जाता है ।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावद्य व्यापार  
 किया जाता है । परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा के लिए, जैसे आश्चर्यगृह (आजायव घर)

शुच कया प्रयोजन माटे पृथ्वीकायना विषयमां सावद्य व्यापार करे छे ? ते  
 अतावे छे:—

विजलीना चमकारानी समान आ क्षणभंगुर अवनना चिरकालीन (लांभा  
 समय सुधी) सुअना उद्देशथी, महल मकान आदि अनाववाने माटे, अथवा गमन,  
 आगमन, अवस्थान, (स्थित रहेवुं) उपवेशन, (असवुं) पार्श्व-परिवर्तन, (पडभां-  
 अदलवां) पुतली अनाववी, प्रतिमा अनाववी, मल-मूत्र त्याग करवो; उपकरण आदिनु  
 अडणु करवुं, राअवुं, लेप करवो, अडरणु करवुं, सलववुं, अरीदवुं, वेचवुं, अेती  
 करवी तथा वासणु अनाववां, इत्यादि कार्याने माटे सावद्य व्यापार करवामां आवे छे.

ते सिवाय परिवन्दन मान अने पूजन माटे पणु सावद्य व्यापार करवामां आवे छे.  
 परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा माटे जेम आश्चर्यगृह—(अजायव घर) आदि अनाववामां

\* आश्चर्यगृहम्—'म्युझियम' 'अजायवघर' इति भाषाप्रसिद्धम् ।

करणे, माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=वस्त्ररत्नादि-  
पुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-शिल्पिनां राजदेवप्रतिमादिरचने । जातिमरणमोच-  
नाय-जातिः=जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखप्राप्त्यर्थं देवकुलादिकरणे, मरणं=  
मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपचैत्यादि-  
करणे, मोचनं=मुक्तिस्तदर्थं, यथा-देवभवनप्रतिमादिकरणे । यद्वा जातिमरण-  
मोचनाय=जन्ममरणविमुक्तये । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखविध्वंसार्थं, यथा-

आदि बनवानेसे प्रशंसा होती है । मानन अर्थात् जनताद्वारा मिलने वाला सत्कार । उस सत्कार के लिए कीर्तिस्तम्भ ( मेमोरियल ) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं । पूजन का अर्थ है- वस्त्र या रत्न आदि का पुरस्कार पाना । जैसे शिल्पी लोग पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा या देवता की प्रतिमा बनाते हैं ।

जन्म, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथिवीकायका समारम्भ किया जाता है । जन्म के लिए जैसे भवान्तर में सुख पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण कराने में और मृत्यु के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक ( स्तूप-चैत्य ) बनवाने में, और मोचन के अर्थात् मुक्ति के लिए देवभवन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, अथवा जन्म-मरण-मोचन का अर्थ है-जन्म और मरणसे मुक्त होना, उस के लिए पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं ।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

आरंभ करे छे. मानन अर्थात् जनता द्वारा भणवावाणे। सत्कार, ते सत्कार भाटे-  
कीर्तिस्तंभ (मेमोरियल) आदि बनावीने समारंभ करे छे. पूजनने अर्थ छे-वस्त्र  
अथवा रत्न आदिने पुरस्कार प्राप्त करवे. ते भाटे शिल्पीलोग राजनी के देवतानी  
प्रतिमा बनाववाभां समारंभ करे छे.

जन्म मरण मोचन (मूकाववा) भाटे पणु पृथ्वीकायने समारंभ करवाभां आवे  
छे. जन्मना भाटे जेम लवान्तरभां सुख प्राप्त करवा भाटे देवकुल आदिना निर्माण  
कराववाभां, अने मृत्यु भाटे जेम मृत पिता आदिनुं स्मारक स्तूप-चैत्य बनाववाभां,  
मोचन अर्थात् मुक्तिने भाटे देवभवन एवं तेनी प्रतिमा बनाववाभां, अथवा जन्म-  
मरण-मोचनने अर्थ छे-जन्म अने मरणथी मुक्त थवुं, ते भाटे पृथ्वीकायने समारंभ करेछे.

तथा दुःखने नाश करवा भाटे पणु पृथ्वीकायने समारंभ करे छे, जेम-श्रीभना



ग्रीष्मतापादिनिवारणार्थं, स्वचक्रपरचक्रभयनिवृत्त्यर्थं च भूमिगृहप्राकारादिरचने ।  
 सः=जीवनपरिवन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं  
 समारम्भते=पृथिव्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति । अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं  
 समारम्भयति=उद्योजयति पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणान् अन्यान् समनुजानाति=  
 अनुमोदयति ।

एममतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्कायैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-  
 भेदा अवगन्तव्याः ।

(७) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह—‘तं से अहियाए’ इत्यादि ।

ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए, अथवा स्वचक्र और परचक्र के भयकी निवृत्ति, के लिए, भोंहरा या चहारदीवारी ( प्रकोटा ) बनवाना । इस प्रकार जीवन परिवन्दन मानन और पूजन आदि के लिए मनुष्य स्वयं ही पृथ्वीशस्त्रका समारम्भ करता है अर्थात् पृथिवी का घात करने वाले द्रव्य और भावशस्त्र का व्यापार करता है और पृथिवीशस्त्र का प्रयोग करने करानेवाले दूसरो का अनुमोदन करता है ।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और कायसे पृथिवीशस्त्र के आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए.

(७) वेदनाद्वार—

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है ? सो कहते हैं—‘तं से अहियाए’ इत्यादि ।

तापथी अथवा भाटे अथवा स्वचक्र अने परचक्रना लयनी निवृत्ति भाटे लोअर अथवा डोट अनाववा.

आ प्रमाणे लवन, परिवंदन, मानन, अने पूजन आदि भाटे मनुष्य पोतेण पृथ्वी-शस्त्रने समारंभ करे छे. अर्थात् पृथ्वीने घात करवावाणा द्रव्य अने भाव शस्त्रना व्यापार करे छे. तथा भीज पासे पृथ्वीशस्त्रने व्यापार करावे छे. अने पृथ्वीशस्त्रने प्रयोग करवावाणा भीजने अनुमोदन आपे छे.

आ प्रमाणे अतीत अने अनागत (भूत-लविष्य)थी तथा मन, वचन अने कायाथी पृथ्वीशस्त्रना आरंभना लेहोने समल देवा लेधअे.

(७) वेदनाद्वार—

पृथ्वीशस्त्रने आरंभ करवावाणा शुं कण पासे छे ? ते कडे छे—‘तं से अहियाए’ इत्यादि.

तत्-पृथिवीकायसमारम्भणं तस्य=पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अहि-  
ताय=अकल्याणाय भवतीति शेषः । तत्-तदेव च पृथिवीकायसमारम्भणमेव च  
तस्य पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय, जिनधर्मप्राप्त्यभावाय  
च भवति । पृथिवीकायसमारम्भणं हि कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधं,  
तस्यातीतवर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये नवधा भवति, नवविधस्यापि  
पृथिवीकायसमारम्भणस्य मनोवाक्काययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशति-  
र्भङ्गा भवन्ति । एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु षट्कायारम्भसंपातजन्य-  
घोरतरदुरितार्जनेन दुरन्तसंसारदावानलज्वालान्तःपातं प्राप्यानन्तनरकनिगोदादि-  
दुःखमनुभवन् न कदाचित्कल्याणं शाश्वतसुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

वह पृथिवीकाय का आरंभ, आरंभ करने वाले के अहित के लिए और अबोधि के लिए होता है । अर्थात् आरंभ करने से सम्यक्त्व और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है ।

पृथिवीकाय का आरंभ-करना, कराना, और अनुमोदन के भेद से तीन प्रकार का है । इन तीनों भेदों के अतीत वर्तमान और अनागत के भेद से तीन-तीन भेद करने पर आरम्भ नौ प्रकार होता है । इन नौ भेदों का मन, वचन, और काय से गुणाकार कर देने पर सत्ताईस भेद हो जाते हैं ।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के समारम्भ में प्रवृत्त पुरुष छहों कायो का आरम्भ करता है और अत्यन्त घोर पाप उपार्जन करके दुरन्त संसाररूपी दावानलकी ज्वालाओं में पडकर नरक निगोद आदि के दुःख भोगता हुआ न कभी कल्याण की प्राप्ति करता है और न शाश्वत सुख देनेवाले मोक्षमार्ग को पाता है ॥ ३ ॥

ते पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाना अहित माटे अने अबोधिने माटे होय छे. अर्थात्-आरंभ करवाथी सम्यक्त्व अने जिनधर्मनी प्राप्ति थती नथी.

पृथ्वीकायने आरंभ-करवो, कराववो अने करवावाणाने अनुमोदन आपवो वगेरेना लेदथी त्रणु प्रकारने छे, अे त्रणुय लेदोना भूतकाण, लविष्यकाण अने वर्त्तमानकाणना लेदथी त्रणु त्रणु लेद करवाथी आरंभ नव प्रकारने छे. अे नव लेदोने मन, वचन अने काया, आ त्रणुथी गुणुवा वडे करी सत्तावीश लेद थर्ध जय छे.

आ प्रमाणे पृथ्वीकायना समारंभमां प्रवृत्त पुरुष छ कायेने आरंभ करे छे, अने अत्यन्त घोर पाप उपाजन करीने दुरन्तसंसाररूपी दावानलनी ज्वालाओंमां पडीने, नरक-निगोद आदिनां दुःख लोगवतां कोर्ध वभत यणु कल्याणनी प्राप्ति करी शकता नथी, अने शाश्वत सुख देवावाणा मोक्षमार्गने यणु प्राप्त थता नथी. (३)

## (८) निवृत्तिद्वारम्

येन तु तीर्थंकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानाती-  
त्याह—‘से तं संबुञ्जमाणे ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से तं संबुञ्जमाणे आयाणीयं समुद्वाय सोच्चा खलु भगवतो अनगाराणं  
अंतिए । इहमेगे सिंणायं भवइ—एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे. एस  
खलु णरण, इच्चत्थं, गढिए लोए जमिणं यिरुवरुवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं  
पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरुवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. ४ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणा-  
मन्तिके इद्वैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः,  
एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण  
पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रणान् विहिंसति ॥ सू. ४ ॥

## (८) निवृत्तिद्वार-

जिसने तीर्थंकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है,  
वह इस प्रकार जानता है—‘से तं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर  
समझता है और उपादेय ( चारित्र ) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि  
पृथिवीकायका यह आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त  
पृथ्वीशस्त्र का आरंभ, करने वाला लोक तरह-तरह के शस्त्रों से पृथ्वीकायका आरंभ करके  
अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू. ४ ॥

## (९) निवृत्तिद्वार

नेणु तीर्थंकर आदिना समीपमां पृथ्वीकायना लुपोनुं स्वरूपं लक्ष्णी वीधुं छे,  
ते आ प्रभाणु लणु छे—‘से तं.’ इत्यादि.

मूलार्थ—ने पुरुष तीर्थंकर भगवान् की अथवा अनगारों की समीप उपदेश  
संलक्षणीने समझे छे, अने उपादेय ( चारित्र ) ने अङ्गीकार करीने विचरे छे; तेने भावूम  
पडे छे छेः—पृथ्वीकायना आरंभ अथे ग्रंथ छे, अथे मोह छे, अथे मार छे, अथे नरक छे,  
अथेमां आसक्त पृथ्वीशस्त्रना आरंभ करवावाणा लत-लतना शस्त्रथी पृथ्वीकायना  
आरंभ करीने अन्य अनेक प्रकारना प्राणीयोनी हिंसा करे छे (४)

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=तीर्थंकरस्य, अनगाराणाम्=तृतीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्, उपादेयं सर्वसावद्ययोग-परित्यागरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भणम् संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवतीति ।

स हि एवं विचारयति—इह मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजात-सम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?—त्याकाङ्क्षायामाह—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि ।

एषः पृथिवीशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रथयते=वध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् पृथिवीशस्त्रसमारम्भस्य

**टीकार्थं**—जो भगवान् तीर्थंकर के या उनके निर्ग्रन्थ श्रमणों के समीप उपदेश सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को अङ्गीकार करके विचरता है वह पृथ्वीकायके समारम्भ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही ज्ञात होता है । उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि ।

यह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही ग्रन्थ है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोंका बंध है । कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यहाँ ग्रन्थ कहा है ।

**टीकार्थं**—जे भगवान तीर्थंकरनी अथवा तेना निर्ग्रन्थ श्रमणोनी समीप उपदेश सांभणी उपादेयने अर्थात् सर्वसावद्ययोगना त्यागरूप चारित्रने अंगीकार करीने विचरे छे, ते पृथ्वीकायना समारंभने अहितकर अने अबोधिजनक समझे छे.

ते आ प्रमाणे विचार करे छे के:—आ मनुष्य लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थाना उपदेशथी जेने सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य थर्छ गयो छे ते आत्मार्थी पुरुषोने जे जणुवामां डोय छे.

ते शुं जणुवामां डोय छे ? जेवी शंका थतां कडे छे—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि आ पृथ्वीकायने समारंभ निश्चयज ग्रंथ छे. अर्थात् आठ प्रकारना कर्मोने अंध छे. कारणमां कार्यने उपचार करीने पृथ्वीकायना समारंभने अहित अथ कह्यो छे. आशय जे छे के—

ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा—एष एव पृथिवीसमारम्भः मोहः=विपर्यासः, विपरीतज्ञानरूपः । तथा—एष एव मारः=मरणम् निगोदादिमरणरूपः । तथा—एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध—मोह—मरण—नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृद्धः=विषयभोगासक्तः लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थं =एतदर्थमेव—कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

यद्यपि—विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमानन-पूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति

आशय यह है कि आरंभ—ग्रन्थ (बंध) का कारण होने से ग्रन्थ कहा गया है । इसी प्रकार का उपचार आगे के कथन में भी समझ लेना चाहिए ।

यह पृथिवीकायसमारंभ मोह अर्थात् विपर्यास है—विपरीत ज्ञानरूप है, तथा यही आरम्भ, निगोद आदि मरणरूप है । तथा यही आरंभ नरक है अर्थात् नारकी जीवों के लिए दश प्रकार की क्षेत्र वेदनाओं का स्थान है । इस समारंभ के कारण कर्मबंध, मोह, मरण एवं नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्तकर के भी अज्ञानी लोग बार—बार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा संसारी जीव विषयभोगों में आसक्त होता है अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के लिए ही अज्ञानी जीव प्रवृत्ति करते हैं ।

विषयभोगों में आसक्त जीव यद्यपि शरीर आदि को पुष्ट करने के लिए परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का

आरंभ—ग्रन्थ (बंध) का कारण होवाती ग्रन्थ कह्यो छे, आ प्रभालेने। उपचार आगणना कथनमां पणु समञ्ज देवे। जेधञ्जे।

आ पृथ्वीकाय—समारंभ मोह अर्थात् विपर्यास छे, विपरीतज्ञानरूप छे, तथा जे आरंभ निगोद आदि मरणरूप छे, तथा जे आरंभ नरक छे अर्थात् नारकीना जेवा माटे दस प्रकारनी क्षेत्र वेदनाज्योनुं स्थान छे, आ समारंभना कारणे कर्मबंध, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु अज्ञानी लोक बारंवार तेनी इच्छा करे छे, अथवा संसारी जेव विषयलोगोमां आसक्त थाय छे, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण अने नरकना माटेज अज्ञानी जेव तेमां प्रवृत्ति करे छे।

विषयलोगोमां आसक्त जेव जेव पणु शरीर आदिने पुष्ट करवा माटे परिवंदन, मानन, अने पूजनने माटे, जन्म मरणथी मुक्त थवा माटे दुःखने नाश करवा माटे,

तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव लभन्ते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः । इत्यर्थमिति प्रयोगस्तु यथा—अयं संसारी लोको जायते मरणायैव, म्रियते च जननायैव, इति, तद्वत् ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव प्रवर्तते वा, इति प्रतिज्ञायां हेतुमाह—‘जमिणं’ । इत्यादि ।

यद्=यस्मात्=विरूपरूपैः = नानाविधैः शास्त्रैः=स्वकायपरकायतदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्युपमर्दकसावधव्यापारकरणेन, यद्वा—पृथिवीकायमुद्दि-  
श्याष्टविधकर्मसमुत्पादकसावधव्यापारेण, इमं = पृथिवीकायं विहिनस्ति,

विनाश करने के लिए, पृथिवीशस्त्र का आरंभ करता है तथापि इस आरंभ का फल उसे कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के रूप में ही मिलता है । अत एव आशय यह है कि—कोई किसी भी अभिलाषा से पृथिवीकायका आरंभ करे मगर फल तो वही कर्म-बन्ध आदि ही होगा । ( इच्चत्थं ) इस का प्रयोग यह बतलाने के लिए किया गया है—यह संसारी जीव उत्पन्न होता है मरने के लिए और मरता है जनमने के लिए, इसी प्रकार यह प्रयोग है ।

लोक बारम्बार कर्मबन्ध आदि के लिए ही अभिलाषी है, अथवा—कर्मबन्ध के लिए ही प्रवृत्ति करता है । इस प्रतिज्ञा में हेतु कहते हैं—‘जमिणं’ । इत्यादि ।

जिस कारण से गृह्य (आसक्त) लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से—स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से—पृथिवीकाय का समारंभ करके अर्थात् पृथिवीकाय की हिंसा करने वाला सावध व्यापार करके, अथवा पृथिवीकाय के निमित्त से आठों कर्म—जनक सावध

पृथ्वीशस्त्रेण आरंभं करोति चेत् तदा पृथ्वीशस्त्रेण तेन कर्मबन्ध, मोह, मरण  
अने नरकना उपमांश्च भवेत्ते । अथ माते आशय अथ के—कोई कांछि पृथ्वीश-  
स्त्रेण पृथ्वीकायने आरंभं करोति परन्तु इति तेन कर्मबन्ध आदिश्च भवेत् ।

‘इच्चत्थं’ अने प्रयोग अथ अथवा माते, करोति के आ संसारी जीव उत्पन्न  
थाय अथ मरवाने माते, अने मरे अथ ते जन्म लेवा माते, आ प्रमात्ते अथ प्रयोग अथ ।

लोक बारंवार कर्मबन्ध आदि माते अथ अथवा कर्मबन्ध माते  
प्रवृत्ति करोति अथ प्रतिज्ञामां हेतु कहे अथ—‘जमिणं’ । इत्यादि ।

अथ कारणेण गृह्य आसक्त लोक नाना प्रकारना शस्त्रेण—स्वकाय, परकाय अने उभयकाय  
इति शस्त्रेण—पृथ्वीकायने समारंभ करीने अर्थात् पृथ्वीकायनी हिंसा करवावाणा सावध  
व्यापार करीने अथवा पृथ्वीकायना निमित्तथी आठ कर्मोने उत्पन्न करनार सावध व्यापारथी

छिनत्ति, भिनत्ति, प्राणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र= पृथिव्युपमर्दकं शस्त्र स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारम्भमाण.=व्यापारयन् अन्यान्= अप्कायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहिनस्ति । पृथिवीकायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्त्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेषां, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भिणां

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है । तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अप्काय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है ।

तात्पर्य यह है कि—पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त षड्जीवनिकायरूप लोक की हिंसा करता है । इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ बारबार कर्मबंध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू. ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दुःख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरंभ करनेवालों को कर्मबंध क्यों होता है ? इस शंका का समाधान

आ पृथ्वीकायनो घात करे छे. छेदन करे छे. लेदन करे छे, तेने प्राणुहीन अनावे छे. तथा पृथ्वीकायना स्वकाय, परकाय अने उलयकायइप शस्त्रोने उपयोग करता थका अप्काय आदि अनेक त्रस-स्थावर प्राणीओनी हिंसा करे छे.

तात्पर्य अे छे के—पृथ्वीकायनी हिंसा द्वारा समस्त षड्जीवनिकायरूप लोकनी हिंसा करे छे. आ प्रमाणे अत्यन्त घोर पाप करीने बारंवार कर्मबंध करे छे. अने त्यां सुधी के नरकने प्राप्त करीने पणु नरक भाटे न प्रवृत्ति करे छे, मोक्ष भाटे करता नथी. (४)

पृथ्वीकायना लुवोमां श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय अने मन नथी, तो पछी तेने दुःखने अनुभव केवी रीते थछ शकशे ? अने अेवी अवस्थां पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाने कर्मबंध केम थछ शकशे ? आ शंकातुं

कथं कर्मबन्धः ? इति जिज्ञासायामाह—‘ से बेमि. ’ इत्यादि ।

( मूलम )

से बेमि—अप्येगे अंधमब्भे, अप्येगे अंधमच्छे, अप्येगे पायमब्भे, अप्येगे पायमच्छे. अप्येगे गुंफमब्भे, अप्येगे जंघमब्भे, अप्येगे जाणुमब्भे, अप्येगे उकमब्भे, अप्येगे कडिमब्भे, अप्येगे णाभिमब्भे, अप्येगे उयरमब्भे, अप्येगे पासमब्भे, अप्येगे पिडिमब्भे, अप्येगे उरमब्भे, अप्येगे हिययमब्भे, अप्येगे थणमब्भे, अप्येगे खंधमब्भे, अप्येगे बाहुमब्भे, अप्येगे हत्थमब्भे, अप्येगे अंगुलिमब्भे, अप्येगे णहमब्भे, अप्येगे गीबामब्भे, अप्येगे हणुयमब्भे, अप्येगे होट्ठमब्भे, अप्येगे दंतमब्भे, अप्येगे जीहमब्भे, अप्येगे तालुमब्भे, अप्येगे गलमब्भे, अप्येगे, गंडमब्भे, अप्येगे कन्नमब्भे, अप्येगे णासमब्भे, अप्येगे अच्छिमब्भे, अप्येगे भमुहमब्भे, अप्येगे णिडालमब्भे, अप्येगे सीसमब्भे, अप्येगे संपमारण अप्येगे उद्वण ॥ सू. ५ ॥

( छाया )

अथ ब्रीवीमि—अप्येकः अन्धमाभिन्ध्यात् अप्येकः अन्धमाच्छिन्ध्यात् । अप्येकः पादमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पादमाच्छिन्ध्यात् । अप्येकः गुल्फमाभिन्ध्यात्, अप्येकः जङ्गामाभिन्ध्यात्, अप्येकः जानु आभिन्ध्यात्, अप्येकः उरु आभिन्ध्यात्, अप्येकः कटिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः नामिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः उदरमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पार्श्वमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पृष्टिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः उर आभिन्ध्यात्, अप्येकः

करने के लिए सूत्र कहते हैं—‘ से बेमि. ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—मै कहता हूँ—कोई अन्धे को भेदे, कोई अंधे को छेदे, कोई पैर को भेदे कोई पैर को छेदे, कोई गुल्फ को भेदे छेदे, कोई पिण्डी को भेदे छेदे, कोई घुटने को भेदे, छेदे, कोई जांघ को भेदे छेदे, कोई कमर को भेदे छेदे, कोई नाभि को भेदे छेदे, कोई पेट को भेदे छेदे, कोई, पसवाडे को भेदे छेदे, कोई पीठ को भेदे छेदे, कोई छाती

समाधान करवा भाटे सूत्र उडे छे—‘ से बेमि. ’ इत्यादि.

मूलार्थ—हुं कहुं छुं कोरि आंधणाने लेहन करे, कोरि आंधणाने छेहन करे, कोरि पगने कोरि, कोरि पगने छेहे कोरि शुद्ध- (धुंटी)ने लेहे, छेहे, कोरि पीडीने लेहे, छेहे, कोरि धुं टणुने लेहे छेहे, कोरि आंधने लेहे छेहे, कोरि कमरने लेहे छेहे कोरि नाभि (हुंटी)ने लेहे-छेहे; कोरि पेटने लेहे छेहे, कोरि पांसणीआने लेहे-छेहे कोरि पीठने लेहे-छेहे, कोरि छातीने लेहे-छेहे कोरि



हृदयमाभिन्ध्यात्, अप्येकः स्तनमाभिन्ध्यात्, अप्येकः स्कन्धमाभिन्ध्यात्, अप्येकः बाहुमाभिन्ध्यात्, अप्येकः हस्तमाभिन्ध्यात्, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः नखमाभिन्ध्यात्, अप्येकः ग्रीवामाभिन्ध्यात्, अप्येकः हनु आभिन्ध्यात्, अप्येकः ओष्ठमाभिन्ध्यात्, अप्येकः दन्तमाभिन्ध्यात्, अप्येकः जिह्वामाभिन्ध्यात्, अप्येकः तालु आभिन्ध्यात्, अप्येकः गलमाभिन्ध्यात्, अप्येकः गण्डमाभिन्ध्यात्, अप्येकः कर्णमाभिन्ध्यात्; अप्येकः नासामाभिन्ध्यात्, अप्येकः अक्षि आभिन्ध्यात्, अप्येकः भ्रुवमाभिन्ध्यात्, अप्येकः ललाटमाभिन्ध्यात्, अप्येकः शीर्षमाभिन्ध्यात्, अप्येकः संप्रमारयेत्, अप्येकः उपद्रावयेत् ॥ सू. ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उगली को भेदे छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी-ठोडी) को भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे, छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गंडस्थल (कनपटी) को भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आंख को भेदे छेदे, कोई भौंह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर वेहोश कर दे; या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियबलहीन होने पर भी उसे वेदना का अनुभव होता ही है ॥ सू. ५ ॥

हृदयने लेहे छेहे, कोरु स्तनने लेहे छेहे, कोरु कंधने लेहे-छेहे, कोरु आङ्गुलने लेहे छेहे, कोरु उगलीने लेहे-छेहे, कोरु आंगलीने लेहे-छेहे, कोरु नखने लेहे-छेहे, कोरु गर्दनने लेहे छेहे, कोरु डाढीने लेहे-छेहे, कोरु डाढने छेहे-लेहे, कोरु दांतने लेहे छेहे, कोरु जीभने लेहे छेहे, कोरु तालु-(ताणवा)ने लेहे-छेहे, कोरु गणाने लेहे-छेहे, कोरु गंडस्थल (कनपटी) कानपटीने लेहे-छेहे, कोरु कानने लेहे-छेहे, कोरु नाकने लेहे-छेहे, कोरु आंभने लेहे-छेहे, कोरु आंभरने लेहे-छेहे, कोरु ललाटने लेहे-छेहे, कोरु शिरने लेहे-छेहे, कोरु भारीने जेडोश करी हे, अथवा कोरु मारीन् नांभे, आ प्रमात्ते इन्द्रियबलहीन होवा छतां पण तेने वेदनाने अनुभव थाय छे. (५)

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । अथेति प्रतिवाक्यप्रारम्भद्योतनाय । ब्रवीमि=पृथिवी-  
कायस्य वेदनाविषये कथयामि । यथा-एकः=कश्चित् अन्ध-जन्मान्धं आभिन्धात्,  
तथा एकः=अपरः कश्चित् अन्धमपि आछिन्धात् ।

अत्र अन्धमित्युपलक्षणं, बधिरमूकपङ्गुप्रभृतीनाम् । यः खलु जन्मान्धो जन्मवधिरौ  
जन्ममूको जन्मपङ्गुर्मृगापुत्रवत्करचरणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वभवार्जिताशुभकर्मो-  
दयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहाराक्षमोऽतिदयनीयदशामुपगतः ।

एवंविधजन्मान्धादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिशितमल्लादिना भिनत्तिचेत्,  
सुतीक्ष्णपरशुकुठारादिना छिनत्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग भेदनच्छेदनसमयेभेदकं छेदकं न

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है-‘कहता हूँ’  
अर्थात् पृथिवीकाय की वेदना के विषय में कहता हूँ । जैसे-कोई पुरुष अंधे अर्थात् जन्म से  
अंधे को भेदे छेदे । यहाँ ‘अंध’ पद उपलक्षण है, उस से बहिरा, मूंगा, लंगडा, आदि भी  
प्रहण कर लेना चाहिए ।

जो जीव मृगालोढक की तरह जन्मान्ध है, जन्म से बहिरा है, जन्म से  
मूंगा है, जन्म से लंगडा है, हाथ-और आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में  
भेद नहीं है, और जो पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा  
अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त है, इस प्रकार के  
जन्मान्ध वगैरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर आवेश के साथ, बहुत  
तीखे भाले वगैरह से भेदता है, अत्यन्त तीखे फरसी कुठार आदि से छेदता है,

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नवुं वाक्य आरंभ करवानुं प्रकट करे छे ‘कहुं छुं’ अर्थात्  
पृथ्वीकायनी वेदनाना विषयमां कहुं छुं-जेम डोर्ध मनुष्य अन्ध अर्थात्-जन्मथी  
अंधने (आंधणे छे तेने) लेहे छेहे. अहिं ‘अंध’पद ते उपलक्षण छे, तेनाथी  
अडेरि मूंगा, लंगडा आदि पण अडणु करी लेवा जेधं अे.

जे एव मृगलोढानी माइक जन्मांध छे. (जन्मथी आंधणे छे) जन्मथी;  
अडेरि छे. जन्मथीज मूंगा छे जन्मथी लंगडा छे. हाथ-पग आदि विलिन्न अवयवोना  
जेना शरीरमां लेह नथी, अने ते पूर्वभवना अशुभ कर्मोना उदयथी पोताना हितनी प्राप्ति  
तथा अहितना परिहारमां असमर्थ छे, अत्यन्त दयापात्र-दशाने प्राप्त छे, आ प्रकारना  
जन्मांध वगेरेने डोर्ध कठोर हृदयवाणा पुरुष निर्दय थछेने आवेशनी साथे अहुं तीक्ष्ण  
भाला वगेरेथी लेहे छे (विधे छे), अत्यन्त तीखी धारवाणी इरसी, कुठार आदिथी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरुकटि-  
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धवाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वातालु-  
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-  
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्षादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन-छेदन के समय, अपने अंग के भेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिह्लाता है; इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरे, मूगे, लंगडे आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, वाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढी, होठ, दांत, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेदे छे, तो लेदन-छेदनना समये चोताना अंगनुं लेदन-छेदन करनारने ते दृश्यतो नथी, सांलणतो नथी, उंच्या अवाजथी शोर-अडोर करी शकतो नथी. अटलाभात्रथी तेमां अशुवपणुं अथवा वेदनानो अलाव निश्चित करी शकतो नथी, तेम कडेवातुं पणु नथी. अे प्रमाणे पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पणु थाय छे. अे वात निश्चित थर्ध ज्ञय छे. अर्थात् जेवी रीते मृगादोढीआ प्रमाणे-अडोरा, मूंगा, लंगडा आदि पुश्पने वेदना थाय छे, ते प्रमाणे पृथ्वीकायने पणु वेदना थाय छे.

अथवा-स्पष्ट चेतनावाणा जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय जीवोना पग, ढींगणु, जांघ, जानु, उरू कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, वाहु हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा दाढी, होठ, दांत, ललाट, तालु, गला, कनपटी, कान, नाक, आँख, लभर, ललाट, मस्तक आदिना लेदना-छेदनाथी जेभ अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैव घोरतरवेदना भवतीति भगवता केवललोकेन साक्षात्कृत्य प्रवेदितम् ।

अत्रैवान्यमपि दृष्टान्तमाह—“अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्वए” इति । एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्तं कश्चित्प्राणिनं संपमारयेत्=तीव्रद्वेषावेशेन शस्त्रादिप्रहारेण चेष्टाराहित्यरूपां मूर्च्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्भावयेत्=प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छावशेन व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू. ५ ॥

इत्थं पृथिवीकायस्य जीवत्वं शस्त्राद्धाघातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान वाले स्त्यानर्द्धि आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है । यह बात भगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं—‘अप्पेगे’ इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के वश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित—मूर्च्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्च्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्च्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ६ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सचित्तता और शस्त्र आदि के आघात से होने वाली

(६६) मोह अज्ञानवाणा स्त्यानर्द्धि आदि कर्मना उदयथी अप्रकट चेतनावाणा पृथ्वी-काय आदि जीवोंने अप्रकट परन्तु अत्यन्त दारुण वेदना थाय छे, आ वात लगवाने केवल ज्ञानथी साक्षात् ज्ञानीने प्रकट करी छे.

आ विषयमां ओक जीवुं दृष्टान्त कडे छे—‘अप्पेगे’ इत्यादि, जेस कोई पुरुष, सर्व अवयवोथी युक्त कोई प्राणीने तीव्र द्वेषथी आवेशने वश थई शस्त्र आदिने प्रहार करीने चेष्टारहित—मूर्च्छित करी नाथे छे, तथा कोई ते मूर्च्छित पुरुषने प्राणहीन करे छे. ते मूर्च्छितमां व्यक्त वेदना नथी. तो पणु अव्यक्त (जानी—जेई शकाय नडि तेवी रीते) अत्यन्त घोर वेदना थाय छे. ओ प्रमाणे पृथ्वीकायमां पणु घोर वेदना थाय छे. ॥पा॥

आ प्रमाणे पृथ्वीकायनी सचित्तता अने शस्त्र आदिना आघातथी थवावाणी

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह—' एत्थ ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये. शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्रं, दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारंभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते= प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्रं समारंभमाणः खननादिसावद्यव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि—पृथिवीकाय का आरंभ करने में कर्म का बंध होता है—' एत्थ ' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि—पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एवं कृषि आदिरूप सावद्य व्यापार कर्मबंध के कारण है । तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष पृथिवीकाय का आरंभ करता है, उसे यह माहम नहीं होता कि—यह सावद्य व्यापार कर्मबंध का कारण है, यह माहम न होने के कारण

वेदना अतावीने डवे अे अतावे छे केः—पृथ्वीकायने आरंभ करवाभां कर्मने अंध थाय छे—' एत्थ ' इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाने आ (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञान डोतुं नथी. (६)

टीकार्थ—पृथ्वीकायभां स्वकाय, परकाय अने उभयकायरूप द्रव्यशस्त्रने तथा मन, वचन, कायानां दुष्प्रणिधान (अराज लाव)रूप लावशस्त्रने व्यापार करवावाणाने अअर नथी डोती के—पूर्वोक्त (पूर्व) कडेला) सत्तावीस प्रकारना अनन (भेदवुं) अे प्रभाअे कृषि—अेती आदिइय सावद्य—व्यापार कर्मअंधनु कारण छे. तात्पर्य अे छे केः—अे पुरुष पृथ्वीकायने आरंभ करे छे, तेने अे माहम नथी केः—आ सावद्य व्यापार कर्म

मोक्षमार्गतो दूरमपगतो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विवृत्तिद्वारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवतीत्याह-‘एत्थ’ इत्यादि ।  
॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा, जेवण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा, जेवण्णे पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्तिवेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्थपरिण्णाए बीओ उद्देशो समत्तो ॥ १-२ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्रं असमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पृथिवीशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः पृथिवीशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् पृथिवीशस्त्रं समारभतः समनुजानीयात्, यस्यैते पृथिवीकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञायां द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

यह चारित्ररूप मोक्षमार्ग से दूर ही रहता है ॥ सू. ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं-‘एत्थ’ इत्यादि ।

**मूलार्थ-** पृथिवीकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ ज्ञात होता है । उन्हे जान कर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं पृथिवीकाय के शस्त्र का आरंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय के शस्त्रका आरंभ करावे और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करे । इन पृथिवीकर्मसमारम्भों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. ७ ॥

अधनुं कारणु छे. आ मादूम नडि होवाथी ते आरिन्नरूप मोक्षमार्गथी हरण रडे छे. ॥६॥

पृथिवीकायना समारंलनुं परिज्ञान होवाथीण परिज्ञातकर्मा मुनि होय छे, आ वात अतावे छे:-‘एत्थ’ इत्यादि.

**मूलार्थ-** पृथ्वीकायमां शस्त्रने। आरंल नडि करवावाणाने आ आरंलनी अयर होय छे. तेने ज्ञानीने बुद्धिमान् पुरुष पोते पृथ्वीकायना शस्त्रने आरंल करता नथी; भीण पासे यणु पृथ्वीकायना शस्त्रने आरंल करावता नथी. अने पृथ्वीकायने आरंल करवावाणा भीणने अनुमोदन आपता नथी. अे पृथ्वीकर्म-समारंलाने ज्ञाणवावाणान् मुनि छे, ते परिज्ञातकर्मा छे; अे प्रमाणे हुं कहुं छुं. (७)

## टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्या-  
पारयतः इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति ।  
ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादि-  
दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गं प्रवर्तत इति भावः ।  
उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भणं परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=  
सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च—अन्यैरपि  
पृथिवीशस्त्रं नैत्र समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनु-  
जानाति । एवं मनोवाक्कायभेदेनातीतानागतवर्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरंभ न करने  
वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरंभ ज्ञात होता है । इन आरंभों को जानने वाला  
अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसंबंधी आरंभों को कर्मबंध का कारण तथा अनन्त नरक  
निगोद के दुःखों का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है । उपसंहार  
करते है—

पृथ्वीकाय के आरंभ को बंधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद  
समझने वाला, द्रव्य-भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार  
नहीं कराता और व्यापार करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करता । इसी प्रकार मन,  
वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

टीकार्थ—पृथ्वीकायमां स्वकाय परकाय आदि शस्त्रोने आरंभ नहि करवावाणाने  
ये पूर्वोक्त सावद्य व्यापाररूप आरंभनी भ्रमर होय छे, ते आरंभोने ज्ञातवावाणा अर्थात्  
ज्ञपरिज्ञाथी पृथ्वीकायसम्बन्धी आरंभोने कर्मबंधनु कारण, तथा अनन्त नरक निगोदना  
दुःखोनु कारण ज्ञानीने चारित्ररूप मोक्षमार्गमां प्रवृत्त थाय छे. हवे उपसंहार करे छे—

पृथ्वीकायना आरंभने बंधनुं कारण ज्ञानीने बुद्धिमान् सत्-असत्ना लेहने  
ज्ञातवा-समजवावाणा, द्रव्यभावरूप पृथ्वीशस्त्रोने पोते व्यापार करता नथी, भीज  
पासे व्यापार करावता नथी, अने व्यापार करवावाणाने अनुमोदन पणु करता नथी.  
आ प्रमाणे मन, वचन, कायाना लेहथी, अने भूतकाण, लविष्यकाण, वर्तमानकाणना

समारंभान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषयाः खननकृष्यादिरूपाः सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=विदितपरित्यक्त-सकलसावद्यक्रियाविशेषः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यलिङ्गीत्यर्थः । इति ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञाध्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकायसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी खोदना जोतना आदि सावद्य व्यापारो को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावद्य क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यलिङ्गी मुनि नहीं कहलाता । 'त्तिबेमि' भगवान् ने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥

आचाराङ्ग-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें  
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनका द्वितीय उद्देश  
समाप्त ॥ १-२ ॥

लेखनी सत्तावीस प्रकारना पृथ्वीकायना समारंभने जाणी करीने सर्वने त्याग करवे जेधये.

आ प्रमाणे जे पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी जोदवुं, जोडवुं आदि सावद्य व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारण समजे छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्याग करी दे छे, ते परिज्ञातकर्मा अने सकलसावद्यक्रियाओने जाणवावाणा पुरुष मुनि कहेवाय छे, मात्र द्रव्यलिङ्गी मुनि कहेवाता नथी. लगवाने जेवुं कहुं छे, जेवुं जे हुं कहुं छुं ॥७॥

आचारांग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकाना गुणशती अनुवादमां  
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनने भीजे उद्देश  
समाप्त थयो ॥ १-२ ॥



## અથ તૃતીયો શઃ ।

દ્વિતીયોદ્દેશે પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્વં તત્ર પૃથક્પૃથગનેકપૃથિવીકાયજીવાશ્રિતત્વં ચ પ્રસાધિતમ્, તસ્ય હિંસયા કર્મબન્ધો ભવતીત્યુક્તમ્, અન્તતશ્ચ પૃથિવીકાયજીવ-હિંસાનિવૃત્ત્યા મુનિર્ભવતીતિ સિદ્ધાન્તિતમ્ । ઇદાનીમપાં સચિત્તત્વમનેકાપ્કાયજીવા-શ્રિતત્વં વોધયતા ભગવતાઽપ્કાયહિંસયા ષટ્કાયજીવહિંસાસંપાતાત્ કર્મબન્ધો ભવતિ, તથાઽપ્કાયહિંસાનિવૃત્ત્યા ચ મુનિત્વં લભ્યત ઇતિ વોધયિતું તૃતીયોદ્દેશઃ પ્રારભ્યતે- 'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાયજીવસ્વરૂપવિચારણાયાં પ્રથમમનગારસ્ય યોગ્યતા દર્શયતિ-

## ત્રીસરા ઉદ્દેશ

દ્વિતીય ઉદ્દેશક મેં પૃથિવી કી સચિત્તતા સિદ્ધ કી ઓર પૃથિવી મેં પૃથક્-પૃથક્ અનેક પૃથિવીકાય કે જીવોં કા રહના સિદ્ધ કિયા । યહ મી વતલાયા જા ચુકા હૈ કિ-ઉન જીવોં કી હિંસા કરને સે કર્મ કા વંધ હોતા હૈ । અન્ત મેં યહ મી પ્રમાણિત કિયા હૈ કિ-પૃથ્વીકાય કે જીવોં કી હિંસા કા ત્યાગ કરને સે મુનિ હોતા હૈ । અબ યહ વતલાતે હૈં કિ-અપ્કાય સચિત્ત હૈ, અનેક અપ્કાય કે જીવોં સે આશ્રિત હૈ ઓર અપ્કાય કી હિંસા સે ષટ્કાય કે જીવોં કી હિંસા હોતી હૈ ઓર અપ્કાય કી હિંસા કા ત્યાગ કરને વાલા મુનિપન પાતા હૈ । યહ સબ વતલાને કે લિષ્ઠ ત્રીસરા ઉદ્દેશ આરંભ કિયા જાતા હૈ-'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાય કે જીવોં કે સ્વરૂપ કા વિચાર કરતે હુષ્ઠ સર્વ પ્રથમ અનગાર કી

## ત્રીજો ઉદ્દેશક—

ખીજો ઉદ્દેશકમાં પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ કરી છે. અને પૃથ્વીમાં જૂદા-જૂદા અનેક પૃથ્વીકાયના જીવો રહે છે તે સિદ્ધ કર્યું છે. એ પણ ખતાવવામાં આવ્યું છે કે તે જીવોની હિંસા કરવાથી કર્મનો બંધ થાય છે. અન્તમાં એ પણ પ્રમાણિત કર્યું છે પૃથ્વીકાયના જીવોની હિંસાનો ત્યાગ કરવાથી મુનિ થાય છે. હવે તે ખતાવે છે કે:-અપ્કાય સચિત્ત છે, અનેક અપ્કાયના જીવોથી આશ્રિત છે, અને અપ્કાયની હિંસાથી ષટ્કાયના જીવોની હિંસા થાય છે, અને અપ્કાયની હિંસાનો ત્યાગ કરવાવાળા મુનિપણાને પામે છે. એ સર્વ ખતાવવા માટે ત્રીજો ઉદ્દેશકનો આરંભ કરવામાં આવે છે:-'સેવેમિ' ઇત્યાદિ.

અપ્કાયના જીવોના સ્વરૂપનો વિચાર કરતા થકા સૌથી પ્રથમ અણુગારની યોગ્યતા

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनिः पृथिवीकायादिसूक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि-  
कर्तव्यतायामल्पीयोऽपि प्रमादजातं स्वलनं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं  
स्वलनं कर्तुं न लज्जते, तथाविधनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः  
स्वल्पमपि संयमतः स्वलनं यथा न भवेत् तथा प्रयतितव्यं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्रं स्तेयवृत्त्याऽपहत्य  
स्वमातुरग्रे निहितम् । माता तदवलोक्य हृष्टा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददौ ।  
अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमातृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

योग्यता दिखलाते है—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे-छोटे जीवों  
के आरंभ का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण थोड़े से भी स्वलन की उपेक्षा करता है  
तो फिर और अधिक स्वलन करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही  
नियम है कि—गिरी सो गिरती ही जाती है, अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए  
कि, जिस से संयम में तनिक भी स्वलन न हो ।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौड़ी चुराकर अपनी माता के  
पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को  
मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से  
पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे-धीरे वह ताम्रपण (तांबे का सिक्का) कार्षापण

भतावे छे—सर्वविरतिरूप पदने पाभेला मुनि पृथ्वीकाय आदि नाना-नाना जिवेना  
आरंभने त्याग करवाभां जे प्रमादना कारणे थोडां पणु स्वलन (त्रुटी)नी उपेक्षा करे  
छे. तो इरीने वधादे स्वलन करवाभां पणु संकोच करता नथी. मनोवृत्तिने जेवो  
नियम छे के—नीचे पडवा पछी वधादे नीचे पडी नय छे. जे कारणेथी मुनिजो  
जेवो प्रयत्न करवो जेधजे के—जेनाथी संयमभां थोडुं पणु स्वलन नही डोय.

आ विषयभां दृष्टान्त कडे छे:—

कोई भाणके पोतानी आल्यावस्थाभां जेक कौडी चोरीने पोतानी मातानी पास  
राखी दीधी; माता तेने जेधने राख थध जेने तेने इनाम आपवाना ठंगथी भाणकने  
मीठी वस्तु आपी. तार पछी ते भाणक वारंवार चोरी करवा लाज्यो. जेने पोतानी  
माता पासैथी (माताना हाथथी) इनाम जेणववा लाज्यो. धीरे धीरे ते ताम्रपण—तांबाना

ताम्रपण-कार्षापण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्पर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः  
कस्यचिन्नृपस्य कोशागारं प्रविष्टः । ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो  
राजान्तिकं समानीतः । तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः  
शूले समारोप्यताम्, इति ।

असौ पृष्ठश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते ? चेद् ब्रूहि । चौरैणोक्तम्-  
राजन् ! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थयेः । अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता ।  
स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेद् ।  
ततोऽसौ राज्ञा पृष्ठः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम् ? । चौरोऽवदत्-इयमेव ममै-

(चौअन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक आदि चुराने में भी  
प्रवीण हो गया । वह किसी राजा के खजाने में घुसा । खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे  
पकड लिया और राजा के सामने पेश किया । राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ,  
उसने आज्ञा दी-‘इस चोर को शूली पर चढा दो’ ।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो ।

चोरने कहा-‘महाराज ! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली । चौरने राजा के सामने ही वेग  
के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली । यह देखकर राजाने  
पूछा-अरे ! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया ?

सिद्धा, चार आनी, इपिआ, सोना भडोर, रत्न, सोनुं, भण्डि, भाण्डुक आदि चोरवाभां  
पणु प्रवीणु थर्ध गयो. ( डेटवोक समय जता ) ते केध राजाना भलनाभां धुसी  
गयो. भलनाना भलवान् पडरेदारे रक्षकेअये तेने पकडी लीधो अने राजनी सामे-  
डाजर कुर्यो. राज तेने अपराध सांलणीने क्रोधायमान थया, अने आज्ञा आपी के  
अये चोरने शूली पर चढावी धो !

राजअये तेने पूछथुं के तारी कांछि धच्छा होय तो कडो.

चारे कहुं-‘महाराज ! हुं भारी माताने भणवानी प्रार्थना कइं छुं.’

राजनी आज्ञाथी चोरनी माता त्यां आगण आवी. अने चोरने भणी, चारे  
राजना सामेण वेगथी अेकदम उठीने जल्दीथी पोतानी मातानुं नाक पोताना  
दांतथी कापी लीधुं. ते नेधने राजअये पूछथुं-अरे ! ते आनुं दुष्कर्म शा भाटे कथुं ?

तद्घोरतरदुःखप्रदशूलारोपणफलप्रदात्री प्राणापहर्त्री, न तु भवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववृत्तं राज्ञे विज्ञापयामास । ततः स्वकृतस्तेयकर्मणो विपाकं शूलारोपेण घोरतरवेदनां प्राप्नुवन्मृतः । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाऽनर्थाय भवतीति विज्ञायात्मारुतिभिर्मुनिभिः संयमतः स्वल्पमपि स्वलनं यथा न भवेत् तथा वर्तितव्यम् ।

तपःसंयमे कदाचिदाकस्मिकस्वलनसंपातस्त्वन्य एव, स्वलनोपेक्षण-मध्यन्यदेव, यतः स्वलनोपेक्षया पुनरुत्तरोत्तरस्वलनवृद्ध्या साधुत्वमेव नश्यतीति विचिन्त्य जागरूकाः साधवो नवनवागन्तुकस्वलनपरंपराविरहिताः पूर्वजातस्वलन-

चोर-महाराज ! इसी के कारण मुझे घोर दुःख देने वाली शूली पर चढना पड रहा है; यही मेरे प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर चोरने अपना सम्पूर्ण पूर्व-वृत्तांत राजा को सुना दिया ।

तत्पश्चात् अपने किये चौर्य कर्म का घोरवेदनारूप फल-शूली पर चढनेरूप-को भोगता हुआ वह चोर मर गया ।

अत एव थोडा-सा भी दोष महान् अनर्थ का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्वलन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकस्मात् स्वलना की बात दूसरी है किन्तु स्वलना की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्वलना की उपेक्षा करने से उत्तरोत्तर स्वलना बढ़ती ही चली जाती है, ऐसा विचार करके सदैव सावधान

चोर कडे-महाराज ! मे भाताना कारणे न मारे घोर दुःख आपवावाणी शूली उपर चढवानुं थाय छे, मे मारे प्राणु लेवावाणी छे, आप नहि. आ प्रभाणे कहीने चारे पोतानी आगणनी संपूर्ण हुकीकत राजने संसणावी. ते पछी पोतानुं करेल चारीनु कर्मनुं घोरवेदनाइप क्ल-शूली पर चढवानुं, ते लोगवते। थके ते चार भरणु पारये।

अटले के:-थोडे पणु दोष महान् अनर्थनु कारणु भनी जय छे. मे प्रभाणे समणेने आत्मकल्याणना अलिदाषी मुनिओमे मेवो प्रयत्न करवो जेध मे के, जेनाथी संयममां थोडुं पणु स्वलन न थाय.

तप अने संयममां केध वधत अकस्मात् स्वलननी वात नूही छे. पणु स्वलननी उपेक्षा करवी ते भीणु वात छे. तेनु कारणु मे छे के-स्वलननी उपेक्षा करवाथी उत्तरोत्तर स्वलन (बूल) वधतुं न जय छे. मेवो विचार करीने सदैव-डंभेशां सावधान रहेवावाणा

દોષમયનેતું શક્તુવન્તિ । તદેવ વિશદયન્ સુધર્મા સ્વામી પ્રાહ—‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ ।

દ્વિતીયોદ્દેશસમાપ્તૌ “ જસ્સેતે પુઢવિકમ્પસમારંભા પરિણાયા ભવંતિ સે હુ મુળી પરિણાયકમ્મા ” ઇત્યુક્તમ્ । અધુના તુ—ન ચ તાવતૈવ સર્વથા મુનિર્ભવિતુમર્હતિ । યથા ભવતિ તથા દર્શયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ—‘ સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

સે વેમિ—સે જહાવિ અળગારે ઝજ્જુકઢે નિયાગપહિવળ્ણે અમાયં કુવ્વમાળે વિયાહિણ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ છાયા ॥

તદ્ બ્રવીમિ સ યથાપિ અનગાર ઋજુકૃતઃ નિયાગપ્રતિપન્નઃ અમાયાં કુર્વાળો વ્યાખ્યાતઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ટીકા ॥

‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ । તદ્ બ્રવીમિ યદન્યચ્ચ ભગવદન્તિકે મયા

રહને વાલે સાધુ નયી—નયી હોને વાલી સ્વલના કે દોષોં સે બચ સકતે હૈ । યહી વાત સ્પષ્ટ કરતે હુણ સુધર્મા સ્વામી આગે કહતે હૈ—‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ ( ભગવાન્ કે મુસ્વારવિન્દ સે જો સુના હૈ, ) સો કહતા હૂં—ઋજુકૃતઃ મોક્ષમાર્ગ મેં પ્રાપ્ત ઔર માયા ન કરને વાલા અનગાર કહા ગયા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકાર્થ—ભગવાન્ કે સમીપ ઔર મી જો સુના હૈ વહ કહતા હૂં । પૃથ્વીકાય કે વિષય મેં શક્ત કા આરંભ ન કરને વાલા પૃથ્વીકાય કે આરંભ કો જાનને વાલા પુરુષ જિસ

સાધુ—નવી નવી થવાવાળી સ્ખલના દોષોથી બચી શકે છે, એ વાત સ્પષ્ટ કરીને સુધર્મા સ્વામી આગળ કહે છે—‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ.

બીજા ઉદ્દેશકની સમાપ્તિમાં કહ્યું હતું કે:—જે પુરુષ પૃથ્વીકાયના આરંભને બાળીને તેનો ત્યજ કરી આવે છે, તે મુનિ છે. અહિં એ બતાવવામાં આવે છે કે:—આટલું કરવા માત્રથી જ કોઈ પૂરી રીતે મુનિ થઈ શકતા નથી, મુનિ થવાને માટે બીજું—જે જે વાતોની (બાળવાની) આવશ્યકતા છે, તેને સુધર્મા સ્વામિ કહે છે—‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(ભગવાનના મુખારવિદ્યથી જે સાંભળ્યું છે) તે કહું છું.— ઋજુકૃત, મોક્ષમાર્ગમાં પ્રાપ્ત અને માયા નહિ કરવાવાળા અણગાર કહ્યા છે (૧)

ટીકાર્થ—ભગવાનની પાસેથી બીજું પણ જે સાંભળ્યું છે, તે કહું છું.— પૃથ્વીકાયના વિષયમાં શક્તનો આરંભ નહિ કરવાવાળા, પૃથ્વીકાયના આરંભને

श्रुतं तत् कथयामि । स पृथिवीकायशस्त्रमसमारभमाणः परिज्ञातपृथिवीकर्म-  
समारम्भो यथा संपूर्णोऽनगारो भवति, अपिच-यथाऽनगारो न भवति,  
तद् द्वयमपि ब्रवीमि, वक्ष्यति च-‘अणगारामोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि ।  
सावद्यक्रियाया गृहाश्रयत्वाद् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रधानकारणमिति बोधनाय  
साध्वादिशब्दं परित्यज्य ‘अनगार’-शब्दोपादानम् । कथं सर्वथाऽनगारो भवति ?  
इत्याकाङ्क्षायामाह—

‘उज्जुकडे’ इति, ऋजुकृतः, अर्जयति क्षान्त्यादिगुणानिति ऋजुः ।  
यद्वा-अर्जयति-सकलप्राणिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः । यदिवा-अर्जयति=  
यथावस्थितात्मस्वरूपं प्रापयतीति ऋजुः । यद्वा-अर्जयति=प्रापयति शाश्वतिकं

प्रकार पूर्ण अनगार होता है, और जिस प्रकार पूर्ण अनगार नहीं होता, ये दोनों बातें मैं  
कहता हूँ-‘अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा ।

गृह में सावद्यक्रिया अवश्य होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपन  
का प्रधान कारण है । यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द छोड़कर  
यहाँ अनगार शब्द का प्रयोग किया है । पूरा अनगार किस प्रकार बनता है, एसी आकांक्षा  
होने पर कहने है-‘उज्जुकडे’ इति ।

उज्जुकडे का संस्कृत रूप है ‘ऋजुकृतः’ । क्षमा आदि गुणों को उपार्जन  
करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपार्जन  
करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुंचाने

अणुवावाणा पुश्च, जे प्रमाणे पूर्ण अणुगार थाय छे अने जे प्रमाणे पूर्ण अणु-  
गार नथी थता, ते अन्ने वाते। हुं कहुं छुं-‘अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि  
सूत्रमां आगण कडेवामां आवशे.

धरमां सावद्यक्रिया अवश्य थाय छे अटला भाटे धरने। त्याग करवे। तेज मुनि-  
पणांनुं प्रधान कारण छे अे वात प्रकट-करवा भाटे साधुवाचक अन्य सभ्द लखने  
अर्हि ‘अनगार’ शब्दने। प्रयोग कर्यो छे. पूरा अणुगार केवी रीते अने छे, अेवी  
धरिछा थवाथो कडे छे—‘उज्जुकडे’ इति.

‘उज्जुकडे’नुं संस्कृत रूप ‘ऋजुकृत’ थाय छे. क्षमा आदि गुणोनुं उपार्जन  
करवावाणा ऋजु (सरल-सिधा) कडेवाय छे अथवा समस्त प्राणीओना हितरूप हयाने  
उपार्जन करवावाणा ऋजु कडेवाय छे. अथवा आत्माने असल स्वरूप सुधी पहोचयवा-

શિવસ્થાનમિતિ - ઋજુઃ = વિષમભાવરહિતત્વાદ્ દુષ્પ્રણિહિતમનોવાકાયનિરોધરૂપઃ સંયમઃ, સ કૃતઃ=અનુષ્ઠિતો યેન સ ઋજુકૃતઃ-મનોવાકાયજન્યસકલસાવધ-ક્રિયાનિવૃત્ત ઇત્યર્થઃ ।

યદ્વા-સંપૂર્ણસંવરસ્વરૂપસંયમેન સંયમિના મોક્ષસ્થાનગમનાર્થ ઋજુગતિઃ પ્રાપ્યતે, તત્ર ઋજુગતેઃ કારણં સંયમ ઇતિ કારણે કાર્યોપચારાત્સપ્તદશવિધ-સંયમોઽપિ ઋજુરિત્યુચ્યતે, સ કૃતઃ=સમાચરિતો યેનાસૌ ઋજુકૃતઃ કૃતસંપૂર્ણ-સંયમાનુષ્ઠાન ઇત્યર્થઃ ।

વાળા ઋજુ કહલતા હૈ । અથવા આત્મા કો શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહુંચાને વાળા ઋજુ કહલતા હૈ । અથવા ઋજુ કા અર્થ હૈ-સંયમ । મન, વચન, કાય કૈ ક્ષોટૈ વ્યાપાર કો રોકનારૂપ સંયમ હૈ । જિસ ને ઇસા વ્યાપાર રોક દિયા હૈ વહ ઋજુકૃત કહલતા હૈ । અર્થાત્ જો મન, વચન ઓર કાય સૈ હોને વાલી સમસ્ત સાવધ ક્રિયાઓ સૈ નિવૃત્ત હો ગયા હો વહ 'ઋજુકૃત' હૈ ।

અથવા--સમ્પૂર્ણસંવરરૂપ સંયમ કૈ દ્વારા સંયમી મોક્ષ મૈં ગમન કરને કૈ લિષ ઋજુગતિ પ્રાપ્તિ કરતા હૈ । ઇસ ઋજુગતિ કા કારણ સંયમ હૈ । અતઃ કારણ મૈં કાર્ય કા ઉપચાર કરને સૈ સત્રહ પ્રકાર કા સંયમ મી 'ઋજુ' કહલતા હૈ । ડસ 'ઋજુ' અર્થાત્ સંયમ કા જિસને આચરણ કિયા હો વહ 'ઋજુકૃત' કહલતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૂર્ણ સંયમ કા અનુષ્ઠાન કરને વાળા ઋજુકૃત હૈ ।

વાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોંચાડવાવાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા ઋજુનો અર્થ છે સંયમ-મન, વચન અને કાયના ખોટા વ્યાપારને રોકવા ઇપ સંયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયથી થવાવાળી સમસ્ત સાવધ ક્રિયા-એથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ઋજુકૃત છે.

અથવા--સ પૂર્ણસંવરરૂપ સંયમદ્વારા સંયમી મોક્ષમાં ગમન કરવા માટે ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે ઋજુગતિનું કારણ સંયમ છે. તેથી કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સંયમ પણ 'ઋજુ' કહેવાય છે તે ઋજુ અર્થાત્ સંયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્ણ-સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ઋજુકૃત છે.

तथा नियागप्रतिपन्नः, नि=निश्चयेन यजति=सम्यग्गमनं कुर्वन्ति यत्र स नियागः=मोक्षमार्गः ज्ञानक्रियालक्षणः । यद्वा-नि=निश्चयेन यजति=ददाति सिद्धि- गतिमिति नियागः=क्षान्त्यादिदशविधो यतिधर्मः, तं प्रतिपन्नः=प्राप्तः ।

तथा 'अमायां कुर्वाणः' माया=वीर्याचारसंगोपनं परवञ्चनं वा, न माया अमाया, तां कुर्वाणः अनगारो व्याख्यातः=भगवता ऋथितः ।

अयं भावः-न केवलं पृथिवीशस्त्रसमारम्भमात्रनिवृत्त्याऽनगारो भवति किन्तु यः खलु पृथिवीशस्त्रसमारम्भनिवृत्तः परिज्ञातसकलसावधकर्मा निरव-

अब 'नियागप्रतिपन्न' शब्दका अर्थ करते हैं । 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सम्यक् गमन जहाँ किया जाता है उसे 'नियाग' या मोक्षमार्ग कहते हैं । ज्ञान और क्रिया मोक्ष का मार्ग है ।

अथवा 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सिद्धिगति देने वाला क्षमा आदि दश प्रकार का यतिधर्म 'नियाग' कहलाता है, ऐसे नियाग को जो प्राप्त हो चुका हो वह नियागप्रतिपन्न है ।

तथा माया अर्थात् वीर्याचर का गोपन करना या दूसरे को गोखा देना माया है । इस माया का सेवन न करने वाला जो वही अनगार है, एसा भगवान् ने कहा है ।

तात्पर्य यह है कि-केवल पृथ्वीशस्त्र के आरंभ का त्याग कर देने मात्र से ही कोई अनगार नहीं हो जाता, वरन् जो पृथ्वीशस्त्र के आरंभ का त्याग कर के सकल

इसे 'नियागप्रतिपन्न' शब्दने अर्थ करे छे. 'नि' अर्थात् निश्चयथी 'याग' अर्थात् सम्यक्गमन ल्यां करवाभां आवे छे. तेने नियाग अथवा मोक्षमार्ग कहे छे. ज्ञान अने क्रिया मोक्षने मार्ग छे. अथवा 'नि' अर्थात् निश्चयथी 'याग' अर्थात् सिद्धिगति आपवावाणे क्षमा आदि दस प्रकारने यतिधर्म 'नियाग' कहेवाय छे. अथवा नियागने ने प्राप्त थछ थूक्या छे, ते नियागप्रतिपन्न छे. तथा माया अर्थात् वीर्याचरनुं गोपन करवुं अथवा भीजने धोणे देवे ते माया छे. ते मायानुं सेवन नहि करवावाणे ने होय ते अणुगार छे. अथ प्रभाणे लगवाने कछुं छे.

तात्पर्य अथे छे के-केवल पृथ्वीशस्त्रना आरंभने त्याग करी देवा मात्रथीन केछ अणुगार थता नथी. परन्तु ने पृथ्वीशस्त्रना आरंभने त्याग करीने, सकल सावध कर्मोने



शेषसंयमानुष्ठानप्रवृत्तः समाश्रितमोक्षमार्गः कर्पूरखण्डवदन्तर्बहिरेकरूपतया  
स्ववीर्यसंगोपन-परवञ्चनलक्षणमायाचाररहितो भवति स एव वस्तुतोऽनगारो  
बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

उक्तरूपस्यानगारस्य कर्तव्यमाह—‘जाए’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जाए सद्भाए निकखंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहिता विसोत्तियं  
पुव्वसंजोगं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तस्तामेवानुपालयेत् विस्रोतसिकां पूर्व-  
संयोगम् ॥ २ ॥

॥ टीका ॥

यया श्रद्धया विस्रोतसिकां=शङ्कां, सर्वशङ्कां देशशङ्कां चेत्यर्थः ।

सावद्य कार्यों का ज्ञाता होता है और पूर्ण संयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो तथा मोक्षमार्ग का  
आश्रय लेता है । कपूर के टुकड़े की भाँति भीतर-बाहर एकसा उज्ज्वल होने के कारण  
अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता और दूसरों को धोखा नहीं देता अर्थात् मायाचार से  
रहित होता है, उसी को वास्तव में अनगार समझना चाहिए ॥ सू. १ ॥

उक्त प्रकार के अनगार का कर्तव्य बतलाते हैं—‘जाए’ इत्यादि ।

मूलार्थ—शङ्का काङ्क्षा आदि का त्याग कर के और पूर्वकालीक संयोगों का त्याग  
कर के जिस श्रद्धा के साथ निकल है, उसी श्रद्धा का निरन्तर पालन करे ॥ सू. २ ॥

टीकार्थ—‘विस्रोतसिका’ का अर्थ है शङ्का, शङ्का दो प्रकार की है (१) सर्वशङ्का

ज्ञाता-ज्येष्ठनार थाय छे. अने पूर्ण संयमना अनुष्ठानमां प्रवृत्त थाय छे, तथा मोक्ष  
मार्गना आश्रय ले छे. कपूरना टुकडानी भाङ्क अंदर अने अहार अेकज प्रकारे उज्ज्वल  
होवाना कारणे पोतानी शक्तिनु गोपन करतो नथी. अने भीजने दगो हेतो नथी. अर्थात्  
मायाचारथी रहित होय छे, तेने वास्तविक रीते अणुगार समजवे जेधये. (सू. १)

उपर कहा तेवा अणुगारनु कर्तव्य बतावे छे—‘जाए’ इत्यादि.

मूलार्थ—शङ्का, काङ्क्षा वगैरेना त्याग करीने अने पूर्व कालना संयोगाना  
त्याग करीने जे श्रद्धाथी निकल्या छे, ते श्रद्धानु निरंतर पालन करवुं. (सू. २)

टीकार्थ—‘विस्रोतसिका’ना अर्थ छे. शङ्का, शङ्का जे प्रकारनी छे—(१) सर्वशङ्का

“किमार्हतो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वागमविषयिका शङ्का सर्वशङ्का, तथा—  
“किमपूकायादयो जीवाः सन्ति न वा” इति देशशङ्का ।

केवललोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अपूकायादयः सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनारूपात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति अपूकायादयो जीवाः, इत्युत्तरा कोटिः प्रादुर्भवति । पूर्वसंयोगं=मातापित्रादिसम्बन्धं, धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा ।

इदमुपलक्षणम्—तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः ।

और (२) देशशङ्का । अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है या नहीं ? ऐसी-शंका सर्वशङ्का है । अपूकाय आदि के जाव हैं या नहीं ? यह देश शङ्का है ।

भगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अपूकाय आदि के जीवों का अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है । आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अपूकाय आदि अजीव हैं, वह शङ्का की दूसरी कोटि है ।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन; धान्य; स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग । कहलाता है । उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है । इन दोनों संयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे ।

अने (२) देशशंका ‘अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक रीते मोक्ष मार्ग छे के नहीं ?’ आ प्रकारनी शंका ते सर्वशंका छे. अपूकाय आदिना एव छे के नहीं ? आ देशशंका छे.

भगवाने केवलज्ञान वडे लेधने प्रवचनमां अपूकाय आदिना एवेतुं अस्तित्व प्रगट कर्युं छे; आ शंकांनी पूर्वकोटि छे. आत्मानुं चेतनालक्षणु स्पष्टरूपथी नेवामां आवतुं नथी तेथी अपूकाय आदि अएव छे, आ शंकांनी भीए कोटि छे.

माता-पिता आदिनेा संबंध तथा धन, धान्य स्वजन आदिनेा संबंध पूर्व-संयोग कडेवाय छे, उपलक्षणुथी सासु, सासुरा आदिनेा संबंध पश्चात्संयोग कडेवाय छे. आ अने संयोगनेा त्याग करीने ने श्रद्धाथी अणुगार थया छे, ते श्रद्धानुं पालन करे, अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रक्षा करे.

ननु का नाम श्रद्धा, यया विनाऽनगारत्वं नोपलभ्यते ? उच्यते—जीवादितत्त्वेषु श्रद्धानं, रुचिः, अभिप्रीतिः, सम्यग्दर्शनं श्रद्धा, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'—त्यवधारणम्, "तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं" इति वचनानुस्मरणेन जगदेकबन्धुना वीतरागेण भगवता यथा कथितं तथैवेदं जीवादितत्त्वं सत्यमिति निश्चय इति यावत् ।

यद्वा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मण उपशमात् क्षयोपशमात् क्षयाद्वा आत्मनोऽपूर्वा ज्ञानावस्था जायते, आविलसलिलस्य कतकफलचूर्णसंयोगात्स्वच्छतावत् सैव श्रद्धा ।

शङ्का—यह श्रद्धा कौन-सी है जिस के विना साधुपन नहीं रह सकता ?

समाधान—जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना, रुचि होना, अभिप्रीति होना, यह सम्यग्दर्शन-श्रद्धा है । 'यह तत्त्व ऐसा ही है' इस प्रकार पक्का निश्चय करना श्रद्धा है । 'जिन भगवान् ने जो कहा है वही सत्य और संदेह-रहित है' इस वचन के अनुसार यह निश्चय करना कि जगत के अद्वितीय बन्धु वीतराग भगवान् ने जैसा निरूपण किया है, उसी प्रकार जीवादितत्त्व सत्य है । यह श्रद्धा का स्वरूप है ।

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम से, क्षयोपशम से अथवा क्षय से आत्मा की एक अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न होती है । जैसे—मलिन जल में कतकफल का चूर्ण डालने से जल स्वच्छ हो जाता है । ऐसी स्वच्छ-निर्मल आत्मदशा श्रद्धा कहलाती है ।

शंका—ते श्रद्धा डेवी छे, डे जेना विना साधुपणुं रडी शडे नडि ?

समाधान—जुवादि तत्त्वो पर श्रद्धा डरवी, इचि थवी, अबिप्रीति थवी, ते सम्यग्दर्शन श्रद्धा छे, "आ तत्त्व आणुंज छे" जे प्रमाणे याडे निश्चय डरवो ते श्रद्धा छे. "जिन लगवाने जे डहुं छे ते सत्य अने सँदेडरहित छे" जे वचन प्रमाणे जे निश्चय डरवो डे जगतना अनेड बन्धु वीतराग लगवाने जेपुं निरूपणु डहुं छे, ते प्रमाणे जुवादि तत्त्व सत्य छे. आ श्रद्धानुं स्वइय छे

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशमथी, क्षयोपशमथी, अथवा क्षयथी आत्मानी जेक अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न थाय छे. जेभ मलीन पाणीमां कतकफल-निर्मणीकरणुं चूर्ण नांभवाथी जल स्वच्छ थरुं जाय छे. जेवी स्वच्छ-निर्मल आत्मदशा श्रद्धा डडेवाय छे.

अस्या लक्षणं तु शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यानां प्रादुर्भावः । तत्र वीतरागप्रणीतप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशवशेनाऽनन्तानुबन्धिकषायाणामनुदयः शम इत्युच्यते । यद्वा विषयासक्तिनिवृत्तिः शमः ।

तथा संवेगः=जिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतिषु नानाविधदुःखावलोकनाद्भयम्, यथा स्वकृतकर्मोदयान्नरकेषु-क्षेत्रजन्यशीतोष्णादिदशविधवेदनासहनं, परमाधार्मिकदेवकृतं, परस्परोदीरितं चेति त्रिविधं दुःखं, तथा तिर्यक्षु-ताडन-तर्जन-क्षुत्पिपासा-पारवश्य-भारारोपणाद्यनेकविधं दुःखं, मनुष्येषु-दारिद्र्य-

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य का प्रकट हो जाना श्रद्धा का चिह्न है ।

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचन के तत्त्व में गाढी प्रीति होने से अनन्तानुबन्धी कषायों का (क्रोध, मान, माया, लोभ, का) उदय न होना शम कहलाता है । अथवा विषयों के प्रति आसक्ति हट जाना 'शम' है ।

जिन भगवान् के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों को जानकर उन से भयभीत होना 'संवेग' है । जैसे—“अपने किये कर्मों के उदय से नरकों में क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दश प्रकार की वेदना, परमाधामी देवों द्वारा दीजाने वाली वेदना और परस्पर नारकी जीवों द्वारा होने वाली वेदना, नरक में यह तीन तरह की वेदना है । तिर्यचों में ताडना, तर्जना, भूख, प्यास, पराधीनता, बोझा ढोना आदि अनेक प्रकार की वेदना है । मनुष्यों में दरिद्रता,

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा अने आस्तिक्य वगैरे प्रकट थथे नय ते श्रद्धानुं चिह्न छे.

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचनानां तत्त्वोभां सन्नुड प्रीति थवाथी अनन्तानुबन्धी कषायोना (क्रोध, मान, माया, लोभो) उदय थाय नछि ते शम उडेवाय छे. अथवा विषयो प्रति आसक्ति छुडी नय ते शम छे.

जिन भगवानना वचन-अनुसार नरक आदि गतियोभां नाना प्रकारना दुःखोने नान्णी ने तेनाथी लयलीत थवुं ते 'संवेग' छे. नेभके—“पोताना डरेदां डर्मोना उदयथी नरकोभां क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गरमी) आदि दस प्रकारनी वेदना, परमाधामी देवो द्वारा ने थाय छे ते वेदना, अने परस्पर नारकी जीवो द्वारा थनारी वेदना, नरकभां आ प्रमाह्ये त्रय प्रकारनी वेदना छे. तिर्यचोभां ताडना, तर्जना (भारवुं-तरछोडवुं) भूख, तरस, पराधीनता, ओज उपाडवा आदि अनेक प्रकारनी वेदना छे. मनुष्योभां दरिद्रता, दुर्भाग्य,

दौर्भाग्य-जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक-सन्तापादि, देवेषु-ईर्ष्या-विषाद-परप्रेष्य-त्वादिदुःखं जीवा अनुभवन्ति, तस्माद्-‘यथा ममेदृशं दुःखं न स्यात् तथा यत्नं करोमि’ इत्याकारक आत्मिकपरिणामः संवेगः ।

यद्वा-सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलोऽनुरागः संवेगः । उक्तञ्च—

“तथ्ये धर्मे ध्वस्तर्हिसापबन्धे, देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते ।

साधौ सर्वग्रन्थसन्दर्भहीने, संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ १ ॥” इति ।

आगमोऽप्यत्रार्थे प्रमाणम्—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, संताप आदि की वेदना है । देवों में ईर्ष्या, विषाद, आज्ञा-पालन आदि के दुःख है । जीव इन दुःखों का अनुभव करते हैं, अत एव मैं ऐसा प्रयत्न करूँ कि—जिस से मुझे इस प्रकार के दुःख न भुगतने पड़े” । इस प्रकार का आत्मा का परिणाम ‘संवेग’ कहलाता है ।

अथवा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में अचल अनुराग होना ‘संवेग’ कहलाता है । कहा भी है—

“हिंसा आदि की परम्परा से रहित सच्चे धर्म में, राग द्वेष और मोह आदि से रहित देव में, तथा सब प्रकार के परिग्रह से रहित गुरु-साधु में निश्चल अनुराग होना संवेग है” ॥ १ ॥

इस विषय में आगम प्रमाण भी है—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, संताप आदिनी वेदना छे. देवोभां ईर्ष्या, विषाद, (शोक) आज्ञापालन आदिनां दुःखो छे. एव आ दुःखोना अनुभव करे छे. ते कारण्ण्थी हुं एवो प्रयत्न कइं के-नेथी मने आ प्रकारनु दुःख लोगववुं पडे नहि.” आ प्रकारनु आत्मानुं परिणाम ते संवेग कहेवाय छे.

अथवा सुदेव, सुगुरु अने सुधर्मभां अचल अनुराग-प्रीति थवो ते संवेग कहेवाय छे. कहुं पणु छे के:-

“हिंसा आदिनी परम्पराथी रहित साध्या धर्मभां, राग द्वेष अने मोह आदिथी रहित देवभां, तथा सर्व प्रकारना परिग्रहथी रहित गुरु-साधुभां निश्चल अनुराग थवो ते संवेग छे.” ॥ १ ॥

आ विषयभां आगम प्रमाण पणु छे:-

“संवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेण अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणंताणुवंधिकोहमाणमायालोभे खवेइ । नवं च कम्मं न बंधइ । तप्पच्चइयं ष णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइकमइ ॥ ” (उत्तरा० अ० २९)

छाया—“संवेगेन भदन्त ! जीवः । क जनयति ? संवेगेन अनुत्तरां धर्मश्रद्धां जनयति । अनुत्तरया धर्मश्रद्धया संवेगो हव्यमागच्छति, अनन्तानुबन्धि-क्रोधमान-मायालोभान् क्षपयति, नवं च कर्म न बध्नाति, तत्प्रत्ययिकां च खलु मिथ्यात्वविशोधिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोध्या च खलु विशुद्धया अप्येककस्तेनैव भव-ग्रहणेन सिद्धयति । विशोध्या च खलु विशुद्धया तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति ॥ ”

सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मश्रद्धां

“भगवान् ! संवेग से जीव को क्या लाभ होता है ?

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न होती है, और धर्मश्रद्धा से संवेग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का वह क्षय करता है । नवीन कर्मों का बंध नहीं करता, और इन कारणों से मिथ्यात्व की विशुद्धि कर के जीव दर्शन का आराधक होता है । दर्शनविशुद्धता बढ़जाने से कोई-कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है, अगर कोई उसी भव में मोक्ष न जावे तो तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् तीसरे भव में वह अवश्य मोक्ष जाता है ” । —(उत्तराध्ययन अ. २९)

“सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वोत्कृष्ट

“लगवन् स वेगथी ज्वने शुं लाल थाय छे ?” संवेगथी सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अने धर्मश्रद्धाथी संवेग शीघ्र उत्पन्न थाय छे. अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया अने लोभने ते क्षय करे छे. नवीन कर्मोने अंध करते नथी, अने अने कारणोथी मिथ्यात्वनी विशुद्धि करीने ज्व दर्शनने आराधक थाय छे. दर्शनविशुद्धता वधी ज्वथी कोइ-कोइ अने लवमां सिद्ध थछे जय छे; कोइ अने लवमां मोक्षे न जय तो त्रीन लवनु उल्लंघन करता नथी, अर्थात् त्रीन लवमां ते अवश्य मोक्षे जय छे.” (उत्तरा० अ. २९)

सुदेव, सुगुरु अने सुधर्ममां निश्चल अनुरागरूप संवेगथी ज्वने सर्वोत्कृष्ट

जीवो जनयति । तथा च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न बध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्व-मोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबन्धी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बंध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरति-चार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अे श्रद्धाथी नरक आदि गतिअेमां घोर अने अहुञ्ज असा-तानी वेदना लेधने. तथा अे वेदनाना लयथी मोक्षमार्गनेा आश्रय लधने मोक्षा भिलाषाअेपी संवेगने शीघ्रञ्ज स्वीकार करी ले छे. ते अनन्तानुबन्धी कषायेना क्षय करे छे. अने नवीन कर्मना अंधने रोक्री दे छे. मिथ्यात्वनेा क्षय करीने शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वनुं निरतिचार पालन करे छे. आ प्रभाअे अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धिना कारणे कोध-कोध लव्य अेव अेञ्ज लवमां मुक्त थध लय छे, अने कोध-कोध त्रीञ्ज लवनु उल्लंघन करता नथी. अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना संपूर्णक्षयथी शुद्धक्षायिक-सम्यक्त्वी अेव त्रअे लवेमां अवश्य मोक्षने प्राप्त करे छे.

अर्हन्त भगवानना प्रवचनमां प्रगाढ-सञ्जड प्रीति होवना कारणे सर्व इन्द्रियोना

कामभोगाध्यवसायः खलु दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिकटुको नरकादि-  
जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन कामभोगाध्यवसायेन, परित्याज्य  
एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

“ निव्वेएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? निव्वेएणं दिव्यमाणुसतेरिच्छिएसु  
कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ । सव्वविसएसु विरज्जमाणे  
आरंभपरिच्चायं करेइ । आरंभपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिदइ, सिद्धिमग्गं  
पडिव्वन्ने य हवइ । ” (उत्तरा० अ. २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है । 'कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय' इस लोक में अत्यन्त दुःख-  
दायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अत एव  
कामभोगसंबन्धी अध्यवसाय से मुझे क्या लेन-देन है । इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही  
देना चाहिए' । इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है । निर्वेद का स्वरूप  
और फल इस प्रकार कहा गया है:—

“ भगवन् ! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है ? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य  
और तिर्यंच संबन्धी काम भोगों में शीघ्र ही विरक्ति उत्पन्न होती है । सब विषयों से जीव  
विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है । आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग  
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को अंगीकार करता है ” ।—(उत्तरा. अ. २९)

विषयेमां आसक्तिं थाय नडि ते निर्वेदं छे. ' कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय आ लोकमां  
अत्यन्त दुःखदायकं छे, अने परलोकमां पणु अत्यन्त कटुक नरकगति आदि उप इण  
देवावाणा छे, ओटला भाटे कामभोगसम्बन्धी अध्यवसायथी भारे शुं देवा देवा छे.  
तेने भूय परिश्रम करीने त्यञ्ज देवा ज्जेधये.' आ प्रकारनुं आत्मिक परिणाम ते  
निर्वेदं कडेवाय छे. निर्वेदनुं स्वइय अने इल आ प्रकारे कहुं छे—

“ भगवन् ! निर्वेदथी ज्वने शुं लाभ थाय छे ?

निर्वेदथी ज्वने देवता, मनुष्य अने तिर्यंचसम्बन्धी कामभोगोमां शीघ्रञ्च  
विरक्ति उत्पन्न थाय छे. सर्वविषयेथी ज्व विरक्त थधं जय छे. सर्व विषयेथी  
विरक्त थधंने आरंभने परित्याग करतो थडे संसारमार्गने त्यञ्ज दे छे. अने  
मोक्षमार्गने अंगीकार करे छे. ” (उत्तरा० अ० २९)



‘कदाऽहं संसारं परित्यजेयम् ?’ इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुषतैरश्वेषु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्तिं जीवः शीघ्रं प्राप्नोति । इममेवार्थं स्पष्टयति—सर्वविषयेषु विरज्यते—‘अलमेतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः’ इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति । वैराग्यं प्राप्तश्च सावद्यव्यापारं परित्यजति । तत्परित्यागं कुर्वन् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृतिरूपं व्यवच्छिनत्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

अनुकम्पा—अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवचनानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारणं, म्रियमाण-

‘कव मै ससार का त्याग करूँ ?’ इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यच संबन्धी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है । इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि—जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् ‘इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो !’ इस प्रकार का वैराग्य पाता है । वैराग्य पाकर जीव सावद्य व्यापार का त्याग कर देता है । सावद्य व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि संसारमार्ग को छोड़ता है और संसारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है ।

‘अनु’ अर्थात् अनुकूल ‘कम्पन’ अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना—अनुकम्पा है । अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दुःख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण

‘हुँ क्यारे संसारने त्याग करूँ ?’ आ प्रकारना निर्वेदथी ज्वने देव, मनुष्य अने तिर्यच सम्बन्धी कामभोगोभां अनासक्ति प्राप्त थाय छे, ते विषयने स्पष्ट करे छे केः—ज्व सर्व विषयोथी विरक्त थई जय छे. अर्थात् आ अनर्थना कारणभूत विषयोथी अस करे ?’ आ प्रकारने वैराग्य पाये छे. वैराग्य पायीने ज्व सावद्य व्यापारने त्याग करी दे छे. सावद्य व्यापारने त्याग करतो थडे मिथ्यात्व, अविरति आदि संसारमार्गने छोडे छे, अने संसारमार्गने त्याग करीने सम्यग्दर्शन आदिश्य मोक्षमार्गने प्राप्त करी दे छे.

अनु अर्थात् अनुकूल, कम्पन अर्थात् रक्षा करवानी चेष्टा करवी ते अनुकम्पा छे. अर्थात्—जिन भगवानना उपदेश प्रमाणे ज्वे पर कइयाभाव थवे, कोठना प्राणोने वियोग करवे नहि, पीजना दुःख हर करवां, मरतां अने मरतां प्राणीओने प्राण-

मार्यमाणप्राणिनां प्राणसंकटान्मोचनं च ।

आस्तिक्यम्—जिनप्रणीतागमानुसारेण ‘अस्ति जीवादिपदार्थसार्थः’ इति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तस्य भावः आस्तिक्यम् । ‘जिनेन्द्रप्रवचनोपदिष्टा जीवपर-लोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति’ इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः शमसंवेगादिभिर्भव्यानां श्रद्धाऽवबुध्यते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि श्रद्धाप्राप्तिः—

श्रद्धा निसर्गादधिगमाद्वा जायते । उक्तञ्च—

“सम्महंसणे दुविहे पणत्ते तंजहा—निसग्गसम्महंसणे चेव अधिगम-

संकट से छुडाना—अनुकम्पा है ।

‘आस्तिक्य’—“जिनप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है ” । एसी “जिस की मति हो वह ‘आस्तिक’ है । आस्तिकपन को ‘आस्तिक्य’ कहते हैं । जिनप्रवचन में उपदिष्ट जीव, परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ है ” इस प्रकार का आत्म-परिणाम ‘आस्तिक्य’ है ।

इन शम संवेग आदि से भव्यों के सम्यक्त्व का पता लगता है ।

### मिथ्यादृष्टि को श्रद्धाप्राप्ति

जिस ? (स्वभाव) से अथवा अधिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से श्रद्धा उत्पन्न होती है । कहा भी है—

“सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—निसर्ग—सम्यग्दर्शन और अधिगम-

संकटथी छोडाववा ते अनुकम्पा छे.

आस्तिक्य—“जिनप्रणीत आगम अनुसार जीवादि पदार्थानुं अस्तित्व छे.” जेवी जेनी मति छे. ते आस्तिक छे. आस्तिकपणुने ‘आस्तिक्य’ छे छे. ‘जिन प्रवचनमां उपदिष्ट जीव, परलोक आदि सर्व अतीन्द्रिय पदार्थ छे. आ प्रकारनां आत्मपरिणाम ते आस्तिक्य छे.

आ शम, संवेग, आदिथी लव्येना सम्यक्त्वनो पतो लागे छे.

### मिथ्यादृष्टिने श्रद्धानी प्राप्ति

निसर्ग (स्वभाव)थी अथवा अधिगम (कोईना द्वारा सांलणवुं आदि)थी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे. कहुं पणु छे के—

“सम्यग्दर्शन जे प्रकारनुं कहुं छे—निसर्ग—सम्यग्दर्शन अने (२) अधिगम-

सम्महंसणे चेय” (स्थानाङ्ग० स्था. २ उ. १)

तत्र निसर्गः, परिणामः, स्वभावः, इत्येकार्थकाः ।

अपूर्वकरणानन्तरं यद् भवत्यनिवृत्तिकरणं तन्निसर्ग इति कथ्यते । निसृज्यते कार्योत्पत्तौ सत्यामिति निसर्गः, कार्ये समुत्पन्ने सति कारणस्य न किञ्चित् प्रयोजनं भवति, उत्पन्ने सम्यक्त्वे प्रयोजनाभावादनिवृत्तिकरणं परित्यज्यते । न चात्यन्तं परित्यागस्तस्येष्यते यतस्तदेव कारणं तेनाकारेण परिणतम्, यथा—उत्थितोऽपि पुरुषः पुरुष एव, आसीनो शयितो वा पुरुषः पुरुष एव, अवस्थामात्रभेदादवस्थावतो भेदः क्वापि न दृश्यते । तत्र—परिणामस्यानेकरूपत्वेऽपि परिणामिनोऽन्वयिद्रव्यस्य न तच्चात् सर्वथा भेदः,

सम्यग्दर्शन” । (स्थानांग. स्था. २ उ. १)

निसर्ग, परिणाम, या स्वभाव, ये सब पर्यायवाचक हैं ।

अपूर्वकरण के पश्चात् होने वाला अनिवृत्तिकरण ‘निसर्ग’ कहलाता है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर जो त्याग दिया जाता है वह ‘निसर्ग’ है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने के बाद कारण का कोई प्रयोजन नहीं रहता, क्यों कि सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर प्रयोजन नहीं रहने से अनिवृत्तिकरण त्याग दिया जाता है, मगर उस का अत्यन्त परित्याग नहीं किया जाता, क्यों कि वही कारण उस आकार में—कार्यरूप में—परिणत हो जाता है । जैसे—खड़ा हुआ पुरुष—पुरुष ही है । बैठा हुआ या सोया हुआ पुरुष भी पुरुष ही है । अवस्थाओं में भेद होनेमात्र से अवस्थावाले में कहीं सर्वथा

सम्यग्दर्शन” (स्थानांग० स्था. २ उ. १)

निसर्ग, परिणाम अथवा तो स्वभाव, या सर्व पर्यायवाचक शब्दों छे. अपूर्व-करणनी पछी थवावाणां अनिवृत्तिकरण निसर्ग कडेवाय छे. कार्यनी उत्पत्ति थर्णवा पछी जे त्यल देवाभां आवे छे. ते निसर्ग छे. कार्यनी उत्पत्ति थर्णया पछी कारणनुं केर्ध प्रयोजन रहेतुं नथी. केमके—सम्यक्त्व उत्पन्न होवा छतांय पणु प्रयोजन नडि रहेवाथी अनिवृत्तिकरण त्यागी देवाभां आवे छे. अर्थात् प्रयोजन नडि रहेवाथी अनिवृत्तिकरणने त्याग करवाभां आवे छे. परन्तु तेने अत्यन्त परित्याग करवाभां आवतो नथी; कारण के ते कारण तेवा आकारभां—कार्यरूपभां—परिणत थर्णय छे. जेम ठेले रहेदो पुरुष, पुरुष छे, जेठेदो अथवा सुतेदो पुरुष पणु पुरुष छे, अवस्थाओंमां लेद थवा मात्रथी अवस्था-

तथाऽत्रापि अनिवृत्तिकरणरूपः परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण वर्तते पूर्वावस्थापनुद्यावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव । परिणामोऽप्यत्र वैज्ञानिक एव, अभेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम् ।

ननु श्रद्धा निसर्गतः कथमुत्पद्यते ? उच्यते—कर्मणोऽनादित्वात्पूर्वकर्मोदयेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कार्मणशरीरेण सहैव बध्यते कर्मत्वादिदानींतनकर्मवत् । एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपभुञ्जानस्य भव्यजीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि तादृशभवस्थिति-

भेद नहीं देखा जाता । जैसे परिणमन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयिद्रव्य एक होने से उस में सर्वथा भेद नहीं होता । उसी प्रकार यहाँ अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—ज्यों का त्यों ध्रुव बना रहता है । परिणाम भी यहाँ वैज्ञानिक ( स्वाभाविक ) लेना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत एव परिणाम का अर्थ—स्वभाव है ।

**शङ्का—**श्रद्धा, स्वभाव ( निसर्ग ) से किस प्रकार उत्पन्न होती है ? ।

**समाधान—**अनादि काल से लगे हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो—जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कार्मण शरीर के साथ ही बँधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पहले ग्रहण किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए भव्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभाववाला होने के कारण

वाणामां डोर्ध सर्वाथा लेद जेवामां आवतो नथी जेम—परिणमन अनेक प्रकारनां डोवा छतांय पणु परिणामी—अन्वयिद्रव्य अेक डोवाथी तेमां सर्वाथा लेद थतो नथी, ते प्रभाणु अर्द्धि अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्वना इपमां परिणत थर्ध जय छे—तेनी पूर्व अवस्था मटीने नवीन अवस्था उत्पन्न थर्ध जय छे, पणु परिणामी—अवद्रव्य—जेम छे तेम ध्रुव भनी रहे छे. परिणाम पणु अर्द्धि वैज्ञानिक (स्वाभाविक) लेवुं जेधअे, मेघ तथा इन्द्रधनुषनी भाइक. अे प्रभाणु परिणामनेो अर्थ स्वभाव छे.

**शंका—**श्रद्धा स्वभाव (निसर्ग)थी क्या प्रकारे उत्पन्न थाय छे?

**समाधान—**अनादि कालथी लागेलां पूर्व कर्मोना उदयथी ज्ञानावरणीय आदि जे—जे कर्म लवे कर्थां छे, ते सर्व कार्मण शरीरनी साथेज् अंधाय छे; केमके ते कर्म छे, वर्तमानकालीन कर्मोनी समान. आ प्रकारनां पडेलां अडणु कडेला कर्मोनु इल लोगवतो

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्तवं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्तवं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकषायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थकर आदि के उपदेश के विना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थकै लव्य एव शान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणा होवाना कारणे अनादि काली मिथ्यादृष्टि होवा छतांय पणु अमुक प्रकारनी लवस्थितिना परिपाक होवाथी तेने शुभ परिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे. ते अध्यवसायानां स्थान मंद, मध्यम अने तीव्र होय छे. तेमां जघन्य शुभ परिणामनुं स्थान विशुद्ध छे, तेनाथी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाथी पणु उत्कृष्ट शुभ परिणाम विशुद्धतम छे. आ स्थानाने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिणामोमांथी अेक अेवुं परिणाम उत्पन्न थाय छे के जेना द्वारा तीर्थकर आदिना उपदेश विना ज स्वयमेव, एवने कर्मोना उपशम आदि थवाथी श्रद्धा उत्पन्न थई लय छे.

क्रम आ प्रकारे छे—

जे प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे. (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि. जे एवे पडेला क्यारेय सम्यक्त्व प्राप्त क्युं. नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि कडेवाय छे. जे लव्य एवे पडेलां सम्यक्त्व प्राप्त क्युं छतुं परन्तु पछीथी

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्तवं प्राप्स्यति, स सादिमिथ्यादृष्टिर्भवति ।

### यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एवमुभयविधस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यवसायः पूर्वं जघन्य-शुभपरिणाममङ्गीकृत्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'—मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य शब्दार्थस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध-प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणं=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मक्षपणकारणस्या-

बाद में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशो न अर्द्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह जीव सादिमिथ्यादृष्टि है ।

### यथाप्रवृत्तिकरण—

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जघन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है । उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि-कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का क्षय क्रिया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति-

अनन्तानुबन्धी कषायना उदयथी क्षीथी मिथ्यात्व आवी गयुं. यत्न ते मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त सुधी अने उत्कृष्ट देशो न अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन सुधी रहे छे. ते एव सादिमिथ्यादृष्टि छे.

### यथाप्रवृत्तिकरणम्—

आ प्रकारना अन्ने मिथ्यादृष्टि एवेना अध्यवसाय पडेदाना जघन्य शुभ परि-ष्ठाभथी लघने उत्तरोत्तर वधता शुभ परिणाम, परिणामविशेष कडेवाय छे. ते परिणाम-विशेषने यथाप्रवृत्तिकरण कडे छे. "यथाप्रवृत्तिकरण" ने शब्दार्थ आ प्रकारे छे—'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूपथी नेनी 'प्रवृत्ति' डाय ते 'यथाप्रवृत्ति' कडेवाय छे. नेनाथी कर्मोने क्षय करवाभां आवे छे, एवना ते शुभ परिणामने "करण" कडे छे.

अध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावादुदयावलिकाप्रविष्टानां कर्मणां सर्वदैव क्षपणात् ।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्यस्याभव्यस्य च भवति । वक्ष्यमाणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च भव्यस्यैव भवति, न त्वभव्यस्य ।

मिथ्यात्ववशादनन्तान् पुद्गलपरावर्तान् अनन्तदुःखान्यनुभूय कथमपि तादृशभवस्थितिपरिपाकवशाद् गिरिणदीप्रवहदुद्धर्त्तितापवर्त्तितपाषाणवर्त्तुलावस्थावदनाभोगनिर्वर्त्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणेन विशुद्धपरिणामविशेषरूपेणायुष्यकर्म वर्गयित्वा ज्ञानावरणीयादिकर्माणि सर्वाण्यपि पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैक-

रूप करण यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है । कर्मक्षय का कारणभूत अध्यवसाय सर्वदैव बना रहता है, क्यों कि उदयावलिका में आए हुए कर्मों का सदा क्षय होता रहता है ।

यथाप्रवृत्तिकरण भव्य जीव को भी होता है और अभव्य जीव को भी होता है, किन्तु आगे कहे जाने वाले अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण भव्य जीव को ही होते हैं; अभव्य जीव को नहीं ।

मिथ्यात्व के वश होकर अनन्त पुद्गलपरावर्तनों तक अनन्त दुःखों को भोगने के पश्चात् किसी भी तरह उस प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से पहाड़ी नदी के प्रवाह में बहने वाला; लुढक (गुडक)ने वाला, घिसने वाला पाषाण जैसे गोलमटोल बन जाता है, उसी प्रकार अनजान में ही यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम के कारण आयुर्कर्म को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम

यथाप्रवृत्तिरूप करण ते 'यथाप्रवृत्तिकरण' कडेवाय छे. कर्मक्षयना कारणभूत अध्यवसाय दुमेशां षनी रडे छे, केमके-उदयावलिकाभां आवेलां कर्मोना दुमेशां क्षय तथा करे छे.

यथाप्रवृत्तिकरण लव्य लवने पणु थाय छे, अने अलव्य लवने पणु थाय छे, परन्तु आगण कडेवाभां आवशे ते अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरण लव्य लवने न थाय छे, अलव्य लवने थतां नथी.

मिथ्यात्वने वश थथने अनन्त पुद्गलपरावर्त्तनो सुधी अनन्त दुःखोने लोगव्या पथी केरि पणु प्रकारे आ प्रकारनी लवस्थितिनो परिपाक थवाथी प्रहाडी नदीना प्रवाहभां वडेवावाणो-गणउवावाणो, घसातो नतो पथर नेवी रीते गण-मटोण षनी नथ छे, अे प्रमाणे अलव्यतां पणु यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणामना कारणे आयुर्कर्मने लवने षनी ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपमना असंख्यातमा लोग-ओरि

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । उक्तञ्च—

“अंतिमकोडाकोडीए होइ सव्यासिं कम्मपगडीणं ।  
पल्लियामसंखभागे, खीणे सेसे इवइ गंठी ॥ १ ॥”

तत्रायं क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय—वेदनीया—ऽन्तरायकर्म-  
चतुष्टयस्य त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः । नामगोत्रयोर्विंशति-  
सागरोपमकोटीकोट्यः, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः ।  
तत्र यथाप्रवृत्तिकरणेन जीव उत्कृष्टां स्थितिं ह्रासयन् तावतीं स्थितिं प्रापयति, येन  
समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति-

एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में लाये जाते हैं । कहा भी है—

“समस्त कर्म प्रकृतियाँ जब पल्य के असंख्यातवें भाग कम कोडाकोडी की  
स्थितिवाली होती है, तब ग्रन्थि होती है” ॥ १ ॥

क्रम इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इन  
चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस—तीसकोडा-कोडी सागरोपम की है । नाम और  
गोत्रकी बीस—बीस कोडाकोडी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति  
सित्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है । यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा जीव  
इस सारी उत्कृष्ट स्थिति को घटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों  
कर्मों की स्थिति समानरूप से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोडाकोडी

એક કોડા-કોડી સાગરોપમની સ્થિતિમાં લાવવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે.

“સમસ્ત કર્મ પ્રકૃતિઓ જ્યારે પલ્યના અસંખ્યાતમાં-ભાગ ઓછા-એક  
કોડા-કોડીની સ્થિતિવાળી હોય છે, ત્યારે ગ્રંથિ થાય છે.” ॥૧॥

ક્રમ આ પ્રમાણે છે-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય અને અન્તરાય આ  
ચાર કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ-ત્રીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. નામ અને ગોત્રની  
બીસ બીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. અને મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સીતેર (૭૦)  
કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા જીવ તમામ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિને ઓછી  
કરીને-એટલી ઓછી કરી નાંખે છે કે-સાતે કર્મોની સ્થિતિ સમાનરૂપથી પલ્યોપમના  
અસંખ્યાતમાં ભાગ ઓછા એક સાગરોપમ કોડા-કોડીની બાકી રહી જાય છે એના



સ્વશિષ્ટા ભવતિ । અત્રાન્તરે ચ યથાપ્રવૃત્તિકરણેન કર્મનિર્જરાં કુર્વતો જીવસ્ય યાવત્ પૂર્વકર્મણો નિર્જરા ન ભવતિ તાવત્ સ્થીયમાનં તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપં કર્મ, ગ્રન્થિ-સાદૃશ્યાદ્ ગ્રન્થિરિત્યુચ્યતે ॥

યથા કાષ્ઠવિશેષસ્ય અતિકઠોરનિવિહાતિશુષ્કઘનગૂઢગ્રન્થિર્દુર્ભેદ્યસ્તથા તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપઃ કર્મવિશેષોઽપિ દુર્ભેદ્યો ભવતિ તસ્માદ્ ગ્રન્થિશબ્દેન વ્યવહ્રિયતે ।

અભવ્યા અપિ યથાપ્રવૃત્તિકરણવલેન કર્મ ક્ષપયિત્વાઽનન્તવારમેતદ્ગ્રન્થિ-પર્યન્તમાગચ્છન્તિ । કશ્ચિદ્ ગ્રન્થિસ્થાનં પ્રાપ્ય તસ્માદધઃ પતતિ । કશ્ચિત્તત્રૈવ ગ્રન્થિસ્થાને સ્થિતસ્તિષ્ઠતિ, ન તસ્માદગ્રે પ્રવર્તતે ।

કી બાકી રહ જાતી હૈ । ઈસી બીચ—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મો કી નિર્જરા કરતે હુએ જીવ કે જિતને કર્મો કી નિર્જરા નહીં હોતી અર્થાત્ જો કર્મ શેષ રહ જાતે હૈ, વેતીવ્ર રાગ દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રન્થિ કે સમાન હોને કે કારણ ગ્રન્થિ ( ગાંઠ ) કહલાતી હૈં ।

જૈસે—કાઠવિશેષ કી અત્યન્ત કઠિન ઘની ઓર ંકદમ સૂઝી ખીતરી ગાંઠ દુર્ભેદ્ય હોતી હૈ, ંસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ ખી દુર્ભેદ્ય હોતા હૈ, અત ંવ વહ કર્મ, ગ્રન્થિ કહલાતી હૈ ।

અભવ્ય જીવ ખી યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મ કા ક્ષય કર કે અનન્ત વાર ગ્રન્થિ પર્યન્ત આ પહુચતે હૈ, કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર કે ફિર નીચે ગિર જાતા હૈ । કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન પર હી ઠહર જાતા હૈ, આગે નહીં વઢતા હૈ ।

વચ્ચમાં—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા જીવનાં જોટલાં કર્મોની નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી જાય છે તે તીવ્ર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રન્થિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહેવાય છે.

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને ંકદમ સૂઝી અંદરની ગાંઠ દુર્ભેદ્ય હોય છે, ં પ્રમાણે રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ દુર્ભેદ્ય હોય છે. ંટલા માટે તે કર્મ, ગ્રન્થિ કહેવાય છે.

અભવ્ય જીવ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનન્તવાર ગ્રન્થિ સુધી પહોચે છે. કોઈ કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી જાય છે. કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાન ઉપરજ રહી જાય છે. આગળ વધી શકતા નથી.

अभव्योऽपि कश्चिद् यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिपर्यन्तं समागत्य तीर्थङ्करातिशय-  
दर्शनेन लब्धिधारिभावितात्ममहात्मनो महिमावलोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा  
प्रवर्त्तमानः सूत्रार्थतदुभयश्रवणपठनरूपं श्रुतसामायिकं लभते, न त्वन्यदपूर्व-  
करणादिकम् ।

### ॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव भव्यजीव आसन्नसिद्धिसुखत्वादुदितप्रचुरदुर्निवारवीर्य-  
प्रसरोऽतिनिशितकुठारेणैव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरेणाभूतपूर्वशुभा-  
ध्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्रागुक्तं दुर्भेद्यं कर्मग्रन्थि भिनत्ति ।

कोई अव्य भी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा ग्रन्थि तक आकर तीर्थकर भगवान्  
का अतिशय देखकर, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मा की महिमा देखकर, अथवा किसी  
अन्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, अर्थ और तदुभय आगम का श्रवण या  
पठनरूप श्रुतसामायिक को प्राप्त कर लेता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं  
पा सकता ।

### अपूर्वकरण—

तदनन्तरं मोक्षसुख समीप होने के कारण जिस में प्रचुर और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न  
हो गई है ऐसा कोई भव्य जीव ही बहुत तीखे कुल्हाड़े के समान यथाप्रवृत्ति-करण की  
अपेक्षा अधिक विशुद्ध, और पहले कभी भी प्राप्त न होने वाले शुभअध्यवसायरूप  
अपूर्वकरण के द्वारा उस दुर्भेद्य कर्मग्रन्थि को भेदता है ।

कोई अव्य पणु यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा अर्थी सुधी आवीने तीर्थकर भगवान्ना  
अतिशयने न्नेधने, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मानो महिमा न्नेधने, अथवा कोई  
अन्य प्रयोजनथी प्रवृत्ति करतो थको, सूत्र, अर्थ अने तदुभय आगमना श्रवण  
अथवा पठनरूप श्रुत-सामायिकने प्राप्त करी ले छे, परन्तु ते अपूर्वकरण आदिने  
प्राप्त करी शकतो नथी.

### अपूर्वकरण—

त्यार पछी मोक्षसुख समीप होवाना कारणे नेनामां भडान अने कोईथी  
निवारी शकय नहि तेवी शक्ति उत्पन्न थई गई छे. अये कोई अव्य अवन पणु  
तीभा कुडाडा समान यथाप्रवृत्तिकरणनी अपेक्षा अधिक विशुद्ध, अने पडेलां कोई वभत  
पणु प्राप्त नहि थयेला शुभ-अध्यवसायरूप अपूर्वकरण द्वारा अे दुर्भेद्य कर्मअंथिने लेवे छे.

अस्मिन् ग्रन्थिभेदे मनःक्षोभपरिश्रमादिविघ्नाः भवन्ति । यथा विद्यासाधकस्य विद्याधिष्ठातृदेवताकृतोपसर्गैर्भनःक्षोभो भवति, यथा घोरमहासमरगतसुभटस्य दुर्धर्ष-वहुतरशत्रुगणपराजयकरणात्परिश्रमो भवति, यथा च महासमुद्रादिभ्यो नौकादितारणे नाविकस्य परिश्रमो भवति तथा प्रचुरदुर्जयकर्मशत्रुसंघातपराजये परिश्रमोऽतिशयेन जायते । वज्राश्मवद्दुर्भेद्योऽयं कर्मग्रन्थिः । अपूर्वकरणवज्रसूच्याश्रयमन्तरेणास्य भेदो दुष्करः ।

अपूर्वकरणवज्रसूच्या सकृद् ग्रन्थिभेदे कृते सति लब्धविशुद्धतमश्रद्धा-

ग्रन्थिभेदन करने में मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं । जैसे विद्या की साधना करने वाले को विद्या की अधिष्ठात्री देवता के द्वारा किये जाने वाले विघ्नों से मन में क्षोभ होता है, और घनघोर महायुद्ध में गये हुए योद्धा को बहु-संख्यक और दुर्जय शत्रुओं के दल पर विजय प्राप्त करने में परिश्रम करना पड़ता है, अथवा जैसे किसी महासमुद्र से जहाज वगैरह को पार लगाने में नाविक को परिश्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार बहुत-से दुर्जय कर्मशत्रुओं के दल को पराजित करने में अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है । यह कर्मग्रन्थि वज्र की तरह बड़ी कठिनाई से भेदी जाती है । अपूर्वकरणरूपी वज्र की सुई का सहारा लिये विना उस का भेदन होना अशक्य है ।

अपूर्वकरण की वज्रमय सुई से एक वार कर्मग्रन्थि का भेदन हो जाने पर

अंशिलेहन करवाभां मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित थाय छे. जेभ विद्यानी साधना करवावाणाने विद्यानी अधिष्ठात्री देवताद्वारा थवावाणा विघ्नेधी मनमां क्षोभ थाय छे, अने घनघोर महायुद्धमां गयेला योधाने धर्षीय संख्यावाणा अने दुर्जय शत्रुओना दण उपर विजय भेणववाभां जेभ परिश्रम करवो पडे छे. अथवा—जेवी रीते कोरि महासमुद्रमांथी वडाणु वगेरेने पार लरि जवामां नाविकेने परिश्रम करवो पडे छे, जे प्रमाणे अहुण दुर्जय कर्मशत्रुओना दणने पराजय करवामां अत्यन्त परिश्रम करवो पडे छे.

आ कर्मग्रन्थि वज्रना जेवी महाकठिन्ताथी लेही शक्य छे. अपूर्वकरण रूपी वज्रनी सोयनी सहाय लीधा विना तेनु लेहन थवुं अशक्य छे.

अपूर्वकरणनी वज्रमय सोयथी ओकवार कर्मग्रन्थिनुं लेहन थरि जवा पधी

सामर्थ्यान्न पुनर्ग्रन्थिवन्धनं भवति, यथा जातवेधो मणिः कथञ्चिद्रजसा परिपूरितेऽपि रन्ध्रे न पूर्वावस्थां प्राप्नोति, तथैव संस्पृष्टसम्यक्त्वो जीवः कथञ्चित्सम्यक्त्वापगमे पश्चात्तीव्ररागद्वेषपरिणामप्राप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म बध्नाति ।

यथा जन्मान्धस्य कथञ्चिच्चक्षुःप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसार्थावलोकनेन, यथा च महाव्याधिजनितदुस्सन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याध्यपगमे महान् प्रमोदो जायते तथा भव्यस्यानिवृत्तिकरणबलेन वीतरागोपदिष्ट-

जीव को श्रद्धा की अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त हो जाती है, अत एव फिर कभी ग्रन्थिवन्ध नहीं होता । किसी मणि में एक बार छेद कर दिया जाय और कालान्तर में उस में धूल भर जाय तो भी वह छेद पहले की भाँति नहीं होता । इसी प्रकार एकवार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने वाला जीव सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र राग-द्वेषरूप परिणामो की प्राप्ति होने पर भी ग्रन्थि के रूप में कर्मों का बध नहीं करता ।

जैसे जन्म से अंधे को किसी उपाय से आंख मिलने पर पदार्थों का असली स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, अथवा जैसे किसी महान् रोग से होने वाली घोर वेदना से पीडित पुरुष के रोग हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार भव्य-जीव को अनिवृत्तिकरण-के बल से भगवान् वीतराग द्वारा कथित यथार्थ

जुवने श्रद्धानी अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त थछ ज्य छे, अटला माटे इरी डेअ वणत अंथिअंध थतो नथी. डेअ भण्णिमां अेक वणत छिद्र-काणु पाउयां पछी डालान्तरमां ते छिद्रमां क्हाय धूण लराअ ज्य तो पणु ते छेड प्रथम प्रमाणे थतो नथी. आ प्रकारे अेकवार सम्यक्त्व प्राप्त करी देवावाणा ज्व, सम्यक्त्वनेा नाश थवा छतां पणु पछीथी तीव्र राग-द्वेष रूप परिणामोनी प्राप्ति थवा छतांय पणु अंथिना इपमां कर्मेनेा अंध करता नथी.

जेवी रीते जन्मथी आंधणाने डेअपणु उपायथी नेत्र भणी जतां पदार्थोना असली स्वरूपने जेअने अत्यंत हर्ष थाय छे, अथवा जेम डेअ महान् रोगथी थवा वाणी महामोघर वेदनाथी पीडित पुरुषनेा रोग निवारणु थछ जतां तेने महान् हर्ष थाय छे. अे प्रमाणे लव्य जुवने अनिवृत्तिकरणना भणथी, भगवान् वीतरागद्वारा कथित

यथावस्थितवस्तुतत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृतः प्रमोदः प्रादुर्भवति ।

### ॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च ग्रन्थिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनिवृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्त्तते जीवः सम्यक्तवं न लभते यावदित्यनिवृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणबलेन जीवः सम्यग्दर्शनं लभते । तदेव नैसर्गिकी श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मापशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते 'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते' तदसंगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति रूचिरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है, जिस का पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

### अनिवृत्तिकरण—

ग्रन्थिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही अनिवृत्तिकरण कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं लौटता, इसी कारण इसे 'अनिवृत्तिकरण' कहते हैं । अनिवृत्तिकरण के द्वारा जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते हैं ।

शङ्का—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है' । यह कथन परस्पर असंगत है ?

यथार्थवस्तुस्वरूपानी इच्छिश्य श्रद्धाथी विषयवैराग्यपूर्वक ओक ओवो आनन्द उत्पन्न थाय छे के-नेनो पडेला कोर्ध वभत अनुभव थयो नथी.

### अनिवृत्तिकरण—

अधिलेहना अनन्तर (तरतना) काणमां अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न थाय छे ते 'अनिवृत्तिकरण' कडेवाय छे. आ परिणाम प्राप्त थयां पछी एव सम्यक्त्व प्राप्त कर्या विना पाछे नथी इरतो तेथीज ओने अनिवृत्तिकरण कडे छे. अनिवृत्तिकरण एव द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करे छे. तेनेज नैसर्गिक (स्वाभाविक) श्रद्धा कडे छे.

शंका—पडेलां कहुं हुतुं के—'मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशम आदिथी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे.' अने पछी कडे छे के—'निसर्ग अथवा अधिगमथी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे,' ओ कथन परस्पर असंगत छे.

अत्रोच्यते—स एव क्षयोपशमादिर्निसर्गाधिगमाद्वा जायते, तथा च श्रद्धाया अपि तद्द्वयं कारणं सिद्धयतीति न दोषः ।

ननु सम्यक्त्वगुणरहितेनैव जीवेन द्राघीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदात्पूर्वं यथाप्रवृत्तिकरणेन यथा क्षपिता तथा तदवशिष्टमपि कर्मग्रन्थि यथा-प्रवृत्तिकरणेनैव भिनत्तु, ततो मोक्षमप्येवमेव प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणालम्बनेन ? अत्रोच्यते—महाविद्यासाधनवदेतद् द्रष्टव्यम् । यथा महाविद्यायाः साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो भवति, तत्सिद्धिप्राप्तिसमये तु सा विद्या तद्विद्याधिष्ठातृदेवताकृत-

**समाधान—**मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि, निसर्ग से अथवा अधिगम से होता है, ऐसी स्थिति में यह दोनो कारण श्रद्धा के ही है, अतः कोई दोष नहीं है ।

**शङ्का—**जीव ने सम्यक्त्व नहोने पर भी जैसे उतनी बड़ी भारी कर्मस्थितिको ग्रन्थिभेद से पहले ही यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा खपा डाली इसी प्रकार शेष स्थिति भी यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा ही खपा ले और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करले फिर अपूर्वकरण का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

**समाधान—**महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए । जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोडा—सा श्रम होता है किन्तु जब उस को सिद्धि का समय नजदीक आता है तो वह विद्याधिष्ठात्री देवताद्वारा किये जानेवाले नाना प्रकार के उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त हो जातो है और प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य बन जाती है,

**समाधान—**मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना क्षयोपशम आदि, निसर्गथी अथवा अधिगमथी थाय छे, अथवा स्थितिमां आ भन्ने कारणेण श्रद्धानाञ्छे तेथी केछि दोष नथी.

**शंका—**जुवने सम्यक्त्व न होय तो पणु जेवी रीते जेवडी महालारी कर्म स्थितिने ग्रन्थिभेदना पडेलाञ्छे यथाप्रवृत्तिकरणना द्वारा भपावी नांजे छे ते प्रमाणे शेष स्थिति पणु यथाप्रवृत्तिकरणद्वाराञ्छे भपावी नांजे अने मोक्ष पणु आ प्रमाणे प्राप्त करी लीअे तो पछी अपूर्वकरणना आश्रय देवानी शुं आवश्यकता छे ?

**समाधान—**महाविद्यानी साधना प्रमाणेञ्छे अहिं समञ्च देवुं जेछिअे. जेभ महाविद्यानी साधनामां पडेलां थोडा अथवा श्रम थाय छे, परन्तु ज्यारे तेनी सिद्धिना समय नञ्छे आवे छे त्यारे ते विद्यानी अधिष्ठात्रीदेवताद्वारा करवामां आवता नाना प्रकारना उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त थछि जाय छे. अने घञ्छुं करीने अत्यन्त कष्टसाध्य

विविधोपसर्गैः सविघ्ना कष्टतरसाध्या च प्रायशो भवति, तद्वद् ग्रन्थिभेदो मनः-  
क्षोभादिविविधोपसर्गैः, परमवीर्याविष्कारपूर्वककष्टतरसाध्यत्वेन च सविघ्नोऽतिदुष्करश्च,  
तस्मात् केवलं यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिभेदो न भवितुमर्हति, अत एवा पूर्वकरणमाव-  
श्यकमिति । इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेदं विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते ।

### ॥ अधिगमश्रद्धा—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना—अधिगमश्रद्धा  
व्याख्यायते—अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेशं निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति  
सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्राणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मनःक्षाम आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता  
है और ग्रन्थिभेद के करने में बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले  
यथाप्रवृत्तिकरण से ग्रन्थिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए अपूर्वकरण की आवश्यकता  
होती है । इस प्रकार अपूर्वकरण—द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर अनिवृत्तिकरण—द्वारा श्रद्धा प्राप्त  
की जाती है ।

### अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका ।  
अब अधिगमश्रद्धा की व्याख्या की जाती है—तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से  
होने वाला ज्ञान अधिगम कहलाता है । वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

जानी जाय छे; ये प्रमाणे ग्रन्थिलेद पणु मनःक्षोभ आदि अनेक उपसर्गोना कारणे  
विघ्नयुक्त थर्छ जाय छे, अने ते ग्रन्थिलेदना करवामां लारे शक्तिनी आवश्यकता  
होय छे, अटला भाटे अटला यथाप्रवृत्तिकरणथी ग्रन्थिलेद थतो नथी, तेने भाटे  
अपूर्वकरणनी आवश्यकता रह्ये छे, ये प्रमाणे अपूर्वकरण—द्वारा ग्रन्थिलेद करवाथी  
अनिवृत्तिकरण—द्वारा श्रद्धा प्राप्त करवामां आवे छे

### अधिगमश्रद्धा—

ये प्रमाणे निसर्गथी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे ते प्रकार कहेवामां आवी गथे छे.  
हुवे अधिगमश्रद्धानी व्याख्या करवामां आवे छे—तीर्थंकर आदिना उपदेशना निमित्तथी  
थवावाणुं ज्ञान ते अधिगम कहेवाय छे. वीतराग भगवान्को उपदेश सांभणवाथी, अथवा

स्थितपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्मादुपशमादिद्वारेण तत्त्वार्थाभिरुचिर्जायते सा-अधिगमश्रद्धा ।

श्रद्धया शमसंवेगादयः प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिविभवं पुत्रदारादिकं स्वजनं सर्वं परिणामदुःखप्रदं विषवत्परित्यज्य सर्वसुखसारभूतं नित्यं ध्रुवं शाश्वतिकं मोक्षसुखं प्राप्तुकामः प्रव्रजितो भवति ।

संयमश्रेणिप्राप्तिकाले या प्रवृद्धपरिणामधारा वर्तते तां सर्वथा रक्षेन्न तु हासयेदिति भावः । श्रद्धायाः परमदुर्लभत्वात्, ज्ञानचारित्रकारणतया मोक्षस्यादि-

अथवा वीतराग द्वारा निरूपित आगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का यथार्थ निर्णय होता है । उस निर्णय को अधिगम कहते हैं । उस अधिगम से मिथ्यात्व-मोहनीय का क्षय, उपशम आदि होने पर तत्त्वार्थ की जो रुचि होती है, वह अधिगम-श्रद्धा है ।

श्रद्धा से शम, संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव “राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःखदायक है” ऐसा जान कर, और विष के समान उन का परित्याग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष-सुख की इच्छावाला वह सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो वढी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए । श्रद्धा परम दुर्लभ है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का आद्य कारण है, अत एव

वीतरागद्वारा निरूपित आगमना अर्थानो विचार करवाथी पदार्थानो यथार्थ निर्णय थाय छे ते निर्णयने अधिगम कडे छे ते अधिगमथी मिथ्यात्वमोहनीयनो क्षय-उपशम आदि थया पधी तत्त्वार्थनी ने रुचि थाय छे, ते अधिगमश्रद्धा छे.

श्रद्धाथी शम, संवेग आदि उत्पन्न थाय छे अटला भाटे “राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी वगेरे समस्त आत्मीयजन अंतमां दुःखदायक छे.” अे प्रमाणे ज्ञानीने विषनी समान तेने त्याग करीने सर्वसुखोमां उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष सुखनी इच्छावाणा सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित थध जय छे.

तात्पर्य अे छे के-संयमनी प्राप्तिना समये परिणामोनी ने वधती जती धारा छती तेनुं सर्व प्रकारथी रक्षण करवुं जेधये. तेने घटवा देवी जेधये नहि श्रद्धा परम दुर्लभ छे अने ज्ञान, अेवी रीते चारित्रनुं कारण होवाथी मोक्षनुं मुख्य कारण छे. अटला भाटे



कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा—कथञ्चित्प्राप्तस्यापि संयमस्य श्रद्धापूर्वकरक्षणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽयं मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह—'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहिं ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि—बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले संयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥सू. २॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा—'पूर्वकाल के तीर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाते हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढ़ाने के लिए कहते हैं—'पणया' इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू. ३ ॥

श्रद्धानो त्याग करवो न्नेधये नहि; आशय ये छे डेः—महान कठिनाधी प्राप्ति यथावाणा संयमनी श्रद्धापूर्वक रक्षा करवाभां जवनना छेत्वा रक्षण सुधी सावधान रहवुं न्नेधये. (सू. २)

“यावता मार्ग पर चलावाय छे.” आ लोकव्यवहार प्रमाणे शिष्यनी श्रद्धा मजबूत करवा भाटे—“आ मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषोये आचरण करेद छे.” आ आशयथी डडे छे—

अथवा पूर्व कालना तीर्थंकर गणधर आदि सौये आ मार्गनुं अवलम्बन (आश्रय) करुं. ये भताववा भाटे शिष्यना चित्तनी श्रद्धाने वधारवा भाटे डडे छे—'पणया' इत्यादि.

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त - यथा—(वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त कर्यो ) (सू. ३)

॥ टीका ॥

वीराः=परीषहोपसर्गकषायादिरूपशत्रुविजयिनो भाववीराः संयमानुष्ठाने कीर्य-  
वन्तः सर्वोत्कृष्टा इति यावत्,

महती चासौ वीथिः महावीथिः=सम्यग्ज्ञानादिलक्षणो महामार्गः, महा-  
पुरुषसेवितत्वात्, तां महावीथिम् प्रणताः=प्राप्ताः कठिनतरतपःसंयमाराधनेन  
प्राप्तवन्त इत्यर्थः, अयमेव मार्गो मोक्षावाप्तिकरोऽशेषसंयमिसेवितत्वात् ।  
तीर्थङ्करादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुशीलितवन्त इति विश्वसनीयतया शिष्याणां  
श्रद्धापूर्वकप्रवृत्तिर्यथा स्यादिति भावः ।

यथा राजानो त्रिपक्षपक्षदलनाद् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

टीकार्थ—परीषह, उपसर्ग, कषाय आदिरूप शत्रुओं को जीतनेवाले, संयम के  
आचरण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट भाववीर यहाँ 'वीर' शब्द से ग्रहण किये गये हैं ।

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीथि' कहलाता है, क्यों कि महापुरुषोंने  
उस का सेवन किया है । भाववीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं । अत्यन्त कठोर तप  
और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है । यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति  
कराने वाला है, क्यों कि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है । तीर्थंकर आदि महापुरुषोंने  
भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव विश्वसनीय समझ कर शिष्यगण की भी इसी  
में प्रवृत्ति होनी चाहिए ।

'वीर' पद से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

टीकार्थ—परीषद्, उपसर्ग कषाय वगैरे शत्रुओंने छुतवावाणा, संयमना  
आचरणमां पराक्रम करवावाणा सर्वोत्कृष्ट भाववीर अर्द्धि 'वीर' शब्द वडे प्रकृष्ट  
करवामां आख्या छे.

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्षने मार्ग ते "महावीथि" कडेवाय छे, कारण के महा-  
पुरुषोअे तेनुं सेवन क्युं छे. भाववीर आ महामार्गने प्राप्त थया छे. अत्यन्त कठोर  
तप अने संयमनु आराधन करवुं अे न आ मार्गने प्राप्त करवे ते छे. आ मार्गन  
मोक्षनी प्राप्ति करवावावाणे छे, कारण के समस्त मुनियोअे अे मार्गने सेवन क्युं  
छे. तीर्थंकर आदि महापुरुषोअे पणु आ मार्गने आश्रय लीधे छे, अेटला भाटे आ  
मार्गने विश्वासपात्र समञ्जने शिष्यगणुनी पणु आ मार्गमां प्रवृत्ति थवी लेथिअे.

'वीर' पदथी अे प्रकट करवामां आख्या छे के:—जेम राजा लोक पोताना शत्रुओंने।

परिपहादिरूपशत्रुविजयेन संयमिनोऽपि मोक्षमार्गं लब्ध्वा लोकोत्तरवीरा भवन्ति, इति वीरपदेन व्यज्यते, इति सूत्राशयः ॥ सू० ३ ॥

कश्चिन्मन्दधीः शिष्योऽनेकदृष्टान्तैर्वोध्यमानोऽपि अप्कायादिजीवेषु न श्रद्धातीति तमुद्दिश्य कथयति—हे शिष्य ! तव मतिर्यद्यप्यप्कायजीवविषये न परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—‘लोगं च’ इत्यादि ।

मूलम्—

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लोकं चाज्ञयाऽभिसमेत्य अकुतोभयम् ॥ सू० ४ ॥

दलन करके वीर पदवी पाते हैं, उसी प्रकार परीषह आदि शत्रुओं को जीतने से सयमी मोक्षमार्ग प्राप्त कर के लोकोत्तर वीर कहलाते हैं ॥ सू. ३ ॥

कोई मन्दबुद्धिवाला शिष्य अनेक दृष्टान्तों से समझाने पर भी अप्काय आदि के जीवों पर श्रद्धा नहीं करता तो उसे लक्ष्य कर के कहते हैं—हे शिष्य ! यद्यपि तुम्हारी बुद्धि अप्काय के जीवों के विषय में नहीं दौडती, क्यों कि तुम्हें उस विषय का विशेष ज्ञान नहीं है; फिर भी भगवान् की आज्ञा से अवश्य ही श्रद्धा रखनी चाहिए । इस आशय से कहते हैं—‘लोगं च’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् की आज्ञा से ( अप्कायरूप ) लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर संयम का पालन करना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

नाश करीने वीर पदवी प्राप्त करे छे, ते प्रमाणे परीषह आदि शत्रुओंने जितवाथी संयमी पणु मोक्षमार्ग प्राप्त करीने लोकोत्तर वीर कहेवाय छे. ( सू. ३ )

केछ मंदबुद्धिवाणा शिष्य अनेक दृष्टान्ताथी समज्जव्या छतां पणु अप्काय आदिना जेवो पर श्रद्धा नथी करता तो तेने लक्ष्यरूप राणीने कहे छे के—हे शिष्य ! तुम्हारी बुद्धि अप्कायना जेवो विषयमां दौडती नथी ( काम करती नथी ) कारणे के तमने आ विषयनुं विशेष ज्ञान नथी तो पछी भगवाननी आज्ञाथी अवश्यञ्च श्रद्धा राणीने जेछे छे. जे आशयथी कहे छे—‘लोगं च’ इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाननी आज्ञाथी ( अप्कायरूप ) लोकने सम्यक् प्रकारथी ज्ञानीने संयमनुं पालन करवुं जेछे छे. ( सू. ४ )

टीका—

अत्र लोकशब्देन प्रकरणशब्दादप्कायलोक एव गृह्यते, तमप्काय-लोकं, 'च'-शब्देनान्यांश्चाप्कायाश्रितान्, आज्ञया=तीर्थङ्करवचनेन, अभिसमेत्य=आभिमुख्येन सम्यक् ज्ञात्वा 'अप्कायादयो जीवाः सन्ती-त्येवमवबुध्येत्यर्थः, अकुतोभयम्=नास्ति कुतश्चित्केनापि प्रकारेण प्राणिनां भयं यस्मात्सोऽकुतोभयः=संयमस्तम् अनुपालयेत् इत्यन्वयः । सर्वथा जीवाभिरक्षणरूपसंयमानुपालने सावधानतया यत्नः कार्य इत्यर्थः ।

यद्वाऽकुतोभयोऽप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिदन्यस्माद्भयमिच्छति, स्वकीयमरणादिभयात् सत्रैः प्राणिगणः खिन्नो भवति । 'सर्वे जीवा वि

टीकार्थ—मूल सूत्र में दिये हुए 'लोक' शब्द से, प्रकरण के कारण यहां अप्काय-लोक ही समझना चाहिए । 'च' शब्द से अप्काय के आश्रय रहे हुए अन्य जीवों का ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार अप्काय और अप्काय के आश्रित रहनेवाले अन्य जीवों को तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा से सम्यक् प्रकार जानकर अर्थात् 'अप्काय आदि जीव हैं' ऐसा समझ कर संयम का पालन करना चाहिए । 'अकुतोभय' अर्थात् जिस से किसी भी प्राणि को किसी प्रकार का भय न हो ऐसा संयम । सर्वथा जीवरक्षारूप संयम के पालने में सावधान होकर यत्न करना चाहिए ।

अथवा—'अकुतोभय' का अर्थ है—अप्कायलोक, क्यों कि वह दूसरे से भय की इच्छा नहीं करता । सभी प्राणों अपनी मृत्यु आदि के भय से खिन्न होते हैं ।

टीकार्थ—मूलसूत्रमें आपेला 'लोक' शब्दकी प्रकरणका कारणसे अप्काय-लोकका समञ्जस ज्ञेय है 'च' शब्दकी अप्कायका आश्रय रहेला अन्य जीवोंको ग्रहण करवुं ज्ञेय है. ये प्रमाणसे अप्काय अने अप्कायका आश्रित रहेवावाणा अन्य जीवोंने तीर्थङ्कर भगवानकी आज्ञाकी, सम्यक् प्रकारे ज्ञानी करीने अर्थात् 'अप्काय आदि जीव हैं.' ये प्रमाणसे समञ्जस संयमनु पालन करवुं ज्ञेय है. "अकुतोभय" अर्थात् जेना वडे कोठपणु प्राणीने कोठ प्रकारने लय न होय जेवो संयम, सर्वथा जीवरक्षारूप संयमका पालनमें सावधान यत्न करवो ज्ञेय है.

अथवा 'अकुतोभय'ने अर्थ है—अप्कायलोक, कारणसे ते जीवने तर्ककी लयनी इच्छा करता नहीं; सर्व प्राणी जोताना मृत्यु आदिना लयकी भिन्न-दुःखी धार है.

इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात् । तमप्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः । संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मित्री मे सव्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः ।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनाप्कायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'-त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण-तीर्थङ्कर-वचनप्रामाण्यादवश्यं

आगम में कहा है—'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते ।' उस अप्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे । संयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है । वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता । "मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है" इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है । इस कारण संयमी उन्हें भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है ।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अप्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

आगममां पणु क्खुं छे के:-"सर्वं एव एवता रडेवानी धञ्छा करे छे, मरवानी धञ्छा करता नथी." ते अप्कायलोकनुं पालन करे अर्थात् रक्षा करे. संयमी पुरुष समस्त प्राणीओना रक्षक थाय छे. ते केछि पणु प्राणीने लय उत्पन्न करता नथी. 'सर्व प्राणीओ पर भारो मैत्रीभाव छे.' आ वचन प्रमाणे तेनी सर्व प्राणीमात्र पर मित्रतानी लावना होय छे, ते कारणथी संयमी ते एवोने लय उत्पन्न करता नथी, केछिने पणु केछिथी लय उत्पन्न करावता नथी, परंतु ते सर्व प्राणीओनी रक्षा करे छे.

जे के छद्मस्थ एवोने समस्त द्रव्यो अने पर्यायोनु ज्ञान नथी; ते कारणथी तथा बुद्धि, संस्कारथी रहित होवाथी अप्कायना एवोमां अव्यक्त चेतना होवाथी, तथा 'जल एव छे' ओ वात प्रत्यक्ष नहि होवाथी इन्द्रियोद्वारा केछि वभत जणुवामां आवती नथी तो पणु सम्पूर्ण तीर्थोना उद्धार करवामां समर्थ तीर्थङ्करना वचनोने प्रमाण

विश्वासो विधेयः । अवध्यादिप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं भगवदाज्ञायां श्रद्धावन्तः सन्त एवाऽप्कायजीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संजाताः, अतः संयमिभिरवश्यमप्कायादि-जीवरक्षायां सावधानैर्भूतव्यमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अप्कायलोकं भगवदाज्ञया विज्ञाय संयमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि—णेव सयं लोणं अब्भाइक्खज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खज्जा, जे लोयं अब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं अब्भाइक्खइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स ब्रवीमि नैव स्वयं लोकमभ्याख्यात्, नैवात्माननमभ्याख्यात्, यो लोक-मभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति, य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्या-ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मानकर अवश्य विश्वास करना चाहिए । अवधिज्ञानी आदि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहले भगवान् की आज्ञा पर श्रद्धा रखते हुए अप्काय के जीवों को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संयमी जनो को अप्काय आदि के जीवों की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

भगवान् की आज्ञा से अप्कायलोक को जान कर संयमी को जो करना चाहिये वह प्रगट करते हैं—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—स्वयं अप्कायलोक का अपलाप न करे, आत्मा का अपलाप न करे, जो लोक का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है, और जो आत्मा का अपलाप करता है वह लोक का अपलाप करता है ॥ सू. ५ ॥

मानिने अवश्य विश्वास करवे जेधये. अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानी पणु प्रथम भगवान्नी आज्ञा पर श्रद्धा राणीने अप्कायना जेवोने जणुणी करीने प्रत्यक्षज्ञानी थया, जे माटे संयमी पुद्घोये अप्काय आदिना जेवोनी रक्षाभां सावधान रडेवुं जेधये. (सू. ४)

भगवान्नी आज्ञाथी अप्कायलोकने जणुणीने संयमीनुं जे कर्त्तव्य छे ते प्रगट करे छे—‘ से वेमि ’ इत्यादि.

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—पोते अप्काय लोकने अपलाप—(डोवा छतां नधी कडेवुं ते) न करे. आत्मानो अपलाप करे नहि. जे लोकने अपलाप करे छे ते आत्मानो अपलाप करे छे. अने जे आत्मानो अपलाप करे छे ते लोकने अपलाप करे छे. (सू. ५)

## टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञातापकायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः । लोकम्=अपकायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येवं नापलपेदित्यर्थः । अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति-चोरोऽयमिति । अत्र तु-'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जलं, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते ।

नन्वजीवानामपां जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति ? मैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अपकाय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वयं अपकायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि—'जल जीव नहीं है' ।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना । यहाँ " घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वयं जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है" । इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है । क्यों कि घोडा वगैरेह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अतः जल के जीवपन का अपलाप नहीं किया जा सकता ।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय ?

टीकार्थ—लगवाननां वचने प्रभाषे अपकायतुं स्वरूपं जलवावाणे । हुं कहुं छुं, अर्थात् में लगवाननी पासेथी जेवुं सांलथु छे तेपुंज कहुं छुं—पोते अपकाय रुप लोकने अपलाप करे नहि, अर्थात् जेपुं कहे नहि के:-'जल जिव नथी.' असत् आरोपने अभ्याख्यान कहे छे, जेभके अचौरने चौर कहेवे। अहि " घी तेल आदि प्रभाषे जल जे जेवुं उपकरणमात्रज डोर्ष शके छे, ते स्वयं जिव नथी, कारण के—" ते जेवुं उपकरण छे, आ प्रकारतुं कहेवुंज-असत् (मिथ्या) अभियोग छे, कारणके घोडा वगैरे जेव पणु जेवोपकरणना रूपमां जेवामां आवे छे. तेथी जलतु जेवपणुं अपलाप करी शकय नहि.

शंका—अजिव पाणीमां जेवपणुने आरोप करवे तेज अभ्याख्यान शा भाटे नहि समजवुं ?

अनुमानागमाभ्यां जीवलक्षणकलापसम्बन्धाच्चापां जीवत्वनिरूपणात् ।

यद्यप्युक्तायलोकस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्यात्मनोऽपि शरीराधिष्ठातुरभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् सभवतीत्यत आह-नैवमात्मानमभ्याख्यादिति । आत्मा हि शरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतश्चेतनावानिति नापहोतुं शक्यः, तस्मादात्मा नास्तीत्येवमात्मानं नापलापेदित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः लोकम्=अप्कायलोकम् अभ्याख्याति=अपलापति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्याख्याति । यश्चात्मानमभ्याख्याति-‘आत्मा नास्ती’ति यद्वा-‘अहं नास्मी’ति, स महामूढः लोकम्=अप्कायलोकम्

**समाधान-**ऐसा मत कहो । अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से जल को जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अप्काय लोक का अभ्याख्यान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्याख्यान करना होना मगर वह सभव नहीं है, यही बात कहते हैं-आत्मा का अभ्याख्यान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चेतना वाला है, अतः उस का अपलाप नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का अपलाप न करें ।

जो मन्दबुद्धि अप्कायलोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष जादि प्रमाणों से सिद्ध आत्मा का अपलाप करता है । और जो ‘आत्मा नहीं है, अथवा ‘मैं नहीं हूँ’ इस तरह आत्मा का अपलाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के बल से

**समाधान-**आ प्रमाणे कडे नडि, अनुमान अने आगम प्रमाणुधी तथा लुपना लक्षणाना संभंधधी जलनुं लुपणुं निरूपणुं क्युं छे. जे अप्काय-लोकनुं अख्याख्यान करवामां आवे तो शरीरना अधिष्ठाता आत्मानुं पणु अख्याख्यान करवुं पडशे. परन्तु ते संभव नथी. जे वात कडे छे-

आत्मानुं अख्याख्यान करशे नडि. आत्मा शरीरने अधिष्ठाता छे, अने प्रत्यक्ष चेतनावाणा छे. तेथी तेने अपलाप करी शकशे नडि. जेटला माटे ‘आत्मा नथी’ जे प्रमाणे अपलाप करशे नडि.

जे मंद बुद्धिवाणा अप्कायलोकने निषेध करे छे, ते प्रत्यक्ष आदि-प्रमाणुधी सिद्ध-आत्माने अपलाप करे छे, अने जे “आत्मा नथी” अथवा “हूँ नथी” जे प्रमाणे आत्माने अपलाप करे छे ते महामूढ मनुष्य पोताना अज्ञानता गणधी



स्वाज्ञानवलाद्भ्याख्याति । करचरणमुखाद्यवयवसहितशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातस्तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणस्याप्कायस्याभ्याख्यानं किं नु नाम दुष्करम् ? ॥ सू० ५ ॥

अप्कायलोकस्याभ्याख्याने बहुदोषापातो भवतीति पर्यालोच्यानगारा अप्कायं नोपमर्दयन्ति । दण्डिशाक्यादयस्तु नानगारा भवितुमर्हन्ति, तेषामप्कायोपमर्दकत्वादित्याह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं

अप्काय का अपलाप करता है । जिस ने हाथ, पैर, मुख आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले आत्मा का ही अपलाप कर दिया तो उस के लिए अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले अप्काय का अपलाप करना कुच्छ भी कठिन नहीं है ॥ सू. ५ ॥

अप्काय का अपलाप करने से बहुत से दोष आते हैं, ऐसा विचार कर अनगार अप्काय की विराधना नहीं करते । दण्डी और शाक्य आदि, अनगार नहीं हो सकते, क्यों कि वे अप्काय की विराधना करते हैं । यह बात इस सूत्र में बतलाते हैं—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अप्काय की हिंसासे संकोच करने वालों को अलग समझो, और ‘हम अनगार हैं’ ऐसा कहने वालों को अलग समझो । जो नाना प्रकार के शस्त्रों से

अप्कायने अपलाप करे छे. जेणे हाथ, पग, मुख आदि अवयवोथी युक्त, शरीरना अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा आत्मानेज अपलाप करी दीघो, तेने माटे अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा अप्कायने अपलाप करवो ते कांई कठिन नथी. ( सू. ५ )

अप्कायने अपलाप करवाथी घणुज दोष आवे छे, जेवो विचार करीने अणुगार अप्कायनी विराधना करता नथी, दंडी अने शाक्य आदि, अणुगारो थर्ध शकता नथी, कारणु के तेजो अप्कायनी विराधना करे छे. ते वात आगणना सूत्रमां अतावे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि.

भूतार्थ—अप्कायनी हिंसानो संकोच करवावाणाने जूहा जणो अने “अमे अणुगार छीजे.” जे प्रमाणे कडेवावाणाने पणु जूहा जणो. जे नाना प्रकारनां शस्त्रोथी

विरुवरुवेहि सत्थेहि उदयकम्मसमारंभेण उदयसत्थं समारभमाणा अण्णे अणोगरुवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः यदिर्म विरूप-  
रूपैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपाम् प्राणान्  
विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=अन्ये लज्जमानाः=अप्कायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया  
संकोचमापद्यमानाः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित्तु प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेव-  
लिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य । इमे  
सूक्ष्मवादराप्कायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरप्कायारम्भपरि-  
त्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

अप्काय का आरम्भ करते है वे अप्काय के शस्त्रों का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के प्राणों का हनन करते है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—तीव्रकरुणा से द्रवित हृदयवाले कोई-कोई ( अनगार ) अप्काय के आरंभ में संकोच करते हैं—अप्काय का आरंभ नहीं करते वे विभिन्न है—कोई अवधिज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, उन्हें देखो । ये सूक्ष्म वादर अप्काय का आरंभ करने में भीत है, त्रस्त हैं, उद्विग्न हैं, और तीन कारण तीन योग से अप्काय के आरंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो ।

अप्कायने आरंभ करे छे; ते अप्कायना शस्त्रेणे आरंभ करवावाणा अनेक प्राणी-  
येना प्राणोना नाश करे छे. ( सू. ५ )

टीकार्थ—तीव्र करुणाथी द्रवित हृदयवाणा कोई-कोई अणुगार आरंभमां  
संकोच करे छे—अप्कायने आरंभ करता नथी ते नूदा छे. कोई अवधिज्ञानी, कोई  
मनःपर्ययज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अणुगार छे, तेने ज्ञेयोः—ते  
सूक्ष्म अने वादर अप्कायने आरंभ करवामां लय पावेला छे, त्रसित छे, उद्विग्न  
छे, अने त्रष्टु करष्टु त्रष्टु योगथी अप्कायना आरंभना त्यागी छे. तेने ज्ञेयो.

एके=पुनरन्ये तु त्रयमनगाराः=साधवः म्मः, इति सामिमानं प्रवदमानाः  
'वयमेव अप्कायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यथं प्रलयन्तो द्रव्यलिङ्गिनः  
सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगान्गुणेषु न प्रवर्तन्ते,  
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः शम्भैः ।  
तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय-परकाय-तद्भयस्वरूपम् । स्वकायशस्त्रं-तडागाद्युदकस्य कृपा-  
द्युदकम् । कृपाद्युदकस्य तडागाद्युदकं च । परकायशस्त्रं द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-

और कोई-कोई लोग 'हम साधु हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए—  
अर्थात् 'हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते  
हुए द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी, अनगार के गुणों में तनिक भी  
प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं । यही बात आगे बतलाते  
हैं—'जमिणं' इत्यादि ।

वे नाना प्रकार के जलों से जलका आरंभ करते हैं । जल अनेक प्रकार के है,  
उन में से द्रव्यशस्त्र-स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप है । तालाव का जल, कूप का  
जल परस्पर स्वकायशस्त्र है । इसी प्रकार कूप आदि के जल का जल-तालाव आदिका  
जल है यह स्वकायशस्त्र है । दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, बाल आदि परकाय

अने डोई-डोई लोक "अमे साधु छीअे" आ प्रभाए अलिमान साथे डडेता  
अर्थात् 'अमेअ अप्कायना रक्षक अने महाव्रत धारण करवावाणा छीअे' आ  
प्रभाए वृथा प्रलाप करता थका द्रव्यलिङ्गी छे तेने नूहा जाए।

अणुगार होवानुं अलिमान करवावाणा अे द्रव्यलिङ्गी साथे अणुगारना गुणोमां  
नरापणु प्रवृत्ति करता नथी, अने गृहस्थना डोईपणु कार्योना त्याग करता नथी,  
ते बात आगण अतावे छे—'जमिणं' इत्यादि ।

ते नाना प्रकारना शस्त्रोथी जलनो आरंभ करे छे । शस्त्रो अनेक प्रकारना छे,  
तेमांथी द्रव्यशस्त्र-स्वकाय, परकाय अने उभयकाय-रूप छे । तलावनु पाणी,  
कुवातुं पाणी, परस्पर स्वकायशस्त्र छे । अे प्रभाए कुवा वगेरेना जलनुं शस्त्र  
तलाव आदिनुं जल छे, ते पणु स्वकायशस्त्र छे । द्राक्ष, आवल, लोट,

दाली-चणक-बल्लादिकम् । तदुभयशस्त्रं-मृत्तिकादिमिश्रं जलम् । भावशस्त्रम्=अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम् । एतैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण=उदयकस्य कर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मवन्ध-निवन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अप्कायं विहिंसन्ति ।

अप्कायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-त्याह-‘ उदकशस्त्र ’-मित्यादि, उदकशस्त्रम्=उदकोपमर्दकं शस्त्रं, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रं, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारम्भमाणः=उदककायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान्=अप्कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्—स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति ।

शस्त्र है । मिट्टी आदि से मिला हुआ जल उभयकायशस्त्र है । जल के विषय में मन, वचन और कायका दूषित प्रयोग करना भावशास्त्र है । इन शस्त्रों से जलकर्म का समारंभ कर के अर्थात् जल के आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के बंध कारणभूत सावद्य व्यापार कर के जलकाय की हिंसा करते हैं ।

जो जलकाय की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं वे षट्कायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, यह बतलाते हैं-‘ उदयसत्थं. ’ इत्यादि ।

जिस के द्वारा हिंसा की जाय उसे शस्त्र कहते हैं । शस्त्र दो प्रकार के हैं—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । जिस से अप्काय की हिंसा हो वह अप्कायशस्त्र है । अप्काय-शस्त्र का अप्काय के विषय में प्रयोग करने वाले अप्काय से भिन्न अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरो की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवो की हिंसा करते हैं ।

हाल, चण्णा, बाल आदि परकायशस्त्र छे. भाटी आदिथी मणेलु जल उलयकायशस्त्र छे. जलना विषयमां मन, वचन अने कायानो दूषित प्रयोग करवा ते लावशस्त्र छे. ये शस्त्रोथी जलकर्मनो समारंभ करीने, अर्थात् जलना आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारना कर्मोना बंधना कारणभूत सावद्य व्यापार करीने जलकायनी हिंसा करे छे.

जलकायनी हिंसामां जे प्रवृत्त थाय छे ते षट्कायरूप समस्त लोकनी हिंसा करे छे. जे अतावे छे—‘उदयसत्थं’. इत्यादि जेना द्वारा हिंसा करी शकाय तेने शस्त्र :कडे छे. शस्त्र जे प्रकारना छे—(१) द्रव्यशस्त्र अने (२) लावशस्त्र जेनाथी अप्कायनी हिंसा थाय ते अप्कायशस्त्र छे. अप्कायशस्त्रनो अप्कायना विषयमां प्रयोग करवावाणा अप्कायथी सिन्न अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरोनी द्वीन्द्रिय विगेरे त्रस जेवोनी हिंसा करे छे.

जगति खलु वहत्रो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—‘वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वाभ्यपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः स्मः’ इति वदन्तो दण्डिशाक्यादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धये बहूदकस्नायिनो भवन्ति । केचित्स्वनिवासर्थं गृहादि-निर्माणकरणे मृत्तिकापाषाणचूर्णादिषु निक्षेपणेनाष्कायमुपमर्दयन्ति । केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिषु जलसेचनं कुर्वन्ति । केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति, पार्थिवीं देवगुर्वादिप्रतिमामनेकघटजलैः स्नपयन्ति । ते हि सविधिजिनपूजायां, प्रतिमाप्रतिष्ठापने बहुविधसचित्तजलैः प्रतिमास्नपने च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, उपदिशन्ति च—

સંસાર મેં વહુતસે દ્રવ્યલિંગી હૈ । જૈસે—‘ હમ પંચમહાવ્રતધારી, સબ આરમ્ભ કે ત્યાગી, ઓર ષટ્કાય કે રક્ષક અનગાર હૈ ’ એસા કહને વાલે દણ્ડી તથા શાક્ય આદિ હૈ । ઇન મેં કોઈ-કોઈ દેહ કી શુદ્ધિ કે લિયે વહુત-સે જલ સે સ્નાન કરને વાલે હૈ । કોઈ અપને રહને કે વાસ્તે મકાન આદિ બનાને કે લિયે મિટ્ટી કંકર ઓર ચૂને વગેરે મેં મિલાકર જલકાય કી હિંસા કરતે હૈ । કોઈ અપના પેટ ભરને લિયે કૃષિ ( ખેતી ) મેં જલ સીંચતે હૈ । કોઈ દેવકુલાદિકે લિયે સાવધ ઉપદેશ કરતે હૈ । કોઈ દેવ ઇવં ગુરુ કી પાર્થિવ પ્રતિમા કો વહુત સે-ઘડે પાની સે સ્નાન કરાતે હૈ । વે વિધિપૂર્વક જિનપૂજા મેં ઓર પ્રતિમા કી પ્રતિષ્ઠા મેં વહુત પ્રકાર કે સચિત્ત જલ સે પ્રતિમા કે સ્નાન મેં, મહા-ભયકર ભવસાગર સે આત્મા કા ઉદ્ધાર હોના માનતે હૈ ઓર ઉપદેશ દેતે હૈ—

સંસારમાં બહુ સંખ્યામાં દ્રવ્યલિંગી છે. જેમ કે—‘ અમે પંચમહાવ્રતધારી, સર્વ પ્રકારના આરંભના ત્યાગી અને ષટ્કાયના રક્ષક અણુગાર છીએ ’ આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દંડી તથા શાક્ય આદિ છે, તેમાંથી કેટલાક તો દેહની શુદ્ધિ માટે ઘણા જ જલથી સ્નાન કરવાવાળા હોય છે. કેટલાક તો પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવા માટે માટી કાંકરા અને ચુના વગેરેમાં મેળવીને જલકાયની હિંસા કરે છે. કોઈ-કોઈ પોતાનું પેટ ભરવા માટે ખેતીમાં જલ સીંચે છે. કોઈ દેવકુલ વગેરે માટે સાવધનો ઉપદેશ આપે છે, અને કોઈ દેવ અને ગુરુની પાર્થિવ પ્રતિમાને ઘણા જ-ઘડા પાણીથી સ્નાન કરાવે છે. તે વિધિપૂર્વક જિનપૂજામાં અને પ્રતિષ્ઠામાં ઘણા જ પ્રકારના સચિત્ત જલથી પ્રતિમાને સ્નાન કરાવામાં મહાભયકર ભવસાગરથી આત્માનો ઉદ્ધાર થાય છે, એવું માને છે. અને ઉપદેશ આપે છે:—

“सम्यक् स्नात्वोचिते काले, संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।  
पुष्पाहारस्तुतिभिश्च, पूजयेदिति तद्विधिः” ॥ १ ॥ ( धर्मसंग्रहः )

“कुसुमक्खयधूवेहिं, दीवयवासेहि सुंदरफलेहि ।  
पूया घयसलिलेहिं, अट्टविहा तस्स कायव्वा ” ॥ १ ॥

( दर्शनशुद्धिः सटीका १ तत्त्व )

छाया—“कुसुमाक्षतधूपै-दीपकवासैः सुन्दरफलैः ।

पूजा घृतसलिलै, -रष्टविधा तस्य कर्त्तव्या ॥ १ ॥ ” इति ।

“विहिणा उ कीरमाणा, सव्व च्चिय फलवई भवे चेट्टा ।

इअलोइया वि किं पुण, जिणपूया उभयलोगहिया ” ॥ १ ॥

( पञ्चाशक ४ विव. )

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वा चैव फलवती भवेच्चेष्टा ।

इहलौकिकाऽपि किं पुन, -जिनपूजा-उभयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तथैव पूजाप्रतिष्ठादिषु अप्कायोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावधकार्ये प्रवृत्त्याऽपि  
द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनः शाक्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

“ उचित काल में सम्यक् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से जिनप्रतिमा को  
स्नान करा के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि है ” । ( धर्मसंग्रह )

“ विधिपूर्वक की हुई समस्त इस लोकसंबंधी चेष्टाएँ भी सफल होती है तो जिनेन्द्र  
भगवान् की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् वह दोनों लोको में हितकारी है ” ।  
( पञ्चाशक ४ विव. )

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्काय की हिंसारूप, शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यं  
में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यलिङ्गी दंडी शाक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

“ उचित कालमां सम्यक्प्रकारथी स्नान करीने अने कुमथी जिनप्रतिमाने  
स्नान करावी, पुष्प, आहार अने स्तुतिथी पूजा करे, आ प्रमाणे पूजाकी  
विधि छे. ( धर्मसंग्रह )

“ विधिपूर्वक करवामां आवेली लोकसंबंधी समस्त चेष्टाओ. ( क्रियाओ )  
पणु सफल थाय छे, तो जिनेन्द्र भगवान् की पूजातुं तो कहेतुं न शुकुं ? आ तो  
अन्ने लोकमां हितकारी छे ॥ १ ॥ ” ( पञ्चाशक-४-विव )

अ प्रमाणे पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्कायकी हिंसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यंमां  
प्रवृत्ति करीने पणु द्रव्यलिङ्गी दंडी, शाक्य आदि पोत-पोताने अणुगारण  
माने छे.

ये उदकशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्य-  
लिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति,  
उक्तञ्च—

“ सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसति जे अण्णू ।  
आउक्कायवहाओ, भमंति ते दीहसंसारे ॥ १ ॥ ” ॥ सू० ६ ॥  
अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह ‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव  
जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से

जो लोग जलशस्त्र का प्रयोग करते हुए षट्काय के समस्त जीवों की विराधना करते हैं वे द्रव्यलिङ्गी नरक आदि के नाना प्रकारके दुःखों की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त लम्बे संसार में चारों ओर चक्कर लगाते हैं । कहा भी है—

“ जो पुरुष ज्ञानरहित होकर सावध का उपदेश देते हैं वे, और सावध पूजा करने वाले हैं वे अक्काय की हिंसा से दीर्घ संसार में भ्रमण करते हैं ” ॥ सू. ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का प्रतिबोध दिया है । जो इस जीवन के सुख के लिए अपनी वन्दना, मानना, पूजा, जन्म-मरण से छुटकारा, तथा दुःखों का नाश

के लोके जलशस्त्रने प्रयोग करीने षट्कायना तमाम जिवेनी विराधना करे छे ते द्रव्यलिङ्गी, नरक निगोद आदिना नाना प्रकारना दुःखेनी ज्वालाओना समूहथी व्याप्त लांभा संसारमां आरेय तरक्क यच्छर लगावे छे. कहुं छे के:-

“ जे पुरुष ज्ञानरहित थधने सावधने उपदेश आये छे ते, अने सावध पूजा करवावाणा दीर्घ-लांभा संसारमां भ्रमण करे छे. ” ॥ १ ॥ ( सू. ६ )

सूधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘ तत्थ ’ इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाने परिज्ञाने बोध आये छे. जे आ जिवनना सुख भाटे पोतानी वंदना, मान्यता, पूजा, जन्म-मरणथी मुक्ति तथा दुःखेनां निवारण भाटे; ते

सयमेव उदयसत्थं समारंभइ, अणोहिं उदयसत्थं समारंभावेइ, अणो वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणइ, तं से अहियाए तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते, अन्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय तत्तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अपूकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः । ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधायास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम् ।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से उदकशस्त्र का आरंभ कराता है, और उदकशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है । वह उस के अहित के लिए है, वह उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अपूकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीरने सम्यग् बोध का उपदेश दिया है । भगवान्ने कहा है कि—कर्मबन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का आश्रय आवश्यक लेना चाहिए । ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा, इस प्रकार परिज्ञा के दो भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

पोतेज् जलशस्त्रेण आरंभ करे छे, भील पासे जलशस्त्रेण आरंभ करावे छे. अने जलशस्त्रेण आरंभ करवावाणानी अनुमोदना करे छे. ते पोताना अहित भाटे छे ते तेनी अबोधिने भाटे छे. ( सू. ७ )

टीकार्थ—अपूकायना समारंभना विषयमां लगवान श्री महावीरे सम्यग् बोधेण उपदेश आप्थे छे. लगवाने कह्युं छे के—कर्मबन्धेण नाश करवा भाटे एवेअये परिज्ञाणे आश्रय जर लेवे अर्थये. ज्ञपरिज्ञा अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा, आ प्रमाणे परिज्ञाना ये लेद छे. अन्नेना लक्षणो प्रथमज् कडेवामां आव्या छे.



### उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायापकायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?—त्याह—  
 'अस्य चैवे'—त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे—सुखार्थं स्नान-पान  
 -धावन-सेक-यानपात्रो-डुप-गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय-  
 परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-जलयन्त्रण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुंहारा' इति भाषायाम् ।  
 माननं=जन्सत्कारः, तदर्थं, यथा-मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ । पूजनं=वस्त्ररत्ना-  
 दिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ । जातिमरणमोचनाय तीर्थ-  
 स्नानादौः । दुःखप्रतिघातहेतुं=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं  
 समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति । अन्यान्

### उपभोगद्वारम्—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है ? इस का  
 उत्तर कहते हैं—इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना,  
 जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए । प्रशंसाके लिए, जैसे—जल से फौहारा  
 चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे—स्नान और वस्त्र आदि का मैल दूर  
 करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा  
 आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि  
 में । दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए  
 स्नान-पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरंभ करता

### उपभोगद्वारम्—

एव कथा प्रयोजनार्थी अप्कायना एवे। प्रति सावद्य व्यापार करे छे ? तेने उत्तरं  
 कहे छे हे—आ क्षणभङ्गुर एवनना सुख भाटे, अर्थात्, स्नान, पान धोवुं, पाणी सींचवुं,  
 वहाए आगणोटमां ववुं आववुं, इत्यादि भाटे. प्रशंसाने भाटे, जेभङ्गे—नणमांथी कुवारा यता-  
 ववा आदिमां, लोकेशी सत्कार पाववा भाटे. जेभङ्के—स्नान करवामां अने वस्त्र वगेरेने। मेल  
 हर करवामां, पूत अर्थात् वस्त्र, रत्न, आदिनो पुरस्कार मेणववा भाटे, जेभ-देवप्रतिमा आदिना  
 स्नान अने पूजन वगेरेमां, जन्म-मरण्थी मुक्त थवा भाटे, जेभ-तीर्थस्नान आदिमां,  
 दुःखोने निरोध करवाना हेतुथी, अर्थात्-रोग वगेरेनी शान्ति भाटे स्नान-पान वगेरेमां ते  
 पोते अप्कायना विराधक द्रव्य अने भावशस्त्रने आरंभ करे छे, एते पासे अप्कायशस्त्रने।

बा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अप्कायसमारम्भणं  
तस्य=अप्कायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुरनुमोदयितुश्च अहिताय भवति, तथा तत्  
तस्य अबोधये=जिनधर्मप्राप्त्यभावाय भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादीनां समीपेऽप्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह—  
'से तं संबुज्जमाणे.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुज्जमाणे आयाणीयं समुद्राए सोच्चा भगवओ आणगाराणं वा अंतिए,  
इहमेगेषिं णायं भवइ—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरणे,  
इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विख्वरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेणं उदयसत्थं  
समारंभमाणे अण्णे अपोगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है; दूसरों से अप्कायशस्त्रों का समारंभ करवाता है और अप्कायशस्त्र का आरंभ करने वाले  
दूसरों का अनुमोदन करता है । वह अप्काय का आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले  
और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और अबोधि—जिनधर्म की अप्राप्ति के  
लिए होता है ॥सू. ७॥

जिसने तीर्थंकर आदि के सन्निकट अप्काय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह  
इस प्रकार जानता है—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान और अनगारों से सुनकर अप्काय का स्वरूप जानता हुआ  
जीव चारित्र अङ्गीकार करके कोई—कोई इस प्रकार जानता है—यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह  
मार (मृत्यु) है, यह नरक है । गृद्ध पुरुष नाना प्रकार के शस्त्रों से जल का आरंभ करके  
जलशस्त्र का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥सू. ८॥

समारंभ करावे छे, अने अप्कायशस्त्रने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे छे ते  
अप्कायने आरंभ करनारने करावनारने अने करवावाणाने अनुमोदन आपवावाणाने  
अे सौने भाटे अहित करनार छे. अने अबोधि—जिनधर्मनी अप्राप्ति भाटे होय छे. (सू ७)

जेजे तीर्थंकर आदिना समीपमां अप्कायना जेवोनुं स्वरूप ज्ञाणी वीधुं छे ते  
आ प्रभाणे ज्ञाणे छे:—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान अथवा अणुगारे पासैथी सांलणीने अप्कायना स्वरूपने  
ज्ञाणनारा जेवो चारित्र अङ्गीकार करीने कोर्ध—कोर्ध आ प्रभाणे ज्ञाणे छे—आ ग्रंथ  
छे, आ मोह छे, आ मृत्यु छे, आ नरक छे. गृद्ध पुरुष नाना प्रकारनां (अनेक  
प्रकारनां) शस्त्रोथी जलने आरंभ करीने, जलशस्त्रने आरंभ करता थका वीज अनेक  
प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे. (सू. ८)

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वाऽन्तिके, इहैकेषां, ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैरुदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय्य, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावद्ययोगपरित्यागरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्-अपकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि—एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजात-सम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जा पुरुष तीर्थकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के समीप उपदेश सुनकर सर्वसावद्य व्यापार का त्यागरूप चारित्र अंगीकार करके विचरता है, वह अपकाय के आरंभ को समझता है—उसे अहितकर और अबोधिजनक जानता है । वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हीं आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि—‘यह ग्रंथ है’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थकर भगवान तथा तेना अनुयायी श्रमणनिर्ग्रन्थीना समीप उपदेश सांभलीने सर्व सावद्यव्यापारना त्यागरूप चारित्र अंगीकार करीने विचरे छे, ते अपकायना आरंभने समझे छे—तेने अहितकर अने अबोधिजनक जान्छे छे, ते आ प्रमाणे विचार करे छे छे—आ मनुष्य लोकमां श्रमण-निर्ग्रन्थीना उपदेशी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवावाणा कोहि पण आत्मार्थीयोना ज्ञातवामां होय छे छे—आ ग्रंथ छे इत्यादि.

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः  
अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमग्रेऽपि  
बोध्यम् । तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः विपरीतज्ञानरूपः । तथा  
एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष खलु नरकः=नारकजीवानां  
दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरं दुःख-  
फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-  
गृद्धः=विषयभोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्ध-मोह-  
मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते ।

जिस के द्वारा गूँथा जाय-बांधा जाय यह ग्रंथ कहलाता है । यह उदकशस्त्र का  
समारंभ ग्रंथ है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके  
उदकशस्त्र के समारंभ को ग्रंथ कहा है । वास्तव में वह ग्रंथ (कर्मबंध) का कारण है ।  
आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह जलशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद  
आदि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की  
वेदनाओं का स्थान है । कर्मबंध, मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त  
कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के लिए गृद्ध होते हैं । अथवा गृद्ध अर्थात् भोगों  
में आसक्त, संसारी जीव इसी के लिए, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण तथा नरक के लिए ही  
प्रवृत्ति करते हैं ।

नेना द्वारा गूँथी शक्य-भांधी शक्य ते ग्रंथ कहेवाय छे. ये उदक-जल-  
शस्त्रेना समारंभ ग्रंथ छे अर्थात् आठ कर्मोना बंध छे. अहि कारणुमां कार्येना उपचार  
करीने उदकशस्त्रेना समारंभने ग्रंथ कह्यो छे. वास्तविक रीते ते ग्रंथ (कर्मबंध)नु कारण  
छे. आगण पणु आ प्रमाणे समजवुं जेधये.

आ जलशस्त्रेना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छे, तथा आ मार-निगोद  
वगेरेना मरणरूप छे, आ नरक छे-अर्थात् नारकी जिवेने थवावाणी दस प्रकारनी  
वेदनाओनुं स्थान छे. कर्मबंध, मोह मरण अने नरक रूप घोरदुःखरूप फलने प्राप्त  
करीने पणु अज्ञानी लोक करीने तेना माटे गृद्ध-आसक्त थाय छे. अथवा गृद्ध  
अर्थात् लोगोमां आसक्त संसारी जिव ये माटे, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण  
तथा नरक माटेज प्रवृत्ति करे छे.

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चापकायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारंभस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृद्धो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय-परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अपकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावधव्यापारेण, इमम्=अपकायं, बिहिनस्ति=पाणरहितं करोति । तथा-उदक-

तात्पर्यं यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, वन्दन-मान-पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःखों का नाश करने के लिए, अपकाय के शस्त्र का आरंभ करता है मगर उस का फल-ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक-रूप ही पाता है । अत एव जलकर्मसमारंभ का वही फल होता है ।

लोक वार-वार कर्मबंध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है । यहाँ उस का कारण बतलाते हैं—

क्यों कि गृद्धजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरंभद्वारा, अपकायसंबंधी अष्टकर्म-जनक सावधव्यापारद्वारा अपकाय की हिंसा करता है । तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

तात्पर्यं એ છે કે-વિષયભોગોમાં આસક્ત જીવ શરીર-આદિના પોષણ કરવા માટે વન્દન, માન, પૂજા માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે તથા દુઃખોનો નાશ કરવા માટે અપકાયના શસ્ત્રોનો આરંભ કરે છે, પરંતુ તેનું ફળ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરક રૂપજ પામે છે, એ માટે જલકર્મસમારંભનું ફલ તેજ હોય છે.

લોક વારંવાર કર્મબંધ વગેરે માટે ઇચ્છા કરતા હોય છે; અને તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે. એ વાત પ્રથમ કહી છે. અહિં તેનું કારણ બતાવે છે કેમકે-ગૃહ્ણ માણસ નાના પ્રકારના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી ઉદકકર્મના આરંભદ્વારા અપકાયના સંબંધી આઠ કર્મજનક સાવધવ્યાપારદ્વારા અપકાયની હિંસા કરે છે. તથા

शस्त्रम्—अप्कायमर्दकं शस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयरूपं, समारभमाणः=व्यापारयन्  
अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=पाणिनो  
विद्मिन्स्ति ।

अप्कायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं  
कुर्वन् पुनः पुनः ग्रन्थादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्त्तते न पुनर्मोक्षायेति  
भावः ॥ सू० ८ ॥

पुनरपि सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—‘से बेमि.’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से बेमि संति पाणा उदयनिस्सिया जीवा अणेगे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

स ब्रवीमि सन्ति प्राणा उदकनिश्रिता जीवा अनेके ॥ सू० ९ ॥

उभयकाय रूप शस्त्रों का आरंभ करता हुआ अन्यकाय—स्थावर और त्रस जीवों को भी हिंसा  
करता है, वह जलकायकी हिंसाद्वारा षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है;  
अतः अत्यन्त घोर पाप करता हुआ पुनःपुनः ग्रंथ से लेकर नरक तक के दुष्फलको पाकरके भी  
उसी के लिए प्रवृत्ति करता है—मोक्ष के लिए नहीं ॥सू. ८॥

सुधर्मा स्वामी फिर जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘से बेमि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ अप्काय के आश्रित प्राणी है और अन्य अनेक (द्वीन्द्रिय  
आदि) जीव भी हैं ॥सू. ९॥

जलकायना विराधक स्वकाय, परकाय अने उलयकाय रूप शस्त्रानो आरंभ करीने  
अन्यकाय—स्थावर अने त्रस जिवोनी पणु हिंसा करे छे. ते जलकायनी हिंसाद्वारा  
षड्जीवनिकायरूप समस्त लोकनी हिंसा करे छे. तेथी अत्यन्त घोर पाप करता थका  
इरी इरी ग्रंथ (कर्मग्रंथ)थी लछने नरक सुधीना भाडा—दुःखकारक इणने पाभीने  
पणु ते भाटे प्रवृत्ति करे छे. मोक्ष भाटे करता नथी. (सू. ८)

सुधर्मा स्वामी इरीथी जम्बू स्वामीने कडे छे—‘से बेमि.’ इत्यादि.

मूलार्थ—हूँ कहुँ छुं—अप्कायना आश्रित प्राणी छे, अने अन्य अनेक (द्वीन्द्रिय  
आदि) जिव पणु छे. (सू. ९)

## टीका—

सः=विज्ञाताप्कायस्वरूपोऽहं ब्रवीमि=यथा साक्षाद् भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः । उदकनिश्रिताः जलरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः अप्कायिका इत्यर्थः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति । तथाऽनेके=द्वीन्द्रियादयः नानाविधाः जीवा नीलङ्गु-पूरतक-मत्स्यादयः उदकनिश्रिताः=उदकावस्थिताः सन्ति । देहली-दीपन्यायेनोदकनिश्रिता इत्यस्योभयत्रान्वयः, अनेनोदकं सचित्तमनेकजीवाधिष्ठितं चेति प्रतिबोधितम् ।

टीकार्थ—अप्काय के स्वरूप का ज्ञाता मैं कहता हूँ । जैसा कि भगवान् से मैंने सुना है कि—अप्काय को आश्रित करके रहे हुए अप्कायिक प्राणी है, तथा अनेक द्वीन्द्रिय आदि नाना प्रकार के जीव नीलङ्गु, पूरतक, मत्स्य आदि भी जल में रहे हुए हैं । उदकनिश्रिताः—‘जलकाय के आश्रित’ यह पद देहली-दीपकन्याय से दोनों ओर जोड़ लेना चाहिए । यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि—जलकाय के जीवों का शरीर जल ही है, जब कि जल में रहने वाले त्रस आदि जीवों का शरीर भिन्न होता है, फिर भी वे जल ही में रहते हैं और जल की विराधना करनेसे उन त्रस आदि जीवों की भी विराधना होती है । जहाँ जलकाय है वहाँ सभी काय के जीव होते हैं ।

टीकार्थ—अप्कायना स्वरूपने जलानार हुं कहुं छुं. जेवी रीते के में लगवान पासेथी सांभज्यु छे के—अप्कायने आश्रित—आश्रय करीने रहेला अप्कायना जेवो छे. तथा अनेक द्वीन्द्रिय आदि नाना प्रकारना जेव नीलङ्गु. पूरतक, मत्स्य आदि पणु जलमां रहेला छे. ‘उदकनिश्रिताः’ ‘जलकायने आश्रित’ आ पद देहली-दीपक-न्यायथी अन्ने जालु जेडी लेवुं जेधये.

आदि अटलु समजु लेवुं आवश्यक छे के—जलकायना—जोवोनां शरीर जलज छे. ज्यारे के जलमां रहेवावाणा त्रस आदि जोवोना शरीर भिन्न—जुहां डोय छे. तो पणु ते जलमांज रहे छे, अने जलनी विराधना करवाथी ते त्रस आदि जोवोनी पणु विराधना थाय छे. ज्यो जलकाय छे ज्यो तमाम कायना जेव डोय छे.

अप्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननूदकं सचित्तमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—आपः सचित्ताः, शस्त्रानुपहत-  
त्वे सति द्रवत्वात्, हस्तिशरीरोपादानभूतकललवत् । वस्त्रवणादौ दोषवारणाय शस्त्रानुपह-  
तत्वविशेषणोपादानम् । कललशब्दग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ग्रहणम्, ततः  
परमष्टमदिवसादौ तदेवार्बुदाद्यवस्थामापद्यते ।

किञ्च—आपः सजीवाः, अनुपहतद्रवत्वात्, अण्डकमध्यस्थितकललवत् ।

किञ्च—आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, भेद्यत्वात्, दृश्यत्वात्, करचरणादि-  
समुदायवत् ।

अप्कायका लक्षणद्वार

शंका—जल सचित्त है, इस विषय में क्या प्रमाण है ?

समाधान—जल सचित्त है, क्यों कि शस्त्र के उपघात के बिना ही वह  
द्रव (तरल) है, जैसे—हाथी के शरीर का उपादान कलल । यहाँ मूत्र आदि से  
व्यभिचार हटाने के लिए 'शस्त्र के उपघात के बिना' यह विशेषण लगाया गया है ।  
'कलल' शब्द के ग्रहण करने से सिर्फ सात दिन का गर्भाशयस्थित शुक्रशोणितमिश्रित  
द्रवपदार्थ लेना चाहिए । आठवें दिन से उककी अर्बुद आदि अवस्थाएं हो जाती हैं—अर्थात्  
वह गाढा होने लगता है ।

और भी—जल सजीव है, क्यों कि वह अनुपहत द्रव है, जैसे अंडे का रस ।

और भी—जल, जीव का शरीर है, क्यों कि उसका छेदन—भेदन किया जाता है और  
दृश्य है, हाथ पग आदि के समूह की तरह ।

अप्कायनुं लक्षणद्वार—

शंका—जल-पाणी सचित्त छे अये विषयमां शुं प्रमाणे छे ?

समाधान—जल सचित्त छे. केमके शस्त्रना उपघात विनाज ते तरल छे.  
जेवी रीते हाथीना शरीरनुं उपादान "कलल". अहिं मूत्र आदिथी व्यभिचार उठाववा  
भाटे 'शस्त्रना उपघात विना' अये विशेषण लगाउथुं छे. "कलल." शब्दना ग्रहण कर-  
वाथी मात्र सात दिवसने गर्भाशयमां रहेलेो शुक्रशोणित-मिश्रित द्रवपदार्थ समजवेो  
लेधये. आठमा दिवसथी तेनी अर्बुद आदि अवस्थायेो थध जय छे. अर्थात् ते कठणु  
थवा लागे छे.

भीनुं पणु—जल सञ्च छे, केमके ते अनुपहत द्रव छे, जेमके धंडानेो रस.

भीनुं पणु जल-एव-शरीर छे. केमके-तेनु छेदन-भेदन करी शकय छे अने  
दृश्य छे; हाथ-पग आदिना समूह प्रमाणे.



કિન્ચાઽવ્યક્તોપયોગાદીનિ કષાયપર્યન્તાનિ જીવલક્ષણાનિ પૃથિવીકાયોદેશકે પ્રાગુક્તાનિ, તેષાં જીવલક્ષણાનાં સમન્વયાદાપઃ સચિત્તા મનુષ્યવદિતિ વિજ્ઞાયતે ।

एवं तेजस्कायादेरेकेन्द्रियजीवस्यैतानि जीवलक्षणानि सन्तीति बोध्यम् ।

આગમોઽપિ યથા—“આઙ્ગ ચિત્તમંતમક્ષાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા ” ઇતિ (દશવૈ. અ૦ ૪)

### પ્રરૂપણાદ્વારમ્—

અપ્કાયા જીવા દ્વિવિધાઃ, સૂક્ષ્મવાદરભેદાત્ । સૂક્ષ્મનામકર્મોદયાત્

इस के अतिरक्त—अव्यक्त उपभोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वीकाय के उद्देशक में बतलाये हैं, उन सब जीव के लक्षणों की विद्यमानता होने के कारण भी जल सचित्त है, जैसे मनुष्य आदि ।

इसी प्रकार तेजस्काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी जीव के लक्षण हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए ।

આગમ પ્રમાણ સે મી જલ સજીવ સિદ્ધ હોતા હૈ—“ અપ સચિત્ત કહા ગયા હૈ । ડસમેં અનેક જીવ હૈ ઓર ડન કા અસ્તિત્વ, અલગ—અલગ હૈ । ” ( દશ૦ અ૦ ૪ )

### પ્રરૂપણાદ્વાર—

અપ્કાય કે જીવ ડો પ્રકાર કે હૈ— સૂક્ષ્મ ઓર વાદર । જિનકે સૂક્ષ્મનામ

તે સિવાય અવ્યક્ત ઉપયોગથી લઈને કષાય સુધી જીવનાં જે લક્ષણ પૃથ્વી-કાયના ઉદ્દેશકમાં બતાવ્યાં છે તે સર્વ જીવના લક્ષણોની વિદ્યમાનતા હોવાના કારણે પણ જલ સચિત્ત છે. જેવી રીતે મનુષ્ય આદિ. એ પ્રમાણે તેજસ્કાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં પણ જીવના લક્ષણ છે. એ રીતે સમજ લેવું જોઈએ.

આગમ પ્રમાણથી પણ જલ સજીવ સિદ્ધ થાય છે—

“ અપ સચિત્ત કહેવું છે; તેમાં અનેક જીવ છે. અને તેનું અસ્તિત્વ અલગ-અલગ છે. ” ( દશ૦ અ. ૪ )

### પ્રરૂપણાદ્વાર—

અપ્કાયના જીવ જે પ્રકારનાં છે—(૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) વાદર જેને સૂક્ષ્મનામ

सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः । तत्र सूक्ष्मा द्विविधाः-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । बादरा लोकैकदेशे सन्ति । बादरा अप्काया अनेकविधाः-हिमा-वश्याय-मिहिका-करक-हरतनु-शुद्ध-शीतो-ष्ण-क्षाराम्ल-लवण-क्षीर-घृतोदकादयः । ते सर्वे बादरा अप्कायाः संक्षेपतो द्विधा-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । बादराणां यत्रैको जीवस्तत्रासंख्येयैर्बादरजीवैर्नियमतो भाव्यम् । बादराणां स्थानं समुद्रहृद-नदीप्रभृतयः ।

बादराणां सूक्ष्माणां चोभयेषामप्कायानां पर्याप्तापर्याप्तभेदवदन्येऽपि शरीरत्रयादिभेदाः सन्ति, ते पृथिवीकायोद्देशे प्रागुक्तास्तत एव बोद्धव्याः ।

कर्मका उदय है वे सूक्ष्म कहलाते हैं, और बादरनामकर्म के उदय वाले बादर कहलाते हैं । इन मेंसे सूक्ष्म जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं । सूक्ष्म सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है । बादर लोक के एक देश में है, बादरअप्काय के अनेक भेद है-हिम, ओस, मिहिका ( धूँवर ) ओले, हरतनु ( तृणके अग्र पर रहा हुआ पानी ) शुद्ध, शीतउष्ण, क्षार, आम्ल, लवण, क्षीर, घृतोदक आदि । सब बादर अप्काय संक्षेप से पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं । जहाँ एक बादर जीव होता है वहाँ नियम से असंख्यात बादर जीव होते हैं । समुद्र, तालाब, नदी वगैरह बादर जीवों के स्थान है ।

बादर और सूक्ष्म, दोनों प्रकार के जलकाय के जैसे पर्याप्त और अपर्याप्त भेद किये गये हैं उसी प्रकार शरीरत्रय आदि और भेद भी है । वे पृथ्वीकाय के उद्देशक में बतलाये हैं । वहीं से जान लेने चाहिए ।

कर्मना उदय छे ते सूक्ष्म कडेवाय छे अने भादरनामकर्मना उदयवाणा भादर कडेवाय छे. तेमांथी सूक्ष्म अणु पर्याप्त अने अपर्याप्तना लेदथी छे प्रकारनां छे. सूक्ष्म सर्व लोकमां व्याप्त छे. अने भादर लोकना ओक देशमां छे. भादर अप्कायना अनेक लेद छे. हिम, ओस, हरतनु ( तृणना अग्रपर रहेलु पाणी ) शुद्ध शीत, उष्ण क्षार, अम्ल, लवण, क्षीर, घृतोदक आदि. सर्व भादर अप्काय संक्षेपथी पर्याप्त तथा अपर्याप्तना लेदथी छे प्रकारनां छे. त्यां ओक भादर अणु डोय छे. त्यां नियमथी असंख्यात भादर अणु डोय छे. समुद्र, तालाब, नदी वगैरे भादर अणुना स्थान छे.

भादर अने सूक्ष्म-अने प्रकारना जलकायना लेवी रीते पर्याप्त अने अपर्याप्त लेद करवामां आव्या छे. ते प्रमाणे शरीरत्रय आदि थीन लेदो पणु छे ते पृथ्वी-कायना उद्देशकमां बतावेला छे. ते त्यांथी जाली देवा लेदथे.

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवलं शरीरसंस्थानं स्तिबुकविन्दुक-  
संस्थितमेव ।

### परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभाग  
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च  
राशयस्ते पृथक्—पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र  
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,  
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-  
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असंख्यात है । अलवत्ता इन के शरीर का  
आकार स्तिबुकविन्दु (बुद—बुद) के समान है ।

### परिमाणद्वारम्—

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्येयभाग प्रदेशों के  
बराबर है, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग  
असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए  
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असंख्यातगुणा हैं, और  
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की उपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असंख्यातगुणा हैं ।  
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक है

पृथ्वीकायनी प्रमाणे प्रत्येक प्रकारना एव असंख्यात छे. अलवत्त तेना शरीरना  
आकार स्तिबुकविन्दु—बुद—बुदना प्रमाणे छे.

### परिमाणद्वारम्—

वादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्तित लोकप्रतरना असंख्येय भाग प्रदेशोना  
बराबर छे. वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियो अलग—अलग  
असंख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी बराबर छे. अहि ओटली विशेषता समझनी लेछो छे—  
वादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असंख्यात गुणा छे, अने  
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्कायना एव असंख्यात गुणा छे.  
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे.

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥  
श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमामन्व्य कथयति—‘इहं चे.’—त्यादि ।

मूलम्—

इहं च खलु भो ! अनगाराणं उदयं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च खलु भोः ! अनगाराणामुदकं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

‘भोः’ इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन भोः=हेजम्बूः !  
इह=जिनशासने खलु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहरहितानां मुनीनां प्रति-  
बोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याताः’ इति, उदकं जीवपिण्डभूत-

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्काय के जीव विशेष अधिक हैं ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं—‘इहं च’ इत्यादि ।

मूलार्थ—है शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है कि—जल जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—‘भो’ शब्द संबोधन के लिए है । इस का तात्पर्य यह हुआ कि—हे जम्बू ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और भाव गृह से रहित मुनियों के बोध के लिए ‘जल जीव है’ यह व्याख्यान किया गया है । जल, जीवों का

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्कायना एव विशेष अधिक छे. (सू. ९)

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने संबोधन करीने कडे छे—‘इहं च’ इत्यादि.

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिनशासनमां अनगारेने माटे आ व्याख्या करवामां आवी छे, के जल एव छे. (सू. १०)

टीकार्थ—‘लो’ शब्द संबोधन माटे छे. तेनु तात्पर्य अे थयु के—हे जम्बू ! आ जिनशासनमां निश्चयथी अनगारेना अर्थात् द्रव्य अने भाव गृहथी रहित मुनियोना बोध माटे ‘जल एव छे’ आ व्याख्यान करवामां आव्युं छे. जल, एवोनोपिड छे, अे प्रमाणे

મસ્તીતિ ભગવતા કેવલાલોકેન વિજ્ઞાયાનગારેભ્યઃ સંયમરક્ષણાર્થમુદકં જીવત્વેન પ્રતિવોધિતમિત્યર્થઃ । ‘ચ’-શબ્દાત્ તદાશ્રિતા અન્યે દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ જીવા વ્યાખ્યાતા इति વોધિતમ્ । યો વિન્દુમાત્રોદકવિરાધકઃ, સ ષટ્જીવનિકાય-વિરાધકો ભવતીતિ વર્તુલાર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

### શસ્ત્રદ્વારમ્—

નનુ યદિ જીવપિણ્ડભૂતમુદકં ભગવતા પ્રોક્તં તર્હિ ઉદકસેવિનાં મુનીનામવશ્યં પ્રાણાત્પિપાતદોષસમ્પાતઃ, તેન કથં સંયમઃ સંયમિનાં સંપદ્યતે ? ઉચ્યતે—

સચિત્તાચિત્તમિશ્રભેદેન ત્રિવિધમુદકમ્ । તત્ર સચિત્તં-નદીકૂપતઢાગાદિ-

પિણ્ડ હૈ, ઇસ પ્રકાર ભગવાન્ ને કેવલજ્ઞાન સે જાનકર સાધુઓં કે સંયમ કી રક્ષા કે લિષ્ટ જલ કો જીવ વતલયા હૈ । સૂત્ર મેં દિયે હુણ ‘ચ’ શબ્દ સે યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ જલ કે આશ્રિત દૂસરે દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ મી હૈ । સંક્ષેપ મેં તાત્પર્ય યહ હૈ કિ-જો પુરુષ ઇક વિન્દુ જલ કી વિરાધના કરતા હૈ વહ ષટ્કાય કે જીવોં કા વિરાધક હૈ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

### શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—યદિ જલ જીવોં કા પિણ્ડ હૈ, ઇસા ભગવાન્ને કહા હૈ તો જલકા સેવન કરને વાલે મુનિયોં કો હિંસા કા દોષ લગતા હૈ । ઇસી સ્થિતિ મેં સાધુઓં કા સંયમ કિસ પ્રકાર કાયમ રહ સકતા હૈ ?

સમાધાન—જલ ત્રીન પ્રકાર કા હૈ—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત ઓર (૩) મિશ્ર

લગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સંયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે ધતાવ્યું છે. સૂત્રમાં આપેલા ‘ચ’ શબ્દથી એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે-જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે. સંક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે-જે પુરુષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે ષટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે. (સૂ. ૧૦)

### શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિંડ છે, એ પ્રમાણે લગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે. એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સંયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે ?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર.

जलम् । मिश्रं सचित्ताचित्तसंमिलितम् । एतद् द्वयं चाग्राह्यम् । अचित्तं द्विविधं स्वभावतः, शस्त्रसंपर्कतश्च । स्वभावतोऽचित्तं जलं केवलि-मनःपर्ययाऽवधि-श्रुत-ज्ञानिनस्तज्जानाना अपि न सेवन्ते, अनवस्थादोषप्रसङ्गात्, व्यवहाराशुद्धेश्च । प्रसिद्धं च यत् कदाचित् स्वभावतोऽचित्तजलपरिपूर्णं हृदं, स्वभावतोऽचित्तीभूतं तिलादिकं च दृष्ट्वा व्यवहाराशुद्धत्वात्पिपासाक्षुधापरिपीडितानामपि साधूनां पानार्थं भक्षणार्थं च तत्रानुज्ञा न कृता भगवतेति । यत्तु शस्त्रसंपर्कादचित्तं जलं तत् साधूनामुपभोगाय ग्राह्यं, तेन संयमनिर्वाहो भवति । किं तच्छस्त्रम् ? इत्याह-‘सत्थं.’ इत्यादि ।

नदी, कूप, तालाव आदि का जल सचित्त, और अचित्त मिला जल मिश्र कहलाता है । यह दोनों प्रकार का जल साधु के लिये अग्राह्य है । अचित्त जल दो प्रकार का है-स्वभाव से अचित्त और शस्त्र के संयोग से अचित्त । स्वभाव से अचित्त जल को केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा श्रुतज्ञानी, जानते हैं, मगर उस का सेवन नहीं करते । सेवन करने से अनवस्था दोष आता है और व्यवहार अशुद्ध हो जाता है । यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वभाव से अचित्त जल से भरा हुआ तालाव, तथा स्वभाव से अचित्त तिल, आदि को देखकर व्यवहार में अशुद्ध होने के कारण प्यास और भूख से पीडित साधुओं को भी पीने-खाने की आज्ञा भगवान् ने नहीं दी है । जो जल, शस्त्र के संयोग से अचित्त हो गया हो वही साधुओं के लिए, ग्राह्य होता है । ऐसा करने से ही संयम का पालन होता है । वह शस्त्र क्या है, यह बतलाने के लिए कहते हैं-‘सत्थं.’ इत्यादि ।

नदी, कुवा, तालाव आदिनुं जल सचित्त छे. सचित्त अचित्त अन्ने प्रकारनुं लेगुं थयेलुं जल मिश्रकडेवाय छे. आ अन्ने प्रकारनां जल साधुओ माटे अग्राह्य छे. अचित्त जल छे प्रकारनु छे. (१) स्वभावथी अचित्त अने (२) शस्त्रना संयोगथी अचित्त. स्वभावथी अचित्त जलने केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी न्छे छे, परंतु तेनु सेवन करता नथी-सेवन करवाथी अनवस्था दोष आवे छे, अने व्यवहार अशुद्ध थर्छ न्छे. अे वात प्रसिद्ध छे के-कदाचित् स्वभावथी अचित्त जलथी लदेदुं तालाव तथा स्वभावथी अचित्त तल आदिने नेधने व्यवहारमां अशुद्ध होवाना कारणे तरस अने लूथथी पीडित साधुओने पणु पीवा-आवानी आज्ञा लगवाने आथी नथी. जे जल शस्त्रना संयोगथी अचित्त थर्छ गयु होय ते जल साधुओ माटे अग्राह्य होय छे. अे प्रमाणे करवाथीज संयमनु पालन थाय छे. ते शस्त्र शुं छे? अे अताववा माटे उडे छे-‘सत्थं’ इत्यादि.

मूलम्—

सत्थं चेत्य अणुवीइ पास, पुढो सत्थं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽपकाये शस्त्रं-शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य = 'इदमपकायस्य शस्त्रम्' इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य ! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य । शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वात्पकायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-भेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः । तत्र स्वकायशस्त्रं नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम् । कूपाद्युदकानां नद्याद्युदकं च । स्वकायशस्त्रपरिणतं जलं साधूनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः । उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

मूलार्थ—अपकाय के विषय में, हे शिष्य ! शस्त्र का विचार करो । अपकाय के शस्त्र पृथक्-पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य ! अपकाय के विषय में 'यह अपकाय का शस्त्र है' इस प्रकार विचार करो अपकाय के शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवान् ने बतलाये हैं । कुँए का जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल कुँए के जल के लिए स्वकायशस्त्र है । स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं होता, क्योंकि वह व्यवहार में अशुद्ध है । उभयकायशस्त्र है—कुँए आदि के

मूलार्थ—अपकायना विषयमां हे शिष्य ! शस्त्रेणो विचार करो. अपकायनां शस्त्रं जुहां जुहां समज्जव्यां छे. (सू. ११)

टीकार्थ—जेना द्वारा हिंसा थई शके ते शस्त्रं कडेवाय छे, हे शिष्य ! अपकायना विषयमां 'आ अपकायनु शस्त्रं छे' अये प्रभात्ते विचार करो अपकायनां शस्त्रं स्वकाय, परकाय, अने उभयकायना लेदथी नाना प्रकारनां लगवाने भताव्यां छे. कुवानु जल, नदी आदिनां जल माटे स्वकायशस्त्रं छे. अये प्रभात्ते नदी आदिनु जल कुवानां जल माटे स्वकायशस्त्रं छे. स्वकायशस्त्रथी परिणत जल साधुओ माटे ग्राह्य रडेत्तुं नथी, कारणु के ते व्यवहारमां अशुद्ध छे. उभयकायशस्त्रं छे कुवा आदिनां जल. माटे गरम जल, अथवा माटी वगेरेथी

मिश्रजलं च । उभयकायशस्त्रपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिश्रशङ्कासद्भावात् । परकायशस्त्रपरिणतमेव जलं मुनीनां ग्राह्यम्, परकायशस्त्रं चाप्कायस्य अग्नि-मृत्तिका-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादिकम् । परकायशस्त्रपरिणतं=वर्णादीनां पूर्वावस्थायैलक्षण्यापन्नम् । तत्र वर्णतो धूसरत्वादिरूपं, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धि-गन्धवत्त्वम्, रसतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धित्तकटुकषायादिरसवत्त्वम् । स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम् । तदेवम्भूतमचित्तं जलमस्यैवाङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे पानैषणायामेकविंशतिविधं मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता । तथाहि—

जल के लिए गर्म जल अथवा मिट्टी आदि से मिला हुआ जल । उभयकायशस्त्र से परिणत जल भी साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं है, क्यों कि उस में मिश्र (सचित्ताचित्त) की शङ्का रहती है । मुनियों के लिए परकायशस्त्रपरिणत जल ही ग्रहण करने योग्य है । अप्काय का परकायशस्त्र—अग्नि, मिट्टी, दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, और चना आदि है ।

पहले की अपेक्षा वर्ण, रस गंध आदि बदल जाना परकायशस्त्र से जल के परिणत (अचित्त) हो जाने की पहचान है । वर्ण से जल का धूसर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई वस्तुओं की गंध आने लगना, इसी प्रकार जल में मिली हुई वस्तुओं का तीखा, कड़वा, कसैला आदि रस का स्वाद आ जाना, और स्पर्श से जल का रूखा, चिकना आदि हो जाना जल के अचित्त होने के लक्षण हैं ।

भणेतुं जल. उभयकाय शस्त्रथी परिष्णुत जल पणु साधुओ भाटे ग्राह्य नथी. डेभडे-तेमां मिश्र (सचित्ताचित्त) नी शंका रडे छे. मुनिओ भाटे परकायशस्त्रपरिष्णुत जलज ग्रहणु करवा योग्य छे. अप्कायनुं परकायशस्त्र, अग्नि, माटी, द्राक्ष, शाक, चावल, दोट, दाल अने यणु आदि छे.

पडेलां करतां जेनां वर्णु, रस, गंध, आदि अदलाध नय ते परकायशस्त्रथी जल परिष्णुत (अचित्त) थध जवानी ओ निशानी अर्थात् ओणभाणु छे.

वर्णुथी जलनुं धूसर आदि थध जवुं, गंधथी तेमां भणेली वस्तुओनी गंध आववी, ओ प्रमाणे जलमां भणेली वस्तुओना तीखा, कडवा, कसैला आदि रसनो स्वाद आवी जवो, अने स्पर्शथी जलनुं रूक्ष चिकणु आदि थध जवुं ओ जल अचित्त होवानी लक्षणु छे.



(१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंसृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=संसेकितं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशाकादिधावनजलं वा । (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् । (५) तुषोदकम्=त्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् । (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनालं, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजलं वा 'आँछ' इति भाषायाम् । (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् । आम्रातकमिति 'अम्वाडी' इति भाषाप्रसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार:—

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुआ पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) संस्वेद्य (संसेकित) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छछ के वर्तनो का धोवन, अथवा छछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आँछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्वाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रकारनुं अचित्त जल आ सूत्रना पीण श्रुतस्कंधना पानैषणा—प्रकरणभां अेकवीश प्रकारनुं लगवाने साधुओ भाटे ग्राह्य कहुं छे, ते आ प्रभाणे छे:—

(१) उत्स्वेद्य—तोटे भणेतुं, कथरोटे आदितुं धोवणु.

(२) संस्वेद्य—उकालेला तलनुं धोवणु, अथवा उकालेला पत्तावाणां शाकनुं धोवणु.

(३) ओसामणुं धोवणु. (४) तलनुं धोवणु. (५) धान्यनुं धोवणु. (६) जवनुं धोवणु. (७) ओसामणु. (८) आरनाल—छासना वासणेतुं धोवणु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाणी. लेने 'आँछ' पणु कडे छे.

(९) आम्र—आम्र आदि इणेतुं धोवणु (१०) अम्वाडीनुं धोवणु (११) कौठानुं धोवणु (१२) विजोरानुं धोवणु. (१३) दाखनुं धोवणु. (१४) दाडिमनुं धोवणु (१५)

इति भाषायां, तस्य पानकं=धावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाधावनजलम् । (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमधावनजलम् । (१५) खर्जूरपानकम्=खर्जूरधावन-जलम् । (१६) नालिकेलपानकम्=नालिकेलधावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=करीरधावनजलम् । (१८) कोलपानकम्=बदरधावनजलम् । (१९) आमलकपानकम्=आमलकधावनजलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका 'इमली' इति भाषायां, तस्याः पानकं=धावनजलम् । (२१) शुद्धविकृतम्=अग्न्युत्कालितमुष्णं जलं च ।

इह शेषद्वाराणि पृथिविकायवद् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सचित्तापकायोपभोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः स्वोपभोगार्थम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं सचितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादवशतः स्वार्थमुत्कालयन्ति, परमुपदिशन्ति, च, यथा त्रिदण्डमुत्कालनीयं जलम्, इत्युपदिश्यापकायसमारम्भं कारयन्तो न केवलमपकायं विहिंसन्ति, किन्तु तदाश्रितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विराधयन्ति ।

का धोवन (१५) खजूर का धोवन (१६) नारियल का धोवन (१७) कैर का धोवन (१८) बेर का धोवन (१९) आँवले का धोवन (२०) इमली का धोवन (२१) अग्नि से उकाला हुआ गर्म जल ।

जो शाक्य आदि सचित्त अपकाय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि अपने उपभोग के लिए 'जल सचित नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं । दण्डी लोक जल को सचित्त मान कर के भी मोह और प्रमाद के वश हो कर अपने लिए पानी गरम करवाते हैं ओर दूसरों को उकालने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन दण्ड, उकालना चाहिए । अर्थात् तीन उकालेका पानी होना चाहिये इस प्रकार उपदेश देकर अपकाय का समारम्भ करते हुए न केवल अपकाय की हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करत हैं ।

धोवणु. (१६) नारीअेलतुं धोवणु. (१७) डेरतुं धोवणु (१८) ओरानुं धोवणु. (१९) आंणणानुं धोवणु (२०) आंणलीनुं धोवणु. (२१) अग्निथी उकालेत्तुं गरम जल.

ये शाक्य आदि सचित्तअपकायनुं सेवन करे छे. तेभांथी शाक्य आदि पोताना उपलोग भाटे 'जल सचित्त नहीं' अे प्रकारनी प्ररूपणा करे छे. दंडी जलने सचित्त भानीने पणु मोह अने प्रमाद वश थछ. पोताना भाटे पाणी गरम करवावे छे, अने भीजने पाणी गरम करवाने। उपदेश आपे छे डे-जल त्रणु दंड-उकाला आपीने उकालतुं लेछ अे. आ प्रमाणे उपदेश आपीने अपकायने समारंभ करता थका डेवण अपकायनीज हिंसा करे छे, अेटतुंज नही परन्तु जलमां रडेवावाणा द्वीन्द्रिय आदिनी पणु विराधना करे छे.

દૃશ્યન્તે ચ તીર્થાદિષુ અધઃકર્માદિદોષદૂષિતભક્તપાનાદિગ્રહણેનાપ્કાયાદિમહાસમારમ્ભં  
કુર્વાણાઃ । ન ચ તે સ્વાત્માનં ભવસાગરાત્તારયિતું સમર્થા ભવન્તિ, ઉક્તશ્ચ-ભગવતો-  
ત્તરાધ્યયનસૂત્રે-(અધ્ય. ૨૦ )

“ ચિરંપિ સે મુંડરુદ્ધં મવિત્તા, અથિરન્વણ તવનિયમેહિં મદ્દે ।

ચિરંપિ અપ્પાણ કિલેસદ્દત્તા, ન પારણ હોદ્દ હુ સંપરાણ ” ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

ન કેવલં તે હિંસાદોષભાગિનઃ, અપિ ત્વન્યદોષભાગિનોઽપિ સન્તિ, તદેવ  
મગવાનાહ-‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

અદુવા અદિન્નાદાણં ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

છાયા—

અથવા અદત્તાદાનમ્ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

તીર્થ આદિ પર આઘાકર્મ આદિ દોષોં સે દૂષિત આહારપાની ગ્રહણકરકે અપ્કાયકા મહારંભ  
કરતે હુણ દેલ્લે જાતે હૈ । લે અપને આત્મા કો ભવસાગર સે તારને મેં સમર્થ નહીં હૈં । મગવાન્  
ને ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર (અધ્યયન ૨૦ ) મેં કહા હૈ—

“ જો પુરુષ અસ્થિર વ્રત લાલા હૈ ઓર તપ તથા નિયમોં સે બ્રષ્ટ હૈ લહ ચિરકાલ તલ  
અપને આત્મા કો ક્લેશ પહુંચાને પર મી સંપરાય (સંસાર સે ) પાર નહીં હો ચકતા ”  
(ઉત્ત. ભ. ૨૦ ) ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

સચિત્ત જલ કા આરંભ કરને લાલે અકેલી હિંસા કે હી માગી નહીં હૈ, કિન્તુ અન્ય  
દોષોં કે માગી મી હૈં । યહી લાત મગવાન્ કહતે હૈ:—‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—અથવા અદત્તાદાન કા દોષ લગતા હૈ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

તીર્થ આદિ પર આઘાકર્મ આદિ દોષોથી દૂષિત આહાર-પાણી ગ્રહણ કરીને  
અપ્કાયનો મહારંભ કરતા હોય એમ જોવામાં આવે છે. તે પોતાના આત્માને ભવસાગરથી  
તારવામાં સમર્થ નથી લગવાને-ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં (અધ્યયન ૨૦માં) કહ્યું છે કે:-

“ જે પુરુષ અસ્થિર વ્રતવાળા છે અને તપ તથા નિયમોથી બ્રષ્ટ છે, તે લાંબા  
સમય સુધી પોતાના આત્માને ક્લેશ પહોંચાડવા ઉપરાંત પણ સંસારથી પાર થઈ  
શકતા નથી.” (ઉત્તરાં અ. ૨૦) (સૂ. ૧૧)

સચિત્ત જલનો આરંભ કરવાવાળા એકલી હિંસાનાજ લાગી નથી પરન્તુ અન્ય  
દોષોના પણ લાગી છે. તે લાત લગવાન કહે છે-‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અથવા અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે. (સૂ. ૧૨)

टीका—

‘अथवा’-शब्दः कथितस्यार्थस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्तते । येऽप्काया-  
रम्भिणस्तेषामदत्तादानदोषापत्तिरपि । यतोऽप्कायजीवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्यु-  
पमर्दयितुं, ते च तानि वाङ्मनःकाययोगैः कृतकारितानुमोदितैरुपमर्दयन्ति, तत-  
श्चाप्कायारम्भिणामदत्तादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मान्मुमुक्षुभिः सर्वथाऽप्काया-  
रम्भो वर्जनीयः, इति भगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सचित्तजलोपभोगिनो हि पृष्ठाः सन्तो यद् वदन्ति तदाह—

यद्वा-अप्कायारम्भं स्वयं परिहर्तुमक्षमाः शाक्यादयो यद्वदन्ति तदाह—  
‘कप्पइ णे.’ इत्यादि ।

टीकार्थ—पहले कही हुई बात का दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये  
‘अथवा’ शब्द है । जो अप्काय का आरंभ करते हैं उन्हें अदत्तादान का दोष भी लगता  
है । कारण यह है कि—अप्काय के जीवों ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सौंपे  
नहीं हैं, फिर भी वे लोग मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से उनका  
उपमर्दन करते हैं. अतः अप्काय का आरंभ करने वालों को अदत्तादान का दोष अनिवार्य  
है । अतः मुमुक्षु पुरुषों को अप्काय का आरंभ त्यागना चाहिए ! ऐसा भगवान् ने साक्षात्  
कहा है ॥ सू० १२ ॥

सचित्त जलका उपयोग करनेवाले पूछनेपर जो उत्तर देते हैं सो कहते हैं—  
अथवा जो लोग अप्काय के आरंभ को त्यागने में असमर्थ हैं उनका कथन बतलाते हैं—  
‘कप्पइ णे.’ इत्यादि ।

टीकार्थ—प्रथम कडेली वातने भीलु रीतथी स्पष्टीकरणु करवाना अर्थमां  
‘अथवा’ शब्द छे. जे अप्कायने आरंभ करे छे, तेने अदत्तादानने दोष पणु लागे  
छे, कारण अे छे के—अप्कायना लुवेअे पोतानुं शरीर उपमर्दन करवा भाटे तेने सोंप्युं  
नथी. तो पणु ते दोको मन, वचन अने कायाथी अने करवुं, कराववुं तथा अनुमोदवुं  
ते वडे करी उपमर्दन करे छे, ते कारणथी अप्कायने आरंभ करवावाणाने अदत्ता-  
दानने दोष पणु अनिवार्य (टाणी न शक्य नेवे) छे. अे भाटे मुमुक्षु पुरुषोअे  
अप्कायने आरंभ त्यागी हेवे जेधअे. अे प्रमाणे लगवाने साक्षात् कछुं छे. (सू. १२)

सचित्त जलने उपयोग करवावाणाने पूछतां जे उत्तर आपे छे—ते कडे छे,  
अथवा जे दोक अप्कायना आरंभने त्यजवामांअसमर्थ छे. तेमनुं कडेवुं—कथन  
अतावे छे—‘कप्पइ णे.’ इत्यादि.

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अद्दुवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूषायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

‘कल्पतेऽस्माक’—मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमुपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनपिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । ‘कल्पतेऽस्माकम्’ इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति—अस्माकं पातुमेव कल्पते न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति—स्नान—पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूषा करने—हाथ पैर आदि धोने, नहाने—के लिए ॥ सू. १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छा से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अतः हमें पीना कल्पता है । ‘हमें कल्पता है’ यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि—प्रयोजन के वश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं—हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि—हमें पीना और स्नानकरना—सभी कुछ कल्पता है !

मूलार्थ—अमने कल्पे छे, अमने कल्पे छे, (जल) पीवाने अने विभूषा—हाथ पग आदि धोवा, नडावा भाटे (सू. १३)

टीकार्थ—अमे स्वेच्छाथी जलनी विराधना करता नथी. परंतु अमारा आग-भसां जलने अचित्त अताव्यु छे, अने पीवाने निषेध कथी नथी. तेथी अमारे पीवुं कल्पे छे. ‘अमारे कल्पे छे.’ आ णे वार कडेवाथी अे सूचित करवामां आव्युं छे के:—प्रयोजनवश नाना प्रकारने उपभोग करवानु अमने कल्पे छे. जेम के—

भस्मथी स्नानकरवावाणा कडे छे—अमारे पीवुं कल्पे छे, स्नान करवुं कल्पतुं नथी.

शाक्य आदिनुं कडेवुं छे के—अमारे पीवुं अने स्नान, सर्वे कंठ कल्पे छे.

ते पुनरेवं वदन्ति—अथवा विभूषायै=शोभार्थं कल्पतेऽस्माकमुदकमिति । विभूषा नाम—करचरणमुखादिप्रक्षालनादिका, वस्त्रादिप्रक्षालनरूपा वा, तदर्थं जलेन व्यवहर-  
तामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह—‘पुढो सत्थेहिं,’ इत्यादि

मूलम्—

पुढो सत्थेहिं विउट्टंति ॥ सू० १४ ॥

छाया—

पृथक् शस्त्रैर्व्यावर्तयन्ति ( विकुट्टंति वा ) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं प्रवदमाना शाक्यादयः पृथक्=भिन्नभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=  
स्नानपानधावनोत्सेचनादिभिरप्कायजीवान् व्यावर्तयन्ति=प्राणेभ्यो व्यपरोपयन्ति ।  
यद्वा विकुट्टन्ती—तिच्छाया तेन विकुट्टन्ति=विशेषेण छिन्दन्ति, सर्वथा भावेन  
विराधयन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उनका यह भी कहना है कि—विभूषा—शोभा के लिए भी जल का उपभोग हमें  
कल्पता है । हाथ, पैर, मुख, आदि धोना और वस्त्र आदि धोना विभूषा है । इस के लिए  
जलका व्यवहारकरने में हमें जरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते हैं, सो करते हैं—‘पुढो.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भिन्न—भिन्न शस्त्रों से जलकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ—अपन को अनगार कहते हुए शाक्य वगैरह भिन्न—भिन्न प्रकार के शस्त्रों  
से स्नान, पान, धोना, सींचना आदि कार्य कर के अप्काय की हिंसा करते हैं । अथवा  
पूर्णरूप से उस की विराधना करते हैं ॥ सू० १४ ॥

तेमनुं अे पणु कडेपुं छे के विभूषा—शोभा माटे पणु जलनो उपभोग अभादे  
कल्पे छे. हाथ पग, मुख आदिने धोवां अने वस्त्र आदि धोवां ते विभूषा कडेवाय छे.  
अे माटे जलनो व्यवहार करवामां अमने जरापणु दोष लागतो नथी. (सू. १३)  
ते भीणुं शुं करे छे, ते कडे छे ‘पुढो.’ इत्यादि.

मूलार्थ—जूदा जूदा शस्त्रेथी जलकायनी हिंसा करे छे. (सू. १४)

टीकार्थ—पोताने अणुगार कडेनारा शाक्य वगेरे भिन्न—भिन्न प्रकारना शस्त्रेथी  
स्नान, पान, धोवुं, सींचवुं आदि कार्य करीने अप्कायनी हिंसा करे छे. अथवा  
पूर्ण रूपथी तेनी विराधना करे छे. (सू. १४)

साम्प्रतमेपां युक्त्यागमयोर्निस्सारत्वं प्रदर्शयन्नाह—‘एत्थवि.’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ वि तेसिं नो निकरणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निकरणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेपां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नपकायारम्भविषये नो=नैव निकरणायै=निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति । अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतुं समर्थो भवति । आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तप्रणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च । यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागप्रणीतः सर्वप्राणिहितकरो भवति ॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते हैं—‘एत्थवि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—उन लोगों की युक्तियाँ अपकाय के विषय में निश्चय नहीं कर सकती ॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ—उन शाक्य आदि की युक्तियाँ अपकाय के आरंभ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं है । ‘वि’ अपि शब्द से यह सूचित किया है कि—उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है । उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्योंकि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है । आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो ॥ सू० १५ ॥

तेमनु कथन—कडेवुं—युक्ति अने आगमथी सारहीन छे. ये अतावीने कडे छे—‘एत्थवि,’ इत्यादि.

सुदार्थ—ते दोडोनी युक्तिओ अपकायना विषयमां निश्चय करी शकती नथी. (सू. १५)

टीकार्थ—ते शाक्य आदिनी युक्तिओ अपकायना आरंभना विषयमां निश्चय करवामां समर्थ नथी. ‘वि’ अपि शब्दथी ये सूचित कथुं छे के तेमनुं आगम पणु निश्चय करवामां समर्थ नथी. तेमनु आगम ते आगम पणु नथी. केभडे ते आप्त पुरुषे द्वारा प्रणीत नथी. अने हिंसानु निधान करवावाणां छे. आगम ते कडेवाय छे के ये वीतरागद्वारा प्रणीत होय अने प्राणीमात्रनुं हितकारी होय. (सू. १५)

तदेवमपां जीवत्वं प्रतिबोध्य अस्य उद्देशस्य सकलार्थमुपसंहरन्नाह—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

### मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्य इच्चेते आरंभा अपरिणायया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणसस इच्चेते आरंभा परिणायया भवंति । तं परिणाय मेधावी णेव सयं उदयसत्थं समारंभेज्जा, णेवन्नेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा, उदयसत्थं समारंभतेऽवि अण्णे न समणुजाणेज्जा । जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिणायया भवंति से हु मुणी परिणायकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० १६ ॥

तइओ उद्देशो समत्तो ॥ ३ ॥

### छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयेत्, उदकशस्त्रं

इस प्रकार जल को जीव बतलाकर इस उद्देशक के समस्त कथन का उपसंहार करते हैं—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अपूकाय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते । अपूकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं । उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जल का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वाले दूसरे को भला न जाने । जो जलकाय के इस आरंभ को जानता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । भगवान् से मैंने जो सुना वह कहता हूँ ॥ सू० १६ ॥

आ पमात्ते जलने एव भतापीने आ उद्देशकनां समस्त कथनने उपासंहार करे छे—‘एत्थ.’ इत्यादि.

मूलार्थ—अपूकायमां शस्त्रना आरंभ करवावाणाने आरंभ न्नाणुवामां आवता नथी. अपूकायमां शस्त्रना आरंभ नद्धि करवावाणाने अे आरंभ न्नाणुवामां आवे छे. तेने न्नाणी करीने बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जलने आरंभ करे नद्धि. भीन पासे आरंभ करावे नद्धि. अने आरंभ करवावाणा भीनने ललो न्नात्ते नद्धि. ने जलकायने आ प्रमात्ते आरंभ न्नात्ते छे. ते परिज्ञातकर्मा मुनि छे, भगवान् पासेथी ने सांलयु ते कहुं छुं. (सू. १६)



समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः । ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति-‘तत् परिज्ञाये’-त्यादि । तद्=उदकारम्भणं परिज्ञाय=‘बन्धाय भवती’-त्येवमवबुध्य मेधावी=साधुमर्यादायां सावधानः, नैव स्वमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

टीकार्थ—इस अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यापारों को कर्मबंध का कारण नहीं जानता । जो अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हें इस व्यापारों का ज्ञान होता है । अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं । ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं—जल के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरंभ नहीं करे, दूसरों से आरंभ नहीं करावे और जलका आरंभ करने

टीकार्थ—आ अप्कायना विषयमां द्रव्य अने लावइय शस्त्रेना व्यापार करवा-वाणा पोताना व्यापारेने कर्मबंधनुं कारण् ज्ञाता नथी. ते अप्कायना विषयमां द्रव्य अने लावरूप शस्त्रेना उपयोग करता नथी, तेने अे व्यापारेनुं ज्ञान डोय छे. अर्थात् ते ज्ञपरिज्ञाथी ज्ञातेने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्याग करी दे छे.

ज्ञपरिज्ञा पथी प्रत्याख्यानपरिज्ञा देवा प्रकारे उत्पन्न थाय छे, ते छडे छे—जलना आरंभने कर्मबंधनुं कारण् ज्ञाती करीने साधुनी मर्यादां रडेवावाणा बुद्धिमान् स्वयं जलकायने आरंभ करे नहि, जीन पासे करावे नहि, अने जलने आरंभ करवावाणामे

येत्, उदकशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदये-  
दित्यर्थः । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा  
मुनिर्भवति, इति ब्रवीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्वद् बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने  
तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ १ । ३ ॥

वाले दूसरों का अनुमोदन नहीं करे । जो उदकशस्त्र के आरंभ को जानता है वह  
परिज्ञातकर्मा मुनि है । 'इति वेमि' का अर्थ पहले की तरह जानना चाहिए ॥ सू० १६ ॥

इति श्री आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के  
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका  
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

अनुमोदन आपे नडि. जे उदकशस्त्रना आरंभने जणु छे, ते परिज्ञातकर्मा मुनि छे.  
'इति वेमि' ने। अर्थ पडेलानां प्रमाणे जणुवे जेधये. (सू० १६)

इति श्री आचारंग सूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना  
गुजराती अनुवादमां प्रथम अध्ययनने  
तीजे उद्देशक समाप्त. ॥ १।३ ॥



अथ चतुर्थोद्देशः ।

अनन्तरतृतीयोद्देशके मुनित्वप्राप्तयेऽप्कायस्य स्वरूपं निर्णीतं, तदर्थ-  
मेवाप्कायशस्त्रसमारम्भे ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा परिज्ञाऽपि प्रवेदिता ।  
अथैतदर्थमेव च क्रममाप्तमग्निकायं प्रतिबोधयितुकामश्चतुर्थमुद्देशकं प्रारभते ।  
तत्रादौ 'तेजस्काया जीवाः सन्ती'ति निर्धारयितुमाद्यं सूत्रमाह—'से वेमि'  
इत्यादि ।

मूलम—

से वेमि नेव सयं लोयं अब्भाइक्खेज्जा, नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा, जे  
लोयं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ । जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं  
अब्भाइक्खइ ॥ सू० १ ॥

चौथा उद्देशक—

पिछले तीसरे उद्देशक में साधुता की प्राप्ति के लिए अप्काय के स्वरूप का  
निर्णय किया, और अप्कायशस्त्र का उपयोग करने में ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा भी  
बतलाई । अब उसी साधुता की प्राप्ति के लिए क्रमप्राप्त अग्निकाय का स्वरूप समझाते हुए  
चौथा उद्देशक आरंभ करते हैं । सर्वप्रथम तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित करने  
के लिए सूत्र कहते हैं—'से वेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हू । स्वयं अग्निकायरूप  
लोक का अपलाप न करे । न आत्माका अपलाप करे । जो अग्निकाय का अपलाप करता है  
वह आत्मा का अपलाप करता है, जो आत्मा का अपलाप करता है वह अग्निकाय का  
अपलाप करता है ॥ सू० १ ॥

थोथा उद्देशक—

पाछगना त्रीण उद्देशकमां साधुतानी प्राप्ति माटे अप्कायनेो निर्णय कथेो  
अने अप्काय शस्त्रनेो उपयोग करवामां ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा पधु भतापी.  
हुवे ते साधुतानी प्राप्ति माटे कभप्राप्त अग्निकायनुं स्वरूप समजवता थका—थोथा  
उद्देशकनेो आरंभ करे छे. सर्व प्रथम तेजस्कायना लोवोनुं अस्तित्व निश्चय करवा  
माटे सूत्र कहे छे—'से वेमि' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाननी समीप लेवुं सांलय्युं छे, तेवुं कहुं छुं. स्वयं अग्निकाय  
रूप होइनेो अपलाप करे नहि; अने आत्मानेो अपलाप पधु करे नहि. ने अग्नि-  
कायनेो अपलाप करे छे, ते आत्मानेो अपलाप करे छे. ने आत्मानेो अपलाप करे  
छे ते अग्निकायनेो अपलाप करे छे. (सू. १)

छाया—

स ब्रवीमि, नैव स्वयं लोकमभ्याख्यायात्, नैवात्मानमभ्याख्यायात् । यो लोकमभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति । य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्याख्याति ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन मया नित्यं गुरुकुलनिवासिना भगवतः समीपे षट्जीवनिकाय-स्वरूपं निरवशेषविशेषपुरस्सरं श्रवणमननादिना परिज्ञाविषयीकृत्य निर्णीतं, सोऽहं ब्रवीमि=श्रुतं यथा भगवन्मुखात्, तथा कथयामीत्यर्थः ।

लोकम्=अग्निकायलोकम्, प्रकरणसम्बन्धादिह लोकशब्देनाग्निकाय-लोकस्य ग्रहणम् । स्वयम्=आत्मना, नैव अभ्याख्यायात्=नैवापह्नुवीत् । 'अग्निकाय-जीवा न सन्ती'त्येवमग्निकायजीवस्यापलापं नैव कुर्यादित्यर्थः । स्वयमित्यने-नाग्निकायजीवापलापनकर्मणा स्वमात्मानं नैव बध्नीयादित्यर्थो बोध्यते ।

टीकार्थ--गुरुकुल में निवास करते हुए मैंने भगवान के मुख से षट्काय का समस्त विशेषो से युक्त जो स्वरूप श्रवण मनन आदि से परिज्ञा का विषय कर के निर्णीत किया है, उसे मैं कहता हूँ । अर्थात् जैसा भगवान् के मुखारविन्द से सुना है वैसे ही कहता हूँ ।

अग्निकाय का प्रकरण होने के कारण यहाँ 'लोक' क अर्थ अग्निकायरूप लोक समझना चाहिए । इस अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे अर्थात् यह न कहे कि--अग्निकाय के जीव नहीं है । स्वयं शब्द से यह अर्थ प्रकट होता है कि अग्निकाय के अपलापरूप कर्म से अपने आप को बद्ध न करे ।

टीकार्थ--गुरुकुलमां निवास करीने में भगवानना मुखथी षट्कायना समस्त विशेषथी युक्त ने स्वरूपने श्रवण-मनन आदिथी परिज्ञाने विषय करीने निर्णीत कथुं ते हुं कहुं छुं. अर्थात् ने प्रमाणे भगवानना मुखारविन्दथी सांलब्धु छे. तेवुंज हुं कहुं छुं.

अग्निकायतुं प्रकरणे होवाना कारणे अहिं 'लोक' ने अर्थ अग्निकायरूप दोह समजवे नेछे अ. आ अग्निकायने स्वयंअपलाप करे नहि. अर्थात् अे प्रमाणे कहे नहि के-अग्निकायना लुप नथी 'स्वयं' शब्दथी अे अर्थ प्रकट थाय छे के अग्निकायना अपलापरूप कर्मथी पोते पोताने बद्ध करे नहि.

अयं भावः—कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमान-  
भेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्काय-  
जीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया एकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति ।  
तत्र कस्याञ्चिदपि क्रियायां स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति । उपपद्यतेऽप्ययमर्थः,  
अन्यथा हि स्वयंकृतस्यैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपाणां  
तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत । ततश्च तादृशाभ्या-  
ख्यानं पापाय न स्यात् । तथाचोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिः ।

तात्पर्य यह है—प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय,  
और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से ( इनका परस्पर गुणाकार करने से ) सत्ताईस  
भेद होते हैं । इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो  
सकते हैं । इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोड़ना न चाहिए । अगर ऐसा अर्थ  
न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि—अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे,  
मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है । ऐसा  
अर्थ संगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही  
प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलापका प्रतिषेध नहीं होगा और इस  
प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा । फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का  
दोष आएगा ।

तात्पर्य ये छे—प्रत्येक क्रियाना करवुं—कराववुं अने अनुमोदना, मन, वचन,  
काय अने भूतकाल, लविष्यकाल तथा वर्तमान कालना लेदथी ( अने परस्पर  
गुणाकार करवाथी ) सत्यावीस लेद थाय छे. ये प्रमाणे आ तेजस्कायना अपलापरूप  
क्रियाना पणु सत्यावीस लेद थर्द शके छे. ये लेदोमांथी केर्द पणु लेदमां आत्माने  
लेउवे। लेर्दये नहि; परन्तु ये प्रमाणे अर्थ करवामां न आवे तो ये पणु समल  
देवामां आवत के, अज्जिकायने स्वयं अपलाप करे नहि. परन्तु अपलाप कराववानी  
अने अनुमोदन करवानी क्रियाअने निषेध नथी. आ प्रकारने अर्थ संगत नथी,  
केभडे—आवे। अर्थ करवाथी देवण स्वयंकृत अपलापनेन निषेध थशे. किन्तु कारित  
अने अनुमोदित अपलापने निषेध थशे नहि, अने ये प्रकारने अपलाप पापनुं  
कारण न थाय, पथी तो सूत्रना विरुद्ध प्ररूपणाने दोष आवथे.

लक्षणद्वारम्--

ननु तेजस्कायजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम् ? उच्यते-अङ्गारादयो जीवशरीराणि, छेद्यत्वाद्, दृश्यत्वाद्, करचरणादिसमुदायवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मप्रयोगाविर्भूतः शरीरस्थत्वात्, खद्योतदेहपरिणामवत् । यथा-रजन्यादौ विशिष्टकाले प्राणिविशेषस्य खद्योतस्य देहपरिणामो जीवप्रयोगविशेषाद् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः ।

यद्वा-अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंप्रयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत् ।

लक्षणद्वारम्--

शङ्का--तेजस्काय के जीवों के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ?

समाधान--अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्योंकि वह छेद्य है, भेद्य है और दृश्य हैं, जैसे हाथ-पैर आदि का समूह ।

अथवा--अंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई हैं; क्योंकि वह शरीर में स्थित है, जैसे-जुगनू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि वगैरह खास समय में जुगनू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (चमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है ।

अथवा--अंगार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्योंकि वह शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी. ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

लक्षणद्वारम्--

शङ्का--तेजस्कायना ज्वोना अस्तित्व (डोवापण्णा)भां शुं प्रमाणे छे ?

समाधान--अंगार आदि ज्वनां शरीर छे. केमके ते छेद्य छे, लेद्य छे, अने दृश्य छे. नेमके हाथ, पैर आदिना समूह.

अथवा--अंगार आदिनी प्रकाशरूप पर्याय आत्माना प्रयोगथी उत्पन्न थय छे; कारणके ते शरीरभां स्थित छे. नेवी रीते-जुगनू (आगियो नामना प्राणी)ना शरीरनी पर्याय. नेम रात्री वगेरे खास समयभां जुगनू (आगीयो)नामके प्राणीना शरीर-परिणाम (चमकवुं) ज्वना प्रयोगथी प्रकट थय छे. ते प्रमाणे अंगार आदिना प्रकाशरूप परिणाम पण् आत्माना व्यापारथी उत्पन्न थय छे.

अथवा--अंगार आदिनी गरमी आत्माना व्यापारथी उत्पन्न थय छे. कारणके ते शरीरभां छे. नेमके ज्वर-तावनी गरमी. ज्वर-तावनी, गरमी ज्वथी युक्त शरीरभां

यथा—ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति । न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते । एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सचित्तता विज्ञेया । न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वेषामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण-परिणामो भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति ।

यद्वा—तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिविशेषतद्विकार-वत्त्वात्, पुरुषवत् । एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यप्-कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते । एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते । आगमोऽपि यथा—

जीव के संयोग विना उत्पन्न नहीं होती । मुर्देमें ज्वर कहीं नहीं देखा जाता । इस प्रकार अग्नि में अन्वय—व्यतिरेकद्वारा सचित्तता समझनी चाहिए । यहाँ सूर्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब में आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्मी हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है ।

अथवा—तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में । इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है । अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते हैं, उसी प्रकार तेजस्काय में भी पाये जाते हैं । इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है । इसमें आगम प्रमाण भी है—

उत्पन्न थाय छे. एवना संयोग विना उत्पन्न थती नथी. मुउद्दामां ज्वर-ताव डेध स्थणे नेवामां आवतो नथी, आ प्रभाणु अग्निमां अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सचित्तता समन्वी नेधये. अडिं सूर्यधी हेतुमां व्यलियार नथी. डेमके अर्वां आत्मपूर्वकज गरमी डेध शके छे, अेटला डारणुधी व्यलियार नथी.

अथवा—तेज सचेतन छे. डेमके यथायोग्य आहार ग्रहणु डरवाथी तेनामां वृद्धिरूप विकार नेवामां आवे छे. नेवी शीते पुरुषमा. आ प्रडारे एवना लक्षण भणवाथी तेजस्कायना एवेतुं अस्तित्व जणुयामां आवे छे.

अथवा—अप्रकट उपयोगधी लक्षणे कषायपर्यन्त एवना लक्षणु नेवामां आवे छे. ते डारणु तेजस्कायना एवेतुं अस्तित्व निश्चय डेध छे. आमां आगम प्रमाणु यणु छे—

“ तेज्ज चित्तमंतमक्खाया अपोगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ”  
इत्यादि । ( दशवै० अ० ४ )

### प्ररूपणाद्वारम्—

अग्निकायजीवा द्विविधाः, सूक्ष्मबादरभेदात् । तत्र सूक्ष्मनामकर्मादयात् सूक्ष्माः । बादरनामकर्मादयाद् बादराः । तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति ।

बादरा अग्निकाया अनेकविधाः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादयः । सर्वे बादरा अग्निकाया अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । बादराणां यत्रैको जीवस्तत्रा-

“ तेजस्क्याय सचित्त कहा गया है । उस में अनेक जीव है, उनका अस्तित्व अलग-अलग है, शस्त्रपरिणत अग्नि को छोड़ कर ” इत्यादि । (दशवै० अध्या० ४)

### प्ररूपणाद्वार—

अग्निकाय के जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और बादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर जीव हैं । इनमें से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं और बादर लोक के एक देश में हैं ।

बादर अग्निकाय अनेक प्रकार के है । जैसे—अंगार, ज्वाला, अलात (जलता हुआ काष्ठ), शुद्ध अग्नि आदि । सब बादर अग्निकाय भी दो प्रकार के है—पर्याप्त

“ तेजस्क्याय सचित्त उल्लेखं छे. तेमां अनेक एव छे, तेनुं अस्तित्व अलग-अलग छे, शस्त्रपरिणत अग्निने छोडीने. ” इत्यादि ( दशवै. अ. ४ )

### प्ररूपणाद्वार—

अग्निकायना एव ये प्रकारना छे—(१) सूक्ष्म अने (२) बादर. जेने सूक्ष्मनामकर्मानो उदय होय ते सूक्ष्म अने जेने बादर नामकर्मानो उदय होय ते बादर एव छे. तेमांथी सूक्ष्मना पणु ये लेह छे. पर्याप्त अने अपर्याप्त. सूक्ष्म एव समस्त लोकाकाशमां व्याप्त छे. अने बादर लोकना अेक देशमां छे.

बादर अग्निकाय अनेक प्रकारना छे. जेभके—अंगार, ज्वाला, अणतुं लाकडुं, शुद्ध अग्नि वगेरे. सर्व बादर अग्निकाय पणु ये प्रकारना छे—पर्याप्त अने अपर्याप्त;



संख्येयैर्नियमतो भाव्यम् । वादराणां स्वस्थानं मनुष्यक्षेत्रमेव, न ततः परमस्ति ।

वादरास्तेजस्कायाः व्याघाताभावे सति मनुष्यक्षेत्रेऽर्धतृतीयद्वीपसमुद्रेषु पञ्चदशक्षेत्रेषु विद्यन्ते । युगलसमयरूपे व्याघाते सति तु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तन्ते, नान्यत्र । उपपाताङ्गीकरणेन लोकसंख्येयभागवर्तिनः सन्ति ।

समुद्घातेन सर्वलोकवर्तिनः पृथिवीकायादयश्च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता वादराग्निषु समुत्पद्यमानास्तत्तद्व्यपदेशभाजः सर्वलोकव्यापिनः सन्ति ।

यत्र च वादराः पर्याप्तास्त व वादरा अपर्याप्ताः, यतस्ते तन्निश्रयो-

और अपर्याप्त । जहाँ एक वादर जीव होता है वहाँ नियम से असंख्यात जीव होते हैं । वादर जीवों का क्षेत्र मनुष्यलोक ही है; उससे आगे नहीं ।

वादर तेजस्काय व्याघात (अन्तर) न हो तो मनुष्य क्षेत्र में अढाई द्वीप समुद्रों में पन्द्रह क्षेत्रों में रहते हैं । युगलियों के समयरूप व्याघात (अन्तर) के होने पर पाँच महाविदेहों में रहते हैं, अन्यत्र नहीं । उपघात की अपेक्षा लोक के संख्यात भाग में रहते हैं ।

समुद्घात की अपेक्षा—समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि, मारणान्तिक समुद्घात करके वादर अग्नि में उत्पन्न होते हुए उस—उस व्यपदेश (नाम) के पात्र हो कर सर्वलोकव्यापी हैं ।

जहाँ वादर पर्याप्त है वहीं वादर अपर्याप्त हैं, क्यों कि—अपर्याप्त जीव

ज्यां अेक वादर एव डोय छे त्यां नियमथी असंख्यात एव डोय छे. वादर एवेनुं क्षेत्र मनुष्य डोडन छे. तेनाथी आगण नथी.

वादर तेजस्काय, अन्तर न डोय तो मनुष्य क्षेत्रमां अढी द्वीप—समुद्रोमां, पंहर क्षेत्रोमां रडे छे. युगलिआओना समयरूप अंतर डोवा पर पांच महाविदेहोमां रडे छे, अन्यत्र नडि. उपपातनी अपेक्षा डोडना संख्यात भागमां रडे छे.

समुद्घातनी अपेक्षा समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि मारणान्तिक समुद्घात करीने वादर अग्निमां उत्पन्न थरने ते—ते व्यपदेश—(नाम)ने पात्र थरने सर्व लोकव्यापी छे.

ज्यां वादर पर्याप्त छे त्यां वादर अपर्याप्त छे; केमडे—अपर्याप्त एव पर्याप्तना

त्पद्यन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा बादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा भवन्ति । सर्वे चैते वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैः सहस्राग्रशो भिद्यमानाः संख्येययोनिप्रमुखशतसहस्रभेदपरिमाणा भवन्ति । तत्रेषां संवृतोष्णा च योनिः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिधा । एषां सप्त लक्षाणि योनयो भवन्ति ।

सूक्ष्मबादराणामुभयेषामग्निकायानां शरीरसंस्थानं सूचीकलापाकृतिकम्, अन्ये शरीरत्रयादिभेदाः पृथिवीकाय वत् । उभयेऽग्निकायाः प्रत्येकमसंख्येयाश्च ।

पर्याप्त के आश्रय ही उत्पन्न होते हैं । अतः सूक्ष्म और बादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद है और वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श के भेद से हजारों भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या लाखों की हो जाती है ।

इनकी योनि संवृत और उष्ण है । वह भी सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की है । इनकी सात लाख योनियाँ है ।

सूक्ष्म और बादर—दोनों प्रकार के अग्निकाय जीवों के शरीर का आकार सुइयों के समूह की तरह है । शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं । दोनों प्रकार के अग्निकाय असंख्यात—असंख्यात हैं ।

आश्रयेऽ उत्पन्न थाय छे. अे कारणुथी सूक्ष्म अने बादर प्रत्येकना पर्याप्त अने अपर्याप्तना लेदथी अे लेद छे अने वर्ण, गंध, रस अने स्पर्शना लेदथी उन्नरे लेदो पाभता थका अेनी संख्येय योनि वगेरे लेदोनी संख्या लाखो थर्ष जय छे.

तेनी योनि संवृत अने उष्ण छे, ते पणु सचित्त, अचित्त अने मिश्रना लेदथी त्रणु प्रकारनी छे. अेनी सात लाख योनिओ छे.

सूक्ष्म अने बादर अन्ने प्रकारना अग्निकाय अेवोना शरीरना आधार सोयना समूहनी प्रमाणे छे. शरीरत्रय (त्रणु शरीर) आदि अन्य लेद पृथ्वीकायनी समान छे. अन्ने प्रकारना अग्निकाय असंख्यात—असंख्यात छे.

## परिमाणद्वारम्—

वादरपर्याप्तास्तेजस्कायजीवाः क्षेत्रपल्योपमस्याऽसंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । तदपेक्षया वादरा अपर्याप्तास्तेजस्कायजीवा असंख्यातगुणाः तदपेक्षया सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः, तदपेक्षया सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः सन्ति । पृथिवीकायेन सहाग्निकायस्य परिमाणसमालोचनायां त्वेवमवधेयम्—

ये तेजस्काया वादरपर्याप्ताः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति, ते वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्योऽसंख्यातगुणहीनाः । शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथिवीकायवद् विज्ञेयाः । तत्रायं विशेषः—

## परिमाणद्वारम्—

वादर पर्याप्त तेजस्काय के जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । वादर अपर्याप्त तेजस्काय जीव उनसे असंख्यात गुणा हैं, सूक्ष्म अपर्याप्त इनसे भी असंख्यात गुणा हैं, और सूक्ष्म पर्याप्त इन से भी असंख्यात गुणा है । पृथ्वीकाय के साथ अग्निकाय के परिमाण का विचार किया जाय तो इस प्रकार है—

तेजस्काय के जो वादर पर्याप्त जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर हैं, वे वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से असंख्यातगुणा हीन हैं । शेष तीनों राशियों पृथ्वीकाय से समान ही समझ लेनी चाहिए । विशेषता सिर्फ इतनी है—

## परिमाण द्वारम्—

वादर पर्याप्त तेजस्कायना एव क्षेत्र-पल्योपमना असंख्यातभा भागवर्ती प्रदेशोनी राशिना बराबर छे. वादर अपर्याप्त-तेजस्काय एव तेनाथी असंख्यात गुणा छे. सूक्ष्म अपर्याप्त तेनाथी पल्यु असंख्यात गुणा छे. अने सूक्ष्म पर्याप्त तेनाथी पल्यु असंख्यात गुणा छे. पृथ्वीकायनी साथे अग्निकायना परिमाणुने विचार करवामां आवे तो आ प्रकारे छे—

तेजस्कायना ने वादर पर्याप्त एव क्षेत्रपल्योपमना असंख्यातभा भागवर्ती प्रदेशोनी बराबर छे; ते वादर पर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी असंख्यात गुणा हीन छे. वादरीनी त्रयो राशिओ पृथ्वीकायनी समानर समलु देवी नेछे, विशेषता मात्र ओटदी छे छे—

बादरापर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणहीनाः,  
सूक्ष्माऽपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीनाः ।  
सूक्ष्मपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना इति ।

एवं युक्त्यागमप्रमाणाभ्यामग्नेर्जीवत्वे सिद्धे यदि कश्चिदग्निकाय  
जीवस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्युपयोगादिलक्षणैरनुमितस्य शरीराधिष्ठातुरात्मतोऽ-  
प्यभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तन्न उचितं भवतीत्यत आह—“नैवाऽऽ-  
त्मानमभ्याख्याया ’-दिति । केनचिदात्मना शरीरमिदं, परिगृहीतं, केनचिच्च  
शरीरमिदं परित्यक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः शरीराधिष्ठातृत्वं सिध्यति ।

बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से बादर अपर्याप्त तेजस्काय के जीव असंख्यातगुणा  
कम हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्काय के जीव  
विशेष हीन हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय के जीव  
विशेष हीन हैं ।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सजीवता सिद्ध हो जाने  
पर भी यदि कोई अग्निकाय के जीवों का अपलाप करता है तो वह उपयोग आदि  
लक्षणों से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का अपलाप  
करता है, मगर ऐसा करना उचित नहीं है, अतः सूत्रकार कहते हैं—‘ आत्मा का  
अपलाप न करे ’ । किसी आत्माने यह शरीर ग्रहण किया है और किसी ने शरीर का  
त्याग किया है, यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है । इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर,  
आत्मद्वारा अधिष्ठित है ।

बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायना लोवेथी बादर अपर्याप्त तेजस्कायना लोव असंख्यात  
गुणा ओछा छे. सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना लोवेथी सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायना  
लोव विशेषहीन छे. सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायना लोवेथी सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्कायना  
लोव विशेषहीन छे—विशेष ओछा छे.

आ प्रमाणे युक्ति अने आगमप्रमाणुथी अग्निनी सल्लवता सिद्ध थई नवा  
छताय पणु जे कोई अग्निकायना लोवेनो अपलाप करे छे तो ते उपयोग लक्षणुथी  
अनुमान करवाभां आवेला अने शरीरना अधिष्ठाता आत्मानो अपलाप करे छे. परन्तु अे  
प्रमाणे करवुं ते उचित नथी. तेथी सूत्रकार कहे छे—‘ आत्मानो अपलाप न करे. ’ कोई  
आत्माअे आ शरीर अडणु कथुं छे, अने कोईअे शरीरनो त्याग कर्यो छे, अे वात  
प्रत्यक्ष जेवाभां आवे छे. तेथी अे सिद्ध थाय छे के शरीर आत्माद्वारा अधिष्ठित छे.

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कथमपि नापलपितुं शक्यः । तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न कुर्यादित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः, लोकम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्म-वत्सर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—‘अग्निकायजीवो नास्ती’ति, स आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति ‘आत्मा नास्ती’ति । सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकाभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽभ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः ।

य आत्मानमभ्याख्याति=यच्चात्मनोऽभ्याख्याने ‘आत्मा नास्ती’

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए ।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भाँति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है—निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है । सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्योंकि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है ।

जो मूर्ख ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

आ प्रमाणे युक्ति अने आगमथी सिद्ध, शरीरना अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणोवाणा आत्मानो निषेध करी शकते नथी. अतएव भाटे ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करी शकते नथी. अतएव भाटे ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करवे लोछे नहि.

जे मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूपलोकने के जे आत्मा प्रमाणे समस्त प्रमाणोथी सिद्ध छे तेनो, निषेध करे छे, अर्थात् अग्निकायना एवोनो निषेध करे छे, ते युक्ति अने आगमथी सिद्ध आत्मानो निषेध करे छे. सर्व प्रमाणोथी सिद्ध अग्निकायलोकना अपलाप करवाथी आत्मानो अपलाप करवे ते सरल छे. केभङ्गे अग्निकाय अने आत्माना अस्तित्वमां प्रमाणोनो सद्भाव समान छे.

जे मूर्ख ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करे छे, ते ‘अग्निकाय

त्यपलपने प्रवर्तते, स मूढः लोकम्=अधिकायलोकम् अभ्याख्याति=  
‘अग्निकायजीवो नास्ती’-त्यपलपति । अयं भावः-सामान्यरूपेणात्मनः सिद्धौ  
सत्यामेव हि तस्यात्मनो भेदाः पृथिवीकायादयः सिध्यन्ति, नान्यथा ।  
सामान्यात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादेर्विशेषात्मनोऽभ्याख्यानं  
सुतरां कर्तुमर्हतीति ।

अपि चायं भावः-करचरणाद्यवयवयुक्तशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादि-  
लक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातः, तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणाग्निकायाभ्याख्यानं  
किं नु दुष्कर ?-मिति ॥ सू० १ ॥

‘अग्निकाय नहीं है’ इस प्रकार अग्निकाय का निषेध करता है ।

तात्पर्य यह है कि-सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके  
पृथ्वीकाय आदि भेद सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं । जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का  
ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्माओं का निषेध करे;  
यह तो स्वाभाविक ही है ।

इससे यह भी आशय निकलता है-हाथ-पैर आदि अवयवों से युक्त शरीर के  
अधिष्ठाता और भलीभाँति प्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपने आत्मा का भी जिसने  
निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अग्निकाय का निषेध  
करना कौन बड़ी बात है ? ॥ सू० १ ॥

नथी’ आ प्रभाण्ण अज्जिकायनो निषेध करे छे.

तात्पर्य अे छे के-सामान्यरूपथी आत्मानुं अस्तित्व सिद्ध थवाथी न तेना  
पृथ्वीकाय आदि लेह सिद्ध थर्ध शके छे, अन्यथा-णीण्ण रीते नहि. ने साहसी पुरुष  
सामान्य आत्मानोण्ण निषेध करवा भाटे तैयार थर्ध गया ते पृथ्वीकाय आदि विशेष  
आत्माओनो निषेध करे अे तो स्वाभाविकण्ण छे.

अेभांथी अे पण्ण आशय निकणे छे के-हाथ-पग आदि अवयवोथी युक्त  
शरीरना अधिष्ठाता ने सारी रीते प्रकट उपयोग आदि लक्षणावाणा चोताना  
आत्मानो पण्ण नेण्ण निषेध करी दीधो तेने अप्रकट उपयोग आदि लक्षणावाणा  
अज्जिकायनो निषेध करवो ते थुं भोटी वात छे ? (सू. १)

अयमग्निकायलोकः स्वात्मवन्नैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्, इदानीमग्निकायजीवोपमर्दनाद् विनिवृत्त एव मुनिर्भवितुमर्हतीत्याह—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्वासौ लोकश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः, तस्य शस्त्रं दीर्घश्लोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

अग्निकायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया । अब बतलाते हैं कि—अग्निकाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता है—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निकाय) के दुःख को जानता है वही संयम के खेद को जानता है और जो संयम के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र—अग्नि के दुःख को जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् संयम के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

अग्निकायलोक, आत्मानि प्रभाणु निषेध करवा योग्य नथी; ते अतावी आप्थुं छे. इवे अतावे छे के—अग्निकायना अणुनी हिंसाथी निवृत्त थवावाणा पुरुषण मुनि होथ छे—‘जे दीह०’ इत्यादि.

मूलार्थ—जे दीर्घलोक (वनस्पतिकाय)ना शस्त्र (अग्निकाय)ना दुःखने जणु छे, तेण संयमना जेदने जणु छे, अने जे संयमना जेदने जणु छे. तेण दीर्घ-लोकना शस्त्रना जेदने जणु छे. (सू. २)

टीकार्थ—जे भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पतिणु शस्त्र अग्निना दुःखने जणु छे, तेण अशस्त्र अर्थात् संयमना जेदने जणु छे. वनस्पतिकायनी विराधना करवाना

ग्निस्तेषां शस्त्रं भवति । तस्य खेदज्ञः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं जानातीति खेदज्ञः, स एव अशस्त्रस्य-अशस्त्रं=संयमः, संयमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापीत्यशस्त्रमुच्यते । तस्य खेदज्ञः=संयमभङ्गभयजनितदुःखानुभवकुशलः । एवं संयमानुष्ठानादेव मुनित्वं लभ्यमिति भावः ।

ननु-कथमिदं ज्ञायते दीर्घलोकशब्दार्थे वनस्पतिरिति ? उच्यते- - कायस्थितिकालेन, परिमाणेन, शरीरावगाहनया च वनस्पतिकायस्य अन्यैकेन्द्रियापेक्षया महत्त्वमस्ति । तथाहि-वनस्पतिकायस्य कायस्थितिकालोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः, तस्मिन्नसंख्येयाः पुद्गलपरावर्ता भवन्ति, ते पुद्गलपरावर्ता आवलिकाया असंख्येये भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः

करने के कारण अग्नि, वनस्पतिकाय का शस्त्र है । संयम से किसी की विराधना नहीं होती, न वह किसी को भयकारी है, अत एव संयम को अशस्त्र कहते हैं । संयम के भंग होने के भय से उत्पन्न होने वाला दुःख संयम का खेद कहलाता है । इस प्रकार संयम के पालन करने से ही मुनिपन होता है ।

शंका—दीर्घलोक शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय ?

समाधान—कायस्थिति के समय, परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाय अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा महान् है । वनस्पतिकाय की कायस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त भी अनन्त उत्सर्पिणीरूप-अवसर्पिणीरूप है । उसमें असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होते हैं । वे पुद्गलपरावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग में

कारण्थी अग्नि वनस्पतिकायनुं शस्त्रं छे. संयमथी केाधनी पणु विराधना थती नथी. ते केाधने लयकारी नथी. ये माटे संयमने अशस्त्रं कडे छे. संयमने लंग थवाना लयथी उत्पन्न थवावाणुं दुःख ते संयमने भेद कडेवाय छे. आ प्रमाणे संयमनुं पालन करवाथीण मुनिपणुं छे।

शंका—दीर्घलोक शब्दने अर्थ वनस्पति केवी रीते समझ शक्य ?

समाधान—कायस्थितिना समय, परिमाण अने शरीरनी अवगाहनाथी वनस्पतिकाय, अन्य ऐकेन्द्रिय जीवानी अपेक्षाये महान् छे. वनस्पतिकायनी कायस्थितिने काल अनन्त छे अने ते अनन्त पणु अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप छे. तेमां असंख्यात पुद्गलपरावर्तन थाय छे. ते पुद्गलपरावर्तन आवलिकाना असंख्यातमा



सन्ति । एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते । परिमाणतस्तु प्रत्युत्पन्नवनस्पति-  
काधिकानां निर्लेपना नास्ति ।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम् । अतो वनस्पतिकायस्य  
दीर्घलोक इति व्यपदेशः । (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशब्दोपादानम् ?  
उच्यते—वनस्पतिकायदहनप्रवृत्तोऽग्निकायो बहुतरप्राणिनां विनाशको भवति,  
वनस्पतिकाये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकाकपोतादयो  
निवसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवश्यायरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है । परिमाण से प्रत्युत्पन्न  
वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना नहीं है । इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक  
हजार योजन है । इसी कारण वनस्पतिकाय को दीर्घलोक कहते हैं ।

अब प्रश्न हो सकता है कि—प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड़ कर 'दीर्घलोकशब्द'  
शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी ?

इसका उत्तर यह है कि—वनस्पतिकाय को जलाने में प्रवृत्त अग्निकाय और भी  
बहुत से प्राणियों का विनाश करता है । वनस्पतिकाय के सहारे कीड़े, चिउंटी, भैंरे,  
मधुमक्खी और कवूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं । वृक्षों की खोतरों में  
पृथ्वीकाय के जीव भी होते हैं । ओसरूप अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

भागमां जेटला समय थाय छे. तेटला छे अेटटो डाण ते वनस्पतिकाल इडेवाय छे.  
परिमाणुथी प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक लुवोनी निर्लेपना नथी. तेना शरीरनी अवगाहना  
इंइं अधिक अेइ इल्लर योजन छे. आ डारणुथी वनस्पति डायने 'दीर्घलोक' इडे छे.

इवे प्रश्न थर् शके छे डेः—प्रसिद्ध अग्नि शब्दने छोडीने 'दीर्घलोकशब्द'  
शब्दने प्रयोग डरवानी शुं आवश्यकता इती ? तेने उत्तर अे छे डे—वनस्पतिकायने  
आणवामां प्रवृत्त (आलु) अग्निकाय थील्ल पणु प्राणीओने विनाश डरे छे. वनस्पतिना  
आश्रये डीडा, भं डोडा, लभरा, मधुमाभी अने कवूतर आदि धणुंण प्राणीओ निवास डरे  
छे. वृक्षोना अणोलमां पृथ्वीकायना एव पणु डोय छे. आडणुय अप्काय पणु डोय छे.

पृष्ठवानुसारी वायुरपि तत्र संभाव्यते, तदेवं वनस्पतिशस्त्रीभूय दहनो बहुतर-  
जीवान्नाशयतीति सूचनाय भगवता दीर्घलोकशस्त्रशब्दः परिगृहीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यव्वायुवनस्पतिकायानां  
भवस्थितिर्यथाक्रमं द्वाविंशति,-सप्त-त्रि-दश-वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु  
त्रीण्येवाहोरात्राणि । यथा बादराशिकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये  
पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य  
शस्त्रम्=अग्निकायः । अग्निरुत्पाद्यमानः प्रज्वाल्यमानो वा पृथिव्यादिजीवसमूहं  
प्रणिहन्तीति तस्य शस्त्रत्वम् । उक्तञ्च—

पत्तो (कोपलो) का अनुसारी वायु भी वहाँ संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का शस्त्र  
हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिए भगवान् ने  
'दीर्घलोकशस्त्र' शब्द का अग्नि के लिए प्रयोग किया है ।

अथवा—'दीर्घलोकका' अर्थ पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय  
और वनस्पतिकाय की भवस्थिति क्रम से बाईस, सात, तीन और दश हजार वर्ष की है,  
मगर अग्निकाय की तीन रात्रि-दिन ही है । बादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं  
मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः 'दीर्घलोक' शब्द से पृथ्वीकाय आदि  
का ग्रहण करना चाहिए और उनका शस्त्र अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होते  
ही और जलते ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का घात करता है, अतः वह पृथ्वी आदि  
का शस्त्र है । कहा भी हैः—

अने अत्यंत डोमल पत्ता (कुंपणो)ना अनुसारी वायुने पणु त्यां संभव छे. आ  
प्रमाणे अग्नि, वनस्पतिनुं शस्त्र णनी घणुंणु ओवोने विनाश करे छे. आ डुडीकत  
सूत्रववा भाटे लगवाने 'दीर्घलोकशस्त्र' शब्दने अग्नि भाटे प्रयोग कये छे.

अथवा—दीर्घलोकने अर्थ पृथ्वीकाय आदि छे, पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय,  
अने वनस्पतिकायनी भवस्थिति कुमथी आवीस, सात, त्रणु अने दस डुजार वर्षनी  
छे. परन्तु अग्निकायनी त्रणु रात्रि-दिवसणु छे. नेमके-आदर अग्निकायना पर्याप्त  
णुव स्वल्प छे. परन्तु पृथ्वी आदिना पर्याप्त णुव घणुंणु छे. अने भाटे 'दीर्घलोक'  
शब्दथी पृथ्वीकाय आदिनुं त्रडणु करवुं नेछेअ, अने तेनुं शस्त्र अग्निकाय समणुवुं  
नेछेअ. अग्नि उत्पन्न थतांणु अने भणवानी किया थतांणु पृथ्वीआदिना ओवोना  
समूहने घात करे छे. तेथी ते पृथ्वी आदिनुं शस्त्र छे. डह्युं पणु छे डेः—

“भूयाणमेसमाघाओ हव्ववाहो न संसओ” । ( दशवै० ३ अ०गा० ३५ )  
 तस्य खेदज्ञः=खेदयतीति खेदः=अग्नेर्व्यापारः, अग्निव्यापारो हि पृथिव्यादि-  
 जीवानां दहनात्मकतया दुःखमुत्पादयतीत्यतः खेद-शब्देन व्यपदिश्यते, तं  
 जानातीति खेदज्ञः । अग्निकायस्य व्यापारः सर्वप्राणिपीडाकर इति विज्ञाता यः  
 खलु भवति, स एव अशस्त्रस्य=सप्तदशविधसंयमस्य खेदज्ञः=संयमक्षरणजन्य-  
 दुःखानुभावकः, अस्तीति शेषः । अग्निकायव्यापारेण पृथिव्यादिजीवानां  
 विनाशस्तेन संयमक्षरणं, ततश्च मुनित्वविभ्रंश इति सर्वस्वनाशकतयाऽग्निव्यापारः  
 साधूनां ज्ञपरिया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरणीय इति भावः ।

“यह अग्नि भूतों का घातक है, इसमें संदेह नहीं” । (दशवै. ३. अ. गा. ३५)

उस अग्नि के व्यापार को पृथ्वीकाय आदि का खेद कहते हैं, क्यों कि दाहक होने के कारण वह पृथ्वी आदि को दुःख उत्पन्न करता है । उसे जानने वाला ‘खेदज्ञ’ कहलाता है । ‘अग्निकाय का व्यापार सब प्राणियों को पीडा पहुँचाता है’—जो ऐसा जानता वही पुरुष अशस्त्र का अर्थात् सत्तरह प्रकार के संयम के खेद का—संयम के भंग से होने वाले खेद का ज्ञाता होता है । तात्पर्य यह है कि—अग्निकाय के व्यापार से पृथ्वीकाय आदि के जीवों का विनाश होता है, और उससे संयमभंग होता है, और संयम के भंग से मुनिपन का भंग होता है । इस प्रकार अग्निव्यापार सर्वस्व का नाशक होने से वह साधुओं के लिए ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागने योग्य है ।

“आ अग्नि भूतोना घातक छे, अंभां संदेह नथी.” ( दश वै. अ. ३. गा ३५ )

आ अग्निना व्यापारने पृथ्वीकायने जेद कडे छे कारण के दाहक होवाना कारणे ते पृथ्वीआदिने दुःख उत्पन्न करे छे तेने जणुवावाणा ‘जेदज्ञ’ कडेवाय छे. ‘अग्निकायने व्यापार सर्व प्राणीअने पीडा पडोंच्याडे छे.’ जे आ प्रकारे जणु छे तेज पुरुष अशस्त्रने अर्थात् सत्तर प्रकारना संयमना जेदने—संयमना लंगथी धवावाणा जेदने ज्ञाता—जणुनार होय छे. तात्पर्य अे छे के—अग्निकायना व्यापारथी पृथ्वीकाय आदिना लोवोने नाश थाय छे. अने तेथी संयम लंग थाय छे, अने संयमना लंगथी, मुनिपणुं लंग थाय छे. आ प्रभाजे अग्निव्यापार सर्वस्वने नाशक होवाधी साधुअे भाटे ज्ञपरिज्ञाधी जणुने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी त्यागवा योग्य छे.

उक्तमर्थं दृढीकर्तुं विपर्ययेण पुनः कथयति—‘योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः’ इति, व्याख्या पूर्ववत् । ॥ सू० २ ॥

॥ शस्त्रद्वारम् ॥

ननु येन शस्त्रेण वह्निः खिद्यते, तत् केन दृष्टम् ? अपि चाशस्त्रं संयम-  
स्वरूपमिति केन दृष्टम् ?, इति जिज्ञासायामाह—‘वीरेहिं’. इत्यादि ।

मूलम्—

वीरेहिं एय अभिभूय दिष्टं, संजएहिं सया जएहिं सया अप्पमत्तेहिं ॥सू०३॥

छाया—

वीरैः एतद् अभिभूय दृष्टम्, संयतैः सदा यतैः सदा अप्रमत्तैः ॥सू०३॥

इसी बात को दृढ करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि—जो अशस्त्र (संयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकशस्त्र के खेद को जानता है । इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

शस्त्रद्वार—

शंका होती है कि—जिस शस्त्र से अग्नि को खेद होता है वह किस ने देखा है और संयमरूप अशस्त्र किस ने देखा है ? इसके उत्तर में कहते हैं—‘वीरेहिं’. इत्यादि ।

मूलार्थ—परिषह उपसर्ग आदि को जीतनेवाले संयत सदा यतनावान् और सदा अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

आ वातने दृढ करवाना उद्देश्यी इरी भीण इपथी कडे छे के-ने अशस्त्र (संयम)ना जेदने जाणु छे ते दीर्घलोकशस्त्रना जेदने जाणु छे. तेनी व्याख्या प्रथम कडेदी छे ते प्रभाणु समजवी जेधये. (सू २)

शस्त्रद्वार—

शंका थाय छे के ने शस्त्रथी अग्निने जेद थाय छे ते कोणु जेथुं छे ? अने संयमरूप अशस्त्र कोणु जेथुं छे ? तेना उत्तरमां कडे छे—‘वीरेहिं’. इत्यादि.

मूलार्थ—परीषह-उपसर्ग आदिने जितवावाणा, संयत-संयमी सदा यतना-वान् अने सदा अप्रमत्त रहेवावाणा वीरपुरुषोअे ते जेथुं छे. (सू. ३)

## टीका—

वीरैरिति । घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षणानन्तरं लब्धातुलकेवला-  
लोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः । यथा—राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमावृतं स्वकीय-  
मरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते ।  
यद्वा—वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं  
व्यापारयन्तीति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवा-  
निति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति  
वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा—अग्निशस्त्रम्  
अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्टय विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु  
भगवद्वचनैरिति विशेषः ।

टीकार्थ—घातिकाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम  
केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है । उस लक्ष्मी से जो विराजमान है उन्हें वीर कहते हैं ।  
जैसे कोई राजा, चतुरंग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राज्य और विजय की लक्ष्मी  
से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं । अथवा राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं  
को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा भव्य  
जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा  
विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं ।  
ऐसे वीर तीर्थकर गणधर आदि हैं । उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र  
और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है । अर्थ से तीर्थकरों ने और उन के वचनों के अनुसार  
गणधरों ने देखा है ।

टीकार्थ—घाति—कर्मरूपी शत्रुओंना समूहना नाश कर्याना अनन्तर  
अनुपम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त थाय छे. ते लक्ष्मीथी जे विराजमान छे तेने  
वीर कहे छे. जेभ केरि राज, चतुरंग सेनार्थी युक्त (चार प्रकारनी सेना सहित)  
शत्रुओंने हरावीने प्राप्त करेतु राज्य अने विजयरूप लक्ष्मीथी सुशोभित गनी 'वीर'  
कहेवाय छे, अथवा—राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओंने रोक्वावाणाने 'वीर'  
कहे छे. अथवा भव्य जीवोंने विशेषरूपथी मुक्तिनी तरङ्ग प्रेरित करवावाणा 'वीर'  
कहेवाय छे. अथवा विशेषरूपथी ज्ञानाचार आदिनी तरङ्ग भव्य जीवोंने प्रेरित  
करवावाणा 'वीर' कहेवाय छे. जेवा वीर तीर्थकर अने गणधर आदि छे, ते वीरोंने  
अग्निना स्वरूपने अथवा अग्निशस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञानदृष्टिथी जेयां छे. अर्थथी  
तीर्थकरोंने जेयां छे. अने तेमनां वचनो अनुसार गणधरोंने जेयां छे.

किं कृत्वा तैरेतद् दृष्ट ?-मित्याकाङ्क्षायामाह—‘अभिभूय’ इति । परिषहोपसर्गान्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायाख्यघातिकर्म-चतुष्टयं च विजित्य केवलं संप्राप्येत्यर्थः । कथम्भूतैस्तै ?-रित्याह-संयतैः=सम्=सम्यक्प्रकारेण यताः=परमकरुणया ईर्यासमित्यादियतनावन्तस्तैः, सकलषड्जीव-निकायपरित्राणपरायणैरित्यर्थः । यतना द्विविधा-प्रमत्तयतना, अप्रमत्तयतना च । अथ प्रमत्तस्य कीदृशी यतना ? उच्यते-कषायादिनिग्रहिण ईर्याद्युपयोगवत्त्वं प्रमत्तयतना कथ्यते ।

अप्रमत्तयतना कषायरहितवचनसाध्या भवति । अत्र अप्रमत्तग्रहणादि-न्द्रियादिप्रमादवर्जनं गृह्यते । यतनाग्रहणाद् यावज्जीवयतना गृह्यते । अत एव

उन्होंने ने क्या कर के यह देखा है ? इस शंका का उत्तर है-परीषह और उपसर्गों को तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्मों को जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्होंने ने देखा है ।

वे देखने वाले किस प्रकार के थे ? इसका उत्तर यह है-सम्यक् प्रकार से, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदि का पालन करनेवाले अर्थात् समस्त षट्काय की रक्षा में तत्पर थे । यतना दो प्रकार की है-प्रमत्त की यतना और अप्रमत्त की यतना । प्रमत्त की यतना कैसी होती है ? इसका उत्तर यह है कि-कषाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्या आदि में जो उपयोग रखता है, वह प्रमत्तयतना है । अप्रमत्त की यतना कषायरहित वचनो से होती है । यहाँ अप्रमत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादों का त्याग लेना चाहिए । यतना शब्द से यहाँ यावज्जीव यतना का ग्रहण करना चाहिए । अतः

तेमणे शुं करीने ज्ञेयां छे ? आ शंकाणे उत्तर ज्ञे छे परीषड् अने उपसर्गोने तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अने अन्तराय नामना चार घातिया कर्मोने जतीने केवलज्ञान प्राप्त करीने तेमणे ज्ञेयां छे.

ते ज्ञेवावाणा केवा प्रकारना हुता ? तेने उत्तर-सम्यक्प्रकारे, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदिना पालन करवावाणा, अर्थात् समस्त षट्कायनी रक्षां में तेजो तत्पर हुता. यतना जे प्रकारनी छे-प्रमत्तनी यतना अने अप्रमत्तनी यतना. प्रमत्तनी यतना केवी डोय छे ? तेने उत्तर ज्ञे छे के:-कषाय आदिना निग्रह करवावाणा पुरुष, ईर्या आदिमां जे उपयोग राणे छे ते प्रमत्तनी यतना छे. अप्रमत्तनी यतना कषायरहित वचनोथी थाय छे. अहिं अप्रमत्त शब्दथी इन्द्रिय आदि प्रमादोने त्याग देवे जेथे ज्ञे. यतना शब्दथी अहिं अवभात्रनी यतनानु ग्रहण करवुं जेथे. ज्ञे माटे

सद=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्धिः, तथा-सदा=  
सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकषायादिवर्जितैः । एवम्भूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं  
तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः ।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम् ? उच्यते-अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम् । तत् किं-  
स्वरूप ?-मितिचेत्, अवधेहि-अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा-द्रव्य-भावभेदात् । तत्र  
द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात् । स्वकायशस्त्रं-अग्निकायस्या-  
ग्निकाय एव, यथा-तृणाग्निः, पर्णाग्नेः शस्त्रम् । परकायशस्त्रं-धूलिरापश्च, आर्द्रश्च-  
वनस्पतिः, त्रसाः प्राणिनश्च । उभयकायशस्त्रं तुषकरीपादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,

सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय-  
कषाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और  
अशस्त्र को देखा है ।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है ?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है ।  
उसका स्वरूप क्या है ? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि  
शस्त्र दो प्रकार का है । इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र  
और उभयकाय-शस्त्र । अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि,  
पत्ता की अग्नि का शस्त्र है । धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है ।  
गौत्री वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस पाणी भी । तुष ( छिलका ) और करीप

सर्वदा चरण सत्तरी अने करणसत्तरीमां अतिचाररहित यतना करवावाणा तथा  
दुःमेशां विषय-कषाय आदि प्रमादधी रहित वीर पुरुषोऽग्ने अग्निशस्त्रना स्वरूपने  
तथा तेना शस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञेयां छे.

शङ्का—अग्नि शस्त्र अे शुं छे ?

समाधान—अग्निनी विराधना करवावाणुं शस्त्र ते अग्निशस्त्र इडेवाय छे. तेनुं  
स्वरूप डेवुं छे ? ते आ प्रमाणे समज्जे-द्रव्य अने भावना लेदथी अग्निशस्त्र अे प्रकारनां  
छे, तेमांथी द्रव्यशस्त्रना त्रसु लेद छे स्वकायशस्त्र परकायशस्त्र, अने उभयकायशस्त्र.  
अग्निशस्त्रनु स्वकायशस्त्र अग्निव छे. जेम तणुप्यानी अग्नि, पांढडांणी अग्निनुं शस्त्र छे.  
धूल अने पाणी आदि अग्निशस्त्रनु परकायशस्त्र छे. लीली वनस्पति पणु परकायशस्त्र छे.  
अने त्रस प्राणी पणु परकायशस्त्र छे. तुष अने छसु आदिथी भणेदी अग्नि

तप्तोदकादिकं च । भावशस्त्रं तु-अग्निं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपम् । शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादवशादुपभोगार्थमग्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्फलमाह—‘जे’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे प्रमत्ते गुणद्विष्टे से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः ( गुणस्थितः ) स खलु दण्ड इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः=विषयकषायादिप्रमादवशाः सन् गुणार्थिकः भवतीत्यन्वयः । गुणः=अग्निकायकृतोपकारः. स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रन्धन-पचन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनवान् भवति । यद्वा-

(छाणे) आदि से मिली अग्नि तथा गर्म जल अग्नि का उभयकायशस्त्र है । अग्नि के प्रति दुष्ट मन वचन और कायका प्रवर्तन भावशस्त्र है । शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपभोग के निमित्त अग्निकाय के जीवों की विराधना करने वाले को होने वाला फल कहते हैं—‘जे’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थी-रांधना आदि में स्थित-है, वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है । अग्निकाय द्वारा होने वाला उपकार यहां गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थी गुणार्थिक कहलाता है । रांधना, पकाना, उजाला करना आदि अग्नि के गुण है । जो

तथा गरम जल अग्निनु उभयकायशस्त्र छे. अग्नि प्रतिनु दुष्ट मन, वचन अने कायानुं प्रवर्तन ते भावशस्त्र छे, पाकीना द्वार पृथ्वीकायनी समान परापर-समजवा जेधये.(सू ३)

प्रमादने वश थर्ध उपभोगना निमित्ते अग्निकायना अवेनी विराधना करवा वाणाने जे इण थाय छे-भणे छे. ते इण कडे छे. ‘जे’ इत्यादि.

मूलार्थ—जे प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थी-रांधवुं विगेरेमां स्थित-छे ते अनेना माटे दंड कडेवाय छे. (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादोंने आधीन थधने पुरुष गुणार्थी थाय छे. अग्निकाय द्वारा थवावाणो उपकार तेने अर्हि गुण कडेवामां आये छे. आ गुणने अर्थी ते गुणार्थिक कडेवाय छे. रांधवु-पकाववुं, अजवाणुं करवुं आदि अग्निना गुण छे. जे



‘गुणस्थितः’ इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः । स मनोवाक्कायस्य दुष्प्रणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्दनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः ॥ सू० ४ ॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह—‘तं’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिणाय मेधावी इयार्णि णो जमहं पुव्वमकासी पमाणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—

परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन ॥ सू० ५ ॥

पुरुष इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांधने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है, वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारंभ करने के कारण अग्नि के जीवों के दंडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दंड के कारणभूत पुरुष को दंड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की ‘दंड’ इस निंदनीय नाम से प्रसिद्धि होती है ॥ सू० ४ ॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारंभ से वचना चाहिए—‘ते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारंभ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूंगा ॥ सू० ५ ॥

पुरुष आ गुणेषु अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयेषु आसक्तः छे. अर्थात् रांधना आदिने भाटे अग्नि उत्पन्न करे छे, जलाते छे, अने कौनो पक्ष प्रकारे तेनुं हनन करे छे, ते पुरुष पोताना मन, वचन अने कायाना दूषित व्यापारना कारणे तथा अग्निशस्त्रने समारंभ करवाना कारणे अग्निना जीवने दंडका कारणे होवानी दंड कहलाय छे. कारणे कार्योपचारे करे से दंड के कारणभूत पुरुषने पक्ष दंड कहते छे. लोकमें ते पुरुषनी ‘दंड’ आ निंदनीय नामथी प्रसिद्धि थाय छे. (सू. ४)

इवे वतावे छे—पूर्वोक्त कथन जानीने अग्निशस्त्रना समारंभथी वचना करे छे—‘ते’ इत्यादि.

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकायना समारंभने जानी बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे छे—प्रमादना वश वचने में पहलेवां जो किये छे ते इवे नहीं करे. (सू. ५)

टीका—

मेधावी=ग्रहणधारणादिगुणवान्, यद्वा-साधुमर्यादारक्षणे सावधानः, यद्वा-  
हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तस्मै=अग्निकायं, यद्वा तस्मै=अग्निशस्त्रसमारम्भं दण्डनाम-  
फलप्रदं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिज्ञया हेयत्वेन पर्यालोच्य,  
प्रतिजानीते-अहं=मिथ्यात्वादिमलिनान्तःकरणः प्रमादेन=विषयकषायादिप्रमादवशतः  
यस्मै=अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्=अज्ञानावस्थायाम्, अकार्षम्=कृतवान्, यत्तदोर्नित्य-  
साकाङ्क्षत्वात् तस्मै इदानीम्=संप्रति प्रव्रज्यावस्थायाम् नो=नैव करिष्ये इति  
शेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्र-  
समारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा’. इत्यादि ।

टीकार्थ—ग्रहण और धारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्यादा की  
रक्षा करने में सावधान, अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकाय अथवा  
अग्निकाय के समारंभ को जानकर अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से उसे कर्मबंध का कारण समझकर और  
प्रत्याख्यानपरिज्ञा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं—मिथ्यात्व आदि विकारों के  
वश होकर मैंने अज्ञानदशा में अग्निकाय का समारंभ किया था । वह समारंभ अब दीक्षा—  
अवस्था में नहीं करूँगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निशस्त्र का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारो तथा अग्निशस्त्र के समारंभ में  
प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गी पुरुषों को अलग अलग कर के समझाते हैं—‘लज्जमाणा’. इत्यादि ।

टीकार्थ—अहो अने धारणादिक गुणोधी युक्त अथवा साधुओंकी मर्यादाकी  
रक्षा करवाभां सावधान, अथवा हेय अने उपादेयना विवेकभां निपुण पुरुष अग्निकाय  
अथवा अग्निकायना समारंभने लक्ष्मीने अर्थात् ज्ञपरिज्ञाथी तेने कर्मबंधनुं कारण  
समझने अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी हेय-(त्याग्य) समझने आ प्रभावे प्रतिज्ञा  
करे छे-में अज्ञान दशाभां मिथ्यात्व आदि विकारोने वश थधने अग्निकायना समारंभ  
कर्यो हतो; ते समारंभ हवे दीक्षा-अवस्थाभां नहीं करे. (सू. ५)

अग्निशस्त्रने। सर्वथा त्याग करवावाणा अहोकारो तथा अग्निशस्त्रना समारंभभां  
प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गी पुरुषोने अलग-अलग करीने समझवे छे—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि.

## मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेणं, अगणिसत्थं समारंभमाणा अणो अणेगरुवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

## छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूप-  
रूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण, अग्निशस्त्रं समारंभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो  
विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

## टीका—

लज्जमानाः=अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचिता-  
त्मानः, अग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्ष-  
ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः

मूलार्थ—अग्निकाय के आरंभ में संकोच करने वालों को अलग समझो । और 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्निकर्म का समारंभ करने वाले दूसरे (द्रव्यलिङ्गी, अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारंभ में हार्दिक संकोच करने वाले, इसी कारण अग्निशस्त्र के समारंभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधि-  
ज्ञानी हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं । कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

मूलार्थ—अग्निकायना आरंभमां संकोच करवावाणाने अलग समझे, अने  
'अमे अणुगार छीये' अ पणु डडेवावाणा नाना प्रकारनां शस्त्रे द्वारा अग्निकर्मना  
समारंभ करवावाणा पीण (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकारनां प्राणीयोनी हिंसा करे छे. (सू. ६)

टीकार्थ—अत्यन्त दयाना कारणे अग्निकायना समारंभमां हार्दिक संकोच  
करवावाणा, आन् कारणे अग्निशस्त्रना समारंभना त्यागी अलग छे—नूदा छे. अमां  
कोछ अवधिज्ञानी छे, कोछ मनःपर्ययज्ञानी छे, कोछ केवलज्ञानी छे. कोछ परोक्षज्ञानी  
भावितात्मा अणुगार छे. ते सर्व सूक्ष्म अने आदर अग्निकायना समारंभ करवामां

सन्तीति पश्य । इमे सूक्ष्मबादराग्निकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरण-  
त्रियोगैरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेवा-  
ग्निकायजीवरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक्  
=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,  
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावभेदभिन्नैः शस्त्रैः=  
अग्निकायशस्त्रैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

अनगार हैं । ये सब सूक्ष्म और बादर अग्निकाय का समारंभ करने में भीत-डरने वाले हैं,  
त्रस्त हैं, उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्निकाय के समारंभ के त्यागी हैं,  
उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे लोग 'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा  
में तत्पर हैं, महाव्रती हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं,  
उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुओं का तनिक भी कर्तव्य नहीं  
करते और न गृहस्थकार्य का त्याग करते हैं ।

वे लोग तरह-तरह के द्रव्य और भाव रूप अग्निकाय के शस्त्रों से अग्निकर्म का

भीत-भयवान् छे, त्रस्त छे, उद्विग्न छे. अने त्रष्टुकरण, त्रष्टुयोगी अग्निकायना  
समारंभना त्यागी छे, तेने नुओ.

अनाथी विपरीत ( उपर कथा तेनाथी उलटो व्यवहार करनारा ) भीन दोक  
'अमे अणुगार छीअे, अमे अग्निकायनी रक्षां तत्पर छीअे, महाव्रती छीअे.'  
अे प्रभाणु अलिमाननी साथे प्रलाप करे छे ते द्रव्यलिङ्गी छे, तेने अलग समझे.

अणुगार होवानुं अलिमान करवावाणा आ दोक साधुओना जरापणु कर्तव्यने  
करता नथी अने गृहस्थनां कार्येना त्याग करता नथी.

ते दोक तरेह-तरेहुना द्रव्य अने भावरूप अग्निकायना शस्त्रेथी अग्निकर्मने

अग्नि निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मवन्धनिवन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अग्निकायं विहिंसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-  
त्याह—‘अग्निशस्त्र’—मित्यादि । अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं  
द्रव्यभावभेदभिन्नं समारम्भमाणाः=अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसांश्च  
विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—‘वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः  
सर्वारम्भपरित्यागिनः षड्जीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः’इति वदन्तो दण्डि-  
शाक्यादयः सन्ति । ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते ।

आरंभ कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावद्य  
व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते हैं ।

अग्निकाय की हिंसा में प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं,  
यही बतलाते हैं—अग्नि का घात करने वाले—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में  
प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय  
त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । ‘हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का  
त्याग करने वाले और षट्काय के रक्षक अनगार हैं । इस प्रकार कहने वाले दंडी  
शाक्य आदि हैं । वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में  
प्रवृत्ति नहीं करते ।

आरंभ करीने अर्थात् अग्निना निमित्तथी ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंना कारणभूत  
सावद्य व्यापार करीने अग्निकायनी हिंसा करे छे.

अग्निकायनी हिंसाभा प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवोंनी हिंसा करे छे.  
ज्येष्ठ भतावे छे—अग्निने घात करवावाणा—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रने अग्निना  
विषयभां प्रयोग करवावाणा अग्निकाय साथे भीन्न पृथ्वीकाय आदि स्थावरोंनी तथा  
द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोंनी हिंसा करे छे.

संसारभां धर्षांश्च द्रव्यलिङ्गी छे. ‘अमे पञ्चमहाव्रतधारी समस्त आरंभने  
त्याग करवावाणा अने षट्कायना रक्षक अनगार छीये.’ आ प्रकारे कहेवावाणा दंडी  
शाक्य आदि छे. ते चोताने अनगार कहेता त्रस पक्ष लेशमात्र अनगारना गुणोंभां  
प्रवृत्ति करना नथी.

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशाद्यर्थमग्निकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षट्कायजीवविराधका भवन्ति ।

दण्डिनोऽपि-‘ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनवचनाराधका अनगाराः स्मः ’ इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमप्यग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

दृश्यन्ते हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिश्रयादिप्रतिष्ठादौ च धूपदीपहवनादिभिरग्निकर्मसमारम्भं कारयन्तो दण्डिनः एवं कथयन्ति च-स्नानादिना पुष्पैर्धूपैश्च पायसापूपलड्डूकादिभिर्विविधैर्नैवेद्यैश्च प्रतिमापूजा

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के लिए अग्निकर्म का समारंभ करते हैं, कराते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः वे षट्काय के विराधक हैं ।

दण्डी कहते हैं-‘ हम पंचमहाव्रतधारी हैं, जिनवचन के आराधक अनगार हैं ’ । ये साध्वाभास सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्म का समारंभ करवाते हैं ।

शास्त्र के व्याख्यान आदि में, देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिश्रय और प्रतिष्ठा आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निकर्म का आरंभ करवाते हुए दंडी देखे जाते हैं । वे ऐसा कहते हैं-‘ स्नान कराकर पुष्पों से, धूप से, खीर से, पूखा से, तथा लड्डू आदि से, तथा विविध प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करनी

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि भाटे अग्निकर्मने समारंभ करे छे, करावे छे अने करनारने अनुमोदन आपे छे. तेथी ते षट्कायना विराधक छे.

दंडी कहे छे के:-‘ अमे पंचमहाव्रतधारी छीअे, जिनवचनना आराधक आणुगार छीअे. ’ अे साध्वाभास सावद्यने उपदेश आपे छे. अने शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्मने समारंभ करावे छे.

शास्त्रना व्याख्यान आदिमा, देवकुल आदिमा, प्रतिमा प्रतिश्रय तथा प्रतिष्ठा आदिमां धूप, दीप अने हवन आदि द्वारा अग्निकर्मने आरंभ करावता डोय तेवा दंडी जेवामां आवे छे. ते अेभ कहे छे के:-स्नान करावीने, पुष्पोथी, धूपथी, भीरथी, मालपूवा तथा लड्डू आदिथी तथा विविध प्रकारनां नैवेद्यथी प्रतिमान्नी पूजा करवी जेछअे. जिन

કર્તવ્યેત્યાદિ । પુનઃ—જિનસ્ય વામપાર્શ્વે ધૂપઃ સ્થાપનીયઃ, દક્ષિણપાર્શ્વે ઘૃતપૂર્ણઃ પ્રજ્વાલિતઃ પ્રદીપઃ સ્થાપ્યઃ, પાયસાપૂષ્પઘૃતપૂરલઙ્કાદિ નૈવેદ્યમપિ પુનઃ સ્થાપનીય-મિત્યાદિ । તત્ત્વ વિનાગ્નિકર્મસમારંભં નોપપદ્યતે । ઓષધ્યર્થે ક્વાથાદિ, શુષ્ઠિપાકાદિ, પાતુમુષ્ણોદકં, ભોક્તું વિવિધાહારં ચ કારયન્તીતિ ॥ સૂ. ૬ ॥

અથ સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામિનં જગાદ—‘તત્થ’. ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

તત્થ સ્વલુ ભગવયા પરિણા પવેડયા । ઇમસ્સ ચેવ જીવિયસ્સ પરિવંદ્દણ-  
માણણ—પૂયણાણ જાહમરણમોયણાણ દુક્કલ્પલિઘાયહેઉં સે સયમેવે અગ્ગિસત્થં

ચાહિણ । જિન ભગવાન્ કે વૈઈ (ઢાવી) ઓર ધૂપ રખના ચાહિણ ઓર દાહિની (જિમળી) ઓર ઘી સે ભગ જલતા દીપ રખના ચાહિણ । સામને સ્ત્રીર, માલપૂઆ, ઘેવર ઓર લઙ્કાદિ નૈવેદ્ય રખના ચાહિણ ” । યે સવ અગ્નિકર્મ કા સમારંભ કિયે વિના નહીં હો સકતે । વે લોગ ઓષધિ કે લિણ ક્વાથ વગૈરહ, સૌંઠ કા પાક આદિ, પીને કે લિણ ગર્મ જલ ઓર સ્નાને કે લિણ વિવિધ પ્રકાર કે આહાર વનવાતે હૈ ॥ સૂ. ૬ ॥

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામી સે કહતે હૈં—‘તત્થસ્વલુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ઇસ વિષય મેં ભગવાન્ને વોધ દિયા હૈ । ઇસી જીવન કે લિણ, વન્દન, માનના ઓર પૂજા કે લિણ, જન્મ મરણ સે મુક્ત હોને કે લિણ, તથા દુઃખો કા નિવારણ કરને કે લિણ વહ સ્વયં અગ્નિગલ્પ કા આરંભ કરતા હૈ, દૂસરોં સે અગ્નિગલ્પકા

ભગવાનની ડાખી તરફ ધૂપ રાખવો જોઈએ. અને જમણી તરફ ઘીનો ભરેલો બળતો દીપક રાખવો જોઈએ. સામે ખીર, માલપૂવા, ઘેવર અને લાડુ આદિ નૈવેદ્ય રાખવું જોઈએ. એ સર્વ અગ્નિકર્મના સમારંભ કર્યા વિના થઈ શકતાં નથી. તે લોક ઔષધી માટે ક્વાથ વગેરે; સુંકના પાક આદિ, પીવા માટે ગરમ જલ અને ખાવા માટે વિધ-વેધ પ્રકારના આહાર બનાવરાવે છે. (સૂ. ૬)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘તત્થ સ્વલુ’. ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—આ વિષયમાં ભગવાને વોધ આપ્યો છે. આ જીવન માટે વંદન, માનન, અને પૂજાને માટે, જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે તથા દુઃખોનું નિરાકરણ કરવા માટે તે પોતે અગ્નિગલ્પનો આરંભ કરે છે, ખીન પાને અગ્નિગલ્પનો આરંભ કરાવે છે, અને

समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव अग्निशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनायाग्निकायमुपमर्दयती ?—त्याह—‘अस्य चैव जीवितस्ये’

आरंभ करवाता है और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है, सो यह उस के अहित के लिए है, यह अबोधि के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निकाय के समारंभ में श्री महावीरने सम्यक् उपदेश दिया है । आशय यह है कि—कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञाका आश्रय अवश्य लेना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया है ।

उपभोगद्वार—

किस प्रयोजन से लोग अग्निकाय की हिंसा करते हैं यह बतलाते हैं—इसी

अग्निशस्त्रने। आरंभ करवावाणा भीजने अनुमोदन करे छे. ते अनेना (पोताना) अहित भाटे छे, ते अबोधिने भाटे छे. (सू. ७)

टीकार्थ—अग्निकायना समारंभमां श्री महावीरे सम्यक् उपदेश आप्थे छे. आशय अे छे के—कर्मबंधने नाश करवा भाटे अे परिज्ञाने आश्रय अवश्य लेवे। नेछ अे. अेवे। उपदेश आप्थे छे.

उपभोगे द्वार—

क्या प्रयोजनधी लोक अग्निकायनी हिंसा करे छे. अे अतावे छे—आ क्षण्ण-शुर्



त्यादि । अन्यैव क्षणमङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्यनार्थं, धूमयानादिगतिस्त्रिद्वयार्थं चेत्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशवाजी' इति-भाषाप्रसिद्धे क्षणनश्वरस्फुलिङ्गवृष्ट्यादौ, माननं=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन प्रमादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणदौ । पूजनं=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं धूपदीपारात्रिककरणादौ । तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनदौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं शीतापनोदनार्थं ज्वरविषुचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-मृगाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशत्रुम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावगत्वं समारभते=व्यापारयति ।

क्षणमङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, ग्ल आदि चखाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'आतिशवाजी' के लिए जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा कौगह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना । तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एवं विषुचिका दूर करने के लिए डाम देना या तपाना आदि कार्य करने में । इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थी पुरुष स्वयं द्रव्य

उपनना शुभ भाटे, प्रकाश करवा भाटे, योआ आदि रांधवा भाटे, देव आदि यक्षाववा भाटे तथा पोतानी प्रशंसा भाटे, जेमडे-अश्रियंत्रथी क्षणविनश्वर चिन-गारीयो बरसाववा भाटे, अर्थात् 'आतिशवाजी' भाटे, जनसत्कार भाटे, जेम-रत्न वगेरेने प्रसन्न करवाना उद्देश्यी दीपमालिका जगाववी अथवा दीपडोना वृक्षनी रचना करवी, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार प्राप्त करवा भाटे जेम-देवप्रतिमा आदि भाटे धूप-दीप आदि करवुं, तथा जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे जेम-हवन आदिभां, दुःखोने प्रतिहार करवा भाटे जेम-वातरोग हटाववा भाटे, ठंडी हर करवा भाटे तथा ज्वर-ताप अने डोदोर हर करवा भाटे डामवुं-आदि कार्य करवाभां, आ सब प्रयोजनो भाटे आ उपनना शुभना अर्थी पुरुष पोते द्रव्यभाव इय अग्निशत्रुने

अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति । अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अग्निकायसमारम्भणं, तस्य=अग्निकायसमारम्भणं कुर्वतः, कारयितुः, अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति, तथा तत्, तस्य अवोधये=सम्यक्त्वात्वाभाय, भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपेऽग्निकायजीवस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह - 'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुद्धमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अणगा-  
राणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस  
खलु मारे, एस खलु णरण, इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं

भावरूप अग्निशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है । वह अग्निकाय का आरंभ, करने, कराने और अनुमोदन करने वाले के अहित और सम्यक्त्व की अप्राप्ति के लिए होता है ॥ सू० ७ ॥

जिस ने तीर्थङ्कर आदि से अग्निकाय का स्वरूप समझ लिया है वह इस प्रकार विचार करता है:-'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थङ्कर भगवान् या उनके अनगारों से उपदेश सुनकर चारित्र अङ्गीकार कर के विचरता है, वह इस प्रकार सोचता है-संसार में किन्हीं-किन्हीं को ही यह ज्ञान होता है कि-यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है ।

आरंभ करे छे. भील पासे आरंभ करावे छे, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे छे-आ अग्निकायने आरंभ करनार, करावनार अने करनारने अनुमोदन आपनारना अहित अने सम्यक्त्वनी अप्राप्ति भाटे थाय छे. (सू. ७)

नेणु तीर्थंकर आदि पासेथी अग्निकायनु स्वइय समञ्ज दीधुं छे, ते आ प्रमाणे विचार करे छे:-'सेतं' इत्यादि.

मूलार्थ—ने पुरुष तीर्थंकर लगवान अथवा तो तेमना अणुगारे पासेथी उपदेश सांखणी चारित्र अङ्गीकार करीने विचरे छे-ते आ प्रमाणे विचारे छे के:-संसारमां डोध-डोधनेञ् आ लणुवामां डोय छे के-आ ग्रंथ छे, आ मोह छे, आ मार-मृत्यु छे.

अग्निकर्मसमारम्भेणं अग्निसत्त्वं समारम्भमाणे अण्णे अणोगरूवे पाणे विहितसह  
॥ सू० ८ ॥

हाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा  
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष  
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण  
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा  
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावधयोगविरतिरूपं चारित्र्यं  
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहितावोधि-  
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता  
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश  
मुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र्य को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के  
समारंभ को अहितकर और अवोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

आ नरक छे. गृद्धलोक नाना प्रकारना शस्त्रोथी अग्निकर्मनो समारंभ करीने अग्नि  
शस्त्रनो व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे. (सू. ८)

टीकार्थ—जे पुरुष लगवान तीर्थङ्कर अथवा तेभना अणुगारोनी समीप  
उपदेश झालणीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्र्यनो स्वीकार करीने विचरे छे. ते  
अग्निकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिकर समझ दे छे.

ते आ प्रभाह्ने विश्वादे छे केः—आ मनुष्य लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशथी

संजातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्यिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?  
-त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः-ग्रध्यते=बध्यतेऽनेनेति-  
ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव  
कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः  
मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-  
एष नरकः=नरकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थं=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है. उन आत्मार्यी पुरुषो को ही विदित होता है ।  
क्या विदित होता ? सो कहते हैं—'यह ग्रन्थ है' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य  
का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ  
कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समजना चाहिए । तथा यह अग्निसमारंभ मोह  
है-विपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है-नरक  
की दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानो

नेने सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य उत्पन्न थई गयो छे, ते आत्मार्यी पुद्घेनेन नलुवामां  
डोय छे. शुं नलुवामां डोय छे? ते डडे छे—'आ ग्रंथ छे.' आदि.

आ अग्निशस्त्रेन आरंभ निश्चय-नक्षीन आठ प्रकारना कर्मबंध छे. कारणमां  
कार्येन उपचार करवाधी अग्निशस्त्रना समारंभनेन कर्मबंध कही छे. वास्तविक रीते  
आ समारंभ कर्मबंधनु कारण छे. आ प्रभाषे आगण पणु समलु लेवुं लेधये. तथा  
आ समारंभ मोह छे-विपर्यास-अज्ञान छे, तथा आ समारंभ मृत्युरूप छे-निगोद  
आदि मरणरूप छे. अने आ नरक छे-नरकनी दस प्रकारनी यातनाओनु स्थान छे.

कर्मबंध, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थ-  
मेव प्रवर्तते इति शेषः ।

अयं भावः—भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूज-  
नार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं खलु  
कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, तस्मादाग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं  
बोध्यमिति ।

‘लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ?  
इति जिज्ञासायामाह—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

जीव वार-वार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा भोगों का अभिलाषी संसारी जीव इस  
कर्मबंध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं ।

तात्पर्य यह है—भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के  
लिए, बंदना, मानना और पूजा के लिए जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए और दुःख का  
प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारंभ करता है और फलस्वरूप कर्मबंध, मोह,  
मरण और नरक रूप फल पाता है । अत एव अग्निशस्त्र के समारंभ का फल वही बंध  
आदि समझना चाहिए ।

‘लोक वार-वार कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है’ यह जो कहा है सो  
कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

अज्ञानी एव वार-वार तेनीज् इच्छा करे छे. अथवा-लोगोना अलिदाषी संसारी  
एव आ कर्मबंध, मोह, मरण् अने नरक भाटेज् प्रवृत्त थाय छे.

तात्पर्य् अे छे-लोगोना अलिदाषी भाषुसे शरीर आदितुं पोषण् करवा भाटे  
बंधना, मानना अने पूजने भाटे, जन्ममरण्थी मुक्त थवा भाटे अने दुःखने  
प्रतिकार करवा भाटे अग्निशस्त्रने समारंभ करे छे अने इलस्वरूप कर्मबंध, मोह,  
मरण् अने नरकश्य इलने प्राप्त करे छे. अेटला भाटे अग्निशस्त्रना समारंभतुं इल  
ते बंध आदि समज्वां जेछ् अे.

दोउ वार-वार कर्मबंध वगेरे भाटेज् प्रवृत्ति करे छे. अेवुं ने कहुं ते केवी  
रीते जलुवामां आण्युं ? आ प्रभात्ते एज्जासा थवाथी कहे छे—

केमटे ते नाना प्रकारना पूर्वोक्त शस्त्रोधी अग्निनी विराधना करवावाणा नावध

समारम्भेण=अग्न्युपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमम्=अग्निकायं विहिनस्ति । तथा अग्निशस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्रं समारभमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहिंसन्ति ? तत्प्रति-बोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह-‘ से वेमि ’. इत्यादि ।

### मूलम्—

से वेमि-संति पाणा पुढवीनिस्सिया तणनिस्सिया पत्तनिस्सिया कट्ट-निस्सिया गोमयनिस्सिया कयवरनिस्सिया, संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति, अग्णिं च खलु पुट्टा एगे संघायमावज्जंति, जे तत्थ संघायमावज्जंति,

सावद्य व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करता है और अग्निकाय का आरंभ करता हुआ अन्य पृथ्वीकाय आदि नाना प्रकार के स्थावर एवं त्रस प्राणियों का घात करता है ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले अनेक प्रकार के जीवों की विराधना किस प्रकार करते हैं । यह समझाने के लिए श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं:-‘ से वेमि. ’ इत्यादि।

मूलार्थ—वही मैं कहता हूँ—जीव पृथिवी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित हैं, पत्तों के आश्रित हैं, काष्ठ के आश्रित हैं गोबर के आश्रित हैं, कचरे के आश्रित हैं; संपात्तिम जीव अचानक आकर अग्नि में पड जाते हैं, कोई-कोई अग्नि को छूकर सिकुड

व्यापार करीने अग्निकायनी हिंसा करे छे. अने अग्निकायनो आरंभ करवा साथे अन्य पृथ्वीकाय आदि नाना प्रकारना त्रस लुवो अे प्रमाणे स्थावर प्राणीअेनो घात करे छे. (सू. ८)

अग्निशस्त्रनो आरंभ करवावाणा अनेक प्रकारना लुवोनी विराधना कथा प्रकारं (डेवी रीते) करे छे ? ते समजववा भाटे, श्री सुधर्मा स्वामी कहे छे:-‘ से वेमि ’ इत्यादि.

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—लुव पृथ्वीना आश्रित छे. तृणने आश्रित छे. पत्तां-पांढराने आश्रित छे. लाकडांने आश्रित छे. छाणुने आश्रित छे. कचराने आश्रित छे. संपात्तिमलुव अचानक आवीने अग्निमां पडी जय छे. जे सँकैआर्थ जय छे. ते

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उदायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि—सन्ति प्राणाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति संपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः । 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि-कुन्धु-पिपी-लिका-भुजङ्गम-मण्डूक-वृश्चिक-कर्कटकादयो गृह्यन्ते । तथा च पृथिवीकायिकास्तदाश्रितास्त्वसाश्चेत्यर्थः, वृक्षलतादयश्च । तथा-तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

जाते हैं; जो सिकुड जाते हैं वे मूर्च्छित हो जाते हैं और जो मूर्च्छित हो जाते हैं वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ—पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं । जैसे—कृमि, कुन्धुवा, विउंटी, साप, मेंढक, बिच्छु, कैकडा, आदि । अतः पृथिवी आश्रित का अर्थ यहाँ पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए । वृक्ष और वेल आदि भी इसी में सम्मिलित हैं । तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकाय के

मूर्च्छित थर्ड नय छे, अने ने मूर्च्छित थाय छे ते भरी पणु नय छे. (सू. ९)

टीकार्थ—अग्निकायनी हिंसाथी वणुअ प्रकारना एवेनो घात थाय ते हुं ठहुं धुं-पृथ्वीना आश्रये रहवावाणा एव पृथ्वीकायैनी साथे णीन्त पणु वणु छे. नेम कृमि कुंधवा, डीडीओ, साप, देउकां, वींछी केकडा आदि. ओ धारणुथी पृथ्वीआश्रितने अर्थ अहिं पृथ्वीकायिक स्थावर तथा त्रस एव लेवा नेछिओ. वृक्ष अने वेल-वेल आदि पणु तेमां सम्मिलित छे. तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकायना एव अने तृणना आश्रये रहवा-

तृणमाश्रित्यावस्थायिनः मशककीटतृणजलौकादयश्च, तथा-पत्रनिश्रिताः=वनस्पति-  
कायिकाः पत्रमाश्रित्य निवासिनः पिपीलिकाभेदाः 'घोडन' इति मगधदेशे प्रसिद्धाः,  
कीटपतङ्गनीलङ्गुप्रभृतयश्च, तथा-काष्ठनिश्रिताः काष्ठं शरणीकृत्य स्थिताः घुणोद्दे-  
हिका-तदण्डादयः, अत्र काष्ठं शुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते । तथा-गोमयनिश्रिताः  
=गण्डूपदभूमिस्फोटादयः । तथा कचवरनिश्रिताः-कचवरः शुष्कतृणपत्ररजःसमुदा-  
यरूपः, तं निश्रिताः=समाश्रिताः कृमिकुन्थुकीटादयः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति ।

तथा-संपातिमाः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः दंशमशकम-  
क्षिकापतङ्गपक्षिपवनादयः सन्ति । एते संपातिमा आहत्य=अग्निशिखाकृष्ठाः स्वय-  
मेवोपेत्य, अग्नौ संपतन्ति ।

जीव और तृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीड़े और घास की जलोक (जौंक) आदि  
तृण-निश्रित कहलाते हैं । पत्तों के सहारे रहने वाले मगध देश में प्रसिद्ध घोडन तथा  
कीट, पतंग एवं नीलंगु (लट) आदि जीव हैं । धुन, उदई और उनके अण्डे आदि  
काठ के सहारे रहने वाले जीव काष्ठनिश्रित कहलाते हैं । यहाँ 'काष्ठ' शब्द से सूखा  
ईधनरूप काठ और गीला काठ, दोनों समझने चाहिए । तथा गोवर के आश्रित गिंडीला और  
भूमिस्फोटक (भूफोड) आदि जीव हैं । इसी केकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुंथुवा  
तथा कीड़ा वगैरह, ये सब प्राणी हैं ।

उड-उड कर गिरने वाले डांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन आदि  
संपातिम जीव कहलाने हैं । ये संपातिम जीव आग की शिखा से स्वयं आकर्षित हो कर  
आग में गिर जाते हैं ।

वाणा मच्छर, कीड़ा अने घासनी जणो आदि, तृणु आश्रित उडेवाय छे. पत्तां-पांढडांन  
आश्रये रहेवावाणा मगधदेशमां प्रसिद्ध घोडन तथा कीट पतंग अने नीलंगु (लट) आदि  
जुव छे. धुणु उधेध अने तेनां धंडां आदि-लाकडाना सहारे रहेवावाणा जुव काष्ठनिश्रित  
उडेवाय छे. अडि काष्ठ शब्दथी सूडां लाकडांरूप काष्ठ अने लीलां काष्ठ, आ अन्ने समज्वां  
जेधये, तथा छाणुमां आश्रय करीने रहेलां गिंडोणा अने लूङ्गोडा आदि जुव छे. आ  
प्रमाणे क्यराना आश्रये रहेवावाणा कृमि, कुंथुवा तथा कीड़ा वगेरे, आ सर्व प्राणी छे.

उडी-उडीने पडवावाणा डांस, मच्छर, माप्पी, पतंग, पक्षी अने पवन आदि  
संपातिम जुव उडेवाय छे. ये संपातिम जुव आगनी-अजिनी शिखाथी पोते  
आकर्षित थधने अग्निमां पडी जाय छे.



अग्निकायसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दना-  
दिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह—अग्निं चेत्यादि ।

एके—केचित् प्राणिनः, अग्निम्=समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निकायं स्पृष्टाः  
स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तारि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=  
अग्नौ पतित्वा ये जीवाः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापाभिभूता मूर्च्छा  
प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान्  
परित्यजन्ति । अग्निसमारम्भेण केवलमग्निकायविराधना न भवति, अपितु सर्वदिकू-  
संचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति  
भावः । अत एवोक्तं भगवता—

अग्निकाय का आरंभ करने से पृथिवी आदि में आश्रित स्थावरों और त्रस जीवों का  
विराधन किस प्रकार होता है ? सो कहते हैं ।

कोई—कीई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पंख  
वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव संघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से  
मूर्च्छित हो जाते है । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते है । अग्नि का समारंभ  
करने से केवल अग्निकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् समी दिशाओं में संचार करने  
वाले - त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए  
भगवान् ने कहा है:—

अग्निकायने आरंभ करवाथी पृथ्वीआदिमां आश्रय करीने रडेलां स्थावरो अने  
त्रस एवोनी विराधना ने प्रकारे थाय छे, ते डडे छे—

कोई—कोई प्राणी भजती अग्निने स्पर्श करीने संकोचाथ नय छे. तेनी  
पांओ वगेरे णणी नय छे. अग्निमां पडीने ने एव संघातने प्राप्त थाय छे ते  
गरभीथी मूर्च्छित थथ नय छे. अग्निमां पडवावाणा एव ने मूर्च्छित थथ नय छे ते  
पोताना प्राण्य पण्य जोथ नाणे छे. अग्निने समारंभ करवाथी केवल अग्निकायनी  
विराधना थती नथी, परन्तु सर्व दिशाओमां संचार करवावाणा त्रस अने धण्णं  
स्थावर एवोनी पण्य हिंसा अवश्य थाय छे. अे भाटे भगवाने कहुं छे—

“जायतेयं न इच्छन्ति, पावकं जलइत्तए ।  
 तिक्रवमन्नयरं सत्थं, सव्वओवि दुरासयं ॥ १ ॥  
 पाईणं पडिणं वावि, उद्धं अणुदिसामवि ।  
 अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओवि य ॥ २ ॥  
 भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ ।  
 तं पईवपयावट्ठा, संजओ किंचि नारभे ॥ ३ ॥” (दशवै. ० अ. ६)

छाया—जाततेजसं नेच्छन्ति, पावकं ज्वालयितुम् ।  
 तीक्ष्णमन्यतरत् शस्त्रं, सर्वतोऽपि दुरासदम् ॥ १ ॥  
 प्राच्यां प्रतीच्यां वापि, ऊर्ध्वमनुदिक्ष्वपि ।  
 अधो दक्षिणतो वापि, दहेदुत्तरतोऽपि च ॥ २ ॥  
 भूतानामेष आघातो, हव्यवाहो न संशयः ।  
 तं प्रदीपप्रतानार्थं, संयतः किञ्चिन्नारभेत ॥ ३ ॥

“साधु अग्नि को जलाने की इच्छा तक नहीं करते, क्यो कि वह एक बड़ा ही तीखा शस्त्र है, जो किसी भी ओर से दुस्सह है—सभी ओर से जलाता है ॥१॥

यह अग्निशस्त्र पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और विदिशाओं की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी जलाता है ॥२॥

अग्नि जीवों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है । साधु दीपक जलाने तथा प्रतापने के लिए उस का जरा भी आरंभ नहीं करते ॥३॥ (दशवै. अध्या. ६)

फिर भी कहा है—

“साधु अग्निने सणगाववानी धम्भा सुधी करता नथी, कारुषु ते अेक महान तीक्ष्ण शस्त्र छे. ते कोधपिणु आणुथी दुस्सह छे—आरेय तरइथी आणे छे.” ॥ २ ॥

आ अग्निशस्त्र पूर्वथी पणु अने पश्चिमथी पणु उपरथी अने विदिशाओनी तरइथी पणु नीचेथी अने दक्षिणथी पणु अने उत्तरथी पणु आणे छे. ॥ २ ॥

अग्नि लोवोना घातक छे, तेमां कांध पणु संशय नथी. साधु दीपक सणगाववा तथा तापवाने माटे तेना जरा पणु आरंभ करता नथी.” ॥ ३ ॥ (दशवै. अध्या. ६)

इरी पणु कडे छे—

“દો પુરિસા સરિસવયા અન્નમન્નેહિં સદ્ધિં અગ્નિકાયં સમારંભંતિ, તત્થ ણં એગે પુરિસે અગ્નિકાયં સમુજ્જાલેતિ, એગે વિજ્જવેતિ, તત્થ ણં કે પુરિસે મહાકમ્મયરાણ ? કે પુરિસે અપ્પકમ્મયરાણ ? ગોયમા ! જે ઉજ્જાલેતિ સે મહાકમ્મયરાણ, જે વિજ્જવેતિ સે અપ્પકમ્મયરાણ ” ॥

છાયા—દ્વૌ પુરુષૌ સદશવચસ્કૌ અન્યાન્યાભ્યાં સાર્દ્ધં અગ્નિકાયં સમારંભેતે, તત્ર સ્વલુ એકઃ પુરુષઃ અગ્નિકાયં સમુજ્જ્વાલયતિ, એકો વિધ્યાપયતિ, તત્ર સ્વલુ કઃ પુરુષઃ મહાકર્મતરકઃ ? કઃ પુરુષઃ અલ્પકર્મતરકઃ ? । ગૌતમ ! યઃ (અગ્નિ) ઉજ્જ્વાલયતિ સ મહાકર્મતરકઃ, ય (અગ્નિ) વિધ્યાપયતિ સ અલ્પકર્મતરકઃ ( ભગવતી સૂત્ર૦ ) ॥ સૂ૦ ૯ ॥

તદેવમગ્નિકાયહિંસયા વહુતરજીવોપમર્દનં ભવતીતિ વિદિત્વા ત્રિકરણ-ત્રિયોગૈઃ કૃતકારિતાનુમોદિતૈશ્ચાગ્નિશસ્ત્રસમારંભો વર્જનીય इत्याह—‘एत्थ सत्थं’ इत्यादि ।

“સમાન ઉમ્મ વાલે દો પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાય કા આરંભ કરતે હૈં । એક પુરુષ અગ્નિકાય કો જલાતા હૈં ઓર એક બુઝાતા હૈં । ઇન મેં સે કૌન-સા પુરુષ મહાકર્મ વાંધતા હૈં ? ઓર કૌન અલ્પકર્મ વાંધતા હૈં ? । હે ગૌતમ ! જો અગ્નિ જલાતા હૈં વહ મહા કર્મ વાંધતા હૈં ઓર જો અગ્નિ બુઝાતા હૈં વહ અલ્પ કર્મ વાંધતા હૈં” (ભગવતીસૂત્ર.) ॥ સૂ૦ ૯ ॥

इस प्रकार अग्निकाय की हिंसा होती है, यह जानकर तीन करण, तीन योग से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से अग्निशस्त्र का समारंभ त्याग देना चाहिए, यही बात कहते हैं—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

“સમાન ઉમરવાળા જે પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાયને આરંભ કરે છે. એક પુરુષ અગ્નિકાયને સળગાવે છે. બાજે છે અને એક ખુઝાવે-ઓલવે છે. તે બેમાંથી કયો પુરુષ મહા કર્મ બાંધે છે. અને કોણ અલ્પ કર્મ બાંધે છે ? હે ગૌતમ ! જે અગ્નિ સળગાવે છે-બાજે છે તે મહા કર્મ બાંધે છે. અને જે અગ્નિ ખુઝાવે છે. તે અલ્પ કર્મ બાંધે છે.” (ભગવતી સૂત્ર.) ( સૂ. ૯ )

આ પ્રમાણે અગ્નિકાયની હિંસાથી ઘણા પ્રકારના છુવોની હિંસા થાય છે. એ જાણી કર્મને ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી તથા કરવું, કરાવવું અને અનુમોદનાથી અગ્નિશસ્ત્રને સમારંભ ત્યજ દેવો જોઈએ, એજ વાત કહે છે—‘एत्थ सत्थं.’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभेज्जा, नेवऽण्णेहिं अगणि—सत्थं समारंभावेज्जा अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणु जाणिज्जा जस्सेते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति, से ह्मु मुणी परिण्णायकम्मि—त्ति वेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उद्देशो समत्तो ॥ १-४ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारंभेत नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारंभयेत्, अग्निशस्त्रं समारंभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा—इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ १-४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् अग्निकाये, शस्त्रं द्रव्यभावरूपं प्रागुक्तं :समारंभमाणस्य=

मूलार्थ—अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाला इन आरंभो को नहीं जानता । अग्निशस्त्र का आरंभ न करने वाला इन आरंभो को जानता है । इन्हे जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से अग्निशस्त्र का आरंभ न करावे और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वालो की अनुमोदना न करे । जो इन समारंभो का ज्ञाता होता है वही मुनि परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं (भगवान् के कथानानुसार) कहता हूँ ॥सू० १०॥

टीकार्थ—अग्निकाय में द्रव्य और भावरूप पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार करने

भूतार्थ—अग्निशस्त्रनो आरंभ करवावाणा ये आरंभोने न्णत्थुता नथी अग्नि-शस्त्रनो आरंभ नहिं करवावाणा ये आरंभोने न्णत्थु छे. तेने न्णत्थुने बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्रनो आरंभ न करे, भीन्त पासे अग्निशस्त्रनो आरंभ करवावे नहिं. अने अग्निशस्त्रनो आरंभ करवावाणाने अनुमोदत आपे नहिं. जे आ समा-रंभोना ज्ञाता—न्णत्थुकार होय छे ते मुनि परिज्ञातकर्मा छे. ये अभात्ते हुं (भगवानना वचनानुसार) उहुं छुं. (सू. १०)

टीकार्थ—अग्निकायमा द्रव्य अने भावरूप पूर्वोक्त शस्त्रनो व्यापार (व्ययोग)

व्यापारयतः, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=अष्टविधकर्मबन्धकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अष्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति—‘तत् परिज्ञाये’—त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धाय भवती’—त्येवमवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, साधुमर्यादावधानशील इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन—पाचन आदि पापमय कार्य करने वाले को यह ज्ञान नहीं होता कि—यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बंध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावध व्यापारो का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं—अग्निकाय का आरंभ कर्मबंध का कारण है, यह जानकर हेय—उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ नहीं करता, दूसरों से

करवावाणाने अर्थात्—पचन—पाचन आदि पापमय कार्य—करवावाणाने से ज्ञान डोटुं नथी के आ कार्य आठ प्रकारनां कर्मोनां बंधनुं कारणु छे. कारणु के अग्निशस्त्रनां शस्त्रेना प्रयोग करवावाणाओमां परिज्ञाने अभाव डोय छे.

अग्निशस्त्रेना पूर्वोक्त शस्त्रेना व्यापार—उपयोग नहि करवावाणाने सावध व्यापारेणुं ज्ञान डोय छे. ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने नह्ये छे, अने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेने त्याग करी आये छे.

ज्ञपरिज्ञानी पठी प्रत्याख्यान परिज्ञा क्या प्रकारे उत्पन्न थाय छे ? ते डहे छे—अग्निशस्त्रेना आरंभ कर्मबंधनुं कारणु छे. से प्रभाणु नह्यीने हेय—उपादेयना विवेकमा प्रवीणु—कुशल साधुमर्यादानु ध्यान राभवावाणा पोते अग्निशस्त्रेना आरंभ करता नथी; पीवत पागे आरंभ करवता नथी, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन

समारम्भमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । शेषं सुगमम् । यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः=कर्मणां समारम्भाः कर्मसमारम्भाः, अग्नेः कर्मसमारम्भाः अग्निकर्म-समारम्भाः=अग्निं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः उपमर्दनव्यापारा इत्यर्थः, परिज्ञाताः=सर्वथा ज्ञाताः, ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परि-वर्जिता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपतो विपाकतस्त-दुपादानतश्चावगतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावद्यव्यापाराः येन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाक्यायैः सकलसावद्यकरणकारणानुमतिनिवृत्तो मुनिर्भवती-त्यर्थः । 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम् ।

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने  
चतुर्थोद्देशकः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं कराता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता । शेष भाग सुगम हैं । अग्नि के निमित्त से होने वाले तथा कर्मबंध के कारणभूत यह सब पापमय व्यवहार जिस ने कर्मबंध के कारण ज्ञपरिज्ञा से समझ कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिये है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । जिसने इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण ज्ञपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञात-कर्मा मुनि कहते हैं । ऐसा मुनि मन, वचन काय से समस्त सावद्य के करने, कराने और अनुमोदन करने का त्यागी होता है । 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए ॥सू० १०॥

श्रीआचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवादमें  
प्रथम अध्ययनका चौथा उद्देश संपूर्ण ॥ १-४ ॥

आपता नहीं, शेष-आधीना भाग सुगम है.

अग्निना निमित्तथी शवावाणा तथा कर्मबंधना कारणभूत आ सर्व पापमय व्यवहारने जेहे कर्मबंधना कारणे ज्ञपरिज्ञाथी समझने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी आये छे तेने परिज्ञातकर्मा मुनि कहे छे. एवा मुनि-मन, वचन, कायाथी समस्त सावद्यने करवुं, करावुं अने अनुमोदन करवुं तेना त्यागी होय छे 'इति ब्रवीमि'नी व्याख्या प्रथमना समान समझ लेवी जेधये. (सू. १०)

श्री आचाराङ्गसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना  
गुजराती-अनुवादमां प्रथम अध्ययनने  
चौथा उद्देशक संपूर्ण. (१-४)

अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशोऽग्निकायस्वरूपं मुनित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम् । साम्प्रतं तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—‘तं णो’ इत्यादि ।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनं कथं न प्रक्रम्यते ? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा झटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्ये-केन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है । इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसंग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरंभ करते हैं—‘तं णो.’ इत्यादि ।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है ? और वायुकाय को छोड़कर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—वात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है । इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती । हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा । गुरुजन वही क्रम काम में लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

पञ्चम उद्देशक—

चौथा उद्देशकमां साधुता प्राप्त करवाने भाटे अग्निकायनु स्वरूप समझव्युं छे. आ भाटेउ उम अनुसार वायुकायनु स्वरूप समझववाना प्रसंगे वनस्पतिकायनु स्वरूप बताववाने भाटे पांचमा उद्देशकने आरंभ करे छे—‘तं णो.’ इत्यादि.

प्रश्न—उम प्रमाणे वायुकायनु स्वरूप शा भाटे बताव्युं नथी ? अने वायुकायने छोडीने वनस्पतिकायना विवेचनमां कथे उद्देश्य छे ?

उत्तर—वात अे छे उे—वायुकाय नेत्रथी प्रत्यक्ष जेवामा आवते। नथी. मात्र स्पर्शेन्द्रियथी तेनी प्रतीति धाय छे. आ डारखुथी तेना विषयमां नइती श्रद्धा यती नथी. हा, पृथ्वीकाय आदि अेकेन्द्रिय लयेनुं स्वरूप समझ लीधा पथी वायुकाय सहजे समझवामां आवी नथे. गुरुजन आ कने काममां लावे छे, जे वटे करी शिष्य लवादि

स्वयमेवोत्सहन्ते, तस्माद् वायुकायस्वरूपमनभिधाय वनस्पतिकायः प्रथमं प्रस्तूयते—  
'तं णो.' इत्यादि ।

यद्वा—अनन्तरचतुर्थोद्देशेऽग्निकायो दीर्घलोकशस्त्रशब्देनादौ प्रतिबोधितः ।  
तत्र दीर्घलोकशब्दार्थो वनस्पतिरित्याशयं समधिगम्याग्निकायप्रकरणसमाप्त्य-  
नन्तरं प्रथमं वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञातुकामस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय पञ्चमं  
वनस्पतिकायोद्देशं कथयति—'तं णो.' इत्यादि ।

यथा वनस्पतिकायोपमर्दननिवृत्त्याऽनगारत्वं लभ्यते, तं प्रकारं निर्दिशति—  
'तं णो.' इत्यादि ।

तत्त्वों के ज्ञान में उत्साहित हों । यही कारण है कि पहले वायुकाय का स्वरूप न कह कर  
वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है—'तं णो.' इत्यादि ।

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निकाय को 'दीर्घलोकशस्त्र' बतलाया है । दीर्घलोकका  
अर्थ वनस्पतिकाय है, यह आशय जानकर अग्निकाय के प्रकरण के पश्चात् ही शिष्य को  
वनस्पतिकाय का स्वरूप जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है । जिज्ञासा के अनुरूप  
दिया हुआ उपदेश ही अधिक सफल होता है, अतः शिष्य की जिज्ञासा तृप्त करने के  
लिए पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का कथन किया जाता है—'तं णो.' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसा से निवृत्त होने पर ही साधुता प्राप्त होती है, वह किस प्रकार  
प्राप्त होती है ? सो कहते हैं—'तं णो.' इत्यादि ।

तत्त्वोना ज्ञानमां उत्साहित थाय. आ कारणुथी प्रथम वायुकायना स्वरूपने नहिं कहेतां  
वनस्पतिकायनुं वणुंन करवामां आण्युं छे—'तं णो.' इत्यादि.

अथवा—चौथा उद्देशकमां अग्निकायने 'दीर्घलोकशस्त्र' तरीके अताण्युं छे.  
दीर्घलोकने। अर्थ वनस्पतिकाय छे; अे आशयने समञ्जने अग्निकायना प्रकरणुनी पछीज  
शिष्यने वनस्पतिकायना स्वरूपने जणुवानी इच्छा होय—थवी ते स्वाभाविक छे. ज्ञासाने  
अनुत्प आयेवे। उपदेशज अधिक सकल थाय छे, अे कारणुथी शिष्यनी ज्ञासा तृप्त  
करवामे भाटे पांचमा उद्देशमां वनस्पतिकायनुं विवेचन करवामां आवे छे—'तं णो.' इत्यादि.

वनस्पतिकायनी हिंसाथी निवृत्त थया पछीज साधुता प्राप्त थाय छे, ते कथा  
प्रकारे प्राप्त थाय छे. ते कहे छे—'तं णो.' इत्यादि.



મૂલમ્—

તં ણો કરિસ્સામિ સમુદ્ઘાએ મત્તા મહમં, અમયં વિદિત્તા તં જે ણો કરણ,  
એસોવરણ એત્થોવરણ, એસ અણગારેત્તિ પવુચ્ચઈ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—

તં નો કરિષ્યામિ સમુત્થાય મત્વા મતિમાન્, અમયં વિદિત્વા તં યો નો કુર્યાત્,  
એપ્પ ઉપરત્તઃ અત્તોપરત્તઃ, એપ્પઃ અનગાર ઇતિ પ્રોચ્યતે ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—

મતિમાન્=મેધાવી શ્રમણનિર્ગન્થાદિદેશનાશ્રમણસંજાતહેયોપાદેયવિવેકવા-  
નિત્યર્થઃ । મત્વા=વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાય વિભાવયતિ—અહં સમુત્થાય  
આત્મકલ્યાણાર્થમુદ્યુક્તઃ સન્ પ્રવ્રજ્યાં ગૃહીત્વા, તં=વનસ્પતિકાયસમારમ્ભં નો  
કરિષ્યામીતિ ।

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિએ ઉદ્યત્ત હોકર  
વનસ્પતિકાય કા આરંભ નહીં કરૂંગા । જો પુરુષ સંયમ કો જાનકર આરંભ નહીં કરતા હૈ  
વહી આરંભ સે ઉપરત્ત હૈ—વહી જિન શાસન મૈ આરંભ સે નિવૃત્ત કહલાતા હૈ । વહી અનગાર  
કહલાતા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિ કા ઉપદેશ સુનને સે જિસે હેય ઓર ઉપાદેય કા  
વિવેક ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ વહ વનસ્પતિકાય કા સ્વરૂપ જાનકર ઇસ પ્રકાર વિચાર  
કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિએ ઉદ્યત્ત હોકર—દીક્ષા ઠેકર વનસ્પતિકાય કા આરંભ  
સમારંભ નહીં કરૂંગા ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરે છે—હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને  
વનસ્પતિકાયને આરંભ નહિ કરું. જે પુરુષ સંયમને જાણીને આરંભ કરતા નથી  
તે આરંભથી ઉપરત્ત છે, તેજ જિનશાસનમાં આરંભથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ  
અનગાર કહેવાય છે. ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિને ઉપદેશ સાંભળવાથી જેને હેય અને  
ઉપાદેયને વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે. તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ  
પ્રભાણે વિચાર કરે છે:—

હું આત્મકલ્યાણને માટે ઉદ્યત્ત—તૈયાર થઈને—દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયને આરંભ  
સમારંભ કરીશ નહિ.

अस्योद्देशस्य वनस्पतिकायविषयकतयाऽत्र तच्छब्देन वनस्पतिकायसमारम्भः परिगृह्यते । अत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं तत्समारम्भवर्जनप्रतिज्ञाप्रदर्शनेन ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष इति प्रतिबोधितम् । यः अभयं-नास्ति भयं यस्मात् कस्य चित् प्राणिनः इत्यभयः=सर्वप्राणिप्राणत्राणलक्षणः संयमः, तं-विदित्वा तं=वनस्पतिकाय-समारम्भं नो कुर्यात् । एषः उपरतः=वनस्पतिजीवविषये सर्वथा समारम्भाद् विनिवृत्तः, अत्र=अस्मिन् जिनशासने उपरतः प्रोच्यते, इत्यन्वयः । तथा एषः=पूर्वोक्तलक्षण उपरतः 'अनगारः' इति प्रोच्यते । अनगारगुणानां संपूर्णतया तत्र सत्त्वात्, स एवानगारशब्दवाच्योऽस्तीति भावः ।

अथ वनस्पतिकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं प्रागुक्ताष्टविधद्वाराणि निरूपणी-

यह उद्देश वनस्पतिकायसंबंधी है अतः यहाँ 'तत्' शब्द से वनस्पतिकाय का समारंभ लिया जाता है । पहले वनस्पतिकाय का ज्ञान होता है फिर उसके आरंभ का त्याग किया जाता है, यह बतलाकर सूचना की गई है कि मोक्ष, ज्ञान और क्रिया-दोनों से होता है ।

जिससे किसीभी प्राणी को भय नहीं ऐसा, प्राणीमात्र की रक्षारूप संयम अभय कहलाता है । उसे जानकर वनस्पतिकाय का समारंभ न करे । इस प्रकार वनस्पतिकाय के आरंभ से विरत पुरुष जिनशासन में 'उपरत' कहलाता है और वही उपरत पुरुष अनगार है, क्यों कि अनगार के गुण पूर्णरूप से उसीमें पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकाय का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानने के लिए पूर्वोक्त आठ

आ उद्देश वनस्पतिकायसंबंधी छे. ओ कारणथी अहिं 'तत्' शब्दथी वनस्पति-कायने समारंभ लेवाभां आवे छे पडेलां वनस्पतिकायनुं ज्ञान थाय छे. पछी तेना आरंभने त्याग करवाभां आवे छे ओ भतावीने सूचना करवाभां आवी छे के-ज्ञान अने क्रिया, आ अन्नेथी मोक्ष थाय छे.

नेनाथी केछि पणु प्राणीने लय थाय नहि. ओ प्रभाणु प्राणीमात्रनी रक्षारूप संयम ते अलय डडेवाय छे. तेने लणुने वनस्पतिकायने समारंभ करे नहि. आ प्रभाणु वनस्पतिना आरंभथी विरत पुरुष जिनशासनमां 'उपरत' डडेवाय छे. अने तेन उपरत पुरुष अनगार छे, कारण के-अणुगारना गुण पूर्णरूपथी तेमांन लेवाभां आवे छे.

वनस्पतिकायनु स्वइय सम्यक्प्रकारे लणुवा भाटे पूर्वोक्त आठ द्वारेनु निरूपणु

યાનિ, તત્ર લક્ષણ-પ્રરૂપણા-શસ્ત્રો-પભોગદ્વારાણિ પ્રદર્શયામોઽસ્મિન્નુદ્દેશે, શેપાણિ તુ પૃથિવીકાયવદવગન્તવ્યાનિ ।

### લક્ષણદ્વારમ્—

નનુ કથમિદં વિજ્ઞાયતે-વનસ્પતિકાયઃ સચિત્તોઽસ્તીતિ ? ઉચ્યતે-યુત્તયાગમા-ભ્યાં વનસ્પતિકાયસ્ય સચિત્તત્વં નિર્ણીયતે । તથાહિ-

વૃક્ષલતાદયો જીવશરીરાણિ દ્રશ્યત્વાત્, કરચરણાદિસમુદાયવત્ । તથા વૃક્ષા-દયઃ કદાચિત્ સચિત્તા અપિ, જીવશરીત્વાત્, કરચરણાદિસમુદાયવદેવ ।

દ્વારોં કા નિરૂપણ કરના યાહિણ્ણ । ઁનમ્ણે સે લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર ઁર ઁપભોગ દ્વાર યહ્ણ વતલાતે હૈ । શેપ દ્વાર પહલે કહે પૃથ્વીકાય કે સમાન સમજ્ણ લેને યાહિણ્ણ ।

### લક્ષણદ્વાર-

શક્ષ્ણા—વનસ્પતિકાય સચિત્ત હૈ, યહ કૈસે જાના જા સકતા હૈ ?

સમાધાન—યુક્તિ ઁર આગમ સે વનસ્પતિકાય કી સચિત્તતા કા નિર્ણય હોતા હૈ । વહ ઁસ પ્રકાર-વૃક્ષ ઁર લતા આદિ જીવ કે શરીર હૈ, ક્યોં કિ વે દ્રશ્ય હ્ણ । જો દ્રશ્ય હોતે હૈ વે સવ જીવ કે શરીર હોતે હૈ, જૈસે હાથ-પૈર આદિ । તથા-વૃક્ષ આદિ કમી-કમી સચિત્ત મી હોતે હૈ, ક્યોં કિ વે જીવ કે શરીર હૈ, જો જીવ કે શરીર હોતે હ્ણ વે સચિત્ત હોતે હૈ, જૈસે હાથ-પૈર આદિ કા સમૂહ । તથા-વૃક્ષ અવ્યક્ત

કરવું નેધઁ, તેમંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઁપભોગ દ્વાર અર્હિ ઁતાવે ઁ. શેપ-ખાકીના દ્વાર પ્રથમ પૃથ્વીકાયમાં ને કહ્યાં ઁ તેના પ્રમાણે સમજ્ણ લેવાં નેધઁ.

### લક્ષણદ્વાર-

શંકા—વનસ્પતિકાય સચિત્ત ઁ, ઁ કેવી રીતે નાણી શકાય ઁ ?

સમાધાન—યુક્તિ અને આગમથી વનસ્પતિકાયની સચિત્તતાનો નિર્ણય થઈ શકે ઁ તે આ પ્રમાણે ઁ-વૃક્ષ અને લતા આદિ ઁવના શરીર ઁ, કેમકે તે દ્રશ્ય ઁ. ને દ્રશ્ય હોય ઁ તે સર્વ ઁવના શરીર હોય ઁ. નેવી રીતે હાથ-પગ આદિ. તથા વૃક્ષ આદિ કોઈ કોઈ વખત સચિત્ત પણ હોય ઁ, કારણકે તે ઁવના શરીર ઁ. ને ઁવનાં શરીર હોય ઁ તે સચિત્ત હોય ઁ. નેમ હાથ-પગ આદિનો અભૂં. તથા વૃક્ષ અવ્યક્ત ઁપયોગ

तथा—वृक्षाः अव्यक्तोपयोगसुखादिमन्तः, अव्यक्तचेतनावत्त्वात्, सुप्तमूर्च्छित-  
पुरुषवत् । अत्र वनस्पतीनां दृश्यत्वहेतुना जीवशरीरत्वं सिद्धयति, ततश्च सचित्त-  
त्वम् । अपरञ्च—वृक्षाः सचेतनाः, सर्वत्वगपहरणे मरणात्, अजवत् । वनस्पति-  
कायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते—‘से वेमि—इमंपि जाइधम्मयं एयंपि  
जाइधम्मयं’ इत्यत्र ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवी-

उपयोग (चेतना) और सुख आदि से युक्त है, क्यों कि उन में अव्यक्त चेतना हैं, जो अव्यक्त  
चेतनावाला होता है वह अव्यक्त चेतनावाला और सुख आदि वाला होता है, जैसे सुप्त  
या मूर्च्छित पुरुष ।

इस प्रकार ‘दृश्यत्व’ हेतु से सिद्ध होता है कि—वनस्पति, जीव का शरीर है और जीव  
का शरीर होने के कारण सचित्त भी है । इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है । जैसे वृक्ष  
चेतनावान् है क्यों कि उनकी सारी त्वचा (छाल) हटाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है,  
सारी त्वचा हटाने पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे बकरा ।  
वनस्पतिकाय को सचेतनता आगे भी—‘से वेमि—इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं’  
इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी ।

अथवा—अव्यक्त उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

(चेतना) अने सुभ आदिथी युक्त छे, केमके तेमां अव्यक्त चेतना छे, जे अव्यक्त  
चेतनावाणा छे ते अव्यक्त चेतनावाणा अने सुभ आदिवाणा छे। जेम सुतेला  
अथवा मूर्च्छित पुरुष. आ प्रकारे ‘दृश्यत्व’ हेतुथी सिद्ध थाय छे के—वनस्पति जवनुं  
शरीर छे अने जवनुं शरीर होवाना कारणे सचित्त पणु छे अनी साथे भीणुं’ पणु  
प्रमाणु छे. जेमकेः—वृक्ष चेतनावान् छे केमके तेनी तमाम आमडी—छाल काढी नांभवाथी  
तेनुं मृत्यु थर्ध जय छे; तमाम छाल काढी नांभवाथी जेनुं मृत्यु थर्ध जय छे ते चेतन  
ज छे। जेवी रीते जकरा. वनस्पतिकायनी चेतनता आगण पणु—‘से वेमि—इमंपि  
जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं’ आ सूत्रनी व्याख्या करती वधते सिद्ध करवामां आवशे.

अथवा—अव्यक्त उपयोगथी लधने कषाय सुधी जवना जे लक्षण पृथ्वीकायनां

कायोद्देशे प्रागभिहितानि, तेषां जीवलक्षणानां वनस्पतिकायेऽपि सद्भावाद् वनस्पतिः सचित्तोऽस्ति, मनुष्यवदिति निर्णीयते ।

अपिच—वनस्पतिः सचेतनः, बालाद्यवस्थासंदर्शनात्, अनुकूल-प्रतिकूलआहारादिना पुष्टिकाश्यादिदर्शनात्, छेदनभेदनादिना म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्य-शरीरवत् ।

यथा मनुष्यशरीरमनुकूलेनाहारादिना पुष्यति, तत्प्रतिकूलेन तदभावेन च शुष्यति, एवं वनस्पतिरप्यनुकूलजलवातादिभिः पुष्यति; प्रतिकूलजलवातादिभिश्च शुष्यति । यथा वा छेदनादिना मनुष्यशरीरं हस्तादि म्लायति, तथा

काय के उद्देश में पहले कहे गये हैं वे सब वनस्पतिकाय में भी पाये जाते हैं । इस कारण वनस्पति मनुष्य आदि के समान सचित्त है ।

तथा—वनस्पति सचेतन है, क्यों कि उस में बाल्यावस्था आदि देखी जाती है, अनुकूल आहार से पुष्टि और प्रतिकूल आहार से कृशता आदि दिखाई देती है, और छेदन-भेदन आदि करने से मुरझाना वगैरह देखा जाता है, जैसे मनुष्य का शरीर ।

तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य का शरीर अनुकूल आहार आदि से पुष्ट होता है और प्रतिकूल आहार से या आहार के अभाव से सूख जाता है, उसी प्रकार वनस्पति भी अनुकूल जल-वायु आदि से पुष्ट होती है और प्रतिकूल जल-वायु आदि से सूख जाती है । अथवा जैसे छेदन-भेदन करने से मनुष्य का शरीर हाथ आदि मुरझा

उद्देशमां पडेला कक्षां छे, ते सर्व वनस्पतिकायमां पणु जेवामा आवे छे. आ कारणुथी वनस्पति मनुष्य आदिना समान सचित्त छे.

तथा—वनस्पति सचेतन छे, केभके तेमां णाट्यावस्था आदि अवस्थाओ जेवामा आवे छे. अनुकूल आहारथी पुष्टि अने प्रतिकूल आहारथी कृशता-दुर्बलता आदि देणाय छे, अने छेदन, भेदन आदि करवाथी मुरझाई जवुं-करमाई जवुं सुस्त के भिन्न थवापणुं वगेरे जेवामां आवे छे. जेवी रीते मनुष्यनुं शरीर.

तात्पर्य ओ छे डेः—जेम मनुष्यनुं शरीर अनुकूल आहार आदिथी पुष्ट थाय छे, अने प्रतिकूल आहारथी अथवा तो आहारना अभावथी सुकाई जय छे तेवी रीते वनस्पति पणु अनुकूल जल, वायु आदिथी पुष्ट थाय छे, अने प्रतिकूल जल वायु आदिथी सुकाई जय छे. अथवा जेवी रीते छेदन-भेदन करवाथी मनुष्यशरीरना हाथ-पग आदि करमाई जय छे. ते प्रमाणे पांडड, इल, इल, आदि वनस्पति पणु छेदन-भेदन

पल्लवफलकुसुमादिरूपो वनस्पतिरपि छेदनादिना म्लायति, तस्माद् वनस्पतिः सचेतन इति सिद्धम् ।

यद्वा—वनस्पतिर्जीवः, चेतनावत्त्वात्, मनुष्यवत्, यथा मनुष्यस्य शब्दादिग्रहणशक्तिरूपा चेतना, तथैव वनस्पतौ समुपलभ्यते । तथाहि—बकुलादयो गीत—सुरागण्डूष—कामिनीचरणताडनादिभिः फलन्ति, शमीलज्जालुप्रभृतिषु च स्वापावबोधसंकोचादयो दृश्यन्ते । शापानुग्रहाभ्यामान्तरौ संकोचविकाशौ समस्त-वनस्पतीनां भवतः । उक्तञ्च—

जाता है उसी प्रकार पत्ता, फल, फूल, आदि वनस्पति भी छेदन—भेदन आदि से मुरझा जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है ।

अथवा—वनस्पति जीव है; क्यों कि चेतनावाली है, जैसे मनुष्य । जैसे—मनुष्य आदि में शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना है उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है । बकुल आदि के वृक्ष गीत, मदिरा का कुल्ला, कामिनी के पैर के ताडन आदि से फलते हैं । शमी तथा लज्जावती आदि में स्वाप, (सोना) अग्रबोध (जागना) और संकोच (सिकुडना) देखा जाता है । शाप और अनुग्रह से सब वनस्पति में संकोच और विकास होता है । कहा भी है :—

आदिथी करमाध नय छे सुकाध नय छे, आ कारणथी सिद्ध थाय छे के वनस्पति सचेतन छे.

अथवा—वनस्पति जिव छे, केमके—चेतनावाणी छे, जेम मनुष्य. जेवी रीते मनुष्य आदिमां शब्द आदिने ग्रहण करवानी शक्तिरूप चेतना छे. ते प्रमाणे वनस्पतिमां पणु शब्द आदिने ग्रहण करवानी शक्तिरूप चेतना जेवामां आवे छे. अकुल आदि वृक्ष गीत, मदिराना गंडूष (केगला), अनीना पगथी थयेलुं ताडन आदिथी इणे छे. शमी तथा लज्जावती (रीसामणी) आदिमां सुध जलुं नगलुं अने स केआध जलुं वगेरे जेवामां आवे छे. शाप अने अनुग्रहथी सर्व वनस्पतिमां संकोच अने विकास थाय छे. कहुं छे के:-

“स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः शीघ्रगण्डूपसेकात्,  
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।  
मन्दारो नर्मवाक्याच्चट्टुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताद्,  
वल्ली गीतान्मेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ” ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

“वृणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणणं ”  
इति । ( दशवै० )

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां  
सच्चित्तत्वम्, यथा—क्रोधादिमुन्नाटयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनाभ्याम्

“प्रियंगु का पेड स्त्रियों के स्पर्श से विकसित होता है, वकुल मदिरा के कुल्ले से  
खिल उठता है । अशोक वृक्ष स्त्री के पैर का आघात लगने से खिल जाता है । तिलक वृक्ष  
स्त्रियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिंगन से खिल उठता है । मन्दार वृक्ष विनोदमय  
वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, वल्ली वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित  
होता है । कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है ” ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है । दश वैकालिक  
सूत्र में कहा है—शस्त्रपरिणत को छोड़कर शेष सब वनस्पति सच्चित्त कही गई है, वह  
अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है” ।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि-वनस्पति  
सच्चित्त है । क्रोध आदि करने से—गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

“प्रियंगुने छोड स्त्रीयोना स्पर्शथी विकसित थाय छे, वकुल मदिराना डेगणा  
करवाथी ज्जिदी उठे छे. अशोक वृक्ष स्त्रीना पगने आघात लागवाथी ज्जिदी उठे छे.  
तिलक वृक्ष स्त्रीयोने जेवाथी तथा कुरवक स्त्रीयोना आलिंगनथी ज्जिदी उठे छे. मन्दार  
वृक्ष विनोदमय वाक्य सांलणीने, चम्पक मृदु डांसीथी, वल्ली वक्त्र (मुख) वायुथी  
अने नमेरु गीतथी विकसित थाय छे. कनेरने छोड तेना सामे नाचवाथी ज्जिदे छे.” ॥१॥

वनस्पतिनी सचेतनता आगमप्रमाणेथी पणु सिद्ध थाय छे. दशवैकालिक  
सूत्रमां कहुं छे—“शस्त्रथी परिणत—(छेदायेदी)ने छोडीने भाडीनी सर्व वनस्पति  
सच्चित्त कडेदी छे, ते अनेक जिववाणी छे, अने ते जिवोनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे.”

आधुनिक वैज्ञानिकेये पोताना प्रयोगे द्वारा प्रत्यक्ष-अतापी आभ्यु छे के वनस्पति  
सच्चित्त छे. क्रोध आदि करवाथी, गाण हेवाथी अथवा तिरस्कार करवाथी वृक्ष, लता आदि

वृक्षलतादयः संकोचमापद्यन्ते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवर्धन्ते, विकसन्ति चेति वनस्पतीनां सचेतनत्वे नास्ति केषाञ्चिद् विवादः ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते, अतस्तेषां सच्चित्तत्वं भगवद्वचनमात्रावगम्यमिति तत्रापि श्रद्धा करणीयैव ।

#### प्ररूपणाद्वारम्—

वनस्पतिजीवा द्विविधाः—सूक्ष्मवादरभेदात् । सूक्ष्माः सर्वलोके कज्जलकूपिकावत् संभृताः । बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तापर्याप्तभेदाद्द्विविधाः ।

बादरा द्विविधाः—प्रत्येकशरीर—साधारणशरीरभेदात् । एकमेकं जीवं

संकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बढ़ते, हैं और फूलते हैं अतः वनस्पति की सच्चित्ता में अब किसी को भी विवाद नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव आँख से नहीं दिखाई देते । भगवान् के वचनों से ही जाने जा सकते हैं । उन पर श्रद्धा रखनी चाहिए ।

#### प्ररूपणाद्वारम्—

वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में काजल की कुप्पी की तरह भरे हुए हैं । बादर जीव लोक के एक-एक भाग में होते हैं । सूक्ष्म जीवों के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

बादर जीव प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

संकोचने प्राप्त थाय छे अने प्रशंसा करवाथी कूदो छे अने भिदो छे अने कारणुथी वनस्पतिनी सच्चित्तामां हुवे कोछने पणु विवाद नथी.

सूक्ष्म वनस्पतिकायना अणु नेत्रथी नेछ शकता नथी. ते लगवानना वचनोथी न, नणी शकथ छे. तेना पर श्रद्धा राखवी नेछ अ.

#### प्ररूपणाद्वारम्—

वनस्पतिकायना अणु अे प्रकारना छे (१) सूक्ष्म अने बादर. सूक्ष्म अणु समस्त लोकाकाशमां काजलनी कुप्पीनी प्रमाणे लरेला छे. बादर अणु लोकना अेक-अेक भागमां होथ छे.

सूक्ष्म अणुना पणु अे लेद छे. (१) पर्याप्त अने (२) अपर्याप्त. बादर अणु प्रत्येकशरीर अने साधारणशरीरना लेदथी अे प्रकारना छे. अेक-अेक अणु सम्बन्धी



प्रति गतं प्रत्येकम्, प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । प्रत्येकनामकर्मोदयवशा-  
देकैकस्य जीवस्य शरीरमौदारिकं वैक्रियं वा पृथक् पृथग् भवति । एवम्भूता जीवाः  
प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । नारकदेवमनुष्याः, द्वीन्द्रियादयः, पृथिव्यादयः, वृक्षगुच्छादि-  
वनस्पतयश्च प्रत्येकशरीरिणः सन्ति । इमे प्रत्येकाः प्रत्येकजीवा अपि कथ्यन्ते ।

प्रत्येकशरीरा द्वादशविधाः—वृक्ष—गुच्छ—गुल्म—लता—वल्ली—पर्वग—तृण—वलय—  
रितौ—षधि—जलरुह—कुहणभेदात् ।

तत्र वृक्षा द्विविधाः—एकास्थिकाः (एकबीजकाः) बहुबीजकाश्च । तत्रैकास्थिका  
अनेकविधाः—निम्बाम्रजम्बूकौशम्वादयः । बहुबीजका अप्यनेकविधाः—

एक—एक जीवसंबन्धी शरीर प्रत्येकशरीर कहलाता है । प्रत्येकनामकर्म के उदय से एक—एक  
जीव के शरीर औदारिक और वैक्रिय अलग—अलग होता है । ऐसे अलग—अलग शरीर  
वाले जीव प्रत्येकशरीर कहलाते हैं—नारक, देव, मनुष्य द्वीन्द्रिय आदि, पृथ्वीकाय आदि  
तथा वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिजीव प्रत्येक शरीरी हैं । इन्हे प्रत्येक और प्रत्येकजीव  
भी कहते हैं ।

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय वारह प्रकार के हैं—वृक्ष, गुच्छ गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग,  
तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह और कुहण ।

इनमें वृक्ष दो प्रकार के है—एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहु-  
बीजक अर्थात् बहुत बीजों वाले । एक बीज वाले नीम, आम, जामन और कौशम्ब  
आदि अनेक प्रकार के है । बहुबीजक भी अनेक प्रकार के हैं । जैसे अस्थिक, तिन्दुक,

शरीर प्रत्येक शरीर कडेवाय छे. प्रत्येकनामकर्मना उदयथी अेक—अेक अुवना शरीर  
औदारिक अने वैक्रिय अलग—अलग डोय छे. अेवा अलग—अलग शरीरवाणा अुव  
प्रत्येकशरीर कडेवाय छे. नारक, देव, मनुष्य, द्वीन्द्रिय आदि. पृथ्वीकाय आदि तथा  
वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिअुव प्रत्येकशरीर छे. तेने प्रत्येक अने प्रत्येकअुव पणु कडे छे.

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बार प्रकारना छे—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली,  
पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह अने कुहण.

अेमां वृक्ष अे प्रकारना छेः—अेकास्थिक अर्थात् अेक बीजवाणा, अने अुवस्थिक  
अर्थात् अणुअुव बीजवाणां. अेक बीजवाणा—लीअडो, आंणो, अणु अने कौशम्ब, आदि  
अनेक प्रकारना छे. अुवबीजक अेकडे अणु बीजवाणा पणु अनेक प्रकारना छे. अेमकेः—

अस्थिक-तिन्दुक-कपित्था-म्बाडक-मातुलिङ्ग-बिल्वा-मलक-पनस-दाडिमादयः ।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध-त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसंख्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिफल-पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

नन्वेकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलकन्दस्कन्धत्वक्शाखादयः प्रत्येकमसंख्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिफलपर्यन्ता वृक्षाः सर्वेऽप्येकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-देवदत्तस्य शरीरमखण्डमेकरूपमुपलभ्यते तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवा इति ? उच्यते—

(तेंदू) कपित्थ (कविठ), अम्बाडक, मातुलिङ्ग, बिल्व, आमला, पनस और दाडिम आदि ।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल, कंद, स्कंध, छाल, शाखा, और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं । एक मूल जीव, मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

शंका—एक बीजवाले और बहुत बीज वाले वृक्षों के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा आदि प्रत्येक असंख्यात जीव वाले हैं, यह कथन सही कैसे हो सकता है ? मूल से लेकर फलपर्यन्त वृक्ष सभी एक शरीराकार ही उपलब्ध होते हैं, जैसे कि देवदत्त का शरीर अखंड एकरूप ही देखा जाता है । अतः वृक्ष एक-एक शरीररूप ही हैं । उन में असंख्यात प्रत्येक किस प्रकार हो सकते हैं ?

अस्थिक, तिन्दुक, कपित्थ, अम्बाडक, मातुलिङ्ग (भिजेई), भिल्व, (भीली), आमला, पनस अने दाडिम आदि.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કંદ, સ્કંધ, છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસંખ્યાત જીવ છે. એક મૂલ જીવ, મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે.

શંકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ, કંદ, સ્કન્ધ, ત્વચા-છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવવાળા છે. આ કથન સાચું છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય ? અથવા એ કથન સાચું કેવી રીતે હોઈ શકે ?

મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સર્વ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે. એમકે દેવદત્તનું શરીર અખંડ એકરૂપજ ભેવામાં આવે છે. એ માટે વૃક્ષ એક એક શરીર-રૂપજ છે. તેમાં અસંખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकायां प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसबीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा-गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकायां तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

**समाधान—**मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अतः वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि-प्रत्येकशरीरी

**समाधान—**मूल अने स्कंध आदिमां ते असंख्यात जीवानां प्रत्येकनामकर्मना उदयथी अलग-अलग एक-एक शरीर छे, तो यद्यु तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावथीज ते सर्व आपसमां-परस्परमां मणैला रहे छे, जेम केध चिपकनी (चीकड़ी-चोटी जय तेवी) चीजमां मणवीने अनावेली असंखसनी गोणीना प्रत्येक भागमां असंखसनां बीज पोतानुं अलग अलग अस्तित्व अनावी राणे छे. अथवा जेम गोण मणवेली तलनी तलपापडी-तलसांडणीमां तलना दाणु पोत-पोताना स्वरूपमां विद्यमान रहे छे, ते प्रमाणे प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कंद आदिमां रहे छे. साधारण वनस्पतिथी तेनामां ये लेह छे के:-प्रत्येकशरीरी

वनस्पतिभ्यस्त्वेतावान् विशेषः— प्रत्येकशरीराः परस्परं संमिश्रिता अपि भिन्ना एव तिष्ठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्योन्यानुविद्धा इति ।

पत्रेषु प्रत्येकं मूलजीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेका-स्थिकबहुबीजवृक्षप्ररूपणावसरे—“ पत्ता पत्तेयजीविया ” इति ।

तथा—तालसरलनालिकेरवृक्षाणां स्कन्धश्चैकजीवः । तदुक्तम्—

“ णाणाविहसंठाणा, रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।

खंधोवि एगजीवो, ताल—सरल—नालिकेरीणं ” ॥

छाया—नानाविध संस्थानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।

स्कन्धोऽपि एकजीवः, तालसरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रज्ञा०)

जीव आपस में मिले हुए भी भिन्न—भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव आपस में अनुविद्ध—एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि—प्रत्येकशरीरी जीवों का शरीर अलग—अलग होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक—एक जीव अलग—अलग होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकबीज और बहुबीज वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है— ‘पत्ता पत्तेयजीविया’ अर्थात् पत्ते प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा ताल, साल, नालिकेर आदि वृक्षों का स्कन्ध एक जीव है । कहा है—

“ नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और ताल, सरल तथा नारियल के स्कन्ध एकजीव हैं ” ।

एव परस्पर भेदना छतां पञ्च लिन्न—लिन्न रडे छे; परन्तु साधारण शरीरवाणा एव परस्परमां अनुविद्ध—अेकरूप थधने रडे छे. तात्पर्य अे छे के—प्रत्येकशरीरी एवोनां शरीर अलग—अलग डोय छे. किन्तु आ साधारणशरीरी एवोनु शरीर अेकए डोय छे.

पत्तां—पांढडांमां, मूल एवथी लिन्न अेक—अेक एव अलग—अलग डोय छे. प्रज्ञापनासूत्रमां अेकभीए अने अडुभीए वृक्षोनी प्ररूपणा करता थका डहुं छे के:— ‘पत्ता पत्तेयजीविया’ अर्थात् पत्तां प्रत्येक एववाणा छे.

तथा ताल, सरल, नाणिकेर आदि वृक्षोनां स्कंध अेक एव छे. डहुं छे के:—

“ नाना प्रकारना आकारवाणा वृक्षोनां पत्तां—पांढडां प्रत्येकएव छे. अने ताल, सरल तथा नारिकेलना स्कंध अेकएव छे. ”

पुष्पेषु अनेकजीवाः-संख्याता असंख्याता अनन्ता वा सन्ति । उक्तञ्च-  
“पुष्पा अणोगजीवा ” इति ।

“पुष्पा जलया थलया, विटवद्वा य नालिवद्वा य ।

संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाऽणंतजीवा य ” ॥

छाया-पुष्पाणि जलजानि स्थलजानि, वृन्तवद्धानि च नालिवद्धानि च ।

संख्येयानि (संख्येय जीवानि) असंख्येयानि (असंख्येय जीवानि)

बोद्धव्यानि अनन्त जीवानि च ॥ (प्रज्ञा०)

यत्तु “पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानी”-ति शीलाङ्गाचार्यैरभिहितं तत्  
प्रामादिकम्, प्रज्ञापनासूत्रविरोधात् ।

फलेषु मूलजीवमाश्रित्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ जीवौ स्तः । दोष्णि य जीवा फले  
भणिया ” इति प्रज्ञापनावचनात् । वृक्षाः प्ररूपिताः, अथगुच्छादयः प्रोच्यन्ते-

फूलो मे अनेक-संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त जीव होते हैं । कहा भी है-“पुष्पा  
अणोगजीवा” फूल अनेक जीव वाले होते हैं ।

“जल में उत्पन्न होने वाले, स्थल में उत्पन्न होने वाले, वृन्तवद् या नालि-  
बद्ध फूल संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए ” ।  
( प्रज्ञापनासूत्र )

“फूल एक जीव वाले होते हैं” यह शीलाङ्गाचार्य का कथन भूलभरा है, क्यों कि  
यह प्रज्ञापनासूत्र से विरुद्ध है ।

फलों में मूल जीव की अपेक्षा प्रत्येक दो-दो जीव है । प्रज्ञापना सूत्र में कहा है-  
“ फल में दो जीव कहे गये हैं । ”

यहाँ तक वृक्षों का निरूपण किया । अब गुच्छ आदि के विषय में कहते हैं-

इदोमां अनेक संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त-एव डोय छे. कहुं पणु  
छे-‘पुष्पा अणोगजीवा’ “इल अनेक एववाणा डोय छे ”

“जलमां उत्पन्न थवावाणां, स्थलमां उत्पन्न थवावाणां वृन्तवद् अथवा  
नालिवद् इल संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त एववाणां छे, एम समजपुं  
जेधं ये. ” ( प्रज्ञापनासूत्र ).

“इल एक एववाणां डोय छे” आ शीलाङ्गाचार्यनुं कथन भूलभयुं छे, केमके  
ते प्रज्ञापनासूत्रथी विरुद्ध छे.

इदोमां मूल एवनी अपेक्षा प्रत्येक जे-जे एव छे. प्रज्ञापनासूत्रमां कहुं छे-  
“इलमां जे एव कडेला छे.”

अहिं सुधी वृक्षेणु निरूपणु कथुं, डवे गुच्छ आदिना विषयमां कडे छे:-

गुच्छा अनेकविधाः-आढकी-वृन्ताकी-तुलसी-पिप्पलीप्रभृतयः । गुल्माः-ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, तेऽनेकविधाः-सेरिका-नवमालिका-कोरण्टक-बन्धुजीवकादयः । लता अनेकविधाः-पद्मलता-नागलताऽशोकलताचम्पकलतादयः । यस्य वनस्पतेस्तिर्यक् तथाविधाः शाखाः प्रशाखा वा न प्रसृताः सा लतोच्यते ।

वल्लयोऽनेकविधाः-पुष्पफली-कूष्माण्डी-कालिङ्गी-तुम्बी-त्रपुषी-कोशातकी-पटोलादयः । पर्वगा अनेकविधाः-इक्षु-वंश-नलवंश-वेतसप्रभृतयः । तृणानि-अनेकविधानि-कुशदूर्वादीनि । वलयानि-ताल-तमाल-केतकी-कदली-कन्दल्या-

गुच्छ अनेक प्रकार के है । जैसे-अरहर वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली आदि । जिनका तना छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्तो, फूलों और फलो से युक्त हों उन्हें गुल्म कहते है । वे भी कई प्रकार के हैं । यथा-सेरिका, नवमालिका, कोरण्टक, बन्धुजीवक वगैरह । लताएँ भी अनेक प्रकार की है; जैसे-पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता आदि । जिस वनस्पति की तिरछी अथवा खास तरह की शाखाएँ-प्रशाखाएँ नहीं फैलती वह लता कहलाती है ।

वल्ली के भी अनेक भेद है । जैसे-पुष्पकली, कूष्माण्डी, कालिङ्गी, तुम्बी, त्रपुषी, (ककडी) कोशातकी तथा पटोलादि । पर्वग भी अनेक प्रकार के है । जैसे-इक्षु, (सेलरी) वंश, (वाँस) नलवंश, वेत आदि । कुश और दूब आदि तृण अनेक प्रकार के होते है । ताल, तमाल, केतकी, कदली, कन्दली आदि वलय

गुच्छ अनेक प्रकारनां छे. जेवां के-तुवेर, वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली, आदि. जेना थड नाना डोय, कांड षडुज डोय अने जे पत्तां-कूल अने इणोथी युक्त डोय तेने शुद्ध कडे छे. ते पणु धणुा प्रकारना छे. जेम-सेरिका, नवमालिका, कोरंटक, बंधुजीवक वगैरे, लताओ पणु अनेक प्रकारनी छे. जेवी रीते के-पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता आदि. जे वनस्पतिनी तिरछी अथवा खास तरहनी शाखाओ-प्रशाखाओ इलाती नथी ते लता कडेवाय छे.

वल्लीना पणु अनेक भेद छे. जेवी रीते पुष्पकली, कूष्मांडी, कालिङ्गी, तुम्बी, त्रपुषी, कोशातकी तथा पटोलादि. पर्वग पणु अनेक प्रकारना छे. जेम-सेरडी, वांस, नलवंश वेत आदि. कुश-हालडो अने हूण-धरे आदि तृण अनेक प्रकारनां डोय छे. ताल, तमाल, केतकी, कदली-केण, कन्दली आदिने वलय कडेवाय छे. तांडुलीयक, (तांदलज)

दीनि । हरितानि-तन्दुलीयक-वस्तुल-मार्जारपादिका-पालङ्क्यादीनि । ओषधयः-  
शालि-व्रीहि-गोधूम-यव-वर्जरी-मुद्ग-मापादयः । जलरूहाः-उत्पल-पद्म-कुमुद-  
नलिन-पुण्डरीक-शतपत्र-सहस्रपत्र-कोकनदा-रविन्द-पनक-पनकचट्ट-शैवालादयः ।  
कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय-सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात्  
साधारणमेकं शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं संभवति, तथाहि-यः खलु प्रथमं

कहलाते है । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालंकी आदि को हरित कहते है ।  
शालि व्रीहि (धान) ओ गेहूँ, जौ, वाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते है ।  
उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक,  
पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरूह कहते है । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पछत्र आदि  
कुहण कहलाते है ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण  
इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका  
शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते है ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

वस्तुल (अथुवा) मार्जारपादिका, पालंकी (सुवापालक) आदिने हरित कहे छे । शाली,  
व्रीहि (धान्य) गेहूँ-घઉं, जव, भाजरी, भग, अउद आदि ओषधि कहेवाय छे  
उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक,  
पनकचट्ट. शैवाल आदिने जलरूह कहे छे. भूमिस्फोटक, आपकाय अने सर्पछत्र  
आदि-कुहण कहेवाय छे.

अर्हि सुधी प्रत्येक वनस्पतिनुं विवेचन थयु, साधारणशरीरनुं प्ररूपण आ प्रकारे छे-

साधारणनामकर्मना उदयथी अनन्त जिवेनुं अेक साधारणशरीर डाय छे.  
जेनुं शरीर साधारण अर्थात् अेक डाय ते साधारणशरीर कहेवाय छे.

शङ्का—अनन्त जिवेनां शरीर अेक केनी रीते डोर्ध शके छे ? केमके पडेल वडेवे।

जातस्तेन तच्छरीरमुत्पादितं, सर्वथा स्वायत्तीकृतं च, कथं तत्रान्येषां जीवानामव-  
काशः, नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्परानु-  
प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वैतरैः सह परस्परानुप्रवेशेन  
स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात्, ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था,  
प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, नतु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नायं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्जिनशासनपरिज्ञानाभावात् ।

पहल जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना  
लिया । फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त  
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में, एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न  
कैसे हो सकते हैं ?

अथवा—जिस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने  
से भिन्न अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान  
होगा । ऐसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान  
आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा । शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था  
हो सकती है ।

समाधान—यह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि शंकाकार को  
जिनशासन का परिज्ञान नहीं है ।

જે જીવ ઉત્પન્ન થયો તેણે તે શરીર ઉત્પન્ન કર્યું અને તેણે પૂરી રીતે પોતાનું કરી  
લીધું. પછી એ શરીરમાં બીજા જીવોને અવકાશ કેવી રીતે મળી શકે છે? દેવદત્તના  
શરીરમાં દેવદત્તની પ્રમાણે અન્ય જીવ પણ તમામ અવયવોમાં એક બીજાને મળીને  
ઉત્પન્ન કેવી રીતે થઈ શકે છે ?

અથવા જે જીવે આ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અવકાશ મળતાં પોતાનાથી ભિન્ન  
અન્ય જીવોની સાથે મળીને ગ્રહણ કર્યું છે તે જીવ એ શરીરમાં પ્રધાન થશે. એવી  
અવસ્થામાં—સ્થિતિમાં એની પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તની વ્યવસ્થા થશે. તેજ પ્રાણ-  
અપાન આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરશે. શેષ-બાકીના જીવોના વિષયમાં એ  
વ્યવસ્થા કેવી રીતે થઈ શકે છે ?

સમાધાન—આ શંકા યોગ્ય નથી કેમકે—શંકા કરનારને જિન, શાસનનું  
પરિજ્ઞાન નથી.



સાધારણનામકર્મપ્રભાવાદનન્તા અપિ જીવા એકસ્મિન્નેવ કાલે સઠૈવોત્પત્તિદેશે તિષ્ઠન્તિ, સઠૈવ પર્યાપ્તિં નિર્વર્તયન્તિ, સઠૈવ પ્રાણાપાનયોગ્યપુદ્ગલાનુપાદદતે, સઠૈવ ચ તેપામાહારાદિપુદ્ગલગ્રહણમ્, તસ્માન્ન કાચિદનુપપત્તિરિતિ । ઉક્તઞ્ચ ભગવતા—

“ સમયં વક્ત્રાણં, સમયં તેસિં શરીરનિષ્વિત્તી ।

સમયં આણગ્ગહણં, સમયં ઉસ્માનીસાસા ॥ ૧૬ ॥

એકસ્સ ઉ જં ગહણં, વહૂણ સાહારણાણ તં ચેવ ।

જં વહુયાણં ગહણં, સમાસઓ તંપિ એગસ્સ ॥ ૧૭ ॥

છાયા—સમકં વ્યુત્ક્રાન્તાનાં, સમકં તેપાં શરીરનિર્વૃત્તિઃ ।

સમકમાનગ્રહણં, સમકમુચ્છ્વાસનિઃશ્વાસૌ ॥ ૧૬ ॥

એકસ્ય તુ યદ્ ગ્રહણં, વહૂનાં સાધારણાનાં તદેવ ।

યદ્ વહુકાનાં ગ્રહણં, સમાસતસ્તદપ્યેકસ્ય ॥ ૧૭ ॥

સાધારણનામકર્મ પ્રભાવ સે અનન્ત જીવ એક હી કાલ મેં સાથ હી ઉત્પત્તિ દેશ મેં ઉત્પન્ન હોતે હૈ, સાથ હી પર્યાપ્તિયાં પૂર્ણ કરતે હૈ, સાથ હી પ્રાણાપાન કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હૈં ઓર સાથ હી આહાર આદિ કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હૈ । અત એવ ઇસ કથન મેં તનિક મો અયુક્તિ નહીં હૈ । ભગવાન્ ને કહા હૈ—

“સાથ હી વે જીવ ઉત્પત્તિદેશ મેં આતે હૈ, સાથ હી ઉનકા શરીર વનતા હૈ, સાથ હી પ્રાણ ગ્રહણ કરતે હૈં, સાથ હી ઉચ્છ્વાસ—નિઃશ્વાસ હોતે હૈં (૧૬) એક જીવ જો ગ્રહણ કરતા હૈ વહુ બહુત જીવોં કે લિએ સમાન હોતા હૈ ઓર બહુત જીવ જો ગ્રહણ કરતે હૈં વહુ એક જીવ કે લિએ મો હોતા હૈ (૧૭)

સાધારણ નામકર્મના પ્રભાવથી અનન્ત જીવ એકજ કાલમાં સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં ઉત્પન્ન થયા છે. સાથેજ પર્યાપ્તિઓ પૂર્ણ કરે છે. સાથેજ પ્રાણ-અપાનના યોગ્ય-પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, અને સાથેજ આહાર આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. એ માટે આ કથનમાં જરાપણ અસ્વાભાવિકતા અથવા અયુક્તતા નથી. ભગવાને કહ્યું છે કે:—

“તે જીવ એક સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં આવે છે, સાથેજ એનાં શરીરો બને છે, સાથેજ પ્રાણ ગ્રહણ કરે છે. સાથેજ શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે. (૧૬) એક જીવ જે ગ્રહણ કરે છે તે બધાય જીવો માટે સમાનપણે થાય છે, અને તમામ જીવો જે ગ્રહણ કરે છે તે એક જીવને માટે પણ થાય છે. (૧૭)

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणग्रहणं च।

साहारणजीवाणं, साहारणलक्ष्णं एयं” ॥ १८ ॥ (प्रज्ञा० ११५)

छाया-साधारणमाहारः, साधारणमानप्राणग्रहणं च।

साधारणजीवानां, साधारणलक्षणमेतत् ॥ १८ ॥

एवं च परस्पराभुविद्वानन्तजीवसमूहरूपेण एकशरीरावस्थायिनो जीवाः साधारणशरीरा इति सिद्धम् । एते साधारणजीवशब्देन साधारणशब्देनापि च व्यपदिश्यन्ते।

तेऽनेकविधाः-सूरणकन्द - वज्रकन्द-शर्कराकन्द - रक्तालु-पिण्डालु - लशुन-पलाण्डु-गृञ्जन-शृङ्गबेरादयः । वनस्पतेर्मूलसंलग्नो भूम्यन्तर्गतो भागविशेषः कन्दः । एतेऽनन्तजीवपिण्डस्वरूपाः सन्ति ।

साधारण जीवों का आहार साधारण होता है और साधारण प्राणापान का ग्रहण होता है, इस प्रकार उनका यह साधारण लक्षण कहा गया है” ॥१८॥ (प्रज्ञा० ११५)

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि एक, दूसरे में मिले हुए अनन्तजीवसमूहरूप से एक ही शरीर में रहने वाले साधारण जीव है । इन जीवों के लिए ‘साधारणजीव’ तथा ‘साधारण’ शब्द का भी व्यवहार किया जाता है ।

साधारण जीव अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे-सूरणकन्द, वज्रकन्द, शर्कराकन्द, रक्तालु, पिण्डालु, लहसुन, प्याज, गाजर, अदरक आदि । वनस्पति के मूलक साथ जुड़ा हुआ और जमीन के अन्दर रहने वाला हिस्सा कंद कहलाता है । ये कंद अनन्त जीवों के पिण्ड हैं ।

साधारण्ये लोवोने आहार साधारण्ये डोय छे अने साधारण्ये प्राणुपाननुं त्रडण्ये डोय छे. अे प्रमाणे तेनुं आ साधारण्ये लक्षण्ये कथ्युं छे (१८)”

आ प्रमाणे सिद्ध थयुं के अेक भीजमां मणेलो अनन्तलवसमूडरूपथी अेक ज शरीरमां रडेवा पाणां साधारण्ये लव छे. अे लोवोने माटे ‘साधारण्ये लव’ तथा ‘साधारण्ये’ शब्दने पण्ये व्यवहार करी शक्य छे.

साधारण्ये लव अनेक प्रकारना डोय छे. जेम-सूरण्येकंद, रक्ताणुं, पिण्डाणु, लसण्ये, कुंगणी, गाजर, आहु आदि. वनस्पतिना भूणनी साथे नेडाअेला अने जभीननी अंदर रडेवावाणेो भाग कंद कडेवाय छे आ कंद अनन्त लोवोना पिण्ड छे.

वादरा वनस्पतयः संक्षेपतः पड्विधाः—अग्रबीज—मूलबीज—पर्वबीज—स्कन्ध-  
बीज—बीजरुह—संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे बीजं येषां ते—अग्रबीजाः कोरुण्टकप्रभृतयः ।  
मूलमेव बीजं येषां ते मूलबीजाः कदल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थौ सन्धिभागे पर्वैव वा  
बीजं येषां ते पर्वबीजाः इक्षु—वंश—वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुडं, स एव बीजं येषां ते  
स्कन्धबीजाः=अरणि—शल्लकी—स्तुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-  
रुहाः=शालि—गोधूम—जव—मक्का—वर्जरीप्रभृतयः । संमूर्च्छन्ति=बीज विनाऽपि दग्धभू-  
मावपि समुद्भवन्तीति संमूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः ।

वादर वनस्पति संक्षेप में छह प्रकार की है—(१) अग्रबीज (२) मूलबीज  
(३) पर्वबीज (४) स्कन्धबीज (५) बीजरुह और (६) संमूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका  
बीज आगे रहता है ऐसी कोरुण्टक आदि वनस्पतियाँ अग्रबीज कहलाती है । पर्व  
(पोर—संधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्वबीज  
कहते हैं, जैसे—ईख, बाँस, बेंत आदि । स्कंध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,  
शल्लकी, स्तुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती है । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, वाजरी वगैरह  
बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के बिना भी, जली हुई  
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति  
संमूर्च्छिम कहलाती है ।

वादर वनस्पति संक्षेपमां छ प्रकारनी छे— (१) अग्रबीज, (२) मूलबीज,  
(३) पर्वबीज, (४) स्कन्धबीज, (५) बीजरुह, (६) संमूर्च्छिम । जे वनस्पतिओनुं  
बीज आगण रहे छे ओवी कोरुण्टक आदि वनस्पतिओ अग्रबीज कडेवाय छे । मूल  
ओनुं बीज होय ओवी कदली आदि वनस्पतिओ मूलबीज छे—(पोर—संधिभाग)मां  
ओनुं बीज होय तेने पर्वबीज कडे छे, जेभकेः—शैलडी, बाँस, नेतर आदि । स्कंध  
ओनुं बीज होय ते अरणी शक्य, स्तुडी (थार) वगेरे स्कंधबीज कडेवाय छे । शाली,  
घउं, जव, मकाई, वाजरी वगेरे बीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने बीजरुह कडे  
छे । बीज बिना पणु अणी गओली जमीन आदिमां पणु पृथ्वी अने जलना  
संयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते संमूर्च्छिम कडेवाय छे ।

आकारतः प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽनन्तजीवाः सन्ति ।  
तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले भग्ने सति समश्चक्राकारो भङ्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्दे भग्ने सति समश्चक्राकारो भङ्गो दृश्यते तत्राप्यनन्ता जीवाः । एवं शेषेषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि विज्ञेयम् । ईदृशश्च भङ्गः प्रायेणापरिक्वावस्थायां भवति ।

तथा-यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापेक्षया बहुलतरा स्थूला त्वग् भवति सा त्वगनन्तजीवस्वरूपा ।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियाँ भी अनन्त जीव वाली होती हैं । उनका लक्षण यह है—

जिसका मूलभाग तोड़ने पर समान चक्राकार भंग होता है, उसमें नियम से अनन्त जीव होते हैं । इसी प्रकार जिसका कन्द भंगने पर समान चक्राकार भंग दिखाई दे उसमें भी अनन्त जीव होते हैं । यही बात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए । इस प्रकार के भंग प्रायः सब होते हैं जब वनस्पति कच्ची होती है ।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीच के सारभाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी होती है वह छाल भी अनन्त जीव वाली होती है ।

आकारथी प्रत्येक वनस्पतिना समान-सरभी-हेभावावाणी वनस्पति पणु अनन्त लुववाणी डोय छे. तेतुं लक्षणु ये छे. के-नेनां मूलभागने तोडवार्थी समान चक्राकार लंग थाय छे, तेमां नियमथी अनन्त लुव डोय छे. ये प्रमाणे नेनां कन्द लांगवार्थी समान चक्राकार लंग थये. हेभाध आवे तेमां पणु अनन्त लुव डोय छे. येन वात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र-पांढडां, पुष्प, फल अने जीनेना विषयमां पणु समजवी लेधये. आ प्रकारने लंग प्रायः ड्यारे थाय छे के न्यारे वनस्पति काची डोय छे त्यारे थाय छे.

येना सिवाय ने वनस्पतिना वन्धमां सारभागनी अपेक्षा छाल धणी न मोटी डोय छे, ते छाल पणु अनन्तलुववाणी डोय छे.

तथा—किसलयरूपे पत्राङ्कुरे उद्गम्यमाने नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां प्रथमपदे ।

“सर्वोऽपि किसलयो खलु, उद्गममाणो अणंतो भणितो.” इत्यादि ।

छाया—सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन् अनन्त भणितः इत्यादि ।

वनस्पतिभिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः । अन्यच्च—

“गूढशिरागं पत्रं, सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं ।

जंपि य पट्टणसंधिं, अणंतजीवं वियाणाहि ॥ १ ॥” इति । (प्रज्ञा०)

छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीरं यच्च भवति निःक्षीरम् ।

यदपि च प्रणष्टसन्धि, अनन्तजीव विजानीहि ॥ १ ॥ इति ।

तथा—कौंपल जब उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनंत जीव होते हैं । प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

“उगते हुए सभी किसलय अनंतकाय कहे गये हैं ।”

जिस वनस्पति की ग्रंथि या पोर, तोड़नेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनंतजीववाली होती है ।

और भी कहा हैः—

“जिस के तंतु साफ दिखाई न देते हों, तथा जिसकी संधि विलकुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्ता, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनंतजीववाला समझना चाहिए ” ।

तथा—कुंपण ज्यारे उत्पन्न थाय छे त्यारे तेमां पणु अनंत एव डोय छे. प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमां कहुं छे केः—

“उगतां डोय ते सर्वं किसलय (पट्टव तान्नां कुमणा पाननो समूह) अनन्तकाय क्ख्यां छे.”

जे वनस्पतिनी ग्रंथि—गांठ अथवा पोर, तोडवाथी रज्ज्वाली लरेली, डोय अथवा जे वनस्पति, टूटवाथी पृथ्वीना समान बेहोथी तूटे ते पणु अनंत एववाणी डोय छे. पीणुं पणु कहुं छे केः—

“जेनां तंतुज्यो योज्ज्यां देभातां न डोय, तथा जेनी संधि (संधि) भीलकुल देभाती डोय नहि, जेवां पांढडा दूधवाणां डोय अथवा जेमां दूध उत्पन्न डोय नहि, तेने पणु अनंत—एव वाणा समज्जवा जेध जे.”

गूढशिराकमिति=गूढाः=अलक्ष्यमाणाः शिरा=नाडीजालं तन्तुजालमिति वा यस्य तत् । प्रणष्टसंधीति-प्रणष्टः=सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणः, सन्धिः=पत्रद्वयसंयोगरूपो भागो यस्य तत् । एतादृशं पत्रं सक्षीरं=सदुग्धम्, निःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदनन्त-जीवं विजानीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालादयोऽनन्तजीवाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिभावनीयाः । विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिः प्रज्ञापनासूत्रं विलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोदास्तु भगवद्वचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसंघाते सत्यप्यतिसूक्ष्म-त्वान्नास्माकं चक्षुःपथेऽवतरन्ति । “आणागिज्ज्ञा एए चक्खुप्फासं न ते इंति” इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदजीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियो को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अनन्तजीववाली समझ लेनी चाहिए । जिन्हे विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोद भगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में अनन्त जीवों का पिण्ड होने पर भी वे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है—“ये जीव सर्वज्ञकी आज्ञा से ही ग्रहण किये (जाने) जाते हैं । आँखे उन्हें नहीं देख सकतीं” । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोद का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

એ પ્રમાણે સેવાળ આદિ જૂદી-જૂદી વનસ્પતિઓને પણ પોતાની બુદ્ધિથી અથવા ગુરુગમથી અનંત જીવવાળી સમજ લેવી જોઈએ, જેને વિસ્તારપૂર્વક જાણવાની ઇચ્છા હોય તેઓએ પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર જોઈ લેવું જોઈએ.

સૂક્ષ્મનિગોદ ભગવાનના વચનથી જ સમજી શકાય છે (જાણી શકાય છે). એક શરીરમાં અનંત જીવોના પિંડ હોવા છતાં પણ તે જીવ એટલા સૂક્ષ્મ હોય છે કે આપણે આપણાં નેત્રોથી તેને જોઈ શકતા નથી. કહ્યું પણ છે કે:—“તે જીવ સર્વજ્ઞની આજ્ઞા (આગમ)થી જ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે—જાણવામાં આવે છે, નેત્રોથી તે જોઈ શકાતા નથી.” પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં ઉદાહરણની સાથે નિગોદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે—

“ जह अयगोलो धंतो, जाओ तत्तवणिज्जसंकासो ।

सव्यो अगणिपरिणओ, निगोअजीवे तहा जाण ” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यथाऽयोगोलो ध्मातो, जातस्तप्ततपनीयसंकाशः ।

सर्वोऽग्निपरिणतो, निगोजीवान् तथा जानीहि ॥ १ ॥

यथा—अयोगोलोऽग्निना ध्मातः तप्तसुवर्णसदृशः सर्वांशतोऽग्निपरिणतोऽग्नि-  
रूप एव भवति हे शिष्य ! तथैव निगोदजीवान् जानीहि । निगोदजीवानां परिमाण-  
स्वरूपमेव विज्ञेयम्—

अयं लोकश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽस्ति । एको रज्जुरसंख्यातयोजनात्मकः, योजनं  
संख्याताङ्गुलपरिमितम्, एकमङ्गुलमसंख्याताकाशप्रदेशात्मकं भवति । तस्याङ्गु-  
जस्यैकैकाकाशप्रदेशे निगोदानामसंख्याता गोलकाः, एकैकस्मिन् गोलके निगोदानाम-  
संख्यातानि शरीराणि, एकैकस्मिन् शरीरेऽनन्ता जीवा निवसन्ति । उक्तञ्च—

“जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहे का गोला तपे सोने के समान पूर्णतया अग्निरूप  
ही हो जाता है, हे शिष्य ! उसी प्रकार निगोद के जीव समझे ” । निगोद जीवों का परिमाण  
इस प्रकार समझना चाहिए—

लोकाकाश चौदह राजू का है । एक राजू में असंख्यात योजन होते हैं और  
संख्यात अंगुल का एक योजन होता है । आकाश के असंख्यात प्रदेश—परिमित एक अंगुल  
होता है । इस अंगुल के एक—एक आकाश प्रदेश में निगोद जीवों के असंख्यात गोले होते  
हैं । एक—एक गोलक में असंख्यात शरीर होते हैं और एक—एक शरीर में अनन्त जीवों का  
निवास है । कहा भी है—

“ जेम अग्निमा तपावेदो दोढानो गोणो तपेला सोना—प्रमाणे पूर्णपणे  
अग्निरूप ज थर्ध जय छे, हे शिष्य ! जे प्रमाणे निगोदना जव समझे.” निगोदना  
जवोनुं परिमाण—जे प्रमाणे समजवुं जेर्ध जे—

दोकाकाश चौदह राजूना छे. जेक राजूमां असंख्यात योजन थाय छे, अने  
संख्यात अंगुलना जेक योजन थाय छे. आकाशना असंख्यातप्रदेश—परिमित जेक  
अंगुल डोय छे. जे अंगुलना जेक—जेक आकाशप्रदेशमां निगोद जवोना असंख्या  
गोणा डोय छे. जेक—जेक गोलकमां असंख्यात शरीर डोय छे अने जेक—जेक शरीरमां  
अनन्त जवोना निवास छे. कहुं पणु छे—

“गोला य असंखिज्जा, हुंति निगोया असंखया गोले ।

एक्केको य निगोओ अणंतजीवो मुणेयव्वो” ॥ १ ॥

छाया—गोलाश्च असंख्येयाः, भवन्ति निगोदा असंख्येया गोले ।

एकैकश्च निगोदः, अनन्त जीवो ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ इति ।

तत्रस्थप्रत्येकजीवस्य तैजसकर्मणे द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्तः । तदेकैकं शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियावदनन्तान्तरायकर्मणां वर्गणाभिः संयुक्तं वर्तते । सा चैकैका वर्गणाऽनन्तसूक्ष्मपरमाणुमयी भवतीति सूक्ष्मत्वं निगोदजीवानां सिद्धम् ।

ये च शरीरत्रयाङ्गुलासंख्येयभागशरीरादिभेदाः पृथिवीकायोद्देशोऽभिहितास्ते वनस्पतिकायानामपि बोध्याः, केवलमनित्यंस्थम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

“अंगुल के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात गोले, एक गोले में असंख्यात निगोद—शरीर और एक—एक निगोदशरीर में अनंत जीव जानने चाहिए” ॥१॥

निगोद में रहने वाले हरेक जीव के अलग—अलग तैजस और कर्मण शरीर होते हैं, और प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्गणाओं से संयुक्त है, वह एक वर्गणा अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होती है । इस कथन से निगोदिया जीवों की सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

पृथिवीकाय के उद्देश में तीन शरीर तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना आदि का कथन किया है, वह वनस्पतिकाय के लिए भी समझना चाहिए । यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है ।

“अंगुलना अेक आकाशप्रदेशमां असंख्यात गोणा, अेक गोणांमां असंख्यात निगोद—शरीर अने अेक—अेक निगोद शरीरमां अनन्तएव ज्ञातव्वो न्नेध अे.” ॥१॥

निगोदमां रडेवा वाणा हरेक एवने अलग—अलग तैजस अने कर्मण शरीर होय छे, अने प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मोनी वर्गणाओधी संयुक्त छे. ते अेक वर्गणा अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होय छे. आ वचनथी निगोदना एवोनी सूक्ष्मता सिद्ध थाय छे.

पृथिवीकायना उद्देशमां त्रय शरीर तथा अंगुलना असंख्यातमा लागनी अवगाहना आदितुं निरूपणु कथुं छे. ते वनस्पतिकाय माटे पणु समए लेवुं न्नेधअे. अर्द्धि विशेष वात अे छे के:-वनस्पतिना एवोना आधार अनियत (नियमवगरना) होय छे.



नमेपाम्, शेषमन्यत् समानम् । एषां स्थानं घनोदधिवातवलय्यादि । संख्यामङ्गीकृत्या-  
नन्ताः सर्वे वनस्पतयः ।

एवं वनस्पतीनां वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा—वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च  
सहस्रशो भेदा भवन्ति । योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते ।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति । तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः,  
तथा शीतोष्णमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः । एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीनां दशलक्ष-  
संख्यका भेदा भवन्ति । साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते ।

शेष सब पूर्ववत् है । इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि है । संख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त  
सब प्रकार की वनस्पति—संख्या अनन्त है ।

वृक्ष आदि के भेदों की अपेक्षा, प्रत्येक—साधारण की अपेक्षा तथा वर्ण, रस गंध और  
स्पर्श के भेद की अपेक्षा वनस्पति के हजारों भेद होते हैं । योनि आदि के भेदों की अपेक्षा  
विचार किया जाय तो लाखों भेद हो जाते हैं ।

वनस्पति की योनि संवृत है । संवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से  
तीन प्रकार की होती है । शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है । इस  
प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ हैं । साधारणवनस्पति की  
योनियाँ चौदह लाख हैं ।

भाषी तमाम पूर्व प्रमाणे छे. येनुं स्थान घनोदधिवातवलय आदि छे. संख्यानी  
अपेक्षा पूर्वोक्त सर्व प्रकारनी वनस्पति—संख्या अनन्त छे.

वृक्ष आदिना लेदोनी अपेक्षाये, प्रत्येक—साधारण अपेक्षाये तथा वर्ण, रस,  
गंध अने स्पर्शना लेदनी अपेक्षाये वनस्पतिना हजारो लेद थाय छे. योनि  
आदिना लेदोनी अपेक्षाये विचार करवामां आवे तो लाखो लेद थर् नय छे.  
वनस्पतिनी योनि संवृत छे. संवृतयोनि सचित्त, अचित्त अने मिश्रना लेदथी त्रणु  
प्रकारनी होय छे अने शीत उष्ण तथा मिश्रना लेदथी त्रणु प्रकारनी छे. आ  
प्रमाणे गणना करवाथी प्रत्येकवनस्पतिनी दस लाख योनिओ छे, अने साधारण-  
वनस्पतिनी योनिओ चौदह लाख छे.

परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्ररूपणाद्वारम् । परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तवादराः प्रत्येकवनस्पति-  
जीवाः पिण्डीभूत-चतुष्कोणीकृत-लोकश्रेण्यसंख्येयभागवत्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणाः,  
वादरपर्याप्ततेजस्कायजीवराशेश्चासंख्यातगुणाः सन्ति ।

अपर्याप्तवादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवास्तु असंख्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेशा-  
स्तावन्तः सन्ति । इमेऽप्यपर्याप्तवादरतेजस्कायजीवराशितश्चाऽसंख्यातगुणाः । प्रत्येक-  
वनस्पतयः सूक्ष्मा न सन्ति, शास्त्रेऽनुपादानात् ।

साधारणवनस्पतिजीवाः—सूक्ष्मवादरपर्याप्तभेदैश्चतुर्विधा अपि पृथक् पृथगन-  
न्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति । अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वार हुआ । अब परिमाणद्वार कहते हैं—पर्याप्तवादर—प्रत्येकवनस्पति जीव  
चौकोन की हुई लोकश्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर  
है, और वादरपर्याप्ततेजस्काय के जीवों से असंख्यातगुणे हैं । असंख्यात लोककाशों के  
प्रदेशों की बराबर अपर्याप्त वादर प्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव हैं, और ये भी अपर्याप्तवादर-  
तेजस्काय के जीवों से असंख्यात गुने हैं । प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म जीव नहीं होते, क्यों  
कि शास्त्र में कहीं उनका उल्लेख नहीं है ।

साधारण वनस्पति के जीव सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार  
के हैं । इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवराशि की संख्या अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों के  
बराबर है । इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वार थयु. हुवे परिमाणद्वार कडे छे—पर्याप्तवादरप्रत्येकवनस्पति एव,  
चतुष्कोणीकृत लोकाश्रेण्यसंख्यातभागवर्ती आकाशप्रदेशराशि-द्वाराना  
भराभर छे अने वादरपर्याप्ततेजस्कायना एवोधी असंख्यातगुणा छे, असंख्यात  
लोकाकाशराशि प्रदेशराशि भराभर अपर्याप्तवादर प्रत्येकवनस्पतिकायना एव छे. अने ते  
पणु अपर्याप्तवादर तेजस्कायना एवोधी असंख्यातगुणा छे. प्रत्येक वनस्पतिमां  
सूक्ष्मएव नथी, केमके—तेना शास्त्रमां केध स्थाने उल्लेख नथी.

साधारण वनस्पतिना एव सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त अने अपर्याप्तना वेदथी  
चार प्रकारना छे. आ आशिय राशिओमाथी प्रत्येकएवराशिनी संख्या अनन्त  
लोकाकाशना प्रदेशराशि भराभर छे. तेमां अटली विशेषता समज देवी नेधये—

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता असंख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सदृष्टान्तमुच्यते—यथा—कश्चित् प्रस्थादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याऽन्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः ।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तकवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर—वादरवनस्पति—पर्याप्तकेभ्यो-

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा बादर—अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं । बादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा है और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे भी असंख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह बात दृष्टान्त देकर समझाते हैं—जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देखा है, उसी प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अनन्त लोक भर जाएँ ।

पर्याप्त बादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है—

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं । वे प्रत्येकशरीर—वादरवनस्पति

साधारणपर्याप्त जीवों की अपेक्षा बादरअपर्याप्त असंख्यातगुणा छे. बादरपर्याप्तकी अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा छे अने सूक्ष्म-अपर्याप्त तेनाथी पणु असंख्यातगुणा छे.

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, ये बात दृष्टान्त आपीने समझाते छे—जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (तोणवानुं वजन १ शेर) आदि तोणवाना बाँट-वजनथी. धान्य तोणीने भीलु नज्याअे राभी हे छे ते प्रमाणे जे साधारण सूक्ष्म जीवराशिने लोकप्रती प्रस्थथी तोणवानां आवे तो अनन्त लोक भराध नय.

पर्याप्तबादरनिगोद जीवों का परिमाण आ प्रकारे छे—चतुष्कोण घन करेला सम्पूर्ण लोकप्रतरना असंख्यातमा-भागवर्ती प्रदेशोंकी बराबर पर्याप्तबादरनिगोद जीव छे.

ऽसंख्येयगुणाः । शेषास्त्रयः—अपर्याप्तवादरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्त-सूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति । साधारणजीवाश्चैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम् ।

यदि लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैकः प्रत्येकवनस्पतिजीवः स्थाप्यते, तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते । यदि तु लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको निगोदजीवः स्थाप्यते, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—१ पदे ।

“ लोगागासपएसे, परित्तजीवं ठवेहि एककेकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा असंखिज्जा ” ॥ १ ॥

पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा है । शेष तीन अर्थात् अपर्याप्तवादरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर है, और क्रमशः अधिक—अधिक संख्या में हैं । साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं ।

यदि लोकाकाश के एक—एक प्रदेश में एक—एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित किये जायँ तो असंख्यात लोक भर जाँएँ, और यदि लोकाकाश के एक—एक प्रदेश में एक—एक निगोदिया जीव रक्खे जायँ तो अनन्त लोकाकाश भर जाँएँ । प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पदमें कहा है—

“ लोकाकाश के एक—एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक—एक जीव रख दिये जायँ तो असंख्यात लोक भर जाए ॥ १ ॥

ते प्रत्येकशरीर-आहरवनस्पति पर्याप्त एवोथी असंख्यात गणुा छे. आकीना त्रणु अर्थात्-अपर्याप्तआहरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद अने पर्याप्तसूक्ष्मनिगोद असंख्यात-लोकाकाश प्रदेशोना भरार छे, अने क्रमशः अधिक-अधिक संख्यामां छे. साधारण एव अनाथी अनन्त गणुा छे.

जे लोकाकाशना एक-एक प्रदेशोमां एक-एक प्रत्येक वनस्पतिना एवने स्थापित करवामां आवे तो असंख्यात लोक भरार जाय, अने जे लोकाकाशना एक-एक प्रदेशमां एक-एक निगोदिया एवने राभवामां आवे तो अनन्त लोकाकाश भरार जाय.

प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमां कहुं छे के:-

“ लोकाकाशना एक-एक प्रदेशमां जे प्रत्येक वनस्पतिना एक-एक एव राभवामां आवे तो असंख्यात लोक भरार जाय. ” ॥ १ ॥

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि एक्केकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा अणन्ताओ ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायापमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपत-  
न्तीत्याशयेनाह—‘ जे गुणे. ’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवट्टे । जे आवट्टे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुणः ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोद जीव रख दिये जायँ तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जाँएँ ” । इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियो के शब्द आदि विषयों में आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं वे बारम्बार भवसागर में डूबते हैं । इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैं—  
‘ जे गुणे ’. इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त है । जो आवर्त है सो गुण है ॥ सू० २ ॥

“ लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशमां ऐक-ऐक निगोद एव राभवामां आवे तो  
आ प्रकारे राभवामी अनन्त लोक थई जय. ” इति परिमाणद्वार. ॥ सू० १ ॥

इन्द्रियोना शब्द आदि विषयोमां आसक्त थईने जे वनस्पतिकायनी हिंसा  
करे छे. ते बारंवार लव-सागरमां डूपी जय छे. जे अबिप्रायथी शास्त्रकार कहे छे—  
‘ जे गुणे. ’ इत्यादि.

मूलार्थ—जे गुण छे ते आवर्त छे. जे आवर्त छे ते गुण छे. ॥ २ ॥

टीका—

यो गुणः=शब्दादिकः, स आवर्तः—आवर्तन्ते=परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स—आवर्तः—जन्मजराधिव्याधिनानाविधक्लेशसंपातस्वरूपः संसारः । कारणे कार्योपचारात् संसारकारणीभूतस्य शब्दादिगुणस्य संसारत्वेन व्यपदेशः । गुणसेवनात् संसारं प्राप्नोतीति भावः । उक्तमर्थं दृढीकर्तुमुक्तवाक्यं परावर्तयन्नाह—य आवर्त इति । यश्चावर्तः=संसारः, स गुणः=शब्दादिः । रागद्वेषवशगः संसारी नैव शब्दादिगुणतो विरज्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—‘गुणे’ ‘आवर्ते’ इति सप्तम्यन्तम् । यः गुणे=शब्दादौ वर्तते,

टीकार्थ—शब्द आदि जो गुण अर्थात् विषय है वही आवर्त है । जिसमें आवर्तन अर्थात् भ्रमण किया जाय उसे आवर्त कहते हैं । जन्म—जरा, आधि—व्याधि आदि नाना प्रकार के क्लेशों से परिपूर्ण यह संसार ही आवर्त है । शब्द आदि विषय संसार के कारण है, स्वयं संसार नहीं है, किन्तु यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके शब्दादि विषयों को ही संसार कहा है । आशय यह है कि—इन विषयों का सेवन करने से संसार की प्राप्ति होती है । इसी अभिप्राय को दृढ करने के उद्देश्य से वाक्य को पलट कर शास्त्रकार कहते हैं—‘जो आवर्त है वही गुण है’ । राग—द्वेष आदि के अधीन रहने वाला संसारी जीव शब्द आदि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग प्राप्त करता है ।

अथवा—मूल में जो ‘गुणे’ और ‘आवर्ते’ पद आये हैं । वे सप्तमीविभक्ति में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि—जो पुरुष शब्दादि गुणों में वर्तता है वह आवर्त

टीकार्थ—शब्द आदि जे शुष्णु छे, अर्थात् विषय छे तेज आवर्त छे. जेमां आवर्तन अर्थात् भ्रमणु करवामां आवे तेने आवर्त कहे छे. जन्म, जरा, आधि, व्याधि आदि नाना प्रकारना क्लेशोथी परिपूर्णु आ संसारज आवर्त छे. शब्द आदि विषय संसारना कारणु छे. स्वयं संसार नथी, परन्तु अडीं कारणुमां कार्योने उपचार करीने शब्दादि विषयोने ज संसार कह्यो छे. आशय जे छे के:-विषयोनु सेवन करवाथी संसारनी प्राप्ति थाय छे. ते अलिप्रायने दृढ करवाना उद्देश्यथी वाक्यने षट्तीने शास्त्रकार कहे छे—‘जे आवर्त छे ते शुष्णु छे’ रागद्वेष आदिना अधीन रहेवावाणा संसारी एव शब्द आदि शुष्णुथी विरक्त रहेता नथी अने मोक्षमार्गने प्राप्त करता नथी.

अथवा—मूलमां जे ‘गुणे’ अने ‘आवर्ते’ पद आप्यां छे. ते सातमी विलङ्घितां छे. जेने अर्थ जे थयो के—जे पुरुष शब्दादि शुष्णुमां वर्ते छे ते आवर्त अर्थात्—

स आवर्ते=संसारे वर्तते । यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते ।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्तं तत् सम्यगेव, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते । यतस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्रावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमुपपद्यते—'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ? ।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वकं गुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः । एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादि-विषयकत्वाभावान्नास्त्युक्तशङ्कावसर इति ।

अर्थात् संसार में वर्तता है, और जो संसार में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह संसार में वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो संसार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता । भगवान् तीर्थकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक संसार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्तते । अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ?

समाधान—अनुकूल शब्द आदि में राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है । इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है । तीर्थकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अतः यह वाक्य तीर्थकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता । इस प्रकार उक्त शंका का यहाँ स्थान नहीं है ।

संसारमां वर्ते छे, अने जे संसारमां वर्ते छे ते शब्द आदिमां वर्ते छे.

शंका—जे शब्दादि गुणोमां वर्ते छे, ते संसारमां वर्ते छे. आ कथन-तो ठीक छे, परन्तु जे संसारमां वर्ते छे ते नियमथी शब्दादिक विषयोमां वर्तता नथी. भगवान तीर्थकर भावितात्मा मुनि अने प्रतिमाधारी श्रावक संसारमां तो वर्ते छे, परन्तु शब्दादि विषयोमां वर्तता नथी. अे भाटे आ कथन केवी रीते ञनी शके छे, के- 'जे आवर्त्तमां वर्ते छे ते शब्द आदिमां वर्ते छे.'

समाधान—अनुकूल शब्द आदिमां राग उत्पन्न थाय छे अने प्रतिकूल शब्द आदिमां द्वेष थाय छे. आ प्रमाणे राग-द्वेषपूर्वक विषयोमां प्रवृत्ति करवी तेनुं ज अर्ही प्रकरण छे. तीर्थकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयोमां प्रवृत्ति करता नथी, भाटे आ वाक्य तीर्थकर अथवा भावितात्मा मुनि आदिना भाटे दाशुं थतुं नथी. आ प्रमाणे पूर्वे जे शंका करी छे ते शंकाने अर्ही स्थान नथी.

गत्यागतिरूप आवर्तोऽपि न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसारवर्तित्वं सामान्यशब्दादिगुणोपलब्धिश्च सर्वेषां संसारिणां संभवत्येव, तस्माद् गुणोपलब्धिर्न प्रतिषिध्यते । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रतिबोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

“ कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए ” इत्यादि । किञ्च—

“ न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत् ॥ ”

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः खलु वनस्पतिजीवान् बहुशी

गति-आगतिरूप आवर्त भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तीपन और विषयों की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अतः विषयों की उपलब्धि का निषेध नहीं किया जा सकता । हाँ विषयों में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याज्य है । अतः भगवान् ने कहा है—

“ कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए ” इत्यादि ।

“कानों को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए” । तथा—  
आँखोंके आगे आया हुआ रूप अनदेख नहीं किया जा सकता, वह तो दीख ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अलवत्ता उस रूप पर राग या द्वेष करने से हानि होती है । अतः विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग करे ।

आशय यह है—शब्द आदि विषयों में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के जीवों की

गति-आगतिरूप आवर्त पणु तेओने भाटे दुःखरूप नथी. सामान्य संसारवर्तीपणुं अने विषयेनी सामान्य उपलब्धि, सर्व संसारी लोकोभां होय छे. ओथी विषयेनी उपलब्धिने निषेध करी शकतो नथी. डा; विषयेभां ने राग-द्वेषरूप परिणाम छे, तेन त्याज्य-त्यल देवा योग्य छे. ओटवे भगवाने कहुं छे—

“ कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए ” अर्थात् कानोने सुख देवावाणा शब्दो पर प्रीति नहि करवी लेछे. तथा नेत्रोनी सामे आवेला रूप, न दृष्टा-अदृष्ट करी शकता नथी ते तो देवभां आवेन छे, परन्तु तेभां कोछ हानि थती नथी. अलवत्त ओ रूप पर राग अथवा द्वेष करवाथी हानि थाय छे. ओ भाटे विवेकी पुरुष राग अने द्वेषने त्याग करे.

आशय ओ छे के:—शब्द आदि विषयेभां आसक्त पुरुष वनस्पतिकायना लोकोनी



विहिंसन्ति । तथा हि-अनुकूलशब्दश्रवणार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहु-विधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति । प्रियरूपत्रिलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितुं कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति । एवं घ्राणसुखार्थी कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरसचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परि-ग्रहीतुं विविधान् वनस्पतीन् विहिनस्ति । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्दादिगतानसंख्या-ताननन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखाभिलाषी च कमलदलमृणालकदली-दलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे-अनुकूल शब्द सुनने का अभिलाषी पुरुष वेणु, वीणा, पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका, और स्तंभ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के सुखका लोलुप कपूर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लौंग, सरस चन्दन अगर, केसर, जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असंख्यात और अनन्त जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श-सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमलकी दंडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकूल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

घण्टीज हिंसा करे छे. नेम-अनुकूल शब्द सांभलवाना अलिदाषी पुरुष वेणु-वीणा, ढोल आदि वाद्य-वाजित्र बनाववा भाटे नाना प्रकारना वनस्पतिकायना लुवेनी हिंसा करे छे. प्रियरूप लेवाना छच्छुक युवतीनी काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका अने स्तंभ बनाववा भाटे वनस्पतिने कापे छे. अे प्रमाणे घ्राणेन्द्रिय (नासिका)ना सुभना लोलुप-लालयु कपूर, केतकी गुलाब, लवींग, सरसचन्दन, अगर केसर, लयङ्ग, लवन्त्री आदि भेणववाना उद्देश्यथी विविध प्रकारना वनस्पतिकायिक लुवेनी हिंसा करे छे. रसास्वाहना अनुरागी लुव भूण आदि कन्दोमां रडेवावाणा असंख्यात अने अनन्त लुवेनी हिंसा करे छे. अे प्रमाणे स्पर्शसुभना अलिदाषी लुव कमल-पत्तां, कमलकाकडी, केवणनां पत्तां, छाल अने अनुकूल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करवा भाटे नाना प्रकारना वनस्पति लुवेनां प्राण ले छे.

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः संसारं प्राप्नोति, स च संसारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानश्चतुर्गतिकसंसारतो न कदाचिद् बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तःपतनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छेवेत्याह—‘उद्धं’. इत्यादि ।

### मूलम्—

उद्धं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासइ, सुणमाणे सद्दाइं सुणेइ ।  
उद्धं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ सद्देसु यावि । एस लोए  
वियाहिए ॥ सू० ३ ॥

### छाया—

उर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, शृण्वन् शब्दान् शृणोति,  
ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, शब्देषु चापि । एष लोकः व्या-  
ख्यातः ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयों में वर्तमान जीव संसार प्राप्त करता है । संसारी जीव राग-द्वेष से मलिन होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥सू० २॥

शब्द आदि विषयों को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गृद्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं—‘उद्धं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर, नीचे, और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर, नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपोंमें मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोक कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

એ પ્રમાણે વનસ્પતિથી તૈયાર થવાવાળા ઇન્દ્રિય વિષયોમાં વર્તમાન જીવ સંસારને પ્રાપ્ત કરે છે. સંસારી રાગદ્વેષથી મલિન થાય છે, તેથી ફરીને વિષયોમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. આ પ્રમાણે તે કોઈ દિવસ સંસારથી બહાર નીકળી શકતા નથી (સૂ. ૨)

શબ્દ આદિ વિષયોને ગ્રહણ કરવા માત્રથી સંસારમાં પતન થતું નથી. પરન્તુ તેમાં મૂર્ચ્છા (ગૃહ્ણિ) થવાથીજ પતન થાય છે. તે કહે છે—‘ઉદ્દં.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ઉપર, નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં દૃષ્ટિ નાંખીને રૂપોને જુવે છે, સાંભળતા થકા શબ્દ સાંભળે છે, ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં રૂપોમાં અને શબ્દોમાં પણ મૂર્ચ્છિત થાય છે. આ લોક કહેવાય છે. ॥ ૩ ॥

## टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया उर्ध्वम्=उर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरप्रासादहर्म्याद्युपरि-  
भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं  
विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिप्रासादहर्म्यादिकं, प्राचीनं-तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्,  
प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिशो  
विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्ष्व-  
स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=  
चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपवद्रव्याणि शालमठिजकादीनि  
स्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(देखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर  
पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौंहरा आदि अधोदिशा में स्थित,  
पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल  
आदि को देखता है । मूल में आये हुए 'पाईणं' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का  
विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के  
साथ संबंध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित  
तथा तिरछी दिशामें स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से  
आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह  
को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(लेनारनी) दिशानी अपेक्षा ऊर्ध्व दिशाभां-पर्वतना शिखर  
पर तथा प्रासाद अथवा भडेल आदिना उपर लागभां, स्थित, लोयरा आदि  
अधोदिशाभां स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओभां स्थित, तथा विदिशाओभां स्थित  
लीं, हवेली अने भडेल आदिने हेजे छे. मूलभां आवेदो 'पाईणं' अर्थात् प्राचीन  
शब्दने तिरछी दिशाना विवरणरूप समजवे लोईये, अथवा प्राचीन पद ऊर्ध्व,  
अधः अने तिर्यक् सर्व दिशाओनी साथे संबंध राजे छे. तात्पर्य ये निकजे छे के-  
ऊर्ध्व दिशाभां स्थित, अधोदिशाभां स्थित, तथा तिरछी दिशाभां स्थित प्राचीन अर्थात्  
आधुनिक शिल्पकारो भाटे दुष्कर होवाथी आश्चर्य उत्पन्न करवावाणा पुराणा पदार्थोनी  
तरक् नजर करता थका सुन्दर पुतलीये वगेरेने तथा स्त्रीआदिना रूपने हेजे छे.

तथा—एतासु दिक्षु च शृण्वन्=श्रोत्रोपयोगयुक्तः सन् शब्दान् वेणुवीणादि-समुत्थान् गीतनादादिकान् वा शृणोति । श्रोत्रोपयोगाभावे तु न शृणोतीत्यर्थः । उपलक्षणमेतत्—जिघ्रन् गन्धान् जिघ्रति, रसयन् रसान् रसयति, स्पृशन् स्पर्शान् स्पृशति ।

इह दर्शनश्रवणाभ्यां रूपादिगुणोपलब्धिमात्रं प्रदर्शितम् । ऊर्ध्वार्धस्तिर्यक्पदोपादानेन च रूपादिगुणानां सर्वदिग्व्यापित्वेन तदुपयोगो दुष्परिहरोऽस्तीति प्रतिबोधितम् । रूपादिगुणोपयोगमात्रेण संसारगर्तावर्तसंपातो न भवति, किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति बोधयितुमाह—‘उड्डं.’ इत्यादि ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त दिशाओं में श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग लगा कर वेणु वीणा आदि वाद्यों का, तथा गीत आदि का शब्द सुनता है । श्रोत्र का उपयोग न हो तो नहीं भी सुनता है । यह कथन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि घ्राण, रसना और स्पर्श इन्द्रिय का उपयोग लगाकर सूंघता है, चखता है और स्पर्श करता है ।

यहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलब्धिमात्र सूचित की है । ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकट किया है कि-इन्द्रियों के विषय-रूप आदि, सभी दिशाओं में भरे पडे है । ऐसी स्थिति में उनकी ओर ध्यान न जाने देना तो बड़ा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने मात्र से संसार के गड्ढे में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकट करने के लिए कहा है—‘उड्डं.’ इत्यादि ।

એજ પ્રમાણે પૂર્વોક્ત દિશાઓમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને વેણુ-વીણા આદિ વાજીત્રાના તથા ગીત આદિના શબ્દો સાંભળે છે. શ્રોત્રનો ઉપયોગ ન હોત તો સાંભળત નહિ. આ કથન ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ સમજાવેલું છે કે, ઘ્રાણ, રસના અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને સૂંઘે છે, ચાખે છે, અને સ્પર્શ કરે છે.

અહીં દેખવા અને સાંભળવાથી રૂપ આદિ ગુણોની ઉપલબ્ધિ માત્ર સૂચિત કરી છે. ઉર્ધ્વ, અધઃ તથા તિર્યક્ પદ આપીને એ સૂચિત કર્યું છે કે-ઇન્દ્રિયોના વિષય રૂપ આદિ, સર્વ દિશાઓમાં ભર્યા પડ્યા છે. એવી સ્થિતિમાં તેની તરફ ધ્યાન નહિ જવા દેવું તે તો ભારે કઠિન કામ છે. પરન્તુ રૂપ આદિ ગુણોની તરફ ઉપયોગ જવા માત્રથી સંસારના ખાડામાં પડવાનું થતું નથી, પતન-પડવાનું તો ભારે થાય છે કે ન્યારે. તેમાં મૂર્છા-અથવા રાગ-દ્વેષ થાય. આ વાત પ્રગટ કરવા માટે કહ્યું છે:—‘ઉડ્ડં.’ ઇત્યાદિ.

पुनरुर्ध्वादेरुच्चारणं कस्याश्चिदेकस्यामपि दिशि रूपादिषु मूर्च्छया संसारं प्राप्नो-  
तीति बोधनार्थम् ।

ऊर्ध्वादिदिक्ष्वस्थितं रूपगुणं प्रति मूर्च्छन्=रागादिपरिणामं कुर्वन् सदसद्वि-  
वेकशून्यो भवन् वा रूपेषु=मनोहरेषु रूपवद्रव्येषु स्यादिरूपेषु वा मूर्च्छति=लोलुपो  
भवति । एवं शब्देषु च मूर्च्छति । अपिग्रहणाद् गन्धरसस्पर्शेषु मूर्च्छति=गृध्नुर्भवति ।  
एषः=मूर्च्छाविषयीभूतो रूपादिगुणः, लोकः=संसारः, कारणे कार्योपचारात् मूर्च्छाविष-  
यीभूतरूपादिगुणात्मको लोक इति व्याख्यातः=भगवता कथितः । ॥ सू० ३ ॥

संयमे गृहीतेऽपि प्रमादवशेन रूपादिगुणेषु मूर्च्छासुपगतः सन् पुनरगारित्व-  
मापद्यते-इति दर्शयति-‘एत्थ अगुत्ते.’ इत्यादि ।

दोवारा ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करके यह बतलाया है कि-किसी भी एक  
दिशामें स्थिति रूपादि में मूर्च्छा होने पर भी संसार की प्राप्ति होती है ।

ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित रूप आदि विषयों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता  
हुआ, सत्-असत् के विवेक से शून्य होकर मनोहर रूपों में या मनोहर रूपवाली स्त्री  
आदि के रूपों में पुरुष लोलुप हो जाता है । इसी प्रकार शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है ।  
गंध, रस, तथा स्पर्श में भी मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा का विषयभूत यह रूप आदि ही,  
कारण में कार्य का उपचार करने से संसार कहलाता है । ऐसा भगवान् ने  
फरमाया है ॥ सू० ३ ॥

संयम ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी प्रमाद के वश में होकर रूप आदि गुणों में मूर्च्छा को  
प्राप्त होनेवाला फिर गृहस्थ बन जाता है, यह बात बतलाते हैं:-‘एत्थ अगुत्ते.’ इत्यादि ।

येवार ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करीने ओ षताव्युं छे के-केअ पणु ओक दिशांमां  
स्थित रूपादिमां मूर्च्छां थतां पणु संसारनी प्राप्त थाय छे. ऊर्ध्व आदि दिशाओंमां स्थित  
रूप आदि विषयोमां राग-द्वेषरूप परिणाम करता थका सत्-असत्ना विवेकमां शून्य  
थधने मनोहर रूपोमां अथवा तो मनोहर रूपवाणी स्त्री आदिना रूपोमां पुरुष लोलुप  
थधं नय छे. ओ प्रमाणे शब्दोमां मूर्च्छित थधं नय छे. गंध, रस तथा स्पर्शमां पणु  
मूर्च्छित थधं नय छे. मूर्च्छाणा विषयभूत (मूर्च्छां थवानु कारण) आ रूप आदिना, कारणमां  
कार्योने उपचार करवाथी, संसार कडेवाय छे. ओ प्रमाणे भगवाने इरमाव्युं छे. (सू. ३)

संयम ग्रहण करी लीधा पछी पणु प्रमादवश थधने रूप आदि गुणोमां मूर्च्छा  
प्राप्तवावाणा इरीने गृहस्थ षनी नय छे. ओ बात षतावे छे:-‘एत्थ अगुत्ते.’ इत्यादि.

मूलम्—

एत्थ अगुत्ते अणाणाए, पुणो पुणो गुणासाए, वंक्रसमायारे पमत्ते अगारमावसे  
॥ सू० ४ ॥

छाया—

अत्र अगुप्तः अनाज्ञायां पुनःपुनर्गुणास्वादः, वक्रसमाचारः प्रमत्तः अगारमाव-  
सति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् रूपादिगुणे, अगुप्तः=मनोवाक्कायगुप्तिरहितः मनसा-  
रूपादिषु रज्यते, वचसा प्रार्थयति, कायेन तदभिमुखं प्रवर्तते, स चागुप्तः अनाज्ञायाम्=  
अनाचारे वर्तमानः भगवदाज्ञावर्हिर्वर्ती, अत एव पुनःपुनर्गुणास्वादः=असकृद्  
विषयसुखानुभवरसिकः, अत एव वक्रसमाचारः-वक्रः=कुटिलः समाचारः=

मूलार्थ—रूपादि विषयो में मन वचन कायका व्यापार न रोकने वाला भगवान्की  
आज्ञा से बाहर है, बार-बार विषयोंका आस्वादन करने वाला कुटिलाचारी, प्रमादी (साधु)  
फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

टीका—रूप आदि विषयों में मन, वचन और काय की गुप्ति से रहित  
अर्थात् मन से राग करने वाला, वचन से विषयों की प्रार्थना करने वाला और काय  
से उनमें प्रवृत्ति करनेवाला ऐसा अनाचारी साधु भगवान की आज्ञा से बाहर हो  
जाता है। वह बारम्बार विषयसुखों के भोग में रसिक होकर कुटिल आचारवाला

भूतार्थ—रूपादि विषयोमां मन, वचन अने कायानां व्यापारने नहि रोकवा  
वाणा, ते लगवाननी आज्ञाथी अडार छे. वारंवार विषयोनुं आस्वादन करवावाणा,  
कुटिलाचारी-प्रमादी (साधु) पाछा गृहस्थ अनी नय छे.

टीकार्थ—रूप आदि विषयोमां मन, वचन अने कायानी गुप्तिथी रहित  
अर्थात् मनथी राग करवावाणा, वचनथी विषयोनी प्रार्थना करवावाणा अने कायथी  
तेमां प्रवृत्ति करवावाणा, अेवा अनाचारी साधु लगवाननी आज्ञाथी अडार थछं नय छे.  
ते वारंवार विषयसुखोना लोगमां रसिक थछंने कुटिल आचारवाणा-अर्थात् असंयमनुं

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः—असंयमानुष्ठाया, नरकादिगतिजनकत्वादसंयमस्य वक्रतया व्यपदेशः । इत्थम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं=गृहम् आवसति । गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृहस्थो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो-ति एगे पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असंयम का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर-वास में आजाता है । वह संयम धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के वश होकर विषयों में आसक्त होने के कारण फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्र के आरंभ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा अग्निशस्त्र के आरंभ में प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ में संकोच करने वाले साधुओं को अलग देखो । तथा ‘हम अनगार हैं’ इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

सेवन करवावाणा प्रमादी इरी घरवासमां आवी नय छे. ते संयम धारणु कर्या पछी पणु प्रमादने वश थधने विषयोमां आसक्त थवाना कारणे इरी गृहस्थ णनी नय छे. (सू४)

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्रना आरंभना सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगारोनुं तथा अग्निशस्त्रना आरंभमां प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गीओनुं विवेचन करीने उपदेश आपे छे:—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि.

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरंभमां संकोच करवावाणा साधुओने नुदा नणुओ. तथा ‘अमे अणुगार छीओ’ आ प्रमाणु कडेवावाणा, नाना प्रकारना शस्त्रोथी वनस्पति

विरुवरूवेहि सत्थेहि वणस्सइक्कम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थ समारंभमाणा अण्णे  
अणेगरूवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूप-  
रूपैः शस्त्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान्  
प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयार्द्रहृदयतया वनस्पतिकायसमारम्भे पराङ्मुखाः,  
वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः=केचित् प्रत्यक्ष-  
ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्यायकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति  
पश्य ।

यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे-सूक्ष्मवादर-  
वनस्पतिकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वनस्पतिकायसमार-  
म्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति विलोकयेत्यर्थः ।

वनस्पतिकाय का आरंभ करने वाले, वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार  
के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ५ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त करुणा से आर्द्र हृदयवाले मुनि वनस्पतिकाय के आरंभ से विमुख  
रहते हैं । ऐसे मुनि कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, और केवलज्ञानी होते हैं, और कोई-  
कोई परोक्षज्ञानी ( मति-श्रुत ज्ञान के धारक ) भावितात्मा होते हैं उन्हें देखो ।

अथवा इन्हें द्रव्यलिङ्गियों से अलग ही समझना चाहिए । यह अनगार सूक्ष्म और  
वादर वनस्पति का आरंभ करने में भीत, त्रस्त, उद्विग्न है । तीन करण, तीन योग से  
वनस्पतिकाय के आरंभ के त्यागी है ।

कायनो आरंभ करवावाणा, वनस्पति शस्त्रनो आरंभ करता थका अन्य अनेक  
प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे ॥ ५ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त करुणाथी आर्द्र हृदयवाणा मुनि वनस्पतिकायना आरंभथी  
विरुद्ध रहे छे. ओवा मुनि कोर्ध-कोर्ध अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी अने केवलज्ञानी, डोय  
छे. अने कोर्ध-कोर्ध परोक्षज्ञानी ( मति-श्रुतज्ञानना धारक ) भावितात्मा डोय छे तेने लुओ.

अथवा तेने द्रव्यलिङ्गिओथी नूदाव समज्जवा नेछओ ते अणुगार सूक्ष्म अने  
वादर वनस्पतिकायनो आरंभ करवामां थीओला-लयवाणा, त्रस्त, उद्विग्न छे. त्रणु  
करणु त्रणु योगथी वनस्पतिकायना आरंभना त्यागी छे.



एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः='वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं दण्डलकुटादयः । परकाय-शस्त्रं=कर्तरी-पाषाण-हस्त-पाद-मुख-वह्न्यादयः । उभयकायशस्त्रं=वासी-दात्र-

इनसे विपरीत कोई-कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं—'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी हैं,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी साधुओं को अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते । ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्.' इत्यादि ।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरंभ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं । वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र । डंडा लकड़ी वगैरह स्वकायशस्त्र है । कैची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

तेनाथी विपरीत-विद्भ्रं कोर्ध-कोर्ध 'अमे अणुगार छीये' आ प्रभाणे अलिमान पूर्वक कहे छे—'अमेण वनस्पति जिवोनी रक्षा करवाभां तत्पर अने महाव्रतधारी छीये' आ प्रभाणे प्रलाप-(अकवाट) करनारा द्रव्यलिङ्गी साधुओने जुदा समझे.

अणुगार होवानु अलिमान करनारा ये द्रव्यलिङ्गी साधु अणुगारना शुष्ण भाटे जरा पणु प्रवृत्ति करता नथी ते गृहस्थोनां कोर्ध पणु कामना त्याग करता नथी. ये अतावे छे. 'यदिमम्.' इत्यादि.

नाना प्रकारना वनस्पतिकायनां शस्त्रो वडे वनस्पतिकायना आरंभ करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे. वनस्पतिशस्त्र जे प्रकारनां छे—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्र. द्रव्यशस्त्रनां त्रणु लेह छे—(१) स्वकायशस्त्र, (२) परकायशस्त्र, अने (३) उभयकायशस्त्र. डंडा, लकड़ी वगैरे स्वकायशस्त्र छे, केथी-(कातर, सांणुसो) पत्थर, हाथ, पैर,

कुठारादयः । भावशस्त्रं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । वनस्पति-  
कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणी-  
यादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकायं विहिंसन्ति ।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-  
त्याह-‘वनस्पतिशस्त्र’-मित्यादि । वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्त-  
प्रकारं, समारम्भमाणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्,  
अनेकरूपान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः  
हिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र-

परकायशस्त्रं हैं । वसूला, दांती, कुठार आदि उभयकायशस्त्रं हैं । वनस्पतिकाय के प्रति मन,  
वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है । इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका  
आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार  
करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक  
की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, ‘वनस्पतिशस्त्रम्’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के  
अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों  
की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

मुष्ण अने अग्नि आदि परकायशस्त्रं छे. वसूला दांती-दातरडुं, कुठार-कुडाडे आदि  
उभयकायशस्त्रं छे. वनस्पतिकाय प्रति मन, वचन अने कायने असत्-प्रयोग करवे  
ते भावशस्त्रं छे. ये शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायने आरंभ करीने-ज्ञानावरणीय आदि आठ  
प्रकारना कर्मोंने उत्पन्न करवावाणा सावद्य व्यापार करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे.

ये वनस्पतिकायनी हिंसाभां प्रवृत्त थाय छे. ते छहजीवनिकायरूप समस्त  
लोकनी हिंसा करे छे. ये अतावे छे-‘वनस्पतिशस्त्रम्.’ इत्यादि.

वनस्पतिकायना हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रने आरंभ करवावाणा लोक वनस्पति-  
कायना अतिरिक्त पृथ्वीकाय, आदि अन्य स्थावरोंने तथा वनस्पति आश्रित द्वीन्द्रिय-  
ये द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोंने यथु हिंसा करे छे.

संसारभां अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गी छे. तेभांथी शाक्य आदि कंद, मूल, पत्ता,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षड्जीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोऽपि “ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः ” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावधमुपदिशन्ति, शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं बन्धयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति । तथाहि—

“ काले सुइभूषणं, विसिद्धपुष्पाइएहिं विहिणा उ ।

सारथुइथोत्तगरुई, जिणपूया होइ कायव्वा ॥ १ ॥ ” (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु ।

सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्ता, फूल आदि खाने के लिए वनस्पति का आरंभ करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं । ऐसा करके वे षड्जीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं । “हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं ” ऐसा कहने वाले दंडी झूठे साधु भी सावध का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध किये हुए वनस्पतिकाय के आरंभ का उपदेश देते हैं ।

वे व्याख्यानमंडप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से बन्दनवार आदि बँधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पत्तों से पंचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावकों) को प्रवृत्त करते हैं । जैसे—

“उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवानकी पूजा करनी चाहिए ” ।

इंद आदि भावा भाटे वनस्पतिने। आरंल करे छे, अने करावे छे, अने करवा-वाणाने अनुमोदन आये छे. अे प्रमाणे करीने ते षड्जीवनिकायनी विराधनाना लागीदार थाय छे. ‘अमे पंच महाव्रतधारी, जिन लगवाननी आज्ञाना आराधक अष्टगार छीअे.’ आ प्रमाणे उडेवावाणा दंडी जुठा साधु पाणु सावधने उपदेश आये छे, अने शास्त्रमां निषेध करवामां आवेदो वनस्पतिकायना आरंलने। उपदेश आये छे.

ते व्याख्यान—मंडप आदिमां अशोकवृक्षनां पांढांथी तोरणु आदि अंधावे छे. नाना प्रकारना इल—इल अने पांढांथी पंचोपचार आदि पूजाओंमां (श्रावकेने) प्रवृत्त करे छे—जेडे छे. जेम—“ उचित समय—योग्य समय पर विधिपूर्वक विशिष्ट—उत्तम पुष्प आदि द्वारा सुन्दर स्तोत्र, स्तुतिपूर्वक जिन लगवाननी पूजा करवी जेधअे. ”

अपरञ्च-उमास्वातिवाचककृतप्रकरणे—

‘मध्याह्न कुसुमैः पूजा’ इति । ‘गन्धवासाक्षतैः स्रग्भिः’ इति ।

‘प्रधानैश्च फलैः पूजा’ इत्यादि । किञ्च—

“न शुष्कैः पूजयेद्देवं, कुसुमैर्न महीगतैः ।

न विशीर्णदलैः स्पृष्टैः, -र्नाशुभैर्नाविकासिभिः” ॥ १ ॥

‘न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीगतैः’—इत्यनेन ‘आर्द्रै स्त्रोष्टि तैश्च कुसुमै-  
र्देवं पूजयेत्’—इत्यर्थोऽवगम्यते । अहो ! कीदृशो महासावधोपदेशस्तेषाम् ।

एवं देवमन्दिरादीं कदलीस्तम्भादिरोपणेन, अशोकादिवृक्षपत्रैर्वन्दन—

पञ्चाशकवृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

“मध्याह्न में फूलों से पूजा की जाती है ।” “गंध, वास और अक्षत से तथा मालाओं से पूजा होती है ।” उत्तम फलों से पूजा की जाती है ” इत्यादि । और भी कहा है—

“सूखे, जमीन पर गिरे हुए, टूटी पँखुडीवाले, छुए हुए, खराब और बिना खिले फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिए ” ।

‘सूखे और जमीन पर गिरे हुए फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये’ इसका अभिप्राय यह हुआ कि ताजे और तोड़े हुए फूलों से पूजा करनी चाहिये अरेरे ! उनका वह कैसा सावध उपदेश है ।

इस प्रकार देवमंदिर आदि में कदलीस्तंभ खडा करके, अशोक वृक्ष के पत्तों से

पञ्चाशकवृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरणमां कथ्यं छे—

‘मध्याह्नमां कूटोवडे पूजा करवामां आवे छे.’ ‘गंध, वास अने अक्षतथी तथा भाणाओथी पूजा थाय छे.’ ‘उत्तम कूणोथी पूजा करवामां आवे छे.’ इत्यादि. भीष्णुं पणु कथ्यं छे के:—

“सूकां, जमीन पर भरी पडैलां, जेनी पांणडी तुटी गध डोय, स्पर्श करौएलां, भराभ अने णिदया विनानां कूटोथी पूजा नडि करवी नैछे अे. ”

‘सूकां अने जमीन पर भरी पडैलां कूटो वडे पूजा न करवी नैछे अे’ आने। अलिप्राय अे थयो के लीलां अने ताजां तोडैलां कूटोथी पूजा करवी नैछे अे. अरेरे ! तेओने। आ सावध उपदेश केवे। छे ?

आ प्रभाषे देवमंदिर आदिमां केणना स्थंल उला करीने अशोकवृक्षनां पांणडांथी

मालिकादिवन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिमर-  
सालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिहिंसां कारयन्तस्ते तदाश्रिताननेकविधान्  
त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि-वीतरागाणां सावद्या सपर्यां समुचिता,  
'एस खलु गंधे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिपिद्धत्वात् ।  
नहि तत्तत्यागिभ्यस्तत्तत्त्यक्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांस-  
त्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोपाय जायते । अलं बहुना ! हरितकन्दमूलादि-  
त्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु  
मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—'तत्थ.' इत्यादि ।

वन्दनवार बांधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम,  
आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति को हिंसा करते हुए वे वनस्पति-आश्रित अनेक  
प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावद्य होना  
उचित्त नहीं है । 'एस खलु गंधे.' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरंभों का  
वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि  
उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य-मांस का त्याग करने वालों  
को मद्य-मांस की भेंट संतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहे ! हरित कंद मूल के  
त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं  
विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं—'तत्थ.' इत्यादि ।

वन्दनवार बांधीने, प्रतिमा उपर सचित्त पांढडा, डूल आदि चढावीने, सचित्त नाजियेर,  
दाडिम, आंभा आदि नैवेद्यना उपचारथी वनस्पतिनी हिंसा करीने ते वनस्पति-आश्रित  
अनेक प्रकारना त्रस-स्थावर जीवोना घात करावे छे. वीतरागदेवनी पूजा सावद्य होय  
ते योग्य नथी. 'एस खलु गंधे.' इत्यादि कथन द्वारा आ आगममां तमाम सभा-  
रलोना वीतराग भगवाने साक्षात् निषेध कथे छे. जे पुरुष जे वस्तुना त्यागी छे,  
तेनी प्रसन्नता ते वस्तुने अर्पण करवाथी थछ शकती नथी. लोकमां मद्य-मांसना  
त्यागी-त्याग करवावाजाने मद्य-मांसनी भेंट संतोष उत्पन्न करती नथी, अधिक थुं  
कहीये ! लीला कंदमूलना त्यागी श्रावक यथु लीला कन्दमूलनी भेंटथी प्रसन्न थता  
नथी तो बुद्धिमान् पुरुष पोते विचार करी लीये. ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—'तत्थ.' इत्यादि.

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदण-  
माणण-पूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुःखपडिघायहेउं, से सयमेव वणस्सइसत्थं  
समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वणस्सइसत्थं समारंभमाणे  
समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-  
पूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव वनस्पतिशस्त्रं समार-  
भते, अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान्  
समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

तत्र=वनस्पतिकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा=सम्यग्ब-  
बोधः खलु=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परि-

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के संबंध में भगवान् ने सम्यक् बोध दिया है ।  
इस जीवन के वन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए तथा  
दुःखों का विनाश करने के लिए स्वयं वनस्पतिकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से  
आरंभ करता और आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है । वह आरंभ उस के  
अहित के लिए, उसकी अबोधि के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने  
सम्यक् उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान ने बतलाया है कि-कर्मबंध को नष्ट करने के

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरंभना सम्बंधमां लगवाने सम्यक् बोध आप्थे।  
छे. आ लुवनना वंदन, मानन, अने पूजन भाटे, जन्म-मरणुथी छुटवाने भाटे  
तथा दुःखोने विनाश करवा भाटे स्वयं वनस्पतिकायशस्त्रने आरंभ करे छे, भील  
पासे आरंभ करवे छे, अने आरंभ करवावाणा भीलने अनुमोदन आप्थे छे. ते  
आरंभ तेना अहित भाटे तेमज तेनी अबोधि भाटे होय छे. ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकायना आरंभना विषयमां लगवान श्री महावीर स्वामीने  
सम्यक् उपदेश आप्थे छे. अर्थात् लगवाने गताव्युं छे के-कर्मबंधने नष्ट करवा भाटे

ज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

### उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपदयती ? त्याह—' अस्य चैव जीवितस्ये '—त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्=आहार-वस्त्र-पात्र-माल्य-गन्ध-चूर्ण-तालवृन्ता-सर्गला-खट्वा-पल्यङ्ग-शिविका-शकट-हल-मुसल-पीठ-फलक-सिंहासन-दण्ड-लकुट-कपाट-वीणा-शालभञ्जिका-निर्माण-तापन-प्रतापन-प्रकाशने-न्धन-तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

### उपभोगद्वारम्—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं—इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला गंध, चूर्ण, तालवृन्त (पंखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, पीढा, (वाजोट) फलको (पाट), सिंहासन, डंडा, लकडी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे—कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता वगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता वगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

उपने परिज्ञा (उपदेश)ने अवश्य स्वीकार करवे लोभये.

### उपभोगद्वारम्—

लोक शुं प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे ? ते अतावे छे—आ नाश पाभवावाणा उपना सुभ भाटे, अर्थात्—आहार, वस्त्र, पात्र, माला, गंध, चूर्ण, पंखा आगरियो, पाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, आनेक, पाट, सिंहासन, डंडा, लाकडी, कमाड, वीणा, पुतली वगैरे अनाववा भाटे, तपाववुं विशेष तपाववुं, प्रकाशन, धन्धन—(आणवाना लाकडा) अने तैल आदिना प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे. तथा प्रशंसा भाटे पणु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेभके—कोई पुरुष पोतानी प्रशंसा भाटे अगीया आदिमां पांढडा वगैरे कापवानी कलाभां कुशलता अताववाना अलिप्रायथी

गजाश्वमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं दधाना वृक्षादयस्तस्योपवनादेर्विशिष्टशोभां जनयन्ति ।

माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, यथा—स एव पत्रादिकर्तनकलाकुशलो मालाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीशस्त्रेण वृक्षलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति । पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थम्, यथा—देवप्रतिमाद्यर्थं पत्रपुष्पफलादीनां त्रोटने । तथा—जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणबन्धमोचनार्थं, यथा—मुक्तिकामन पूजायां पुष्पपत्रादिसमुच्छेदने, तथा—दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिशमनाद्यर्थम्—ओषधि-वृक्षलतादीनां मूलकन्दशाखापत्रपुष्पफलादिभेदने, स जीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव

हाथी, घोडा, हिरन, बाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस वगीचे की सुन्दरता बढ़ती है, ऐसा जानकर करता है ।

जनसत्कार के लिए भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे—पत्ता वगैरह काटने में कुशल वही पूर्वोक्त माली कैंची से वृक्षों या लताओं के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन के लिए अर्थात् वस्त्रों और रत्नों के लिए भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । जैसे—देव प्रतिमा आदि के लिए पत्र, फूल, फल तोड़ने में ।

जन्म मरण से छुटकारा पाने से लिए भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे—मुक्ति की इच्छा से पूजा के लिए फूल—फल तोड़ने में । दुःखों का प्रतीकार करने के लिए भी यह हिंसा की जाती है । जैसे—रोग मिटाने के लिए ओषधि, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है ।

वृक्ष लता वगेरेने अेवा प्रकारे कापे छे के तेमां हाथी, घोडा, हरण, बाघ, सिंह आदिने। आकार गनी नय छे, अने तेथी अे गगीयानी सुंदरता वधे छे. अेवुं समलनेज करे छे.

जन-सत्कार माटे पणु वनस्पतिनी हिंसा करवाभां आवे छे, नेम-पांढडां वगेरेने कापवाभां कुशल आगण कडेवो तेज भाणी कुँची (कातर)थी वृक्षो अथवा लताअेनां पत्तां आदि कापे छे. तथा पूजन माटे अर्थात् वस्त्रो अने रत्नोने माटे पणु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, नेम-देवप्रतिमा आदि माटे पत्र फूल इल तोडवाभां.

जन्म-मरणथी छुटवा माटे पणु पूर्ण कडेली हिंसा करवाभां आवे छे, नेमके-मुक्तिनी छच्छाथी पूजा माटे इल इल तोडवाभां.

दुःखोने। प्रतिकार करवा माटे पणु अे हिंसा करवाभां आवे छे. नेमके-रोगनिवारण करवा माटे औषधी, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल आदि तोडवाभां हिंसा करवाभां आवे छे.



वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति । अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति ।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अवोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति । ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—‘से तं.’ इत्यादि ।

### मूलम्—

से तं संवुज्झमाणे आयाणीयं समुदाय सोच्चा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है—‘से तं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ-बूझकर संयम

अे प्रभाणे ँवनने सुधी ँनाववाना अबिलाषी ते पुरुष वनस्पतिकायनी हिंसा करवावाणा द्रव्य अने लाव शस्त्रने स्वयं ँपयोग करे छे, भीन्ना चासे ँपयोग करावे छे अने वनस्पतिशस्त्रने ँपयोग करवावाणा भीन्नाने अनुमोदन आये छे.

वनस्पतिकायने आ आरंल, आरंल करवावाणाने, कराववावाणाने अने अनुमोदन करवावाणाने अहित भाटे छे अने सम्यक्त्वनी अप्राप्तिनुं कारणु अने छे. ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपे वनस्पतिकायनुं स्वयं ँणु ँणु लीधुं छे. ते आ प्रभाणे विचार करे छे—‘से तं.’ इत्यादि.

मूलार्थ—ते पुरुष लगवान अथवा अणुगारे पासेथी सांभणी-सभणु-धुञ्जिने

गाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरणे । इच्चत्थं गट्टिए लोए, जमिणं विरुवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥सू० ७॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः । इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरुपरूपैः शस्त्रः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयसर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्र्यं, समुत्थाय=भङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=वनस्पतिकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—‘एवं खलु०’ इत्यादि ।

ग्रहण करके विचरता है । वह इस प्रकार समझता है—वनस्पतिकाय का आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । गृद्ध लोग इसके लिए नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पतिकाय का आरंभ करके, शस्त्र का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राणियों का घात करते हैं ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर से या उनके श्रमण निर्ग्रन्थों से सर्वसावद्य त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचरता है वह वनस्पतिकाय के आरंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझकर इस प्रकार विचार करता है:—‘एवं खलु०’ इत्यादि ।

संयम अडुणु करीने विचरे छे. ते आ प्रमाणे समने छे—वनस्पतिकायने आरंभ ग्रंथ छे, ये मोह छे, ये मार छे, ये नरक छे. गृद्ध लोक ये भाटे नाना प्रकारना शस्त्रेथी वनस्पतिकायने आरंभ करीने शस्त्रने प्रयोग करता थका भीलं पणु अनेक प्राणीअनेना घात करे छे. ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थंकरथी अथवा तेमना श्रमण निर्ग्रन्थे पासेथी सर्व-सावद्य (कर्मना) त्यागरूप संयमना स्वरूपने समणु ते अने तेने अंगीकार करीने विचरे छे, ते वनस्पतिकायना आरंभने अहितकर अने अबोधिजनक समणु आ प्रमाणे विचार करे छे—‘एवं खलु०’ इत्यादि.

इह=मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यग्बोधवैराग्याणामा-  
त्सार्थिनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु०’  
इत्यादि ।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्यो-  
पचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते ।  
एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-  
अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष एव नरकः=  
नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य  
उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है । क्या विदित होता है ? इस शका का  
समाधान करने के लिए आगे कहते हैं—‘ एष खलु ग्रन्थ० ’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से ग्रन्थ अर्थात् कर्मबन्धरूप है । कारण में कार्य का  
उपचार करके आरंभ को कर्मबन्ध कहा है । वस्तुतः वह कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार  
आगे भी समझ लेना चाहिए ।

वनस्पतिकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है—अज्ञानजनक है । यह मार है  
अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार  
की यातना का कारण है ।

आ मनुष्यलोकमां जेने निर्ग्रन्थाना उपदेशथी सम्यग्ज्ञान, अने वैराग्य उत्पन्न  
थई गये। तेआ आ ज्ञे छे, शुं ज्ञे छे ? अे शंकांनुं समाधान करवा  
भाटे आगण कडे छे, ‘ एष खलु ग्रन्थ० ’-इत्यादि.

वनस्पतिकायना आरंभ निश्चय ग्रंथ छे—अर्थात् कर्मबन्धरूप छे, कारणुमां  
कार्यना उपचार करीने आरंभने कर्मबन्ध कडे छे, वस्तुतः ते कर्मबन्धनुं कारणु छे.  
अे प्रमाणे आगण पणु समञ्ज देवुं जेईअे.

वनस्पतिकायना समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान छे—अज्ञानजनक छे, ते मार छे,  
अर्थात् निगोद आदिमां मृत्युनुं कारणु छे. ते नरक छे, अर्थात् नारकी जेवने दस  
प्रकारनी यातनाओनुं कारणु छे.

इत्यर्थम्=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थ-मोह-मरणनरकार्थमेव प्रवर्त्तत इति शेषः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्त्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमारम्भेण=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपसावधव्यापारेण, इमं=वनस्पतिकायं विहिनस्ति । तथा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन् अनेकरूपान् =त्रसान् स्थावरांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥सू० ७॥

अज्ञानी जीव कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी बार-बार इसी में गृद्ध होते हैं । अथवा भोग के अभिलाषी पुरुष इसी ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

लोक पुन-पुनः कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं’ यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ ? इस जिज्ञासा के होने पर कहते हैं—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

क्यों कि नाना प्रकार के पूर्वोक्त शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय की हिंसा करने वाले लोग सावध व्यापार से वनस्पतिकाय का घात करते हैं । तथा वनस्पतिकाय का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाश्रित त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी एवं कर्मबंध, मोह, मरण અને नरकरूप એ ફળોને પ્રાપ્ત કરીને પણ વાર-વાર એમાં ગૃહ્ણ થાય છે. અથવા ભોગના અભિલાષી પુરુષ આ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

લોક પુનઃ પુનઃ (ફરી-ફરી) કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે; એ કથન જે કયું છે, તે કેવી રીતે જાણવામાં આવ્યું? એ જિજ્ઞાસા થવાથી કહે છે. ‘યદિમમ્.’ ઇત્યાદિ.

કેમકે નાના પ્રકારનાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રો દ્વારા વનસ્પતિ કાયની હિંસા કરવાવાળા લોક સાવધ વ્યાપારથી વનસ્પતિકાયનો ઘાત કરે છે, તથા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરતા થકા, અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ અનેક પ્રકારના તદાશ્રિત ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે. ॥ સૂ. ૭ ॥

वनस्पतिकर्मसमारम्भफलप्रदर्शनपुरस्सरं वनस्पतिसमारम्भेऽनेकत्रसस्थावरजीव-  
हिंसाऽवश्यम्भाविनीति प्रदर्शितम्, संप्रति वनस्पतेः सचेतनत्वशङ्कायां तस्य मनुष्य-  
शरीरवत् सचेतनत्वमस्तीति प्रदर्शयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

यद्वा—यथा मनुष्यशरीरे चैतन्यं सुगमं, तथा वनस्पतिकायेऽपि, तस्माद्  
वनस्पतेर्मनुष्यशरीरसादृश्यं दर्शयति सूत्रकारः—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि—इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं, इमंपि बुद्धिधम्मयं एयंपि  
बुद्धिधम्मयं, इमंपि चित्तमंतयं एयंपि चित्तमंतयं, इमंपि छिण्णं मिलाइ एयंपि

वनस्पतिकाय के आरंभ का फल प्रगट करके यह भी प्रदर्शित कर दिया गया है  
कि—वनस्पतिकाय का आरंभ करने से अन्य त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा भी अवश्य  
होती है । अत्र वनस्पतिकाय के सचेतन होने में शंका होने पर उसकी मनुष्य शरीर के समान  
सचेतनता सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

अथवा—जैसे मनुष्यशरीर में चैतन्य को समझना सुगम है उसी प्रकार  
वनस्पतिकाय में भी । अत एव वनस्पति मनुष्यशरीर के समान है, यह बात सूत्रकार कहते  
हैं—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—यह (मनुष्यशरीर) जन्मशील है, वह (वनस्पतिशरीर) भी  
जन्मशील है । यह वृद्धिशील है, वह भी वृद्धिशील है । यह सचित्त है वह भी  
सचित्त है । छेदने पर यह मुरझा जाता है, वह भी छेदने पर मुरझा जाता है ।

वनस्पतिकायना आरंभं प्रगट करीने ये पणु प्रदर्शित करी आभ्यु छे के-  
वनस्पतिकायना आरंभ करवाथी अन्य त्रस अने स्थावर जीवोनी हिंसा पणु अवस्थ  
थाय छे. हुवे वनस्पतिकायनी सचेतनता होवाभां शंका होवाथी तेनी सचेतना  
मनुष्यशरीरनी सचेतनता समान सूत्रकार प्रगट करे छे—‘से वेमि.’ इत्यादि.

अथवा—जेम मनुष्य शरीरभां चैतन्यने समजवाभां सुगमता छे, ते प्रमाणे  
वनस्पतिकायभां पणु सुगमता छे. ये भाटे वनस्पति मनुष्यशरीरना समान छे. ये बात  
सूत्रकार कहे छे:—‘से वेमि.’ इत्यादि.

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—आ ( मनुष्य शरीर ) जन्मशील छे ते ( वनस्पति-  
शरीर ) पणु जन्मशील छे, आ वृद्धिशील छे; ते पणु वृद्धिशील छे, आ सचित्त छे-  
छेदवाथी ते सूकाई जाय छे, ते पणु छेदवाथी सूकाई जाय छे. आ पणु आ डारक छे, ते

छिण्णं मिलाइ, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिच्चयं एयंपि अणिच्चयं,  
इमंपि असासयं एयंपि असासयं, इमंपि चओवचइयं एयंपि चओवचइयं, इमंपि विप-  
रिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मयं ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स ब्रवीमि—इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि वृद्धिधर्मकम्  
एतदपि वृद्धिधर्मकम्, इदमपि चित्तवत् एतदपि चित्तवत्, इदमपि छिन्नं म्लायति  
एतदपि छिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम्  
एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाश्वतम् एतदपि अशाश्वतम्, इदमपि चयोपचयिकम्  
एतदपि चयोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम्  
॥ सू० ८ ॥

टीका—

येन साक्षाद्भगवन्मुखाद् वनस्पतेः सचेतनत्वं श्रुतं सोऽहं ब्रवीमि=  
यथा भगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिज्ञातमर्थं प्रदर्शयति—इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, वह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, वह भी अनित्य है । यह भी  
अशाश्वत है, वह भी अशाश्वत है । यह भी चय—उपचय वाला है, वह भी चय—उपचय  
वाला है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और वह भी विविध प्रकार से  
परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जिसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिकाय की सचेतनता  
सुनी है वही मैं कहता हूँ—जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । यही बात कहते  
हैं—‘इदमपि०’ इत्यादि ।

पणु आहारक छे. आ पणु अनित्य छे. ते पणु अनित्य छे. आ पणु अशाश्वत छे, ते  
पणु अशाश्वत छे. आ पणु चय—उपचयवाणा छे, ते पणु चय—उपचयवाणा छे. आ पणु  
विविध प्रकारथी परिणमनशील छे, अने ते पणु विविध प्रकारथी परिणमन शील छे. ॥सू ८॥

टीकार्थ—जेणे साक्षात् भगवान्ना मुखथी वनस्पतिकायनी सचेतनता सांलणी छे. तेज  
हुं कहुं छुं—जे वुं भगवाने कहुं छे, तेवुं जे हुं कहुं छुं, जे वात कडे छे—‘इदमपि.’ इत्यादि.

इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वात्तच्छरीरं संनिकृष्टवा-  
चिनेदमशब्देन परामृश्यते । इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा-सामान्यरूपेण त्रसकाये  
चैतन्यस्य सुज्ञेयत्वात् इदं=त्रसशरीरं, जातिधर्मकं-जातिः-जननं, तद्धर्मकं-जन-  
नस्वभावं, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पति-  
शरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=  
वालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीरं अङ्कुरकिसलय-  
पत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

‘इदम्’ शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है । मनुष्य ही  
उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अत्यन्त समीप है अतः मनुष्य के शरीर को  
‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है । अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना  
सुगम है, इस कारण ‘इदम्’ का अर्थ मनुष्यशरीर के वजाय त्रस जीव का शरीर समझ  
लेना चाहिए ।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है,  
उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है । तथा मनुष्य शरीर  
वृद्धिशील है—बाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढ़ता जाता है उसी प्रकार वनस्पति—  
शरीर भी अंकुर, किसलय, पत्र, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढ़ता  
जाता है । मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

‘इदम्’ शब्दनेो प्रयोग समीपवर्ती वस्तु भाटे करवाभां आवे छे. मनुष्यज  
उपदेशने पात्र छे, अने तेनु शरीर अत्यन्त समीप छे. अे कारण्थी मनुष्यना  
शरीरने ‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट कथुं छे. अथवा त्रस ज्वना शरीरभां चैतन्यने  
समजवुं सुगम छे. अे कारण्थी ‘इदम्’नेो अर्थ मनुष्य शरीरना पहले त्रस ज्वनुं  
शरीर समज लेवुं लेछ अे.

आ मनुष्यशरीर अथवा त्रसज्वनुं शरीर उत्पन्न थवाना स्वलाववाणुं छे, ते  
प्रमाणे वनस्पतिनु शरीर पणु उत्पन्न थवाना स्वलाववाणुं छे. तथा मनुष्यशरीर वृद्धि-  
शील छे—बालकुमार, आदि अवस्थाओभां वधतुं लय छे, ते प्रमाणे वनस्पतिशरीर  
पणु अंकुर, किसलय—कुमणां, पान, पत्र, स्कन्ध, शाखा अने प्रशाखा आदिइपथी वध्ये  
लय छे, मनुष्यशरीर चेतनावान छे, ते प्रमाणे वनस्पतिनु शरीर पणु चेतनावान छे.

युक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीरं चित्तवत्=चेतनावत्, लज्जालुधात्र्यादीनां सकोच-विकास-स्वापा-वबोधदर्शनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं हस्तादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पल्लवफलपुष्पादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्कं भवति । इदमपि आहारकम्=क्षीरौदनाद्याहारकरणशील, तथैव एतदपि=वनस्पतिशरीरं भूजलाद्याहारभोजि, न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकं= न सर्वदाऽवस्थायि, एतदपि वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आयुषोऽवधिसत्त्वात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-मायुर्दशवर्षसहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमावीचीमर-

क्यों कि लज्जावती धात्री आदि वनस्पतियों में सकोच, विकास, स्वाप (निद्रा) और अवबोध (जागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है उसी प्रकार पत्ता, फूल, फल आदिरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है । यह मनुष्यशरीर दूध और ओदन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है । आहार करने क्रि क्रिया अचेतन में नहीं देखी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है—सदा ठहरने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी अनित्य है, क्यों कि उसकी आयु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अशाश्वत है—आवीचिमरण प्रतिक्षण होता रहता है, और वनस्पति

केमके लज्जावती—(रीसामाणी), धात्री आदि वनस्पतियोंमें संकोच, विकास, निद्रा अने जागवुं जेवामां आवे छे.

हाथ—आदि मनुष्यशरीर छेदवार्थी सूकाँ जय छे. ते प्रमाणे पाँदडा, इल, डूल आदि रूप वनस्पतिशरीर पणु छेदवार्थी सूकाँ जय छे. आ मनुष्यशरीर दूध अने लात वगेरेनो आहार करे छे, तेम वनस्पतिशरीर पणु पृथ्वी, जल आदिनो आहार करे छे, आहार करवानी क्रिया अचेतनमां जेवामां आवती नथी.

मनुष्य शरीर अनित्य छे. हुमेशां स्थिर रहेवावाणुं नथी, अे प्रमाणे वनस्पति-शरीर पणु अनित्य छे. केमके—तेनी आयुष्यनी सीमा छे. वनस्पतिशरीरनी उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्षनी छे.

मनुष्यशरीर आशाश्वत छे—आवीचिमरण प्रतिक्षण धतुं रहे छे, तेम



णेन मरणात्, एतदपि=वनस्पतिशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमरणशीलम् । यथा-  
इदमपि=मनुष्यशरीरं चयापचयिकम्=इष्टानिष्टाहारादिक प्राप्य वृद्धिहासशीलम्,  
तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीरं चयापचयिकम्=अनुकूल-प्रतिकूलजलवातादिना  
वृद्धिहासस्वभावम् । यथा-इदमपि मनुष्यशरीरं विपरिणामधर्मकं=विविधपरिणाम-  
शीलम्, तत्तद्व्याधिवशाद् उदरवृद्धिपाण्डुकृशत्वादिरूपं, रसायनस्नेहाद्युपचार-  
वशाद् विशिष्टरूपवलोपचयादिरूपं वा विविधपरिणामं प्राप्नोति तथा-एतदपि=  
वनस्पतिशरीरं विपरिणामधर्मकं=व्याधिवशात् पत्रपुष्पफलादीनां वर्णादिष्वन्यथा-  
भावदर्शनात्, विशिष्टदोहदप्रदानेन कदाचित्तेषामुपचयदर्शनाद् विविधपरिणाम-  
शीलम् । यथा जननस्वभावादिधर्माणां समुदायः सचेतने मनुष्यशरीरे

शरीर भी अशाश्वत है—उसका भी प्रतिक्षण मरण होता है । मनुष्यशरीर इष्टानिष्ट आहार  
आदि को पाकर बढ़ता—घटता रहता है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी अनुकूल  
जल—वायु से बढ़ता और प्रतिकूल जल—वायु से घटता है । जैसे मनुष्यशरीर में नाना  
प्रकार के परिणामन होते हैं—विविध बीमारियों से उदर का बढ़ना, पाण्डु, कृशता आदि,  
तथा रसायन और घृत आदि के सेवन से विशिष्टरूप और बल की वृद्धि होती है,  
उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध प्रकार के परिणामनवाला है—रोग होने पर  
वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि और ही तरह के देखे जाते हैं, विशेष प्रकार का दोहद  
देने से कभी—कभी उन में उपचय भी होता है । इस प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध  
परिणामन वाला है । जननस्वभाव आदि धर्मों का समूह सचेतन मनुष्य शरीर में या त्रस

वनस्पतिशरीर पण अशाश्वत छे—तेनुं पण प्रतिक्षण मरणं यतुं रडे छे. मनुष्य शरीर  
इष्टानिष्ट आहार आदिथी वधतुं घटतुं रडे छे ते प्रमाणे वनस्पतिनुं शरीर पण  
अनुकूल जल—वायुथी वधे छे अने प्रतिकूल जलवायुथी घटे छे. जे मनुष्यशरीरमां  
नाना प्रकारनुं परिणामन थाय छे, विविध बिमारीआथी चेटनुं वधतुं, पांडुरोग,  
कृशता ( दुबलापणुं ) आदि, तथा रसायन अने घृतआदिना सेवनथी विशिष्टरूप  
अने बलवृद्धि थाय छे, ते प्रमाणे वनस्पतिनुं शरीर पण विविध प्रकारना परिणामन-  
वाणुं छे, रोग यतां वनस्पतिना पांडुं, कृश, इल आदि नूहीन जतनां हेभाय  
छे, विशिष्ट प्रकारना दोहद हेवाथी केरि—केरि वधत तेमां उपचय थाय छे, जे प्रमाणे  
वनस्पतिनुं शरीर पण विविध परिणामनवाणुं छे. जननस्वभाव आदि धर्मोना समूह  
सचेतन मनुष्यशरीरमां अथवा त्रसणवना शरीरमां जेवामां आवे छे, तेज प्रमाणे

प्रसशरीरे वा वर्तते, तथा-वनस्पतिशरीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिकायः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरणत्रियोगैस्तस्मारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

### मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहि वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे

जीव के शरीर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है । अत एव वनस्पतिकाय सचेतन है, यह बात निःसंशय समझ लेना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिकाय की सचित्ता जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण और तीन योग से वनस्पतिकाय का समारंभ त्यागना चाहिए । इस अभिप्राय से कहते हैं:—‘ ‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

**मूलार्थ—**वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते । वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं । इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करावे और न वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

वनस्पतिना शरीरमां पणु ळेवामां आवे छे. अण्ण माटे वनस्पतिकाय सचेतन छे, अण्ण वात सँदेडुरडित समणु देवी ळेधअण्ण. ॥ ८ ॥

अण्ण प्रमाणे वनस्पतिकायनी सचित्ता ळण्णीने साधुता प्राप्त करवा माटे त्रणु करणु अने त्रणु योगथी वनस्पतिकायने समारंभ त्यज्जेवे ळेधअण्ण. अण्ण अलिप्रायथी डडे छे:—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि

**मूलार्थ—**वनस्पतिकायमां शस्त्रने आरंभ करवावाणाने आ आरंभ ळणुवामां नथी. (अने) वनस्पतिकायमां शस्त्रने आरंभ नहि करवावाणाने आ आरंभ ळणुवामां छे. तेने ळण्णीने बुद्धिमान् पुरुष पोते वनस्पतिशस्त्रने आरंभ करता नथी. ळीण्णनी पासि वनस्पतिने आरंभ करावता नथी. अने वनस्पतिशस्त्रने आरंभ करवावाणा ळीण्णने अनुमोदन करता नथी. अण्ण वनस्पतिशस्त्रना समारंभना ळणुडार

वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से ह्मु मुणी परिण्णायकम्मै-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया-अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्तिः तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका-अत्र=अस्मिन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण-त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नेव वनस्पतिकाये शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम् असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति-

करे । जो वनस्पतिशस्त्र के समारंभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से शस्त्र का उपयोग करने वाले को पूर्वोक्त-तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावद्य व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि-इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है । जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों का ज्ञाता होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है । ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलते हैं-

छे, तेण मुनि छे, तेण परिज्ञातकर्मा छे. ओ प्रभाणु हुं इहुं छुं. ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकायना विषयमां पूर्वोक्त प्रकार्थी शस्त्रेणो उपयोग करवावाणाने पूर्वोक्त (आगण इहेत्ता) त्रणु इरणु-त्रणु योग्थी थवावाणी वनस्पतिनी हिंसारूप सावद्य व्यापार अज्ञात होय छे, अर्थात् तेने लणुवामां नथी के आ व्यापारोथी इर्मनेो अंध थाय छे.

ने वनस्पतिकायना विषयणां पूर्वोक्त सावद्य व्यापारोना ज्ञाता होय छे. ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने लणु छे. अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी हे छे.

ज्ञपरिज्ञानी पछीण प्रत्याख्यानपरिज्ञा केवा प्रकारे होय छे. ते अतावे छे-

‘ तत् परिज्ञाये ’ त्यादि । तद्=वनस्पतिकायारम्भणं, परिज्ञाय=कर्मबन्धनस्य कारणं भवतीत्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । शेषं सुगमम् ।

यस्यैते वनस्पतिकर्मसमारम्भाः=वनस्पति निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः सावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्य-व्यापारः, मुनिर्भवति । ‘ इति ब्रवीमि ’=इति=एतत्सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोद्देशकः संपूर्णः ॥

वनस्पतिकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिकाय का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । शेष सब सुगम है । वनस्पतिकाय के आरंभ के निमित्त से होने वाले सावद्य व्यापारों को जिसने ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जान लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है, वह तीन करण तीन योग से समस्त सावद्यों का त्यागी ही मुनि होता है । सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-हे जम्बू ! जैसा भगवान् के समीप मैंने सुना है, वैसा ही यह सब मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘ आचारचिन्तामणि ’ टीकाके हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश समाप्त ॥ १-५ ॥

वनस्पतिकायना आरंभने कर्मबंधनुं कारण जाणीने हेय-उपादेयना विवेक राखवा-वाणा बुद्धिमान् पुरुष पोते वनस्पतिकायना आरंभ करता नथी. भीज पासे आरंभ करावता नथी, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपता नथी. शेष-आकी सर्व सुगम छे.

वनस्पतिकायना आरंभना निमित्तथी थवावाणा सावद्य व्यापाराने जेणे ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारण जाणी लीधु छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यज् आभ्या छे ते त्रणु करणु त्रणु योगथी समस्त सावद्योना त्यागीज मुनि डोय छे. सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कडे छे-डे जम्बू ! जेवुं लगवाननी समीप में सांख्यु छे; तेपुंज आ सर्व हुं कहुं छुं. ॥सू० ९॥

श्री आचाराङ्गसूत्रनी ‘ आचारचिन्तामणि ’ टीकाना गुजराती अनुवादमां प्रथम अध्ययनना पांचमो उद्देश समाप्त. ॥१-५॥

## ॥ अथ षष्ठोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त-  
त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः,  
यद्-वनस्पतिकायानन्तरं त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्नागमे तथैव भगवद्देशनायाः  
सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं  
साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य  
प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकथनस्यौचित्यात् । त्रसकाय-  
स्वरूपं वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

## छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से  
प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का  
स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमो में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक  
भी है, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सचितता सिद्ध की है तो  
वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के  
प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के  
अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र  
कहते हैं:—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

## छठो उद्देश—

पाछणना पांचमा उद्देशमा वनस्पतिकायना स्वरूपनुं निरूपणु करवामां आव्युं  
छे. हुवे कभथी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने अताववा माटे छठ्ठा उद्देशने कडे छे.

लगवानना उपदेशनी अण्ण शैली छे के:—वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायनुं स्वरूप  
समभववामां आवे छे. सर्व आगमोमां लगवानना उपदेश आ प्रमाणे छे, अने ते  
ठीक पणु छे, केमके मनुष्यना शरीरनुं दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सचितता सिद्ध  
करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप ज्ञाणुवानी छ्छा राभववाणा  
शिष्यना प्रतिबोध माटे त्रसकायनुं स्वरूप समभववुं जेछ्छे, कारणुके मनुष्य पणु  
त्रसकायनी अन्तर्गत छे. त्रसकायना स्वरूपने कडेवानी छ्छा राभववाणा श्री सुधर्मा  
स्वामी आणनुं सूत्र कडे छे:—‘से वेमि.’ इत्यादि.

मूलम्—

से वेमि संतिमे तसा प्राणा, तंजहा-अंडया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उब्भियया, उववाइया, एस संसारेत्ति पवुच्चइ मंदस्स अत्रियाणओ ॥ सू० १ ॥

छाया—

स ब्रवीमि, सन्तीमे त्रसाः प्राणाः, तद्यथा-अण्डजाः, पोतजाः, जरायुजाः, रसजा, सस्वेदजाः, संमूर्च्छिमाः (संमूर्च्छनजाः) उद्भिज्जाः, औपपातिकाः (उपपातजाः) । एष संसार इति प्रोच्यते मन्दस्य अविजानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्ब्रह्मद्वन्द्वनिर्गतसकलार्थाः सम्यगवधारिताः, सोऽहं ब्रवीमि— यथा भगवन्मुखाच्छ्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ।

त्रसाः प्राणा इमे सन्तीत्यन्वयः । त्रसाः—त्रस्यन्ति—त्रसनामकर्मोदयात् तापाऽऽद्युपतप्ताच्छायाऽऽदिकं प्रत्यभिसर्पन्तीति त्रसाः=द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—ये त्रस प्राणी है, जैसे—अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, संमूर्च्छित, उद्भिज और औपपातिक (उपपातज) । मद एवं अज्ञानी के लिए यह संसार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकाय—जिसने भगवान् के मुखकमल से निकले हुए समस्त जीवादि स्वरूपों को भली भाँति समझ लिया है ऐसा मैं कहता हूँ, अर्थात् हे जम्बू ! भगवान के मुख से जैसा मैंने सुना है वैसा तुझे कहता हूँ ।

त्रसनामकर्म के उदय से ताप आदि से पीड़ित होकर छाया वगैरह की ओर जाने वाले द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं । इन में द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—ये त्रस प्राणी छे. जेम-अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, संमूर्च्छिम, उद्भिज अने औपपातिक ( उपपातज ) मंद अने अज्ञानीओ भाटे आ संसार कडेवाभां आओ छे. ॥सू० १॥

टीकाय—जेणे लगवानना मुण्डमदथी नीकणेदा समस्त लुवादि स्वरूपोना अर्थने इडी रीते समलु दीधा छे, जेवो हुं कहुं छुं, अर्थात् हे जम्बू ! लगवानना मुण्थी जेपुं मे सांलज्युं छे तेपुं तने कहुं छुं.

त्रसनामकर्मना उदयथी ताप वगेरेथी पीडा पाभीने छाया विगेरेनी पासे जवावाणा द्वीन्द्रिय, (जे धन्द्रिय) लुवथी लधने पांच धन्द्रियवाणा लुवो सुधी सर्व त्रस

तत्र द्वीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनरूपे द्वे इन्द्रिये, त्रीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि त्रीणीन्द्रियाणि, चतुरिन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरूपाणि चत्वारोन्द्रियाणि, पञ्चेन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि पञ्चेन्द्रियाणि सन्ति ।

यद्यपि—त्रस्यन्ति=अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु चलन्तीति व्युत्पत्त्या द्वीन्द्रियादयस्तथाऽग्निकाया वायुकाया अपि त्रसा उच्यन्ते । त्रसानां हि द्वौ भेदौ मुख्यतः स्तः—गतितो लब्धितश्च । तत्र गतिः=क्रिया चलनं, देशान्तरप्राप्तिः, स्वभावतोऽनभिसन्धिपूर्वक—तद्योगादग्निकाया वायुकायाश्च त्रसा भवन्तीति गतित्रसा उच्यन्ते । लब्धिस्तु त्रसनामकर्मादये सति भवति,

और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं । तीनईन्द्रियवालो के स्पर्शन, रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं । पञ्चेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु और श्रोत्ररूप पाँच इन्द्रियाँ होती हैं ।

जो जीव इरादापूर्वक या विना ही इरादे के, ऊपर नीचे या तिरछे चलते हैं वे त्रस जीव हैं । इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वीन्द्रिय आदि तथा अग्निकाय और वायु भी त्रस कहलाते हैं । मुख्यरूप से त्रस जीवों के दो भेद हैं—(१) गतित्रस और (२) लब्धित्रस । गति कहिए अथवा क्रिया, चलना अथवा एक देश से दूसरे देश में पहुँचना कहिए । विना इरादे के यह गतिक्रिया मौजूद होने के कारण अग्निकाय और वायुकाय भी त्रस हैं । उन्हें गतित्रस कहते हैं । त्रसनाकर्म का उदय होने पर लब्धि-

कडेवाय छे. द्वीन्द्रिय लुवेने स्पर्शन (आमडी) अने रसना (लुल) आ जे इन्द्रियो डोय छे. त्रीन्द्रियोने आमडी, लुल अने नासिका इय त्रणु इन्द्रियो डोय छे चतुरिन्द्रिय लुवेने आमडी, लुल, नासिका अने नेत्र, आ चार इन्द्रियो डोय छे. पञ्चेन्द्रिय लुवेने आमडी, लुल, नासिका, नेत्र अने श्रोत्र—कान इय पांच इन्द्रियो डोय छे.

जे लुव इच्छापूर्वक अथवा इच्छा विना उपर, नीचे अथवा तिरछा आले छे ते त्रस लुव छे. आ व्युत्पत्ति अनुसार द्वीन्द्रिय आदि तथा अग्निकाय अने वायुकाय पणु त्रस कडेवाय छे. मुख्यरूपथी त्रस लुवेना जे लेह छे—(१) गतित्रस (२) लब्धित्रस. गति कडे अथवा क्रिया कडे ते अेकज छे. आलवुं अथवा अेक देशथी भीन देशमां पडेअंयवुं कडे. विना इच्छाथी आ गति करवानी क्रिया डानर डोवाथी अग्निकाय अने वायुकाय पणु त्रस छे. तेने गतित्रस कडे छे. त्रसनामकर्माने उदय डोवाथी लब्धित्रसता

तद्योगादभिसन्धिपूर्वकदेशान्तरप्राप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वाद् द्वीन्द्रियादय एव लब्धि-  
त्रसा उच्यन्ते । तेजोवायवः किल न त्रसनामकर्मोदयनिर्वृत्ताः, किन्तु स्थावरनाम-  
कर्मोदयनिर्वृतत्वान्नलब्धितः स्थावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लब्धित्रसा एव  
परिगृह्यन्ते, न तु गतित्रसाः, अग्निकायानां प्रागेव चतुर्थोद्देशे प्रतिबोधितत्वात्,  
वायुकायानामग्रे वक्ष्यमाणत्वाच्च ।

यत्तु “लब्ध्या तेजोवायू त्रसौ, लब्धिस्तच्छक्तिमात्रं लब्धित्रसानामि-  
हाधिकारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वाद् वायोश्चाभिधास्यमानत्वाद्, अतः  
सामर्थ्यात् गतित्रसा एवाधिक्रियन्ते ” इति कैश्चिदुक्तं, तत् प्रामादिकम्,

त्रसता प्राप्त होती है । इस लब्धि से इरादापूर्वक गतिक्रिया द्वीन्द्रिय आदि में ही पाई  
जाती है, अत एव उन्हें लब्धित्रस कहते हैं । तेजस्काय और वायुकाय में त्रसनाम-  
कर्म का उदय नहीं होता । उन में स्थावरनामकर्म का उदय है, अतः लब्धि की अपेक्षा ये  
दोनों स्थावर ही हैं । फिर भी यहाँ द्वीन्द्रिय आदि लब्धित्रस जीवों का ग्रहण करना चाहिए,  
गतित्रस जीवों का नहीं, क्यों कि अग्निकायिक जीवों का चौथे उद्देश में पहले ही वर्णन किया  
जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा ।

किसी ने कहा है—“लब्धि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय त्रस हैं । लब्धि  
सिर्फ शक्ति को ही कहते हैं । यहाँ लब्धित्रस जीवों का प्रकरण नहीं है, क्यों कि  
अग्निकाय का कथन किया जा चुका है और वायुकाय का कथन आगे किया जायगा,  
अतः सामर्थ्य से गतित्रस ही यहाँ ग्रहण करने योग्य है ” । यह कथन प्रमादपूर्ण है;

प्राप्त છે. એ લબ્ધિથી ઇચ્છાપૂર્વક ગતિ કરવાની ક્રિયા દ્વીન્દ્રિયાદિમાંજ જોવામાં આવે  
છે, એટલા માટે તેને લબ્ધિત્રસ કહે છે. તેજસ્કાય અને વાયુકાયમાં ત્રસનામકર્મનો  
ઉદય નથી; તેનામાં સ્થાવરનામકર્મનો ઉદય છે. તેથી લબ્ધિની અપેક્ષાએ એ બંને  
સ્થાવર જ છે. ફરીને પણ અહિં દ્વીન્દ્રિય આદિ લબ્ધિત્રસ જીવોનું જ ગ્રહણ કરવું  
જોઈએ, ગતિત્રસ જીવોનું નહિ. કારણકે અગ્નિકાયિક જીવોનું ચોથા ઉદ્દેશકમાં પ્રથમ  
વર્ણન કરવામાં આવી ગયું છે, અને વાયુકાયનું આગળ ઉપર વર્ણન કરવામાં આવશે.

કોઈએ કહ્યું કે—“લબ્ધિની અપેક્ષા તેજસ્કાય અને વાયુકાય ત્રસ છે:—લબ્ધિ.  
માત્ર શક્તિનેજ કહે છે. અહિં લબ્ધિત્રસ જીવોનું પ્રકરણ નથી કારણકે અગ્નિકાયનું  
વિવેચન તો કરી દેવામાં આવ્યું છે, અને વાયુકાયનું વિવેચન આગળ કરવામાં આવશે.  
તેથી સામર્થ્યથી ગતિત્રસનું જ અહિં ગ્રહણ કરવું યોગ્ય છે.” આ કથન પ્રમાદપૂર્ણ છે.



लब्धिप्रसानां गतिप्रसत्वेनाङ्गीकारात् । गतिप्रसानां लब्धिप्रसत्वाभावात्, द्वीन्द्रियादीनां गतिप्रसत्वेन शास्त्रेऽनङ्गीकाराच्च ।

प्राणाः=प्राणिनः, इमे=प्रत्यक्षतोऽवगम्याः, यद्वा-वक्ष्यमाणप्रकारकाः सन्ति । ते यथा-(१) अण्डजाः=अण्डाज्जाताः-पक्षिगृहकोकिलादयः, (२) पोतजाः=पोता एव जायन्त इति पोतजाः-हस्तिवल्गुलीचर्मजलूकादयः, (३) जरायुजाः=जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः-गोमहिष्यजा, विकमनुष्यादयः, (४) रसजाः=विकृतरसाज्जाताः, (५) संस्वेदजाः=संस्वेदाज्जाताः-मत्कुणयूकादयः, (६) संमूर्च्छिमाः=संमूर्च्छनजाः मक्षिकापिपीलिकाशलभादयः, (७) उद्भिज्जाः=उद्भेदनम्-उद्भित्, तस्माज्जाताः-पतङ्गखञ्जरीटादयः, (८) औपपातिकाः=उपपाते भवाः देवानार-

क्यो कि लब्धिप्रसो को गतिप्रसरूप में अंगीकार किया गया है । मगर गतिप्रस लब्धिप्रस नहीं हो सकते । द्वीन्द्रिय आदि में गति का सद्भाव है अतः शास्त्र में ऐसा अंगीकार नहीं किया गया ।

त्रस प्राणी इस प्रकार हैं-(१) अण्डज-अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, गृहकोकिला आदि । (२) पोतज-पोतरूप पैदा होने वाले हाथी, वल्गुली, चर्मजलू आदि । (३) जरायुज-गर्भ जिस से लिपटा रहता है वह पतली चमड़ी जरायु कहलाती है उस से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कहलाते हैं । (४) रसज-निकृत रस में पैदा हो जाने वाले, (५) संस्वेदज-पसीने से पैदा होने वाले खटमल, जूं आदि । (६) संमूर्च्छिम-मक्खी, कीड़ी, शलम आदि । (७) उद्भिज-उद्भेदन से उत्पन्न होने वाले पतंग, खंजरीट आदि । (८) औपपातिक-देव और नारकी ।

कारण्यु के लब्धिप्रसोने गतिप्रसनां रूपमां अंगीकार करवामां आये छे, परन्तु गतिप्रस लब्धिप्रस थर्ध शकता नथी. द्वीन्द्रिय आदिमां गतिनेो सङ्भाव छे, तेथी शास्त्रमां ये प्रमाणे अंगीकार करवामां आये नथी.

त्रस प्राणी आ प्रमाणे छे-(१) अण्डज-अंडाथी उत्पन्न थवावाणां पक्षी, गृह-कोकिला (गरोणी) आदि. (२) पोतज-पोतरूप पैदा थवावाणा हाथी, वल्गुली, चर्म-जलूक (जणो) आदि. (३) जरायुज-गर्भ जेनाथी विटायेतुं रहे ते पातणी आभडी जरायु कडेवाय छे. तेमां उत्पन्न थवावाणा गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कडेवाय छे. (४) रसज-विकृतरसमां पैदा थवावाणा (५) संस्वेदज-परसेवाथी पैदा थवावाणा माकड, जूं आदि. (६) संमूर्च्छिम-माभी, कीड़ी, तीड आदि. (७) उद्भिज-उद्भेदनथी उत्पन्न थवावाणा पतंग, खंजरीट आदि. (८) औपपातिक-देव अने नारकी.

इह सर्वेषां त्रसजीवानामष्टविधं जन्म प्रतिबोधितम् एतदेव समूर्च्छनगर्भोपपातेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि शास्त्रेऽभिहितम् । सन्तीत्यनेन त्रसानामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्तीति बोध्यते । मन्दस्य=कुशास्त्रवासनायुक्तस्य, अत एव-अविजानतः=हिताहितविवेकरहितस्य, एषः=अण्डजादिसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधत्रसकाये कुशास्त्रवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः ।

अथ त्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र लक्षण-प्ररूपणा-परिमाण-शस्त्रो-पभोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्श्यन्ते, अवशिष्ट-वध-निवृत्ति-द्वारद्वयं पृथिवीकायोद्देशे यथाऽभिहितं तथैवावगन्तव्यम् ।

यहाँ सभी त्रस जीवों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है । इसे समूर्च्छन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शास्त्र में बतलाया है । 'सन्ति' इस पद द्वारा त्रस जीवों का त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित किया गया है । मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित, अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूहरूप संसार कहा गया है । आठ प्रकार के त्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार वाले का पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है । वही संसरण संसार कहलाता है !

त्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उन में से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र उपभोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं । वध और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए ।

અહીં સર્વ ત્રસ જીવોનો આઠ પ્રકારનો જન્મ બતાવ્યો છે. તેને સંમૂર્છન, ગર્ભ અને ઉપપાતમાં સમાવેશ કરી દેવાથી ત્રણ પ્રકારનો જન્મ શાસ્ત્રમાં બતાવ્યો છે. 'સન્તિ' આ પદ દ્વારા ત્રસ જીવોનું ત્રિકાલવર્તી અસ્તિત્વ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે. મંદ અર્થાત્ મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારથી પ્રભાવિત, એવં હિત અહિતના વિવેકથી શૂન્ય પુરુષ માટે અંડજ આદિના સમૂહરૂપ સંસાર કહેવામાં આવ્યો છે. આઠ પ્રકારના ત્રસકાયમાં મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારવાળાઓનું પુનઃ પુનઃ જન્મ-મરણ રૂપ સંસરણ થાય છે. એજ સંસરણ તે સંસાર કહેવાય છે.

ત્રસકાયનું સાચું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ, તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણ, પરિમાણ, શસ્ત્ર, ઉપભોગ અને વેદના દ્વાર ક્રમથી બતાવે છે, વધ અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં કહ્યાં છે તેવી રીતેજ અહીં સમજી લેવા જોઈએ.

## लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति । अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केषाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात् । अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा—(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) संकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिसुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम् । संकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते हैं । इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है । प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं ।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है । जैसे— (१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) संकोचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन—त्रास पाना (८) पलायन—भागना और (९) गति—आगति का ज्ञान । प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है । प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना—पीछे लौटना प्रतिक्रमण है । शरीर को सिकोडना संकोचन है । शरीर को फैलाना

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ-વાંધો નથી. પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે.

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યાં છે. જેમકે— (૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન. પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે. પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોડવું તે સંકોચન છે. શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે.

रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतश्चेतश्च गमनम्, त्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्कचित्, गतेश्च कुतश्चित् कचिदेव च विज्ञानम् ।  
उक्तञ्चैतद्भगवता दशवैकालिकसूत्रे -

“जेसिं केसिचि पाणाणं अभिकंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया” ॥ १ ॥ इति ।

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकायाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय—पञ्चेन्द्रियभेदात् ।  
इहैव प्रथमोद्देशके लोकवादिप्रकरणे त्रसानां भेदप्रभेदाः प्ररूपिताः । विस्तरतो

प्रसारण है । बोलना रुत कहलाता है । इधर—उधर जाना भ्रमण है । दुःख से उद्वेग पाना त्रसन है । भागने को पलायन कहते है । एक जगह से दूसरी जगह आने—जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है ।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा हैः—

“जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण, त्रसन, पलायन और आगतिगतिका विज्ञान ( पाया जाता है वे सब त्रस जीव हैं। )”

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकाय के चार भेद है—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । इसी शस्त्र के पहले उद्देश के अन्दर लोकवादी प्रकरण में त्रस जीवों के भेद—प्रभेद कहे हैं । विस्तार से जानने के इच्छुक वहाँ से जान लें । इस सूत्र में भगवान् ने

ओत्तुं ते इत्त उडेवाय छे. अट्ठीं—तट्ठीं जपुं ते भ्रमणु छे. दुःअथी उद्वेग पामपुं ते त्रसन छे. लागपुं तेने पलायन उडे छे. अेक जज्याथी भीणु जज्याअे आववा—जवातुं विज्ञान ते आगतिगतिविज्ञान उडेवाय छे.

भगवाने दशवैकालिक सूत्रमां कथं छेः—

“जे कोरि प्राणीओमां अलिकमणु, प्रतिकमणु, संकोचन, प्रसारणु, रुत, भ्रमणु, त्रसन, पलायन अने आगति—गतिनुं विज्ञान (जेवामां आवे छे ते सर्व त्रस एव छे.)”

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रस कायना चार भेद छेः—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. आज शास्त्रना प्रथमना उद्देशमां लोकवादीप्रकरणमां त्रसएवोना भेद—प्रभेद अताव्या छे, विस्तारथी

જિજ્ઞાસુભિસ્તત એવાવગન્તવ્યાઃ । અસ્મિન્ સૂત્રેઽપિ ભગવતા-અણ્ડજપોતજાદિભેદાઃ પ્રદર્શિતાસ્તેઽપિ તત્રૈવ સમાવિષ્ટાઃ ॥

### પરિમાણદ્વારમ્—

ક્ષેત્રતઃ સંવર્તિતલોકપ્રતરાસંખ્યેયભાગવર્તિપ્રદેશરાશિપ્રમાણાઃ ત્રસકાયપર્યાપ્તકાઃ । એતે ચ વાદરતેજસ્કાયપર્યાપ્તકેભ્યોઽસંખ્યેયગુણાઃ, ત્રસકાયપર્યાપ્તકેભ્યસ્ત્રસકાયિકાઽપર્યાપ્તકાઃ અસંખ્યેયગુણાઃ ।

તથા કાલતઃ પ્રત્યુત્પન્નત્રસકાયિકાઃ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્વસમયરાશિપરિમાણા જઘન્યપદે, ઉત્કૃષ્ટપ્રદેઽપિ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્વપરિમાણા એવેતિ । તથા ચાગમઃ—

અંડજ ઓર પોતજ આદિ જો ભેદ વતલાયે હૈ, યે સવ મી ઁહીં મેં અન્તર્ગત હો જાતે હૈ ।

### પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાય કે પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા સંવર્તિત લોકપ્રતર કે અસંખ્યાતવેં ભાગવર્તી પ્રદેશોં કી રાશિ કે વરાવર હૈં । યે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોં સે અસંખ્યાતગુણા હૈ । પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોં કી અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસ જીવ અસંખ્યાતગુણા હૈ । કાલ કી અપેક્ષા જઘન્યપદ મેં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસ જીવ ઁક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કીં સમય-રાશિ કે વરાવર હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ પદ મેં મી ઁક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમયરાશિ કે વરાવર હી હૈ । આગમ મેં મી કહા હૈ—

જાણુવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાંથી જાણી લે. આ સૂત્રમાં ભગવાને-અંડજ અને પોતજ આદિના જે ભેદ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

### પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સંવર્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. તે બાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત ગણા છે. પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણા છે.

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે. આગમમાં પણ કહ્યું છે:—

“पडुप्पन्ना तसकाइया केवइकालस्स निल्लेवा सिया ? गोयमा ! जहन्नपए सागरोवमसयसहस्सपुहत्तस्स, उक्कोसतएवि सागरोवमसयसहस्सपुहत्तस्स” ॥ इति ।

विरहापेक्षया त्रसानां निष्क्रमणमुपपातश्च जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा भवन्ति, उत्कृष्टतस्तु प्रतरस्यासंख्येयभागप्रदेशपरिमाणाः । वसेषु जीवानां नैरन्तर्येणोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा जघन्येनैकं समयं द्वौ समयौ त्रीन् वा समयान् भवति । उत्कृष्टतस्त्वावलिकाया असंख्येयभागपरिमितं कालं सततमेवोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा भवति । नैरन्तर्येणैकजीवस्यावस्थानं तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं त्रसकाये भवति, तदनु स पृथिव्याच्चेकेन्द्रियेषु समुत्पद्यते । उत्कृष्टतः सातिरेकं सागरोपमसहस्रद्वयं सततं नैरन्तर्येण त्रसकाये तिष्ठति । ततः

“पत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव कितने काल के बराबर हैं ? गौतम ! जघन्य पद में एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम के बराबर और उत्कृष्ट पद में भी इतने ही है” ।

विरह की अपेक्षा त्रस जीवों का निष्क्रमण और उपपात जघन्य एक, दो या तीन हैं, और उत्कृष्ट प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । त्रसकाय में जीवों की निरन्तर उत्पत्ति या च्यवन जघन्य एक समय, दो समय, तीन समयतक है । उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवे भाग परिमित काल तक निरन्तर उत्पत्ति और च्यवन होता रहता है । निरन्तर एक जीव की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक त्रसकाय में होती है और उसके बाद वह पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है । उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार सागरोपमतक निरन्तर त्रसकाय में ठहर सकता है । तत्पश्चात्

“अत्युत्पन्न त्रसकायिक एव डेटला डालनी भराभर छे ? गौतम ! जघन्य पदमां अेक लाअथी नवलाअ सुधीना सागरोपमनी भराभर अने उत्कृष्ट पदमां पणु अेटलां अ छे.”

विरहनी अपेक्षा त्रस एवेणु निष्क्रमण अने उपपात जघन्य अेक, अे अथवा त्रणु छे. अने उत्कृष्ट प्रतरना असंख्यातमा लागवर्ती प्रदेशोनी भराभर छे. त्रसकायमां एवेणी निरंतर उत्पत्ति अथवा निष्क्रमण (च्यवन) जघन्य अेक समय, अे समय अथवा त्रणु समय सुधी छे. उत्कृष्ट आवलिकाना असंख्यातमा लाग परिमित डाल सुधी निरंतर उत्पत्ति अने निष्क्रमण (निकणवु) यतुं रहे छे. निरंतर अेक एवनी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त सुधी त्रसकायमां डोय छे. अने ते पडी ते पृथ्वीकाय आदि अेकेन्द्रियमां उत्पन्न थाय छे. उत्कृष्ट डार्धक अधिक अे डनर सागरोपम सुधी

પૃથિવ્યાદિષ્ટપદ્યતે । ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવાનાં સુખં દુઃખં વા યથા ભવતિ તદાહ—‘ નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

નિજ્ઞાહતા પઢિલેહિતા પત્તયં પરિનિવ્વાણં સવ્વેસિં પાણાણં સવ્વેસિં ભૂયાણં સવ્વેસિં જીવાણં સવ્વેસિં સત્તાણં અસાયં અપરિનિવ્વાણં મહવ્ભયં દુઃખં—તિ વેમિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—

નિધ્યાય પ્રતિલેખ્ય પ્રત્યેકં પરિનિર્વાણં સર્વેષાં પ્રાણાનાં સર્વેષાં ભૂતાનાં સર્વેષાં જીવાનાં સર્વેષાં સત્ત્વાનામ્ અસાતમ્ અપરિનિર્વાણં મહાભયં દુઃખમિતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

પ્રકરણસમ્બન્ધાત્ ત્રસજીવસ્વરૂપં પૃથિવ્યાદિસકલજીવસ્વરૂપં વા

પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરો મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવો કો સુખ-દુઃખ જિસ પ્રકાર હોતા હૈ સો કહતે હૈ:—‘ નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વિચાર કરકે ઔર અછી તરહ દેવકર કહતા હૂં કિ-સમી પ્રાણિયોં કા, સમી ભૂતોં કા, સમી જીવોં કા, ઔર સમી સત્વોં કા પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । તથા અસાતારૂપ, અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ મી પૃથક્-પૃથક્ હૈ । ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકાર્થ—ત્રસ જીવોં કા પ્રકરણ હોને કે કારણ ‘વિચાર કરને’ કા આશય યહ હૈ કિ ત્રસજીવોં કા સ્વરૂપ, અથવા પૃથ્વીકાય આદિ સમસ્ત જીવોં કા

નિરંતર ત્રસકાયમાં રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ-દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે:—‘નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોધને કહું છું કે-સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-ભૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સત્ત્વોનું પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્-જૂદાં-જૂદાં છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ જૂદાં-જૂદાં છે. ॥સૂ૦ ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવોનું પ્રકરણ હોવાના કારણે ત્રસજીવોનું સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

निध्याय=मनसा समालोच्य, प्रतिलेख्य=विलोक्य सम्यग् विज्ञायेत्यर्थः, ब्रवीमि=कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=प्रणिनस्तेषां, सर्वेषां भूतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां जीवानां=कालत्रये जीवनाद् चैतन्यस्वरूपाणामित्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सर्वदाऽस्तित्ववताम्, त्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य पुनः पुनरुपादानेन स्थावरा अपि गृह्यन्ते, तेन त्रसानां स्थावराणां च जीवानामित्यर्थः। परिनिर्वाणं=सुखं, प्रत्येकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति।

शब्दव्युत्पत्त्या विभिन्नार्थबोधकत्वात् प्राणभूतादिशब्दानामुच्चारणं न पुनरुक्तिदोषः। 'निज्ज्ञाइत्ता' 'पडिलेहिता' इति पदद्वयेन जीवानां पुनः पुनरनुसन्धानं प्रतिलेखनं च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया प्रतिबोधनार्थ-

स्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहता हूँ। सभी प्राणियों का सभी भूतों अर्थात् उत्पत्तिशील जीवों का, सभी जीवों (त्रिकाल में जीवित रहने वालों) का और सभी सत्त्वों (सर्वदा अस्तित्व वाले त्रस जीवों) का, अथवा बार-बार 'सव्वेसि' पदका प्रयोग करने के कारण यह अर्थ लेना चाहिए कि-सभी त्रस और स्थावर जीवों का सुख पृथक्-पृथक् है।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के बोधक प्राण, भूत आदि शब्दों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा प्राण भूत आदि शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिदोष नहीं है। 'निज्ज्ञाइत्ता' 'पडिलेहिता' इन दो पदों द्वारा जीवों का पुनः पुनः विचार एवं प्रतिलेखन सूचित किया है। उसी को पुनः पुनः विधेयरूप से समझाने के लिए

आदि समस्त ज्ञेयानुं स्वयं मनशी विचार करीने तथा सम्यक् प्रकारे ज्ञानीने कर्तुं धुं-सर्वं प्राणीज्ज्ञेयानुं, सर्वभूतानुं अर्थात् उत्पत्तिशील ज्ञेयानुं, सर्वं ज्ञेयं (त्रय काल ज्ञेयं रहनेवाला)नुं, अने सर्वं सत्त्वो-(सर्वदा अस्तित्ववाला त्रस ज्ञेय)नुं, अथवा बार-बार 'सव्वेसि' पदने प्रयोग करवाना कारणे ये अर्थ ज्ञेयो ज्ञेयं के-सर्वं त्रस अने स्थावर ज्ञेयानुं सुखं पृथक्-पृथक् छे।

शब्दशास्त्रनी दृष्टिथी भिन्न-भिन्न अर्थना बोधक प्राण-भूत आदि शब्दानुं उच्चारण करवाथी पण पुनरुक्ति दोष आवतो नथी अथवा प्राणभूत आदि शब्दाने अर्थना वाचक मानी ज्ञेयानुं आवे तो पण पुनरुक्तिदोष नथी 'निज्ज्ञाइत्ता' 'पडिलेहिता' आ ज्ञेय पदो द्वारा ज्ञेयानो पुनः पुनः विचार अर्थात् प्रतिबोधन सूचित कर्तुं छे। तेने पुनः पुनः



મનેકપર્યાયશબ્દૈસ્તેપામુપાદાનાત્ ।

તથા સર્વેપાં દુઃખં પ્રત્યેકં પૃથક્ પૃથગસ્તિ । કથમ્ભૂતં દુઃખમિત્યાહ—  
'અસાત'—મિત્યાદિ । અસાતમ્ અસાતવેદનીયકર્મફલભૂતમ્, તથા—અપરિનિર્વાણમ્=  
સર્વથા શરીરમનઃ પીડાકરમ્, તથા—મહાભયમ્=દુઃખાદધિકં ભયમન્યન્નાસ્તિ, યતઃ  
સર્વેઽપિ પ્રાણિનઃ શારીરાન્માનસાદપિ દુઃખાદુદ્વિજન્તે, તસ્માન્મહાભયસ્વરૂપમિત્યર્થઃ  
॥ સૂ૦ ૨ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति,  
संति पाणा पुढो सिया ॥ सू० ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ?  
सो कहते हैं—वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा  
उत्पन्न करता है और महाभयंकर है—दुःख से बढ़कर और कोई भय नहीं है, क्यों  
कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी  
है ॥ सू० २ ॥

और मैं यह कहता हूँ:—'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं । अलग—  
अलग प्रयोजनों के लोलुप लोग उन्हें संताप पहुंचाते हैं । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न  
आश्रयो पर आश्रित है ॥ सू० ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.

આ પ્રમાણે સર્વજીવોના દુઃખ પણ જૂદા-જૂદા છે. દુઃખ કયા પ્રકારના છે ?  
તે કહે છે—તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે; શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા  
ઉત્પન્ન કરે છે. અને મહા ભયંકર છે. દુઃખથી વધારે કોઈ પણ ભય નથી કારણકે સર્વ  
પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક દુઃખથી ગભરાય છે. તેથી તે મહાભયકારી છે. ॥સૂ૦ ૨॥

અને હું એ પણ કહું છું:—'તસંતિ પાણા.' ઈત્યાદિ.

મૂળાર્થ—પ્રાણી વિદિશાઓમાં અને દિશાઓમાં ઉદ્વેગ પામે છે. અલગ-અલગ  
પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સંતાપ પહોંચાડે છે. તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન  
આશ્રયો પર આશ્રિત છે. ॥સૂ૦ ૩॥

छाया—

त्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिशासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परिताप-  
यन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

प्राणाः=प्राणिनः प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवाः प्रदिशः=प्रगता दिक् प्रदिक्  
विदिगित्यर्थः, ततः प्रदिशः, तथा—दिशासु प्राच्यादिदिक्षु च समागन्तुकेभ्यो दुःखेभ्य,  
त्रस्यन्ति=विभ्यति । सर्वदिग्विदिक्षु त्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिग्विदिग्भ्यः समागन्तु-  
केभ्यो दुःखेभ्यस्त्रस्यन्तीत्यर्थः ।

कुतस्तेषां दुःखसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह-‘तत्र-तत्रे’ त्यादि । तत्रतत्र=  
तेषु-तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोजघ्नेषु, आतुराः=अर्चाचर्ममांसादिगृध्नवः त्रसान्  
परितापयन्ति=परिपीडयन्ति । विविधवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपणेन च सर्वथा दुःखं  
जनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते त्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

टीकार्थ—त्रस का प्रकरण होने से ‘प्राण’ शब्द का अर्थ यहाँ त्रसजीव समझना  
चाहिए । त्रस प्राणी विदिशाओं में आगन्तुक दुःखों से त्रस्त हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी  
विदिशाओं में और समी दिशाओं में त्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और  
दिशाओं से आने वाले दुःखों से वे पीडित होते हैं ।

उन्हें दुःख क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोजनों से  
आतुर लोग अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस, आदि के लोलुप पुरुष त्रस जीवों को पीडा  
पहुँचाते हैं । उन्हें भँति-भँति की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण  
करते हैं और सब प्रकार से दुःख उत्पन्न करते हैं । वे त्रसजीव पृथिवी आदि के

टीकार्थ—त्रसनुं प्रकरणे ङोवाथी ‘प्राणु’ शब्दनेो अर्थ त्रसलुव समलुवेो  
लेछये त्रस प्राणी विदिशाओमां तथा दिशाओमां आगन्तुक दुःखोथी त्रस पाभे छे.  
तात्पर्य ये छे केः—सर्व विदिशाओमां अने सर्व दिशाओमां त्रस लुव विद्यमान छे,  
अने सर्व विदिशाओ तथा दिशाओथी आववावाणा दुःखोथी ते पीडा पाभे छे.

तेने दुःख शा माटे थाय छे ? तेनेो उत्तर ये छे के—लूहा-लूहा प्रयोजनोथी आतुर  
लोड अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस वगेरेना लालयुं पुरुष त्रस लुवेोने पीडा पडोंथाडे  
छे, तेने लूही-लूही लतनी वेदना उत्पन्न करे छे. ते त्रस लुव पृथ्वी आदिना आश्रये =

माह—‘ सन्ति’ इत्यादि । श्रिताः=पृथिव्यादीन् समाश्रित्यावस्थिताः, पृथक्=विभिन्नाः द्वीन्द्रियादयः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति ।

यद्यपि सर्वदिग्विदिग्भ्य आगामिनो दुःखाद् विभ्यन्तस्त्रसजीवाः स्वात्मरक्षार्थं पृथिव्यादीन् समाश्रित्व वर्तन्ते तथापि मांसचर्मादिलुब्धा आतुरास्तान् बन्धनताडनादिना शावकाद्यपहारेण प्राणाद्यपहारेण च परिपीडयन्ति, ततः संसारं प्राप्नुवन्ति । तस्मादेतत् परिज्ञाय सकलसावद्यव्यापारपरिहारेण संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ३ ॥

अथ सर्वथा त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा त्रसकाय-समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘ लज्जमाणा. ’ इत्यादि ।

सहारे अलग-अलग रहे हुए हैं ।

यद्यपि सब दिशाओं और विदिशाओं से आनेवाले दुःखों से डरने वाले त्रस जीव अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी आदि के सहारे टिके रहते हैं फिर भी मांस और चर्म आदि के लोभी लोग उन्हें बंधन एवं ताडन द्वारा, उनके बच्चोंका अपहरण करके तथा उनके प्राणों का हनन करके उन्हें पीडा पहुँचाते हैं और इस कारण वे हिंसक, संसार को प्राप्त होते हैं । आशय यह है कि—यह सब जानकर सम्पूर्ण सावध व्यापार का त्याग करके संयम की साधना में प्रवृत्त होना चाहिए ॥ सू० ३ ॥

अब पूर्णरूप से त्रसकाय के आरंभ का त्याग करने वाले अनगारों का तथा त्रसकाय के आरंभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों का विवेचन करके समझाते हुए कहते हैं—‘ लज्जमाणा. ’ इत्यादि ।

अलग-अलग रहेले। छे.

जे के सर्व दिशाओ अने विदिशाओथी आवनारा दुःखोथी डरवावाणा त्रसओव पोतानी रक्षा भाटे पृथ्वी आदिना आश्रये टकी रहे छे. इरी पणु मांस अने चामडा आदिना लोली लोक तेने अंधन ओ प्रभाणु ताडनद्वारा, तेना अन्ध्याओनुं अपहरणु करीने (चोरी जधने) तथा तेना प्राणुनुं हनन-नाश करीने तेने पीडा पछोआडे छे. अने आ कारणथी ते हिंसक-संसारने प्राप्त थाय छे. आशय ओ छे के-ओ सर्व लणी करीने संपूर्ण सावध व्यापारने त्याग करीने संयमनी साधनामां प्रवृत्त थवुं जेधओ. ॥३॥

हुवे पूर्णरूपथी त्रसकायनां आरंभने त्याग करवावाणा अणुगारेनु तथा त्रसकायना आरंभमां प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिओनुं विवेचन करीने समभवता थका छे छे—‘ लज्जमाणा. ’ इत्यादि.

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं, त्रिरुवरूवेहि सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं, तसकायसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्मः, इति एके प्रवदमानाः, यदिसं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारम्भेण, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रहृदयतया त्रसकायसमारम्भे पराङ्मुखाः त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, केचित्-प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित्-परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे त्रस-

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ में संकोच करने वाले (अनगारों को) अलग समझो । 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले कोई-कोई (द्रव्यलिङ्गी) नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से जिनका हृदय द्रवित है ऐसे अनगार त्रसकाय के आरंभ से सर्वथा विमुख रहते हैं । ये अनगार अलग-अलग हैं । कोई अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं । कोई-कोई परोक्षज्ञानी भाविमात्मा है,

मूलार्थ—त्रसकायना आरंभमां संकोच करवावाणा अणुगारोने अलग-अलग-समझे, 'अमे अणुगार छीअे' अे प्रभाअे उडेवावाणा केअ-केअ द्रव्यलिङ्गी, नाना प्रकारनां शस्त्रोथी त्रसकायना आरंभ करीने, त्रसकायनां शस्त्रोना प्रयोग करता थका थीअ पणु अनेक प्रकारना प्राणीअोनी हिंसा करे छे. तेने अलग अणुअो. ॥सू० ४॥

टीकार्थ—परम कर्षणाथी नेतुं हृदय द्रवित छे अेवा अणुगार त्रसकायना आरंभथी सर्वथा विमुख रहे छे-हर रहे छे. ते अणुगार अलग-अलग छे. केअ अवधिज्ञानी, केअ मनः-पर्ययज्ञानी, अने केअ केवलज्ञानी छे. केअ-केअ परोक्षज्ञानी

कायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवृत्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिङ्गियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरंभ करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते हैं, उद्विग्न होते हैं—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरंभ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा 'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते हैं । यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन

लावितात्मा छे. आने णुओ. अथवा अने द्रव्यलिङ्गीओथी अलग समझवा लेहये. ने त्रसकायने आरंभ करतां डरे छे, त्रस्त थाय छे, उद्विग्न थाय छे—त्रणु करणु, त्रणु योगथी त्रसकायना आरंभना त्यागी छे अे णुओ.

अने डेह-डेह 'अमे अणुगार छीअे' अे प्रभाणे अलिमाउपूर्वक डडेता थका तथा 'अमेअ त्रसकायना रक्षक अने महाव्रतधारी छीअे' अे प्रभाणे प्रलाप-अकवाह करनारा डेटलाक द्रव्यलिङ्गी छे. तेने अणुगारोथी णूहा समझे.

अणुगार डोवानु अलिमान करवावाणा अे द्रव्यलिङ्गी अणुगारना गुणुआं णरापणु प्रवृत्त नथी अने गृहस्थना डेह पणु कामने तेओअे त्याग कर्यो नथी. ते वात आगण अतावे छे—'यदिमम्.' इत्यादि.

द्रव्य अने लावना लेहथी शस्त्र अे प्रकारनां छे. द्रव्यशस्त्रना त्रणु लेह छे. स्वकाय,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यशस्त्रं-स्वकाय-परकायो-भयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्रस्वकाय-शस्त्रत्रसकायस्य त्रसकायः, यथा-मृगादीनां व्याधकुक्कुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः। परकायशस्त्रम्-पाषाणजलाग्निगुडखङ्गतोमरलुरिकादयः । उभयकायशस्त्रम्-लगुडखङ्गा-दिधारिणो मनुष्यादयः । भावशस्त्रं तु त्रसकायं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । त्रसकायसमारम्भेण, त्रसः=त्रसनशीलः कायः=शरीरं यस्य स त्रसकायस्तस्य समारम्भः=पीडाकरः सावधव्यापारस्तेन, इमं=त्रसकायं विहिंसन्ति ।

त्रसकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-‘त्रसकायशस्त्रम्.’ इत्यादि । त्रसकायशस्त्रं=त्रसजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=त्रसकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्=त्रसकायभिन्नान्

भेद हैं-स्वकाय, परकाय, और उभयकाय । त्रसकाय का त्रसकाय स्वकायशस्त्र है, जैसे मृग आदि के लिए व्याध, कुत्ता आदि, मनुष्य के लिए मनुष्य आदि । परकायशस्त्र जैसे पत्थर, जल, अग्नि, लकड़ी, तलवार, तोमर, शेरी आदि । उभयकायशस्त्र जैसे लाठी, तलवार आदि कारण करने वाला मनुष्य आदि । त्रसकाय के प्रति मन, वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार होना भावशस्त्र है । इन नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का समारंभ करके लोग त्रसकाय को पीडा पहुँचाते हैं ।

त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले छह प्रकार के जीवनिकायरूप सम्पूर्ण लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-त्रसकाय में, त्रसकाय की हिंसा करने वाले शस्त्रों का जो प्रयोग करते हैं वे त्रसकाय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

परकाय अने उभयकाय, त्रसकायतुं त्रसकाय ते स्वकायशस्त्रं छे, जेम मृग आदिने माटे वाध-कुत्तरा आदि, मनुष्यने माटे मनुष्य आदि. परकायशस्त्र, जेमके पत्थर, जल, अग्नि, लाकड़ी, तलवार, लातु, छरी आदि. उभयकायशस्त्र, जेमके-लाकड़ी, तलवार आदि धारण करवावाणा मनुष्य आदि. त्रसकायना प्रति मन, वचन अने कायाने अप्रशस्त व्यापार थवे ते लावशस्त्रं छे. ते नाना प्रकारनां शस्त्राथी त्रसकायने समारंभ करीने लोक त्रसकायने पीडा पहुँचाउ छे.

त्रसकायनी हिंसायां प्रवृत्ति करवावाणा छ प्रकारना जीवनिकायरूप सम्पूर्ण लोकनी हिंसा करे छे. जे वात कहे छे-त्रसकायमां, त्रसकायनी हिंसा करवावाणा-शस्त्राने जे प्रयोग करे छे, ते त्रसकायथी ब्रह्मा अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर

अनेक्यरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-  
पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च  
त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च ।  
दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः ” इत्यादि  
प्रवदमानाः साध्वामासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि पद्मजीवनिकाय-  
समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पाषाणादीनां  
खण्डशः करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा—बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल,  
पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवो का समारंभ करके त्रस और  
स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते  
हैं । दण्डी भी—

‘हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं’ ऐसा  
कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध पद्मजीवनिकाय का  
समारंभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में,  
पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता है ।  
बहुत—से वृक्षो को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पंचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

प्राणीओनी पणु हिंसा करे छे.

संसारमां धणुं प्रकारनां द्रव्यलिङ्गी छे. ओमांथी शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र,  
पुष्प, फल आदि लोगववा माटे—उपयोग करवा माटे, तेना पर रहैला त्रस ओवोनो  
समारंभ करीने अने पृथ्वी आदि स्थावर ओवोनो समारंभ करीने त्रस अने  
स्थावर ओवोनो घात करे छे. करावे छे, अने घात करवावाणाने अनुमोदन आपे  
छे. दंडी पणु “अमे पञ्चमहाव्रतधारी, जिनाज्ञाना आराधक अणुगार छीअे.” ओ  
प्रमाणे खड्डेवावाणा णुका साधु सावद्यनो उपदेश आपे छे. अने शास्त्रमां निषिद्ध  
पद्मजीवनिकायनो समारंभ करावे छे.

प्रतिमा, मन्दिर वगैरेनुं निर्माण करवा माटे भाडा ओहवा, पत्थराना टुकडा करवावा,  
तेने उपरथी पछाडवामां मनुष्य आदिनो घात करावे छे. धणुं वृक्षाने कापवाथी वृक्षाना

तदाश्रितान् अण्डजशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिवहुविधविकलेन्द्रियांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादिश्रोतनेऽपि च षट्जीविकायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चैव जीघियस्स परिवंदण—माणण—पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुःखपडिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीडी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं । प्रतिमापूजन के लिए फूलोंका बगीचा बनाने में, फूल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी षट्काय के जीवों का घात कराते है ॥ सू० ४ ॥

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैः—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है । इसी जीवन के वन्दन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म—मरण से छूटने के लिए और दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शत्रु का समारंभ करता है, दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य लोगों का अनुमोदन करता है । यह उसके अहित के लिए है, उसकी अंबोधि के लिए है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रडेवा अंडज शवोना पंचेन्द्रिय षट्कायानो घात करावे छे. कीडी पतंग आदि षण्ण प्रकारना विकलेन्द्रिय शवोना घात करावे छे. प्रतिमापूजन भाटे इडेवा अगीया अनाववाभां इल, पतां ( पांढडा ) अने इण आदि तोडवाभां षण् षट्कायना शवोना घात करे छे. ॥ ४ ॥

इवे सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कडे छेः—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ—त्रसकायना आरंभना विषयभां लगवाने उपदेश आये छे. आ श्रवणना वंदन, मान, अने पूजनने भाटे तथा जन्म—मरण्थी छूटवा भाटे अने दुःखनो नाश करवा भाटे ते पोते त्रसकायना शत्रुनो समारंभ करे छे, भीन्त पासे त्रसकायनो आरंभ करावे छे. अने त्रसकायनो समारंभ करवावाणा अन्य लोकाने अनुमोदन आये छे, ते अश्रमना अहित भाटे छे, अश्रमनी अशोधि भाटे छे. ॥सू० ५॥



छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-  
पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते,  
अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान्  
समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद्  
द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता । कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवेन परिज्ञाऽ-  
वश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव  
जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्—  
मांसचर्मार्थम्, तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थम्, यथा-  
व्याघ्रादिमृगयादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा-राज्ञः सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारंभ के संबंध में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-  
परिज्ञा का उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान्ने कहा है कि—कर्मरज को हटाने के लिए जीव  
को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं ? सो कहते हैं—इसी  
अस्थायी जीवन के सुख के लिए, मांस और चमड़ी के लिए, तथा प्रशंसा के लिए, जैसे  
व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

टीकार्थ—त्रसकायना समारंभना संबंधमां श्री महावीरे ज्ञपरिज्ञा अने  
प्रत्याख्यानपरिज्ञाने उपदेश आये छे. अर्थात् लगवाने कछुं छे के-कर्म रजने हर  
करवा भाटे लुवे परिज्ञा अवश्य स्वीकारवी लेईये.

उपभोग द्वार—

दोउ शुं प्रयोजनथी त्रसकायनी हिंसा करे छे? ते कहे छे—आ अस्थिर लुवनना  
सुभ भाटे, मांस अने चामडीना भाटे, तथा प्रशंसा भाटे. जेअ के-वाघ आदिने  
शिकार करवाभां. मान भाटे, जेम के-राज पासेथी पदवी भेजववाना उद्देश्यथी लुवता

लब्धुं सजीवसदृशव्याध्रादिमृतकलेवरनिर्माणादौ, तथा-पूजन=वस्त्ररत्नादिलाभस्त-  
दर्थम्, यथा-देवीपूजार्थं बलिदानादौ,

तथा-जातिमरणमोचनार्थम् = जन्ममरणबन्धपरिहारार्थं=यथा मोक्षका-  
मनया यागादौ, यथा-वातादिव्याधिप्रतीकाराय तैलादौ, सः-जीवनसुखाद्यर्थी  
स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति=  
प्रयोजयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति,  
तत्=त्रसकायसमारम्भणम्, तस्य=त्रसकाय समारम्भं कुर्वतः, कारयितुः,  
अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति । तथा तत्-तस्य अवाधये=सम्यक्त्वालाभाय  
भवति ।

जीवित व्याघ्र आदि के समान व्याघ्र आदि का कलेवर बनाने में, और पूजक के लिए जैसे  
वस्त्र रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से बलिदान  
आदि करने में हिंसा करते हैं ।

तथा-जन्म-मरण-बंध आदि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से  
यज्ञ आदि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैल आदि तैयार  
करने में, जीवन के सुख का अर्थी स्वयं ही त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता  
है, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ कराता है और त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करने  
वालों का अनुमोदन करता है । यह त्रसकाय का आरंभ उस आरंभकर्ता के लिए अहितकर  
और अबोधजनक होता है ।

वाधना समान वाध आदिनुं कलेवर अनाववाभां अने पूजन भाटे जेमडे-वस्त्र, रत्न  
आदि प्राप्ति भाटे. तथा देवीनी पूजा करवाना प्रयोजनथी बलिदान आदि करवाना  
हिंसा करे छे.

तथा-जन्म, मरण, बंध आदिथी छुटवा भाटे. जेमडे-मोक्षनी कामनाथी यज्ञ  
आदि करवाना, वात आदि रोगनो प्रतिकार करवा भाटे (रोगनी दवा करवा भाटे)  
पूजनना सुखना अर्थी स्वयं-पोतेज त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ करे छे. अन्या  
पासे त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ करावे छे. अने त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ  
करवावाणाने अनुमोदन आपे छे. ते त्रसकायनो आरंभ अने आरंभ करनारने भाटे  
अहितकर्ता अने अबोधि उत्पन्न करनार छे.

## वेदनाद्वारम्—

अत्र प्रसङ्गतस्त्रसकायस्य वेदनोच्यते—वेदना यथासंभवं द्विविधा—कायिकी, मानसी च । श्लयमूच्यादिवेधाज्जाता, ज्वरातिसारकासादिव्याधिजनिता वा कायिकी, प्रियवियोगादकृता मानसी ॥ सू० ५ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—  
'से तं.' इत्यादि ।

## मूलम्—

से तं संबुच्छमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा भगवओ अनगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णाय भवइ, एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु

## वेदनाद्वार—

प्रसंग पाकर त्रसकाय की वेदना का निरूपण किया जाता है—यथासंभव वेदना दो प्रकार की है—कायिक और मानसिक । कांट, सुई आदि चुमने से अथवा ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोगों से उत्पन्न होने वाली वेदना कायिक कहलाती हैं । प्रिय वस्तु के वियोग आदि कारणों से होने वाली वेदना मानसिक वेदना है ॥ सू० ५ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है:—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अनगारों के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञाता त्रसकाय को जानता हुआ संयम धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरंभ

## वेदनाद्वार—

प्रसंग होवाथी त्रसकायनी वेदनानुं निरूपणु करवामां आवे छे—साधारणु रीते वेदना णे प्रकारनी छे—कायिक अने मानसिक कांटा, सोय आदि वागवाथी, अथवा ज्वर—ताप, अतिसार—आडा, भांसी आदि रोगोथी उत्पन्न थवावाणी वेदना कायिक कडेवाय छे. प्रियवस्तुना वियोग वगेरेना कारणोथी थनारी वेदना मानसिक—वेदना छे. ॥सू०५॥

जेणे तीर्थंकर आदिना समीपमां त्रसकायनुं स्वरूप समज्ज वीधुं छे, ते आ प्रमाणे विचारे छे—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान् अथवा अणुगारोना समीप सांलणीने ते त्रसकायना ज्ञाता त्रसकायने ज्ञातुता थका संयम धारणु करीने आ प्रमाणे ज्ञाणे छे—आ त्रसकायने आरंभ

मारे, एष खलु णरए, इच्चत्यं गढिए लोए, जमिणं विरुवरूवेहिं सत्थेहिं  
तसकायसमारंभेण, तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे  
विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा  
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः एष खलु मोहः, एष खलु  
मारः, एष खलु नरकः । इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः  
त्रसकायसमारम्भेण त्रसकायशस्त्रं समारभमाणोऽन्यान् अनेकरूपान् प्राणान्  
विहिनस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके  
श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य,  
विरहति, स तत्=त्रसकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनरूत्वेन विज्ञाता  
सन् एवं विभावयति—

ग्रन्थ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । लोलुप लोग नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा  
त्रसकायका आरंभ करके, त्रसकायका आरंभ करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका  
( भी ) विराधाता करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से अथवा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ  
श्रमणों के मुख से सुनकर सर्व सावद्य के त्यागरूप चारित्र को अंगीकार करके विचरता है,  
वह त्रसकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है । वह इस प्रकार  
सोचता है—

ग्रन्थ छे, आ मोह छे, आ मार छे; आ नरक छे, लोलुप लोक नाना प्रकारनां  
शस्त्रोद्वारा त्रसकायना आरंभ करीने, त्रसकायना आरंभ करता थका अनेक प्रकारना  
अन्य प्राणीओना पणु घात करे छे. ॥सू० ६॥

टीकार्थ—जे पुरुष भगवान् तीर्थंकरना मुखसे अथवा तेमना अनुयायी  
निर्ग्रन्थ श्रमणोना मुखसे सांख्यीने सर्व सावद्य त्यागरूप चारित्रने अंगीकार करीने  
विचरे छे ते त्रसकायना समारंभने अहितकर अने अबोधिजनक-अबोधि उत्पन्न  
करना समझे छे. ते आ प्रमाणे विचार करे छे—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यग्बोधवैराग्याणा-  
मात्मार्थिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—‘ एस खलु  
ग्रन्थः, ’ इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे  
कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=  
विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष  
एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=  
भोगामिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थ-  
मेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त  
कर लेने वाले ही यह जान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारंभ निश्चय ही कर्मबंध है । यहाँ  
कारण में कार्यका उपचार करके कर्मबंध के कारण को कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी प्रकार  
समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात्  
निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारंभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय  
यातना का स्थान है ।

ग्रन्थ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग  
बार-बार इसी के इच्छुक होने हैं । अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले संसारी लोग इस  
ग्रन्थ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

आ मनुष्य लोकमां निर्ग्रन्थाना उपदेशात् सम्यग्ज्ञानं चने वैराग्यं प्राप्तं करी-  
देवावाणाञ्च येन जाणी शक्ये छे के-त्रसकायने समारंभं निश्चयञ्च ग्रन्थ-कर्मबंधं छे,  
अर्द्धि कारणमां कार्यने उपचार करीने कर्मबंधना कारणने कर्मबंधं कर्ह्यो छे, आगण  
पणु आ प्रमाणे समञ्जसुं लेर्धं ये.

आ त्रसकायने समारंभं मोहं अर्थात् अज्ञानं छे. आ मारं अर्थात् निगोद आदिमां  
मृत्युनु कारणं छे. आ समारंभं नरकं छे. अर्थात् दस प्रकारनी नारकीय यातनानु स्थानं छे.

ग्रन्थ, मोह, मरण चने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु अज्ञानी  
लोक वारंवार तेनी धृच्छावाणा थाय छे. अथवा लोगोनी अभिलाषा करवावाणा  
संसारी लोक आ ग्रन्थ, मोह, मार चने नरक माटेण प्रवृत्ति करे छे.

‘लोकः पुनः पुनर्ग्रन्थाद्यर्थमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः त्रसकायसमारम्भेण=त्रसकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमं=त्रसकायं विहिनस्ति । तथा त्रसकाय-शस्त्रं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अन्यान् पृथ्वीकायादीन् स्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ६ ॥

यस्मै प्रयोजनाय त्रसकायो हन्यते, तत् प्रयोजनं यद्यपि—‘इमस्स चैव जीवियस्स.’ इत्यादिनाऽभिहितम्, तथापि विशिष्य तत्तत्प्रयोजनं पुनः प्रदर्शयितुमाह—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

लोग बारम्बार ग्रंथ आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते है, यह बात कैसे माळूम हुई ? इस का समाधान के लिए कहते है—‘यदिमम्’ इत्यादि ।

क्यों कि वे नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करके त्रसकाय की हिंसा करते हैं और त्रसकाय का समारंभ करते हुए पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावर प्राणियों का भी विराधना करते है ॥ सू० ६ ॥

जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा की जाती है वह योजन ‘इस जीवन के सुख के लिए’ इत्यादि कथन द्वारा बतलाया जा चुका है, फिर भी विशेष रूप से उस हिंसाका प्रयोजन बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते है—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

ढोड वारंवार ग्रंथ आदिना भाटेज प्रवृत्ति करे छे, अे वात डेवी रीते भाळूम पडी ? अेनु समाधान करवा भाटे डडे छे:—‘यदिमम्.’ इत्यादि.

डेभ डे नाना प्रकारना शस्त्रोद्वारा त्रसकायनो समारंभ करीने त्रसकायनी डिसा करे छे, अने त्रसकायनो समारंभ करता थका पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावर प्राणी-अोनो पळु धात करे छे. ॥ सू० ६ ॥

अे प्रयोजनथी त्रसकायनी डिसा करवाभा आवे छे. ते प्रयोजन “आ अवनना सुण भाटे” इत्यादि विवेचनद्वारा अतात्रु छे. (अतावी थूकया छीअे.) इरी पळु विशेषरूपथी अे डिसानुं प्रयोजन अताववा भाटे श्री सुधर्मा स्वामी डडे छे:—‘से वेमि.’ इत्यादि.

## मूलम्—

से वेमि—अप्येगे अच्चाए हणंति, अप्येगे अजिगाए वहंति, अप्येगे मंसाए वहंति, अप्येगे साणियाए वहंति, एवं हिययाए, पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, णहाए, ण्हारूणीए, अट्टीय, अट्टिमिजाए, अट्टाए, अणट्टाए, अप्येगे 'हिंसिंस्तु मे' त्ति वा वहंति, अप्येगे 'हिंसंति मे' त्ति वा वहंति, अप्येगे 'हिंसिस्संति मे' त्ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

## छाया—

तद् ब्रवीमि—अप्येके अर्चायै ध्नन्ति, अप्येके अजिनाय ध्नन्ति, अप्येके मांसाय ध्नन्ति, अप्येके शोणिताय ध्नन्ति एवं हृदयाय, पित्ताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय वालाय, शृङ्गाय, विपाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थने, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीपुरस्मा'—निति वा ध्नन्ति, अप्येके 'हिंसन्त्यस्मा' निति वा ध्नन्ति, अप्येके 'हनिष्यन्त्यस्मा'—निति वा ध्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ—कोई अर्चा शरीर के लिए त्रसकाय का विराघना करते है, कोई चर्म—चमडे के लिए घात करते है, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते है, कोई हृदय के लिए, पित के लिए, चर्वा के लिए पंख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, साँग के लिए, विषाण (सुअर का दांत) के लिए, दांत (हाथीदांत) के लिए, दाढों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए—(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते है ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—हुं डहुं छुः—कोई अर्चा (शरीर) भाटे त्रसकायनेा घात करे छे. कोई आभडी भाटे घात करे छे. कोई मांस भाटे घात करे छे. कोई रक्त—लोही भाटे घात करे छे. कोई हृदय भाटे, पित्त भाटे, अरथी भाटे, पांजेा भाटे, पूंछडा भाटे, वाण भाटे, शींगडा भाटे, विषाणु (सुवरना दांत) भाटे, हाथी दांत भाटे, दाढे भाटे, नख भाटे, स्नायु भाटे, डाडकां भाटे, मज्जा भाटे, अर्थ भाटे, अनर्थ—(निरर्थक). कोई 'अमने भार्या हुता' अे लावनाथी, कोई 'अमने मारे छे' अे लावनाथी, अने कोई 'अमने मारशे' आ लावनाथी त्रसकायनेा घात करे छे. ॥ सू० ७ ॥

टीका—

यदर्थं त्रसजीवा हन्यन्ते, तद् ब्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अत्रापि-  
शब्दः वक्ष्यमाणापेक्षया समुच्चयार्थः, अर्चयै-अर्च्यते=पूज्यते-इत्यर्चा=शरीरं,  
तदर्थं घ्नन्ति=हिसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुषं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रं,  
साधयन्ति, यद्वा-स्वर्णपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशलक्षणं पुरुषं प्रतप्ततैले निक्षिप्य  
निघ्नन्ति । तथा अप्येके=केचन अजिनाय=चर्मार्थं मृगव्याघ्रदीन् घ्नन्ति ।  
तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् घ्नन्ति । अप्येके=केचन शोणिताय=  
त्रिशूलालेखकरणादौ शोणितं ग्रहीतुं घ्नन्ति । एवं हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा  
साधका मथन्ति, तदर्थं घ्नन्ति । पित्ताय मयूरादीन्, वसाय व्याघ्रादीन्,  
पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोज्ञादीन्, वालाय चमर्यादीन्, गृङ्गाय मृगादीन्,

टीकार्थ—हे जम्बू जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा होती है, वह कहता हूँ ।  
कोई-कोई अर्चा अर्थात् शरीर के लिए विराघाना करते हैं, जैसे किसी पुरुष को अच्छे  
लक्षण वाला समझकर उसे मार डालते हैं, और उसके शरीर से विद्या तथा मन्त्र का  
साधन करते हैं । अथवा स्वर्णपुरुष के निर्माण के लिए बत्तीस लक्षण वाले पुरुष को  
तपे हुए तेल में डालकर मारते हैं । कोई चर्म के लिए मृग और वाघ आदि का घात  
करते हैं । कोई मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं । कोई त्रिशूल का चिह्न बनाने  
आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से घात करते हैं । इसी प्रकार हृदय के लिए घात  
करते हैं—घातक लोग हृदय लेकर मथते हैं । इसी तरह पित्तके लिए मयूरों को चर्बक  
लिए वाघ आदि को, पंखों के लिए मयूरों को, पूँछके लिए रोज्ञ आदि को, बाल के

टीकार्थ—ये प्रयोजनशील त्रसल्लोचनी हिंसा थाय छे; ते ऊहुं छुं. डोर्ध-डोर्ध  
अर्था अर्थात् शरीरना भाटे घात करे छे. नेमके-डोर्ध पुष्पने सारा लक्षणवाणे समलने  
तेम भारी नांणे छे, अने तेना शरीरशी विद्या तथा मन्त्रनी साधना करे छे अथवा-  
स्वर्ण पुष्पना निर्माण भाटे अत्रीस लक्षणवाणा पुष्पने तपावेदा तेलमां नांणीने  
भारे छे. डोर्ध व्यामडा भाटे मृग अने वाघ वगेरेने घात करे छे. डोर्ध मांस भाटे  
अकरा वगेरेने भारे छे. डोर्ध त्रिशूलनुं चिह्न अनाववा वगेरे भाटे दोही प्राप्त करवाना  
उद्देश्यशी घात करे छे. अे प्रमाणे डोर्ध हृदय भाटे घात करे छे-घातकी दोड हृदय लधने  
भथे छे. अे प्रमाणे पित्त भाटे मारने, अरणी भाटे वाघ आदिने वाण भाटे  
अमरी-गाय आदिने, शींग भाटे मृग आदिने भारे छे. विषाणु-शुद्ध ने डे हाथी



विषाणाय, विषाणशब्दो गजदन्ते रूढस्तथापीह सूकरदन्तो ग्राह्यः, तदर्थं सूकरम्, दन्ताय हस्त्यादीन्, दंष्ट्रायै वराहादीन्, नखाय व्याघ्रादीन्, स्नायवे गवादीन्, अस्थने शङ्खादीन्, अस्थिमज्जायै-अस्थिमज्जा=अस्थिगतरसः, तदर्थं, महीपादीन्, ध्नन्ति । इत्थम्-अर्थाय=प्रयोजनवशात् केचिद् ध्नन्ति । तथा- अनर्थाय=विनाऽपि प्रयोजन केचिद् ध्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रसर्प-सूकरादयः शत्रवो वा अस्मान् अपीडयन्, अस्मदीयान् वाऽवघिषुः” इति द्वेषवासनया ध्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा वर्तमानकालेऽस्मान्, अस्मदीयान् वा हिंसन्ति.” इति मत्वा ध्नन्ति ।

लिए चमरी गाय आदि को, सींग के लिए मृग आदि को मारते हैं । विषाण शब्द यद्यपि हाथीदांत के अर्थ में रूढ है तथापि यहाँ ‘सुअर का दांत’ अर्थ लेना चाहिए । सुअर के दांत के लिए सुअर का घात किया जाता है । दांत के लिए हाथी आदि को, दाढ़ों के लिए शूकर वगैरह को, नख के लिए वाघ आदि को, स्नायु के लिए गाय आदि को, हड्डी के लिए शंख आदि को, अस्थिमज्जा अर्थात् हड्डियों में रहने वाले एक प्रकार के रस के लिए भैंसा वगैरह का घात करते हैं । इस प्रकार कोई-कोई प्रयोजन के लिए त्रसजीवों की हिंसा करते हैं और कोई-कोई विना प्रयोजन ही हिंसा करते हैं । कोई-कोई ‘इस वाघ, सर्प और शूकरने तथा शत्रुओंने हमें पीडा पहुँचाई है, अथवा हमारे आत्मीयजन का वध किया है’ इस प्रकार की द्वेष-वासना से इनका घात करते हैं । कोई लोग यह सोचकर कि-‘ये व्याघ्र आदि अथवा शत्रु वर्तमान कालमें हमें या हमारे लोगोंको मारते हैं’ उनका घात करते हैं । कोई लोग यह विचार करके कि-‘यह

दांतना अर्थमां रूढ छे. तो पणु अहिं ‘सूअरनां दांत’ अवेो अर्थ लेवेो जेधये. सूअरना दांत भाटे सूअरनेो घात करवामां आवे छे. दांत भाटे हाथी आदिनेो, दाढोने भाटे शूकर-भूँड वगेरेनेो, नख वगेरे भाटे वाघ आदिनेो, स्नायुने भाटे गाय आदिनेो, हाडकां वगेरे भाटे शंख आदिनेो, अस्थिमज्जा अर्थात्, हाडकांमां रहेनारा अेक प्रकार रस भाटे लेसा-पाडा वगेरेनेो घात करे छे, आ प्रमाणे केध-केध प्रयोजन भाटे त्रस जीवोनी हिंसा करे छे. अने केध-केध प्रयोजन विनाज हिंसा करे छे. केध-केध ‘आ वाघ सर्प अने शूकर-भूँडे तथा शत्रुओअे अभने पीडा पहुँचायी हुती. अथवा अभारा आत्मीय-जननेो (तेणे) वध कर्यो हुतो.’ आ प्रकारे द्वेष-वासनाथी तेनेो घात करे छे. केध भाणुस अवेो विचार करीने के-‘आ वाघ आदि, अथवा शत्रु वर्तमान कालमा भने अथवा

अप्येके=केचिच्च, 'अस्मान् अस्मदीयान् वा इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा हनिष्यन्ति' इति हेतोस्त्रसकायान् घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

एवं त्रसकायसमारम्भं विदित्वा मुनित्वलाभाय तत्समारम्भः सर्वथा परिहर्तव्यः, इत्याशयेनोद्देशकार्थमुपसंहरन्नाह—“ एत्थ सत्थं.” इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते तसकायसमा-

व्याघ्र आदि अथवा यह शत्रु हमें या हमारों को मारे'गे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार लोग त्रसकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार त्रसकाय के समारंभ को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए त्रसकाय का आरंभ सर्वथा त्याग देना चाहिए । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए कहते हैं—‘एत्थ सत्थं’. इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले को यह आरंभ अपरिज्ञात होते हैं । त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ नहीं करने वाले को यह आरंभ परिज्ञात होते हैं । मेधावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ न करावे, और त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले का अनु-

अभाराने भारे छे' तेथी तेने घात करे छे. केरि दोक 'आ वाध आदि अथवा आ शत्रु भने अथवा अभाराने भारे.' अबुं विचारीने तेने भारी नांछे छे. आ प्रभाणे दोक त्रसकायनी हिंसा करे छे. ॥ सू० ७ ॥

आ प्रभाणे त्रसकायना समारंभने ज्ञानीने साधुता प्राप्त करवा भाटे त्रसकायने आरंभ सर्वथा त्यागी देवे जेधये—त्यज्य देवे जेधये. ये आशयथी आ उद्देशकेने उपसंहार करता थका कडे छे—‘ एत्थ सत्थं’. इत्यादि.

मूलार्थ—त्रसकायने विषे शस्त्रने समारंभ करवावाणाने आ आरंभ अपरिज्ञात होय छे. त्रसकायने विषे शस्त्रने समारंभ नहिं करवावाणाने आ आरंभ परिज्ञात छे. (जणुवामां छे). बुद्धिमान पुरुष तेने ज्ञानीने पोते त्रसकायमां शस्त्रने समारंभ करे नहिं पीन पासे त्रसकायना शस्त्रने समारंभ करावे नहिं अने त्रसकायमां शस्त्रने समारंभ

रंभा परिणया भवति, से हु मुणी परिणाय कम्मे—त्ति वेमि ॥ सू० ८ ॥

छट्टो उद्देशो समत्तो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मेधात्री नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते त्रसकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ षष्ठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तज्ञानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

मोदन न करे । जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावध व्यापार कर्मबंध के कारण है' ऐसा ज्ञात नहीं होता ।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

करवावाणाने अनुमोदन आपे नडि, जे त्रसकायना समारंभने ज्ञाते छे. तेज मुनि छे. परिज्ञातकर्मा छे. ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकायना विषयमां पूर्वोक्त ( आगण कडेलां ) शस्त्रानो व्यापार करवावाणा 'त्रणु करणु अने त्रणु योगथी थवावाणो सावध व्यापार कर्मबंधनुं कारणु छे.' जे प्रमाणे ज्ञातुता नथी. अने त्रसकायमां पूर्वोक्त ( आगण कडेलां ) शस्त्रानो व्यापार नडिं करवावाणा पूर्वोक्त ( आगण कडेला ) सावध व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारणु समजे छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेना त्याग करी दे छे.

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति—‘तत् परिज्ञाये’—त्यादि । तद्=त्रसकायारम्भणम्, परिज्ञाय=कर्मबन्धस्य कारणं भवतीत्यवबुध्य, मेधात्रो=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभामाणान् अन्यान् वा न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् ।

यस्यैते त्रसकायसमारम्भाः=त्रसकायोपमर्दकसावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति । ‘इति ब्रवीमि’ इति । अस्य व्याख्यानं पूर्ववत् ॥ सू० ८ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने षष्ठ उद्देशकः संपूर्णः ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिज्ञा का स्वरूप शास्त्रकार दिखलाते है त्रसकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर बुद्धिमान् अर्थात् हेय-उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करावे और त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे ।

जिसने त्रसकाय का घात करने वाले सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण तीन योग से सर्व सावध व्यापारों का ज्ञाता पुरुष मुनि होता है । ‘त्ति वेमि’ पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए ॥ सू० ८ ॥

श्री आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन का छठा उद्देश समाप्त १-६ ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक थवावाणी प्रत्याख्यानपरिज्ञानुं स्वरूप शास्त्रकार अतावे छे- त्रसकायना आरंभने कर्मबंधनुं कारण् नाणीने बुद्धिमान् अर्थात् हेय-उपादेयने विवेकी पुरुष पोते त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करे नहि, भीन्त पासे त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करावे नहि, अने त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि.

जेणे त्रसकायने घात करवावाणा सावध व्यापारेने ज्ञपरिज्ञाथी बंधनुं कारण् समञ्ज दीधुं छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यञ्ज दीधुं छे. ते त्रण् करण्, त्रण् योगथी सर्वसावधव्यापारेना ज्ञाता-नाणुकार पुरुष मुनि होय छे. ‘त्ति वेत्ति’ पदनी व्याख्या पडेतां प्रमाणे समञ्ज देवी जेध् अ. ॥सू० ८॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रना प्रथम अध्ययनने छठो उद्देश समाप्त. ॥ १ । ६ ॥

। अथ सप्तमोद्देशकः ।

वायुकायस्य चाक्षुषप्रत्यक्षविषयत्वाभावात् तस्य सचित्तत्वे स्वतः श्रद्धा नोत्पद्यते, किन्तु पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां, द्वीन्द्रियादेस्त्रसकायस्य च स्वरूपं विदित्वा जातश्रद्धो वायुकायं सुतरां विजानातीत्याशयेन तद्विषयकश्चरमः सप्तमोऽयमुद्देशकः प्रारभ्यते ।

यथा वायुकायोपमर्दननिवृत्त्या मुनित्वं प्राप्यते, तं प्रकारं प्रदर्शयितुमाह—  
'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलम्—

पहू एजस्स दुगुंछणाए आयंकदंसो अहियं—ति नच्चा । जे अज्जत्थं

सातवाँ उद्देश—

वायुकाय के जीव चक्षु के गोचर नहीं होते, अत एव वायु की सचित्तता में स्वतः श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती । किन्तु पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों का, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का स्वरूप समझ लेने से जिसे श्रद्धा उत्पन्न होगई है वह वायुकाय को स्वयं ही जान लेता है । इस आशय से वायुकायसंबंधी यह अंतिम सातवाँ उद्देश आरंभ किया जाता है ।

वायुकाय की हिंसा त्यागने से ही साधुपन प्राप्त होता है, यह बात आगे प्रदर्शित करते हैं—'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलार्थ—दुःखदर्शी पुरुष (वायुकाय के आरंभ को) अहितकर जानकरके वायुकाय के आरम्भ को त्यागने में समर्थ होता है । जो अव्यात्म को जानता है वह

सातमो उद्देश—

वायुकायना एव नेत्रथी जेवामां आवता नथी, जे कारण्थी वायुनी सचित्ततामां स्वतः श्रद्धा उत्पन्न थती नथी. परन्तु पृथ्वीकाय आदि जेकेन्द्रियोना तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जेवोना स्वइपने समए जेवाथी जेने श्रद्धा उत्पन्न थर्ध गर्ध छे, ते वायुकायने पोतेज न्णणी वे छे. जे आशयथी वायुकायसंबंधी आ अंतिम-छेदला सातमा उद्देशेना आरंभ करवामां आवे छे.

वायुकायनी हिंसा त्यागवार्थी साधुता प्राप्त थाय छे. जे वात आगण भतावे छे—'पहू एजस्स.' इत्यादि.

मूलार्थ—दुःखदर्शी पुरुष (वायुकायना आरंभने) अहितकर न्णणीने वायुकायना आरंभने त्यए देवामां समर्थ डाय छे, जे अध्यात्मने न्णणे छे. ते भडारने न्णणे छे,

जाणइ, से वहिया जाणइ, जे वहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ । पयं तुल्लमन्नेसिं ।  
इह संतिगया दविया णावकंखंति जीचिउं ॥ सू० १ ॥

छाया—

प्रभुः एजस्य जुगुप्सायाम् आतङ्कदर्शी अहित-मिति ज्ञात्वा । यः अध्यात्मं  
जानाति, स वहिर्जानाति । यः वहिर्जानाति स अध्यात्मं जानाति । एतत् तुल्य-  
मन्येषाम् । इह शान्तिगताः द्रविकाः नावकाङ्क्षन्ति जीवितुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—

यः आतङ्कः=कृच्छ्रजीवनं, दुःखं, तच्च शारीरमानसभेदाद् द्विविधम्, तत्र  
कण्टकशस्त्रादिजनितं शारीरम्, प्रियवियोगाप्रियसंयोगाभिलषितालाभदारिद्र्यादि-  
कृतं मानसम् । एतद् द्विविधदुःखरूपमातङ्कं पश्यति तच्छीलश्वेत्यातङ्कदर्शी, यद्वा-  
षड्जीविकायसमारम्भेण वायुकायसमारम्भेण वा यद्दुःखं स आतङ्कः, तं

बाह्य को जानता है, जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है । यह (सुख-दुःख)  
दूसरों का भी अपने समान है । उपशम को प्राप्त और राग-द्वेष से रहित संयमी पुरुष, पर  
की हिंसा करके अपने जीवन की इच्छा नहीं करते ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन या दुःख को आतंक कहते हैं । शारीरिक और  
मानसिक भेद से दुःख दो प्रकार का है । कंटक एवं शस्त्र आदि से होने वाला दुःख  
शारीरिक कहलाता है । प्रियवियोग और अप्रियसंयोग, इस की अप्राप्ति और दरिद्रता  
आदि से होने वाला दुःख मानसिक कहलाता है, इन दोनों प्रकार के दुःखरूप आतंक को  
देखने वाला आतंकदर्शी कहलाता है । अथवा षड्जीवनिकाय या वायुकाय के समारम्भ से  
होने वाला दुःख आतंक कहलाका है, और उसे देखने वाला अतंकदर्शी है । वह

ने पहचानने लगे छे ते अध्यात्मने लगे छे. आ (सुख-दुःख) भीलनेने पणु  
आपणु समान छे.

उपशमने प्राप्त अने राग-द्वेषथी रहित संयमी पुरुष परनी-भीलनी हिंसा  
करीने पोताना लवननी धरुषा करता नथी. ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय लवन अथवा दुःखने आतंक कडे छे. शारीरिक अने  
मानसिक लेदथी दुःख जे प्रकारनां छे. कंटक अर्थात् शस्त्र आदिथी थवावाणां दुःख  
शारीरिक कडेवाय छे. प्रियवियोग अने अप्रियसंयोग, धरुषनी अप्राप्ति अने दरिद्रता  
आदिथी थनारा दुःखो ते मानसिक कडेवाय छे. आ अनेने प्रकारनां दुःखरूप आतंकने  
लेवावाणा आतंकदर्शी कडेवाय छे. अथवा षड्जीवनिकाय अथवा वायुकायना समारंभथी

पश्यतीत्यातङ्कदर्शी भवति, स हिताहितविवेककुशलत्वाद् अहितम्=अशुभकरं वायु-  
कायसमारम्भगमस्तीति ज्ञात्वा, एजस्य=एजतीत्येजः कम्पनशीलत्वाद् वायुः,  
तस्य, जुगुप्सायां=निन्दायां, सेवनपरिवर्जने समारम्भनिवृत्तौ, इति यावत् ,

प्रभुः=समर्थो भवति । जुगुप्सा, संयमना, अकरणा, वर्जना, व्यावर्तना,  
निवृत्तिरित्येकार्थाः ।

अयमाशयः—वायुकायसमारम्भकरणे शारीरं मानसं च सर्वमेव दुःखं मयि  
समापद्येत, तस्मादिदमातङ्कजनकत्वादहितमिति विज्ञाता, तत्सेवनलक्षणसमारम्भ-  
परिहरणे समर्थो भवतीति ।

यः अध्यात्मम्=आत्मनीति अध्यात्मम् स्वात्मगतं सुखं दुःखं वेत्यर्थः,

हित-अहित के विवेक में कुशल होने से वायुकाय से आरम्भ को अहितकर समझकर वायु  
के आरम्भ का त्याग करने में समर्थ होता है । मूल में आये हुए जुगुप्सा (दुगुछा) शब्द  
के कई अर्थ होते हैं । जैसे—संयमन, अकरण (न करना), वर्जन (त्यागना), व्यावर्तन  
(हटाना) और निवृत्ति (त्याग) ।

आशय यह है—‘वायुकाय का आरम्भ करने से मुझे शारीरिक और मानसिक सभी  
दुःख प्राप्त होंगे अतः यह आरम्भ अतंकजनक होने के कारण अहितकर है’ । ऐसा जानने  
वाला उसके सेवनरूप आरम्भ के त्याग में समर्थ होता है ।

जो अध्यात्म को अर्थात् अपने आत्मा में स्थित सुख-दुःख को जानता है

थनाइं दुःख आंतक डडेवाय छे, अने अने जेवावाणा आतंकदर्शी छे. ते हित-  
अहितना विवेकमां कुशल डोवाना डारणुथी वायुकायना आरंभने अहितकर समञ्जने  
वायुना आरंभने त्याग करवामां समर्थ डोय छे. मूलमां आवेके ‘दुगुच्छा-जुगुप्सा’  
शब्दना डेटलाय अर्थ थाय छे. जेभके:-संयमन, अकरण-( नहि करवुं ) वर्जन,  
(त्यागवुं) व्यावर्तन, (डकवुं) अने निवृत्ति (त्याग).

आशय अे छे डे-‘वायुकायना आरंभ करवाथी भने शारीरिक अने मानसिक  
सर्व दुःख प्राप्त थशे; अे भाटे अे आरंभ आतंकजनक डोवाना डारणु अहितकर  
छे.’ अे प्रभाणु जेवावाणा अेना सेवनरूप आरंभना त्यागमां समर्थ डोय छे.

जे अध्यात्मने अर्थात् पोताना आत्माभा स्थित सुख-दुःखने जणु छे, ते आत्मा

जानाति स बहिः=परकीयं सुखं दुःखं वा जानाति । ममात्मनि दुःखमसातवेदनीय-  
कर्मोदयात् समापत्ति, सुखमपि सातवेदनीयकर्मोदयात् स्वानुभवसिद्धम्, एवं  
स्वात्मगतसुखदुःखप्रत्यक्षेण परकीयसुखदुःखानुमानं कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः । उक्तमर्थं  
दृढीकर्तुं पुनस्तमेव परावर्त्तयन्नाह--' यः बहिर्जानाति ' इत्यादि ।

यः, बहिः=परात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति, स अध्यात्मं=स्वात्मगतं  
सुखं दुःखं वा जानाति । परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे  
स्वरूपे साम्यादिति भावः ।

यद्वा-परविराधनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनः सुखं, तथा  
परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एवं परकीयमेव सुखं दुःखं वा

वह बाह्य अर्थात् दूसरे के सुख-दुःख को जानता है । मेरे आत्मा में असातवेदनीय कर्म के  
उदय से दुःख आया है और सातवेदनीय कर्म के उदय से सुख स्वानुभव सिद्ध है । इस  
प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रत्यक्ष से जानता है, वह दूसरों के सुख-दुःख  
का अनुमान कर सकता है । इसी अभिप्राय को पुष्ट करने के लिए यही बात पलटकर कहते  
हैं-जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है ।

अर्थात्-जो पराये सुख-दुःख को जानता है वह अपने आत्मा के सुख दुःख को  
जानता है । पराये और अपने सुख-दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप  
स्वरूप समान है ।

अथवा-परको पीडा पहुंचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त  
होता है और पीडा पहुंचाने से दुःख मिलता है । इस प्रकार पराया सुख और दुःख

अर्थात् भीलना सुખ-दुःખને જાણે છે. મારા આત્માને વિષે અસાતાવેદનીય કર્મના  
ઉદયથી દુઃખ આવ્યું છે, અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી સુખ સ્વાનુભવસિદ્ધ છે.  
આ પ્રમાણે પોતાનાં આત્માનાં સુખ-દુઃખનું અનુમાન કરી શકે છે. એ અભિપ્રાયને પુષ્ટ  
કરવા માટે એજ વાત પલટાવીને કહે છે:-જે બાહ્યને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે.

અર્થાત્-જે પરાયા સુખ-દુઃખને જાણે છે, તે પોતાના આત્માના સુખ-દુઃખને  
જાણે છે. પરાયા-બીલના અને પોતાના સુખ-દુઃખનું અનુકૂલ વેદન અને પ્રતિકૂલ  
વેદનરૂપ સ્વરૂપ સમાન છે.

અથવા-બીલને પીડા પહોંચાડવાના ત્યાગ કરવાથી સુખરૂપ ફલ પ્રાપ્ત થાય  
છે. અને પીડા પહોંચાડવાથી દુઃખ મળે છે.



स्वात्मनः सुखरूपेण दुःखरूपेण वा परिणम्यते । एवं तयोः कार्यकारणभावं यो विजानाति, स एव स्वात्मगतसुखदुःखविज्ञातेति भावः ।

परकीयसुखदुःखविज्ञाता स्वात्मनः सुखं दुःखं वा जानातीत्युक्तार्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह— ‘ एयं तुल्लमन्नेसि ’ इति । एतत्=सुखं दुःखं वा, तुल्यं=सदृशमेव, अन्येषाम्=परेषां जीवानां स्वस्व चेत्यर्थः ।

“ कट्टेण कंठणए व, पाए विद्धस्स वेयणट्टम्स ।

जा होइ अणिव्वाणी, गायव्या सव्वजीवाणं ॥

जह मम ण प्रियं दुक्खं, जाणिय एमेव जीवाणं ” ॥

छाया-- काष्ठेन कण्टकेन वा पादे विद्धस्य वेदनार्त्तस्य ।

या भवति अनिर्वाणि-ज्ञातव्या सर्वजीवानाम् ॥

यथा मम न प्रियं दुःखं ज्ञात्वा एवमेव सर्वजीवानाम् । ” इति ।

ही अपने सुख-दुःख के रूप में परिणत हो जाता है । इस प्रकार जो उनके कार्यकारण भाव को जानता है वही अपने आत्मा के सुख-दुःख का ज्ञाता होता है ।

दूसरों के सुख-दुःख का ज्ञाता ही अपने सुख-दुःख को जानता है, इस कथन में हेतु दिखलाते हुए कहते हैं:-‘यह सुख और दुःख दूसरों के और अपने समान ही है’ । कहा भी है:—

लकड़ी से या कंटक से पैर में विंध जाने की वेदना से पीडित पुरुष को जो असतोष होता है, वही सब जीवों को होता है ।

जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार अन्य अन्य प्राणियों को भी दुःख प्रिय नहीं है ” ।

આ પ્રમાણે ખીજના સુખ અને દુઃખજ પોતાના સુખ-દુઃખના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય-કારણ ભાવને જાણે છે, તેજ પોતાના આત્માનાં સુખ-દુઃખના જ્ઞાતા હોય છે

ખીજનાં સુખ-દુઃખનાં જ્ઞાતા જ પોતાના સુખ-દુઃખને જાણે છે. આ કથનમાં હેતુ બતાવતા થકા કહે છે કે:—

“ આ સુખ અને દુઃખ ખીજનાં અને આપણાં સમાન છે. ” કહ્યું છે કે:-

“ લાકડીથી અથવા કાંટાથી પગમાં વિંધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અંતવેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે. ”

“ જેમ મને દુઃખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે ખીજ પ્રાણીઓને પણ દુઃખ પ્રિય નથી. ”

अन्यत्र च—“ मर्तव्यमिति यद्वखं, पुरुषस्योपजायते ।

शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरिक्षतुम् ” ॥१॥ इति ।

स्वपर-सुखदुःखयास्तुल्यत्ववेदिनो न वायुकायं विराधयन्तीत्याह-  
'इह शान्तिगताः' इत्यादि । इह=जिनप्रवचने, शान्तिगताः=स्वपरसुखदुःखयोः  
समत्वविज्ञानाद् औपशमिकभावं प्राप्ताः सम्यक्त्विन इत्यर्थः यद्वा=शान्तिः=  
सावधव्यापारपरिहारः, तामुपगताः द्रविकाः=रागद्वेषरहिताः, यद्वा-द्रवः=  
संयमः कर्मद्रवणकारित्वात्, स विद्यते येषां ते द्रविकाः= कर्मनिवारणशीलाः  
संयमिनः जीवितम्=व्यजनादिना वायुकायस्य समारम्भेण प्राणान् परिरिक्षितुं  
नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति ।

दूसरी जगह कहा है—

“तेरा मरना ही अच्छा है, ऐसा वाक्य सुनने मात्र से पुरुष को जो दुःख होता है,  
इसी में अंदाज लगाकर दूसरों की रक्षा करनी चाहिए ” । १ ।

जो पुरुष स्व-पर सुख-दुःख को समान समझते हैं वे वायुकाय की विराधना  
नहीं करते, यही बात कहते हैं:—

जिनशासन में अपने और पराये सुख-दुःख को समान समझकर जो उपशम  
भावको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि है, अथवा पापमय व्यापारों के त्यागी है, तथा  
राग-द्वेष से रहित हैं, अथवा कर्मों को निवारण करनेवाले संयम से विभूषित हैं, वे  
पंखा आदि से वायुकाय का समारम्भ करके अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा  
नहीं करते ।

બીજી જગ્યાએ પણ કહ્યું છે કે:-

“ તારે મરવું જ સાઈ છે.” એ પ્રમાણે સાંભળવાથી પુરુષને જે દુઃખ થાય  
છે. તે અનુમાનથી બીજાની રક્ષા કરવી જોઈએ. ॥ ૧ ॥

જે પુરુષ સ્વ-પરના (પોતાનાં અને પારકાનાં) સુખ-દુઃખને સમાન સમજે છે,  
તે વાયુકાયની વિરાધના કરતા નથી. તે વાત કહે છે-

જિન શાસનમાં પોતાનાં અને બીજાનાં સુખ-દુઃખને સમાન સમજીને જે ઉપશમ  
ભાવને પ્રાપ્ત થયા છે, અર્થાત્ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે, અથવા પાપમય વ્યાપારોના ત્યાગી છે.  
તથા રાગ દ્વેષથી રહિત છે, અથવા કર્મોનું નિવારણ કરવાવાળા સંયમથી વિભૂષિત છે તે  
પંખા આદિથી વાયુકાયનો સમારંભ કરીને પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવાની ઇચ્છા કરતા નથી.

जिनप्रवचनोक्तचरणकरणसेविनः स्वप्राणरक्षणार्थमपि परजीवोपमर्दनं नेच्छन्ति, ते हि अचाक्षुषवायुजीवविराधनाविनिवृत्ताः कथमन्यचाक्षुषपृथिव्यादिजीवोपमर्दने प्रवर्तेत, न कथमपीति भावः ।

अथ वायुकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्ट द्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र लक्षणप्ररूपणापरिमाणशस्त्रोपभोगद्वाराणि यथाक्रमं निरूप्यन्ते । अवशिष्ट-वधवेदनानिवृत्ति द्वाराणि पृथिवीकायोद्देशे यथा कथितानि तथैवावगन्तव्यानि ।

जिनागम में कथित चरण-करण का सेवन करने वाले अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भी दूसरे जीव की हिंसा करने की अभिलाषा नहीं करते । वे चक्षु से न दिखाई देने वाले वायुकाय के जीवों की विराधना से भी निवृत्त होते हैं तो चक्षु-गोचर अन्य पृथ्वीकाय आदि के जीवों की विराधना में कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं—किसी प्रकार भी नहीं ।

वायुकाय का सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उनमें से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र और उपभोग द्वारों का क्रम से निरूपण करते हैं । शेष वध, वेदना और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए ।

जिनागममां कडेला अरणु-करणुं सेवन करवावाणा पोताना प्राणोनी रक्षा करवा माटे पणु भीज्ण ज्ञोवोनी हिंसा करवानी अबिलाषा करता नथी. ते नेत्रथी नहिं देभाता वायुकायना ज्ञोवोनी विराधनाथी पणु निवृत्त होय छे, तो पछी नेत्रथी नेध शकाय तेवा भीज्ण पृथ्वीकाय आदिना ज्ञोवोनी विराधनामां केवी रीते प्रवृत्त थध शके छे ? केध प्रकारे पणु थध शकता नथी.

वायुकायनुं सम्यग्ज्ञान प्राप्त करवा माटे लक्षण आदि आठ द्वारोनुं निरूपणु करवुं नेधये. तेमांथी लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र अने उपभोग द्वारोनुं क्रमथी निरूपणु करे छे, शेष-(भाडी) वध, वेदना अने निवृत्ति द्वार नेवी रीते पृथ्वीकायना उद्देशमां कद्या छे, तेवीज्ण रीते अहिं सभज्ण देवुं नेधये.

लक्षणद्वारम्-

ननु कथमिदं ज्ञायते वायुः सचित्त इति?, अत्रोच्यते-गृह्यतां तावदनुमानं प्रमाणम्, वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनवच्चात्, हरिणगवयादिवदिति । अनियतविशेषणोपादानात् परमाणौ अपरप्रेरिततिर्यग्गतिसत्त्वेऽपि नानैकान्तिकत्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिरपेक्षस्य स्वाभाविकी गतिरनुश्रेणिर्भवति तस्मात् सा नियतैव । आगमोऽपि प्रमाणं, यथा-दशवैकालिकसूत्रे-“ वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणणं ” । इति,

वायुश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वः अन्यत्र शस्त्रपरिणतात् । इति च्छाया,

लक्षणद्वार-

शंका—वायु सचित्त है, यह बात किस प्रकार जानी जाय ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिएः—वायु चेतनायुक्त है, क्यों कि वह दूसरों की प्रेरणा विना अनियत रूप से तिरछी गति करती है, जैसे हिरन, रोझ आदि । हेतु में ‘अनियत’ विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु व्यभिचार नहीं होता । परमाणु दूसरे की प्रेरणा के बिना जो गति करता है वह गति श्रेणी के अनुसार नियत ही होती है—अनियत नहीं । इस विषय में आगम भी प्रमाण है । दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

“ वायु सचित्त कही गई है । वह अनेक जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । सिर्फ शस्त्रपरिणत वायु सचित्त नहीं है ” ।

लक्षणद्वार-

शंका—वायु सचित्त छे ओ वात केवी रीते ज्ञायी शक्य ?

समाधान—प्रथम अनुमानप्रमाण लधये—वायु चेतनायुक्त छे, केमके ते भीजनी प्रेरणा विना अनियतरूपी तिरछी गति करे छे, जेम-हरण, रोझ आदि । हेतुमां ‘अनियत’ विशेषण लगावी हेवाथी परप्रेरणानो अभाव अने तिरछी गति होवा छतांय पण परमाणुथी व्यभिचार थतो नथी, परमाणु भीजनी प्रेरणा विना जे गति करे छे, ते गति श्रेणी-अनुसार नियत न होय छे, अनियत नहिं ।

आ विषयमां आगम पण प्रमाण छे । दशवैकालिक सूत्रमां कहु छे-

“ वायु सचित्त कडेवामां आव्ये छे । ते अनेक जिववाणे छे अने ते जिवानुं अस्तित्व पृथक्-पृथक् ( जुडं-जुडं ) छे, मात्र शस्त्रपरिणत वायु सचित्त नथी । ”

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाया द्विविधाः—सूक्ष्मा वादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, वादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । वादराः पञ्चविधाः—उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धवातश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः—सचित्ता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय दो प्रकार का है—सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । वादर पाँच प्रकार के है—(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर-ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज-गूँज कर बहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते हैं । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपटल के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते हैं । शीतकाल आदि में धीमे-धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

संक्षेप से वायुकाय के तीन भेद है—(१) सचित्त (२) अचित्त और

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय जे प्रकारना छे. (१) सूक्ष्म अने (२) वादर. सूक्ष्म जेव समस्त लोकमां व्याप्त छे. अने वादर, लोकना एक-देशमां रहै छे. वादर पांच प्रकारना छे. (१) उत्कलि-कावात, (२) मण्डलिकावात, (३) गुञ्जावात, (४) घनवात अने (५) शुद्धवात.

पौरस्त्य आदि जे भेद लोकवादीना प्रकरणमां पहिलां बताव्यां छे, ते सर्वे आ लोकमा अन्तर्गत थछै नय छे. ठहर-रही-रहीने उत्कलिकारूपमां बहैवावाणो वायु ते उत्कलिकावात छे. वातोलीरूप वायुने मण्डलिकावात कहै छे. गूँज-गूँज ने बहैवावाणी वायुने गुञ्जावात कहै छे. पृथ्वीआदिना आधारपर स्थिति हिमपटल समान अत्यन्त सघन वायुने घनवात कहै छे. शीतकाल आदिमां धीमे-धीमे बहैतो वायु ते शुद्धवायु छे.

संक्षेपथी वायुकायना त्रयु भेद छे. (१) सचित्त (२) अचित्त अने (३) मिश्र,

सचित्ताः, उद्गारोच्छ्वासादयोऽचित्ताः सचित्ताचित्तयोः संमिश्रणेन मिश्राः ।

### परिमाणद्वारम्-

ये बादरपर्याप्तका वायुकायास्ते संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्ति-  
प्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेश-  
परिमाणा भवन्ति, विशेषश्चायमत्रावगन्तव्यः-बादरापूकायपर्याप्तकेभ्यो बादरवायु-  
पर्याप्तका असंख्येयगुणाः, बादरापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यो बादरवायुकायाऽ-  
पर्याप्तका असंख्येयगुणाः । सूक्ष्मापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तका  
विशेषाधिकाः, सूक्ष्मापूकायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायपर्याप्तका  
विशेषाधिकाः ॥ सू० १ ॥

(३) मिश्र । उक्कालिकावात आदि सचित है, उद्गार और उच्छ्वास आदि अचित है, और मिली हुई-सचित्त-अचित्त वायु मिश्र है ।

### परिमाणद्वार-

बादरपर्याप्तवायुकाय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातर्वे भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । शेष तीनों प्रत्येक राशियाँ असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर है । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए-बादर अपूकाय के पर्याप्त जीवों की अपेक्षा वायुकाय के बादर पर्याप्त असंख्यात गुणा है । अपूकाय के अपर्याप्त बादर जीवों से वायुकाय के अपर्याप्त बादर असंख्यात गुणा हैं । अपूकाय के सूक्ष्म अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेष अधिक है । अपूकाय के सूक्ष्म पर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक है ॥ सू० १ ॥

उक्कालिकावात आदि सचित्त छे. उद्गार अने उच्छ्वास आदि अचित्त छे. अने सचित्त तथा अचित्त अे अने अेक साथे भणेदा होय ते वायु मिश्र छे.

### परिमाणद्वार-

बादरपर्याप्तवायुकायना एव संवर्तित लोक प्रतरना असंख्यातमा भागवर्ती प्रदेशाना भराभर छे. बाकी त्रय प्रत्येक राशीअे असंख्यात लोकाकाशना प्रदेशानी भराभर छे. अर्हि अेटडी विशेषता समझवी नेछअे-बादर अपूकायना पर्याप्त एवानी अपेक्षा वायुकायना बादर पर्याप्त असंख्यात गणा छे. अपूकायना अपर्याप्त बादर एवोथी वायुकायना अपर्याप्त बादर असंख्यात गणा छे. अपूकायना सूक्ष्म अपर्याप्त एवोथी सूक्ष्म वायुकायना अपर्याप्त विशेष अधिक छे. अपूकायना सूक्ष्मपर्याप्त एवोथी, सूक्ष्म वायुकायना पर्याप्त विशेषाधिक छे. ॥ सू० १ ॥

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकाय-समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

अथ शस्त्रद्वारम्—

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास । अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विस्वरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणोगरूवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारंभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों को अलग—अलग बतलाने के लिए कहते हैं—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में संकोच करने वाले अनगारों को अलग देखो, और कोई—कोई ‘हम अनगार है’ ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

वायुकायना समारंभने सर्वथा त्याग करवावाणा मुनिओने अने वायुकायना समारंभमां प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिओने ञ्हुदा—ञ्हुदा अताववा भाटे कडे छे—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि.

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकायना समारंभमां संकोच करवावाणा अणुगारेने ञ्हुदा ञ्हुदा, अने कोर्—कोर् ‘अमे अणुगार छीओ’ ओवुं कडेनारा अने नाना प्रकारना शस्त्रेथी वायुकायना समारंभ करीने, वायुकायना समारंभ करता थका थीअ अनेक प्रकारना प्राणिओनी हिंसा करे छे. तेने पणु ञ्हुदा—ञ्हुदा ञ्हुदा. ॥ सू० २ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरूणयाऽऽर्द्रचित्तया वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखाः, वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्=विभिन्नाः, केचन प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे वायुकायसमारम्भकरणे भीतास्तस्मा उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्येतु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव वायुकायरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

टीकार्थ—परम करूणा से आर्द्र-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से विमुख, वायुकाय के समारम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगार भिन्न है—कोई अवधि-ज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं, और कोई मतिश्रुतज्ञान के धारक भावितात्मा साधु हैं, उन्हें देखो । अथवा उन्हें द्रव्यलिङ्गियों से भिन्न समझो । ये अनगार वायुकाय का समारम्भ करने में भीत हैं, त्रस्त हैं, उद्विग्न है तथा तीन करण तीन योग से वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी है ।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए, 'हम ही वायुकाय की रक्षा करने वाले पंचमहाव्रतधारी हैं' ऐसा प्रलाप करने वाले द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

टीकार्थ—परम करुणाथी आर्द्र-चित्त होवाना कारणे वायुकायना समारंभथी विमुग्ध, वायुकायना समारंभना सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगार नूदा छे—कोई अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी अने कोई केवलज्ञानी छे, अने कोई मति-श्रुतज्ञानना धारक भावितात्मा साधु छे, तेने नुओ. अथवा तेने द्रव्यलिङ्गिओथी नूदा नुओ, ते अणुगार वायुकायना समारंभ करवामां भीत (भीवा वाणा) छे, त्रस्त छे, उद्विग्न छे. तथा त्रणु करणु त्रणु योगथी वायुकायना समारंभ करवाना त्यागी छे.

अने कोई-कोई 'अमे अणुगार छीये' आ प्रमाणे अभिमानपूर्वक कहे छे. के 'अमे वायुकायनी रक्षा करवावाणा पंचमहाव्रतधारी छीये.' अवे अकवाद करनारा द्रव्यलिङ्गी छे. तेने अणुगारथी नूदा नुओ.



इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः. शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं—स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं—शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वादिगादिवायोः पश्चिम-दिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-वेलकर्णाभिधार-णादयः, घर्माती यद् वहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गं साऽभिधारणा,

तथा—चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निज्वालाप्रतापश्च, तथा मुशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं । यह आगे कहते हैं:—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—( १ ) स्वकाय ( २ ) परकाय और ( ३ ) उभयकायशस्त्र । उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पंखा, तालवृन्त, सूप, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, धूप से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं ।

तथा—चन्दन, खसखस आदि की गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है ।

अणुगार होवानुं अलिमान करवावाणायो द्रव्यलिङ्गी (साया) अणुगारना गुणोमां नरा पणु प्रवृत्ति करता नथी, अने गृहस्थोना कोर्छ पणु कार्योना त्याग करता नथी ते आगण कडे छे.

द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रना लेदथी शस्त्र ये प्रकारना छे, द्रव्यशस्त्रना त्रणु लेद छे (१) स्वकाय, (२) परकाय, (३) उभयकाय-शस्त्र, उष्णवायु, शीतवायुने अने शीतवायु, उष्णवायुने तथा पूर्वादि दिशाओना वायुने पश्चिम आदि दिशाओना वायु स्वकायशस्त्र छे. वांसने अनावेदो तथा तालपत्रने अनावेदो पंखो, सूपडा, चामर, पत्र, वस्त्रभंड अने अभिधारणा आदि, तापथी पीडित पुरुष हवा आववाना रस्तामां थोली नय छे, तेने अभिधारणा कडे छे.

तथा—चन्दन, खसखस, आदिनी गंध, अग्नि, अग्निनी ज्वाला, ताप आदि तथा

कण्डनं, तुषाघपसारणार्थं शूर्पास्फालनं, वस्त्रादिगतरजःप्रभृतिवारणाय वस्त्रादीना-  
माच्छोटनमास्फोटनं प्रस्फोटनं च, तथा शीघ्रगमनं वायुकायस्य विराधकं परकाय-  
शस्त्रम् । उभयकायशस्त्रम्-अनावृतमुखेन भाषणम्, एतत्सर्वं द्रव्यशस्त्रम् । भावशस्त्रं  
तु मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । एवंविधैः शस्त्रैः, वायुकायसमारम्भेण=वायुकायो-  
पमर्दकसावद्यव्यापारेण, इमं वायुकायं विहिंसन्ति ।

वायुकार्याहसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव  
विहिंसन्तीत्याह—‘वायुकायशस्त्रम्.’ इत्यादि । वायुकायशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं  
द्रव्यभावशस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=वायुकायं प्रति प्रयुज्जानाः अन्यान्=वायु-  
कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्थावरान् द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च प्राणान्=  
प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

मूसल से कूटना, छिलके हटाने के लिए सूप से फटकना, घूल-रेत आदि झाड़ने के लिए  
वस्त्र आदि को फटकारना-झटकना तथा जल्दी चलना भी वायुकाय का विराधक परकाय  
शस्त्र है खुले मुख से बोलना उभयकायशस्त्र । मन, वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार  
भावशस्त्र है । इन नाना प्रकार के शस्त्रों से द्रव्यलिङ्गी वायुकाय की हिंसा करने वाले सावध  
व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह षट्कायरूप समस्त लोक की  
हिंसा करता है, यह कहते हैं-वायुकाय की विराधना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और भावशस्त्रों  
का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि  
स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रसजीवों की भी हिंसा करता है ।

भूसलानी कूटवुं, छाल काढवा भाटे, सूपडाथी आटकवुं, धूल-रेती वगेरेने अणेरवा  
भाटे वस्त्र वगेरेने आटकवुं-पछाडवुं, तथा जलही-जलही आलवुं ते पणु वायुकायनुं  
विराधक परकाय शस्त्र छे. उधाडा-भूढला मोढे आलवुं ते उलयकायशस्त्र छे. आ सर्वा  
वायुकायनां द्रव्यशस्त्र छे, मन, वचन अने कायाने अप्रशस्त (वण्णाणुवा लायक नहि ते)  
व्यापार ते लावशस्त्र छे. आ नाना प्रकारना शस्त्रेथी द्रव्यलिङ्गी वायुकायनी हिंसा  
करवावाणाओ सावध व्यापार करीने वायुकायनी हिंसा करे छे.

जे वायुकायनी हिंसामां प्रवृत्त थाय छे ते षट्कायरूप समस्त लोकनी हिंसा  
करे छे. जे कहे छे:-वायुकायनी विराधना करवावाणा पूर्वोक्त द्रव्य अने लावशस्त्रने  
वायुकायना प्रति प्रयोग करवावाणा वायुकायथी भिन्न अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि  
स्थावरानी, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवानी पणु हिंसा करे छे.

इह बहुविधद्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, तत्र शाक्यादयो व्यजनादिशस्त्रैर्वायुकाय-  
समारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति, तथा च संपातिमादीनां हिंसनेन  
षट्कजीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोपि—“वयं प्रञ्चमहाव्रतधारिणो जिना-  
ज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावधमुपदिशन्ति,  
शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वायुकायसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति च । ते हि अनावृतमुखेन  
वदन्ति गायन्ति च । तथा अग्रपूजादौ विविधवाद्यनृत्यादिकं कारयन्ति, एतत्सर्वं  
मिथ्यादर्शनशल्याभिधं पापमाचरन्ति ।

उक्तञ्च—“गंधव्वनदृवाइय-लवणजलारत्तिआइदीवाई ।  
जं किच्चं तं सव्वं-पि ओअरइ अग्गपूयाए ” ॥ १ ॥

संसार में तरह-तरह के द्रव्यलिङ्गी हैं, उन में से शाक्य आदि पंखा वगैरह से  
वायुकाय का आरंभ करते हैं, कराते हैं और आरंभ करने वाले की अनुमोदना करते हैं,  
और संपातिम ( उडकर अचानक आजाने वाले ) आदि जीवों की हिंसा करके षट्काय के  
विराधक बनते हैं । झूठे साधु दण्डी भी ‘हम पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवान् की  
आज्ञा के आराधक अनगार हैं’ इस प्रकार कहते हुए सावध का उपदेश देते हैं । शास्त्र  
में निषिद्ध वायुकाय का समारंभ करते हैं और कराते हैं । वे खुले मुख से बोलते और गाते  
हैं, तथा अग्रपूजा आदि में विविध प्रकार से वाद्य एवं नृत्य आदि कराते हैं । यह सब  
मिथ्यादर्शनशल्यानामक पाप है । वे इसका आचरण करते हैं । जैसे कहा है—

संसारमां तरेहु-तरेहुना द्रव्यलिङ्गी छे, तेमांथी शाक्य आदि पंखा वगेरेथी  
वायुकायने आरंभ करे छे, करावे छे, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे  
छे, अने संपातिम ( उडीने अचानक आववावाणा ) आदि जिवोनी हिंसा करीने  
षट्कायना विराधक अने छे. इंठी यणु ‘अमे पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवाननी  
आज्ञाना आराधक अणुगार छीये.’ आ प्रमाणे कहेता थका सावधने उपदेश आपे  
छे. शास्त्रमां निषिद्ध मनायेला वायुकायने समारंभ करे छे अने करावे छे. ते पुट्टा  
मुअथी-उधाडा मोढे-ओदे छे अने गाय छे, तथा अग्रपूजा वगेरेमां विविध प्रकारथी  
वाद्य अने नृत्य आदि करावे छे. आ सर्वे मिथ्यादर्शनशल्या नामनुं पाप छे. ते अनेनुं  
आचरण करे छे. जेभ कथुं छे—

छाया—गन्धर्वनृत्यवादित्र—लवणजलारात्रिकादिदीपादयः ।

यत्किञ्चित्कृत्यं तत्सर्वमप्यवतरत्यग्रपूजायाम् ॥ १ ॥ इति ।

किञ्च—सप्तदशभेदिपूजाविधावपि गीतनृत्यवाद्यानि कर्त्तव्यतयोपदिशन्ति ।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्यगीतवादित्रैश्चामरवीजनैश्च वायुकायसमा-  
रम्भं कारयन्ति ।

उक्तञ्च—“स्नात्रं विलेपनविभूषणपुष्पवास—

धूपप्रदीपफलतन्दुलपत्रपूगैः ।

नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,—

वादित्रगीतनटनस्तुतिकोशवृद्ध्या ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा ” इत्यादि ।

“गाना, नाचना, बजाना, लवण—जल, आरती करना, दीपक जलाना आदि जितने कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं ” ॥१॥

तथा वे द्रव्यलिङ्गी दण्डी ‘सत्तरहप्रकार की पूजा में भी गीत, नृत्य और वाद्य आदि क्रियाएँ करनी चाहिए’ ऐसा अपदेश देते हैं ।

तथा इक्कीसभेदी पूजा में भी नृत्य, गीत, वादित्र तथा चामर और पंखा आदि के द्वारा वायुकाय का समारंभ कराते हैं । जैसा कहा है:—

“स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प, वास, धूप, दीप, फल, चावल पत्र, सुपारी, नैवेद्य जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वादित्र, गीत, नाट्य, स्तुति और कौशवृद्धि, इस तरह इक्कीस प्रकार की जिन भगवान् की पूजा होती है ” ॥१॥

“गावुं, नाचवुं, भजवुं, भीडुं, जल, आरती करवी, दीपक—दीपो आणवो आदि जेटकां कार्यं छे, ते सर्व अग्रपूजाभां करवाभां आवे छे.” ॥ १ ॥

तथा ते द्रव्यलिङ्गी—दण्डी ‘सत्तरप्रकारनी पूजाभां पणु उभेशां नृत्य अने वाद्य-  
वाञ्छत्र आदि क्रियाओ करवी जेधये.’ ओवो उपदेश आपे छे.

तथा ऐकवीसभेदी पूजाभां पणु नृत्य, गीत, वाञ्छत्र तथा चामर अने पंखा आदि द्वारा वायुकायनो समारंभ करवे छे. जेम कहुं पणु छे—

“स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प, वास, धूप, दीप, जल, सोपा, पत्र, सोपारी, नैवेद्य, जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वाञ्छत्र, गीत, नाटक, स्तुति अने कौशवृद्धि ( धर्मोदाना नामे नाञ्छां—धन—नीवृद्धि ) आ प्रमाणे ऐकवीस प्रकारनी जिनलगवाननी पूजा थाय छे.” ॥१॥

अलमधिकेन—एवमपि ते प्रलपन्ति—यदि जिनभक्त्युद्रेकेण साधुरपि नृत्येत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिधायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंमंते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें ! वे यहाँ तक भी बकते हैं कि—जिनराज की भक्ति में भक्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है । इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म—मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशस्त्र का आरंभ कराता है और वायुकायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है । यह उसके अहित के लिए और उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

विशेष शुं कळीअे, ते अेटळे सुधी पणु कडे छे के—जिनराजनी लक्षितमां भस्त थधने अगर साधु पणु नाच करवा लागे तो पणु कोछ दोष नहीं अर्थात् ते आराधक छे ॥२॥

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कडे छे—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाने वायुकायना आरंभना विषयमां उपदेश आये छे. आ श्रवणना परिवंदन, मानन अने पूजा भाटे, जन्म, मरणथी छुटवा भाटे, दुःखने नाश करवा भाटे. लोक स्वयं—पोते वायुकायशस्त्रने आरंभ करे छे, भीज पासे वायुकायशस्त्रने आरंभ करावे छे. अने वायुकायशस्त्रने आरंभ करवावाणा भीजने अनुमोदन आये छे. ते अेना ( पोताना ) अहित भाटे अने तेमनी अबोधिने भाटे छे. ॥ ३ ॥

वन्दनमाननपूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव वायुशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वायुशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ३ ॥

### टीका—

तत्र=वायुकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा-ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा, खलु=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मरजः-परिहरणार्थं भव्य-जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

### उपभोगद्वार—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अल्पकालावस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम् व्यजन-तालवृन्त-भस्त्र-धमात-फूत्कारा-च्छ्वासादिभिश्च, शीतोष्णवायु-

टीकार्थ—वायुकाय के समारंभ के विषय में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा बतलाई है । तात्पर्य यह है कि—कर्मरूपी रजको हटाने के लिए भव्य जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उपदेश भगवान्ने दिया है ।

### उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वायुकाय की विराधना करते हैं? यह बतलाते हैं—इस अल्पकालीन जीवन के सुख के लिए पंखा, ताडपंखा हिलाना, घौंकनी का घौंकना, फूंक मारना, श्वास लेना आदि क्रियाओं द्वारा, तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

टीकार्थ—वायुकायना समारंभना विषयमां श्रीमहावीरे ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा अतावी छे. तात्पर्य अे छे के:-कर्मरूपी रजने हूर करवा भाटे लव्य लुवेअे परिज्ञाने अवश्य स्वीकार करी देवे लेधअे. आ प्रमाणे लगवाने उपदेश आअे छे.

### उपभोगद्वार—

दोअे कया प्रयोजनथी वायुकायनी विराधना करे छे? अे अतावे छे. आ अल्पकालीन जीवन सुअे भाटे पंखा, ताडपंखा हिलाववा, धमलु धमवी-कूंक मारवी, श्वास लेवे, आदि क्रियाअेद्वारा तथा शीत अने उष्ण (ठंडा अने गरम) वायुना सेवनद्वारा

सेवनैश्च, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं-दृतिवाद्यवेणु-  
प्रभृतिवादनादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, व्यजनयन्त्रादिप्रचालनादौ,  
पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थं वायुयान-वायुयन्त्रादिनिर्माणादौ, तथा जाति-  
मरणमोचनार्थं=देवप्रतिमाभिमुखं नृत्यगीतवादित्रप्रयोगे, व्यजनचामरादिवीजने च,  
तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिप्रतीकारार्थं नवीनवैज्ञानिकोद्भावितवायु-  
चिकित्सायां, तथा-तालवृन्तादिना वायुकायोद्भावने स=जीवनसुखाद्यर्थी,  
स्वयमेव वायुशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं-शस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा वायु-  
कायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनु-

तथा परिवन्दन अर्थात् प्रशंगा पाने के लिए, मशकवाद्य और वांसुरी वजाकर, मानन अर्थात्  
जनसत्कार के लिए व्यजनयंत्र (वीजली का पंखा) गानयंत्र (रेडियो, ग्रामोफोन आदि) वजाकर,  
पूजन अर्थात् वस्त्रों एवं रत्नों आदि के लाम के लिए वायुयान (एरोप्लेने) वायुयंत्र आदि के  
वनाने में, तथा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-जिनप्रतिमा के आगे नृत्य, गीत  
और वादित्र का प्रयोग करने में, चामर पंखा आदि डुलाने में; तथा दुःख का नाश करने के  
लिए, जैसे-व्याधि मिटाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निकाली हुई वायुचिकित्सा  
में तथा ताडपंखा आदि द्वारा वायुकाय की उदीरणा करने में वायुकाय की हिंसा करते  
हैं। इस प्रकार इस जीवन के सुख के अर्थों स्वयं वायुकाय के घातक शस्त्रों का समारंभ  
करते हैं, दूसरों से कराते हैं और वायुकाय का समारंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

तथा परिवन्दन, अर्थात् प्रशंसा भेजववा भाटे मशकवाद्य अने वांसणी वगेरे  
भजवीने, व्यजनयंत्र तथा गानयंत्र (विजलीथी आलता पंखा अने रेडीओ  
तथा ग्रामोफोन) वगेरे भजवीने, पूजन अर्थात्-वस्त्रो अं रत्नो आदिना लाल  
भाटे वायुयान (एरोप्लेन) अने वायुयंत्र आदि भनाववाभां. तथा जन्म-मरणथी  
छुटवा भाटे. जेमके:-देवप्रतिमानी पासो नृत्य-गीत अने वाद्ययंत्रो प्रयोग करवाभां,  
चामर, पंखा आदि डुलाववाभां, तथा दुःखो नाश करवा भाटे, जेमके-व्याधि मटाडवा  
भाटे आलकालना वैज्ञानिकद्वारा शोध करअेली वायुचिकित्साभां, तथा ताडपत्रना  
पंखाद्वारा वायुकायनी उदीरणभां वायुकायनी हिंसा करे छे. ओ प्रभाणे आ लवनना  
'सुभना अर्थी पोते वायुकायना घातक शस्त्रोना समारंल करे छे, भीजनी पासो करावे छे.  
अने वायुकायनो समारंल करवावाणा भीजने अनुमोदन आपे छे. वायुकायनो ओ

जानाति=अनुमोदयति । तद्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं-  
कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अबोधये=  
सम्यक्त्वालाभाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वायुकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—  
'से तं.' इत्यादि ।

### मूलम्—

से तं संबुद्धमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणां वा  
अंतिण, इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस  
खलु णरणे । इच्चत्थं गट्ठिण लोए, जमिणं विरुवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं,  
वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं । वायुकाय का यह आरंभ करने वाले, कराने वाले और उसकी अनुमोदना करने  
वाले को अहितकर होता है तथा अबोधिजनक होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट जिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार  
बिचार करता है:—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् से या उनके अनगारों से सुनकर-समझकर जिसने संयम धारण  
क्रिया है वह जानता है कि—यह वायुकाय का समारंभ ही ग्रंथ है, यही मोह है, यही मार  
है, यही नरक है । इसी में लोग गृद्ध हो रहे हैं, क्यों कि नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय  
के समारंभद्वारा वायुशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा  
करते हैं ॥ सू० ४ ॥

आरंभ, आरंभ करवावाणाने, करवावनारने अने तेनी अनुमोदना आपवावाणाने  
अहितकर थाय छे, तथा अबोधिजनक थाय छे. ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपमां जेणे वायुकायनुं स्वरूप समञ्ज दीधुं छे, ते आ  
प्रमाणे विचार करे छे:—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान् यासेथी अथवा तेमना अणुगारे यासेथी सांलणी-समञ्ज  
ने जेणे संयम धारण कर्तुं छे ते जाणे छे के:—आ वायुकायना समारंभण ग्रंथ छे.  
अण मोह छे. अण मार छे. अण नरक छे, अणमां दोडो गृद्ध थर्छ रहा छे, केभके  
नाना प्रकारना शस्त्रेथी वायुकायना समारंभद्वारा वायुशस्त्रेना आरंभ करता थका  
अन्य अनेक प्रकारनां प्राणीअनी हिंसा करे छे. ॥सू० ४॥



## छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

## टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थाङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ । इत्यादि ।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ— जिस पुरुषने तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप संयम अंगीकर किया है वह वायुकाय के समारंभ को अहितकर और अवोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारंभ निश्चितरूप से कर्मबंध का कारण है । कारण में

टीकार्थ—जे पुरुषे तीर्थंकर लगवान् अथवा तेमना अनुयायी श्रमण-निर्ग्रन्थानां मुखारविन्दे सांलणीने सर्व सावद्यना त्यागरूप संयम अंगीकार कर्यो छे, ते वायुकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिजनक समझता थका आ प्रभाण्णे विचारे छे—

आ लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थानां उपदेशे सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवा-वाणा आत्मार्थी एवोनेन अने जणुवाभां छे केः—

वायुशस्त्र आने। समारंभ निश्चितरूपेथी कर्मबंधनं कारणे छे। कारणमां

कार्योपचारात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वायुशस्त्रसमारम्भः, मोहः=विपर्यासः  
=अज्ञानम् । तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष एव नरकः=  
नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यञ्च=एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थ-  
मेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृह्यः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृह्यः=भोगाभिलाषी,  
लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थ-एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तत इति शेषः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति  
जिज्ञासायामाह—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः वायुकर्म-

कार्य का उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी  
प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद  
आदि में मृत्यु का कारण है, और नरक है अर्थात् नारकीय यातनाओं का स्थान है ।

ग्रन्थ, मोह मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल पाकर भी अज्ञानी जीव बार-बार  
इसी की लालसा करते हैं । अथवा भोगों के अभिलाषी संसारी जीव इस ग्रन्थ, मोह, मरण  
और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

लोग कर्मबंध के लिए ही पुनः-पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार  
जाना जाय ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

क्यों कि नाना प्रकार के, वायुकाय की विराधना करने वाले सावध व्यापार

कार्यको उपचार करके कर्मबंधों के कारण को मूल में कर्मबंध कहेल छे. आगण पणु  
आ. प्रकारे समञ्ज देवुं लेछे. तथा अे वायुकायको समारंभ अज्ञानरूप छे. अे  
निगोद आदिमां मृत्युनु कारण छे (अर्थात् निगोदमां लछे जवावाणो छे.) अने नरक  
छे. अर्थात् नारकीय यातनाओंनुं स्थान छे.

ग्रन्थ, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु अज्ञानी  
जव वारंवार अेनी लालस करे छे, अथवा भोगोना अभिलाषी संसारी जव आ  
ग्रन्थ, मोह, मरण अने नरकरूप फल माटेज प्रवृत्ति करे छे.

लोक' कर्मबंध माटेज पुनः पुनः प्रवृत्ति करे छे. अे प्रमाणे जे कथुं छे ते  
कैवी रीते ज्ञानी शक्य ? अेवी जिज्ञासा थतां कहे छे—‘यदिमम्’ इत्यादि.

केमके नाना प्रकारधी वायुकायनी विराधना करवावाणा सावधव्यापारद्वारा ते

સમારમ્ભેણ=વાયુકાયોપમર્દનરૂપસાવધવ્યાપારેણ, ઇમં=વાયુકાયં વિહિનસ્તિ । તથા—  
વાયુશસ્ત્રં સમારમ્ભમાણઃ—વ્યાપારયન્, અન્યાન્=પૃથિવીકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્  
સ્થાવરાંસ્ત્રસાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

વાયુશસ્ત્રં સમારમ્ભમાણા અનેકવિધાન્ જીવાન્ કથં વિહિંસન્તિ, તત્ ચ પ્રતિ-  
બોધયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ—‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ—સતિ સંપાદમા પાણા આહચ્ચ સંપયંતિ ય, ફરિસં ચ સ્વલુ પુટ્ટા ઇમે  
સંઘાયમાવજ્જંતિ । જે તત્થ સંઘાયમાવજ્જંતિ, તે તત્થ પરિયાવજ્જંતિ । જે તત્થ  
પરિયાવજ્જંતિ તે તત્થ ઉદાયંતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—

તદ્ બ્રવીમિ—સંતિ સંપાતિમાઃ પ્રાણાઃ, આહત્ય સંપતન્તિ ચ, સ્પર્શં ચ સ્વલુ  
સ્પૃષ્ટા એકે સંઘાતમાપદ્યન્તે । યે તત્ર સંઘાતમાપદ્યન્તે, તે તત્ર પર્યાપદ્યન્તે । યે તત્ર  
પર્યાપદ્યન્તે તે તત્રાપદ્રાવન્તિ ॥ ૫ ॥

દ્વારા વે વાયુકાય કા ઘાત કરતે હૈં । તથા વાયુકાય કે શસ્ત્રોં કા પ્રયોગ કરતે હુએ પૃથ્વીકાય  
આદિ અનેક પ્રકાર કે સ્થાવરોં કા, તથા ત્રસ જીવોં કા ઉપમર્દન કરતે હૈ ॥સૂ. ૪॥

વાયુકાય કે શસ્ત્રોં કા પ્રયોગ કરને વાલે નાના પ્રકાર કે જીવોં કી હિંસા કૈસે કરતે  
હૈં ? યહ વતલને કે લિએ શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈં:—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વહ મૈં કહતા હૂં—એકાએક ઉડકર પડને વાલે જીવ હૈં જો અચાનક  
આપડતે હૈં, ઓર વાયુકાય સે સ્પૃષ્ટ હોકર કોઈ—કોઈ સંઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । જો  
સંઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં ઉનકા શરીર સિકુડ જાતા હૈ, મૂર્છિત હો જાતે હૈં, વે મર મી  
જાતે હૈં ॥ સૂ૦ ૫ ॥

વાયુકાયનેા ઘાત કરે છે. તથા વાયુકાયના શસ્ત્રોનેા પ્રયોગ કરતા થકા પૃથ્વીકાય  
આદિ અનેક પ્રકારના સ્થાવરો તથા ત્રસજીવોનું ઉપમર્દન (નાશ) કરે છે. ॥સૂ. ૪॥

વાયુકાયના શસ્ત્રોનેા પ્રયોગ કરવાવાળા નાના પ્રકારના જીવોની હિંસા કેવી રીતે  
કરે છે ? એ બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે:—‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું તે કહું છું—એકાએક (એકાએક) ઉડીને પડવાવાળા જીવ છે.  
તે અચાનક આવી પડે છે, અને વાયુકાયથી સ્પૃષ્ટ થઈને કોઈ—કોઈ જથાડપે થાય  
છે. જે સંઘાત—સમુદાય—જથાડપમાં પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું શરીર સંકોચાઈ જાય છે,  
મૂર્છિત થઈ જાય છે, અને તે મરી પણ જાય છે. ॥ સૂ. ૫ ॥

टीका--

तद् ब्रवीमि=वायुकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तत् कथयामि-संपातिमाः=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति = वायुकायमाश्रित्व विद्यन्ते । एते संपातिमाः आहत्य=व्यजनतालवृन्तवस्त्रादिभिः प्रोद्धावितवायुकायादाघातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुवेगसमाकृष्टाः प्राणापगमायोद्विग्नास्तत्रैव वायुकाये संविशन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः ।

स्पर्शं चेति । स्पर्शोऽस्यास्तीति स्पर्शः=स्पर्शवान्, तं स्पर्शं=वायुकायं, स्पृष्टाः=स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तरि क्तः । एके=वायुवेगसमाहताः प्राणिनः, संघातमापद्यन्ते=परस्परसंघर्षेण गात्रसंकोचं प्राप्नुवन्ति ।

ये तत्र=वायुकाये संपतिताः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियो का घात किस प्रकार होता है सो कहता हूँ । संपातिम अर्थात् उड़-ऊड़कर पडने वाले अनेक जीव वायुकाय के आश्रित रहते हैं । ये संपातिम जीव पंखा, तालवृन्त-पंखा कि एक जाति, वस्त्र आदि से ऊदीरणा की हुई वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पडते हैं, अर्थात् वायु के वेग से खिंचकर घबराये हुए वायुकाय के साथ हो जुड़-से जाते है ।

यहाँ स्पर्श का अर्थ है स्पर्शवान् अर्थात् वायु । कोई-कोई वायु के वेग से आहत हुए जीव संघात को प्राप्त होते है अर्थात् परस्पर रगड खाकर सिकुड जाते है ।

वायुकाय में पडे हुए जो जीव सिकुड जाते है वे वायुकाय के आघात से

टीकार्थ—वायुकायनी हिंसाथी अनेक प्रकारनां प्राणीओना घात केवी रीते थाय छे. ते हुं कहुं छुं:-संपातिम-उडी-उडीने पडवावाणा अनेक एव वायुकायना आश्रये रहे छे. ते संपातिम एव, पंखा, तालपत्र, वस्त्र आदिथी उदीरणा करायेला वायुकायद्वारा आघात पाभीने पडी नय छे. अर्थात् वायुना वेगथी भेयाईने गलरायेला वायुकायनी साथे नोडाई नय छे.

अही स्पर्शने अर्थ छे-स्पर्शवान्-अर्थात् वायु केई-केई वायुना वेगथी आहत-ताडन करायेला एव संघात-नथापछाने प्राप्त थाय छे. अर्थात् परस्पर घसडाईने संकोचाई नय छे.

वायुकायमां पडेला नो एवो संकोचाई नय छे ते वायुकायना आघातथी भूछित

संश्लिष्टा पर्यापद्यन्ते=वायुकायाघातेन मूर्छांप्राप्नुवन्ति-प्रणष्टचेतना भवन्तीत्यर्थः ।  
ये तत्र=पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये, अपद्रावन्ति=प्राणैर्वियुज्यन्ते ।

वायुशस्त्रसमारम्भेण न केवलं वायुजीवविराधना जायते, किन्तु सर्वदिक-  
संचारिणां संपातिमजीवानामन्येषां च बहुविधानां हिंसाऽपि दुर्निवारा भवतीति  
भावः ॥ सू० ५ ॥

एवं वायुकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरण-त्रियोगैस्तत्समा-  
रम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिणायया भवंति ।

मूर्छित हो जाते हैं—उनकी चेतना नष्ट हो जाती है, और जो मूर्छित हो जाते हैं वे प्राणों से  
रहित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं ।

वायुकाय के शस्त्र का आरम्भ करने से अकेले वायुकाय की ही विराधना नहीं होती  
वरन् समी दिशाओ में फिरने वाले संपातिम जीवों की तथा अन्य अनेक प्रकार के जीवों की  
हिंसा होना भी अनिवार्य है ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकार वायुकाय की सचित्तता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण  
तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है । इस आशय से सूत्रकार कहते हैं—  
‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में शस्त्र का व्यापार करने वाला इन व्यापारों

थर्ध नय छे—तेनी चेतना नाश पायी नय छे. अने जे मूर्छित थर्ध नय छे ते  
प्राणोथी रडित पणु थर्ध नय छे अर्थात् मरण पाये छे.

वायुकायना शस्त्रेणो आरंभ करवाथी, ओकला वायुकायना लोवोनीज विराधना  
थाय छे ओटलुंज नडि परन्तु सर्व दिशाओमां इरवावाणा संपातिम लोवोनी तथा  
अन्य अनेक प्रकारना लोवोनी घात थवी ते पणु अनिवार्य छे. ॥सू. ५॥

आ प्रमाणे वायुकायनी सचित्तता समझने साधुता प्राप्त करवा भाटे त्रष्टु  
करणु त्रष्टु योगथी वायुकायने समारंभ त्याग करवा योग्य छे. ओ आशयथी  
सूत्रकार कडे छे:—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि.

मूलार्थ:—वायुकायना विषयमां शस्त्रेणो व्यापार करवावाणाओ ओ व्यापारोने

एत्थं सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहि वाउसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे वाउसत्थं समारंभते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हू मुणी परिण्णायकम्मे—त्ति वेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वायुशस्त्रं समारंभेत, नैवान्यैर्वायुशस्त्रं समारंभयेत्, नैवान्यान् वायुशस्त्रं समारंभमाणान् समनुजानीयात् । यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् वायुकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं समारंभणास्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः कृता आरम्भाः=वायुकायोपमर्दनरूपाः

को कर्मबंध का कारण नहीं समझता । वायुकाय में शस्त्रों का व्यापार न करने वाला इन व्यापारों को कर्मबंध का कारण समझता है । उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शस्त्र का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न करावे और वायुशस्त्र का आरम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे । जो वायुकाय के शस्त्रों के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावध व्यापार का त्यागी है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वायुकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का उपयोग करने वाला तीन करण तीन योग से किये जाने वाले और वायुकाय के घातक सावध व्यापारों को कर्मबंध

कर्मबंधनु कारण समझता नहीं, वायुकायमां शस्त्रोना व्यापार नहि करवावाणा ते व्यापारने कर्मबंधनुं कारण समझे छे. तेने ज्ञानीने विवेकी पुरुष पोते वायुशस्त्रोना आरंभ करे नहि, भीज पासे वायुशस्त्रोना आरंभ करावे नहि, अने वायुशस्त्रोना आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि. जे वायुकायना शस्त्रोना व्यापारने जाले छे तेज मुनि छे. तेज सावध व्यापारना त्यागी छे. आहुं—( आ प्रभाषे ) हुं कहुं छुं. ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—वायुकायना विषयमां पूर्वोक्त शस्त्रोना उपयोग करवावाणा, त्रयु करण त्रयु योगधी करवामां आवता अने वायुकायना घातक सावध व्यापारोने कर्मबंधनुं कारण

सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयु-  
ञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरि-  
ज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति—‘तत्  
परिज्ञाय’ इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धस्य कारणं भवती’  
त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव  
व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान्  
नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमुद्दिश्य शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि—‘इन पाप-कृत्यों से मुझे  
कर्म का बंध होगा’

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरंभ न करने वाला सावध व्यापारों  
को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलाते है—वायुकाय के  
आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र  
का आरंभ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरंभ न करावे और वायुशस्त्र का आरंभ करनेवालों  
का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसंबंधी इन आरंभों को अर्थात् सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

समझता नहीं. अर्थात् तेमने ये ज्ञान थयुं नहीं के—‘आ पापकृत्योथी मने कर्मने  
बंध थसे.’ परंतु आ वायुकायना विषयमां शस्त्रोने आरंभ नहि करवावाणा सावध  
व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी नाले छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यल्ल हे छे ज्ञपरिज्ञापूर्वक  
प्रत्याख्यानपरिज्ञा ने प्रमाणे डाय छे. ते अतावे छे—वायुकायना आरंभने कर्मबंधनुं  
कारणु नालीने डेय—उपादेयने विवेक राखवावाणा पुरुष चोतेन वायुशस्त्रने आरंभ  
करे नहि भीन पासे वायुशस्त्रने आरंभ करावे नहि. अने वायुशस्त्रने आरंभ  
करवावाणाने अनुमोदन आये नहि.

ने वायुकायसंबंधी ये आरंभोने अर्थात् सावध व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी ‘कर्म’

सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञ-परिज्ञया बन्धकारणतया विदिताः, प्रत्याख्यान-परिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जित-सकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति ।

ननु त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायविराधनापरिहारेण यस्तु परिज्ञातकर्मा स एव मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता भुञ्जानेन भाषमाणेन वायुकायविराधना दुष्परिहरा कथं तर्हि मुनिश्चरेत् तिष्ठेत् आसीत् शयीत् भुञ्जीत् भाषेत् ? इति । अत्रोच्यते-मुनिनां सर्वं स्वकर्तव्यं यतनयैव संपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता--

कर्मबध का कारण जान लिया और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका—‘तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराधना का त्याग करने वाले ही मुनि होते हैं’ यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? चलने, ठहरने, बैठने, सोने, आहार करने और भाषण करने में वायुकाय की विराधना से बच नहीं सकते । ऐसी दशा में मुनि कैसे चले, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे और कैसे बोले ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए । भगवान्ने कहा हैः--

अन्धनुं कारुण्ये' अथ लोणी दीधुं छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्यञ्छ दीधा छे, ते त्रणु करण्ये अने त्रणुयोगथी त्याग करवावाणा मुनि होय छे.

शंका—‘त्रणु करण्ये अने त्रणुयोगथी वायुकायनी विराधनानो त्याग करवावाणा न मुनि होय छे.’ आ वचन केवी रीते सायुं होई शके छे ? आलतां, भेसतां, रोकतां, सुतां, लोअन करतां अने लाषण्य करतां वायुकायनी विराधनाथी अथी शकार्तु नथी. अथी दशाभां मुनि केवी रीते आदे, केवी रीते भेसे, केवी रीते रोकथ, केवी रीते सुवे, केवी रीते लोअन करे अने केवी रीते आदे ?

समाधान—मुनिअे पोतानी सर्वं क्रियाअे यतनापूर्वक करवी लेछअे, लगवाने कथुं छे—



“ जयं चरे जयं चिद्रे, जयमासे जयं सए ।

जयं भुंजतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई ” ॥ १ ॥

ननु गमनागमनादौ यतनायाः सुसंपाद्यत्वेऽपि भाषणयतना कथं विधेया ? कथमपि भाषणे हि वायुकायविराधना परिहर्तुं न शक्यते, कथं मुनिर्यतनया भाषेत ? भाषणे वायुकायविराधनया सार्द्धं सूक्ष्मव्यापिसंपातिमजीवानामपि विराधनाऽवश्यम्भाविनी, तेषां वायुवेगसमाकृष्टानामाहत्य संपतनेन, वायुसंस्पर्शेन च संघात पर्यापच्य-पद्रावणान्तं भवतीत्यत्रैवोद्देशेऽभिहितत्वात् ? इति चेदुच्यते—

मुखवस्त्रिकावधनं भाषणयतना भगवता प्रतिबोधिता, एष वायुकाय-

“यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खडा रहे, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोए, यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो (साधु) पापकर्म का बंध नहीं करता है ” ॥१॥

शङ्का—जाने-आने में यतना सरलता से हो सकती है मगर बोलने की यतना किस प्रकार करनी चाहिए ? बोलने में वायुकाय की विराधना कौसी भी प्रकार नहीं टल सकती तो मुनि किस प्रकार भाषण करे ? भाषण करने में वायुकाय की विराधना के साथ सर्वत्र व्याप्त छोटे-छोटे संपातिम जीवों की विराधना भी अवश्य होती है । इसी उद्देश में बतलाया गया है कि—संपातिम जीव वायु के वेग से खिंचकर आ पडते हैं और वायु के स्पर्श से संघात को प्राप्त होते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं और मर भी जाते हैं ।

समाधान—भगवान् ने मुखवस्त्रिका बाँधना भाषणी की यतना बतलाई है ।

‘यतनापूर्वक आले, यतनापूर्वक भेसे, यतनापूर्वक रोकाय; यतनापूर्वक सुवे, यतनापूर्व लोअन करे, अने यतनापूर्वक बोले तो (साधु) पाप कर्मना बंध करता नथी. ॥१॥

शंका—जवा आववामां यतना सरलतापूर्वक थई शके छे, परंतु ओलवानी यतना डेवी रीते करवी जेईअे ? ओलवामां वायुकायनी विराधना डोई पणु प्रकारथी टणी शकती नथी, तो मुनि डेवी रीते लाषणु करे ? लाषणु करवामां वायुकायनी विराधनानी साथे सर्वत्र व्याप्त नाना-नाना संपातिम जिवोनी विराधना पणु अवश्य थाय छे. आ उद्देशमां अताववामां आव्युं छे डे-संपातिम जिव वायुना वेगथी जेअाईने आवी पडे छे; अने वायुना स्पर्शथी संघात-(समुदाय)ने पामे छे, मूर्च्छित थई जय छे. अने मरणु पणु पामे छे.

समाधान—लगवाने मुखवस्त्रिका बाधवी ते लाषणुनी यतना अतावी छे. आ वायुकायने

समारम्भः ग्रन्थमोहमारनरकरूपस्तस्मादहितोऽयमिति मत्वा वायुकायविराधनया शान्तिमार्गावलम्बिनः संयमिनः प्राणान् धारयितुमपि नावकाङ्क्षन्तीत्यत्रैवोद्देशे समुपदिशता भगवता भाषणयतनारूपं मुखवस्त्रिकाबन्धनमिति सूचितम् । उक्तञ्च समुत्थानसूत्रे—

“.....तथो पच्छा गोयमा ! सर्लिंगे मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे ॥ १ ॥

मुहपत्तीः णं भंते ! किंपमाणा ? गोयमा ! मुहप्पमाणा मुहपत्ती । मुहपत्ती णं भंते ! कस्स वत्थस्स कडे ? गोयमा ! एगस्सवि सेयवत्थस्स णं अट्टपुडलाए मुहपत्तिं करेह ॥ २ ॥

कस्सट्ठं मुहपत्तीए णं अट्ट पुडलाइं ? गोयमा ! अट्टकम्मदहणट्ठं ॥

मुहपत्ती णं भंते ?, कहां बंधे ?, गोयमा ! एगकन्नेण दुच्चकन्नप्पमाणेण दोरेण सद्धिं मुहे बंधेह । मुहपत्तीएणं भंते ! के अट्टे ?, गोयमा ? जण्णं मुहअंते सइ वट्ठति से तेणट्ठेणं मुहपत्ती । कस्सट्ठंभंते ! मुहपत्तिं मुहेणसद्धिं बंधे ?, गोयमा ! सर्लिंगवाउ-जीवरक्खणट्ठं ॥ ३ ॥

जइ णं भंते ! मुहपत्ती वाउजीवरक्खणट्ठाए तो किं सुहुमवाउकायजीवरक्खण-ट्ठाए वा वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वा ? गोयमा ! णोति सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए । नो-ति अविसेसं, एवं ते सव्वेवि अरिहंता पवुच्चंति ॥ ४ ॥” इति ।

यह वायुकाय का समारंभ ग्रन्थ है, मोह है, मार है, नरक है और इस कारण अहितकारी है, अत एव शान्ति-मोक्षमार्ग का अवलम्बन करने वाले संयमी वायुकाय की विराधना करके अपने प्राणों की भी इच्छा नहीं करते । इसी उद्देश में भगवान् ने उपदेश देते हुए भाषा यतनारूप मुखवस्त्रिका का बाँधना सूचित किया है । समुत्थान सूत्र में कहा भी है:—

समारंभ ग्रंथ छे, मोह छे, मार छे, नरक छे, अने ते कारणे अहितकारी छे. अट्टला भाटे शान्ति-मोक्ष मार्गानु अवलम्बन करवावाणा संयमी वायुकायनी विराधना करीने पोताना प्राणनी पणु इच्छा करता नथी. आ उद्देशमां लगवाने उपदेश आपता थका भाषा यतनारूप मुखवस्त्रिका बाँधवानी सूचना करी छे.

समुत्थानसूत्रमां उद्धुं पणु छे:—

छाया—

“...ततः पश्चात् गौतम ! सलिलो मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् । मुखपत्री खलु भदन्त ! किंप्रमाणा ?, गौतम ! मुखप्रमाणा मुखपत्री । मुखपत्री खलु भदन्त ! केन वस्त्रेण कृता ?, गौतम ! एकस्यापि श्वेतवस्त्रस्याष्टपुटकां मुखपत्रीं कुर्यात् ॥ २ ॥

कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्री खलु अष्टपुटका ?, गौतम ! अष्टकर्म-दहनार्थम् । मुखपत्रीं भदन्त ! कथं बध्नीयात् ?, गौतम ? एककर्णेन द्वितीयकर्ण-

“...गौतम ! तत्पश्चात् स्वलिङ्गी साधु मुख के साथ मुखपत्ती बाँधे ॥१॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का क्या प्रमाण है ?

उत्तर—गौतम ! मुँह के बराबर मुँहपत्ती होती है ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस वस्त्र की होती हैं ?

उत्तर—गौतम ! एक सफेद वस्त्र की आठ पुटकी मुँहपत्ती होती है ॥२॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पुटकी क्यों होनी चाहिए ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मों को भस्म करने के लिए ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस तरह बाँधनी चाहिये ?

उत्तर—गौतम ! एक कान से दूसरे कान तक लम्बे डोरे के साथ मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ।

“...गौतम ! तत्पश्चात् स्वलिङ्गी साधु मुख साथे मुखपत्ति बाँधे. (१)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्तीनुं शुं प्रमाणुं छे ?

उत्तर—गौतम ! मुखनी बराबर मुँहपत्ती डोय छे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती क्या वस्त्रनी बने छे ?

उत्तर—गौतम ! अक सफेद वस्त्रनी आठ पडनी मुँहपत्ती डोय छे. (२)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पडनी शा भाटे डोवी जेधये ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मोनि लश्म करवा भाटे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती डेवी रीते बाँधवी जेधये ?

उत्तर—गौतम ! अक कानथी बिन कान सुधी लांबा दोरानी साथे मुँहपत्ती मुख पर बाँधवी जेधये.

प्रमाणद्वरकेण सार्द्धं मुखे बध्नीयात् मुखपत्र्या भदन्त ! कोऽर्थः ?, गौतम ! यत्खलु मुखान्ते सदा वर्तते तेनार्थेन मुखपत्री । कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् ?, गौतम ! स्वलिङ्गवायुजीवरक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

यदि खलु भदन्त ! मुखपत्री वायुजीवरक्षणार्थाय तत्किं सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय वा बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविशेषम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः ब्रुवन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संप्रति केचिन्मुनिम्मन्या मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिषेधयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वह सदैव मुँह पर बंधी रहती है इस लिए वह मुँहपत्ती कहलाती है ।

प्रश्न—किस प्रयोजन से मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपत्ती बाँधना साधु का स्वर्लिंग है इस लिए, तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए मुँहपत्ती बाँधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपत्ती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या बादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु बादर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं ” ॥४॥

आजकल अपने को मुनि मानने वाले कोई—कोई मुखवस्त्रिका के बाँधने का

प्रश्न—भगवन् ! मुँहपत्तीનો अर्थ शुं छे ?

उत्तर—गौतम ! ते डमेशां मुअपर आंधी रडे छे. तेथी ते मुँहपत्ती डडेवाय छे.

प्रश्न—शुं प्रयोजनथी मुँहपत्ती मुअपर आंधवी जेधये ?

उत्तर—मुँहपत्ती आंधवी ते साधुनुं स्वर्लिंग छे जे माटे, तथा वायुकायना जिवोनी रक्षा माटे मुँहपत्ती आंधे. (३)

प्रश्न—भगवन् ! अगर वायुकायनी रक्षा माटे, मुँहपत्ती छे. तो शुं सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा माटे छे. अथवा बादर वायुकायनी रक्षा माटे छे ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा माटे नडि परन्तु बादर वायुकायना जिवोनी रक्षा माटे छे. सर्व अर्हन्त जे प्रमाणेण डडे छे. (४)

आज काल पोताने मुनि मानवावाणा केरु—केरु मुअवस्त्रिका आंधवानो निषेध

मुखवस्त्रिकाबन्धनं स्वीकुर्वन्त्येव । उक्तञ्च जिनप्रतिशिष्यपूर्णभद्रगणिकृतातिमुक्तक-  
चरित्रे ( श्लोकेषु ८०-८१-८२ )—

“ अथानन्यमुखस्तिष्ठन् , पुरतो निश्चलासनः ।  
प्राञ्जलिर्वदनद्वारे, दधानो मुखवस्त्रिकाम् ॥ ८० ॥  
इत्यादि यावत्—

श्रुश्रावासौ श्रुतस्यार्थं,—मतिमुक्तमुनिर्मुदा ” ॥ २ ॥ इति

विक्रमसंवत्सरे द्व्यशीत्यधिकद्वादशशत ( १२८२ ) परिमिते पूर्णभद्रगणिना  
विरचितोऽयमतिमुक्तकचरित्रनाधेयो ग्रन्थः, यस्यास्मिन् विक्रमसंवत्सरे द्व्यधिकद्वि-  
सहस्र ( २००२ ) परिमिते विंशत्यधिकसप्तशत ( ७२० ) वर्षाणि व्यतीतानि, इतश्च  
स्फुटमेतदवगम्यते मुखवस्त्रिकाबन्धनं—सादर परिगृहीतं तेषामाचार्यैस्तदनुयायिभिश्च ।

निषेध करते है । परन्तु उनके आचार्य मुखवस्त्रिका बांधना स्वीकार करते है । जिनपति के  
शिष्यपूर्णभद्रगणिविरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’ ( श्लोक ८०-८१-८२ ) में कहा है:—

“पर-पदार्थो में सुख न मानने वाला, निश्चल आसन से सामने हाथ जोड़कर मुख  
पर मुँहपती धारण किये हुआ अतिमुक्तक मुनिने श्रुतका अर्थ सुना ॥८०-८२॥

विक्रम संवत् १२८२ में पूर्णभद्र गणिने यह अतिमुक्तकचरित्र नामक ग्रंथ  
लिखा है । इस संवत् २००२ तक उसे ७२० वर्ष हो चुके हैं । इस से स्पष्ट ज्ञात होता  
है कि उनके आचार्योंने और उनके अनुयायियोंने मुखवस्त्रिका का बाँधना आदरपूर्वक  
अंगीकार किया है ।

करे छे. परन्तु तेमना आचार्य मुखवस्त्रिका बांधवानुं स्वीकार करे छे. जिनपतिना शिष्य  
पूर्णभद्रगणि-विरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’ मां श्लोक ८०-८१-८२ मां कहुं छे:-

पर पदार्थोमां सुख नहि मानवावाणा निश्चल आसनथी सामे हाथ जेडीने  
मुखपर मुँहपती धारण करेला ‘अतिमुक्तक’ मुनिजे श्रुतने अर्थ सांलये। ॥८०-८२॥

विक्रम संवत् १२८२ मां पूर्णभद्र गणिजे आ अतिमुक्तकचरित्र नामने ग्रंथ  
लिखे छे. आ संवत् २००२ सुधीमां तेने ७२० वर्ष व्यतीत थछे थुक्यां छे. जेथी स्पष्ट  
जानुमां आवे छे के-तेमना आचार्योजे अने तेमना अनुयायियोजे मुखवस्त्रिका  
बांधवानुं आदरपूर्वक अंगीकार कयुं छे.

अपरश्च जिनपतिशिष्य लव विरचिते सनत्कुमारचरित्रे सनत्कुमारतृतीय-पूर्व-भक्ति-‘ विक्रमयशो ’-नृपवर्णनेऽभिहितम्—

“ मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च,  
कथासु लेभे विरजा द्विजौधैः ।

निषेवितः प्रान्तनिविष्टराज,—

हंसीव विभ्राजि सरः श्रियं यः ॥ १ ॥ ”

सनत्कुमारः, तृतीयपूर्वजन्मनि विक्रमयशो नाम नृपोऽभवद् । स च परिषदि धर्मकथाश्रवणार्थं यथोपविष्टस्तद्वर्णनं कुर्वन्नाह—

“ मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च ” इत्यादि । व्याख्या—इन्दुरिव मुखं मुखेन्दुः, मुखेन्दौ राजन्ती मुखवस्त्रिका यस्य स मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकः, मुखोपरिनिव-द्धातिशुक्लवस्त्रविनिर्मितदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकः । विरजाः=निर्मलान्तः करणः,

इसके अतिरिक्त जिनपति के शिष्य लवद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्र में सनत्कुमार के तीसरे पूर्वभववर्ती विक्रमयश नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

सनत्कुमार अपने तृतीय पूर्वभव में विक्रमयश नामक राजा था । वह परिषद् में धर्मकथा सुनने के लिए जिस प्रकार बैठा था उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—‘मुखेन्दु.’ इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

जिसके मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित थी अर्थात् मुख के ऊपर बँधी हुई, सफेद वस्त्र की बनी हुई मुखवस्त्रिका से जिसका मुख शोभायमान हो रहा था, जिसका अन्तःकरण निर्मल था और जो द्विजों के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयश—

ये सिवाय जिनपतिनाशिष्य लवद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्रमां सनत्कुमारना त्रीण पूर्वभववर्ती ‘ विक्रमयश ’ नामना राजन्तुं वर्णन करता थका कडे छे केः—

सनत्कुमार पोताना त्रीण पूर्वभवमां ‘ विक्रमयश ’ नामना राज हुता, ते परिषद्मां (सलामां) धर्मकथा सांलणवा माटे ने प्रमाणे भेडा हुता तेनु वर्णन करता थका कडे छे के—‘मुखेन्दु.’ इत्यादि. येनी व्याख्या आ प्रमाणे छे—

येना मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित हुती, अर्थात् मुख उपर भांघेदी सकेद वस्त्रनी अनेदी मुखवस्त्रिकाथी नेनु मुख शोभायमान थई रह्युं हुतुं, नेनु अन्तःकरण निर्मल हुतुं, अने ने द्विजेना समूहथी सेवित हुता, येवा विक्रमयश नामना राज

द्विजौधैः=द्विजसमूहैर्निषेवितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथासु=धर्मकथापरिषत्सु  
श्रियं=शोभां लेभे=प्राप्तवान् । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तत् प्रान्त-  
निविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहंस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखो-  
परिनिवद्धदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करेण मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलावृतमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता  
स्यात्, कथं तर्हि '....राजन्मुखवस्त्रिकः'—इत्यत्र 'राजन्'—पदप्रयोगसंसूचितमुख-  
वस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभया 'विभ्राजी'  
—ति सरोविशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिषद् में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ?  
जैसे जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख  
पर बंधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिषद् में  
शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकड़ी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से  
छिप जाती । ऐसी स्थिति में '....राजन्मुखवस्त्रिकः' इस पद में 'राजन्' शब्द के प्रयोग से  
मुखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई  
प्रभा रहजाती ! और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनी की उममा भी ठीक नहीं  
बैठ-सकती ।

धर्मकथानी सलाभां शोभाने पाभ्या छे. डेवी शोभाने पाभ्या छे ? जेभडे:—जेना  
किनारे राजहंसी जेहां डोय ते तणाव सुशोभित थाय छे.

जेना किनारे राजहंसी जेहां डोय ते तणाव जेवी रीते सुशोभित डोय छे ते  
प्रभाजे मुभ पर भांघेदी अने अगमगाट शोभायमान मुभवस्त्रिकाथी विक्रमयश राज  
व्याख्यापरिषद्—(सला)भां शोभता डता.

अथवा हाथथी मुभवस्त्रिका पकड़ी डोते तो ते मुभवस्त्रिकानी दीप्ति-प्रकाश  
डथेदीथी ढंकाई नत. जेवी स्थितिभां 'राजन्मुखवस्त्रिकः' आ पदभां 'राजन्'  
शब्दना प्रयोगथी मुभवस्त्रिकानी जे प्रभा—(प्रकाश) सूचित करे छे, ते प्रकाशमान  
डेवी रीते थात ? पछी तो ते ढंकायेदी जेवी प्रभा रही नत अने पछी सरोवरना  
किनारे जेठेलां राजहंसीनी उममा अराअर घटी शकत नडि.

अपरञ्च सरसि राजहंसी यथा सर्वथाऽनावृता सती सरःशोभां जनयति तथा मुखवस्त्रिका नृपस्य श्रियं करोतीति तात्पर्यं करतलेन मुखवस्त्रिकाधारणे कथमपि नोपपद्यते ।

तस्मादेतत्सनत्कुमारचरित्रपद्यं विक्रमयशानृपस्य सदोरकमुखवस्त्रिकावन्धन-मासीदिति सुस्पष्टमावेदयति ।

अहो ! महीयान् मोहमहिमा यत्स्वकीयगुरुचराणां संप्रदायवाक्यमपिसमुल्लङ्घयन्तो नवीना न कथञ्चित्प्रपन्ते ।

विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिर्दशवैकालिकसूत्रस्य मत्कृताचारमणिमञ्जूषाटीकायां प्रथमाध्ययने विलोकनीयम् ।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिलकुल उधाडी होकर ही सरोवर की शोभा बढ़ाती है उसी प्रकार मुखवस्त्रिका राजा की शोभा बढ़ाती थी । यह तात्पर्य हाथ से मुख-वस्त्रिका धारण करने में किसी भी प्रकार नहीं घट सकता ।

अतः सनत्कुमारचरित्र का यह पद्य स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विक्रम यश राजा के मुख पर डोरासहित मुखवस्त्रिका बंधी थी ।

अहो ! मोह की महिमा महान है, जिस के प्रभाव से आधुनिक लोग अपने गुरुओं के परम्परा वाक्य का उल्लंघन करते हुए भी लज्जित नहीं होते ।

विस्तार से समझने की इच्छा रखने वाले मेरी रची हुई दशवैकालिक सूत्र की 'आचारमणिमञ्जूषा'—टीका के अन्दर पहले अध्ययन में देख सकते हैं ।

ये सिवाय—नेवी रीते राजहंसिनी ऐकदम् उधाडी थईनेञ् सरोवरनी शोभा वधारे छे, तेवीञ् रीते भुभवस्त्रिका राजनी शोभा वधारती हती. आ तात्पर्यं हाथथी भुभवस्त्रिका धारणु करे तो—अथवा करवाथी केई पणु प्रकारे षनी शके नहि.

ये कारणथी सनत्कुमारचरित्रनुं ये पद्य स्पष्टइयथी अतावी आपे छे केः—विक्रमयश राजना भुभपर दोरासहित भुभवस्त्रिका आंधी हती.

अहो ! मोहनेो महिमा महान् छे, नेना प्रभावथी आधुनिक लोक चेताना गुरुओंना परम्परा वाक्यनुं उल्लंघन करता पणु शरमाता नथी.

विस्तारथी समझवानी इच्छा राखवावाणा, मारी रचेदी दशवैकालिकसूत्रनी 'आचारमणिमञ्जूषा'—टीकानी अंदर पड़ेला अध्ययनमां लेई शके छे.



इति ब्रवीमि, इति=एतत्सर्वं ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथया-  
मीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ षड्जीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्थंपि. इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणाविणयं वयंति,  
छन्दोवणीया अज्झोववण्ण आरंभसत्ता पकरंति संगं ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अवापि जानीहि उपादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आत्म-  
माणा विनय वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसक्ताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम्  
॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं—यह सब भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा  
कहता हूँ ॥ सू० ३ ॥

अब यह कहते हैं कि—षड्जीवनिकाय का आरंभ करने से कर्मबंध होता है—  
‘एत्थंपि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरंभ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं,  
ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय  
(चारित्र) वाले मानते हैं, इच्छानुसार चलते हैं, गृह्य हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों  
उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी કહે છે:—આ સર્વ લગવાનની સમીપમાં જેવું સાંભળ્યું છે  
તેવુંજ કહું છું. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે—ષડ્જીવનિકાયનો આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે:—  
‘एत्थंपि.’ इत्यादि.

मूलार्थ—वायुकायना विषयमां यणु आरंभ करवावाणा, कर्मोर्था बद्ध थाय छे  
એ પ્રમાણે સમજો. જે આચારમાં રમણ કરતા નથી, આરંભ કરતા થકા પણ પોતાને  
વિનય (ચારિત્ર) વાળા માને છે, ઇચ્છાનુસાર ચાલે છે, ગૃહ્ય છે, અને આરંભમાં  
આસક્ત છે, તે કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે. ॥ સૂ० ૭ ॥

टीका—

अत्रापि=एतस्मिन् वायुकायेऽपि, अपिशब्दात् अवशिष्टे पृथिव्यादिचतुष्के-  
स्थावरे त्रसकाये च ये भोगलोलुपाः स्वार्थवशगाः आरम्भं कुर्वन्ति, ते उपादीयमानाः  
=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिर्बध्यमाना भवन्तीत्येवं जानीहि ।

एकजीवारम्भप्रवृत्तः शेषजीवनिकायारम्भजनितकर्मभिर्बद्धो भवतीत्येवं विद्धी-  
त्यर्थः । के पुनः पृथिव्याद्यारम्भकरणेन शेषजीवारम्भजन्यकर्मभिरपि बध्यमाना  
भवन्तीति जिज्ञासायामाह—‘ये आचारे न रमन्ते’ इति ।

ये आचारे=ज्ञानदर्शनादिपञ्चविधाचारे न रमन्ते=न धृतिं कुर्वन्ति, तान्  
कर्मभिर्बध्यमानान् जानीहि । के पुनराचारे न रमन्ते ? दण्डिशाक्यादयः ।

कथमेतद्विज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—‘आरम्भमाणा विनयं वदन्ति’

टीकार्थ—इस वायुकाय के विषय में भी—(अपि) शब्द से पृथ्वी आदि अन्य  
स्थावरों में तथा त्रसकाय में जो भोगों के लोलुप और स्वार्थपरायण होकर आरम्भ करते हैं,  
वे ज्ञानावरण आदि कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो ।

तात्पर्य यह है कि—एक जीव के आरम्भ में प्रवृत्ति करने वाला शेष जीवनिकायोंके  
आरम्भ से उत्पन्न होने वाले कर्मों से भी बद्ध होता है ।

ऐसे कौन हैं जो पृथ्वी आदि एक कायका आरम्भ करके शेष जीवनिकायों के आरम्भ  
से होने वाले कर्मोंद्वारा बद्ध होते हैं ? इस का समाधान करने के लिए कहते हैं—

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पाँच आचारों में स्थिर नहीं होते उन्हें  
कर्मबंध होता है, ऐसा जानो । आचार में कौन स्थिर नहीं होते ? दण्डी तथा शाक्य आदि ।

यह कैसे ज्ञात हुआ ? इसके उत्तर में कहते हैं—वे पृथ्वीकाय आदि की विराधना

टीकार्थ—आ वायुकायना विषयमां पणु ‘अपि’ शब्दथी पृथ्वी आदि अन्य  
स्थावरोमां तथा त्रसकायमां ने लोगोना लालयु अने स्वार्थपरायण थयने आरंभ  
करे छे. ते ज्ञानावरणु आदि कर्मोथी अद्ध थाय छे. अे प्रमाणे समजे.

तात्पर्य अे छे के:—अेक लवना आरंभमां प्रवृत्ति करवावाणा आधीना लव-  
निकायोना आरंभथी उत्पन्न थवावाणा कर्मोथी पणु अद्ध थाय छे.

अेवा केणु छे के ने पृथ्वी आदि अेक कायना आरंभ करीने आधीना लव-  
निकायोना आरंभथी थनारा कर्मोद्वारा थाय छे ? तेनुं समाधान करवा भाटे कहे छे:—

ने ज्ञानाचार-दर्शनाचार आदि पांच आचारोमां स्थिर नथी थता तेने कर्म-  
बन्ध थाय छे, अे प्रमाणे लणु.

आचारमां केणु स्थिर नथी रहता ? दंडी अने शाक्य आदि.

अे केवी रीते लणु ? तेना उत्तरमां कहे छे:—ते पृथ्वीकाय आदिनी विराधना

इति । आरभमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनयं=कर्मणां विनयाद् विनयः संयमस्तं, वदन्ति=‘वयमेव संयमिसेवनपराः’ इति निश्शङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं संयमिनं मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह—‘छन्दोपनीताः’ ‘अध्युपपन्नाः’ इति । ‘छन्दोपनीताः’=छन्दः=स्वाभिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः-अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलाषस्तेनोपनीताः, तथा ‘अध्युपपन्नाः,’ अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनि-विष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—‘आरम्भसक्ताः’ । इत्यादि । आरम्भः=सावद्यव्यापारः,

करते हुए भी अपने आपको निश्शंक होकर संयमी कहते हैं । वे यह मानते हैं कि हम ही संयम का सेवन करने में तत्पर हैं ।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों की हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है—‘छन्दोपनीत’ और ‘अध्युपपन्न’

छन्द का अर्थ है—अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हों । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त-विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि—छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

करवा छतांय पणु पोते-पोताने निःशंक थर्धने संयमी कडे छे. ते अेवुं माने छे के:-अभे पणु संयमनुं सेवन करवाभां तत्पर छीअे.

ते लोक पोते-पोताने संयमी मानता थका पणु पृथ्वीकाय आदिना जेवानी हिंसाभां तत्पर शा भाटे डोय छे ? अेवी ज्ञासा थतां जे विशेषणु कडे छे जेभां डेतु छुपाअेवे। छे ‘छन्दोपनीत’ अने ‘अध्युपपन्न’ ‘छन्द’ने अर्थ छे पोताने। अलिप्राय तेनाथी स्वतंत्र अर्थात् शास्त्रथी विरुद्ध विचार करवावाणा. अथवा छन्दने अर्थ इच्छा छे. अर्हि विषयलोगोनी अभिलाषाने छन्द कडेल छे. तेभां जे स्वतंत्र डोय. तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयोभां अत्यन्त आसक्त-विषयलोगो भाटे आतुर. तात्पर्य अे छे के छन्दोपनीत अने अध्युपपन्न डोवाना कारणे ते पृथ्वी आदिनी हिंसा करे छे अने कर्मोने बंध करे छे. आरंभ अर्थात्-सावद्य व्यापारभां प्रवृत्त पुरुष ज्ञानावरणीय

तत्र सक्ताः=प्रवृत्ताः, सङ्गं=सज्यन्ते=श्लिष्यन्ते जीवा अनेनेति सङ्गः=ज्ञानावरणी-  
यादिकं कर्म, तं सङ्गं प्रकुर्वन्ति=समुत्पादयन्ति ।

एवं षड्जीवनिकायारम्भकारिणः खलु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य जन्म-  
जरामरणेषु वियोगानिष्टसंयोगेऽसिद्धिविविधव्याधिजनितदुःख संकुलेघोरतर-  
संसारदावानले पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भावः ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भकरणाद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्भवती-  
त्युद्देशार्थमुपसंहरन्नाह—‘से वसुमं.’ इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो  
अण्णेसि ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसगन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना अकरणीयं पापं कर्म नो अन्वेषयेत्  
॥ सू० ८ ॥

अर्थात् सावद्य व्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उपार्जन करते हैं ।

इस प्रकार षड्जीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के अधीन होकर  
जन्म मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्याधियों से  
उत्पन्न होने वाले दुःखों से व्याप्त, घोरतरसंसाररूपी दावानल में अपने आत्मा को ईधन  
बनाते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी आदि षड्जीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है; इस उद्देश  
के अर्थ का उपसंहार करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—‘से वसुमं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्रवान्-सम्यग्दृष्टि है) जो यथार्थ पदार्थों को  
जाननेवाले ज्ञानात्मा से पाप को अकरणीय समझकर नहीं करता है ॥ सू० ८ ॥

आदि कर्मोनुं उपार्जन करे छे.

आ प्रमाणे षड्जीवनिकायने आरंभ करवावाणा कर्मबन्धने आधीन थधने  
जन्म, जरा, मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, इच्छेदी वस्तुनी अप्राप्ति, तथा  
विविध प्रकारनी व्याधिओथी उत्पन्न थनारां दुःखोथी व्याप्त, घोरतर संसाररूपी  
दावानलमां पोताना आत्माने ईधन-(अणतणुइप) अनावे छे. ॥ सू० ७ ॥

जे पृथ्वी आदि षड्जीवनिकायना आरंभथी निवृत्त छे तेज मुनि छेय छे,  
आ उद्देशना अर्थने उपसंहार करीने शास्त्रकार कहे छे—‘से वसुमं.’ इत्यादि.

मूलार्थ—तेज वसुमान् छे (सम्यक्त्व-चारित्रवान् सम्यग्दृष्टि छे) जे यथार्थ  
पदार्थोने जणुवावाणा ज्ञानात्माथी पापने अकरणीय (करवा योग्य नथी ओवुं)  
समज्जने करता नथी. ॥ सू० ८ ॥

## टीका—

यस्तु षड्जीवनिकायारम्भनिवृत्त्या संयमपालनपरायणः, स वसुमान्, द्विविधानि हि वसूनि सन्ति द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यवसूनि—सुवर्णादीनि, भाववसूनि—सम्यक्त्वादीनि, अत्र भाववसुतात्पर्यको वसुशब्दः, तानि वसूनि यस्य यस्मिन् वा सन्ति स वसुमानित्यर्थः, सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=सर्वाणि समन्वागतानि प्रज्ञानानि यस्यात्मनः स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः=यथावस्थितविषय-ग्राहिसर्वविषयकज्ञानवान्, तेन ।

यद्वा-सर्वेषु द्रव्यपर्यायेषु समन्वागतं=सम्यक्प्राप्तं तत्तद्विषयमाकलय्य सर्व-द्रव्यपर्यायगतं प्रज्ञानं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः, तेन, आत्मना, अकरणीयम्=अकर्तव्यम्, ऐहिकपारलौकिकसुखविघातकत्वाद्नाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=प्राणातिपात-मृषावादा-दत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष

टीकार्थ—जो पुरुष षड्जीवनिकायसंबन्धी आरम्भ का त्याग करके संयम के पालन में तत्पर होता है वही वसुमान् है । वसु के दो भेद हैं—(१) द्रव्यवसु और (२) भाववसु । स्वर्ण आदि धन द्रव्यवसु कहलाता है, और तप संयमादिरूप ऋद्धि को भाववसु कहते हैं । यहाँ 'वसु' शब्द से भाववसु ही समझना चाहिए । वसु जिसे प्राप्त हो वह वसुमान् है, अर्थात् सम्यक्त्व आदि से युक्त पुरुष वसुमान् कहलाता है ।

जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में जानने वाला सर्वग्राही ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है । अथवा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को यथार्थरूप से जानने वाला ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है । ऐसे ज्ञानरूप आत्मा से पाप को इस लोक तथा परलोकसंबन्धी सुखों का घातक होने से अकर्तव्य समझकर (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन । (५) परिग्रह (६) क्रोध, (७) मान (८) माया (९) लोभ

टीकार्थ—जो पुरुष षड्जीवनिकायसंबन्धी आरंभने त्याग करके संयमना पालनमें तत्पर थाय छे. तेज वसुमान् (सम्यग्दृष्टि) छे. वसुना जे लेह छे. (१) द्रव्य-वसु अने (२) भाववसु, सुवर्ण आदि धन द्रव्यवसु कहेवाय छे. अने सम्यक्त्व आदि रूप ऋद्धिने भाववसु कहे छे. अहि 'वसु' शब्दथी भाववसु जे समज्जुं लेधये. वसु जेने प्राप्त होय ते वसुमान् छे. अर्थात् सम्यक्त्व आदिथी युक्त पुरुष वसुमान् कहेवाय छे.

जे वस्तु जेवी छे तेने तेवा रूपमां ज्ञानवावाणा सर्वथाही ज्ञान 'सर्वसमन्वा-गत प्रज्ञान, कहेवाय छे. अथवा समस्त द्रव्ये अने पर्यायने यथार्थ रूपथी ज्ञानवा-वाणुं ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहेवाय छे. जेवा ज्ञानरूप आत्माथी पापने आ दोह तथा परलोक-संबन्धी सुखोनुं घातक होवाथी, अकर्तव्य समज्जने (१) प्राणातिपात, (२) मृषावाद, (३) अदत्तादान, (४) मैथुन, (५) परिग्रह, (६) क्रोध, (७) मान,

—कलहाऽभ्याख्यान—पैशुन्य—परपरिवाद—रत्यरति—मायामृषा—मिथ्या—दर्शनशल्या-  
भिधानमष्टादशप्रकारं नान्वेषयेत्—न स्वयं कुर्यात्, न चान्यैः कारयेत्, न चान्यं  
कुर्वाणमनुमोदयेदित्यर्थः ।

योऽयमात्मा स्वकीयप्रज्ञानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन  
च मोक्षमार्गावलम्बनतः शिवपदमपि शक्यते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरधःपतन-  
कारित्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याज्यमिति विभाव्य षड्जीवनिकायारम्भकरणा-  
त्सर्वथा विनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

षड्जीवनिकायारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—‘तं  
परिणाय.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिणाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा  
णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं

(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद  
(१६) रति—अरति (१७) माया—मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अठारह प्रकार का पाप  
जो स्वयं नहीं करता है, दूसरो से नहीं कराता है और दूसरे करने वाले का अनुमोदन नहीं  
करता है वही पुरुष वसुमान् है ।

तात्पर्यं यह है कि—जो आत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को  
भली भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष—मार्ग का आश्रय लेकर  
मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको ‘आत्मा का अधःपतन करने वाले पापकृत्य सर्वथा  
त्याज्य है’ ऐसा विचार करके षड्जीवनिकाय के आरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥सू० ८॥

षट्काय के आरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त कराता है, यह बात आगे कहते  
है—‘तं परिणाय.’ इत्यादि ।

(८) माया, (९) दोष, (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान,  
(१४) पैशुन्य, (१५) परपरिवाद, (१६) रति—अरति, (१७) माया—मृषा अने (१८)  
मिथ्यादर्शनरूप अठार प्रकारनां जे पाप तेने पोते करता नथी, भीज पासे करावता  
नथी, अने भीज करावाणाने अनुमोदन आपता नथी. तेज पुरुष वसुमान् छे.

तात्पर्यं अे छे के—जे आत्मा पोताना प्रज्ञानथी समस्त द्रव्ये अने पर्यायेने  
इडी रीते जणुवानी योग्यता धारणु करे छे, अने जे मोक्षमार्गने आश्रय लधने मुक्तिपद  
यणु प्राप्त करी शके छे, तेने, ‘आत्मानुं अधःपतन करनारां पापकृत्य सर्वथा त्याज्य छे’  
अेवो विचार करीने षड्जीवनिकायना आरंभथी निवृत्त थर्ध जवुं लेधअे. ॥सू० ८॥

षड्कायना आरंभने त्यागज साधुता प्राप्त करावे छे. अे वात आगण कडे छे—  
‘तं परिणाय.’ इत्यादि.

समारंभते समणुजाणेज्जा । जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति,  
से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देशो समत्तो ॥ १ । ७ ॥

॥ आचारसुत्ते पढमज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः  
षड्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभमाणान्  
समनुजानीयात् । यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु  
मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्पम उद्देशः समाप्तः ॥ १७ ॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=षड्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य  
कारणं भवती'ति बुद्ध्वा मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं षड्जीवनिकाय-  
शस्त्रं समारभेत । अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत् । अन्यान् षड्जीवनिकाय-  
शस्त्रं समारभमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः—षड्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का  
समारंभ न करे, दूसरों से षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करावे, और षड्-  
जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । षड्जीवनिकाय-  
संबंधी आरंभ को जो बंध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है ।  
ऐसा मैं कहता हूँ ॥सू० ८॥

टीकार्थ—षड्जीवनिकाय के आरम्भ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर  
हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष षड्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरम्भ न करे,  
दूसरों से न करावे और आरम्भ करने वालों की अनुमोदना न करे ।

षड्जीवनिकायसंबंधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा षड्जीवनिकाय को

मूलार्थ—ये बात जानने बुद्धिमान् पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रों  
समारंभ करे नहि, भीन पासे षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रों समारंभ करावे नहि, अने  
षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रों समारंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि.  
षड्जीवनिकायसंबंधी आरंभने ने अंधनु कारण जानने दे छे. तेज मुनि छे, अने  
तेज परिज्ञातकर्मा छे. अणुं हुं कहुं छुं. ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—षड्जीवनिकायना आरंभने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारण जानने हेय-  
उपादेयना विवेक राखवावाण पुरुष षड्जीवनिकायना शस्त्रना पोते आरंभ करे नहि,  
भीन पासे करावे नहि, अने आरंभ करनारने अनुमोदन आपे नहि.

षड्जीवनिकायसंबंधी ने शस्त्र प्रथम अतावी आभ्यां छे. तेना द्वारा षड्जीवनिकायने

स्वस्वशस्त्रैः समारम्भाः=पीडाकरसावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारण-  
त्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=  
त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्,  
ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रे आचारचिन्तामणिटीकायां शास्त्रपरिज्ञाख्ये  
प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-७ ॥

पीडा पहुँचाने वाले सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर  
प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण और तीन योग से सावद्य व्यापारों  
का त्यागी मुनि होता है । यह सब भगवान् के मुखारविन्द से जैसा मैंने साक्षात् सुना है  
वैसाही कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रकी आचारचिन्तामणिटीका के हिन्दी-अनुवादमें  
प्रथम अध्ययनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

पीडा पहुँचायाउवावाणा सावद्य व्यापारोने जे ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारण नाणीने  
प्रत्याख्यान परिज्ञाथी त्यज्जे दे छे, ते पुरुष त्रण करण अने त्रण योगथी सावद्य  
व्यापारोने त्यागी मुनि होय छे. आ सर्वे भगवानना मुखारविन्दथी जेवुं मे साक्षात्  
सांभळ्युं छे, तेवुंज् कहुं छुं. ॥ सू० ९ ॥

इति श्रीआचारांगसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना गुजराती अनुवादमां  
प्रथम अध्ययननो सातमो उद्देश सम्पूर्णः ॥ १-७ ॥



आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,  
भ्राम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।

इत्येवं कथितं मही-जल-शिखि-प्राण-द्रुमाणां तथा,  
जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-  
ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-  
श्रीशाहृच्छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
वासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्ता  
मणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञारख्यं प्रथममध्ययनं संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा संसार चक्र में पडकर  
नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है । साथ ही पृथ्वी,  
अप, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस की सच्चितता भी सिद्ध की गई है, और उनका  
आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीका के  
हिन्दी अनुवाद में 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन  
सम्पूर्ण ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययनमां अे निरूपणु करवामां आव्यु छे डे:-आत्मा संसारचक्रमां  
पडीने अनेक दिशाओमां अने अनेक विदिशाओमां निरन्तर भ्रमणु करतो रहे छे.  
साथेज पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति अने त्रसनी सच्चितता पणु सिद्ध करी  
छे. अने तेना आरंभ करवामां परिज्ञा-विवेक पणु प्रदर्शित करेव छे. ॥ १ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना गुजराती  
अनुवादमां 'शस्त्रपरिज्ञा' नामनुं प्रथम अध्ययन सम्पूर्णु. ॥ १ ॥

# दाताओनी नामावली

आद्य मुरण्णीश्री, मुरण्णीश्री, सहायक मेम्भरो  
तथा  
मेम्भरोनी याही

गामवार उक्कावारी लीष्ट

ता. १८-१०-४४ थी ता. २८-२-५८ सुधीमां  
हाजल थयेल मेम्भरो.

(२५० थी ओछी रकुमे आ याहीमां सामेल करी नथी.)

श्री अजिल भारत श्वे.स्था. जैन शास्त्रोद्धार समिति  
गरेडीआ कुवा रोड - श्रीन लोण पासे  
राजकेट.

## આદ્યમુરખીશ્રીઓ-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક અમદાવાદ		૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા. હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ ભાણુવડ		૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેચંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

## મુરખીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હા. કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	„	૩૨૮૬૧૧-૧૧
૪	સ્વ. પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાથે હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ ગ્રામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર આહેમ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કુપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામભાઈ	„	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનેશી	જામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહભાઈ મહેતા ( રેલ્વે મેનેજર સાહેબ ) કલકત્તા		૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુસીભાઈ ( કરાચીવાલા )	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુંબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	સિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

( ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર )

૧	શાહ, રંગભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રભાણુંદ હા. અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીયા	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીબાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ ( કરાચીવાળા )	મલાડ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસળીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ. ચંપાબેન ગોસળીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ. સમરતબેન ( રાજસીતાપુરવાળા )	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ કેમરભાઈ ( કરાચીવાળા )	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદભાઈ પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામભાઈ શામભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે		
	હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ ( જાણુઆવાળા )	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી ચાંદમલજી		
	<u>૫૦૦</u>		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ	ધ્રાક્ષા	૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઈ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી	ગુગલીયા	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ ખાવાલાઈ		
	હા. કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુળજીભાઈ મણીલાલ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ ખાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી ( જોતપુરવાળા )	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મહેતા	ભાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ધ્રાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

\*

### ૩૧૬ મેખરોનું ગામવાર લીસ્ટ

#### અમદાવાદ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હસ્તે કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટકર્તા શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજ્જમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતીબેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ કાન્તીલાલ જીવણુલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	સંઘવી જીવણુલાલ છગનલાલ ( સ્થા. જૈન )	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાંગઢાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાદેચા હા. શાહ ધુલાજી ચંપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧

- ૩૬ સ્વ. પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય યાચાજી હનરીમલજી  
ખરડીયાના સ્મરણાર્થે હા. મૂળચંદ જવાહરલાલ ૨૫૧
- ૩૭ સ્વ. ભાવસાર બખાભાઈ (મંગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમના ધર્મપત્નિ પુરીબેન ૨૫૧
- ૩૮ સ્વ. પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ. માતૃશ્રી મૂળીબાઈના  
સ્મરણાર્થે હા. કકલભાઈ કોઠારી ૩૦૧
- ૩૯ ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ ૨૫૧
- ૪૦ શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જાખડાવાળા હા. પાર્વતીબેન ૨૫૧
- ૪૧ શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ રાજસીતાપુરવાળા  
( સાખરમતી ) ૨૫૧
- ૪૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ( સાખરમતી ) ૨૫૦
- ૪૩ બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી ( રાણપુરવાળા ) ૩૦૧

### અમલનેર

- ૧ શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ગાંડાલાલ લીખાલાલ ૨૫૧

### આણંદ

- ૧ રમણીકલાલ એ. કપાસી હા. મનસુખલાલભાઈ ૨૫૧

### આસનરોલ

- ૧ બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ  
મણીબાઈ તરફથી હા. રસીકલાલ, અનીલકાંત, વિનોદરાય. ૨૫૧

### આટકોટ

- ૧ શાહ ચુનીલાલ નારણજી ૩૦૧

### ઉદેપુર

- ૧ શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
- ૨ શેઠ મગનલાલજી બાગરેયા ૨૫૧
- ૩ અ. સૌ. ખડેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરનાં  
ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
- ૪ સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧
- ૫ સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે  
હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા ૨૫૧

- ୬ ପୂଜ୍ୟ ପିତାଶ୍ରୀ ଗୋବିନ୍ଦଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ  
 ଛ. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୭ ଛଗନଚନ୍ଦ୍ର ଛାଗରାୟ ୨୫୧

ଉତ୍ତରଗାବରୋଡ଼

- ୧ ଶାଢ଼ ଗୋବିନ୍ଦଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଶେଠ ଗୋବିନ୍ଦଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୨ ଶ୍ରୀ. ଗୋ. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ  
 ତଥା ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ (ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ) ୨୫୧
- ୩ ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ୨୫୧
- ୪ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ  
 ଛ. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀଚନ୍ଦ୍ର ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ

- ୧ ଶାଢ଼ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ  
 ଛା. ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୨ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଶେଠ ଛା. ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୩ ଶ୍ରୀ. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଶାଢ଼ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୪ ଶାଢ଼ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ  
 ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଶ୍ରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୨ ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ (ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ)  
 ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୩୦୨

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧

ଓଡ଼ିଶା

- ୧ ଶେଠ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୨ ଶ୍ରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଛା. ଛା. ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୩ ଶାଢ଼ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧
- ୪ ଶାଢ଼ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ଚନ୍ଦ୍ରଶେଖରୀ ୨୫୧



## ગુંદા

- ૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

## ગોંડલ

- ૧ સ્વ. બાબડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી  
હા. માણેકચંદલાઈ તથા કપુરચંદલાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.  
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમાં ૩૦૧
- ૩ કામદાર જીઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જીઠાલાઈ ૩૦૧

## ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

## ઘટકણ

- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

## ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલજી ૩૦૦

## ચુડા (બાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હ. રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

## જલેસર (બાલાસોર)

- ૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટલાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

## ભમજોધપુર

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭
- ૨ શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

## ભમનગર

- ૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીલાઈ ૨૫૧

## ભમખંભાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રણુછોડદાસ પરમાણુદ ૨૫૧
- ૩ સંઘવી પ્રાણુલાલ લવજીલાઈ ૨૫૧

### જુનાગઢ

- ૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભઈ હા. હરીલાલભઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

### જુનારદેવ (મધ્યપ્રાંત)

- ૧ ઘેલાણી ત્રીકમજી લાઘાભાઈ ૨૫૧

### જેતપુર

- ૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા. નરભેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧  
 ૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧  
 ૩ કોઠારી ડાલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

### જેતલસર

- ૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧  
 ૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા. શાન્તીલાલભાઈ ગોંડલવાળા ૨૫૧

### ડભાસ

- ૧ સ્વ. તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયંતીભાઈ ૨૫૧

### ડોંડાઈચા

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંપાલાલ મારવે ૨૫૦

### થાનગઢ

- ૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરસનજી ૨૫૧  
 ૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીલોવનદાસ ૨૫૧  
 ૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા. સુખલાલભાઈ ૨૫૧

### દહાણુ રોડ (થાણા)

- ૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખંધાર (કરાંચીવાળા) ૨૫૧

### દિલ્હી

- ૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સિન્દૂલ ખેંકવાળા) ૩૫૧

### ધાર (મધ્યપ્રાંત)

- ૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

## ધાંગઝા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

## ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી લગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ લગવાનજી	૨૫૧
૩	અ. સૌ. ખચીબેન બાબુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર એઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

## ધંધુકા

૧	લાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

## નંદુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ત્રેમચંદ લગવાનલાલ	૨૫૦
---	--	-----

## પાણસાણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

## પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

## પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	--	-----

## ખરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
---	---	-----

## બગસરા (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ. પૂજ્ય માતૃશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે  
હ. દેશાઈ વજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

## ઝેરાજી (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાંગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

## ખોટાદ

- ૧ સ્વ. વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

## ખોડેલી

- ૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસિંહદાસ (સાણુંદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

## ભાણુવડે

- ૧ શેઠ જ્યેંદભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
- ૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદ્મશી લીમજી ફેફરીયા ૨૫૧
- ૬ ફેફરીયા ગાંડાલાલ કાનજીભાઈ હા. અ. સૌ. શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

## મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

## મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા  
હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી ખોલ્યા ૨૫૧

## માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ ૨૫૧
- (માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)

## મુંબઈ તથા પરાંચો

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી ( ખોરીવલી )	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રીવર્ધમાન સ્થા. જૈનસંઘ હા. કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ હુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણુશીની કુંપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક કચ્છ (ખેરાબવાળા)	૨૫૧
૧૧	વેરા પાનાચંદ સંઘજીના સ્મરણાર્થે હા. ત્રંબકલાલ પાનાચંદ વેરા બ્રધર્સ	૨૫૧
૧૨	સ્વ. પૂ. પિતાશ્રી વીરચંદ જેસીંગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ. માતૃશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી ( પોરબંદરવાળા )	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સફ્ટહસ્થ હા. શેઠ સુદરલાલ માણેકચંદ	૨૫૧
૧૭	અ. સૌ. પાનબાઈ હા. શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ ( મલાડ )	૨૫૧
૧૮	શ્રી અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ. શાહ નાગશી સેજપાળ ગુંદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા. રણુછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશંકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ. ગોડા વણારશી ત્રીલોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા. જગજીવન વણારશી ગોડા ( મલાડ )	૨૫૧
૨૫	સ્વ. ત્રીલોવનદાસ ત્રજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીલોવનદાસ સજમેરા	૨૫૧

૨૬	સ્વ. કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. કાનજી પતુભાઈ	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્ર ભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ ઉજમશીભાઈ ભીમશીભાઈ કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃન્નંગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજ (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરશીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૪૦	અ.સૌ. સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ (મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેનાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧
૪૨	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા. તનસુખલાલભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૪૪	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૮	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	શાહ ત્રીલોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. શાહ હરખચંદ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાંગધાવાળા હા. શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧

૫૨	સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. વૃજલાલ શામળજી ખાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા. દેવશી હંસરાજ કચ્છ ખીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ. માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખંભાતવાળા હા. ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ. પિતાશ્રી શાહ અંબાલાલ પરસોતમ પાણશણવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	બેન કેસરબાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દ્વિયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ. માતૃશ્રી કડવી બાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાંઠીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કેરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુંદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા. મોતીલાલ જીખરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અંધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ. સૌ. કમળાબેન કામદાર હા. રૂપચંદ શીવલાલ (અંધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કૂલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા. શાહ મણીલાલ ઠાકરસી	૨૫૧
૭૦	સ્વ. માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શામજી શીવજી કચ્છ ગુંદાળાવાળા (ગોરેગાંવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની કંપની (કાંઠીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ. સૌ. લાહુબેન હા. રવજી શામજી (કાંઠીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ. સૌ. બેન કુંદનગૌરી મનહરલાલ સંઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરશનભાઈ લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ. સૌ. રંજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/O ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા)	૨૫૧
૭૬	મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા. અનોપચંદ ડી. મહેતા (મુંબઈ)	૨૫૧

## માંડવી (કચ્છ)

- ૧ શ્રી. સ્થા. છ કોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

## મેસાણા

- ૧ શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

## મોખાસા

- ૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦  
૨ શ્રીચુત નાથાલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

## યાદગીરી

- ૧ શેઠ બાદમલજી સૂરજમલજી બેન્કસ ૨૫૦

## રાણપુર (ઝાલાવાડ)

- ૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ડૉ. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

## રાણાવાસ (મારવાડ)

- ૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. બાબુરીબખચંદજી ૩૦૧

## રાજકોટ

- ૧ ધી વાડીલાલ ડાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્ક્સ ૪૦૦  
૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧  
૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ ( ઉદ્દેપુરવાળા ) ૨૫૦  
૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧  
૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમનાં ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧  
૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧  
૭ શેઠ પ્રજારામ વીઠ્ઠલજી ૨૫૧  
૮ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (ગોંડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧  
૯ ખડેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુસાલી) ૨૫૧  
૧૦ મોદી સૌભાગ્યચંદ મોતીચંદ ૨૫૧  
૧૧ બદાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ  
અ. સૌ. સમરતબેનના વરસીતપની ખુસાલી ૨૫૧  
૧૨ દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ ઈન્જનીયર સાહેબ) ૨૫૧  
૧૩ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦  
૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચંદ ૨૫૧



## રંગુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧  
લાખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ ૨૫૧  
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે  
હા. ભાઈ ત્રીલોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧  
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧  
૪ શાહ ચુનીલાલ માલુકચંદ ૨૫૧  
૫ શાહ બદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. ભાઈ શાન્તીલાલ બદવજી ૨૫૧  
૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ સમરતબેન  
વ્રજલાલ તરકૂથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

## લાલપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા. મગનલાલભાઈ ૨૫૧  
૨ શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

## લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ  
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

## લીમડી (પંચમહાલ)

૧ શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧  
૨ છાજેડ ઘાસીરામ, ગુલાબચંદ ૨૫૧

## લોનાવલા

૧ શેઠ ઘનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

## વઢવાણ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા. સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ ૨૫૧  
૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧  
૩ સંઘવી મૂળચંદ ખેચરભાઈ હા. જીવણુલાલ ગફલદાસ ૨૫૧  
૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧  
૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

૬	વૌરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧
૭	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	૨૫૧
૮	શાહ દેવશી દેવકરણુ	૨૫૧
૯	વૌરા ડોસાભાઈલાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વૌરા નાનચંદ શીવલાલ	૨૫૧
૧૦	વૌરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈનસંઘ હા. વૌરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	૨૫૧
૧૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી	૨૫૧
૧૨	સ્વ. વૌરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વૌરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧

### વટામણુ

૧	શ્રી વટામણુ સ્થા. જૈનસંઘ હા. શ્રી ડાદ્યાભાઈ હલુભાઈ પટેલ	૨૫૧
---	---	-----

### વલસાડ

૧	શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ	૨૫૧
---	---------------------	-----

### વણી

૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્નિ સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	૨૫૧
---	---	-----

### વડોદરા

૧	કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ ( ગોંડલવાળા )	૨૫૧
૨	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	૨૫૧
૩	સ્વ. પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુજાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રમણલાલ ફકીરચંદ	૨૫૧

### વડીયા

૧	પંચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા)	૨૫૧
---	--------------------------------------	-----

### વાંકાનેર

૧	ગાસ્તર કાન્તીલાલ ત્રંબકલાલ ખંઢેરીયા	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ ( રૂ. ૨૫૦ ખાકી )	૨૫૧
૩	દફતરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરખીવાળા હા. પ્રાણુલાલ ચુનીલાલ	૨૫૧

### વીંછીયા

૧	શ્રી. સ્થા. જૈન સંઘ હા. અજમેરા રાયચંદ મજપાળ	૨૫૧
---	---	-----

## વીરમગામ

- ૧ શાહ વાડીલાલ નેમચંદ વડીલ ૨૫૦
- ૨ શાહ વિક્રમલાલ મોદી માસ્તર ૨૫૧
- ૩ શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
- ૫ શાહ અમુખલ (અચુલાલ) નાગરદાસનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. બેન લીલા-  
વતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમાં હા. લાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦
- ૬ સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી  
હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ ૨૫૧
- ૭ સ્વ. મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી  
હા. ખીમચંદલાઈ ( ખારાઘોડાવાળા ) ૨૫૧
- ૮ સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુલાઈ હરીલાલ ૨૫૧
- ૯ સંઘવી જ્ઞેચંદલાઈ નારણદાસ ૨૫૧
- ૧૦ સ્વ. શાહવેલશીલાઈ સાંકરચંદલાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
- ૧૧ પારેખ મણીલાલ ટોકશી લાતીવાળા તરફથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
- ૧૨ શાહ નારણદાસ નાનજીલાઈના સુપુત્ર વાડીલાલલાઈનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.  
નારંગીબેનના વરસીતપ નીમિત્તે હા. શાન્તીલાઈ ૨૫૧
- ૧૩ સ્વ. છખીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ  
કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી ૨૫૧
- ૧૪ શ્રી સ્થા. જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા. પ્રમુખ અ. સૌ. રંલાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
- ૧૫ સ્વ. ત્રીલોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના  
સ્મરણાર્થે હા. ડૉક્ટર હિંમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૧૬ શાહ મૂળચંદ કાનજીલાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડલાઈ ૨૫૧
- ૧૭ શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. લાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ ૨૫૧
- ૧૮ શ્રીમતી હીરાબેન નથુલાઈના વરસીતપ નીમિત્તે  
હા. નથુલાઈ નાનચંદ શાહ ૩૦૧
- ૧૯ સ્વ. મણીયાર પરસોત્તમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે  
હા. શેઠ સાંકરચંદ પરસોત્તમદાસ ૨૫૧
- ૨૦ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ ૨૫૧

## વેરાવળ

- ૧ શાહ કેશવલાલ જ્ઞેચંદલાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ પ્રસનજી ૨૫૧

## સતારા

- ૧ સ્વ. મદનલાલજી કુંદનલાલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ રાજકુંવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

## સાલખની (ખંગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦

## સાણુંદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ ઇગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧  
૨ અ. સૌ. ચંપાબેન હા. દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧  
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧  
૪ શાહ સાંકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧  
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંખડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧  
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મૂળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧  
૭ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા. જયંતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

## સુરત

- ૧ શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

## સુવઘ (કચ્છ)

- ૧ સાંવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનંદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલજી  
મહારાજના ઉપદેશથી સુવઘ સ્થા. જૈનસંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ ૨૫૧

## સુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧  
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧  
૩ સ્વ. કેશવલાલ મૂળજીભાઈનાં ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ (યાનગઢવાળા) ૨૫૧  
૪ શાહ ન્યાલચંદ હુરખચંદ ૨૫૧

## અંજેલી (પંચમહાલ)

૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ	૨૫૧

## હાટીનામાળીયા

૧	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	૨૫૦
---	---------------------	-----

## હારીજ

૧	શાહ અમુલખભાઈ મૂળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	૩૦૧
૨	સ્વ. બેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મૂળજીભાઈ	૩૦૧

## હુખલી

૧	શેઠ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ	૨૫૧
---	-----------------------------	-----



કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આઘ સુરખીશ્રીઓ	૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૨ સુરખીશ્રીઓ	૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૩૬ સાહાયક મેમ્બરો	૪૬૧ કુલ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર ખંધ કરવામાં આવેલ છે.)

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ

મંત્રી,

શ્રી અ. ભા. જ્વે. સ્થા. જૈન શા. સ.

નોટ:-તા. ૨૩-૧૨-૫૭ ના દિને સુખઈ મુકામે ધી યુનિયન બેંક ઓફ ઇન્ડીઆ લી. માં રૂ. ૨૫૧-૦-૦ એક સદગૃહસ્થે ભરેલા છે. જેનું નામ તે ભરનાર ભાઈ તરફથી મળેલ નથી તેમજ બેંક તરફથી વધુ વિગત મળી નથી તે તે રૂ. ૨૫૧ ડીપોઝીટ તરીકે હાલ જમા પડ્યા છે જેનું નામ અમોને મળતાં ડ્રીસ્ટમાં લેવામાં આવશે.



